विश्वयात्रा के संस्मरण

दिल्ली प्रेस • नई दिल्ली

क्रम

भूमिका

मित्रवर श्री रामेश्वर टांटिया द्वारा प्रस्तुत 'विश्वयात्रा के संस्मरण' के अंश कुछ तो मैं ने सरिता में प्रकाशित लेखमाला में पढ लिए थे, बाकी कलकत्ता प्रवास के समय पढ़ने को मिले.

यात्रा मनुष्य का सहज गुण है, ऐसा मुझे प्रतीत होता है. मानव सृष्टि के बाद अनेक जातियां एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर आतीजाती रही हैं. नृतत्वशास्त्रियों द्वारा रक्त सम्मिश्रण, एक महाद्वीप के वासियों से दूसरे महाद्वीप के वासियों के साथ होना, सिद्ध हो चुका है; और इतिहास भी इस तथ्य की पुष्टि करता है.

इस अंतरिक्ष यात्रा के युग की ही बात नहीं, मनुष्य के आदि युग में भी जब यातायात के साधन नहीं के बराबर थे, आदमी पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक अपनी इसी प्रवृत्ति से प्रेरित हो कर पहुंच जाता था. स्थल मार्ग यानी पैदल रास्ते ही नहीं, अपितु समुद्र की उत्ताल तरंगों से जूझते हुए भी मनुष्य की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने ही वृहत भूखंडों से सुदूर द्वीपों तक मानव आवास बनाया. इस कृति में प्रशांत महासागर स्थित हवाई द्वीपसमूह, ईष्टर द्वीप, भारतीय महासागर स्थित मालाग्यासी (म्याडागास्कर) आकर्षक उदाहरण हैं. हवाई द्वीपसमूह से निकटतम आबादी दो हजार मील से भी अधिक है. इसी प्रकार मालाग्यासी द्वीप अफ्रीका महाद्वीप के निकट होने के बावजूद उस के आदिवासियों का रक्त एशियाई ही नहीं भारतीय आर्यों सा है. साथ ही सभ्यता भी मिलतीजुलती है, यहां तक कि नाम भी. संयुक्त राष्ट्रसंघ में मालाग्यासी के जो स्थायी प्रतिनिधि हैं, उन का पारिवारिक नाम रक्तमाला (रोकोतोमाला) है. गोधन ही उन की समृद्धि का चिह्न है, जैसा किसी युग में आर्यावर्त में प्रचलन था. ईष्टर द्वीप में प्राप्त हस्तलिखित पुस्तक की लिपि को आज तक पढ़ा नहीं जा सका है, और उस द्वीप में वृहत पाषाण मूर्तियों की सृष्टि और खड़ा किया जाना, अभी कुछ दिन पहले तक आज के वैज्ञानिक युग में भी आश्चर्य का विषय रहा है. मेरी अपनी राय में मध्य तथा दक्षिण अमरीका की प्रसिद्ध सभ्यताएं मय, इंका तथा आजतेक के रहस्य की कुंजी यही ईष्टर द्वीप है, जिस के मूल निवासी अपनेआप को पश्चिम यानी एशिया की ओर से आया हुआ बताते हैं.

उत्तरी अमरीका के आदिवासी अमरीकी भारतीय भी (जिन्हें पहले रेड

इंडियन्स कहा जाता था) मूलतः मंगोल हैं, और मंगोलों का स्थान एशिया ही है. नेपाल में बृहत हिमालय श्रेणी के उस पार एक प्रदेश है मुस्तांग, जहां नेपाल के एक करद उपराजा हुआ करते थे. वह जब काठमांडू आए थे तो एक अमरीकी नागरिक भी काठमांडू में था. दोनों की मुलाकात हो गई. अमरीकी नागरिक ने उक्त राजा से कहा कि उस के अपने देश अमरीका में एक प्राचीन घोड़े की नस्ल है जिसे मस्तांग (Mustang) कहा जाता है, तो इस पर राजा ने बिना किसी आश्चर्य के उन्हें बताया कि उन के अपने प्रदेश के घोड़े भी मशहूर हैं और उन की अपनी लोकश्रुति परंपरा में यह उपाख्यान है कि उन के पूर्वजों के कुछ भाईबंद समाज से बहिष्कृत होने पर अपने कुछ घोड़ों सहित उत्तरपूर्व की ओर महाचीन से भी आगे निकल गए थे. उत्तरी अमरीका के भारतीयों की उत्पत्ति के संबंध में प्रबल धारणा है कि वे बेरिंग के रास्ते एशिया से अमरीका में उस समय प्रविष्ट हुए जब यह जलडमरूमध्य कठिन हिम आवरण से जमा हुआ था.

इसी प्रकार यूरोपीय जातियां भी पूरब की ओर आईं. पंदरहवीं शताब्दी के दौरान पुर्तगाली, डच, फ्रेंच तथा आंग्ल जातियों का एशिया और अफ्रीका में, उपर्युक्त देश सहित स्पेन वासियों द्वारा मध्य तथा दक्षिण अमरीका तथा उत्तरी अमरीका के प्रदेशों में साम्राज्य और उपनिवेश की स्थापना की बातें तो मानव इतिहास में कल की सी बात है. लेकिन प्राग ऐतिहासिक काल में भी ग्रीक, रोमन, पार्थियन तथा अन्य जातियां पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ी थीं, और हूण, म्यांडाल, बर्बर, मूर वगैरह पूरब से पश्चिम की ओर गए थे. आज भी संसार में बहुत सी भ्रमणशील जातियां हैं, जो एक स्थान पर टिकी नहीं रहतीं. यूरोप के जिप्सी, भारतीय उपमहादेश के बनजारे, नट, क्रोड़, गूजर वगैरह इसी के उदाहरण हैं.

घुमक्कड़ी प्रवृत्ति मनुष्य की आदि प्रवृत्ति है. जिज्ञासा ही मानवीय सभ्यता की प्रेरक शक्ति है. और देशांतर ज्ञान की खोज भी इसी का अंग है. भोजन और जीवनवृत्ति की खोज में सामूहिक रूप से जातियों और कबीलों का एक देश से दूसरे देशों में आवागमन तो होता ही था, इस के अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से भी मनुष्य भ्रमण और यात्रा की ओर प्रारंभ से ही प्रवृत्त होता रहा है. एशिया में हमारे भ्रमणशील आर्य रिषि, बौद्धभिक्षु, चीन के ह्वेनसांग, फाह्यान, जापान के कावागुची, यूरोप के मार्कोपोलो, कोलंबस, कुक वगैरह भी इसी प्रवृत्ति की कड़ी हैं.

हमारी आर्य वा हिंदू परंपरा में तीर्थाटन का, जो यात्रा का ही दूसरा पर्याय है, प्रबल धार्मिक महत्त्व है. हमारे तीर्थ भी आर्यावर्त के चारों खूंट बिखरे हैं. प्रसिद्ध चार धामों को ही लें, तो वे हिंदुत्व की चार सीमा रेखाओं को निर्दिष्ट करते हैं. हिमाच्छादित उत्तरी छोर पर बदरीनाथ, कन्याकुमारी अंतरीप के पास दक्षिणी सागर तट पर रामेश्वरम, पूर्वीय समुद्र तट पर जगन्नाथपुरी तथा पश्चिमी सागर तट पर द्वारिकाधाम. इसी प्रकार द्वादश ज्योतिर्लिंगों का भी वितरण है. शक्तिपीठों के स्थान भी इसी तरह वितरित हैं. इन स्थानों के भ्रमण और दर्शन कर के प्रत्येक हिंदू अपनेआप को धन्य समझता है.

आज मनुष्य में जो बाह्य विषमता है उस के मूल में आर्थिक कारण तो हैं ही, पर साथ ही आपसी आवागमन का अभाव और एकदूसरी जाति के सामाजिक और

व्यावहारिक रीतिरिवाजों का अज्ञान भी है. मैं ने थोड़ा बहुत जो संसार के विभिन्न देशों का भ्रमण किया है, उस से मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि सारे संसार की आधारभूत परंपराएं एक हैं. सही है, जलवायु जनित वेशभूषा और आहारबिहार, राजनीति तथा स्वार्थरूपी क्षार ने मानव आत्मा की अग्नि को ढक रखा है. यदि उस राख को फूंक कर उड़ा दिया जाए तो आत्मा की वह आग सभी जगह समान रूप से जलती मिलेगी, और आत्मा का यह स्पर्श पारस्परिक मेलजोल और एकदूसरे की भावनाओं को समझने के प्रयास से ही स्पंदित हो सकता है.

अब रही सभ्यता की बात, कौन सी विद्यमान सभ्यता ऊंची और विकसित रही है? इतिहास बताता है कि इस के चक्र में सभ्यताएं बनती और मिटती रही हैं. मिस्र के काहिरा स्थित संग्रहालय को देखने के बाद पाश्चात्य सभ्यता के आधुनिकतम आभूषण, अलंकारों तथा परिवेश में कोई नवीनता नहीं लगती. अभीअभी कुछ ही दिन पूर्व एक पाश्चात्य देश के वैज्ञानिक ने शुक्र ग्रह में मानव आवास होने की धारणा व्यक्त की है और उस को सिंधु सभ्यता (मोहनजोदरो) के मानव का उपनिवेश होना बताया है. मैं किसी पूर्वाग्रह के कारण नहीं अपितु सहज ज्ञान के आधार पर यह कहना चाहूंगा कि हमारी अपनी संस्कृति के पुरातन वाङ्मय का वैज्ञानिक विवेचन के साथ अध्ययन और अनुसंधान होना आवश्यक है. अभी तक इस काम को पाश्चात्य जगत के विद्वान ही करते आए थे, जो हमारी मान्यताओं और मूल्यमान से अपरिचित थे. इतना ही नहीं, वे हमारे नाम और शब्दों का सही उच्चारण या हिज्जे भी नहीं कर सकते थे. अतः हमारी अपनी ही संस्कृति का ज्ञान पाश्चात्य जगत की खोज में बासी हो चुका है और उस पर भी उधार लिया हुआ है. आज इसी लिए और आवश्यक है कि हम अपने ही पूर्वजों के ज्ञान का नए संदर्भ और नए प्रकरणों में अध्ययन और अनुसंधान करें.

संसार आज सिमटता जा रहा है. यात्रा के नए साधनों और उपकरणों द्वारा जो यात्रा कल असंभव तथा असाध्य सी लगती थी, आज साध्य हो गई है. स्थल मार्ग द्वारा ही आज बस और मोटरें एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप पहुंचती हैं. जेट वायुयानों की तो बात ही क्या! मेरे अपने घर विराटनगर से धनकुटा पहुंचने के लिए पैदल तीन दिन लग जाते हैं, जब कि फासला लगभग ५४ मील का ही है लेकिन विराटनगर से न्यूयार्क दूसरे दिन चार बजे अपराह्न में ही पहुंच गया. दिशा, दिन की रोशनी और जेट यान ने मिल कर यह संभव किया.

अब तो कुछ ही दिनों में ध्वनि की गति से तीव्रतर यान साधारण सवारी का रूप लेंगे, फिर तो समय का अंतर और भी कम होता चला जाएगा. कालांतर में जितने बजे चलेंगे उतने ही बजे दूसरी जगह पहुंच सकेंगे. अलबत्ता खर्चे तो ज्यादा लगेंगे ही, पर विशेष यानों का, जो तीनचारसौ यात्रियों तक वहन कर सकेंगे, अभी परीक्षण काल चल रहा है, जो कुछ ही दिनों में तिजारती रूप ले लेगा, तो खर्चे भी अपेक्षाकृत कम पड़ने लगेंगे. पर साहसी घुमक्कड़ पदयात्रा, साइकिल अथवा 'रुको और चलो' (हिच हाइक) पद्धति से काम चला लेते हैं. आज भारत और नेपाल में जो हिप्पियों तथा बीटनिकों की बाढ़ सी आ चली है वे ज्यादातर अंतिम पद्धति ही व्यवहार में लाते हैं.

प्रस्तुत पुस्तक की शैली मनोरंजक है तथा भाषा परिमार्जित. मेरी मित्रता श्री रामेश्वर टांटिया से बहुत पुरानी है, जब न मुझे ही लोग जानते थे और न श्री टांटिया ही प्रसिद्ध थे. किंतु इतने दिनों के संबंध के बावजूद मैं कभी यह भांप नहीं पाया था कि व्यावसायिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने वाले मेरे मित्र के अंदर एक अच्छा साहित्य सृजक भी विराजता है. मेरे अज्ञान का निरावरण तो संकलित लेखमाला ने कर दिया है. जो लोग देशविदेश घूम नहीं पाए, वे घर बैठे ही पर्यटन का आनंद उठा पाएंगे, यही इस पुस्तक की देन है, और यह देन कम महत्त्व की नहीं. हिंदी साहित्य में पर्यटन संबंधी कम ही ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, और उन में यह अर्वाचीनतम ही नहीं प्रत्युत साहित्यिक रूप से भी उपादेय सिद्ध होगा, ऐसा मेरा विश्वास है.

—मातृकाप्रसाद कोइराला

'मानीड़'
विराटनगर, मोरंग (नेपाल)
विजयादशमी, सं. २०२४ वि.

अपनी ओर से

बचपन में जब मैं हाई स्कूल में था, पाठ्य पुस्तकों में देशविदेश संबंधी वर्णन पढ़ने को मिला. विदेशों में लोगों की भाषा, रीतिनीति, रहनसहन आदि के बारे में जानने की रुचि होती थी. चाव बढ़ता गया और मैं यात्रा संबंधी जो भी पुस्तकें मिलीं, पढ़ने लगा. ह्वेनसांग और इब्नबतूता की यात्राएं मुझे बहुत अच्छी लगीं. ऐसा लगता, मैं भी उन के साथसाथ ही भ्रमण कर रहा हूं. इस के बाद स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक और राहुलजी की यात्रा पुस्तकें पढ़ने को मिलीं, दुनिया को समझनेपरखने का एक नया दृष्टिकोण आया. स्वदेश तथा विदेश के तुलनात्मक विवेचन की प्रेरणा भी मिली. साथ ही स्वदेश के अलावा दूसरे देशों की यात्रा की प्रबल इच्छा होने लगी.

जिज्ञासा मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है. जानने की प्यास बुझती नहीं. जब बुझ जाती है तो मनुष्य जड़वत हो जाता है. उस की चेष्टाएं और प्रवृत्तियां कूपमंडूकी हो जाती हैं. भारतीय संस्कृति में इसी कारण जिज्ञासा और जिज्ञासु दोनों को महत्त्व दिया गया है. ज्ञान की प्राप्ति के लिए यात्रा पर अपेक्षित बल भी दिया गया है.

भारतीय जीवन की पूर्णता वानप्रस्थ और संन्यास से मानी जाती थी. इन्हीं दोनों आश्रमों में तीर्थाटन द्वारा सत्य को खोजने और पहचानने का निर्देश था. इसी लिए हमारे मुख्य तीर्थ—बद्रीनाथ, रामेश्वरम, द्वारिका और जगन्नाथपुरी—देश के चार कोनों पर थे. इन तीर्थों में जाना हमारे सामाजिक एवं राष्ट्रीय धर्म का एक अंग माना गया है, यहां तक मान्यता रही है कि बिना चारों धामों की यात्रा के मनुष्य को मोक्ष नहीं मिलता.

भ्रमण और देशाटन के प्रति प्रेम, प्रेरणा और रुचि के फलस्वरूप संसार की भिन्नभिन्न संस्कृति और सभ्यता की विभिन्न सामग्री को मथ कर सांस्कृतिक नवनीत बनाने का जितना व्यापक प्रयोग हमारे इतिहास में मिलता है उतना विश्व के किसी भी देश में नहीं.

आज से ढाई हजार वर्ष पहले जब न तो यातायात के सुगम साधन ही थे और न सुरक्षा की उचित व्यवस्था ही थी, उस समय भी सम्राट अशोक की पुत्री सुदूर देशों तक में गई. आज भी वही परंपरा है, भले ही क्षीण और अन्य रूप में हो.

हजार वर्ष की दासता के फलस्वरूप भारत को इस समय किसी बात की आवश्यकता है तो वह यह है कि स्वयं को जीवित रखने के लिए इस पृथ्वी पर

अपनेआप को प्रतिष्ठित करना है. यह तभी संभव है जब भारत अन्य राष्ट्रों का उत्कर्ष, उस के कारण और गतिविधियों को समझे और इसे कसौटी मान कर अपने कदम आगे बढ़ाए ताकि हमारी भूमि और हमारी संस्कृति परिमार्जित हो और उस में नया निखार आए.

पहली बार सन १९५० में पश्चिमी देशों में जाने का अवसर मिला. इस यात्रा का उद्देश्य था केवल पर्यटन. अतएव जिन देशों में गया उन के दर्शनीय स्थानों को ही विशेष रूप से देखा. प्रस्तुत पुस्तक में पहले १३ लेख उसी समय के हैं. अपनी यात्रा में मैं ने जो कुछ देखा और समझा उन की टिप्पणियां लिखता रहा हूं. बाद में लेख के रूप में इन का प्रकाशन सरिता में हुआ. पुस्तक के लिए इन्हें नए सिरे से नहीं लिखा गया. हां, यत्किंचित अपेक्षित परिवर्तन अवश्य करना पड़ा है.

सन १९६१ में मेरी दूसरी यात्रा रूस की थी. श्री घनश्यामदास बिड़ला को सोवियत सरकार द्वारा निमंत्रण मिला. अन्य कतिपय मित्रों के अतिरिक्त श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका भी इस यात्रा में हमारे साथ थे. देखनेघूमने की तथा अन्य सुविधाएं थीं अवश्य, किंतु साम्यवादी देशों की प्रणाली के अनुसार हमारी गतिविधि पर कुछ नियंत्रण सा था. पर्यटन अथवा यात्रा में ऐसी व्यवस्था से उत्साह का कुंठित हो जाना स्वाभाविक है, क्योंकि जनजीवन से सीधा और मुक्त संपर्क नहीं हो पाता, इसलिए आनंद की उपलब्धि पूरे तौर पर नहीं होती. चित्रशाला में सजाए गए प्राकृतिक दृश्यों के सुंदरतम चित्रों को देख कर उस नैसर्गिक आनंद की अनुभूति नहीं होती जो उन्मुक्त गगन के नीचे झरने के किनारे उस की हलकी फुहारों और मिट्टी की सोंधी महक से मिलती है.

सन १९६४ में श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका और श्री रामकुमार भुवालका के साथ तीसरी यात्रा का मौका मिला. इस बार हम नई दुनिया देखने निकले. भारत सरकार ने उस वर्ष एक योजना बनाई थी कि संसद सदस्य साठ दिनों तक किसी विशेष विषय के अध्ययन के लिए विदेश भ्रमण कर सकते हैं. खर्च निजी रहेगा, विदेशी मुद्रा की स्वीकृति सरकार देगी. हम ने यात्रा के पूर्व अपना कार्यक्रम बना लिया और अपने विदेश मंत्रालय को निर्दिष्ट स्थानों के साथ प्रोग्राम भी दे दिया. तदनुसार मंत्रालय ने विदेशों में अपने दूतावासों को हमारी उचित सहायता और व्यवस्था के लिए पूर्व निर्देश भेज दिया. इस से बड़ी सुविधा रही. हम जहां भी गए हमें मार्गदर्शन मिला, अन्यथा इतनी अल्प अवधि में हम जिन देशों में गए उन की आर्थिक व्यवस्था और औद्योगिक विकास की जानकारी प्राप्त करना संभव न था.

इस तीसरी यात्रा में हमें कुल ५२ दिन लगे. हम ने परिक्रमा प्रारंभ की पूर्व से यानी बरमा, सिंगापुर, हांगकांग होते हुए जापान पहुंचे और वहां से होनोलूलू होते हुए अमरीका. स्वदेश लौटने के लिए अमरीका से हम पूर्व की ओर उड़े और यूरोप होते हुए लेबनान गए. यहां से मैं पाकिस्तान चला गया और मेरे दोनों साथी सीधे भारत आए. अमरीका में हम ने देखा, उस का इतिहास अभी बन रहा है, एक नई संस्कृति पनप रही है जो पुरानी दुनिया एशिया और यूरोप से बहुत अंशों में भिन्न है. यूरोप में इस बार देखा, युद्धजर्जरित राष्ट्र अवसाद और अनिश्चय के अंधकार

से उठ खड़े हुए हैं. यह भी देखा कि उन की संस्कृति ने जहां नई दुनिया को कभी प्रभावित किया था, आज उन पर उलटा अमरीका का प्रभाव पड़ रहा है. इन यात्रा लेखों में संस्कृति और इतिहास के साथसाथ आर्थिक विषयों की चर्चा अधिक है.

पर्यटन अथवा देशाटन समय सापेक्ष है. विश्व के बड़ेबड़े शहरों को अच्छी तरह देख पाना और वहां के जनजीवन की गतिविधियों से पूर्ण परिचित होना, थोड़े से समय में संभव नहीं. ऐसी स्थिति में यात्रा से पहले लक्ष्य, उद्देश्य और स्थान निश्चित कर लेने से समय और पैसे—दोनों की बचत होती है.

देशाटन में रुचि रखने वाले मेरे मित्र अकसर विदेशों के यात्रा संबंधी संभावित खर्च के बारे में मुझ से पूछते हैं. मेरा अनुभव है, व्यय की न तो निर्धारित सीमा है और न कोई मापदंड. यह तो संपूर्ण रूप से अपने मन और साधन पर निर्भर करता है. अतएव मेरी राय में मध्यम मार्ग ही सब से अच्छा है.

विदेशों में होटलों के चार्जों में बहुत अंतर है. डीलक्स होटलों में दैनिक १०० से ४०० रुपए तक तो केवल रहने का ही चार्ज है, भोजन और नाश्ते के खर्च अलग. हमारे देश की तरह वहां धर्मशालाएं नहीं हैं इसलिए आवास की व्यवस्था नितांत आवश्यक है. विदेशों में यदि मध्यम श्रेणी के होटलों में ठहरा जाए और बिना खास जरूरत के टैक्सी की सवारी न की जाए तो कुल मिला कर औसतन ६० रुपए प्रति दिन में आसानी से काम चल सकता है. इकानामिक होटल अथवा यूथ होस्टलों में आवास लेने पर दैनिक खर्च में २० रुपए की बचत हो सकती है. वैसे अलगअलग शहरों में थोड़ाबहुत अंतर रहता ही है.

यह कोई जरूरी नहीं कि विदेशों में शराब पीनी ही पड़ेगी या आमिष भोजन के बगैर चल ही नहीं सकता. निरामिष भोजन प्रायः हर जगह मिलते हैं. थोड़ी सी सावधानी बरतने की जरूरत है क्योंकि वहां अंडे या चरबी को निरामिष भोजन में ही शामिल कर लेते हैं, बल्कि कहींकहीं दूध को सामिष आहार मानते हैं. जो भी हो, बड़ेबड़े शहरों में ऐसे बहुत से रेस्तोरां हैं जहां केवल निरामिष भोजन मिलता है.

वर्णभेद का जिक्र भी कई मित्रों ने किया है. मेरा खयाल है कि यह एक स्थानीय समस्या है जो कम होती जा रही है. मैं ने भी सुना था कि अमरीका में यह काफी जटिल समस्या है पर मैं वहां पश्चिम से पूर्व तक जहां कहीं भी गया, रंगभेद के कारण कोई कठिनाई मेरे सामने नहीं आई. हां मैं ने यह अवश्य देखा कि नीग्रो और श्वेत अमरीकियों के बीच रंगभेद को ले कर कुछ तनाव सा रहता है, जिस के आर्थिक के सिवा दूसरे अन्य कारण भी हैं जिन का वर्णन मेरे कई लेखों में मिलेगा. पर विदेशी पर्यटकों को इस से कोई असुविधा नहीं होती.

विदेशों की यात्रा पर जाने वाले पर्यटकों का ध्यान एक विशेष बात पर आकर्षित करना चाहूंगा. प्रत्येक भारतीय को खयाल रहे कि वह विदेशों में अपने देश का सांस्कृतिक दूत अथवा प्रतिनिधि है, एक पर्यटक मात्र नहीं. हमारे देश के प्रति विदेशों में, खास तौर पर अमरीका और यूरोप में, विशेष जिज्ञासा रहती है. इस का कारण यह है कि हमारी सभ्यता और संस्कृति के प्रति इन महादेशों में आकर्षण है. वहां पादरियों द्वारा फैलाए हुए अनेक प्रकार के रहस्य व भ्रांतियां भी हैं.

तकाजे के सामने झुकना ही पड़ता था.

देश में सरिता का एक बड़ा पाठकवर्ग है, विशेषतः शिक्षित महिलाओं में. इन्होंने भी मेरा उत्साह बढ़ाया है.

जहां तक बन पाया है, विवरण और आंकड़े सही रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा रही है, फिर भी संभव है कि गलतियां रह गई हों. इस के लिए आप के सुझावों का उपयोग अगले संस्करण में करूंगा.

जनभारती के अक्षय और विशाल कोष में पर्यटन साहित्य का यह अर्घ्य यदि स्थान पा सका तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूंगा.

रामेश्वर टांटिया

विश्वयात्रा के संस्मरण . . .

तकाजे के साथ
देश में
इन्होंने भी भ
जहां त
चेष्टा रही है
तुलावों का
जनता
स्थान पा र

बर्मा

चीनी कम्युनिज्म के चक्रव्यूह में

बात कुछ अजीब सी है, पर है सच. जो जहां रहता है, वहां की या पासपड़ोस की चीजों के लिए उस में आकर्षण कम रहता है. मुझे दिल्ली में रहते दस वर्ष हो गए. मेरे यहां मेहमान आते हैं, कुतुबमीनार, लालकिला, बुद्ध मंदिर, हुमायूं का मकबरा, संसदभवन तथा अन्यान्य ऐतिहासिक स्थलों को दोतीन दिनों में देख लेते हैं, मुझ से इन के बारे में बातचीत करते हैं. सब तरह के साधन मेरे पास हैं, पर मैं अभी तक दिल्ली की कई ऐतिहासिक इमारतों को नहीं देख पाया हूं. मेरे मित्र और मेहमानों को सहसा विश्वास नहीं होता, मगर बात सच है. इस की वजह है, मैं हमेशा सोचता रहा कि यहीं तो हूं, कभी देख लूंगा. दो बार विदेशों का चक्कर लगा चुका हूं. सुदूर उत्तरी ध्रुवांचल में मध्यरात्रि का सूर्य देखने नारविक चला गया, स्विट्जरलैण्ड में आल्प्स की हिमानी शैल मालाओं पर चढ़ आया, पर बर्मा अभी तक छूटा हुआ था.

मगर इस का यह अर्थ नहीं कि बर्मा देखने की इच्छा नहीं थी. बचपन में इस के बारे में बहुत कुछ सुना करता था. रंगूनी हीरे, बर्मी सोना, बर्मी टीक (सागवान) की बड़ी तारीफ और कद्र थी. सन १९३७ तक तो वह भारत का ही अंग था. भारतीयों का अबाध आवागमन और व्यापार यहां था. हमारे कई सगेसंबंधी यहां स्थायी रूप से रहते थे. स्कूलों में भारत का नक्शा बनाने पर बर्मा भी उस में रहता था. बचपन में जिस विचार अथवा बात का रेखांकन मानस में हो जाता है वह सहज में मिटती नहीं. यही वजह है कि आज भी पाकिस्तान, श्रीलंका और बर्मा हमारे लिए राजनीतिक कारणों से विदेश भले ही हो गए हों पर मन तो अब भी इन्हें स्वदेश का ही अभिन्न अंग समझता है. खैर, वह वक्त भी आया जब सन १९६४ की जुलाई में हमारी विश्व यात्रा का प्रथम चरण बर्मा था.

कलकत्ते से रंगून केवल डेढ़ घंटे की उड़ान है. मानसूनी मौसम के कारण दमदम अड्डे पर हवाई जहाज को रुक जाना पड़ा. मैं एयरपोर्ट में बैठा-बैठा ऊब रहा था, सोच रहा था कि विज्ञान का दावा है प्रकृति पर विजय पाने का, लेकिन जरा बादल घिर आए, जोरों की वर्षा हुई, और वायुयान की उड़ान बंद! विज्ञान असहाय! खुद ही अपने उतावलेपन पर हंसी आ गयी. एक वह भी समय था जब कलकत्ते और मद्रास से जहाजों में बैठ कर आठदस दिनों का समुद्री

सफर रंगून के लिए करते हुए लोग नहीं थकते थे. राजस्थान से हमारे ही पूर्वज रंगून जाया करते थे जिन्हें कुल मिला कर तीनचार महीने लग जाते थे. ज्यादा नहीं, सिर्फ १०० वर्ष पहले की ही तो बात है.

मन बहलाने की कोशिश करने लगा. भारत और बर्मा के पारस्परिक संबंध की मधुर स्मृतियों के पन्ने आंखों के सामने से गुजरने लगे. कैसी विडंबना है! मनुष्य राजनीति को जन्म देता है, फिर उसी की पैनी धार में अपनी गरदन नपवा लेता है. ३० वर्षों में इसी राजनीति के कुटिल हास्य ने भारत को खंडित कर के बर्मा, पाकिस्तान और श्रीलंका बना दिया. कल तक ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जो भारतीय कदम मिला कर संघर्ष करते थे आज वे बर्मी, पाकिस्तानी और सिंहली कहलाते हैं. भारत से उन का असहयोग है और भारतीयों से मनमुटाव!

बैठेबैठे मन बोझिल हो रहा था. बर्मावासी बहुत से भारतीयों की चिट्ठियां हमें मिली थीं. वे संकट में थे. बर्मा सरकार उन के प्रति उचित न्याय नहीं कर रही थी, यह उन की शिकायत थी. इसी लिए हम ने अपनी यात्रा की पहली मंजिल के रूप में रंगून को चुना था. सूचना मिली, वायुयान छूटने वाला है. मन का भार कम हुआ. तेजी से कदम बढ़ाता हुआ अपनी सीट पर बैठ गया. चंद मिनटों में ही दमदम हवाई अड्डा पीछे छूट गया था. रंगून पहुंच कर देखा, हवाई अड्डे पर बड़ी संख्या में भारतीय हमारे लिए प्रतीक्षा में खड़े हैं. इन में राजस्थानी स्त्रीपुरुष अधिक थे. रामकुमारजी ने धीरे से कहा, ये लोग कितनी आशा और भरोसा लिए आए हैं. हम यदि इन के लिए कुछ भी कर पाए तो बहुत बड़ी सेवा होगी. मैं ने कहा, नई दिल्ली में इन के लिए हम ने जो थोड़ा सा प्रयत्न किया उस के लिए इतना स्नेह और विश्वास इन का हम पाएंगे, इस की आशा मुझे नहीं थी. कुछ दिनों पहले हम ने बर्मा के प्रवासियों के प्रतिनिधियों की स्वर्गीय प्रधान मंत्री श्री शास्त्री और विदेश मंत्री से मुलाकात करा दी थी. इनकी कठिनाइयों का समाधान कुछ अंशों तक हो सका था.

रंगून एयर पोर्ट काफी अच्छा और बड़ा है पर दमदम की तरह नहीं उतना व्यस्त भी नहीं. यहां हम ने लक्ष्य किया कि लोग प्रेम से जरूर मिले लेकिन सब के चेहरे पर भय और उदासी की छाया थी. वे बात करते भी डरते थे, इधर-उधर देख लेते थे कि कहीं कोई गुप्तचर तो नहीं है. बर्मा में पिछले दो वर्षों से जनरल नेविन का शासन है, जो कम्युनिज्म के बहुत ही निकट हैं. बैंक और बीमा व्यवसाय के साथसाथ उद्योगधंधे और दुकानें भी सरकार ने ले ली हैं. बर्मा में सदैव से विदेशी श्रम और पूंजी उद्योग धंधे और शिल्प में लगाई जाती रही है. आधुनिक बर्मा को तो भारतीय श्रम और पूंजी का ही अवदान कहना चाहिए.

आम तौर पर बर्मी मस्तमौजी जीव हैं. जिंदगी के उतारचढ़ाव को वहां की औरतें संभालती हैं, मर्द तो मुंह में चुरुट दबाए दीवारों के सहारे ऊंघते हैं. प्रकृति ने देश का शृंगार कर दिया है. धरती अन्नपूर्णा और रत्नगर्भा है. विश्व

बेंत की टोकरी बुनते हुए एक बर्मी महिला

के चावल निर्यात करने वाले देशों में बर्मा प्रमुख है. यहां के लाल, नीलम, पन्ने और जेड संसार में बेजोड़ हैं. रबर और सागवान के जंगल धन बरसाते हैं. यहां की खानों में पेट्रोल, टीन और चांदी प्रचुर मात्रा में हैं. आबादी करीब दो करोड़ है और क्षेत्रफल २,६१,८०० वर्ग मील.

इतने नैसर्गिक साधन होते हुए भी बर्मा विश्व के इतिहास में कभी स्थान नहीं बना पाया. चिरकाल से ही विदेशियों ने इसे लूटा और शोषण किया. कुछ वहां बस भी गए. बर्मा के रक्त में मंगोलीय धारा प्रमुख है. इन के यहां का इतिहास बताता है कि हजारों वर्ष पूर्व तिब्बती, उर्वशीयम (नेफा) के मार्ग से यहां के उत्तरी भाग में आ बसे थे. इस के बाद उत्तरी सीमा से चीनी बराबर घुसपैठ करते रहे, आज भी उन का यह क्रम जारी है. इन्हीं कारणों से उत्तरी बर्मा में करेन, काचिन, काया आदि अनेक उपजातियां हैं. भाषा और संस्कार की दृष्टि से इन में भेद है. इन में पारस्परिक समन्वय की स्वस्थ प्रक्रिया धीरेधीरे हो रही थी, पर अब शायद यह सिलसिला कम्युनिस्ट विचारधारा के कारण शिथिल हो जाएगा.

जो भी हो, भारतीयों के पूर्व यहां बसने वाली जातियों ने बर्मा के राष्ट्रीय और आर्थिक विकास के प्रति रुचि नहीं रखी. परन्तु भारतीयों ने ऐसा नहीं किया. वे यहां यह समझ कर नहीं बसे कि वे विदेश में हैं अथवा प्रवासी हैं. इसी लिए भारतीय श्रम और धन की तेज धारा से बर्मा में वैभव का स्रोत फूट पड़ा

था. पर, आज वहां पर जो भारतीय हैं, बर्मी उन्हें संदेह की नजर से देखते हैं और उन्हें बर्मा से हटा देना चाहते हैं. अब स्थिति यह है कि बहुत से भारतीय बर्मा से चले गए हैं. कुछ अब भी रह गए हैं, मगर विशेष कारणों से. किसी के संबंधी जेलों में हैं, किसी को क्लियरेंस लाइसेंस नहीं दिया जा रहा है. कामधंधा है नहीं. जो कुछ पुराना बचा है, उसे बेच कर खर्च चला रहे हैं. आर्थिक दशा यह है कि बर्मा के रुपए का मूल्य भारतीय अनुपात से तिहाई रह गया है. चीजों के बेचने वाले तो बहुत से हैं पर खरीदने वाले नहीं मिलते.

मैं ने अपने एक मित्र को एक रालेक्स घड़ी और फ्रांस में बनी गुलाब की रूह खरीदने को कहा. विश्व में सर्वोत्तम आटोमेटिक क्रोनोमीटर रालेक्स घड़ी, जो बहुत ही कम बरती गई थी, मुझे डेढ़ हजार बर्मी रुपयों में यानी भारतीय मुद्रा के चार सौ पचास रुपए में मिली. भारत में इस का मूल्य है बारह सौ से चौदह सौ तक. जिन सज्जन की घड़ी थी वह कभी लाखों की संपत्ति के मालिक थे. मिल, कारखाने, जमीन, मकान सब कुछ था उन का. कम्युनिस्ट शासन की दृष्टि पड़ी और बिना मुआवजे के सब कुछ सरकारी हो गया. अब तो उन के रोजमर्रा के खर्च के लाले पड़े हैं. मैं ने उन से पूछा, "कम्युनिस्ट सरकार ने सभी विदेशियों में समता रखी होगी." धीरे से उन्होंने कहा, "नहीं, चीनी अधिक भाग्यवान हैं, अंगरेज व अमरीकी अपनीअपनी सरकार की मजबूती के कारण निरापद हैं क्योंकि उनके प्रति बर्मी सरकार का जोर जुल्म नहीं चला, लेकिन दुर्भाग्य है कि हमारा तो खूंटा ही कमजोर निकला."

चलते वक्त उन्होंने गुलाब की एक औंस रूह मेरे हाथों में दी. मैं इनकार करने लगा तो उन्होंने कहा, "अब हम किस बूते पर और किन कपड़ों पर इतना कीमती इत्र लगाएंगे. फिर यह भी तो है कि कहीं इस की सुगंध किसी गुप्तचर को लगी तो हमें जेल में ही बंद कर दे." भारतीय यात्री को बर्मा में ठहरने के लिए सिर्फ २४ घंटे का समय मिलता है. इसलिए इच्छा रहते हुए भी मौलमीन, मांडले, पेगू आदि स्थानों पर हम नहीं जा सके और सरसरी तौर पर केवल रंगून ही देख पाए. रंगून बर्मा की राजधानी है इसलिए सरकारी दफ्तर और विदेशी दूतावास यहीं हैं. बंदरगाह होने के नाते यह आयातनिर्यात और उद्योगव्यापार का केंद्र है. आबादी है इस की लगभग ८,००,०००. मकान और सड़कें व मार्ग बहुत कुछ हमारे मद्रास शहर से मिलतेजुलते हैं.

जुलाई का महीना था, गरमी कलकत्ते जैसी ही लग रही थी. दर्शनीय स्थान बहुत से थे पर समय की कमी के कारण सब देखना संभव न था. इस के अलावा यहां एक दिन ठहरने का हमारा उद्देश्य भारतीयों की समस्याओं का प्रत्यक्ष अध्ययन और उन्हें सांत्वना देना था. शहर घूमने के कार्यक्रम में सब से पहले हम श्वेडागन पगोडा (सुवर्ण मंदिर) देखने गए. एक पहाड़ी पर यह बुद्ध मंदिर लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व बनाया गया था. समयसमय पर इस में परिवर्तन होते रहे हैं. कई राजाओं ने इस के विभिन्न अंशों को बनवाया है. मंदिर में भगवान बुद्ध के कुछ अवशेष सुरक्षित हैं. इसलिए विश्व के कोनेकोने से बौद्ध इन के दर्शन के लिए आते हैं. मंदिर के बाहर सैकड़ों बर्मी लड़कियां नाना

प्रकार के फूल और पुष्प मालाएं पूजन के लिए बेच रही थीं. हम न भी तथागत के पूजन के लिए फूल खरीदे.

मंदिर का प्रांगण विस्तृत और विशाल है जिस में हजारों व्यक्ति एक साथ बैठ कर पूजन कर सकते हैं. शिखर ३२५ फुट ऊंचा है, जो काफी दूर से दिखाई देने लगता है. खिलती हुई धूप में मंदिर के शिखर का सोना चमक रहा था. हमारे यहां अमृतसर के स्वर्ण मंदिर और काशी के विश्वनाथ मंदिर में भी सोने के कलश और शिखर हैं, लेकिन श्वेडागन के बुद्ध मंदिर से उन का कोई मुकाबला नहीं है. यहां के सोने की कीमत करोड़ों रुपयों की है. यह भी सुनने में आया कि सैकड़ों टन चांदी इस के स्तंभों के नीचे है. मंदिर की कारीगरी देखता जा रहा था. मेरे एक राजस्थानी मित्र बताते जा रहे थे कि मंदिर के प्रति लोगों में इतनी श्रद्धा है कि यहां कभी चोरी या डकैती नहीं होती. करेनी लुटेरों ने इसे कभी नहीं लूटा और न जापानी सैनिकों ने अपने तीन वर्ष के शासन में कभी इस के सोनेचांदी या रत्नराशि पर नजर डाली. वल्कि वे यहां आ कर श्रद्धानत हो कर पूजन किया करते थे.

मैंने कहा, "अव तो कम्युनिस्ट सरकार है. चीन ने गिरजों, मसजिदों और मंदिरों को नहीं छोड़ा. कहीं पार्टी के दफ्तर बने तो कहीं होटल. श्वेडागन के इस वैभव का आकर्षण वे कब तक रोक सकेंगे?" धीरे से उन्होंने मेरी कलाई पर हाथ रख कर चुप रहने का संकेत किया. हम से थोड़ी ही दूर पर एक बर्मी खंभों की नक्काशी देख रहा था या हमारी वातें सुन रहा था, समझ नहीं सका. हम ने मंदिर के कक्ष में प्रवेश करते समय देखा कि वह धीरेधीरे दूसरी ओर चला जा रहा है.

हम तथागत की मूर्ति के सामने थे. विशाल मूर्ति, भव्य आकृति और उस पर छाया सौम्य भाव एक शांत वातावरण की सृष्टि कर रहा था, जिस के परिवेश में मन खो गया. वर्मा आने पर जो कुछ भी देखा और समझा इस से मन वड़ा खिन्न था. पर इस मूर्ति के सामने आते ही चित्त हलका हो गया, अवसाद दूर हो गया. संभवतः हिंदू होने के नाते मेरे संस्कारों के कारण हो लेकिन प्रसिद्ध लेखक नार्मन लेविस ने भी अपनी पुस्तक 'स्वर्ण देश' में स्वीकार किया है कि यहां वुद्ध की प्रतिमा के सम्मुख जाने पर वह भावविभोर हो गए और आधे घंटे तक आत्मविस्मृत से रहे; आंखों से आंसुओं की धार वह निकली.

मंदिर में बौद्ध, श्रमण, संन्यासी और भिक्षु काफी संख्या में रहते हैं. अध्ययन और चिंतन ही इन का प्रमुख कार्य है. वर्मा में ईसाई और इसलाम धर्म का भी प्रचारप्रसार है, फिर भी यहां बौद्ध धर्म प्रमुख हैं. बर्मा का वर्तमान कम्युनिस्ट शासन धर्म और दान के आधार पर जीवन विताने वालों को भविष्य में कितना प्रश्रय देगा, यह तो समय वताएगा.

पगोडा देखने के बाद हम रामकृष्ण हाल में गए. यहां का पुस्तकालय प्रसिद्ध है. अध्यात्म, दर्शन एवं भारत के संवंध में यहां का संग्रह काफी अच्छा है. एक प्रकार से यह पुस्तकालय प्रवासियों के मिलने का स्थान है. रामकृष्ण मिशन की ओर से वर्मा में वड़ा ठोस काम हुआ है. अव भी जो

कुछ हो रहा है, प्रशंसनीय है. लाइब्रेरी देखने के बाद मिशन के स्वामीजी के साथ रामकृष्ण अस्पताल भी देखा. अच्छा बड़ा भवन है, अस्पताल में १२२ शैयाएं हैं. बिना भेदभाव के चिकित्सा व शुश्रूषा की व्यवस्था है. देखा, रोगी प्रायः बर्मी थे.

स्वामीजी ने अपनी कठिनाइयां बताईं कि पहले तो भारत से काफी सहायता आती थी, स्थानीय व्यवसायी और सरकार भी खर्च में मदद पहुंचाती थी, पर अब वे सुविधाएं नहीं रही हैं. मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि स्वामीजी को बर्मा छोड़ने के लिए कहा जा रहा है. मैं सोचने लगा, सुदूर बंग भूमि में अपनी मांबहन और स्वजनों को छोड़ कर त्यागी और व्रती साधुसंन्यासियों पर भी संदेह रखना क्या कम्युनिस्ट प्रथा है? समता और बंधुत्व का बुलंद नारा लगाने वाला कम्युनिज्म, क्या इसी प्रकार मानवता की सेवा करेगा? अस्पताल देख कर हम भारतीय दूतावास पहुंचे. साथसाथ बर्मी सरकार के अफसर भी लगे रहे. हम चाहते हुए भी आवश्यक जानकारी नहीं पा सके.

दोपहर के भोजन का कार्यक्रम कलकत्ते के हमारे मित्र बाबूलाल मुरारका के यहां था. कुछ वर्षों पहले बड़े उत्साह से इन्होंने यहां नाइलोन की एक बड़ी फैक्टरी लगाई थी. अब उसे सरकार ने ले लिया है. मुरारकाजी मैनेजर की हैसियत से सरकारी निर्देशानुसार काम देखते हैं. मुझे जानकारी मिली कि फैक्टरी की उत्पादन क्षमता घट गई है और मुनाफा भी कम हो गया है. भोजन पर रंगून के प्रमुख व्यवसायी भी आमंत्रित थे. भारत की तरह यहां भी उद्योग व्यवसाय में राजस्थानी ही आगे बढ़े हुए थे. यहां खास बात देखने में आई कि कृषि को भी उद्योग के रूप में भारतीयों ने संगठित किया है. यहां विशेष रूप से राजस्थानियों के हाथ में लकड़ी और चावल की बड़ीबड़ी मिलें थीं, कपड़े और गल्ले का व्यवसाय था. पिछले वर्षों में आयातनिर्यात के क्षेत्र में भी इन का अच्छा दखल हो गया था. आज हालत यह है कि सब कुछ बर्मा सरकार ने ले लिया है. इन में से कुछ तो जेलों में हैं और जो बाहर हैं वे आतंकित हैं. मुझे बताया गया कि इन के सामने सब से बड़ी समस्या है कि ये अगर स्वदेश लौटें भी तो वहां करेंगे क्या? इन की हजारों इमारतें हैं, जिन में से बहुत सी सरकार ने ले ली हैं. जो बची हैं उन पर सरकार का नियंत्रण है, मुआवजा मिलने का तो सवाल ही नहीं उठता. सरकारी कानून है कि संपति बेच नहीं सकते. न जाते बनता है और न छोड़ते.

मैं ने लक्ष्य किया कि यहां के बहुत से भारतीय इतनी दयनीय अवस्था में होने पर भी बर्मा छोड़ना नहीं चाहते. बर्मा उन की मातृभूमि बन गई है. भारत उन्होंने कभी देखा तक नहीं. वैधानिक रूप से वहां के नागरिक भी बन चुके हैं. साधारणतः राजस्थानी अपनी संस्कृति और परंपरा नहीं छोड़ते, क्योंकि इस के प्रति इन्हें बड़ा मोह होता है. लेकिन यहां देखा कि अन्य भारतीयों की तरह इन में से कइयों ने बर्मी तौरतरीके अपना लिए हैं, भाषा और वेशभूषा भी इन की यहीं की है, दोचार ने बर्मी औरतों से विवाह कर लिए हैं.

इतने पर भी सरकार का विश्वास इन पर नहीं है. मैं हैरान था कि आखिर बात क्या है? खासकर भारतीयों से इस विद्वेष का मूल कारण क्या है? यह

सरकारी उद्योग में काम करने वाले सही माने में कितने खुशहाल हैं, यह तो वहीं रह कर पता चल सकता है!

निश्चित था कि वर्मा के वाणिज्यउद्योग में भारतीयों का प्रभाव और प्रभुत्व था. सन १९५१ की जनगणना के अनुसार वर्मा की २,००,००,००० की आवादी में लगभग १०,००,००० भारतीय थे, जो इस समय केवल ३,००,००० रह गए हैं जिन में अधिकतर मजदूर हैं. दूसरी तरफ चीनियों की संख्या इन वर्षों में दुगुनी-तिगुनी हो गई है. आंध्र, उत्तर प्रदेश और विहार से मोटी मजदूरी करने के लिए लोग यहां आए. पंजाव के लोग सुदक्ष कारीगर थे और ठेकेदारी करते थे. कुछ व्यापार भी करते थे. राजस्थानी यहां प्रमुख रूप से उद्योगव्यापार के क्षेत्र में थे. वंगाली अधिकतर सरकारी नौकरियों में और वकीलडाक्टर थे. मद्रास के चेट्टियरों की वड़ी संख्या यहां थी, जिन का लेनदेन का कारोवार था.

वर्मी भारतीयों की इज्जत करते थे. वर्मी औरतें तो विशेष रूप से सचेष्ट रहती थीं कि भारतीय उन्हें रख लें या विवाह कर लें, और ऐसा हुआ भी खूव खुल कर. मैं ने सड़कों पर घूमते हुए चटगांव के मुसलमानों के साथ सुकुमार वर्मी स्त्रियों को देखा. वर्मा के अराकान प्रदेश में ये चटगांवी मुसलमान भारी संख्या में वस गए और इन से उत्पन्न संतानों की तादाद भी तेजी से वढ़ी. कुछ वर्ष पूर्व इन मुसलमानों ने अराकान को पाकिस्तान में मिला देने की मांग भी उठाई थी. तव वर्मी सरकार की नींद टूटी और तभी से रोकथाम और चौकसी की जाने लगी है.

बर्मी औरतें अपने मर्द का बड़ा खयाल रखती हैं. मर्द कमाता है या नहीं इस की उन्हें चिंता नहीं, उस का स्वास्थ्य ठीक रहे, यह ज्यादा जरूरी है. खुद बड़ी मेहनत और बच्चों का लालनपालन करते हुए उसे यह शिकायत नहीं होती कि उस की कमाई पर मर्द घर में बैठा अफीम, चंडू के नशे में है या गप्पबाजी में मस्त है. बर्मी रीतिरिवाज में औरतों को तलाक देने की पूरी छूट है. फिर भी बच्चे हो जाने पर वे मातृत्व और ममत्व के कारण जल्दी तलाक नहीं देतीं. ऐसी स्थिति में बर्मी आलसी और निकम्मे हो गए. नशा करना और समय गुजारने के लिए जुआ खेलना उन का धंधा बन गया. इस का फायदा मद्रास के चेट्टि-यरों ने उठाया. ऊंचे सूद की दर पर उन को रुपया देना, फिर उन की जमीन और संपत्ति बिकवा देना या हड़प लेना इन के लिए साधारण सी बात थी. बंगाल के लोगों ने भी उन के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया. शरत बाबू के उपन्यासों में इस का उल्लेख है. ये बर्मी औरतों से विवाह कर के मौज उड़ाते थे. बच्चे बढ़ने लगते तो छोड़छाड़ कर चल देते. भारतीयों के ऐसे आचरण की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी, बर्मी लोगों के हृदय में विद्वेष का जग उठना. सन १९३७ में भारत से बर्मा के पृथक होने से पहले इस संबंध में कोई भी आवाज नहीं उठती थी. लेकिन बाद में यह एक जातीय प्रश्न बन गया है और भारतीयों के विरुद्ध भावनामूलक आंदोलन बढ़ता गया. पिछले महायुद्ध के बाद बर्मा के स्वतंत्र होने पर आंदोलन को ज्यादा बल मिला. इस में विदेशियों का हाथ था, विशेषतः इन वर्षों में चीनियों का.

चीन में साम्यवादी व्यवस्था कायम होने पर वहां की सरकार ने बर्मा की स्थिति का अच्छा अध्ययन किया जब कि हमारी सरकार ने उदासीनता का रुख अपनाया. चीनियों ने यहां अपने प्रभाव का विस्तार करने के लिए भारतीयों के विरुद्ध आग भड़काई. भारत पंचशील के गीत ही अलापता रहा. भारत को जो काम करना चाहिए था, चीन ने किया. उस की स्थिति मजबूत बनी. उन के तैयार माल के लिए बाजार मिला और वहां के निवासियों को रोजगार.

आज दस लाख चीनी बर्मा में हैं. भारत की तरह पाकिस्तान को भी परेशानी होनी चाहिए थी, पर पाकिस्तान की सरकार सजग रही और उस ने चीनियों की नीति का अनुकरण किया. आज उन के प्रति वहां विद्वेष नहीं है, बल्कि उत्तरी बर्मा में वे बड़ी संख्या में बस गए हैं. यह संख्या इतनी तेजी से बढ़ने लगी कि बर्मा सरकार को प्रतिबंध लगाना पड़ा. मगर बर्मा का संबंध पाकिस्तान से अच्छा ही रहा, जब कि हमारे साथ उतना अच्छा नहीं कहा जा सकता. इतना सब कुछ होने पर भी भारत सरकार ने सन १९५९ में बर्मा को तीस करोड़ रुपए का ऋण दिया, यू. एन. ओ. में भी उन के साथ बराबर सहानु-भूति रखी. फिर भी बर्मा सरकार भारतीयों के प्रति अनुचित व्यवहार करने के लिए तैयार है.

भोजन के उपरांत श्री गोयनका के साथ हम रंगून के अमरीकी अस्पताल को देखने गए. करोड़ों की लागत से इसे बनाया गया है. मैं देख रहा था और सोच रहा था कि यदि वर्तमान कम्युनिस्ट शासन का कुछ आभास भी अमरीका

को हो जाता तो शायद वहां की सरकार इस में इतना धन न लगाती. श्री गोयनका ने बर्मी महिला से शादी की और वेशभूषा भी वह बर्मी ही रखते हैं. मैं ने उन से पूछा, "आप बर्मी हो गए, पर यह तो बताइए कि बर्मी भोजन अपना पाए या नहीं?" उन्होंने हंस कर कहा, "भोजन के मामले में मैं अब भी भारतीय हूं, क्योंकि बर्मी ज्यादातर मांसाहारी होते हैं और चीनियों की तरह मेंढक, सांप और कीड़े भी इन के सुस्वादु व्यंजन हैं." श्री गोयनका से मैं ने जानना चाहा कि क्या सभी बर्मी भारतीयों से असंतुष्ट हैं या कम्युनिस्ट विचार धारा के ही? उन्होंने बताया कि भारतीयों के प्रति दुर्भावना का इतना अधिक प्रचार यहां किया गया है कि वह व्यापक हो उठा है. परन्तु उन की धारणा है कि यदि भारतीय सरकार प्रयत्नशील हो तो काफी अंशों में स्थिति सुधर सकती है.

ऐसी बात नहीं कि सारे के सारे बर्मी भारतीयों से घृणा करते हैं और कम्युनिस्ट शासन और सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं. शासन यद्यपि वामपंथियों का है फिर भी बहुत से विचारशील व्यक्ति बर्मियों में से ऐसे हैं जो अपने देश की वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हैं. लेकिन न तो वे किसी मंच से बोल सकते हैं और न वहां जनता की भावना को व्यक्त करने के लिए प्रेस को ही स्वतंत्रता है. प्रायः सभी कम्युनिस्ट देशों का यही तरीका है. बातचीत में काफी समय लग गया. मगर हमें यथेष्ट निष्पक्ष जानकारी मिली. शाम को चार बजे हमारे जलपान का आयोजन शहर के मारवाड़ी स्कूल में था. सब प्रकार की राजस्थानी मिठाइयां थीं और सैकड़ों राजस्थानी स्त्रीपुरुष एकत्र थे. रामकुमारजी ने मुझ से कहा कि इन्हें हम से बहुत बड़ी आशा है. पता नहीं हम कहां तक अपनी सरकार के जरिए इन के लिए कुछ कर सकेंगे!

रूबी जनरल इंश्योरेंस के श्री भट्टर ने हमारे होटल में ही रात्रि का भोज आयोजित किया था. दरअसल रंगून में यही सर्वश्रेष्ठ होटल है. पहले तो यहां कई अच्छेअच्छे होटल थे पर अब दोएक ही बचे हैं, क्योंकि इस समय चीनियों के सिवा अन्य विदेशी यहां बहुत ही कम आते हैं. भोजन में विभिन्न क्षेत्र के सौसवा सौ भारतीय आए थे, कुछ बर्मी भी थे. चहलपहल अच्छी थी, मगर उन्मुक्त वातावरण नहीं था. सिवा कुशल समाचार और अन्य औपचारिक बातों के दूसरी कोई चर्चा करने का साहस किसी ने नहीं किया, क्योंकि कुछ जासूस होटल के बेयरों के रूप में ही आसपास टहल रहे थे. वे अंगरेजी के अलावा हिंदी भी समझते थे.

दूसरे दिन एक बजे दोपहर को सिंगापुर जाना निश्चित था. सुबह नाश्ते पर हम श्री सूंग के घर गए. वहां आठदस विशिष्ट भारतीय भी निमंत्रित थे. इन में से कइयों की जानकारी बर्मी राजनीति के बारे में अच्छी थी. श्री सूंग की किसी समय वकालत की अच्छी प्रैक्टिस थी. सैकड़ों भारतीय इन के मुवक्किल थे. भारत और बर्मा के पारस्परिक संबंध और चीन की गतिविधि पर बातें हुईं. मुझे तो ऐसा लगा कि संभवतः भारत की उदार अथवा दुर्बल विदेश नीति के कारण बर्मा पर चीन का प्रभाव अधिक पड़ा. जापानियों के बर्मा से जाने के बाद ऊ आंगसान के नेतृत्व में वहां नई सरकार की स्थापना हुई थी. लेकिन इन के

मंत्रिमंडल के सात सदस्यों की राजनीतिक आततायियों ने एक साथ गोली मार कर हत्या कर दी. सन १९४८ की ४ जनवरी को बर्मा अंगरेजों द्वारा स्वतंत्र घोषित हुआ. प्रथम प्रधान मंत्री बने ऊ नू. स्वाधीन बर्मा को जितनी कठिनाइयां उठानी पड़ीं शायद ही अन्य किसी राष्ट्र के सामने इतनी समस्याएं रही हों. ऊ नू की कार्यकुशलता, निष्ठा और सूझबूझ के कारण धीरेधीरे समस्याएं सुलझ रही थीं. वह स्वयं समाजवादी विचारधारा के थे, पर उन का विरोध न तो निजी क्षेत्र के व्यापारउद्योग से था और न वह कम्युनिज्म के अंधभक्त थे. भारत के पंचशील के सिद्धांत में उन का अटूट विश्वास था और वह हमारे स्वर्गीय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू के अच्छे मित्रों में थे.

चीन की राष्ट्रीय सरकार की पराजय के बाद वहां कम्युनिस्ट सरकार का गठन हुआ तो विश्व की राजनीति में एक नया दौर शुरू हुआ. दक्षिणपूर्व एशिया के सभी राष्ट्रों पर इस का सीधा प्रभाव पड़ा. चीन के पंजे बढ़ने लगे. कम्युनिस्ट चीन ने बर्मा की राजनीति में अपने चिरपरिचित तरीके को अपनाया. च्यांग की हारी हुई सेना के भेस में पंचमांगियों की घुसपैठ हुई. केरेन लुटेरों को उकसाया गया, सरकारी खजानों की लूट, रेल, तार व टेलीफोन को अव्यवस्थित करना और हड़तालें कराना नित्य का क्रम हो गया. भारतीयों के प्रति विद्वेष की आग भड़काई गई. इस तरह शांत वातावरण भंग हो गया. उद्योगव्यापार ठप्प होने लगे.

इन सब कठिनाइयों के अलावा सन १९५३ में चावल के भावों में बहुत बड़ी मंदी आ गई. चावल बर्मा के लिए सोना है. बहुत परिमाण में इस के निर्यात से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है. मंदी के कारण बर्मा की आर्थिक स्थिति डांवांडोल हो गई. बर्मी रुपए की साख बाजार में घट गई. लाल चीन ऐसे ही मौके की ताक में था. उस ने दबाव डालना शुरू किया. फलतः परेशानी की हालत में अन्य उपाय न देख कर दिसंबर १९५६ में चीन के साथ बर्मा का समझौता हुआ. चीन की कम्युनिस्ट कूटनीति की यह महत्त्वपूर्ण विजय थी. चीन को बर्मा में प्रत्यक्ष रूप से इंडोनेशिया की तरह हाथपैर फैलाने का अवसर मिल गया. स्थिति धीरेधीरे ऊ नू के नियंत्रण से बाहर होती जा रही थी. ऊ नू ऊब गए थे. सन १९५८ में उन्हें जनरल ने विन के पक्ष में त्यागपत्र देना पड़ा. फिर भी वह इतने लोकप्रिय थे कि फरवरी १९६० के आम चुनावों में उन के दल की भारी बहुमत से जीत हुई.

कम्युनिज्म का चुनाव में विश्वास कभी नहीं रहा. लाल चीन प्रबल होता जा रहा था. बर्मा में उस के एजेंट क्रियाशील थे. २ मार्च, १९६२ को जनरल ने विन ने फौजी ताकत से बर्मी विधान सभा पर कब्जा कर लिया. इस तरह वामपंथी फौजी शासन कायम हो गया. पहले तो जनता शासन के दोषों के विरुद्ध आवाज उठा सकती थी. अब वह भी बंद हो गया. मौन हो कर जुल्म और अनाचार को सहते रहने के सिवा उन के सामने दूसरा रास्ता नहीं है. श्री सूंग ने बताया कि राष्ट्रपिता ऊ नू को जेल में डाल दिया गया, और आज तक वह वहीं हैं.

उन्होंने बताया कि भारत की तरह बर्मा भी त्योहारों का देश है. खूब शौक

से यहां के स्त्रीपुरुष उत्सव मनाते हैं--विशेषतः होली का त्योहार (टेबुला) कई दिनों की तैयारी से मनाया जाता है. स्त्रियों और पुरुषों की टोलियां मोटर, व ट्रक पर या पैदल सुगंधित जल के छोटेबड़े बरतन ले कर निकलती हैं. मित्रों के घर पहुंच कर एकदूसरे को सराबोर कर देते हैं. दूसरे दिन नाचगाने और जलूसों का आयोजन कर के एकदूसरे से मिलते हैं. दस बज रहे थे. हमें बाजार से कुछ सामान भी खरीदना था. श्री सूंग से विदा मांगी. उन्होंने अनुरोध किया कि बर्मा में इन बातों की चर्चा कहीं भी न करें. श्री भट्टर हमारे साथ थे. उन्होंने हमें हाथी दांत और आबनूस की लकड़ी पर नक्काशी की हुई कुछ चीजें दिलाईं. हमें जापान और अमरीका के अपने मित्रों को उपहार देना था. करीब १२ बजे हम एयर पोर्ट पहुंचे. मैं सोच रहा था कि बर्मा सरकार के दिए हुए एक दिन में भले ही बर्मा घूम न पाया, लेकिन जितना देखा और जाना उतने से कम्युनिस्ट देश और सरकार का यथेष्ट परिचय मिल गया. एयर पोर्ट पर हमारे स्वागत के लिए जितने लोग आए थे उस से भी अधिक संख्या विदा करने वालों की थी. सब की आंखों में निराशा थी, सब की आंखें नम थीं. इन में से कइयों से तो महज एक दिन की पहचान हो पाई थी. दुख में घनिष्टता बढ़ जाती है, सुख में औपचारिकता रहती है. मेरी भी आंखों में न जाने क्यों और कैसे दो बूंदें आ गईं.

विदा होने से पूर्व ही हम ने अपने पुनर्वास मंत्री (महावीर त्यागी) को वहां के भारतीयों के कष्टों के बारे में लिख दिया था. उन का उत्तर भी हमें बाद में जापान में मिला कि उन्होंने प्रधान मंत्री (श्री शास्त्री) से इस पर बात की है और जल्दी ही किसी मंत्री को बर्मा भेजा जाएगा तथा बर्मा के प्रधान मंत्री श्री ने विन की भारत यात्रा के अवसर पर प्रवासी भारतीयों की समस्याओं के बारे में चर्चा कर के समस्याओं का समाधान किया जाएगा. हम ने यह समाचार बर्मा के भारतीय मित्रों को भेज दिया. एक बजे हमारा विमान सिंगापुर के लिए उड़ा. मन भारी हो गया. ऐसा लग रहा था जैसे बर्मा की यह प्रथम और अंतिम यात्रा है. खिड़की से नीचे देखा कि नारियल और ताड़ की झुरमुट से बर्मा की धरती झांक रही है. धीरेधीरे वह भी आंखों से ओझल हो गई.

मलयेशिया

जो एशिया में ही नहीं, विश्व में नया प्रयोग कर रहा है . . .

रंगून से चलने के बाद घंटा भर में सिंगापुर आ गया. उत्सुकतावश यान की खिड़की से नीचे देखा. सागर तट सोने की पट्टी की तरह लग रहा था. किनारे से सटेसटे पेड़ हमारे यहां के केरल या कोचीन का सा दृश्य उपस्थित कर रहे थे. मलाया प्रायद्वीप के दक्षिणी छोर पर सिंगापुर का द्वीप है. ऊपर से देखने पर ही अंदाज होता है कि घनी बस्ती है और बड़ा बंदरगाह है.

एयर पोर्ट बड़ा अच्छा है. होना स्वाभाविक भी है क्योंकि सिंगापुर दक्षिण-पूर्व एशिया का संगम स्थल है. वायुयान से उतरते हुए हम ने देखा हमारे मित्र श्री सराफ और श्री माहेश्वरी मुसकराते हुए हमारी ओर आ रहे हैं. कलकत्ता में चौरंगी पर 'सराफ्स कारपेट' इन का प्रतिष्ठान है. यहां भी गलीचों का कारोबार काफी बड़ा है. आयातनिर्यात के अच्छे व्यापारी होने के कारण व्यवसाय के क्षेत्र में इन की ऊंची साख है.

ट्रैवेल एजेंट ने पहले ही से हमारे आवास की व्यवस्था होटल में कर रखी थी. परन्तु सराफजी के आग्रह को हम टाल न सके, उन्हीं के मेहमान बन. हम ने उन्हें बताया कि यद्यपि हमारी यात्रा का उद्देश्य विदेशों की आर्थिक व्यवस्था और स्थिति का अध्ययन करना है, किंतु व्यक्तिगत रूप से यहां के जनजीवन को जाननेसमझने के प्रति भी हमारी रुचि है. मैं जानता था कि जितना समय हमारे पास है, उस में मलाया के जनजीवन की पूरी जानकारी पाना संभव नहीं. सिंगापुर तो मलयेशिया संघ का एक राज्य मात्र है. अतएव इस संघ के अन्य राज्यों को देखने के लिए पर्याप्त समय चाहिए. श्री माहेश्वरी ने हमें बताया कि संपुट में यहां मलयेशिया के बारे में जाना जा सकता है क्योंकि कलकत्ता की तरह सिंगापुर एक ऐसा नगर है जहां मलयेशिया के सभी राज्यों के निवासी हैं.

हवाई अड्डे से जाते हुए शहर देखता जा रहा था. जुलाई का महीना था. तीसरे पहर की धूप में जैसी परेशानी कलकत्ता में रहती है, वैसी यहां नहीं थी. शायद द्वीप होने के कारण हवा नम थी. शहर अच्छा लगा, रंगून से कहीं अच्छा. सड़कों पर कहींकहीं लंबेचौड़े सिख पुलिस की वरदी में बड़े आकर्षक लगे. गुरखे सिपाही और भारतीय तो इतने दिखाई पड़े कि कभीकभी तो यह नहीं लगता था कि हम मलयेशिया के किसी शहर से गुजर रहे हैं.

सिंगापुर का क्षेत्रफल सिर्फ २९२ वर्ग मील है. इसे एक अंगरेज, सर

रैफेल्स ने १८१९ ई० में बसाया था. इस के पहले यह छोटा सा द्वीप, दलदल और जंगलों से भरा था. समुद्री डाकुओं का अड्डा था जो मलक्का से गुजरते हुए जहाजों पर छापा मारते थे. इन में चीनी डाकुओं के गिरोह तो बड़े ही खतरनाक माने जाते थे. मेरा ख्याल है, सिंगापुर का इतिहास निश्चय ही इस से पुराना रहा होगा, क्योंकि दक्षिण में जावा, सुमात्रा, बाली आदि द्वीप और उत्तर में जोहोर, पेनांग आदि के सिवा स्याम, कंबोडिया--इन सबों में भारतीय संस्कृति और संस्कार थे --अब भी हैं. स्वयं सिंगापुर का नाम भी बताता है कि यह सिंहपुर रहा होगा.

शहर घना बसा है. प्रायः सभी पूर्वी देशों में इसी ढंग की घनी आबादी होती है, अपने देश में भी ऐसा ही है. फिर भी सिंगापुर को देखने पर यह लगता है कि शहर योजनाबद्ध रूप से बसाया गया है. सड़कें साफसुथरी और चौड़ी, दोनों किनारों पर छायादार वृक्षों की कतारें और उन के पीछे मकान. यूं तो आधुनिक सभी बड़े शहर एक से लगते हैं. ट्राम बस, ट्रेन, म्युजियम, सिनेमा, थियेटर, होटल, रेस्तरां, बाजार या ताप नियंत्रित ऊंचे बड़े मकान, यूरोप, एशिया या अमरीका के सभी शहरों में प्रायः एक से ही हैं. अतएव, शहर का आकर्षण हमारे लिए कोई खास नहीं था.

मैं कुछ और ही जानना चाहता था. मलयेशिया एशिया में ही नहीं, बल्कि विश्व में एक अभिनव प्रयोग कर रहा है. चीनी, मलायी और भारतीय--इन तीन विभिन्न राष्ट्रों या जातियों का समन्वय. स्विट्जरलैंड में जरमन, फ्रेंच और इतालियनों का सफल समन्वय हुआ है. वह सहज था, क्योंकि तीनों ही पड़ोसी राष्ट्र रहे हैं, ईसाई हैं और इन में सदियों से पारस्परिक रक्त सम्मिश्रण भी होता रहा है. मलयेशिया की प्रयोगशाला में ठीक इस के विपरीत तत्त्व हैं क्योंकि भाषा, संस्कृति, इतिहास, धर्म और रक्त एकदूसरे से पृथक हैं. देखना यही था कि अनेक को एक बनाने में इन्हें कहां तक सफलता मिली है.

अपने मेजमानों के घर पहुंचा. हाथमुंह धो कर ताजा हो लिया. चाय-नाश्ता करते हुए मैं ने शहर के दर्शनीय स्थानों के बारे में पूछा. अन्य लोग भी हमारे आने का समाचार पा कर आ गए थे. टाइगरबाम गार्डन, रैफेल्स प्लेस, चेंगी समुद्रतट, म्युजियम, जामा मसजिद, बंदरगाह, फोर्ट कैनिंग हिल आदि नाम आए. सलाह यह भी दी गई कि मलाया के अन्य राज्य, विशेष रूप से पेनांग, केडा और जोहोर देख लिए जाएं, और कहीं नहीं तो मलयेशिया की राजधानी क्वालालंपुर तो जरूर. एक मित्र ने कहा कि जब आप मलयेशिया आए हैं तो यहां के घने दलदली जंगल अवश्य देख कर जाइए, आप को अनेक तरह के सांप और बड़ेबड़े अजगर देखने को मिलेंगे. उड़ने वाले सांप भी शायद देख पाएं.

स्नेहपूर्ण वातावरण था. हम समझ नहीं पा रहे थे कि क्या देखें और क्या नहीं. समय सीमित था. इस के अलावा आर्थिक परिस्थिति के अध्ययन के लिए भी लोगों से मिलनाजुलना जरूरी था. श्रीमती सराफ ने कार्यक्रम बनाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते हुए कहा, "पुरुषों को अपने कामकाज से फुरसत कम रहती है, अतएव इन सब बातों में इन का निर्णय सही नहीं रहता. इन्हें क्या पता कि जितना समय है, उस में किन स्थानों को प्राथमिकता देनी चाहिए या

सिंगापुर में किन चीजों की खरीददारी हो. यह सब काम तो हम महिलाओं का है." उन्होंने हमारे लिए कार्यक्रम बना दिया. दूसरे दिन सुबह से निकलना तय हुआ. अब दूसरे साथी विश्राम चाहते थे, पर मेरे लिए विदेश में आ कर घर में बैठे रहना कैद था. शाम हो रही थी. रात्रि के भोजन के पूर्व वापस आना था. चारपांच घंटे का समय मिल गया. निकल पड़ा खुद ही शहर घूमने. आवागमन के लिए नएपुराने सभी तरह के साधन सिंगापुर में हैं. यूरोप के बड़े शहरों की तरह ये महंगे नहीं हैं, बल्कि कलकत्ता की तरह यहां भी सवारियां सस्ती हैं. साइकिलरिक्शा और टैक्सी भी बहुत हैं. यात्री चाहें तो अपनी गाड़ी खुद ला सकते हैं, किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं है. वैसे तीसपैंतीस रुपए प्रति दिन में गाड़ियां किराए पर मिल जाती हैं.

मलयेशिया की राजधानी क्वालालंपुर का लीयान लियां भवन

पैदल ही घूमता हुआ एक चौराहे पर आ गया. भाषा के कारण यहां कठिनाई नहीं होती. कुलीमजदूर तक चाहे भारतीय, मलायी या चीनी हो, अंगरेजी समझ और बोल लेते हैं. चौराहे पर एक टैक्सी में जा बैठा. "दी माह ना? (कहां)" मलायी भाषा में टैक्सी ड्राइवर ने कहा. मैं ने उसे अंगरेजी में बताया कि भारतीय हूं. डिनर टाइम के पहले सिंगापुर का जो हिस्सा चाहो दिखा दो. बेचारा कुछ चकित सा हो गया. अपनी घड़ी देखते हुए उस ने कहा, "रैफेल म्युजियम साढ़े पांच बजे बंद हो जाता है, इसी प्रकार दूसरे दर्शनीय स्थान भी. हमारा बंदरगाह बहुत बड़ा है और अच्छा भी, चलेंगे?" मेरी रुचि उस ओर न समझ कर उस ने कहा, "चलिए आप को चेंगी का समुद्रतट दिखा लाऊं. कुछ दूर तो जरूर है करीब चालीसपैंतालिस मिनट लगते हैं जाने में." मैं ने स्वीकृति दे दी. टैक्सी नार्थ ब्रिज रोड से पूर्व की ओर बढ़ने लगी. ड्राइवर तमीजदार था. बातचीत से पता चला कि पढ़ालिखा है और आगे पढ़ने की भी इच्छा है. बूढ़ा

बीमार बाप है, घर के खर्च का बोझ है, इसी लिए टैक्सी चला रहा है. रास्ते में एक देहात सा दिखाई पड़ा. यहां का रहनसहन देखना चाहता था. टैक्सी रुकवा दी. वस्ती सड़क से सटी हुई थी, भारतीय गांव जैसी. मगर सफाई ज्यादा लगी. वांस की चौड़ी पट्टियों की दीवारों पर फूस के छाजन. मलाया में मकान जमीन की सतह से कुछ ऊंचे बनाए जाते हैं. प्रायः सभी घरों के पास फूल पौधे लगे थे. नारियल के पेड़ तो वहुत थे. मैं ने एक हरा नारियल लाने के लिए अहमद (ड्राइवर) से कहा. इस बीच गांव के लड़केलड़कियों ने मेरे इर्दगिर्द घेरा डाल दिया. गांव वालों में कुछ दक्षिण भारत के भी थे, दोएक चीनी परिवार भी. मुखिया भी आ गया. अच्छी आवभगत की. अंगरेजी थोड़ी बहुत समझ लेता था. फिर भी अहमद ने दुभाषिए का काम किया.

उन की आपसी बातचीत में भाषा और शब्दों पर मैं गौर कर रहा था. युग, अनेक, राजा, रस, पुस्तक आदि अनेक शब्द बता रहे थे कि पिछले ५०० वर्षों के इसलामी प्रभाव में भी मलाया की धरती से भारतीय संस्कृति मिटी नहीं. यदि हमारी ओर से, विशेषतः हमारे धार्मिक नेतृवर्ग की ओर से जरा भी चेष्टा रहती तो दक्षिणपूर्वी एशियाई देशों से न केवल हमारा अविच्छिन्न संपर्क रहता, वल्कि इन्हें हम अपने अभिन्न बंधु के रूप में पाते. दुर्भाग्य यह रहा है कि हमारे जिन पुराणकार या शास्त्रकारों ने पुराण और शास्त्रों में यह बताया कि भारतीय जलयान द्वीपद्वीपांतरों में व्यापार के लिए जाते थे, चक्रवर्ती सम्राट और व्यापारियों का शंखनाद वहां गूंजा करता था उन्हीं पुराणकारों के उत्तराधिकारी पंडितों और पुरोहितों ने विदेश यात्रा और समुद्र यात्रा को निषिद्ध करार दिया और वह भी इस हद तक कि जातिच्युत करने का विधान कर दिया. परिणाम यह हुआ कि हमारी प्रेरणा कुंठित हो गई और उत्साह ठंडा पड़ गया. इन देशों से हमारा व्यापारिक संपर्क टूटा, रक्त संबंध क्षीण हुआ और वहां हमारी संस्कृति की छाया तक धूमिल होती गई. मुखिया से बातें करने पर पता चला कि मलयेशिया के मलायियों का धर्म इसलाम है, चीनी बौद्ध हैं और भारतीय हिंदू. धर्म को ले कर इन में आपस में कभी झगड़ा नहीं होता. उस ने यह भी वताया कि उन के यहां रामायण और महाभारत के नृत्य रूपक भी लोकरंजन के लिए होते रहते हैं.

मैं हैरान था. हिंदुस्तान के मुसलमान तो रामायणमहाभारत का नाम तक नहीं लेते. वे अपने को खास अरब, तुर्क, ईरान और मुगलों की औलाद समझते हैं और सुदूरपूर्व के इस मुसलमानी कौम और देश में रामलीला, कर्ण, भीष्म, युधिष्ठिर के चरित्र. इन के नाम भी परमेश्वरी, देवी, कर्ण, सुमित्र आदि. नारियल के दाम चुकाने के लिए पैसे निकाले, लेकिन गांव वालों ने लिए नहीं. समुद्रतट देखने नहीं गया, क्योंकि वहां मेरे लिए कोई नवीनता नहीं थी फिर रात भी हो रही थी. अतएव शहर के विभिन्न अंचलों का चक्कर लगाता हुआ घर वापस आ गया.

रात्रि के भोजन पर वहां के कई विशिष्ट भारतीय नागरिक आए. उन से पता चला कि मलयेशिया संघ में व्यापार की सुविधा समान रूप से सभी को है. सिंगापुर में तो वहुत ही अधिक सुविधा उपलब्ध है, क्योंकि हांगकांग
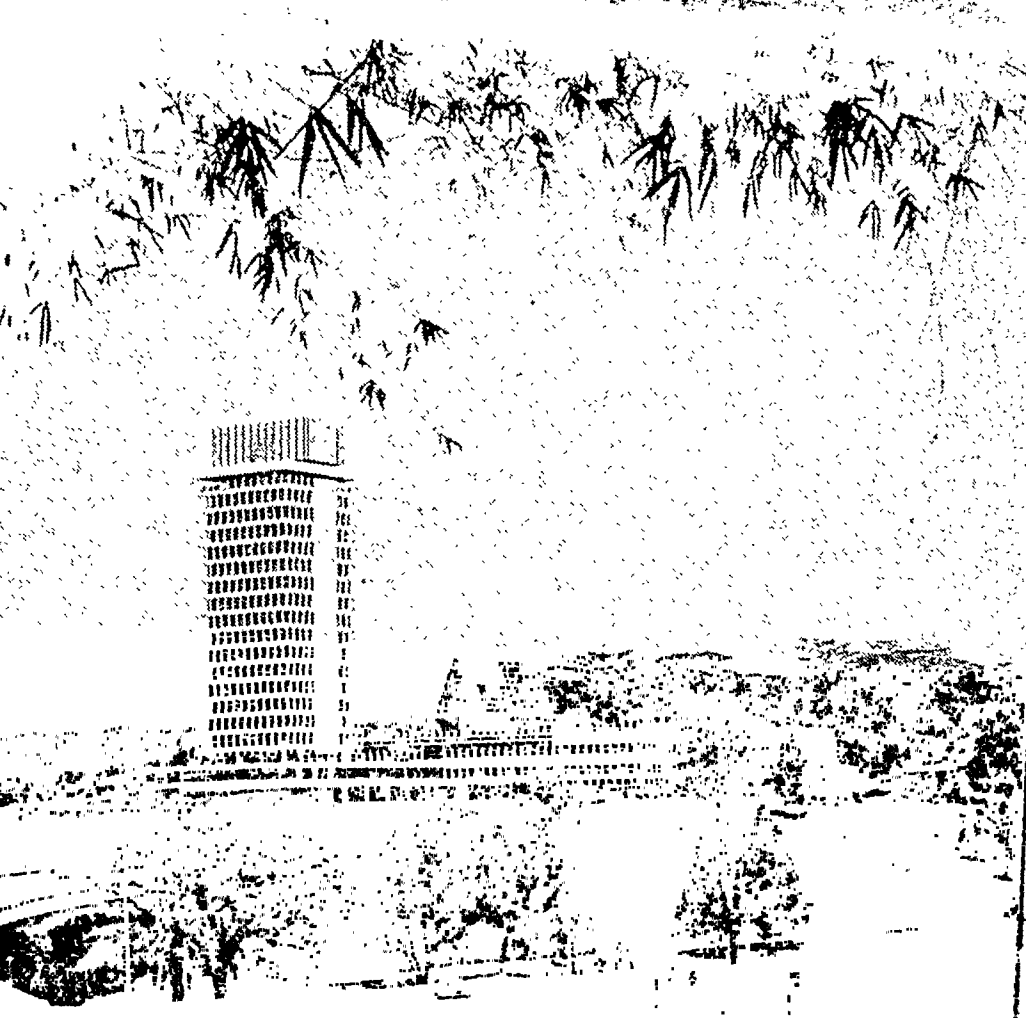
राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र मलयेशिया का संसद भवन

और जिब्राल्टर की तरह यह भी एक मुक्त बंदरगाह (फ्री पोर्ट) है. आयातनिर्यात पर यहां टैक्स नहीं और न विक्रय पर ही कर है. आयकर बहुत ही कम है. सब से बड़ी बात तो यह कि सरकार सब प्रकार से सहयोग देने को तत्पर रहती है. लेकिन उन लोगों को लग रहा था कि चीनियों के बहुसंख्यक होने के कारण सिंगापुर अदूर भविष्य में मलाया संघ से संभवतः पृथक हो जाएगा. बाद में हुआ भी यही.

दूसरे दिन सुबह साढ़े नौ बजे संसद भवन देखने जाना था. मैं खूब सवेरे उठा. अकेला ही घूमता हुआ टाइगर बाम गार्डेन्स जा पहुंचा. टाइगर बाम सिरदर्द की मशहूर दवा है. उसी के नाम पर मालिकों ने यह सुरम्य और विशाल उद्यान बनाया है. बाग में प्लास्टर की बनी सुंदर झांकियां हैं. गुफाएं और फूलों के कुंजों से सजावट निखर आई है. टाइगर बाम का एक बगीचा हांगकांग में भी हम ने बाद में देखा. शहर में एक रमणीय स्थान बन जाने के साथसाथ उन की दवा का बड़े रूप में विज्ञापन भी हो जाता है.

साढ़े नौ बजे हम संसद भवन पहुंच गए. उन दिनों सत्र चालू नहीं था लेकिन स्पीकर ने दोचार सदस्यों को हम से मिलाने के लिए बुलवा लिया था.

इन का व्यवहार बहुत सौजन्यपूर्ण था. मैं लक्ष्य कर रहा था कि बर्मा और मलयेशिया में कितना अंतर है. यहां के प्रधान मंत्री, तुंकु अब्दुल रहमान का स्नेह हमारे देश के प्रति प्रारंभ से ही रहा है. उन के साथियों और देशवासियों को भी हम ने इसी भावना में ओतप्रोत पाया. औपचारिक परिचय और चायपान के उपरांत माननीय स्पीकर महोदय से मलयेशिया की राजनीति, अर्थनीति एवं इतिहास इत्यादि पर चर्चा हुई. स्नेहपूर्ण निःसंकोच वातावरण कुछ ऐसे ढंग का था कि यह नहीं मालूम हुआ कि हम विदेश में बैठे हैं और विदेशियों से बातें कर रहे हैं.

मलयेशिया अथवा मलाया संघ का इतिहास हमार यहां से बहुत कुछ मिलता-जुलता है. भारत की तरह यहां भी राजाओं और सुलतानों का शासन रहा है और पृथकपृथक राज्य रहे हैं. इन में आपस में बराबर झगड़े तथा युद्ध होते रहे हैं. अपने प्रभुत्व के लिए राष्ट्रीयता की उपेक्षा कर विदेशियों का सहारा लेने की प्रवृत्ति यहां के सुलतानों में भी थी. फलतः विदेशियों का प्रभाव यहां बढ़ता गया. पहले पुर्तगाली आए, बाद में डच और सब के अंत में अंगरेज. अंगरेजों की कुशल कूटनीति के सामने पुर्तगाली और डच टिक नहीं पाए. संपूर्ण मलाया में एक सार्वभौम शासन न रहने के कारण अंगरेजों को अपने पैर जमाने में सुविधा हुई. व्यापारी अंगरेज शासक बने और जैसे कि गुलाम राष्ट्रों के प्रति होता है, वही हुआ. ब्रिटेन ने शोषण किया. टिन, रबर, नारियल और मसाले के व्यापार से ब्रिटेन को अपरिमित लाभ हुआ.

एशिया की राजनीति के मंच पर जापान प्रथम महायुद्ध के बाद आया. अपने बढ़ते हुए उद्योगों के लिए उसे कच्चे माल की जरूरत पड़ने लगी और माल बेचने के लिए बाजार चाहिए था. जापान की दृष्टि दक्षिणी एशिया के देशों पर पड़ी. परंतु यहां ब्रिटिश माल के आयात के लिए दूसरे देशों से आयात कर कम था और दूसरी अनेक प्रकार की सुविधाएं भी थीं, इसलिए जापान के पैर पूरी तौर से नहीं जम सके. द्वितीय महायुद्ध छिड़ने पर सन १९४२ में जापान ने मलाया पर भी हमला किया. जिस मलाया से अरबों का लाभ उठाया, देश को लूटा और चूसा उसे ब्रिटेन ने बिलकुल असहाय छोड़ दिया. जापानियों का अधिकार यहां तीन, साढ़े तीन वर्षों तक ही रहा. किंतु इतने ही दिनों में उन्होंने जो कुछ किया वह वर्णनातीत है. अपने कारखानों के लिए टिन, रबर और कच्चे माल ले जाते रहे. उस के सैनिक अपने तनमन की पाशविक भूख मलाया में मिटाते रहे. साम्राज्यवादी सभी एक से हैं चाहे यूरोप के हों या एशिया के.

जापानियों की हार के बाद अंगरेज फिर आ गए. मगर जीत के बाद भी अब विश्व में इन की साख घट चुकी थी. इन की गिनती द्वितीय श्रेणी की शक्तियों में हो गई थी. स्वयं अंगरेज भी अपने जर्जर देश की समस्याओं में उलझे थे. चीन में च्यांग काई शेक की सरकार को हटा कर कम्युनिस्टों ने लाल चीन बना लिया था. प्रथम महायुद्ध के बाद एशिया के देशों का नेता बना था जापान. द्वितीय महायुद्ध के बाद एशिया और अमरीका के देशों का नेता बनना चाहता था लाल चीन.

लाल चीन के पंचगामी सर्वत्र क्रियाशील थे. उत्तरी वियतनाम, वर्मा, मलाया और इंदोनशिया में विशेष रूप से. युद्ध जर्जरित ब्रिटेन के लिए साम्राज्य को कायम रखना बोझिल हो रहा था. भारत, वर्मा और लंका को स्वतंत्रता मिल चुकी थी. परंतु अभी भी मलाया इन के अधीन ही था. मलाया में कम्युनिस्टों ने गुरिल्ला तरीका अपनाया. तोड़फोड़, हत्या, डकैती करने वालों ने अपने को मुक्ति सेना वतलाया. इसी दौरान में अक्तूबर १९५१ के दिन ब्रिटिश हाई कमिश्नर सर हेनरी की हत्या कर दी गई. अंगरेजों की आंखें खुलीं, उन्होंने सुरक्षा के साधन मजबूत किए. मलाया को स्वाधीनता देने का वादा किया. सन १९५५ में आम चुनाव हुआ. तुंकु अब्दुल रहमान प्रधान मंत्री बने. विभिन्न राज्यों पर फिर भी ब्रिटेन का फौजी शासन रहा. पर साम्यवादी चीन को चैन कहां? मलाया में चीनी काफी संख्या में हैं. किसी न किसी बहाने वे यहां बसने के लिए बड़ी संख्या में प्रति वर्ष आते ही रहते हैं. इसलिए यहां की राजनीति और उद्योगव्यापार पर उन का बहुत प्रभाव है. हालत यहां तक है कि मलायी अपने ही देश में विदेशियों की तरह बनते जाते हैं. सिंगापुर में तो यह स्थिति विशेष रूप से देखने में आई. हमारे देश में कशमीर में छद्मवेशी पाकिस्तानियों के कारण हमें भी बहुत कुछ ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रह है. लाल चीन के षड्यंत्रों से लोग तंग आ गए थे और उन के आए दिन के कुकृत्यों से मलाया निवासियों के मन में उन के प्रति घृणा हो गई थी.

सन १९५६ में साम्यवादी दल के मुख्य सचिव की हत्या यहां के किसी नागरिक ने कर दी. यहां के चीनियों ने बड़ा शोरशराबा मचाया. अंगरेज चीन के साथ विवाद में नहीं पड़ना चाहते थे. हांगकांग उन के हाथ से निकल जाने का भय था. इसलिए सन १९५७ में मलाया को पूर्ण स्वाधीन घोषित कर इन्होंने अपना पिंड छुड़ा लिया. त्रेंगानु, कलांतन, पेनांग, सेलोगोर, जोहोर और सिंगापुर आदि बारह राज्यों को मिला कर मलयेशिया बना. स्वाधीनता के साथसाथ अंगरेजों से विरासत में मिली अशांति और अव्यवस्था. देश की आर्थिक व्यवस्था जीर्ण और जर्जर थी. सौभाग्य की बात थी कि इस नए राष्ट्र को तुंकु अब्दुल रहमान जैसा व्यवहारकुशल, राजनीतिज्ञ और निपुण शासक मिला.

स्वाधीनता के बाद तुंकु ने विश्व के राष्ट्रों से मैत्री और सद्भावना की नीति अपनाई. देश में फैली अराजकता का दमन किया एवं मलाया में राष्ट्रीय भावना की चेतना जाग्रत की. लाल चीन समझ गया, उस की दाल मलयेशिया में नहीं गलेगी. मलयेशिया में उस की मुक्ति सेना का नकाब उतर चुका था. पड़ोस के इंदोनेशिया की राजनीति में अपना प्रभाव बढ़ा कर वह उसी के जरिए धमकियां देने लगा. उत्पात भी शुरू हुए. ठीक पाकिस्तानियों की तरह इंदोनेशिया कहीं घुसपैठिए भेजता तो कहीं सेना उतार देता. कभी चीनियों को भड़काता तो कभी मलायियों को. इन सब के बावजूद तुंकु अब्दुल रहमान ने चीनियों के साथ अपने देश में भेदभाव नहीं रखा. उन्हें समान राष्ट्रीय अधिकार दिए. इस मुलाकात के बाद हमें हांगकांग बैंक के मैनेजर से मिलना था. श्री सराफ के साथ हम उन के यहां गए. अपने कार्यालय में वे हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे. इन से
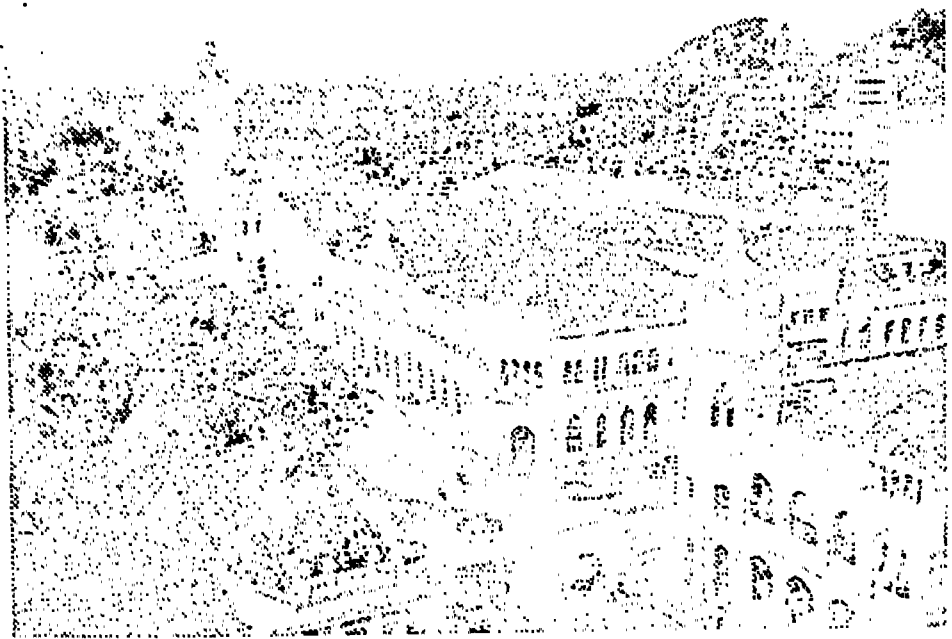
मलयेशिया की राजधानी क्वालालंपुर—वहां की प्रगति का प्रतिनिधित्व करती है.

हमें मलयेशिया की आर्थिक स्थिति और उस के क्रमिक विकास पर चर्चा करनी थी. सन १९५७ में मलाया स्वाधीन हुआ एवं १९६३ में मलयेशिया संघ बना. इस छोटी सी अवधि में मलयेशिया ने तुंकु के नेतृत्व में जितनी प्रगति की है वह प्रशंसनीय है. टिन, रबर, नारियल, चावल, चाय और मसाले उस की संपदा हैं. इसी कारण मलयेशिया की आर्थिक अवस्था सुदृढ़ बन सकी है, अन्यथा एक करोड़ की आबादी का यह छोटा सा देश इंदोनेशिया के सामने कैसे टिकता? इंदोनेशिया इस से दस गुना बड़ा है और उस के पीछे शक्ति रही है दुर्धर्ष लाल चीन की.

मलयेशिया १,७०० करोड़ रुपयों का निर्यात करता है और १,९२० करोड़ रुपयों का आयात. इस प्रकार उसे प्रति वर्ष २२० करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा अधिक खर्च करनी पड़ती है. फिर भी जिस तेजी से वहां औद्योगीकरण हो रहा है, आशा है, शीघ्र आत्मनिर्भर हो जाएगा. कृषि और खनिज उद्योगों में इस की प्रगति उत्साहवर्धक रही है.

मलयेशिया में आयातनिर्यात और विक्रय पर टैक्स नहीं है. आयात भी कम है, इसलिए विदेशों के व्यवसायी और उद्योगपति यहां पूंजी लगाने के लिए आकर्षित होते हैं. नए उद्योगों के लिए सरकारी आयोगों और बैंकों से तरहतरह की सुविधा दी जाती है, उचित ब्याज पर ऋण भी सरलता से मिल जाते हैं. इस प्रकार विदेशी मुद्रा का स्रोत धीरेधीरे बढ़ रहा है और इस के साथसाथ देश में उद्योग भी बढ़ते जा रहे हैं. सन १९६३ में अकेले सिंगापुर के बंदरगाह में ८३० लाख टन का आवागमन हुआ और यहां ३८ हजार सातसौ जहाज आए. इन की तुलना में हमारे देश के प्रमुख बंदरगाह कलकत्ता और बंबई के आंकड़े विचारणीय हैं. हमारे इन दोनों बंदरगाहों की क्षमता काफी अधिक है और ये बड़े भी बहुत

हैं फिर भी पिछले वर्ष में इन दोनों में केवल चार हजार जहाज ही खाली हुए हैं.

हमारे यहां आएदिन हड़ताल और 'काम कम करो' की नीति से अंतरराष्ट्रीय जहाजरानी में हमारी प्रतिष्ठा को काफी नीचा देखना पड़ा है. विदेशी कंपनियां अपने जहाज भेजने में हिचकती हैं. हमें हर साल करोड़ों रुपए डेमरेज के भरने पड़ते हैं और किराया ज्यादा लगता है, वह अलग. मलयेशिया हम से ४५ गुना छोटा देश है लेकिन इस का निर्यात हम से कहीं ज्यादा है. अब तक जितने देश देख आया, उन में पाकिस्तान को छोड़ कर अन्य सब की स्थिति हम से कहीं अच्छी है.

दोपहर का एक बज रहा था. हम घर वापस आए, भोजन के उपरांत तीन बजे तक विश्राम कर शहर घूमने निकले. रेफेल्स प्लेस वहां का कनाट प्लेस या चौरंगी है. दुनिया के हर कोने की चीजें यहां के स्टोर्स में भरी पड़ी थीं. कीमती जवाहरात, उम्दा कपड़े, टाइपराइटर, कैमरे और घड़ियां. हमारे देश की तुलना में काफी सस्ती और अच्छी थीं. यहां के बाजार में अधिकतर दुकानदार चीनी और मुसलमान हैं. हम ने यहां की बड़ी मसजिद देखी. यह दिल्ली की जामा मसजिद की तरह भव्य नहीं है. चीनी मंदिरों में बुद्ध की बड़ी सुंदर प्रतिमाएं हैं. शिव और हनुमान के मंदिर भी देखे. सुनने में आया कि इसी प्रकार छोटे-छोटे और भी कई मंदिर हैं. लेकिन ऐसा लगा कि हिंदू विदेशों में अपने संस्कार और संस्कृति के प्रति उदासीन से रहते हैं. वैसे आज भी विश्व में भारतीय अथवा हिंदू दर्शन और विचारधारा के प्रति श्रद्धा है. यहां काफी संख्या में भारतीय स्थायी रूप से हैं, संपन्न हैं और प्रतिष्ठित भी. सामूहिक प्रयास से भव्य गिरजे और मसजिदें यदि बन सके तो क्या मलाया के भारतीयों की श्रद्धा और चेष्टा से विशाल मंदिर नहीं बन सकता था!

रात्रि के भोजन पर सिंगापुर के पुलिस कमिश्नर श्री सरदारसिंह, नगर निगम के मेयर तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से भेंट हुई. सरदारसिंह खुशमिजाज लगे. वह भारतीय सिख हैं पर अब यहां के नागरिक हो गए हैं. यह जान कर ताज्जुब हुआ कि मलयेशिया की सेना में भारत के गुरखे, नेपाली और सिख भी हैं. इस से पता चलता है कि भारतीयों के प्रति यहां कितना विश्वास है.

सिंगापुर की शाम के बारे में चर्चा चली. पुलिस की निगरानी कड़ी है. फिर भी हर बड़े शहर और बंदरगाहों की वारदातें यहां भी होती रहती हैं. चीन से काफी संख्या में कम उमर की लड़कियां आ कर बिकती हैं. इस के अधिकांश व्यापारी भी चीनी हैं. ये लड़कियां चकलों या वेश्यालयों में घृणित जीवन बिताती हैं. मुसलमानी आदत और रिवाज के कारण इन में से कुछ हरमों में दाखिल हो जाती हैं. सुनने में आया कि इंदोनेशिया के बाली द्वीप से भी लड़कियां यहां भगा कर लाई जाती हैं. इन लड़कियों से नाचगाने का काम लिया जाता है. होटलों में विदेशियों के तथा विशेष रूप से नाविकों के पास लड़कियां पहुंचाई जाती हैं. कलकत्ता की तरह अवैध व्यापार में यहां भी चीनी और पाकिस्तानी तत्त्व अधिक क्रियाशील हैं.

हमें अगले दिन दो बजे हांगकांग के लिए रवाना होना था. मेहमानों के

साथ अन्य आमंत्रित लोगों ने भी आग्रह किया कि मलाया के रबर की बागवानी और जंगलों की सैर के लिए रुक जाएं. हम रबर की बागबानी मद्रास में देख चुके थे, अतएव विशेष रुचि इस ओर नहीं थी. प्रभुदयालजी ने कहा कि हमारे असम के काजीरंगा के जंगल को देखने के बाद यहां के जंगलों की विशेषता रह नहीं जाती. हमें आर्थिक अवस्था और उद्योग विकास की जानकारी लेनी थी, वह मिल गई. ऊपर से मिला यहां के लोगों का स्नेह. अब जंगलों में और दलदलों में भटकने की इच्छा नहीं है.

श्री माहेश्वरी क्वाला लंपुर जा रहे थे. उन्होंने आग्रह करते हुए कहा, "सिंगापुर तो कलकत्ता, बंबई की तरह है, लेकिन जब तक आप वाराणसी या दिल्ली न देख लें तब तक भारत देखना नहीं कहा जा सकता. इसी प्रकार यहां के क्वाला लंपुर और मलक्का को न देखने पर मलयेशिया का भ्रमण अधूरा माना जाएगा." हम ने उन्हें चार्ट दिखा दिया जिस में अगली यात्रा की सीट तिथिवार सुरक्षित थी. फिर भी वादा करना पड़ा कि अगली यात्रा में मलाया भ्रमण का कार्यक्रम अधिक दिनों का अवश्य रखेंगे.

दो बजे दिन को एयर पोर्ट पहुंचे. विदा करने के लिए कुछ लोग आए. उल्लास पूर्ण वातावरण में विदा लेने में जिस आनंद का अनुभव हुआ, वह रंगून से सर्वथा भिन्न था. स्वस्थ एवं प्रसन्न मुद्रा में लोग हाथ हिला कर विदाई दे रहे थे. और हम धीरेधीरे वायुयान की सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे.

हांगकांग

आबादी में कलकत्ता से आधा, पर व्यापार में?

बहुत दिनों पहले फोर्ड मोटर का एक विज्ञापन देखा था, 'जब तक फोर्ड न देख लो, अपने पैसे जेब में रखो.' हो सकता है उस विज्ञापन में अत्युक्ति हो. पर एक बात मैं निश्चयपूर्वक कहूंगा कि यदि आप की यात्रा में हांगकांग शामिल है तो आप अन्य कहीं भी किसी प्रकार की वस्तु न खरीदें, जब तक हांगकांग न पहुंच जाएं. हमारा विश्व भ्रमण पूर्व से शुरू हुआ था, इसलिए सिंगापुर के बाद सीधे हांगकांग गए. रंगून और मलाया में, संयोग से हमें कुछ खर्च नहीं करना पड़ा क्योंकि इन स्थानों पर हम अपने भारतीय मित्रों के अतिथि थे. हांगकांग में भी ऐसा ही अवसर मिल गया.

हम तीनों के पास १३ हजार रुपए के चैक थे और आंखों के सामने हांगकांग और कौलून की बड़ीबड़ी दुकानें थीं, जिन में सभी देशों की सब तरह की छोटीबड़ी चीजें भरी पड़ी थीं. सस्ती और अच्छी इतनी कि मन यही होता था कि सारे पैसे यहीं खर्च कर दें और सभी चीजों को बटोर कर देश ले चलें, पर अभी तो बहुत से देशों की यात्रा बाकी थी और चालीस दिन बिताने थे.

मन को समझाया. संतोष कर कुछ फाउंटेन पेन, एक दूरबीन, अलार्म वाली एक हाथ घड़ी और दोचार फुटकर चीजें खरीदीं. तेरहचौदह रुपए में माउंट ब्लेंक, पार्कर और शेफर्स के पेन मिले जो अपने देश में तो साठसत्तर से किसी भी हालत में कम नहीं मिलते हैं. विश्व प्रसिद्ध निर्माता जेराड पेरागुआ की अलार्म हाथ घड़ी की कीमत लगी १६० रुपए, बाद में स्विट्जरलैंड में, जहां यह बनती हैं वहां कंपनी की अपनी दुकान में इस की कीमत बताई थी २३० रुपए. हम ने हांगकांग में इस के मूल्य का उल्लेख किया तो उन्होंने बताया विदेशों में हम निर्यात कम दाम पर करते हैं ताकि देश को विदेशी मुद्रा अधिक से अधिक मिले. हांगकांग की तो बात ही और है. वहां न तो आयातनिर्यात पर कर है और न अन्य किसी प्रकार का प्रतिबंध. आयकर भी बहुत कम है, इसलिए अन्य कोई भी देश इस से कम दाम में माल नहीं बेच सकता.

यहां कर्मचारियों के लिए काम का समय निर्धारित नहीं है. दुकानें सुबह नौ बजे खुल जाती हैं और रात में बारहएक बजे तक खुली रहती हैं. बाजार घूमते हुए हम ने देखा कि एक मोहल्ले में लगभग सौ दुकानें तो केवल जवाहरात की हैं जिन में खूबसूरत और कीमती भांतिभांति के जड़ाऊ जेवर सजे हैं. इसी

प्रकार कपड़, बिजली के सामान और नाना प्रकार की शौक की और रोजमर्रे की चीजें, जो शायद भारत, ब्रिटेन, फ्रांस या अमेरिका में भले ही न मिलें, हांगकांग में जरूर और आसानी से मिलेंगी. बेईमानी और ठगी यहां भी है. जापान के सिवा प्रायः सभी पूर्वीय देशों में यह रोग व्याप्त है. हमें वताया गया कि यहां के वहुत से चीनी दुकानदार प्रसिद्ध वस्तुओं के नाम और डिजाइन की नकल कर उन्हें बेचा करते हैं. हांगकांग में हमारे आवास की व्यवस्था थी इंपीरियल होटल में. इस के मालिक भारतीय करोड़पति श्री हीरालाल सिंधी हैं जो यहां वस गए हैं. उन के यहां कई वड़ेबड़े स्टोर्स हैं. इन्हीं में हम तीनों ने अपने सूट सिलाए. पूरा सूट ६ घंटों में तैयार. टेरेलीन का कपड़ा और सिलाई, कुल मिला कर केवल १८० रुपए प्रति सूट.

ग्राहक और दुकानदार में मोलभाव इटली से ही शुरू हो जाते हैं. वहां की अपनी यात्रा के संस्मरण में मैं ने इस का उल्लेख किया है. पर ज्योंज्यों हम पूरव की ओर बढ़ते हैं, मोलभाव भी वढ़ता जाता है. अपने देश में भी हमें इस का अनुभव है. चीनी दुकानदारों से भी कलकत्ता में चीजें खरीदने का अवसर वहुतों को मिला होगा. ये इस कला में वहुत प्रवीण होते हैं. हांगकांग में अधिकांश दुकानदार चीनी हैं. इन से मोलभाव करने में बड़ा मजा आता है. १०० रुपए की चीज का दाम आप ४० रुपए से शुरू कर सकते हैं. कई बार वह कान पर हथेलियों को रख कर सिर हिलाएगा, सामान अंदर रख देगा. आप भी कई वार दुकान की सीढ़ियों से उतरेंगे. अंत में वह महज इसलिए आप के हाथ सामान बेच देगा कि आप को चीज की पहचान है, आप विदेशी हैं, कहीं आप को दूसरा विक्रेता कोई खराब चीज न बेच दे.

हांगकांग का क्षेत्रफल है करीव ३९१ वर्ग मील. यानी हावड़ा से डायमंड हार्बर और सियालदह से श्रीरामपुर तक का विस्तार. आवादी है ३३ लाख, कलकत्ता से लगभग आधी जिन में ३२,५०,००० चीनी हैं और शेष ५०,००० दूसरे देशों के हैं. भारतीय कम संख्या में जरूर हैं, पर व्यापार और अन्यान्य क्षेत्रों में इन का अच्छा प्रभाव है. सड़कों पर सिख और गुरखा पुलिस भी दिख जाती हैं. व्यवसाय के क्षेत्र में सिंधी अधिक हैं. उस के बाद क्रमशः पंजावी, गुजराती और राजस्थानी. वंदरगाह और व्यवसायी नगर होने के कारण यहां का जीवन वहुत व्यस्त रहता है.

आज के युग की विचित्र नगरी है हांगकांग. चीन में है पर चीन की नहीं. आवादी चीनियों की है पर शासन चीनी नहीं, ब्रिटेन का है. इस का एक भाग कौलून चीनी महादेश से सटा हुआ है और दूसरा अंश विक्टोरिया सागर के वीच है. चीन का प्रसिद्ध बंदरगाह कैंटन यहां से ९० मील है और चीन की सीमा केवल ३० मील. आज चीन बाहर वालों के लिए लौह दीवार है फिर भी हांगकांग वह खिड़की है जिस से चीन की झांकी मिल जाती है. पेकिंग की तरह हांगकांग ऐतिहासिक नगरी कभी नहीं रही. इस के वारे में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि समुद्री डाकुओं का यह अड्डा था और वे इस की पहाड़ियों में वेखटके बसेरा बनाए रखते थे. सन १८४१ के अफीम युद्ध के वाद इस उजाड़ पहाड़ी

क्षेत्र को ब्रिटन न सन १९९९ तक के लिए पट्ट पर चीन से लिया. चीनियों ने समझा चलो, विदेशियों का पैर अपने यहां से उखाड़ दिया. पर वास्तविकता यह रही है कि घर की ड्योढ़ी पर ब्रिटेन का अधिकार जम गया. ब्रिटेन को प्राकृतिक बंदरगाह मिला और सामरिक महत्त्वपूर्ण स्थान. यही कारण था कि जब तक ब्रिटेन की प्रथम या द्वितीय शक्ति रही उस ने चीन सागर और इस के संपूर्ण क्षेत्र पर अपना नियंत्रण रखा. यहां शुरू से ही एक ब्रिटिश गवर्नर के द्वारा शासन संचालित होता रहा है.

जो भी हो, आज ब्रिटेन के पंजे ढीले हैं. प्रशांत और भारत महासागर के उस के उपनिवेश स्वाधीन हो चुके हैं. लाल चीन रक्त चक्षुओं से चारों ओर देख रहा है और अपने नखों को बढ़ा रहा है. उस की शक्ति का परिचय भी तिब्बत, कोरिया और वियतनाम में मिल चुका है, पर हांगकांग आज भी अछूता है. आश्चर्य तो जरूर होता है कि मगरमच्छ की दाढ़ों में आखिर छोटी चिरैया कैसे बैठी है! स्वार्थ दोनों का है. मगरमच्छ दांत साफ कराता है. चिड़िया के लिए सुरक्षित स्थान है. चीन के लिए इस पर कब्जा करने में शायद दो घंटे ही लगें. पर उन्हें भी अपने इतने विशाल देश के आयातनिर्यात का एक सधा हुआ माध्यम चाहिए. आज विश्व में प्रभाव है रूस और अमेरिका का. चीन साम्यवादी है पर रूसी गुट में नहीं है. विश्व के व्यापार पर प्रभाव है अमेरिका का, जो चीनी साम्यवाद का जानी दुश्मन है. संयुक्त राज्य परिषद भी फारमोसा के चीन को मान्यता देता है, लाल चीन को नहीं. इसलिए अमेरिका का उस के साथ व्यापार करने का तो सवाल ही नहीं रहता.

दूसरी तरफ ब्रिटेन सदियों से ही व्यापारी पहले रहा है—दूसरा कुछ पीछे. उस का व्यापार बढ़ता है तो सब सिद्धांतों को ताक पर रख देता है. हांगकांग का यह ब्रिटिश उपनिवेश चीन के लिए सारे प्रतिबंधों का बंधन खोल देता है. हांगकांग की आढ़त दोनों के स्वार्थ की पूर्ति करती है. चीन में विदेशियों के प्रवेश पर बड़ी बंदिशें हैं. वहां जाना नामुमकिन है पर हांगकांग के चीनी इच्छानुसार जब चाहे वहां आतेजाते रहते हैं.

हांगकांग ऐतिहासिक नगरी तो नहीं है, पर इस के विकास की पृष्ठभूमि में अपनी एक कहानी है जो आज नहीं तो कल के इतिहास में जरूर शामिल की जाएगी. प्रारंभ में यह चीन को अफीम भेजने का एक अड्डा था. डाकू, चोरउचक्कों का बसेरा भी था. आस्ट्रेलिया और कैलिफोर्निया में सोने का पता लगते ही वहां की खानों के लिए चीनी कुलियों के निर्यात का कारबार यहां खुल गया. भारत से भी तो उस समय अंगरेजों ने और फ्रांसीसियों ने फिजी, मारिशश, गिन्नी और पूर्वी अफ्रीका में परमिट पर लाखों भारतीयों को भेजा था. सन १९४१ में जापान ने जब इस पर अधिकार जमाया उस समय तक विश्व के बड़े बंदरगाह और व्यापार केंद्र के रूप में यह प्रतिष्ठित हो चुका था. उन दिनों यहां प्रति वर्ष चार करोड़ टन माल केवल समुद्री मार्ग से आता था. हालैंड और बंबई की तरह यहां भी समुद्र से जमीन ली गई है. हमारे विमान जिस केटेक हवाई अड्डे पर उतरा, वह समुद्र से ली गई एक संकरी पट्टी प
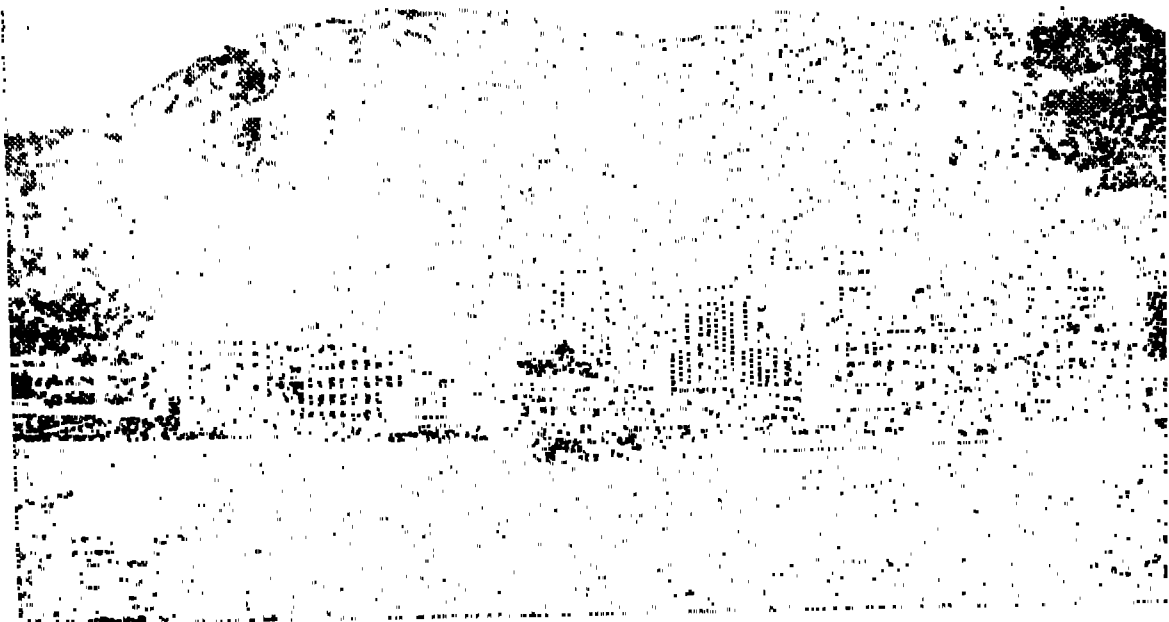
जहां कभी समुद्री लुटेरों का अड्डा था वहां आज बड़ेबड़े व्यापारियों की गगनचुंबी इमारतें हैं.

हम ने बर्मा और मलाया में सुना था कि पिछले महायुद्ध में जापानी जहां भी गए, खूब लूट मचाई और जब हारने लगे तो बरबादी की. यही कारण था कि इन देशों की जनता ने भी बाद में जापानियों का विरोध कर उन्हें खूब परेशान किया. लेकिन हांगकांग इस का अपवाद है. जापानियों के अधिकार में यह करीब पौने चार वर्ष तक रहा है. वे चाहते तो हांगकांग को भी अन्य स्थानों की तरह तहसनहस कर सकते थे, पर वहां की मौज, मस्ती और ऐयाशी ने इस को बचा लिया. जापानी सैनिकों और अफसरों को यहां सुंदरियों की बांहें और शराब से छलकते प्याले मिले. अपने को वे इन्हीं में डुबो बैठे और हांगकांग नष्ट होने से बच गया.

चीन में जब साम्यवादी शासन हुआ तो वहां से दस लाख से भी अधिक नागरिक शरणार्थी के रूप में हांगकांग आ गए. जहां भी जगह मिली बस गए. आज हालत यह है कि इस का विकास योजनाबद्ध न हो पाया. एक ओर विक्टोरियन शैली की इमारतें हैं तो दूसरी ओर पहाड़ की ढाल पर झोंपड़ी और झुग्गियां हैं. इन में कहीं गत्तों की छत हैं तो कहीं जंग लगे टूटे कनस्तरों की दीवाल और छाजन हैं. चींटियों की तरह भरे हैं चीनी इन में. गरीबी, तंगी और बीमारी इन के जीवन के साथ है, जैसे सबकुछ इन्हें बरदाश्त हो गया हो. न पानी की व्यवस्था है न सफाई की. झोंपड़ियां ऐसी आड़ी ढलान पर हैं कि दंग रह जाना पड़ता है, जरा सा पैर फिसले तो जान पर आफत. हांगकांग तूफान के क्षेत्र में है, जब बड़ा तूफान आता है इन में रहने वालों की जान की शामत आ जाती है. इस की झांकी 'दी वर्ल्ड आफ सूइजिवंग' नाम की फिलम में देखने को मिली थी. हम अपने देश को

आर्थिक विषमता अत्यधिक समझते थे, पर यहां जो रूप देखा उस से यही कहूंगा कि विश्व में शायद ही किसी एक स्थान पर अमीरी और गरीबी का ऐसा रूप और अंतर एक साथ दिखाई पड़े.

हालीवुड स्ट्रीट यहां की प्रसिद्ध सड़क है. इस महल्ले में जमीन का मूल्य है पचीस हजार रुपए प्रति गज तक यानी एक सौ पचहत्तर रुपए प्रति इंच और मासिक किराया है पचीस रुपए प्रति फुट. न्यूयार्क और शिकागो में भी जगह इतनी महंगी नहीं. किराया नियंत्रण कानून यहां नहीं है. इसलिए जब मन चाहा, किराया बढ़ा लिया जाता है. हमें यहां के यू. को. बैंक के मैनेजर ने बताया कि उन के आफिस का मासिक किराया आठ हजार रुपए है, पर अब मकान मालिक चालीस हजार रुपए मांगता है.

छोटे से व्यापारिक बंदरगाह का बजट देख कर आश्चर्य होता है. सन १९६०-६१ में यहां के खर्च का बजट करीब साढ़े सोलह करोड़ अमरीकन डालर (सवा सौ करोड़ रुपए) का था. यानी हमारे बजट का ५ प्रति शत, जब कि आबादी केवल दो तिहाई प्रति शत ही है. यहां के आयातनिर्यात के आंकड़े देख कर भी चकित रह जाना स्वाभाविक है. इस छोटी सी जगह का सन १९६० में आयातनिर्यात था, एक हजार दो सौ पचास करोड़ अर्थात हमारे यहां से करीब आधा. इसी से यहां की समृद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है.

हांगकांग की और भी उन्नति संभव थी, यदि यहां स्थानाभाव न होता. उद्योगधंधे बढ़ सकते थे. इस के अलावा जब जोरों का तूफान आ जाता है तो इस से बहुत बड़ी हानि पहुंचती है. १९०६ के तूफान में बंदरगाह में खड़े ६० बड़ेबड़े जहाज और लगभग २४०० छोटेछोटे बोट डूबे या ध्वस्त हो गए. इस तूफान में १० हजार आदमियों की जानें गईं. फिर सन १९२३ में १३० मील की गति का एक तूफान आया. चूंकि, इस बार लोग पहले से सचेत थे इसलिए जनहानि तो नहीं हुई पर माली नुकसान काफी पहुंचा. अब तो विज्ञान के साधनों के कारण सूचना समय पर मिल जाती है और यथासाध्य पहले ही से सावधानी बरती जाती है.

यहां चीनियों की अपने ढंग की छोटीछोटी दुकानें, बड़ेबड़े स्टोर्स से भिन्न हैं. इन के महल्ले भी एक तरह से अलग हैं. इन में गया और जो कुछ नजारा देखा, चक्कर आ गया. रास्ते में दुकानें लगी हैं. ऊपर से नीचे कपड़े के साइन-बोर्ड टंगे हैं जिन में चीनी अक्षरों में जाने क्याक्या लिखा है. बच्चे सड़कों पर दौड़ रहे हैं. लोग जोरजोर से बोल रहे हैं. औरतें काला कुरता और घुटने से कुछ नीचा पाजामा पहने, काठ की चप्पलें लगाए चल रही हैं. फुटपाथ कहीं है, कहीं नहीं. दुकानें सड़कों के बीच तक फैली हैं. भीड़ के बीच से कहीं साइकिलें निकल रही हैं तो कहीं रिक्शे. मोटर आ गई तो दुकानें सिमटायी जाने लगीं. खानेपीने के खोमचे लगे हैं और कहीं कढ़ाइयों में घोंघे, मेंढक, और कहीं जीवजंतु तिलचट्टे से ले कर सांप तक तले जा रहे थे. सड़कें क्या थीं मानो भानमती का पिटारा हों. बच्चेबूढ़े, औरतमर्द सभी सड़कों पर बैठे बातचीत में मशगूल. दुकानदारों और दरदस्तूरों का शोर. इन सब ने एक अजीबोगरीब हालत बना

हांगकांग के हारबर की एक चीनी बस्ती

रखी थी. मैं ने मन ही मन सोचा इस से तो कलकत्ता की चीनी बस्ती कहीं साफ और दुरुस्त है. बचपन में हम ने रोजर्स के विलायती चाकू देखे थे. बहुत ही तेज बेहतरीन. मगर यहां मैं ने जो चाकू चौदह आने में खरीदा वैसा अब तक कहीं नहीं देखने में आया. जिलेट की ब्लेड की तरह तेज और चमक इतनी कि शक्ल साफ दिखाई पड़े. यहां की यह सौगात शायद अब तक प्रभुदयालजी के पास है.

हमारे एक मित्र श्री सुंदर झुनझुनवाला ने रात के भोज का आयोजन हिल्टन होटल में किया. आयोजन में स्थानीय प्रमुख भारतीय व्यापारियों के अलावा अन्य व्यवसायी और बैंकर भी सम्मिलित हुए. भारतीय राजदूत श्री सिंह भी आए थे. काठियावाड़ के किसी छोटी रियासत के राजा थे. अच्छे मिलनसार और हंसमुख लगे. भोज के तीन घंटे के आयोजन में यहां की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक चर्चा चलती रही.

मैं ने यह अनुभव किया कि स्थानीय चीनी न तो ब्रिटिश शासन पसंद करते हैं और न च्यांगकाई शेक की सरकार पर ही उन्हें विश्वास था. चीन से भाग कर वे आए, फिर भी प्रायः आतेजाते हैं, क्योंकि उन के सगेसंबंधी अभी भी वहां हैं और उन का व्यापारिक संबंध भी वहां से बड़ी तादाद में है. वैसे चीन की लाल सरकार पर भी उन का भरोसा नहीं है, इसलिए संपत्ति सब यहीं जमा रखते हैं. ब्रिटिश सरकार अच्छी तरह जानती है कि लाल आंखें देखने पर उन्हें

अपनी चादर समेटने में देर नहीं लगेगी. यह भी सही है कि उन की प्रतिक्रिया से शायद विश्वयुद्ध की चिनगारी धधक उठे, पर ब्रिटेन यह मौका आने नहीं देना चाहता, क्योंकि तब उसे यहां के बहुत बड़े व्यापार से हाथ धोना पड़ेगा. लाल चीन नाराज न हो जाए, इसलिए यहां की अंगरेज सरकार च्यांग के झंडे, जासूस और प्रचार को प्रोत्साहन नहीं देती.

च्यांगकाई शेक के कमजोर शासन ने लोगों को इतना परेशान कर दिया था कि उस पर से चीनियों का विश्वास उठ गया था. पर साम्यवादी शासन के बाद संपन्न जमींदार और व्यापारी कम्युनिस्टों की लूटखसोट से खत्म हो गए और साधारण जनता भी इसलिए परेशान है कि वहां जबरदस्ती काम लिया जाता है. पार्टी के अधिकारियों को तो खाना मिल जाता है, पर दूसरे लोगों को नाना प्रकार के बहाने बता कर या कम काम करने की सजा के बतौर खाना कम दिया जाता है. व्यक्ति स्वाधीनता है नहीं, इसलिए अपनी इच्छानुसार जीवन बिताना संभव नहीं, उन्नति और विकास की बात तो दूर रही, जन्म, जीवन और मृत्यु तक पर सरकार का नियंत्रण है. चीन में संपन्न से दरिद्र तो बनाया जाता है, पर दरिद्र से संपन्न नहीं, सुखी भी नहीं. उस की छूट हांगकांग में है. इसलिए बहुत बड़ी संख्या में लोग यहां आ कर बस गए. सब तरह की सुविधाओं के बावजूद वहां के संभ्रांत चीनी ब्रिटिश शासन से प्रसन्न नहीं दिखाई दिए.

मैं ने वहां उपस्थित एक चीनी व्यवसायी से इस के बारे में पूछा तो उस का उत्तर था कि च्यांगकाई शेक के शासन में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार फैल गया था. जनता अभाव से कराह रही थी, जब कि शासक वर्ग और उस के संबंधी अनापशनाप खर्च करने के बावजूद विदेशों में करोड़ों रुपए जमा करा रहे थे. उस के बाद आया माऊत्से तुंग का साम्यवादी शासन. शुरूशुरू में तो लोगों ने इस रद्दोबदल का स्वागत किया. पर जब वैयक्तिक स्वतंत्रता नाम मात्र की भी नहीं रही और सदियों से चली आती संस्कृति को संपूर्ण रूप से नष्ट किया जाने लगा तो जनता ने विरोध करना शुरू किया. नतीजा यह हुआ कि लाखों व्यक्ति गोली से उड़ा दिए गए, क्योंकि उन सब को जेलों में रख कर खानाकपड़ा देना संभव नहीं था. लाखों परिवार सब कुछ वहीं छोड़ कर हांगकांग भाग आए. जिन के पास संपत्ति थी, उन्होंने यहां आ कर कारबार शुरू कर दिया और बाकी पहाड़ों की ढलान की गंदी बस्तियों में रह कर मजदूरी करने लगे. फिर भी यहां के चीनी समझते हैं कि वे पराधीन तो हैं ही. अपनी भूमि पर विदेशी अधिकार से आत्मसम्मान को धक्का पहुंचता है. मैं ने पूछा, "क्या चांग की कुओ, मिंग तांग का शासन चीन भूखंड पर पुनः स्थापित होने की आशा है?" उत्तर मिला, "कहा नहीं जा सकता पर इतना जरूर है कि च्यांग स्वयं तो वहां शायद ही कभी जा पाएगा." उस की बातों से प्रवासी चीनियों के मन की कुछ झांकी मिली.

हांगकांग में एक बात हमें अखरी कि यहां पाकिस्तानी नागरिक जितने संगठित हैं, उतने भारतीय नहीं. भाषा और प्रादेशिकता का असर जिस रूप में वहां अपने लोगों में है, उसे स्वस्थ नहीं कहा जा सकता. विदेशों में चीनी इतने अधिक संगठित रहते हैं कि वहां उन का प्रभाव रहता है. सिंगापुर इस का स्पष्ट

जहां मोलभाव का वाजार गर्म हो वहां विज्ञापनों की भरमार क्यों न हो !

प्रमाण है. मलाया में रहते हुए उन्होंने अपनी सरकार वना ली और अव वह एक पृथक राज्य है. हम हैं कि मारिशश, फीजी, त्रिनिदाद और गिनी में अधिक होते हुए भी उपेक्षित हैं.

सुना था कि कैंटन का आधा शहर पानी पर है. कैंटन जाना संभव नहीं था. चीन के प्रतिबंध की ऊंची दीवार थी, पर इस की झांकी हांगकांग में मिल गई. यहां के राजस्थानी वंधुओं ने हमें एक स्टीमर पार्टी में रात के समय आमंत्रित किया था. पार्टी अच्छी रही, काफी स्त्रीपुरुष आए थे. भारतीय राजदूत भी शामिल हुए थे. कार्यक्रम एक वजे रात को समाप्त हुआ. स्टीमर से ही हम यहां की नौका नगरी गए. मैं निकल पड़ा इसे देखने. छोटेवड़े वोट और सैमदान बंदरगाह के किनारे समुद्र पर काफी दूर तक थे.

लगभग दो लाख की आवादी इन्हीं नौकाओं और वोटों में रहती है. मकान, दुकान, स्कूल, अस्पताल, रेस्तरां सव कुछ यहां हैं. वीनिस और श्रीनगर में भी लोग नावों पर रहते हैं पर वहां उन का उद्देश्य स्थायी

आवास नहीं, केवल विहार मात्र है. यहां तो शहर ही लहरों पर नाच रहा है. पहुंचते ही शोर मचा. चीनी, अंगरेजी, "कम हियर, बैस्ट ड्रिंक, फाइन गर्ल, यंग गर्ल." अंदाज हो गया कि नावों पर फ्रेंच रिवेरा और बंदरगाहों के बदनाम महल्ले भी हैं. धीरेधीरे थिरकती नावों पर एकदूसरी को पार करता हुआ अपने चीनी साथी ली के साथ नौका नगरी का चक्कर लगा आया. टिमटिमाती रोशनी में गरीबी की लहरों से जूझते हुए चीनियों के पीले चेहरे पर स्पष्ट अवसाद की छाया दिख रही थी. एक छोटा सा चीनी बालक बड़े गौर से बत्ती के चारों ओर चक्कर लगाते पतिंगे को देख रहा था. बादामी आंखों की काली पुतलियां हलकी रोशनी में चमक रही थीं. उस की आंखों में जिज्ञासा थी. मेरे मन में बारबार एक ही प्रश्न था, नया चीन कैसा बनेगा?

ली ने कहा, "क्यों, बच्चा बहुत अच्छा लगा? ले जाइए, यहां तो बिकते भी हैं, पर चोरीचुपके. कम उमर की लड़कियों का तो यहां से अब भी चालान होता है, मलाया और इंदोनेशिया में." श्री ली नौका स्कूल के अध्यापक थे. अपनी नौका के घर ले जाते हुए उन्होंने कहा, "गरीबी और जरूरत इनसानियत के तकाजे को नहीं मानती." उन की आवाज में करुणा थी.

हम सब जिस समय कौलून के मुख्य घाट पर पहुंचे, रात के दो बज रहे थे. होटल पहुंचकर बिस्तर पर लेट गया. शरीर मन दोनों थके से थे. बारबार नौका नगरी के मुख्य दृश्य याद आते थे. सोचने लगा कि कुछ वर्षों पूर्व ये भी तो चीन महादेश के नागरिक थे, साम्यवाद के थपेड़ों से घबरा कर उन्होंने स्वयं ही देश निकाला स्वीकार कर लिया.

दूसरे दिन सुबह नौ बजे टेलीफोन की घंटी ने जगाया. हमारे मेजबान रिशेप्शन रूम में प्रतीक्षा कर रहे थे. जल्दी ही तैयार होकर उन के साथ कार से ओसाका जाने के लिए एयर पोर्ट के लिए रवाना हुए.

जापान १

एशिया का सब से उन्नत देश

बचपन में सुनते थे, 'छोटे' से देश जापान ने अपने से सौ गुने बड़े रूस को पछाड़ दिया! जापान एशियाई राष्ट्र था. इसलिए यह सुन कर हमारे मन में एक प्रकार का हर्ष और गर्व होता था. बाजारों में या बड़ेबूढ़ों से जापान की चर्चा हम बड़े चाव से सुना करते थे. यह देश लगभग १९०० वर्ष तक दुनिया से अलग ही रहा. १९वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में यह दूसरे देशों के संपर्क में आया. इस की कुशाग्र बुद्धि ने उन देशों के कौशल को पहचाना, परखा और अपनाया. बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में रूस की पराजय को देख कर दुनिया को पता चला कि जापान कितना सबल और प्रबल है. संसार के राष्ट्रों की प्रथम पंक्ति में जापान को जगह मिली. प्रथम महायुद्ध में जापान मित्र राष्ट्रों के गुट में शामिल हुआ और बंटवारे में उसे भी हिस्सा मिला. यहीं से जापान के साम्राज्य का विस्तार हुआ और प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ गया.

इस के बाद जापान अपनी औद्योगिक उन्नति में लग गया. औद्योगिक विकास के इतिहास में उस की सफलता अद्वितीय और अनुकरणीय है. सन् १९३०-३२ में सारा संसार मंदी की चपेट में तबाह हो रहा था. ब्रिटेन, फ्रांस और अमरीका उत्पादन घटाने के लिए बाध्य हो रहे थे. उन के कलकारखानों के बंद होने तक की नौबत आ गई थी, उस समय भी जापानी माल विश्व के कोने-कोने में बिक रहा था. उस की डबल घोड़े छाप की बोस्की (सिल्क का कपड़ा) नौ आने गज में भारत के बाजारों में बिक रही थी. आज भी उस के टिकाऊपन और मुलायमी की प्रशंसा करते हुए लोग याद करते हैं. आश्चर्य की बात यह है कि इन दामों में जहाज भाड़ा, आयात शुल्क, आढ़तदारी आदि सभी खर्च शामिल थे. बहुतों को याद होगा कि ऐसी पेंसिलें जापान से आती थीं जिन में लकड़ी नहीं होती थी. कागज की पतली पट्टियों की परतें होती थीं. न चाकू से छीलने की जरूरत न सांचे से बनाने की. बस परतें उतारो, पेंसिल तैयार. गाढ़े काले रंग की लेड, खूब लिखते बनता था. दाम सिर्फ दो पैसे.

जापान की औद्योगिक सफलता ने पश्चिमी राष्ट्रों को चौकन्ना कर दिया. उन की यह चेष्टा रहने लगी कि उन के देश और साम्राज्य के बाजारों में जापानी माल के प्रवेश को यथासाध्य बाधा पहुंचाई जाए. प्रतियोगिता में जापान टिक न पाए इसलिए नाना प्रकार के बंधन, जापानी माल पर लगाए गए. भारत में

संसार के पहले अणु बम का शिकार हिरोशिमा का युद्ध स्मारक

जहां मैनचेस्टर के कपड़ों पर दस प्रतिशत आयात कर था, जापानी कपड़ों पर २० से २५ प्रति शत. फिर भी जापान के मुकावले में इन्हें हार खानी पड़ी.

औद्योगिक विजय और वैभव ने संभवतः जापान की लालसा वढ़ा दी. जापान का उत्पादन बढ़ रहा था, उन्हें माल खपाने के लिए नई मंडियों की खोज थी. पास ही विशाल चीन था, जो आलस, प्रमाद और आपसी लड़ाई के कारण असंगठित और पिछड़ा हुआ था. जापान उस पर झपट पड़ा. युद्ध लंवा चला. जीत जापान के लिए महंगी पड़ी, वह खुद भी जर्जर हो गया. अपनी साम्राज्यवादी हरकतों के कारण उस ने पश्चिमी देशों के सिवाए एशिया की सहानुभूति भी खो दी.

सन् १९४१ में जापान जरमनी और इटली के धुरी राष्ट्र गुट में जा मिला और अमरीका तथा मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में उतर पड़ा. अमरीका के वहुत वड़े और सुसज्जित पर्ल हार्वर में जंगी जहाजों के वेड़े पर अचानक हमला कर जापानी हवावाजों ने जिस साहस और कौशल का परिचय दिया वह अपूर्व रहा है. गोलावारूद लिए हुए जापानी छतरीवाज जहाजों के मस्तूलों में कूद पड़े. स्वयं वीरगति को प्राप्त हुए लेकिन प्रशांत महासागर की महान अमरीकी सामरिक नौ शक्ति को उन्होंने पंगु कर दिया. इस तरह की देशभक्ति और वीरता हाल

के भारतपाक संघर्ष में हमार जवान ही प्रस्तुत कर सके हैं. सीने पर बम बांध कर शत्रु के दैत्याकार पैटन टैंकों के नीचे लेट जाना, छोटेछोटे नेट प्लेनों सहित विश्व में बेजोड़ गिने जाने वाले सेबर जेट विमानों से टकरा जाना, बलिदान, साहस और शौर्य की पराकाष्ठा है.

पर्ल हार्बर में जापान की सफलता ने मित्र राष्ट्रों में आतंक पैदा कर दिया. एशिया में उन के साम्राज्यों के बहुत से देशों में जापान के प्रति आदर का भाव जग उठा. जापान ने अवसर का पूरा लाभ उठाया. उमड़ते बादल की तरह उस के सैनिक हिंद चीन, स्याम, हिंदेशिया, सिंगापुर, मलाया और बर्मा में छा गए. सिंगापुर में जापानी हवाबाजों ने इंगलैंड के 'प्रिंस आफ वेल्स' और रिपल्स जैसे प्रसिद्ध जंगी जहाजों के मस्तूलों में बम सहित घुस कर उन्हें उड़ा दिया. कलकत्ते पर आए दिन उन के हवाई जहाज मंडराने लगे. जापान अकेला ही पूर्व में मित्र शक्ति से मुकाबला कर रहा था.

सन् १९४३ में जरमनी और इटली लंबे युद्ध के कारण थकने लगे. उन का बल शेष हो गया और उन्होंने सन् ४५ में घुटने टेक दिए. अब मित्र राष्ट्रों ने पश्चिम से निश्चित हो कर जापान के विरुद्ध पूरी शक्ति लगा दी. इस समय तक अमरीका अणुबम तैयार कर चुका था. ६ अगस्त, १९४५ को उस ने हिरोशिमा में अणुबम गिराया. तीन दिन बाद, ९ अगस्त को नागासाकी पर दूसरा अणुबम गिराया गया. असंख्य धनजन की हानि हुई. जापान के विचारकों और सम्राट ने राष्ट्र को विनाश से बचाने के लिए संधि का प्रस्ताव रखा.

इस के बाद सात वर्षों तक जापान पर अमरीका का नियंत्रण रहा. जापान सम्राट कायम रहे लेकिन शासन अमरीका का रहा. जनरल मैकआर्थर बने सर्वोच्च अधिकारी एवं शासक. जापान की मूल भूमि को छोड़ कर उस के साम्राज्य के सारे देश छीन लिए गए. इन सात वर्षों में अमरीकी सैनिकों ने जापान में जो व्यवहार और आचरण किया वह किसी भी सभ्य देश के लिए लज्जा और ग्लानि की बात है. जापानियों ने सब कुछ धैर्य और अनुशासन के साथ सहा. उत्तेजित हो कर कभी भी ऐसा मौका नहीं दिया कि शासक को अत्याचार का बहाना मिल जाए. परिणाम यह हुआ कि अमरीका का जनमत स्वतः प्रभावित हुआ. जापान के प्रति मैत्री और उदारता का दबाव बढ़ने लगा. १९५१ में सेनफ्रांसिस्को में जापान और अमरीका के बीच शांति संधि हुई. वह फिर से पूर्णतः स्वतंत्र हुआ. जापान के राष्ट्र प्रेम, निष्ठा और अनुशासन की ऐसी सफलता विश्व में बेजोड़ कही जा सकती है.

बमबाजी से उस के शहर ध्वस्त हो चुके थे. व्यापारवाणिज्य और उद्योग नष्ट हो चुके थे. युद्ध के बाबत ५५ अरब रुपयों का उसे हरजाना देना पड़ा. साम्राज्य छीना जा चुका था. दूरदूर से भाग कर जापानी अपनी मूलभूमि में लाखों की संख्या में आ रहे थे. अमरीकी सैनिक शासन ने नाना प्रकार की सामाजिक बुराइयां पैदा कर दी थीं. खाद्य समस्या सुरसा की तरह मुंह बाए खड़ी थी. हिरोशिमा और नागासाकी के अणु पीड़ित विकलांग नागरिक और उन की भावी संतति की भयावह समस्या थी ही. विश्व में उस की प्रतिष्ठा नाम मात्र को रह गई थी. राजनीति के नाम पर दलबंदी का घुन घर कर चुका था.

पड़ोस में चीन साम्यवादी बन कर पुराना बदला लेने की ताक लगाए था. यह हालत थी आज से १४ वर्ष पूर्व जापान की, जब वह स्वतंत्र हुआ.

और आज? आज वह विश्व के अग्रणी राष्ट्रों में से एक है. उद्योग व्यापार में पहले से कहीं अधिक संपन्न और समृद्ध. विश्व के पिछड़े राष्ट्रों को आर्थिक सहायता दे रहा है. अमरीका और इंगलैंड में उस के माल निर्यात हो रहे हैं. विदेशों में उस की मदद से उद्योग स्थापित किए जा रहे हैं. जापान मुसकरा रहा है.

हम हैरत में हैं. १८ वर्ष हो गए, हमें स्वतंत्र हुए. हमारे पास खनिज पदार्थ और कच्चे माल की कमी नहीं. जगह की कमी नहीं. फिर भी हम क्यों नहीं आगे बढ़ पा रहे हैं? इन्हीं सब बातों को समझने के लिए मेरे मन में जापान को देखने की प्रबल इच्छा थी.

कार्यक्रम के अनुसार पूर्वी देशों में बर्मा, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग और जापान की यात्रा और तब अमरीका होते हुए यूरोप के रास्ते वापसी. मेरे मित्र श्री रामकुमार भुवालका घुमक्कड़ वृत्ति के हैं. वह कई बार योरोप और अमरीका हो आए थे. इस बार उन्होंने विश्व भ्रमण का कार्यक्रम श्री हिम्मतसिंहका और मेरे साथ बनाया.

हम ने बर्मा, मलाया, सिंगापुर और हांगकांग की यात्रा पूरी कर ली. हमारे पास टूरिस्ट क्लास का टिकट था. जापान एयरलाइंस के अधिकारियों को कहीं से पता चला कि हम भारतीय संसद के सदस्य हैं और उन के देश में वाणिज्य और उद्योग के विकास की जानकारी के लिए जा रहे हैं, वे बहुत प्रसन्न हुए. उन्होंने बिना किसी अतिरिक्त व्यय के 'डीलक्स' क्लास में हमें जगह दी. हम मना करते रहे लेकिन उन का एक ही अनुरोध था, 'हमारा इतना सा आतिथ्य स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत करें'. स्नेह और शालीनता के सामने हम विवश हो गए.

डीलक्स क्लास की सीटें बहुत आरामदेह होती हैं. चौड़ी होने के कारण यात्रियों को काफी सुविधा रहती है. इस क्लास की एक और विशेषता है कि शराब पीने की मनचाही छूट रहती है. हम तीनों दूधलस्सी पीने वाले विशुद्ध निरामिष यात्री, इस का फायदा न उठा सके. हां, एयर होस्टेस के व्यवहार में जापानी नारी की सुंदरता और शालीनता की झांकी हमें जापान पहुंचने के पूर्व ही मिल गई. जेट हांगकांग एयर पोर्ट से उठा. मैं बेहद खुश था. वर्षों से पली हुई अभिलाषा पूरी होगी. 'सूर्योदय का देश निपान' देख सकूंगा. सोचने लगा, 'चीनी और जापानी एक ही शक्लसूरत के हैं. संस्कृति में भी साम्य है. दोनों का लक्ष्य है, राष्ट्र की उन्नति और समृद्धि. गत महायुद्ध के बाद दोनों के जीवन में नवीन अध्याय शुरू हुआ. दोनों जर्जरित थे, बल्कि जापान पर तो अमरीकी शासन रहा है. फिर भी छोटा सा जापान विश्व के व्यापार, उद्योग और राजनीति में चीन से अधिक सफल और प्रतिष्ठासंपन्न है. लेकिन राष्ट्र की, राष्ट्र के नागरिकों की समृद्धि और सुख के लिए सर्वाधिक हितों का दम भरने वाला साम्यवादी सिद्धांतों वाला विशाल चीन सुखी और स्वावलंबी नहीं बन पाया. क्या राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यक्ति और व्यक्तित्व का उन्मुक्त विकास ही अधिक महत्त्वपूर्ण है.'
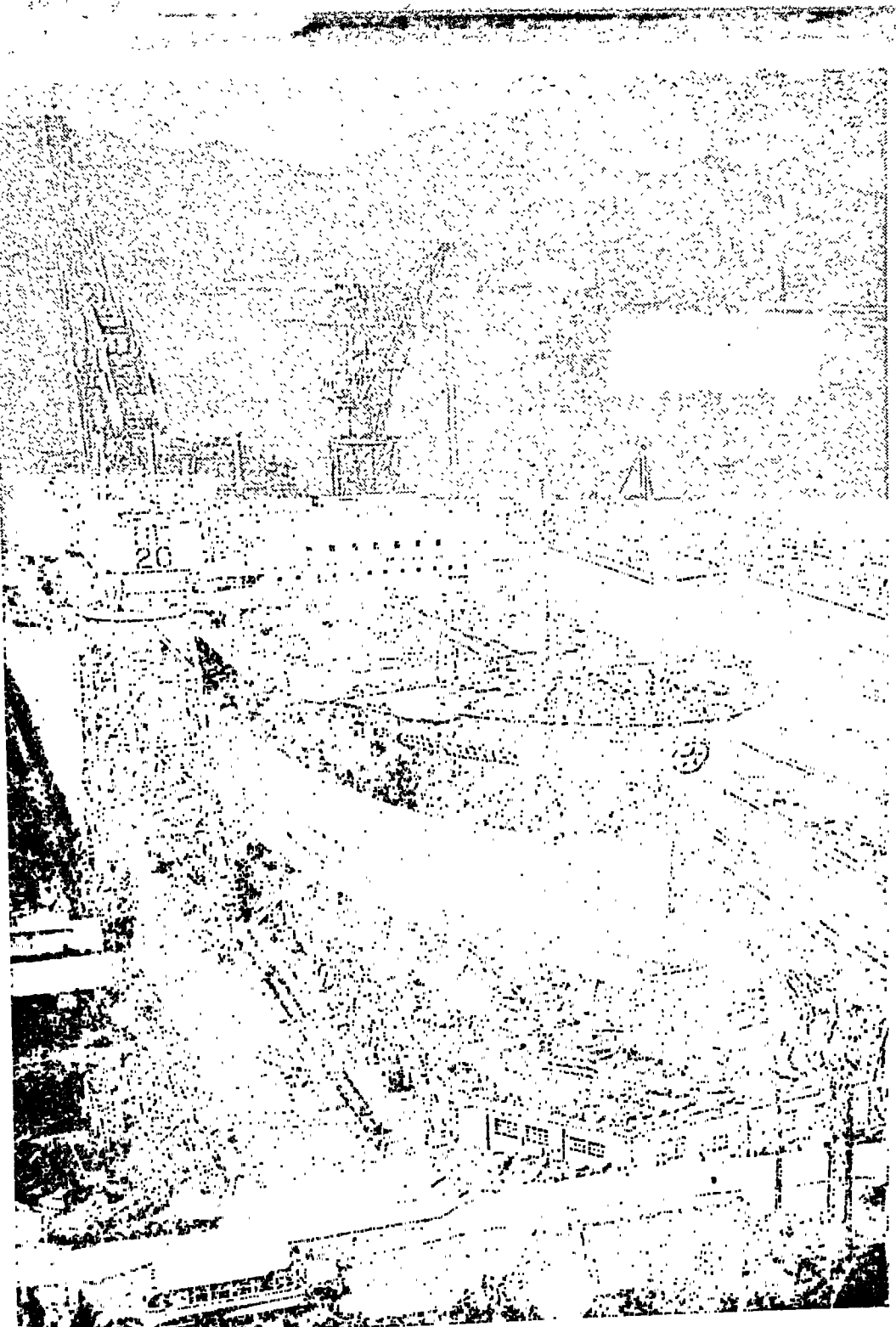
संसार का सब से वड़ा जहाज वनाने वाला सव से छोटा देश

हमें सूचना मिली कि हम जापान पहुंच रहे हैं. मेरी उत्सुकता वढ़ी. मैं ने नीचे की ओर खिड़की से झांक कर देखा. जापान के द्वीपपुंज एशिया महाद्वीप के पूर्व में अर्धवृत्त भाग से धुंधले दिखाई पड़े. एयर होस्टेस ने मुसकरा कर अपनी दूरवीन मुझे दे दी. मैं ने देखा फूलों से सजी, धानी रंग की चुनरी ओढ़े

ओसाका के एयर पोर्ट पर भारतीय दूतावास के सचिव हमें लेने आए. उन के साथ मलाया और हांगकांग के हमारे मेजबानों के मैनेजर श्री खेमका और श्री सोढानी भी थे. एयर पोर्ट पश्चिमी देशों की तरह व्यस्त और साफ सुथरा देखा. विदेशियों को, विशेषतः यात्रियों को, किसी भी देश के निवासियों के आचार या व्यवहार का परिचय कस्टम से गुजरने पर सहज ही में मिल जाता है. ओसाका एयरपोर्ट में कस्टम के अधिकारियों की तत्परता और भद्रता ने हमें बहुत ही प्रभावित किया. हमारे ठहरने की व्यवस्था होटल ओसाका में थी. रास्ते में हम ने जापानियों की स्वच्छता और परिमार्जित रुचि को लक्ष्य किया. सड़कें साफ, सड़कों पर चलने वाले स्वच्छ. सब कुछ जैसे स्वाभाविक अनुशासन में हो.

हम होटल पहुंचे. हलका नाश्ता करते हुए आपस में ओसाका के कार्यक्रम पर विचार करने लगे. होटल पश्चिमी ढंग का था. श्री खेमका ने हमें बताया कि इस ढंग के होटल जापानी ढंग के होटलों से महंगे जरूर पड़ते हैं लेकिन हम लोगों के लिए अधिक आरामदायक हैं. आमतौर से पश्चिमी ढंग के होटलों में दो आदमियों के आवास के कमरे पचासपचपन रुपए प्रति दिन पर मिल जाते हैं. लंच पर लगभग आठ और रात्रि के भोजन पर दस रुपए प्रति व्यक्ति लग जाता है. जापानी ढंग के होटल जिन्हें 'इंस' (सराय) कहते हैं काफी सस्ते होते हैं. आवास और भोजन पर प्रति व्यक्ति अधिक से अधिक बारह पंदरह रुपए का खर्च आता है. लेकिन शाकाहारियों के लिए निरामिष भोजन वहां ठीक से नहीं मिलता. एक कठिनाई भाषा की भी है. इन के कर्मचारियों का अंगरेजी न जानना हमारे लिए तो बड़ी समस्या है. पश्चिमी होटलों में अंगरेजी के माध्यम से हम काम चला सकते हैं. एक और भी विचित्र बात इस के बारे में हमारे जानने में आई. जापानी तरीके के अनुसार इस में स्नानगृह अलगअलग नहीं हैं. स्त्रीपुरुष सभी एक साथ एक ही गुसलखाने में नहाते हैं. हम ऐसी रीति के अभ्यस्त नहीं, हमारे यहां तो नदियों में भी स्त्री और पुरुष के घाट अलगअलग हैं.

टोकियो के बाद जापान का दूसरा बड़ा नगर ओसाका है. इसे नगर नहीं महानगर कहना अधिक उचित होगा. यह शहर योदो नदी के मुहाने पर बसा हुआ है और टोकियो से लगभग तीन सौ पचीस मील दूरी पर है. आबादी बहुत ही घनी है, करीब तीस लाख. फिर भी न तो गंदगी है और न जगह की तंगी दिखाई देती है. ओसाका जापान का वेनिस सा लगा. शहर नदी के दोनों किनारों पर है और नदी के बीच टापू पर भी. वेनिस की तरह यहां भी शहर के बीच नहरों का जाल सा बिछा है. लगभग एक हजार पुलों से इस के विभिन्न भाग एक दूसरे से संबद्ध हैं. ओसाका जापान के व्यापार, वाणिज्य और उद्योग का सब से बड़ा केंद्र है. यहां विभिन्न प्रकार के धातुओं के एवं रासायनिक पदार्थों के कारखाने तथा रेशम, कपड़े और चीनी इत्यादि की बड़ीबड़ी मिलें हैं. संपूर्ण जापान के कुल २१०० अरब येन के निर्यात का आधे से अधिक का श्रेय ओसाका को है. यहां समुद्री जहाज बनाने के कारखाने हैं. पहले ओसाका का बंदरगाह बहुत उन्नत नहीं था. युद्ध के बाद जापान ने जब नए सिरे से अपने उद्योग एवं वाणिज्य का पुनर्गठन किया तब

इस के बंदरगाह का नवनिर्माण शुरू हुआ. समुद्र से लगभग बारह सौ एकड़ जमीन निकाली गई. बड़ेबड़े जहाजों की मरम्मत एवं ठहरने के लिए आधुनिक साधनों से संपन्न डेक बनाए गए.

जापानी उद्योग क्षेत्र में एक विशेष बात देखने में आई कि यहां भी हमारे देश की तरह बड़ेबड़े उद्योग कुछ परिवारों के नियंत्रण में हैं. जिस तरह हमारे यहां टाटा, बिरला, मफतलाल, बाजोरिया आदि के प्रतिष्ठान हैं उसी प्रकार उद्योग वाणिज्य में वहां भी मित्सुबिशी, मित्सुई, नीशी, मात्सु आदि के समृद्ध और सुसंगठित प्रतिष्ठान हैं. हम जहाज बनाने का एक बड़ा कारखाना देखने गए. हम ने देखा कि दो विशाल समुद्री जहाज निर्मित हो रहे हैं. कारखाने के मैनेजर ने हमें बड़े चाव से सारी बातें समझाईं. बड़ा आश्चर्य हुआ हमें, जब यह पता चला कि इंगलैंड की किसी एक कंपनी के लिए भी जहाज बन रहा है. कभी इंगलैंड विश्व में सब से बड़ा जहाज निर्माता माना जाता था. उसी इंगलैंड के लिए जापान जहाज बना रहा है. आज विश्व में जहाज निर्माण में जापान सब से आगे है. उस का व्यापारिक बेड़ा अमरीका, ब्रिटेन दोनों से टक्कर ले रहा है. हमारे लिए यह भी

ध्यान देने की बात थी कि ओसाका का केवल एक जहाज निर्माता प्रतिष्ठान जितना काम करता है उस का आधा भी हम आज तक अपने विशाखापत्तनम में नहीं कर पाए. सूती कपड़े की मिल भी हम ने देखी. करघों पर औरतें ही थीं. हमारे यहां भी पाट, सूती या रेशम के करघों पर औरतें मिलों में काम करती हैं. लेकिन दोनों के काम में कितना अंतर है. २४ करघों पर एक औरत को तेजी से काम करते देख चकित हो जाना पड़ा.

ओसाका के बारे में कहा जाता है कि जापान के शहरों में पर्यटकों के लिए आकर्षण की वस्तुएं यहां सब से कम हैं. संभवतः यह बात अमरीकन पर्यटकों के लिए सही हो लेकिन हमारे जैसों के लिए तो यहां दर्शनीय स्थलों की कमी नहीं है. दोपहर का खाना खाने के बाद हम शहर में घूमने निकले. जुलाई का महीना था लेकिन समुद्र के किनारे होने के कारण गरमी बहुत नहीं थी. जापान का मौसम समशीतोष्ण है. ओसाका में बहुत ऊंचे और बड़ेबड़े मकान अधिक नहीं हैं. भूकंप के प्रकोपों के कारण लकड़ियों के मकान बनाने की परंपरा रही है. अब आधुनिक ढंग के भी तेजी से बन रहे हैं.

शहर में कमर्शियल म्यूजियम, कला और विज्ञान के संग्रहालय, चिड़ियाखाना और बोटेनिकल गार्डेन भी हैं. लेकिन पेरिस के लूव्रे और लंदन के म्यूजियम देखने के बाद इन को देखने के लिए हमारे मन में कोई उत्साह नहीं था. यों तो यहां के सभी पार्क अच्छे हैं क्योंकि जापानी प्रकृति के पुजारी और फूलों के शौकीन होते हैं, फिर भी तेन्नोजी पार्क सब से अधिक सुंदर लगा.

शहर की एक नहर से गुजरते हुए हम वहां के बुद्ध मंदिर में गए. बुद्ध की प्रतिमा के सामने धूपबत्तियां जल रहीं थीं. तथागत के सौम्य, शांत, तेजोमय मुखमंडल को देख चित्त प्रसन्न हो गया. मंदिर छठवीं शताब्दी का है. जापानी वास्तुकला का शुद्ध निखार इस में मिला. शांत वातावरण और स्वच्छता देख कर एक बार मन में प्रश्न उठा, हमारा देश भी तो मंदिरों का देश है लेकिन कितना अंतर है दोनों में? भिखारियों और पुजारियों का शोरगुल. साथ ही मितली लाने वाली गंदगी. एक भाग में हम ने हिदोयोशी का दुर्ग देखा. खंडहर सा हो रहा है. फिर भी है रोबदार. जापान की १६वीं शताब्दी की सामंतशाही की यादगार है. गाइड ने हमें बताया कि किस प्रकार अपनी देशभक्ति और वीरता के कारण हिदोयोशी ने जापान के अधिकांश भाग को जीत कर एक सूत्र में बांधा. उस समय जापान में भी विदेशी पादरी लोगों को क्रिस्तान बना रहे थे. उस ने जेसुइट पादरियों को अपने जीवन काल में किसी भी तरह जमने नहीं दिया. उस का विश्वास था कि विदेशी धर्म के साथसाथ विदेशी संस्कृति कुसंस्कार के रूप में घर कर लेती है. हिदोयोशी के कारण ही ओसाका का महत्त्व बढ़ा. पहले तो यह एक गांव सा था और इस का नाम था नानीवारा (लहरों की प्रेयसी).

दूसरे दिन शाम को हम ओसाका के बंदरगाह पर घूमने गए. संसार के विभिन्न भागों के जहाज माल लादनेउतारने में लगे थे. भारत का भी एक जहाज देखा. रद्दी लोहा (स्क्रेप आयरन) उतारा जा रहा था. जिसे हम रद्दी के भाव बेचते हैं, जापान उसे काम में ले कर और उस की स्टेनलेस स्टील की चद्दरें बना कर
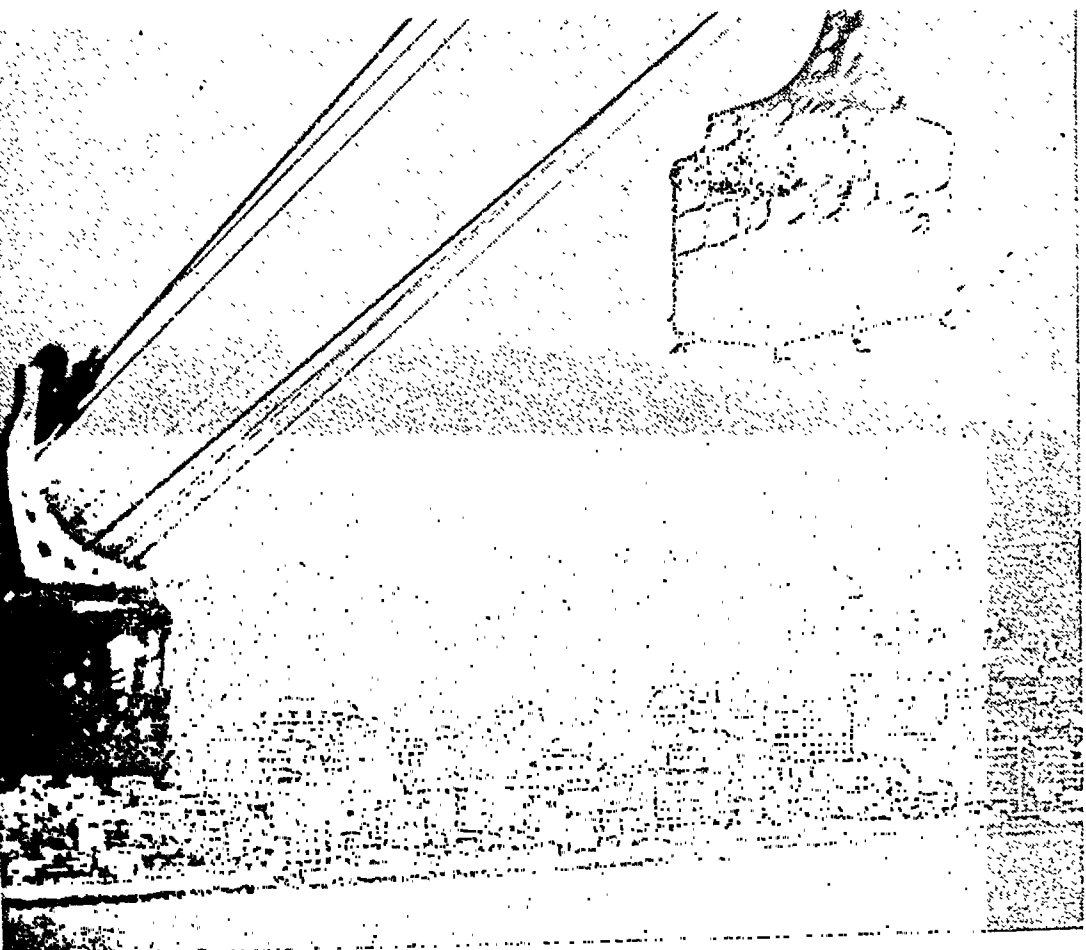
वक्सनुमा पिंजरे (हैंगिग केविन) से चारों तरफ का दृश्य देखते ही वंनता है.

संसार के बाजारों से धन बटोरता है.

लौटते समय हम ने रात का खाना ओसाका के एक गुजराती रेस्तरां में खाया. एक गुजराती दंपति इस होटल को खुद चलाते हैं. पत्नी रसोई बना देती हैं और पति खाना परोसते हैं तथा अन्य कामकाज संभालते हैं. ओसाका में कुछ भारतीय स्थायी तौर पर रहते हैं. व्यापार का केंद्र होने के कारण आतेजाते भी हैं. इस से इन की अच्छी आय है. हमें भोजन खूब रुचा. आत्मीयता के वातावरण से थकान मिट गई और मन तृप्त हो गया.

ओसाका में सिनेमा, थियेटर और नाइट क्लब काफी संख्या में हैं. लेकिन ओसाका का 'बुनराकू' कठपुतली का नाटक सब से अधिक विख्यात है. यों तो सारे जापान में बुनराकू के कई रंगमंच हैं फिर भी यहां की बुनराकू नाट्यशाला प्रतिष्ठित मानी जाती है. हमारे मेजवान हमें यहां ले आए. मेरी धारणा थी कि संभवतः हमारे राजस्थान के कठपुतली के नाच की तरह कुछ होगा. लेकिन हम ने इसे भिन्न पाया. कठपुतलियां बड़े आकार की थीं, अत्यंत कला पूर्ण. इन का आकार औसत मानव शरीर से आधा था. और, इन का संचालन तीन कठपुतली बालक कर रहे थे. पार्श्व संगीत के साथसाथ घटनाओं का उतारचढ़ाव काफी प्रभावशाली लगा. भाषा न समझने के कारण पूरा आनंद तो न ले सका पर इतना समझ पाया कि मध्ययुगीन किसी घटना पर कथावस्तु है.

यहां देखा कि दर्शक आनंद विभोर हो कर न तो शोर मचाते हैं और न अनुशासन भंग करते हैं.

ओसाका से हम कोबे गए. यह एक प्रकार से ओसाका का पूरक अंग कहा जा सकता है. यह करीब बीस मील दूर है और समुद्र के किनारे है. जलवायु ओसाका से अच्छी है इसलिए साधनसंपन्न लोग यहीं रहते हैं और कारबार या दफ्तर के लिए ओसाका जाते हैं.

यहां करीब तीन साढ़ेतीन सौ घर भारतीयों के हैं. जापान में सब से अधिक वे यहीं हैं, जिन में गुजरातियों की संख्या अधिक है. ये मोतियों का तथा अन्य जापानी वस्तुओं के निर्यात का काम करते हैं. हमारे साथी श्री दुर्गाप्रसाद के बहनोई और बहन यहां रहते हैं. इस से हमारी यात्रा और भी सुविधाजनक हो गई. हमें उन के यहां भारतीय भोजन तो दोतीन बार मिला ही साथ ही ताश खेला. उन के साथ हम 'फेनिकूलर' के पास की एक पहाड़ी पर गए. मोटे रस्से के सहारे लटकते हुए बक्सनुमा पिंजरे में बैठ कर यात्री आयाजाया करते हैं. यहां से कोबे का दृश्य बड़ा सुंदर लगा. ओसाका की अपेक्षा कलकारखाने कम होने के कारण यहां की प्राकृतिक शोभा अधिक आकर्षक लगी.

ओसाका में जहां व्यस्त जीवन का वातावरण है वहीं कोबे में कुछ रईसी और मौजमस्ती देखने में आई. हम ने यहां ठेठ जापानी ढंग के मकान देखे. जापान में भूकंप प्रायः आया करते हैं. इसलिए यहां अन्य देशों की भांति विशाल मकान या भवन बनाने की परिपाटी नहीं रही है. जापानी मकान की अपनी मौलिकता और विशेषता है कि ये हलके होते हैं और कम से कम स्थान पर लकड़ियों के बनते हैं. प्रत्येक मकान में एक छोटा सा बाग होता है. काफी सुंदर और सुरुचिपूर्ण. कमरों में दीवारें चिकों की या बांस की पतली खपचियों पर कागज लगा कर बनती हैं, जो आवश्यकतानुसार हटाई जा सकती हैं. फर्नीचर अथवा सामान वे सिर्फ जरूरत भर के लिए रखते हैं और वह भी हलके और छोटे. मैं एक जापानी घर में गया. अपने यहां हम जिस तरह घर के अंदर जूते नहीं ले जाते उसी तरह जापानी घरों में जूते बाहर ही खोलने पड़ते हैं. जूते उतार कर केनवास की चप्पलें पहन हम अंदर गए. साफ फर्श, दीवारों पर चित्रकारी, खिड़कियों पर परदे और गुलदस्ते. सजावट में भड़कीलापन नहीं बल्कि सादगी और सुरुचि देखी. गृहपत्नी और उन के बच्चों ने जापानी तरीके से प्रणाम किया. अभिवादन का उन का तरीका बहुत कुछ भारतीयों जैसा है पर वे हाथ जोड़ कर झुके हुए पीछे हटते हैं.

जापानी कमरे के बीच एक नीची सी टेबल रहती है. इसी के चारों ओर बैठ कर लोग भोजन करते हैं. हमारे घरों की तरह जापान में भी पारिवारिक जीवन में बड़ेछोटों के बीच मानमर्यादा का बहुत ध्यान रखा जाता है. लौटते समय हम फलों के बाजार से गुजरे. अच्छे से अच्छे फल हम ने देखे. दाम हमारे यहां से कम. खरबूजे भी देखने में आए. हम ने खरीदा. बहुत ही स्वादिष्ट था. हमें पता चला कि सिवाए आम के प्रायः सभी फल जापान में होते हैं.
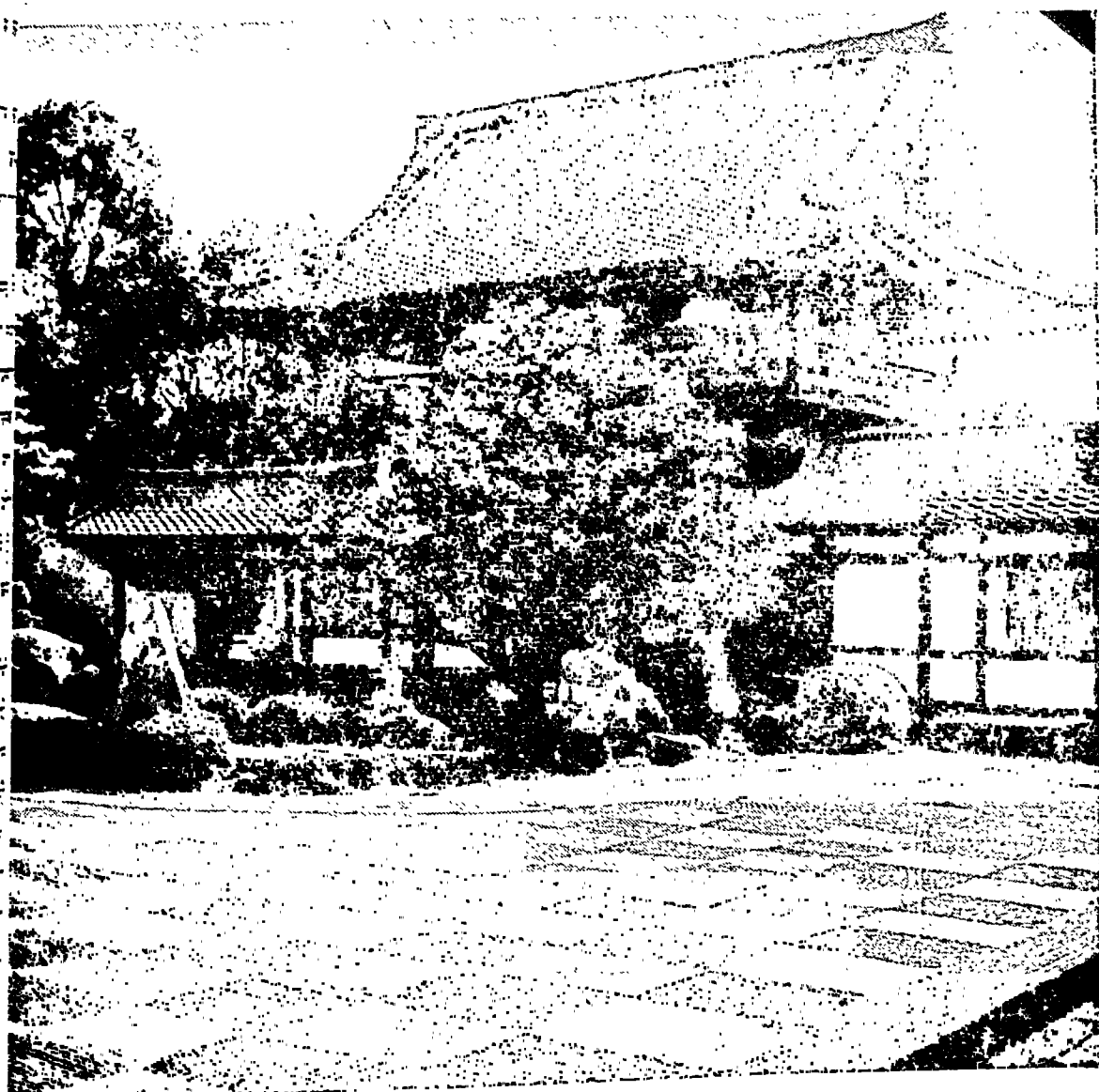
छोटा मकान व छोटा बाग: जापानियों की अपनी अलग परंपरा.

जापानी अपने स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग रहते ह और विदेशों से ऐसे फल या खाद्य सामग्री नहीं आने देते जिस से उन के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़े. आम इस वर्ग में कैसे आया इस का आश्चर्य है. शाम को शहर घूमने निकले. होटल, रेस्तरां, नाइट क्लब, थियेटर और सिनेमा बहुत से हैं.

कोबे बिजली के प्रकाश में मानो सारी रात झूमतानाचता है. एक महल्ले से हम गुजर रहे थे, देखा कि लंदन के सोहो और पेरिस के मोमार्त की तरह यहां भी लड़कियां मेकअप किए गलियों में चक्कर लगा रही हैं. राह चलते को अर्थ भरी नजरों से देख रही हैं. समझने में देर न लगी कि कोबे भी आखिर बंदरगाह है. महीनों समुद्र में गुजार देने का साधन हर बंदरगाह पर होता है, चाहे वह पश्चिम का हामबुर्ग और मार्सेलीज हो या पूर्व का सिंगापुर और हांगकांग.

टोकियो

संसार का बेजोड़ शहर

ओसाका से टोकियो जा रहा था. ट्रेन का सफर था पर अनुभव नया हो रहा था. ट्रेन की रफ्तार १०० मील प्रति घंटे की थी. जापान की ट्रेनों के अनुसार यह बहुत तेज नहीं थी, क्योंकि वहां तो अब १३० मील की गति से चलने वाली ट्रेनें भी हैं. ट्रेन में कांच के बने कक्ष थे और यात्रियों के बैठने के लिए आरामदेह सोफे लगे हुए थे. चारों ओर के दृश्य इस में बैठ कर आसानी से देखे जा सकते हैं. स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड और ब्रिटेन की ट्रेनों की तरह जापान में भी यात्रियों के आराम का बहुत खयाल रखा जाता है. खाने-पीने के साधन, दवा, चिकित्सा की व्यवस्था आदि रहती है. हम जिस कक्ष में यात्रा कर रहे थे उसे 'आबजरवेटरी कार' कहा जाता है. इस के साथ एक और डब्बा रहता है जो चारों ओर से खुला रहता है, केवल ऊपर छत रहती है. एक बरामदा भी इस में रहता है. मैं बरामदे में जा कर खड़ा हो गया. नदीनाले, पहाड़, गांव सभी मानो क्षण मात्र के लिए सामने आते और मुसकरा कर ओझल हो जाते थे. देख रहा था, चप्पाचप्पा जमीन काम में लाई गई है. धान की सुनहरी बालियां जापानी जीवन में सोना बिखेरने के लिए झूम रही हैं. जापान छोटा सा देश है, इस का तीनचौथाई भाग पहाड़ी है. जगह कम है और आबादी घनी. फिर भी खाद्यान्न में जापानी स्वावलंबी हैं. आएदिन जलूस निकाल कर शासन की व्यवस्था को बिगाड़ते नहीं.

यह बात नहीं कि जापान में दलबंदी नहीं है. है, और खूब जोरों से, पर उन में वह उत्तेजना नहीं है जो हमारे यहां है. दक्षिण पंथी और वाम पंथी हमारे देश की तरह वहां भी हैं. कम्युनिस्टों ने बड़े जोड़तोड़ लगाए, तोड़फोड़ की कोशिशें कीं, पर जनता ने जब उन्हें पहचाना तो वे कहीं के न रहे. जापानी संसद में उन का प्रतिनिधित्व करने वाला अब केवल एक व्यक्ति रह गया है. दक्षिण पंथी परंपरावादी हैं, ब्रिटेन की कंजर्वेटिव पार्टी की तरह. वाम पंथी में समाजवादी हैं. इन के अलावा एक दल जनतंत्री समाजवादी विचारों का है जिन्हें मध्यममार्गी कह सकते हैं. ये अतिवादी विचारों के विरुद्ध हैं, चाहे वह दक्षिण पंथी हों या वाम पंथी. सरकार की नीति को अपनी तरफ मोड़ देने के लिए हरेक का दबाव रहता है लेकिन सभी शांतिपूर्ण तौरतरीके में विश्वास करते हैं. सभी की मान्यता है कि शिल्पोद्योग की उन्नति हो, निर्यात बढ़े, विदेशों से अच्छे

संबंध रहें, राष्ट्र की प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़े तो अन्न और आबादी की समस्या अपनेआप हल हो जाएगी.

दूर से फूजी यामा दिखाई पड़ा. बर्फ की चादर ओढ़े मानो कोई व्यक्ति मौन तपस्या में लीन है. यह जापान का सुप्त ज्वालामुखी है, करीब २५० वर्षों से शांत है. इस की ऊंचाई करीब १२, २५० फीट है. जापान में इतनी ऊंची चोटी और किसी पर्वत की नहीं है. हमारे यहां के पर्वतों की तुलना में जापान के पहाड़ बहुत छोटे हैं. फिर भी फूजी जापान का नगराज है और उस का प्रतीक भी. इसे देखने के लिए दूरदूर से लोग आया करते हैं.

टोकियो पास आता जा रहा था. ट्रेन राजमार्गों को आड़ेतिरछे पार करती जा रही थी. पक्के, ऊंचे मकान और कारखाने मिलने लगे. ट्रेन शहर के बीच से गुजरती हुई सेंट्रल स्टेशन जा पहुंची. किसी भी पाश्चात्य रेलवे स्टेशन की तुलना में यह कम नहीं लगा. यह जापान का सब से बड़ा और अत्यंत व्यस्त रेलवे स्टेशन है. यहां भी प्रति दिन जापान के विभिन्न भागों में दूर सफर की लगभग १५० ट्रेनें छूटती हैं. स्टेशन देख कर मैं बड़ा प्रभावित हुआ. पूछने पर पता चला कि १३० मील प्रति घंटे की गति वाली १८ ट्रेनें ओसाका और टोकियो के बीच शीघ्र ही चलेंगी.

हमें लेने के लिए स्टेशन पर दूतावास के प्रतिनिधि आए थे. आम तौर से जापानी मझोले कद के होते हैं, भारतीयों से छोटे और हलके. इसलिए स्टेशन पर काफी भीड़ रहते हुए भी हम ने उन्हें देख लिया. उन की लंबाई काफी अच्छी थी. सिर पर साफा और बड़ीबड़ी दाढ़ीमूंछों वाली शानदार शक्ल को पहचानने में दिक्कत नहीं हुई.

दूतावास ने हमारे लिए गिंजा होटल की व्यवस्था कर दी थी. कार्यक्रम भी उन्हीं की सलाह से तय था. यहां भी कलकारखाने देखने थे पर उतने अधिक नहीं जितने कि ओसाका में. उद्योगव्यापार के सचिवालय और विभिन्न संस्थानों से मिल कर आवश्यक जानकारी भी लेनी थी.

मेरा खयाल है कि टोकियो अपनेआप में संसार का बेजोड़ शहर है. हो सकता है न्यूयार्क और लंदन विस्तार में टोकियो से अधिक बड़े हों, लेकिन जनसंख्या और जीवन की मुसकान जो टोकियो में है, वह दूसरी जगह नहीं. लंदन में तो रास्ते चलने वालों या ट्रेन, बस में बैठे लोगों के संजीदे चेहरों को देख कर ऐसा लगता है कि या तो गूंगे हैं या किसी से लड़ कर आए हैं.

टोकियो बहुत ही व्यस्त नगर है. राजधानी भी है और व्यापारउद्योग का प्रमुख केंद्र भी. एक करोड़ से अधिक आबादी वाले इस शहर की सफाई और सुव्यवस्था देख कर हम चकित रह गए. न्यूयार्क, मास्को और लंदन की बात होती तो हमें आश्चर्य नहीं होता. कारण, कि वे पाश्चात्य शहर हैं. पर टोकियो? यह तो एशियाई है, हमारा पड़ोसी है. कलकत्ता, दिल्ली और बंबई की तो इस की आधी आबादी ही है जहां हमारी व्यवस्था अनियंत्रित हो जाती है. कहीं पानी है तो बिजली नहीं, बिजली आई तो गैस गायब. सड़कों पर कूड़े के ढेर. रात में पटरियों पर सोते हुए लोगों की कतारें. टोकियो में यह नहीं दिखता. हमारे यहां के नगरनिगम के सदस्य और कर्मचारी आपस में आए-दिन के झगड़ों को छोड़ कर नगर की सुगम व्यवस्था की जानकारी के लिए यदि टोकियो, ओसाका और सेनफ्रांसिस्को जा कर देखें तो अधिक लाभ होगा.

शहर घूमने के लिए टोकियो में हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने हमारी सब प्रकार की व्यवस्था कर दी, इसी लिए हम थोड़े समय में बहुत कुछ देख सके. भारतीय पर्यटकों को चाहिए कि जहां कहीं भी जाएं, अपने देश के दूतावास में जा कर उन की सलाह ले लें. इस प्रकार वे अनावश्यक धन और समय के खर्च से बच सकते हैं.

दूसरे बड़े शहरों की तरह टोकियो घूमने के लिए यात्रीबस सब से उत्तम साधन है. यह आरामदेह है और खर्च भी कम पड़ता है. गाइड से सब जगहों का और जापानी जीवन का परिचय भी मिलता रहता है. अब तो अपने यहां भी बड़ेबड़े शहरों में इस प्रकार की व्यवस्था पर्यटक विभाग की ओर से की गई है. शहर के विभिन्न स्थानों से हमारी बस गुजर रही थी. हम पांच साथी थे. प्रभुदयालजी और रामकुमारजी तो साथ ही दिल्ली से चले थे और दुर्गाप्रसादजी व प्यारेलालजी हांगकांग से साथ हुए. ओसाका में ये हमारे मेजबान थे. बाहर जुलाई की गरमी थी पर बस ताप नियंत्रित थी, इसलिए परेशानी नहीं रही.

गाइड एक महिला थी. बड़ी विनम्र और मृदुभाषी. अंगरेजी में समझाती जा रही थी. मैं ने देखा कि उस का यह प्रयास था कि जापान के बारे में विदेशी अच्छी जानकारी पा सकें. इसलिए जापानी समाज, राजनीति, इतिहास, संस्कृति और उद्योगधंधों के बारे में बताती जा रही थी. इस प्रसंग में मैं यह बताना चाहूंगा कि हमारे देश के गाइडों को अभी बहुत कुछ सीखना है.
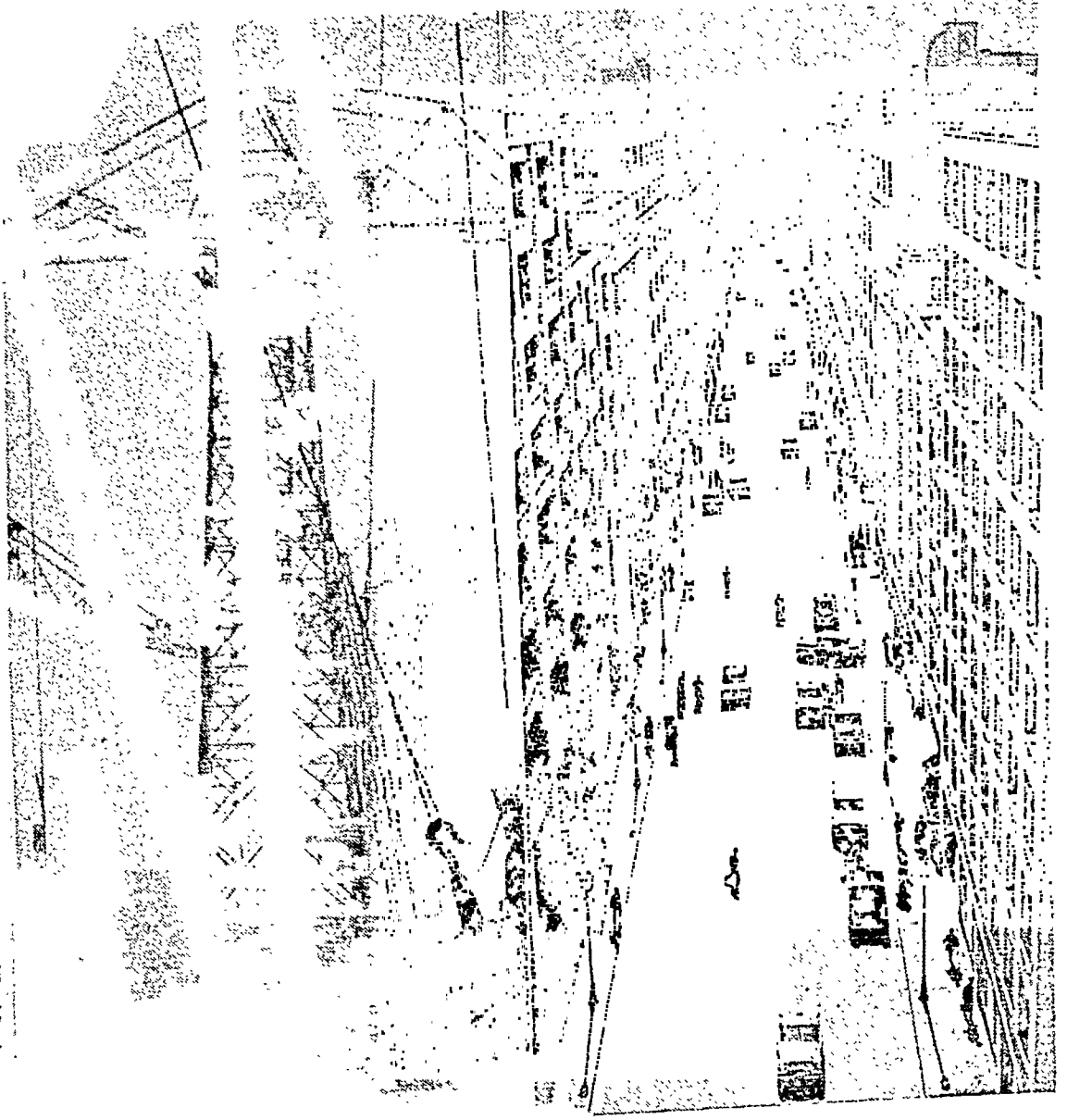
बाएं : जापान के जहाज निर्माण केंद्र का एक भाग दाएं : टोकियो का मारूनोची डिस्ट्रिक्ट हाउस, जापान का एक बड़ा व्यापारिक केंद्र

मैं ने स्वयं इस बात को कलकत्ता और बनारस में देखा है कि हमारे गाइड विदेशियों को कुछ ऐसे स्थानों पर भी ले जाते हैं जो हमारी सरकार, समाज और देश के लिए शोभनीय नहीं हैं. दशाश्वमेघ घाट पर मैं ने विदेशियों को वहां के भूखेनंगे भिखमंगों का फोटो लेते देखा है. वे अपने देश में इन का प्रचार करते हैं. हमारी सरकार को इस दिशा में विशेष ध्यान रखना चाहिए.

टोकियो २३ भागों में विभक्त है. शहर के बीच से शुनिदा गावा नदी बहती है और कई नहरें हैं जिन पर खूबसूरत पुल बने हुए हैं. शहर का क्षेत्रफल लगभग ८०० वर्गमील है. दक्षिण की ओर खाड़ी में सात छोटेछोटे द्वीप भी हैं.

जापान में प्रति वर्ष लगभग ५० बार भूकंप का धक्का आता है, लेकिन यहां की आधुनिक और शानदार इमारतों को देख कर इस का आभास नहीं होता.

गत महायुद्ध में बमबारी और अग्निकांड से शहर के करीब ९ लाख घर जले या नष्ट हुए. आज उस का चिन्ह तक नहीं मिलता. जो नए घर बने हैं वे पहले से मजबूत और सुंदर हैं. गाइड बता रही थी कि यद्यपि हम परिवार नियोजन पर पूरा ध्यान रखते हैं फिर भी हर चौथे मिनट में एक बच्चा पैदा होता है और बारहवें मिनट पर एक व्यक्ति मरता है, वर्ष में तीन साढ़ेतीन लाख की आबादी बढ़ती जाती है.

टोकियो दिल्ली, रोम और लंदन की तरह प्राचीन नहीं है फिर भी जापान के गौरवमय इतिहास से संबंधित है. प्राचीन काल में इस का नाम ईदो था. तोकुगावा शोगुनों (राज्यपाल) ने इसे १६०३ ई० में अपनी राजधानी बनाया. तभी से ईदो का महत्त्व बढ़ा और एक नई संस्कृति का विकास हुआ जो पुरानी राजधानी क्योतो से भिन्न थी. मेइजी शासनकाल में १८६४ में ईदो में स्थायी रूप से जापान की राजधानी प्रतिष्ठित हुई.

शहर के बीच में राजप्रासाद है. नहरों से घिरे करीब २५० एकड़ के क्षेत्रफल पर नाना प्रकार के सुंदर बागबगीचों के बीच कई महल और भवन हैं. इतने व्यस्त व्यावसायिक और औद्योगिक केंद्र के बीच होते हुए भी यहां का वातावरण अत्यंत शांत और सौम्य है. घनी आबादी और जगह की कमी के बावजूद शहर के बीच इतने बड़े क्षेत्र को महज एक परिवार के लिए छोड़ रखना सिद्ध करता है कि जापानी अपने सम्राट को व्यक्ति नहीं, देवता मानते हैं और उस के प्रति आंतरिक स्नेह और श्रद्धा रखते हैं. परंपरा के अनुसार वे अपने सम्राट को मिकाडो कहते हैं और उसे सूर्य का पुत्र समझते हैं. विश्व में शायद ही कोई सम्राट आज के युग में अपनी प्रजा द्वारा इतना समादृत है.

जापानी तौरतरीकों से हमें प्रत्यक्ष परिचित कराने के उद्देश्य से हमारी गाइड ने एक जापानी परिवार में हमारे भोजन का कार्यक्रम बनाया. हम सभी यात्री वहां गए. जापानी तरीके से भोजन बनते और परोसते देखा. शिष्टाचार में भारतीय संस्कृति की छाप निश्चित रूप से लगी है. पता नहीं तेल था कि चर्बी, जिस में मछली तली जा रही थी. उस की गंध से हम पांचों शाकाहारी बंधु घबरा गए. हमारे अलावा दूसरे अमरीकन और यूरोपीय बड़े गौर से पाक कला की बारीकियों को समझने लगे. चावल के साथ कुछ घोंघे की तरकारी और छोटी कच्ची मछलियों का समन्वय हमारी रुचि के अनुकल नहीं था.

हम ने कोकाडेन का ज्यूदो हाल देखा. ऊंचा और बड़ा सा कमरा था, साजसामान कुछ भी नहीं. देखा, जमीन पर तातामी (चटाइयां) बिछी हुई हैं. जूदों के छात्र एकदूसरे से गुथे हुए हैं, जैसे अखाड़े में पहलवान भिड़ते हैं. जूदो को ज्युज्युत्सु भी कहते हैं. यह जापान की अपनी विद्या है. अब तो विश्व के विभिन्न देशों में इस के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा रही है क्योंकि बिना हथियार के केवल दांव के इशारे से अपने से कहीं बलवान प्रतिपक्षी पर काबू पा लेना बहुत बड़ी बात है. इस में शारीरिक बल का महत्त्व नहीं, बल्कि दांवपेंच, स्फूर्ति और बुद्धिमानी की जरूरत पड़ती है.

हम यहां का विश्वविद्यालय भी देखने गए. सौ एकड़ जमीन पर यह

जापान के फार्मों में मशीनों की संख्या बढ़ती जा रही है

स्थित है. अनुशासन, शिष्टता और शिक्षा जापान की राष्ट्रीय विशेषता रही है. किसी समय हमारे यहां भी यह बातें थीं, इसी लिए जीवन संयम और परिश्रम के कारण आनंदमय था. आज हमारी शिक्षा पद्धति लड़खड़ा रही है और हमारे छात्रों में नैतिकता और अनुशासन का अभाव हो गया है. जापान ने अपनी शिक्षा पद्धति में पाश्चात्य तरीकों को इस ढंग से अपनाया है कि राष्ट्र की मौलिकता जरा भी प्रभावित नहीं हुई है. विश्व में जापान सर्वाधिक शिक्षित देश है. साक्षर नहीं, बल्कि ९८ प्रति शत शिक्षित वहां मिलेंगे. जापानी शिक्षा की आधारभूत विधि में लिखा है : "हम व्यक्ति की गरिमा का आदर करेंगे तथा सत्य और शांति से प्रेम रखने वाले नागरिक तैयार करेंगे. जापान में स्त्रीपुरुष सब को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है."

टोकियो के विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग, कानून, अर्थशास्त्र, समाज विज्ञान, कृषि, डाक्टरी एवं विज्ञान की ऊंची से ऊंची पढ़ाई होती है. विश्वविद्यालय का फाटक काठ का बना है. पुराना तो जरूर है, पर लगता है सुंदर. अहाते में खेलने का मैदान, जिमनाशियम, तैरने का तालाब और क्लब भी हैं. टोकियो में विद्यार्थी बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं. सरकारी विश्व-

विद्यालय के अलावा सरकारी और अर्ध सरकारी शिक्षा के अन्य केंद्र भी हैं.

कलकत्ता के बड़ाबाजार अंचल की तरह यहां का व्यावसायिक और अन्य व्यापारिक केंद्र मारूनोची है. टोकियो का मुख्य रेलवे स्टेशन, बैंक-इन्श्योरेंस एवं व्यावसायिक संस्थाओं के बड़ेबड़े भवन इसी अंचल में हैं. शहर घूमते हुए हम ने देखा कि लंदन की तरह यहां भी भूगर्भ ट्रेनें हैं जो शहर के विभिन्न भागों को एकदूसरे से मिलाती हैं. टैक्सियों की कतार तो सड़कों पर चलती ही रहती है. हम ने तीन तरह की टैक्सियां यहां देखीं—बड़ी, मझोली और छोटी. इन के किराए की दर भी अलगअलग है. पता चला कि इन टैक्सी चालकों का व्यवहार बहुत ही शिष्ट होता है. मिस्र, रोम या भारत के टैक्सी वालों से बिलकुल अलग.

यात्रीबस टोकियो के युइनो पार्क में रुकी. यों तो टोकियो में बहुत से पार्क हैं. अधिकांश स्मारक और मंदिरों के साथ छोटेछोटे उद्यान हैं. लेकिन युइनो पार्क इन सब से भिन्न है. यह बाग करीब २०० एकड़ जमीन पर बनाया गया है. इस में संग्रहालय, पुस्तकालय, साइंस, म्यूजियम और चित्रशाला हैं. टोकियो का प्रसिद्ध चिड़ियाघर भी यहीं है. इन के अलावा तोशुगू का सुंदर पैगोडा भी यहीं है.

शाम हो चुकी थी. हमारी बस हमें गिंजा ले आई. पेरिस का सांएलेजा, लंदन की पिकाडिली और न्यूयार्क के फिफ्थ एवेन्यू की तरह टोकियो के गिंजा की शाम और शान मशहूर है. आधुनिक शैली की ऊंचीऊंची इमारतों को देख कर सहसा भ्रम हो जाता है कि अमरीका के किसी शहर में आ गए हों. प्रकाश में नहाती हुई सजी दुकानें और सड़कें, मुसकराते नागरिक, मकानों पर बिजली के तरहतरह के निओन साइन के बड़ेबड़े विज्ञापन सभी एक समां बांध देते हैं. तरहतरह की रोशनियों से लगता है कि कोई जादूगर छिप कर इंद्रधनुष के खेल दिखा रहा है.

जापानियों ने यात्रियों के आकर्षण के लिए पेरिस और हवाई द्वीप की तरह गिंजा को सजाया है. विदेशियों के लिए जापान की गीशा विशेष सम्मोहन रखती है लेकिन केवल इन पर भरोसा न कर यात्रियों के लिए नाइटक्लब और कैबरे आदि भी बड़ेबड़े शहरों में खोल दिए गए हैं. हम यात्रीबस के गाइड के साथ थे, इसलिए यह पता नहीं चल पाया कि यहां भी पेरिस और रोम की तरह ठगे जाने का डर है या नहीं.

दूसरी शाम को हम पांचों साथियों ने यात्रीबस से ही टोकियो की रात्रि का कार्यक्रम निश्चित किया. एक साथ बीसपचीस पर्यटक, यात्रीबस से सैर कर सकते हैं. प्रति व्यक्ति ५० रुपए लगे, जिस में रात्रि का भोजन भी शामिल था. बस हमें सर्वप्रथम एक जापानी परिवार में ले गई जहां विशुद्ध जापानी तरीके से चाय बना कर दी गई. जापान में अदबकायदे से चाय बना कर पिलाना बड़ा महत्त्व रखता है. इस से परिवार की कुलीनता की परख होती है. चाय की रस्म को चानोयू कहते हैं. इस रस्म और कला की शिक्षा के लिए कई शिक्षण केंद्र सारे जापान में हैं. चाहे घर हो या बाग, शांत वातावरण हो, चाव से चाय

टोकियो विश्वविद्यालय के सामने छात्रछात्राएं

बनाई जाए, पी जाए और पिलाई जाए, फिर आनंद क्यों न आए, यही इस रस्म की मूल भावना है. फिर हम एक कमरे में गए. आधुनिक ढंग का वातावरण था. पाश्चात्य ढंग का नृत्य चल रहा था. हम पांचों भारतीय साथियों को छोड़ बाकी सभी विदेशी साथी अपनेअपने लिए जोड़ी चुन कर नाच में शामिल हो गए. हम करते भी क्या? नाचना तो हमें आता नहीं था.

हमारे गाइड ने बताया, "निपोन (जापान) सूर्य का देश है, यहां रात होती ही नहीं. रात उन के लिए है जो सोना चाहते हैं." हंस कर उस ने कहा, "और जो सोता है वह खोता है. दो हजार से भी अधिक नाइटक्लबों में एक लाख से ऊपर सुंदरियों के मजमे में आप स्वर्ग को पा सकते हैं." प्रभुदयालजी ने हंस कर गाइड से कहा, "हां, भाई, मेरा खयाल है बहुत जल्द ही." हम पांचों हंस पड़े पर दूसरे यात्री इसे शायद समझ ही न पाए.

तीसरा कार्यक्रम था नाइटक्लब का. यहां प्रत्येक के लिए एक सुंदरी पास आ कर बैठ गई. उमड़ता यौवन, आंखों में मादकता और प्याले में छलकती मदिरा! सुगंध से पूर्ण वातावरण! हम लोगों के लिए पेचीदा मामला था. सुन रखा था कि गीशाएं सभ्य और शालीन मनोरंजन परंपरा में पटु होती हैं. पर यहां तो कुछ और ही दिखाई पड़ा. कुछ देर तो हम मौन रहे. लड़कियां थोड़ीबहुत अंगरेजी जानती थीं. फिर प्रभुदयालजी ने इधरउधर की चर्चा छेड़ दी. बेचारी लड़कियां हैरान थीं. उन से पिता का सा व्यवहार पा कर लड़कियां झेंप सी गईं, क्योंकि वे तो अतिथियों को किसी दूसरे ही तरीके से खुश करने की अभ्यस्त थीं और इसी के लिए उन की नौकरी थी. हम ने यह विशेष रूप से

पाया कि सभी देशों में नाइटक्लबों में रोशनी बहुत धीमी रहती है ताकि थोड़ी दूर पर बैठे हुए लोग एकदूसरे को पूरी तरह न देख सकें और पहचान भी न पाएं कि वे कौन हैं. गाइड ने हमें बताया कि पिछले महायुद्ध के बाद अमरीकनों के प्रभाव से यहां नाइटक्लबों की बाढ़ सी आ गई है. कभीकदास एकदो अशोभनीय घटनाएं भी होती रहती हैं, हालांकि सरकार की ओर से काफी नियंत्रण रखा जाता है.

नाइटक्लब की लड़कियों को देख कर हमारे मन में गीशाओं के प्रति जो भावना थी उस में कुछ शंका सी होने लगी. हम ने गाइड से अपनी बात कही. पता चला कि ये लड़कियां गीशाओं की मूल परंपरा में नहीं आती हैं. अंतर क्या है? गीशा गृह में जाने पर स्वयं अनुभव हो जाएगा.

गीशाओं के बारे में हम ने बहुत कुछ सुना था और पढ़ा भी था. जापानी सामाजिक जीवन में प्राचीन काल से इन का महत्त्व पूरी तरह रहा है. कला, संस्कृति और सभ्यता के विकास में ये सदैव प्रेरक शक्ति रही हैं. हमारे इतिहास में गुप्तकालीन नगरवधू की तरह उन्हें राज्य और जनता दोनों के द्वारा सम्मान मिलता रहा है. संपन्न और कुलीन परिवारों की कन्याएं भी संगीत एवं कला सीखने के लिए इन्हीं के पास भेजी जाती थीं. शिष्टाचार और बातचीत के तौरतरीके की बारीकियां गीशाएं सिखाती थीं.

आज भी यह परंपरा जारी है. सामुराई (सामंत) युग गीशाओं के प्रभाव और समृद्धि का समय था. आधुनिक काल में भी जापान के धनिक व्यापारी, व्यवसायी एवं उद्योगपति गीशाओं से संबंध रखते हैं. समाज में इसे बुरा नहीं माना जाता और न उन की पत्नियों को ही इस में आपत्ति रहती है. वास्तविकता यह है कि गीशा को स्वस्थ मनोरंजन का सजीव साधन माना जाता है. हम गीशा गृह पहुंचे. किमोनो में सजी गीशाएं गुड़ियों जैसी लग रही थीं. हम बीसपचीस यात्री थे और वे थी सातआठ, सभी किशोरावस्था की युवतियां थीं, केवल एक प्रौढ़ा थी जो गृह संचालिका थी. रात के बारह बज रहे थे. हवा में ठंडक थी. नाइटक्लब के वातावरण से जो घुटन महसूस हुई थी यहां आ कर दूर हो गई. मखमल की सी मुलायम चटाइयों पर तीनचार की टोली में बैठ गए. गीशाएं हमारे पास बैठीं. हम ने देखा गृह संचालिका का अनुशासन बहुत ही सधा हुआ था. लड़कियां बड़े उत्साह और प्रसन्नता के साथ हमारी खातिरदारी करने में लगी हुई थीं. चायनाश्ता के साथ तरहतरह की चर्चा हुई. माध्यम टूटीफूटी अंगरेजी ही थी. प्रत्येक गीशा जापानी के अलावा एकदो विदेशी भाषा जानती है. हम ने जानबूझ कर सवाल किया, "हिंदी नहीं बोल पातीं?" बड़ी ही नम्रता से उत्तर मिला, "नमस्ते–जयहिंद." शायद उन की हिंदी की जानकारी इन्हीं दो शब्दों तक थी.

गीशा गृह में ही मुझे पता चला कि जापान में कई लिपियां हैं जिन में हीराकानी और काटाकानी अधिक प्रचलित हैं. फिर भी भाषा की अभिव्यंजना के लिए जापानी लिपियां यथेष्ट नहीं हैं. मैं सोचने लगा कि हिंदी की देवनागरी लिपि में भी कई प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है. जितनी सामग्री
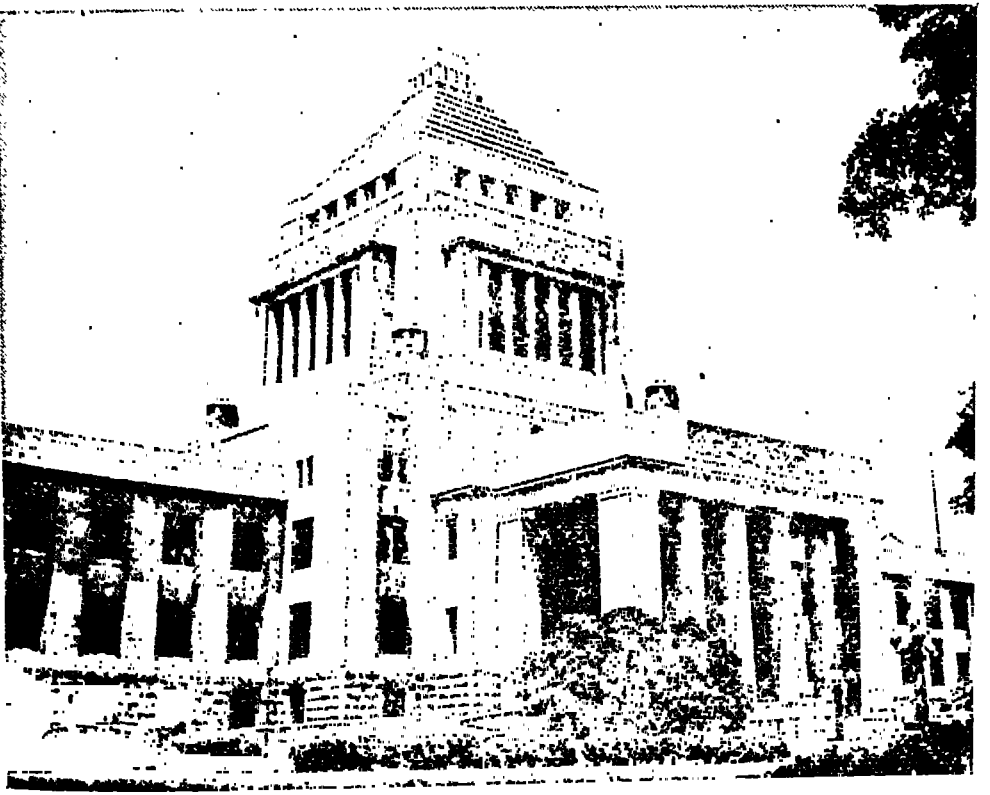
राष्ट्रीय डायेट की इमारत जिस में दोनों सदनों की वैठक होती है.

नियम मिलते हैं. मनु और कौटिल्य तो इस संबंध में वहुत ही ठोस और स्पष्ट हैं. हमारे देश में धीरेधीरे इसे धार्मिक जामा पहना दिया गया इसलिए नागरिक जीवन में यह न तो स्पष्ट हो पाया और न लोगों की रुचि ही इस के प्रति हुई. देश के स्वाधीन होने के वावजूद आज औसत भारतीय स्वदेश के संविधान के प्रति पूर्ववत उदासीन मिलते हैं, परंतु जापान में ऐसी वात नहीं है. जापानी संविधान के मनु हैं—सम्राट मेइजी. सन १८६८ में उन्होंने जापान के संविधान को संपादित कराया और उसे मौलिक रूप दिया. गत महायुद्ध (१९३९–४५) के वाद सम्राट हिरोहिनो की प्रेरणा से इस में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए. इस प्रकार सामंतशाही से इस का रूप जनतांत्रिक हो गया.

संविधान के आमुख में लिखा है कि "हम जापानी चिरस्थायी शांति की भावना की कामना करते हैं. स्थितिशील शांति की प्रतिष्ठा के हेतु एवं अत्याचार, दासता, दमन तथा असहिष्णुता को विश्व से सदैव के लिए उन्मूलित करने के निमित्त हम अंतरराष्ट्रीय समाज में प्रतिष्ठित स्थान चाहते हैं." नए संविधान के अनुसार

जापान २

क्या कोई एशियाई देश जापान को पछाड़ सकता है?

एक बार लंदन में मेरे एक मित्र ने पाश्चात्य पार्थिव सफलता की चर्चा करते हुए कहा था, 'पूर्व और पश्चिम, दोनों का संगम कभी नहीं हो सकता.' बात जंची नहीं थी किन्तु मेरे पास उस समय ठोस उत्तर नहीं था. जापान के पर्यटन ने मेरी इस समस्या का समाधान कर दिया. जापानी जनजीवन का गहराई से अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य भौतिकवाद और प्राच्य के अध्यात्मवाद का संतुलित समन्वय यहां है.

अब तक ओसाका, कोबे और टोकियो देख पाया था. टोकियो का हमारा निश्चित कार्यक्रम तो अब तक पूरा भी नहीं हो पाया था. ज्योंज्यों जापानी जीवन के विभिन्न पक्षों को समझ रहा था त्योंत्यों इच्छा होती थी कि और अधिक जानकारी प्राप्त करूं ताकि स्वदेश जा कर इस संबंध में अपने विचार रख सकूं. समय और विदेशी मुद्रा की कमी रुकावट डाल ही रही थी––साथ ही हमारा पूर्व निर्धारित कार्यक्रम भी कुछ ऐसा बना था कि उस में ज्यादा परिवर्तन करना संभव नहीं था. किन्तु हमारे भारतीय दूतावास ने जो कार्यक्रम हमारे पर्यटन के लिए बनाया था उस से काफी सुविधा रही.

टोकियो में हमारा कार्यक्रम ओसाका से अधिक व्यस्त रहा. जापानी समय के बड़े पाबंद होते हैं. न खुद का समय नष्ट करते हैं और न औरों का, इसलिए हमारा समय कहीं भी व्यर्थ नहीं गया. हमारे दूतावास ने संसद देखने का कार्यक्रम बना दिया था. सुबह ही हम प्रथम सचिव के साथ भवन देखने गए. हालांकि उन दिनों जापान की संसद की बैठकें नहीं हो रही थीं फिर भी वहां के स्पीकर और कई सदस्य जो हमारे लिए पहले ही से भवन में उपस्थित थे, बड़े स्नेहपूर्वक मिले.

संसद को जापान में 'डायेट' कहते हैं. संसद भवन अच्छा था पर हमारे संसद की तरह विशाल और भव्य नहीं. वाशिंगटन में अमरीकी संसद को छोड़ कर विश्व का कोई भी संसद भवन हमारे टक्कर का नहीं देखने में आया. स्पीकर ने हमारा सत्कार किया और चायजलपान पर बैठे हम ने परस्पर संविधान संबंधी जानकारी प्राप्त की.

जापानी संविधान का इतिहास हमारे देश की तरह प्राचीन नहीं है. हमारे यहां वैदिक काल से राज्य, शासन और नागरिक के अधिकार और आचार के

हर मौसम में हराभरा केगोन जलप्रपात और चूजनजी झील

के साथ उपयोग तथा उन की कार्य दक्षता हमारे लिए निःसंदेह अनुकरणीय है. हमारे दूतावास के साथी ने बताया कि जापान में मजदूरी सस्ती है और कारीगरों की कार्यक्षमता अनुपाततः बहुत ही अधिक है. इसलिए अन्य देशों की अपेक्षा जापान में काफी कम लागत में चीजें तैयार होती हैं. रेडियो की तरह दूरबीन, माइक्रोस्कोप और कैमरे जैसे आवश्यक सूक्ष्म यंत्रादि भी अन्य देशों की अपेक्षा जापान में काफी सस्ते बनते हैं. जरमनी प्रसिद्ध 'लाइका' कैमरे को जापानी 'केनोन' की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है. केनोन गुण में लाइका से कम नहीं

की इज्जत तो बहुत है, पर शासन संबंधी अधिकार उसे हमारे राष्ट्रपति से कम हैं. प्रधान मंत्री डायेट के द्वारा और सर्वोच्च न्यायाधीश मंत्री मंडल द्वारा मनोनीत किया जाता है. सम्राट केवल नियम एवं संधियों पर अपनी स्वीकृति देता है, संसद को आवाहन करने तथा मंत्रियों की नियुक्ति की औपचारिकता का निर्वाह करता है.

स्पीकर तथा सदस्यों से बातें कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई. वे देश के प्रतिनिधि थे इसलिए उन से बातें करने पर जनसाधारण की प्रकृति एवं रुचि का भी आभास हमें मिल सका. मैं ने यह लक्ष्य किया कि जापानी भले ही पाश्चात्य पोशाक अथवा परिवेश में हों, अपनी मौलिकता, संस्कृति और भाषा को वे भूलते नहीं और न छोड़ते हैं. हमारे यहां ऐसा है कि पाश्चात्य पोशाक और परिवेश में आते ही औसत व्यक्ति तो क्या अच्छे शिक्षित राजनीतिक व्यक्ति भी भारतीय संस्कार और अपनी भाषा के प्रति उदासीन रहते हैं.

संसद देख कर हम अपने होटल नहीं आए. समय कम था अतएव बाहर ही कहीं भोजन कर लेना तय पाया. यूरोप के अन्यान्य देशों की तरह यहां शाकाहारी रेस्तरां सरलता से नहीं मिलते. हम ने सुना था कि टोकियो में एक भारतीय रेस्तरां है. हम वहीं गए. रेस्तरां साधारण और साफ था. वातावरण में भारतीयता थी. भारतीयों के सिवाए कुछ विदेशी भी चाव से इडली, दोसे और सांभर का स्वाद ले रहे थे. रेस्तरां के मालिक श्री नायर वयोवृद्ध हैं और अच्छे व्यवहार-कुशल भी. उन्होंने बताया कि भारतीय मेनू को अपने रेस्तरां में इसलिए रखा है कि टोकियो में रहने वाले भारतीय व्यवसायियों और पर्यटकों को सुविधा रहे. वैसे, विदेशी भी अच्छी संख्या में उन के यहां आते रहते हैं. रेस्तरां में हिंदी फिल्मी रेकार्ड बज रहा था. अपने देश की धुन सुन कर और अपनी रुचि का भोजन पा कर तबीयत में ताजगी आ गई. विदेशों में स्वदेश ज्यादा प्यारा लगता है.

भारत की तरह जापान में भी कुछ बड़ेबड़े परिवारों के नियंत्रण में उद्योग-व्यवसाय हैं. अंतर यह है कि ये परिवार सामंतशाही व्यवस्था के कारण पहले ही से प्रभावशाली रहे हैं और उस व्यवस्था के अवसान के बाद उन्होंने व्यवसाय और उद्योग क्षेत्र को अपना लिया था. हमारे यहां मुख्यतः व्यवसायी परिवार ही उद्योगव्यापार का संचालन करते हैं. सामंतशाही परिवार के लोग रजवाड़ों के अंत के बाद अब भले ही व्यापारव्यवसाय में दोएक आए हों.

टोकियो में हम सुप्रसिद्ध मित्सु परिवार द्वारा संचालित रेडियो का कारखाना देखने गए. यहीं विश्वविख्यात नेशनल रेडियो और ट्रांजिस्टर बनते हैं. कारखाना अत्यंत ही व्यवस्थित था. काम स्फूर्ति से हो रहा था और शोरगुल बिलकुल ही नहीं. चेहरे पर ताजगी और मुसकराहट लिए आठ हजार लड़कियों को हम ने दत्तचित्त काम करते देखा. एक बहुत बड़े हाल में टेबल की ऊंचाई पर सरकती पटरियों (कनवेयर बेल्ट) पर ट्रांजिस्टर एक सिरे से दूसरे सिरे तक बढ़ते जा रहे थे. पहले सिरे पर ट्रांजिस्टर के सिर्फ ढांचे रखे जा रहे थे. लड़कियां कतारों में बैठी थीं. उन के सामने ट्रांजिस्टर ज्यों ही आता वे पुरजे बैठा देती थीं. इस प्रकार एक के बाद दूसरे पुरजे और सूक्ष्म यंत्र बैठाए जाते थे. दूसरे सिरे पर ट्रांजिस्टर जब पहुंचता था तब पूरा तैयार हो जाता था. श्रम और समय की मितव्ययिता

झील के पास ही हम ने वेगन का जल प्रपात देखा. इसे नीचे से देखने के लिए पहाड़ में करीब चार सौ फीट की सुरंग काट कर रास्ता बनाया गया है. लिफ्ट से उतरना पड़ता है. एक बड़ा चबूतरा सा बना है, जहां से ऊंचाई से गिरते हुए प्रपात को बखूबी देखा जा सकता है. यहीं से पास ही एक पहाड़ी की चोटी तक रोपवे लगाया गया है. लोग इसी रोपवे से चोटी पर जा कर दूर से प्रपात के सुंदर दृश्य को देखते हैं. हम भी वहां गए. संध्या का समय था. ढलते सूर्य के प्रकाश में लग रहा था प्रकृति केसरिया रंग प्रपात में घोल कर सूर्य को विदाई की अंजलि दे रही है.

हमारे राजदूत श्री लालजी मेहरोत्रा ने दूतावास भवन में रात्रिभोज का आयोजन किया था. दूतावास में आवास के साथ पीछे की ओर एक सुंदर बाग भी है. आमंत्रित लोगों में स्थानीय कई एक प्रमुख व्यक्ति थे. भारतीय वातावरण में अपनी रुचि के भोजन को पा कर भूख खुली. लालजी से बातचीत में आनंद आया. उन्हें जापान के व्यापारी पक्ष का बहुत अच्छा अनुभव है. राजदूत नियुक्त किए जाने के पूर्व वे भारतीय वाणिज्य परिषद् के अध्यक्ष भी रह चुके थे. उन के सहयोग से भारतीयों को व्यापार में वहां काफी सहूलियतें मिलती रही हैं.

भोजन के दौरान में जापान के शिल्पोद्योग के विस्तार की चर्चा के प्रसंग में श्री मेहरोत्रा ने बताया कि बड़ेबड़े उद्योगों के साथसाथ कुटीर शिल्प एवं दस्तकारी को भी जापान में प्रोत्साहन दिया जाता है. इसी कारण यहां बेकारी की समस्या नहीं है. ग्राम्यांचलों में भी कुटीर शिल्प और उद्योगों के कारण कृषक परिवारों को खाली नहीं बैठना पड़ता है. जीवन का स्तर हमारे यहां से काफी उन्नत है और अपराध भी कम होते हैं. देहातों में भी मकानों में टेलीविजन सेट हैं. किसानों के घर के अहाते में मोटरसाइकिल और कपड़े धोने की मशीनें भी हैं.

जापान और भारत दोनों की तुलना करते हुए मैं यह सोच रहा था कि हम कहते तो हैं, 'सही विश्वास, ज्ञान और चरित्र मोक्ष मार्ग है' पर इस के अनुसार आचरण नहीं करते. आज के युग के साथ सही दिशा में यदि हम बढ़ें तो प्रकृति ने जितना हमें दिया है, उस का उपयोग कर हम भी विश्व में जापान की भांति प्रतिष्ठित हो सकते हैं. भोजन के उपरांत हम होटल लौटे–रात हो चुकी थी. गिंजा रंगबिरंगी बत्तियों के प्रकाश में अभी अपनी शाम की शुरूआत की तैयारी कर रहा था. सड़कों पर झूमते हुए लोग हंसतेमुसकराते चले जा रहे थे. लगता था सभी पर एक ही रंग है 'आसु आरि तोइयु नाकारे' कल की बात मत करो.

दूसरे दिन हम हवाई द्वीप के लिए रवाना हो गए. बहुत इच्छा होने पर भी नेताजी सुभाष बोस की समाधि और नगराज फ्युजियामा को नहीं देख सके. पहले से ही यात्रा का कार्यक्रम बना लेने से जहां अनेक सुविधाएं हैं वहां कभीकभी निराशा भी कम नहीं होती. क्योंकि बहुत से दर्शनीय स्थान छूट जाते हैं. राहुलजी के अनुसार यात्रा का असली आनंद तो घुमक्कड़ वृत्ति में है. जहां समय, स्थान और साथी किसी का बंधन नहीं होता. फिर भी ७ दिनों की दौड़धूप में जापान को जितना देख और समझ सके, उस से स्वदेश के लिए हमें एक अनमोल संदेश मिला कि 'श्रम ही जीवन है और आलस्य मृत्यु.'

है और दाम उसके आधे से भी कम. हाथघड़ियां भी जापान ने बड़े पैमाने पर बनानी शुरू की हैं, पर इस क्षेत्र में स्विस का मुकाबला अब तक कोई भी देश नहीं कर पाया है.

हम ने प्रश्न किया, "क्या अब भी जापानी माल दूसरे देशों की अपेक्षा हलका बनता है?" उत्तर मिला, "युद्ध के पहले हमारी नीति दूसरी ही थी पर अब हमें अपनी साख की फिकर है. यही कारण है कि अमरीका जैसे देशों में जहां केवल सस्तेपन का महत्त्व नहीं के बराबर है, जापानी माल की खपत बढ़ती जा रही है."

टोकियो के उत्तर में करीब ९० मील की दूरी पर निक्को और चूजनजी झील जापान का विशेष आकर्षण है. जापान में यह बहुत ही रम्य स्थल माने जाते हैं. अपने यहां एक कहावत है, 'गढ़ तो चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया.' कुछ इसी प्रकार जापानी कहावत है, 'केक्को (सुंदर) मत कहो जब तक नेक्को न देखो.' मतलब यह कि सुंदर क्या है इस का पता तो नेक्को देखने पर ही हो सकता है. पर स्विट्जरलैंड की लेक जिनेवा या काश्मीर की डल झील से नेक्को का मुकाबला नहीं है.

जापान में आवागमन के अच्छे से अच्छे साधन हैं. अतः ९० मील की दूरी हमें अखरी नहीं. ६० मील की रफ्तार से ट्रेन हमें ग्राम्यांचल के बीच से लिए जा रही थी. ओसाका से टोकियो तक के सफर में हमने देखा था कि खेती पर जापानी विशेष ध्यान देते हैं और अपनी जमीन को जरा भी परती नहीं छोड़ते. इस यात्रा में देखा कि खेती के साथ सब्जी और फलों की बागवानी को भी जापानी किसानों ने उद्योग के रूप में अपना लिया है. हमारा देश कृषि प्रधान रहा है किंतु खेती को उद्योग के रूप में आज भी हमारे यहां गंभीरतापूर्वक नहीं अपनाया गया है. इसलिए हमें विदेशों के अनाज और खाद पर निर्भर रहना पड़ता है.

नेक्को का मंदिर दो सौ एकड़ के एक सुरम्य उद्यान के बीच है. जापान में हम नें कई मंदिर देखे पर अपने यहां के मंदिरों की तरह प्रभावपूर्ण नहीं लगे. किंतु नेक्को का मंदिर वहां के मंदिरों में सचमुच सुंदर लगा. यह लगभग ५०० वर्ष पुराना है. पता चला कि इयोयासु की स्मृति में उन के पुत्र ने यह बुद्ध मंदिर बनवाया था. इयोयासु का नाम जापान में बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है. नेक्को के मंदिर की ऊंचाई ज्यादा नहीं है. किंतु कलापूर्ण कारीगरी और दीवारों के आकर्षक रंगों की चित्रकारी दर्शनीय है. परंतु रोम के सेंटपीटर और वेटिकेन के सिस्टन चेपल आदि देख लेने के बाद इस में दर्शकों को खास आकर्षण नहीं रहता. हां, चेरी के फूलों से झुके वृक्षों को हरियाली के बीच झूमते देख हृदय नैसर्गिक सौंदर्य से विभोर हो जाता है.

यहां से बहुत पास ही चूजन की बड़ी झील है. टोकियो से लोग यहां छुट्टियां मनाने आया करते हैं. मोटर बोट, नाव और डोंगियों की दौड़ें भी यहां खूब होती हैं. हम भी एक मोटर बोट में बैठे. झील के पानी को चीरती हुई हमारी बोट लहरों पर उछलती हुई इतनी तेजी से आगे बढ़ने लगी कि मुझे ऐसा लगा कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए. किंतु यहां के बोट चालक इतने प्रवीण होते हैं कि शायद ही इस प्रकार के मौके आते हों.

घने जंगल और सूखे पहाड़ों के प्रति आकर्षण ही क्या होता कि जहाज चालक लंगर डालते. यदि कभी कोई उन तक पहुंच भी गया तो फिर वह उन्हीं का हो गया, लौट कर स्वदेश नहीं पहुंचा.

जो भी हो, कैप्टेन कुक की परिक्रमा के पूर्व तक आधुनिक संसार हवाई द्वीप से परिचित नहीं था. इन की लोक कथाओं में इन की उत्पत्ति का इतिहास हमारे यहां के बनवासियों—संथाल, भील और मुंडा—से साम्य रखता है. इन की संस्कृति और सभ्यता भी बहुत कुछ मिलतीजुलती है. हां, रूपरंग और शारीरिक गठन में अंतर अवश्य है. रहनसहन और जीवनस्तर में तो कोई समता ही नहीं है. यह जान कर तो आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है कि ६,४०० वर्ग मील के क्षेत्रफल का यह छोटा सा द्वीपसमूह, जो हमारे यहां के मणिपुर प्रदेश का केवल दो तिहाई ही होगा, आज विश्व के सब से समृद्ध और संपन्न अंचलों में से एक है. दुनिया से दूर गहरे प्रशांत की ऊंची लहरों के बीच बसे इन टापुओं में प्रति व्यक्ति की औसत आय संसार में सर्वाधिक है—कैलिफोर्निया से भी अधिक.

विमान की खिड़की से झांक कर नीचे देखा—बादलों की एक बड़ी चादर के ऊपर से वह उड़ रहा था. हम हवाई द्वीप के करीब पहुंच रहे थे. दूर पर नील सागर की गोद में भूरीभूरी धुंधली सी छाया स्पष्ट होती जा रही थी. यही है हवाई द्वीप समूह का एकमात्र शहर—होनोलूलू. नीले सागर की गोद में हरी सी चादर ओढ़े होनोलूलू मुसकरा रहा था.

टोकियो से होनोलूलू की तीन हजार मील की यात्रा में जेट से पांच घंटे लगते हैं. लेकिन हम जिस दिन चले थे, उस के एक दिन पहले ही पहुंच गए, यानी ३० जुलाई को चले और पहुंचे २९ जुलाई को. बात अटपटी सी जरूर लगती होगी, पर है सही. शायद विद्यार्थी जीवन में आप ने भी पढ़ा होगा कि पश्चिम से पूर्व की ओर मध्यांतर रेखा पार करने पर २४ घंटे का बचाव हो जाता है. मन ही मन सोचने लगा कि काल के चक्र से अपनी आयु में एक दिन बढ़वा लिया. स्वयं अपनी ही कल्पना पर मुसकरा उठा. इसी बीच विमान जमीन छू चुका था.

वायुयान की सीढ़ियों से उतरते हुए देखा कि सामने सुंदरियों की टोलियां स्वागत के लिए खड़ी हैं. गले में ताजे, लाललाल फूलों की माला और होंठों की लाली मानो आपस में ही होड़ कर रही हों. हाथ के गिलासों में छलकता अनन्नास का रस, आंखों में तैरती मादकता और स्नेह भरा अभिवादन. लगा कि प्रशांत की लहरों पर से नाचती हुई हवा की एक लहर कानों में कह गई, 'हवाई है, हवा नहीं लग जाए, ध्यान रखना!'

नाना रूपरंगों की युवतियां थीं—गौर वर्णा, ताम्र वर्णा और कृष्ण वर्णा. मंगोली आंखें हैं तो आर्य नाक और रंग तांबे का है. बड़ीबड़ी आंखें हैं, गौर वर्ण है तो होंठ उभरे हुए और मोटे से हैं. मतलब यह कि सांचे में ढले अंग हैं—स्वस्थ, सुंदर और सुडौल, आधे दिखाई देते उभरे उरोज और पुष्ट शरीर. हों भी क्यों न! कहा जाता है कि यहां ३६ जातियों की मिश्रित संतानें हैं. दारासिंह से लगते पुरुषों की भी यहां कमी नहीं. इन का चौड़ा सीना और हवाई कमीजों से कसरती बांहों की झांकती मछलियां बरबस इन की ओर ध्यान खींच लेती थीं.

घने जंगलों व खुले समुद्रों की अपनी निराली खूबी है.

लेकिन महिला यात्रियों को घेरे हुए थे युवक और महिला यात्रियों की संख्या पुरुषों से कम नहीं थी.

सुन रखा था कि हवाई द्वीप में एयरपोर्ट से ही लोग साथी चुन लेते हैं. वहीं के 'हटर्ज मोटर्स' के गैरेज से, जिस की शाखाएं सारे अमरीका और यूरोप में हैं, एक कार ले कर पूर्व निश्चित होटल या मोटल में पहुंच जाते हैं. लेकिन हम तीनों साथी इठलाती, मौन निमंत्रण देती हुई लड़कियों के बीच से शिष्टाचार के नाते मुसकराते हुए बाहर निकल गए. टैक्सी ले कर बी. ओ. ए. सी. द्वारा पूर्व आरक्षित होटल 'ट्रोपीकाना' में चले गए.

यद्यपि यहां बड़ी संख्या में एक से एक अच्छे होटल हैं, फिर भी जगह मिलनी मुश्किल रहती है. हफ्तों नहीं, महीनों पहले से संसार के विभिन्न देशों के यात्री बुकिंग करा लेते हैं. शायद चार्ज भी दूसरे देशों से अधिक है क्योंकि हमारे बजट के अनुसार जिस होटल की व्यवस्था की गई थी, वह हमें अब तक के होटलों की तुलना में हलका लगा. हम ने कुछ विश्राम किया. खिड़की से ताजी हवा आ रही थी. बड़ा अच्छा लगा. यहां का मौसम सदाबहार है. चारों

हवाई की विशेष 'लाओ' दावत का एक दृश्य

ओर विस्तृत समुद्र होने के कारण न तो यहां कभी ज्यादा गरमी पड़ती है और न सर्दी. रितुराज का साम्राज्य वर्ष भर अखंड रहता है, इसी लिए ताप नियंत्रण की आवश्यकता रहती ही नहीं.

सुबह का नाश्ता कर हम अपने अगले कार्यक्रम पर विचार कर रहे थे. भारतीय विदेश मंत्रालय ने हमारी प्रस्तावित यात्रा की सूचना पहले ही से दे रखी थी. इसी बीच वहां की भारतीय अवैतनिक काउंसिलर श्रीमती वाटूमल का फोन आया कि वह आ रही हैं. थोड़ी देर में वह पहुंच गईं. श्रीमती वाटूमल अमरीकन हैं. उन्होंने प्रसिद्ध धनकुबेर श्री वाटूमल के छोटे भाई, जिन का देहांत हो चुका है, से विवाह किया था. अपनी शानदार बड़ी शेव कार को स्वयं ड्राइव कर रही थीं और होनोलूलू के बारे में बताती भी जा रही थीं. हमें वहां के सब से बड़े बैंक के अर्थशास्त्री श्री जानसन से मिलना था.

उन से बातचीत के दौरान मालूम हुआ कि हवाई द्वीप की आमदनी का सब से बड़ा जरिया गन्ने की खेती है. इस के बाद क्रम है यात्री व्यवसाय और विदेशी प्रतिष्ठानों के विज्ञापनों का और तब अनन्नास की खेती का. अमरीका के

जल और स्थल सेना के प्रशिक्षण केंद्र भी यहां हैं और ये भी इन की आय के अच्छे स्रोत हैं. इस प्रकार आठ लाख की आबादी के इस द्वीप समूह की प्रति व्यक्ति औसत आय विश्व में सर्वाधिक है.

श्री जानसन से बात करने के बाद हम होनोलूलू के 'डौल' कारखाने में गए. अनन्नास का यह विश्व में सब से बड़ा कारखाना है. इस में करीब आठ हजार लड़कियां काम करती हैं. अनन्नास के इस के अपने खेत हैं. यहां वैज्ञानिक तरीके से फसल होती है. प्रवेश शुल्क बहुत साधारण लगा. हम ने कारखाने के विभागों को गाइड के साथ देखा. जहां कहीं भी जाते, अनन्नास का रस गिलासों में भर कर दिया जाता था. हम ने जितना शुल्क दिया था उस से कहीं अधिक का तो रस ही पी गए. कारखाने की व्यवस्था का संचालन भी एक महिला करती हैं. उन से उत्पादन और संगठन संबंधी जानकारी प्राप्त की. बातचीत के दौरान उन्हें जब पता चला कि हम अपने देश के संसद सदस्य हैं तो उन्होंने बहुत मना करने के बावजूद प्रवेश शुल्क वापस लौटा दिया.

यहां के कारखाने की व्यवस्था और संगठन ने हमें बहुत ही प्रभावित किया. बाहर आ कर हम ने एक मजे की बात देखी कि कारखाने के ऊपर अनन्नास का एक बहुत बड़ा माडल है जिस की ऊंचाई ५० फीट और घेरा भी प्रायः उतना ही है. दिन भर घूमने के बाद शाम को हम अपने होटल पहुंचे. आपस में विचारविनिमय करने लगे कि आठ लाख की आबादी वाले इस देश में केवल विदेशी यात्रियों से उन्हें सौ करोड़ रुपए प्राप्त होते हैं. मोटे तौर पर प्रति व्यक्ति की औसत आय यात्री व्यवसाय से ही तेरह सौ रुपए वार्षिक है, जब कि हमारे देश में, जहां ऐतिहासिक वैभवों से पूर्ण आकर्षण के स्थल हैं, इस व्यवसाय से प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय केवल आठ आने ही है. कारण स्पष्ट है कि यात्रियों के लिए जो सुख और साधन यहां उपलब्ध हैं, वे हमारे देश में कल्पनातीत हैं. हमारी सभ्यता, संस्कृति और आचारविचार की कसौटी पर इन की चर्चा तक करना संभव नहीं है. जो भी हो, विदेशों से, खास कर जापान, अमरीका और यूरोप से, यात्रियों का तांता यहां वर्ष भर बंधा रहता है.

अरब के धनकुबेर शेख भी होनोलूलू की शोखियों पर करोड़ों रुपए न्योछावर करते रहते हैं. अमरीकनों की संख्या सब से अधिक है. कारण भी है इस के पीछे. आज अमरीका का जीवन इतना अधिक यांत्रिक हो गया है कि अमरीकनों को अपने देश में न तो अवसर है, न अवकाश. प्रकृति से दूर, अस्वाभाविक जीवन, व्यस्त भागदौड़, इस की प्रतिक्रिया का प्रभाव शरीर और मन पर पड़ना स्वाभाविक है. उन में से अधिकांश के पास साधन हैं, इसलिए वे कुछ समय के लिए भाग निकलते हैं और हवाई के मौज तथा बेफिक्री के वातावरण में आ कर कुछ दिनों में ही देह और मन को पा जाते हैं. यहां पर हर कौम को हर काम की छूट है. लोग अपने पद, मानसम्मान, मर्यादा, सभी का बंधन तोड़ कर बिलकुल बंजारा जीवन बिताने लगते हैं. हम ने देखा कि समुद्रतट के अलावा बाजार और दुकानों तक में अमरीकन तरुणियां बिकनी (केवल छोटा सा कटिवस्त्र और चोली) पहने निस्संकोच घूम रही हैं.

कैलिफोर्निया

हालीवुड की चमचमाहट : डिजनीलैंड का बचपन

होनोलूलू से जेट विमान हमें लौस ऐंजेल्स लिए जा रहा था. २३०० मील की यात्रा थी. पान अमरीकी एयरवेज के हवाई जहाज यों ही काफी आरामदायक होते हैं, फिर हवाई द्वीप आनेजाने वाले तो और भी आकर्षक लगते हैं क्योंकि छुट्टियां मनाने वाले यात्री ही अधिकांशतः इन में सफर करते हैं.

साथ के प्रायः सभी यात्री होनोलूलू में छुट्टियां बिता कर तरोताजा और प्रसन्न थे. मुझे भी बड़ी प्रसन्नता थी कि इस बार की विश्वयात्रा में अभिनव देशों और संस्कृतियों को देखने का सुअवसर मिल पाया. नीचे प्रशांत की लहरों की तरह मन आनंद में हिलोरें ले रहा था. जेट विमान हमें कैलिफोर्निया ले जा रहा है. यह विश्व के समृद्धतम देश संयुक्त राज्य अमरीका का सर्वाधिक विकसित और उन्नत अंचल है. सुना और पढ़ा भी था कि इस वीरान मरुस्थल और पहाड़ी अंचल को श्रम से संवार कर नंदन वन बना दिया गया है. मैं सोच रहा था, क्या हमारा राजस्थान भी श्रम और लगन से दूसरा कैलिफोर्निया नहीं बन पाएगा? इस का प्रचलित व लोकप्रिय नाम स्वर्ण प्रदेश (गोल्डन स्टेट) है. आज से करीब १५० वर्ष पूर्व रेगिस्तान, पत्थर, कांटों के जंगल और दलदल की इस भूमि को कौन जानता था कि वह हिरण्यगर्भा है!

कहते हैं कि भगवान जब देता है तो दोनों हाथों से देता है. कैलिफोर्निया के लिए यह बात सही रूप से लागू हुई. भटकते हुए राहगीरों को एक दिन यहां पीले चमकते पत्थर बड़ी संख्या में दिखाई पड़े. कनक को पहचानने में देर न लगी और इस की खनक प्रशांत से सुदूर अटलांटिक महासागर के किनारों तक पहुंची. फिर तो अमरीका और यूरोप के कोनेकोने से स्वर्ण संचय के लोभ में कैलिफोर्निया की वीरान कांटेदार मरुभूमि में लोगों के आने का तांता बंध गया. जिधर देखो, लोग जमीन खरीद रहे हैं और फावड़े व कुदाली चला रहे हैं. कुछ ही समय के अंदर वहां की जमीन का मूल्य दस डालर प्रति एकड़ से बढ़ कर १००० डालर प्रति एकड़ हो गया. इतिहास में यह घटना 'Gold Rush' 'सोने की दौड़' के नाम से विख्यात है.

प्रकृति उसे ही देती है जो पाने का अधिकारी है. नाना प्रकार के कष्ट, बाधाएं और विपदाएं सह कर लोगों ने कैलिफोर्निया को आबाद किया और थोड़े समय में ही यह अच्छाखासा व्यवसाय और वाणिज्य केंद्र बन गया. शायद

हुए बाग, बड़ेबड़े स्टोर्स, होटल, मोटरबोट, नाइट क्लब आदि यही तो होनोलूलू है. अमरीका और यूरोप के बड़े से बड़े उद्योगपतियों को यहां मशालों की मंद रोशनी में होलू नाच करते देखा जा सकता है.

दूसरे दिन हम श्री वाटूमल से मिलने गए. सतहत्तर वर्ष की उमर में भी उन में युवकों का सा उत्साह है और अपने २६ स्टोरों की वह स्वयं देखभाल करते हैं. पंद्रह वर्ष की अल्पावस्था में वह भारत से साधारण नौकरी पर फिली-पाइन आए थे. कुछ वर्षों बाद यहां आ कर उन्होंने अपना छोटा सा स्टोर कर लिया. आज विश्व के प्रमुख धनियों में उन की गणना है. उन की व्यापारिक शाखाएं दूसरे अनेक देशों में हैं और भारत के सैकड़ों युवक उन के स्टोरों औ: शाखाओं में काम करते हैं. विश्व प्रसिद्ध 'वाटूमल ट्रस्ट' के वह संस्थापक हैं. इस ट्रस्ट के द्वारा अनेक विद्यार्थियों को विभिन्न देशों में उच्च शिक्षा मिलती है. उन्होंने बड़े प्रेम से हमारा स्वागत किया और भारत की विभिन्न समस्याओं के बारे में चर्चा करते रहे. वह अपने घर भोजन के लिए आग्रह करते रहे पर हमारे पास समय का अभाव था इसलिए नहीं जा सके.

बड़ेबड़े होटलों, क्लबों और विद्युत प्रकाश के रहते हुए भी कृत्रिम स्वा-भाविकता की तलाश में यहां लकड़ी और पत्तों के झोंपड़े बना कर उन में तेल की मशालों की धीमी रोशनी में लोग खाते और नाचते रहते हैं. एक जगह देखा कि लोग समूचे सूअर को लंबी लोहे की सींक में पिरो कर भून रहे थे. हमें तो यह दृश्य बहुत ही बीभत्स लगा पर दूसरे यात्री चाव के साथ उस के चारों तरफ खड़े थे. इन सब बातों को देख कर ऐसा लगा कि सभ्यता की चोटी पर पहुंच कर भी मनुष्य अपने आदिम स्वभाव को नहीं भूल पाता है.

तीसरे दिन हमें वहां से कैलिफोर्निया के प्रसिद्ध शहर लौस ऐंजेल्स जाना था. हवाई अड्डे पर आते हुए पर्ल हारबर को भी देखने गए. जापान, चीन और पूर्व एशिया पर नियंत्रण रखने के लिए अमरीका ने इसे बहुत से बड़ेबड़े युद्ध-पोतों से सुसज्जित किया था और विश्व में यह अजेय माना जाता था, पर १९४१ में एक दिन अचानक ही जापानी हवाई जहाजों ने इस पर हमला कर के बहुत से जहाजों को डूबो दिया. बची हुई कुछ सामग्री आज भी वहां के म्यूजियम में रखी हुई है. इस समय फिर से अमरीका ने यहां बड़ा नौशिक्षण केंद्र स्थापित किया है जहां हजारों नाविक शिक्षा पा रहे हैं.

तीन दिन में होनोलूलू में जो कुछ देखासुना, उस की मन पर विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं होनी स्वाभाविक ही थीं. ऐसा लगा कि हमारे देश की ब्रह्मचर्य, संयम, त्याग और तपस्या की मान्यताओं को ये लोग अनियंत्रण, भोग और विलास में लीन रह कर एक प्रकार से चुनौती सी दे रहे हैं.

इन के व्यक्तिगत सामाजिक जीवन को निकट से देखने और समझने की बड़ी इच्छा थी पर उस के लिए हमारे पास साधन और सुविधा का अभाव था. हवाई जहाज में बैठा हुआ सोचने लगा कि क्या वास्तव में ये सुखी हैं? सब प्रकार से साधन संपन्न होने के बावजूद न तो ये कोई विवेकानंद या रवींद्र ही दे पाए हैं, न आइंस्टाइन या रसल ही.
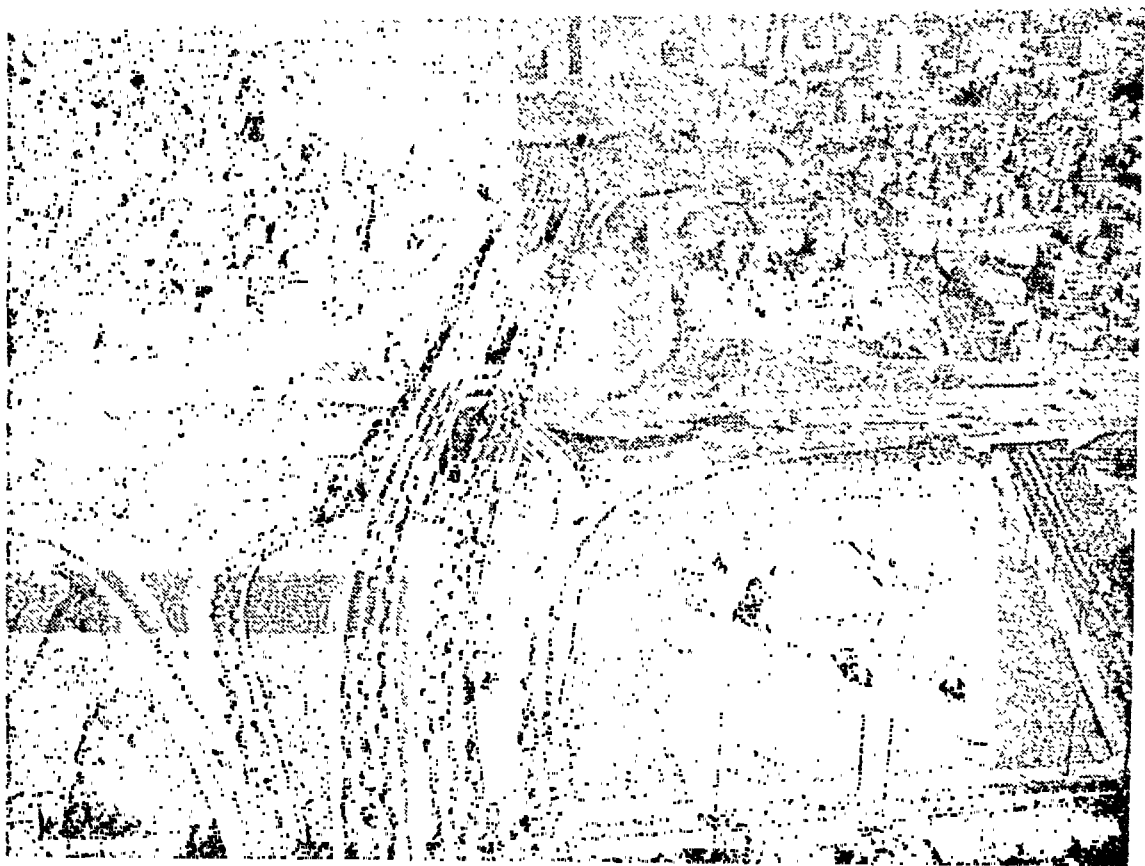
लौस ऐंजेल्स का एक व्यस्त मार्ग

ऐंजेल्स के हालीवुड, वेलिंगटन, लांगबीच, सेंट मोनिका और बेवरली आदि एक होने पर भी अपना अलग अस्तित्व रखते हैं. इस प्रकार यहां के नगरनिगम की कुल जनसंख्या लगभग ३० लाख है.

होनोलूलू से ही लौस ऐंजेल्स में अपने आवास के लिए हम ने व्यवस्था कर ली थी. अतएव एयरपोर्ट से उतरते ही सीधे पूर्वनिश्चित होटल के लिए रवाना हुए. होटल लगभग १३ मील की दूरी पर था. एक खास बात यह देखने में आई कि यहां आवागमन के लिए दो प्रकार की सड़कें हैं : एक थोड़ी दूर के सफर की और दूसरी लंबे सफर की, जिस पर साठसत्तर मील प्रति घंटे की रफ्तार से कम गाड़ी नहीं चला सकते. सड़कों पर मोटरों का जमघट और विभिन्न प्रकार की बनावटें देख कर चकित और मोहित सा हो जाना पड़ा. हमारे देश में आम तौर पर तीनचार तरह की ही कारें हैं लेकिन यहां तो सैकड़ों तरह की छोटीबड़ी विभिन्न आकारप्रकार की मोटरें बहुत बड़ी संख्या में देखने में आईं. साधारणतया अमरीका में सभी चीजें अन्य देशों की तुलना में महंगी हैं लेकिन जहां तक मोटरों और पेट्रोल का सवाल है, ये चीजें और देशों से सस्ती, भारत की अपेक्षा तो कहीं अधिक सस्ती हैं. हमारे देश में नई इंपाला कार १० लाख रुपए में मुश्किल से ही मिलेगी जब कि अमरीका में इस मजबूत तेज और आकर्षक गाड़ी का मूल्य केवल १३००० के करीब है. दो वर्ष की चली हुई गाड़ी तो बड़ी आसानी से ढाईतीन हजार तक अच्छी हालत में मिल जाती है. यही कारण है कि औसतन यहां प्रति २.५ व्यक्ति पर एक कार है,

जब कि हमारे देश में प्रति ३५०० व्यक्ति पर. एक बात और ध्यान देने की है कि अमरीका में धनी व्यक्ति ड्राइवर नहीं रखते क्योंकि ड्राइवरों के काम के घंटे निर्धारित होते हैं और वेतन है कम से कम २००० रुपए प्रति मास!

इस बार अब तक की यात्रा में विदेशी मुद्रा की कमी के कारण हम द्वितीय श्रेणी के होटलों में ठहरते आए. लेकिन अमरीका में निजी संपर्क के कारण हम ने प्रथम श्रेणी के होटलों में ही अपने आवास सुरक्षित कराए. लौस ऐंजेल्स में हम सुविख्यात शेरेटन होटल में ठहरे. होटल क्या था, सुख और आराम का प्रतीक. दरवाजे के अंदर पैर रखते ही मुलायम गलीचे का फर्श, हर कदम पर जैसे धंसे जाते हों. संपूर्ण होटल में इसी प्रकार मुलायम रोएंदार गलीचे का फर्श बिछा था. कमरों में उत्तम कोटि के फर्नीचर, टेलीफोन के अलावा टेलीविजन सेट भी थे. कर्मचारियों की शालीनता, विनयशीलता और तत्परता के कारण यात्रियों को इस बात का अनुभव ही नहीं हो पाता कि वे विदेश में हैं. सुख-सुविधा और साधनों की प्रचुरता के कारण ऊंचा खर्च अखरता भी नहीं. हम ने यहां यह भी देखा कि दो होटलों किंग हिल्टन और शेरेटन में इस बात की होड़ रहती है कि यात्रियों को अधिक से अधिक सुविधा कौन दे सकता है.

स्नान के लिए गुसलखाने में गया. आदमकद शीशा, मोटे रोएंदार बड़ेबड़े तौलिए दूध से सफेद. साथ ही देखा, वजन का एक छोटा सा यंत्र भी रखा था. मैं मुसकरा उठा, भला इस इंद्रपुरी में वजन किस का घटेगा? शायद अमरीकी अपने स्वास्थ्य के प्रति इतने चौकस होते हैं कि शरीर के घटते या बढ़ते वजन पर नियंत्रण रखना आवश्यक समझते हैं. नहा कर मन प्रफुल्लित हो गया. खिड़की के पास खड़ा हो कर धीरेधीरे काफी पी रहा था कि टेबल पर रखे होटल के संस्थापक मिस्टर शेरेटन की जीवनी पर नजर पड़ी. उस से पता चला कि अत्यंत साधारण से व्यक्ति शेरेटन ने किस प्रकार ४० करोड़ रुपए कमाए, इतने विशाल होटल के मालिक बने और नाना प्रकार के सामाजिक कार्यों में सहायता दी. सहज प्रश्न उठा कि अमरीका पूंजीवादी देश है और पूंजीवाद का महान पोषक भी है.

इस प्रकार के उदाहरण यहां एक नहीं अनेक मिलते हैं. मैं मन में सोचने लगा कि साम्यवादी देशों में वहां के विधान के अनुसार इनसान चाहे कितना ही योग्य और परिश्रमी हो, धनवान और संपन्न तो नहीं बन पाता. लेकिन जब कि वहां की सरकार स्वयं प्रत्येक व्यक्ति की सुखसमृद्धि की जिम्मेदारी लेती है तब भी उन का जीवन स्तर यहां के औसत से इतना नीचा क्यों है? क्या वास्तव में व्यक्ति का स्वतंत्र अस्तित्व उस के विचारों और सर्वांगीण उन्नति के लिए अधिक प्रेरक है? दूसरे दिन शहर घूमने का कार्यक्रम था. खूब तड़के उठा. जुलाई का महीना था. वहां जैसा मौसम इन दिनों हुआ करता है, उस की अपेक्षा अधिक गरमी महसूस हुई. जल्द तैयार हो कर मैंने सुबह का नाश्ता किया और यात्री बस पर जा बैठा.

अमरीका नया देश है इसी लिए संसार के अन्य देशों की तरह प्राचीन ऐति-हासिक वस्तुएं और वास्तुकला की विविधता यहां नहीं के बराबर है, फिर भी पर्यटकों के लिए यहां का रहनसहन और शिल्पोद्योग के स्थल बहुत आकर्षक हैं. लौस ऐंजेल्स के म्यूजियमों का वर्णन विशुद्ध रूप से देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि पेरिस
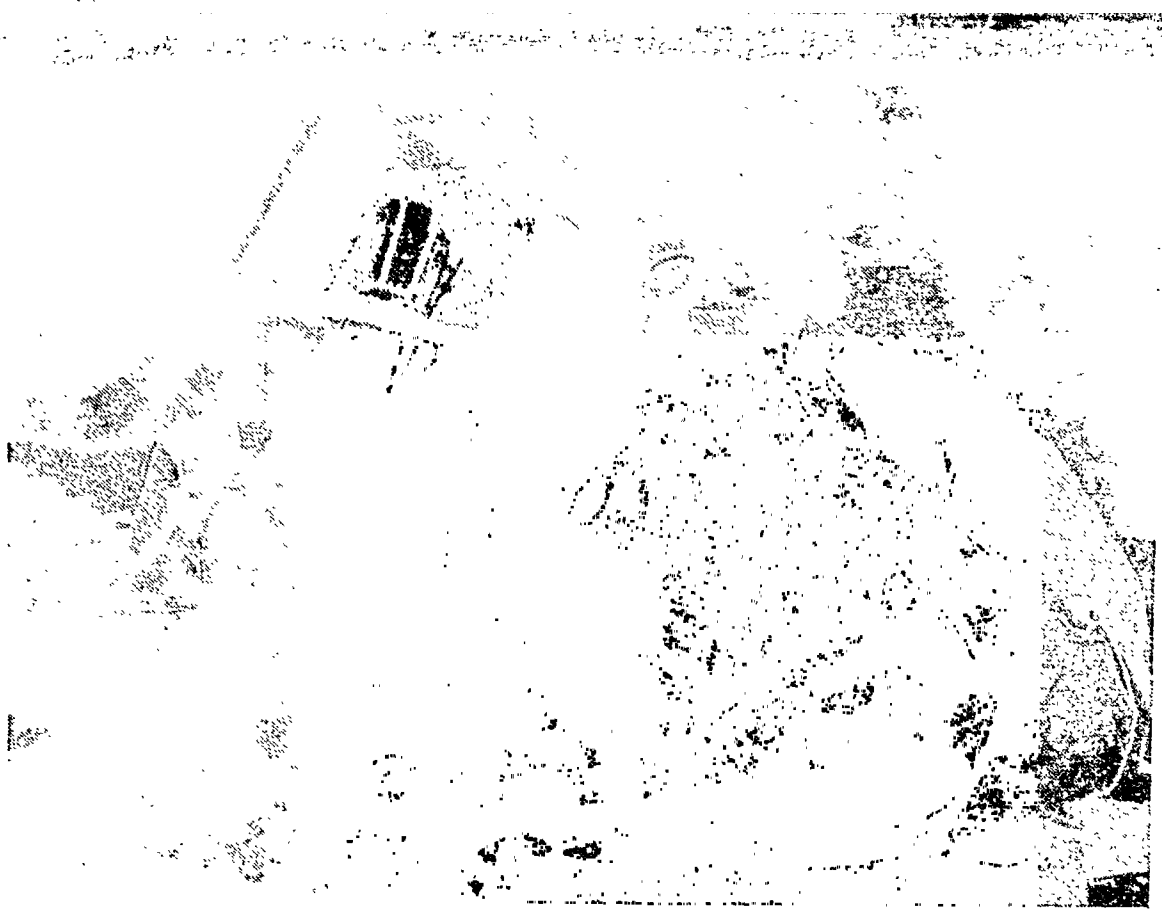
फिल्मलोक हालीवुड में एक फिल्म की शूटिंग का दृश्य

के लुब्रे, लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम और लेनिनग्राद के म्यूजियम जैसे ये नहीं हैं. रेस्तरां, दुकानें और क्लब दूसरे अन्य देशों की तरह ही सजेसजाए. इन्हें देख कर यह धारणा सहज ही में बन जाती है कि अमरीका और अमरीकन आम तौर से चरम भोगवादी हैं.

शहर में एक खास बाजार देखा. इसे 'किसानों का बाजार' कहते हैं. वहां दैनिक आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु एक ही जगह मिल जाती है. कैलिफोर्निया प्रदेश में अच्छे किस्म के फल बहुतायत से पैदा होते हैं. कुछ तो जलवायु अनुकूल है और कुछ बड़े पैमाने पर नाना प्रकार के प्रयोग कर के फलों की उपज और किस्म बढ़ा ली जाती है. लौस ऐंजेल्स तो फलों के व्यवसाय का केंद्र ही है. अखरोट, अंगूर, बादाम, खुबानी, संतरे, अंजीर इत्यादि नाना प्रकार के फल यहां से बाहर भेजे जाते हैं. फलों के बागवानों ने यहां एक सहकारी समिति गठित कर रखी है जिस के कारण बाजार का संतुलन बना रहता है. यहां हमारे साथी श्री भुवालकाजी ने एक खजूर का डब्बा खरीदा जिस में तीन इंच लंबे खजूर थे. उन के स्वाद का तो कहना ही क्या?

लौस ऐंजेल्स में घूमते समय कलकत्ता और लंदन की झांकी मिल जाती है. यहां भी एशियाई एवं अफ्रीकी प्रवासी हैं. आम तौर पर इन के महल्ले भी अलग-अलग हैं. अपने होटल और रेस्तरां हैं. घर पर रहनसहन का ढंग इन्होंने अपना मौलिक ही रखा है. प्रवासियों में सब से ज्यादा संख्या चीनियों की है जो पीढ़ियों से यहां रहते आ रहे हैं. अपने घर पर अपनी निजी भाषा, संस्कृति और आचारविचार रखते हैं लेकिन बाहर वालों से अंगरेजी भाषा और तौरतरीके से मिलते हैं. जापानी
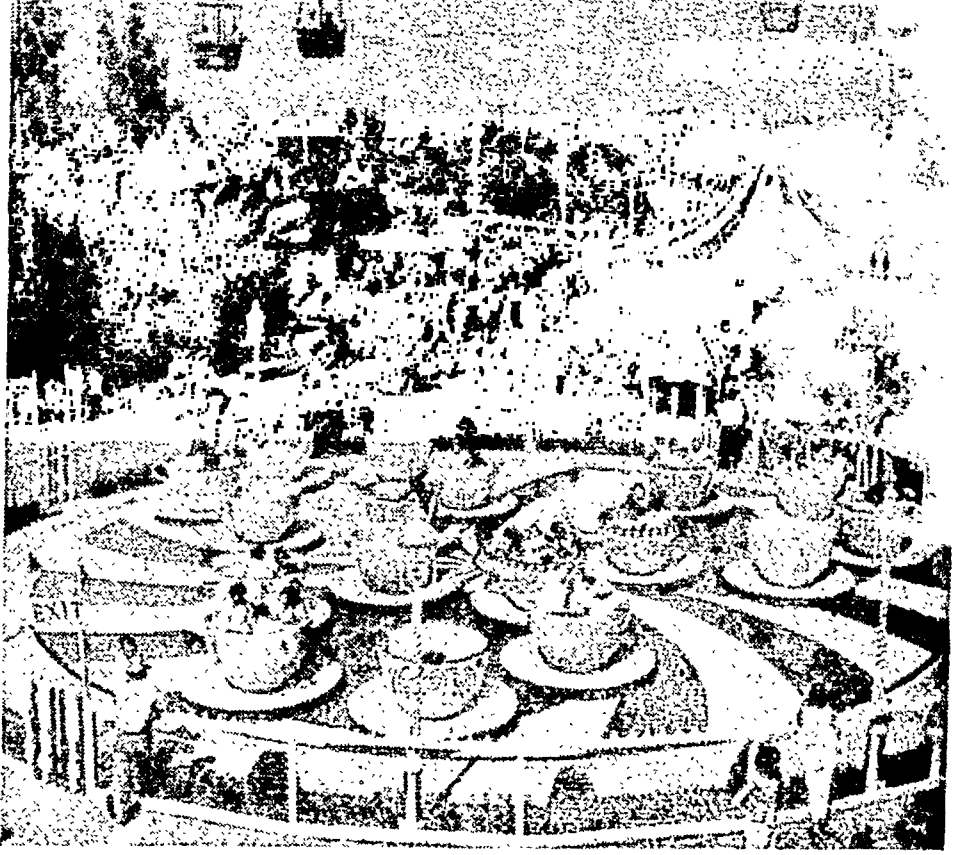
डिजनीलैंड...जहां पर सभी बच्चे बन जाते हैं!

इन से कुछ भिन्न हैं. इन्होंने अपने को पाश्चात्य सभ्यता के अनुरूप बना लिया है इसलिए ये अमरीकी समाज में अपेक्षाकृत अधिक घुलेमिले पाए जाते हैं.

अमरीका में मेरा प्रथम चरण लौस एंजेल्स था. सब से पहले मैं ने यहां प्रत्यक्ष रूप से नीग्रो समस्या का अनुभव किया. यों तो पक्षविपक्ष में काफी पढ़ने और सुनने को मिल चुका था फिर भी यहां तथा अमरीका के अन्य शहरों में जो भी रूप इस समस्या का देखने में आया, उसे मैं जटिल ही कहूंगा.

यद्यपि राज्य और सरकार की ओर से उन्हें समान अधिकार दिए गए हैं लेकिन स्पष्टतः व्यवहार में ऐसा नहीं होता. गोरे और काले का वर्ण भेद आज भी है. हमारे देश की वर्ण व्यवस्था से इस की तुलना नहीं हो सकेगी क्योंकि भारत में शरीर के रंग को ले कर छुआछूत की भावना नहीं रही बल्कि समाज के वर्ग और कर्म का आधार ही बाधक रहा है. इसलिए, रूढ़िवाद को उखाड़ कर फेंकने के साथ ही हमारे यहां से छुआछूत का भेद स्वतः हटता जा रहा है. आश्चर्य है कि आधुनिक सभ्यता, समता और भ्रातृत्व का आवाहन करने वाले अमरीका में वर्ण भेद आज भी पारस्परिक द्वेषाग्नि को धधकाता जा रहा है और इसी कारण मानवप्रेमी राष्ट्रपति केनेडी की निर्मम हत्या भी हुई.

'निगर,' 'नीग्रो' शब्द वहां एक प्रकार से अपमानजनक समझा जाता है. इस में संदेह नहीं कि नीग्रो शिक्षा और आचारविचार में पिछड़े हैं और इस के प्रति कुछ अंशों में इन में रुचि का भी अभाव है. साधारणतया ये मोटी मजदूरी का ही काम करते हैं. शरीर से तगड़े होने के कारण इस ढंग के काम के लिए हिचकने

नहीं. नई चेतना की लहर ने उन्हें जगाया है और अब इन में भी शिक्षा का प्रसार हो रहा है. नीग्रो समाज ने अच्छे चिंतक और कलाकार दिए हैं. पाल राबसन के संगीत ने पश्चिम को जहां मोह लिया है वहीं मार्टिन लूथर किंग श्रेष्ठ विचारकों में गिने जाते हैं. प्रसिद्ध मुक्केबाज लुई और केसियस तो विश्व में बेजोड़ माने जाते हैं.

हालीवुड लौस एंजेल्स का ही उपनगर है. सरसरी तौर पर वह भी देखा. सिनेमा देखने में जितना आकर्षक लगता है उतना स्टूडियो नहीं. वैसे कलकत्ता और बंबई में स्टूडियो देखे थे. यहां स्टूडियो देखने के लिए पहले से मंजूरी लेनी पड़ती है लेकिन इस तरफ हम तीनों साथियों की खास रुचि नहीं थी इसलिए हम यहां किसी स्टूडियो को नहीं देख पाए. हमें बताया गया कि अमरीकी कलाकार और टेकनीशियन हमारे यहां से अधिक परिश्रमी और अनुशासन मानने वाले हैं. कहा जाता है कि चोटी के निर्माता और अभिनेत्री ग्रेगरी पैक, आवा गार्डनर या एलिजाबेथ टेलर की वार्षिक आय दोतीन करोड़ तक है. वैसे हमारे यहां भी राजकपूर, दिलीपकुमार और वैजयंतीमाला की वार्षिक आय पंदरहबीस लाख की बताई जाती है.

हालीवुड के बाद डिजनीलैंड देखा. एक नई दुनिया में ही पहुंच गया था मैं. वाल्टर डिजनी की कल्पना और सर्जनाशक्ति अद्‌भुत थी. मिकी माउस की कल्पना के साथ एक अभिनवनगरी को बना देना साधारण सी बात नहीं. हजारों की संख्या में बच्चे, बूढ़े और जवान सभी डिजनीलैंड जाते हैं. इस स्थान से बच्चों को विशेष लगाव है.

डिजनीलैंड पहुंच कर कहीं आप १०० वर्ष पुराने महल्ले में घूमते नजर आएंगे तो कहीं ऐसी जगह पहुंचगे जहां भविष्य की दुनिया बनेगी. यहीं पर आल्प्स की बर्फानी चोटी का आनंद लीजिए तो समुद्र के गर्भ में पहुंच कर वहां के दानवी जीवों को देख लीजिए. यहां छुट्टियों में बड़ी भीड़ रहती है. हम भी डिजनीलैंड में जा कर अपने को बिलकुल भूल गए. बच्चों के कहकहों के बीच एक बार तो मेरा बचपन मुझे मिल गया, यह क्या कम सौभाग्य रहा!

सेनफ्रांसिस्को

अमेरिका का पश्चिमी स्वर्ण द्वार

तीन दिन लौस ऐंजेल्स में रह कर हम चौथे दिन हवाई जहाज से सेनफ्रांसिस्को पहुंचे. अमरीका में ट्रेन और बसों की यात्रा बड़ी सुखद रहती है. हम लोगों की इच्छा भी हो रही थी कि भूमि का मार्ग ही अपनाया जाए ताकि ग्राम्य अंचल की झांकी देखने को मिले. मगर यह संभव न था क्योंकि हम ने हवाई जहाज की पृथ्वी परिक्रमा की टिकट पहले ही से बुक करा ली थी जिस से बिना अतिरिक्त व्यय के सैकड़ों शहर देखे जा सकते हैं. इस प्रकार ट्रेन या बसों की यात्राओं का खर्च बच जाता था और समय की भी बचत हो जाती थी.

सेनफ्रांसिस्को अमरीका के स्वर्ण प्रदेश का 'स्वर्णद्वार' के नाम से विख्यात है. वास्तव में है भी. अमरीका विश्व का सर्वाधिक धनी, समृद्ध और उन्नतिशील राष्ट्र है, जिस में कैलिफोर्निया का अंचल सर्वोपरि है. इस महानगर की महत्ता का एक और भी कारण है. विश्व का सर्वोत्तम बंदरगाह होने के कारण अमरीका के पश्चिमी तट पर यह आयात और निर्यात का बहुत बड़ा केंद्र है. समुद्रगामी सैकड़ों जहाज यहां एक कतार में आसानी से महीनों तक रुक सकते हैं. इसलिये जहाज निर्माण का उद्योग भी यहां काफी उन्नत और विकसित है.

लौस ऐंजेल्स की तरह यह जगह भी पहले वीरान थी. आदिवासियों की बस्तियां कहींकहीं थीं. प्रसिद्ध भूपर्यटक सर फ्रांसिस ड्रेक १५७९ ई० में यहां आए थे. उन के जहाज ने यहां से जरा और उत्तर की ओर लंगर डाला था. आज भी वह स्थान ड्रेक की खाड़ी कहलाती है. उन के नाविकों ने जिस स्थान पर नए देश की खोज में खुशी मनाई थी और प्रकृति का आभार माना था, वह शहर की एक पहाड़ी पर है और बड़ा ही रमणीय स्थल है. यहां पर ४० फीट का एक क्रास उस घटना की यादगार में बनाया गया है. इसी क्रास के नीचे से दोनों तरफ बहते झरने बहुत मनोरम लगते हैं.

पाश्चात्य देशों में यात्रियों की सुविधा और आराम का हर प्रकार ध्यान रखा जाता है. औसत अमरीकी की यह इच्छा रहती है कि उस के देश को विदेशी यात्री जानने और समझने की कोशिश करें. इसी लिए जब भी जरूरत पड़ती है वह आगे बढ़ कर सहयोग देने को प्रस्तुत रहता है. अमरीका जाने के पूर्व हमारे लिए बिरला प्रतिष्ठान ने आकलैंड के विश्व प्रसिद्ध कैजर फर्म को सूचना भेज दी थी. कैजर विश्व में अल्युमिनियम किंग माने जाते हैं. भारत में बिरला
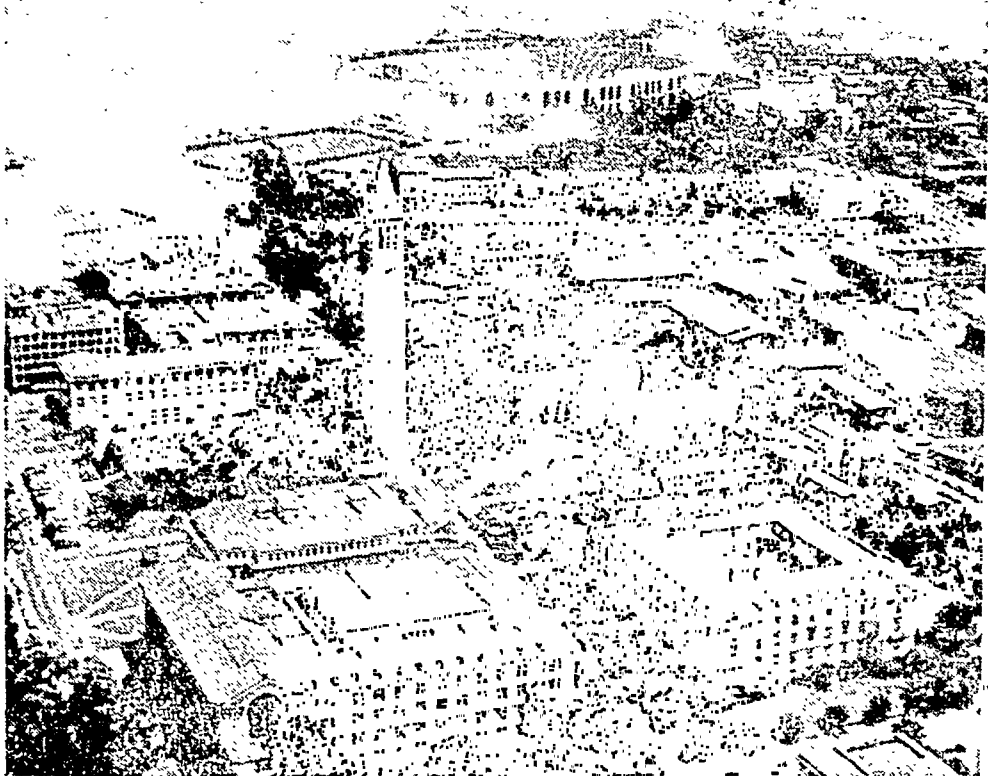
सागर तट पर स्थित बर्कले हिल पर निर्मित सेनफ्रांसिस्को का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय

प्रतिष्ठान के साझे में इन्होंने रेणुकूट में अल्युमिनियम का एक बहुत बड़ा कारखाना स्थापित किया है.

लौस ऐंजेल्स की तरह सेनफ्रांसिस्को भी कई द्वीप और पहाड़ियों का नगर है. शहर प्रमुख रूप से आकलैंड और सेनफ्रांसिस्को की बस्ती में अर्धचंद्राकार रूप में बसा है. इस महानगर का क्षेत्रफल लगभग ४६ वर्ग मील है. पहाड़ियां, खाड़ी, झील, झरने, कुंज और बागबगीचे की प्राकृतिक शोभा ने इसे संसार के बड़ेबड़े शहरों से निराला बना दिया है.

मुसीबतों से मजबूती मिलती है और जिंदगी में ताजगी रहती है. सेनफ्रांसिस्को में कई बार अग्निकांड, भूकंप,लूटमार और आक्रमण हुए. एक के बाद एक आपदा आती ही रही, जिन्हें इस नगर ने झेला, मगर विचलित न हुआ. आज इस के चौड़े राजमार्गों पर गगनस्पर्शी प्रासाद इस की दृढ़ता, वैभव और शान का परिचय दे रहे हैं. नागरिकों पर भी इन घटनाओं का प्रभाव रहा है. इसलिए वे भी साहसी, उद्यमी और प्रसन्न हैं. यहां का वातावरण लंदन, लिवरपूल, हेग, हामबुर्ग और पेरिस से अधिक आकर्षक और सर्वथा भिन्न लगता है.

हमारा सब से पहला कार्यक्रम कैंजर प्रतिष्ठान देखने का था. हिम्मतसिंहका, भुवालका और मैं---तीनों वहां गए. कार्यालय आकलैंड में ३२ मंजिल के विशाल भवन में है. लेकिन वहां हमें बहुत ही थोड़े कर्मचारी काम करते दिखाई पड़े. मिस्टर कैंजर उस दिन कहीं बाहर गए थे इसलिए हम उन के सीनियर वाइस प्रेसिडेंट से मिले. उन्होंने हमारा सहर्ष स्वागत किया और जलपान कराया.

कारखाने की स्थापना के अवसर पर उन्हें यहां के ग्राम्य अंचलों को देखने का भी मौका मिला था.

दूसरे दिन निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कैंजर प्रतिष्ठान के मिस्टर विलियम की कार से हम घूमने निकले. उन्होंने हमें आकलेंड, सेनफ्रांसिस्को का उद्योग–क्षेत्र बड़ी अच्छी तरह समझाते हुए दिखाया. यों तो यहां प्रायः सभी प्रकार के उद्योग हैं, कलकारखाने भी बहुत हैं. कलकत्ते, बंबई, कानपुर या हमारे देश के अन्य बड़े शहरों की तरह कारखाने आवासक्षेत्र में नहीं बल्कि शहर से हट कर हैं. यहां के प्रमुख उद्योगों में पेट्रोल रिफाइनिंग, सूखे फल, डब्बे बंद सब्जियां, फल और मांस, रोटी-बिस्कुट, टिन और उस के डब्बे, लोहेइस्पात, रंगरोगन, प्रेस और प्रेस मशीन, शराब तथा जहाज निर्माण उल्लेखनीय हैं.

इस के बाद हम ने प्रमुख शिक्षण केंद्रों को देखा. शिल्पोद्योग का केंद्र और प्रचुर साधन उपलब्ध होने के कारण यहां नाना प्रकार की शिक्षण संस्थाएं हैं. आधुनिक ज्ञानविज्ञान के अध्ययन के लिए कलकत्ता, बंबई, बनारस और दिल्ली की तरह यह महानगर अमरीका में प्रसिद्ध है. यहां के कालिज सेनफ्रांसिस्को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं, जिन में कई मेडिकल कालिज, ला कालिज और अध्यापकों के कालिज हैं. शहर के शोरगुल और भीड़ से दूर सागर तट पर बर्कले हिल्स की गोद में सेनफ्रांसिस्को का विश्वविद्यालय अत्यंत मनोहर परिवेश में है. महामना मालवीयजी के काशी हिंदू विश्वविद्यालय में गोधूलि के बाद जैसा शांत और सौम्य वातावरण यहां मिला. माइनिंग के शिक्षण और अपने पुस्तकालय के ग्रंथ संग्रह के लिए यह विश्वविद्यालय बेजोड़ समझा जाता है. यहां का स्टेडियम भी कम आकर्षण नहीं रखता. प्राचीन रोमन परंपरा का आधुनिकीकरण इस की वास्तुकला में बड़ी सफलता से किया गया है. स्टेडियम में लगभग ७२,००० लोग आसानी से बैठ सकते हैं. कार्यक्रम खत्म होने पर दसबारह मिनट में ही स्टेडियम खाली हो सकता है. अंतरराष्ट्रीय महानगर होने के कारण विश्वविद्यालय में विदेशों के छात्र भी अच्छी संख्या में हैं.

इसी प्रकार आकलेंड की पहाड़ी पर मिल्स कालिज है. यहां केवल महिलाएं विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करती हैं. पालोआल्टो में स्टानफोर्ड विश्वविद्यालय तथा आकलेंड के पास सेंट मेरी विश्वविद्यालय है. सेनफ्रांसिस्को का गोल्डन गेट ब्रिज विश्वविख्यात है. आकलेंड से सेनफ्रांसिस्को को यह पुल जोड़ता है. लगभग ४,२०० फीट लंबा है. इसी के नीचे से बड़े-बड़े जहाज गुजरते हैं. पुल के ऊपर से शहर बड़ा सुंदर और सजीला लगता है.

शहर में आवागमन के अच्छे साधन हैं फिर भी पुराने ढंग की ट्रामों को चलती देख हमें आश्चर्य हुआ. हमारे यहां इन्हें बंबई और दिल्ली से हटा दिया गया लेकिन यहां के नागरिक अपनी पुरानी ट्रामों की बड़े शौक से सवारी करते हैं. पर्यटक तो इन में बैठ कर शहर घूमना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि इस प्रकार वे नगर का काफी हिस्सा कम खर्च में आसानी से देख पाते हैं. हमें बताया गया कि संसार में सब से पहले ट्राम यहीं चली थी. अतएव पुरानी होने पर भी इन्हें वे 'सुवेनियर' के बतौर कायम रखना चाहते हैं.

हम घूमते हुए चीनी महल्ले में पहुंचे. यह यहां का चाइना टाउन है.
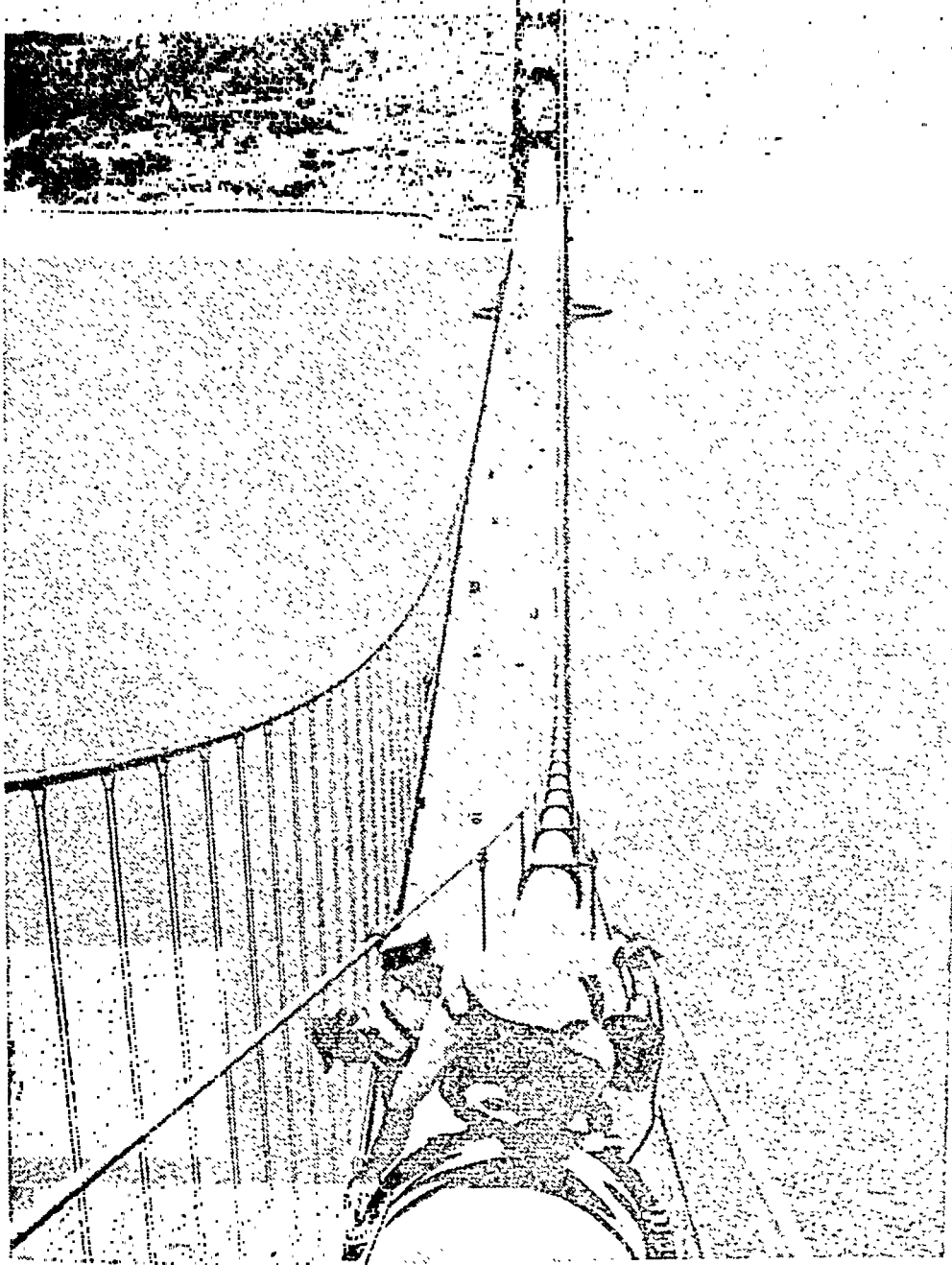
सेनफ्रांसिस्को की खाड़ी और पृष्ठभूमि को जोड़ता हुआ गोल्डन गेट ब्रिज

कलकत्ते के चाइना टाउन से कहीं अधिक बसा हुआ और साफ है. इन के अपने स्कूल, चर्च, दुकानें, रेस्तरां और होटल हैं. चीनी ढंग के भोजन और मनोरंजन में रुचि रखने वाले लोग यहां आते हैं. पूछने पर पता चला कि पीढ़ी दर पीढ़ी ये यहां बस गए हैं. अब चीन से इस का कोई संबंध नहीं. यह भी पता चला कि मादाम सूंग जो तायवान के मार्शल च्यांग काइर शेक की पत्नी हैं, यहीं की हैं. लगभग १५० वर्ष पहले जब सेनफ्रांसिस्को में यूरोपियन बसना प्रारंभ कर रहे थे, इन चीनियों के पूर्वज खेतीमजदूरी के लिए ठेके पर लाए गए थे. शुरू के दिनों में इन की पुरानी आदत और संस्कार के अनुसार जुए, अफीम

तस्कर व्यापार, मारपीट की वारदातें इन महल्लों में होती रहती थी. पर अब तो ये घटनाएं नहीं के बराबर हैं. अच्छे डाक्टर, होटलों के मालिक, व्यापारी और शिक्षक इन में से हैं. कलकत्ता और यहां के चीनियों में अंतर लगा. यहां के चीनी अमरीकी राष्ट्र और समाज के अंग जिस रूप में बन गए हैं, हमारे यहां के उतने नहीं बन पाए हैं. कलकत्ता के चीनी न हिंदी अच्छी तरह बोल पाते हैं और न बंगला ही. वे स्थानीय जीवन और समाज से अलग से रहते हैं.

अमरीकी जनसंख्या में नीग्रो लोगों का अनुपात अच्छाखासा है. सेनफ्रांसिस्को में भी ये काफी संख्या में हैं. इन का महल्ला अलग ही है. पूर्वी लंदन के स्लम्स सा अथवा बहुत कुछ कलकत्ते के वेलेजली अंचल से इन के महल्ले लगे. इन के जीवन स्तर और सामाजिक दशा के अपेक्षाकृत अंतर के संबंध में हम ने अपने मित्र मिस्टर विलियम से प्रश्न किया. उन्होंने बताया कि ये भी हमारी ही तरह अमरीकी हैं. गुलामी प्रथा के अनुसार तीनचार सदी तक अमरीका के विभिन्न प्रदेशों से नीग्रो आते रहे. उन्हीं की ये संतान हैं. गुलामी प्रथा का दमन और अंत हमारे यहां इस शताब्दी के आरंभ तक कर दिया गया था. हम चाहते हैं कि ये हमारी ही तरह उन्नत हों. फिर भी ऐसा हो नहीं पा रहा है. संस्कारगत इन की प्रवृत्तियां कुछ विचित्र और रूखी हैं. आपस में लड़नाझगड़ना तो मामूली बात है. बलात्कार की इन की प्रवृत्ति ही इन्हें हमारे समाज से दूर रखती है. किसी भी गोरी महिला को हम अकेले इन के साथ निरापद नहीं समझते.

लौस ऐंजेल्स में हम ने सुना था कि कुछ चोटी की अमरीकी अभिनेत्रियां अपने साथी के रूप में बलिष्ठ नीग्रो रखती हैं. शराब के नशे में वे कभीकभी इन्हें पीटते भी हैं फिर भी इन का साथ वे नहीं छोड़तीं. लाखों रुपए वर्ष में इन की सुखसुविधा के लिए खर्च करती हैं. अमरीकी नीग्रो में कई जातियां हैं. विशालकाय, बलिष्ठ और मोटेमोटे होंठों के नीग्रो को देखने पर एक प्रकार का आतंक सा अनुभव हो उठता है. आम तौर से अमरीकी नीग्रो का रंग अफ्रीका के नीग्रो से काफी हलका होता है. इन में कई तो ऐसे भी होते हैं कि लगता है कि भारत के हैं.

तीसरे दिन सेनफ्रांसिस्को के इंडियन ट्रेड कौंसिल में हम गए. बहुत दिनों बाद हमारे देश के विभिन्न समाचारपत्र यहां देखने को मिले. ट्रेड कौंसिल हमारे देश के वाणिज्यव्यापार के हित एवं संवर्धन के निमित्त विदेशों के बड़ेबड़े व्यापार केंद्रों में स्थापित किये गये हैं. यहां के कौंसिल ने हमें समुद्रतट के एक प्रसिद्ध रेस्तरां में लंच दिया. रेस्तरां एक बड़े बोट पर था. बातचीत के सिलसिले में भारतीय निर्यात की अमरीका में स्थिति और भारत के प्रति अमरीकी सरकार के रुख इत्यादि की चर्चा हुई. इस में कोई संदेह नहीं कि हम शिल्पोद्योग में अभी अमरीका से वर्षों पीछे हैं. फिर भी यहां के बाजारों में हमारी दस्तकारी की काफी इज्जत और मांग है. इसलिए हमारी चीजों के लिए अच्छा बाजार है लेकिन जो शिकायत हम ने अन्य स्थानों में सुनी वही यहां भी कि हम स्तर ठीक नहीं रखते, पैकिंग भी हमारा दोषपूर्ण होता है जिस से माल खराब हो जाते हैं या टूट जाते हैं.

लंच में हमारे सामने जब कतरे फलों के साथ उबले अंडे को दो फांकों पर
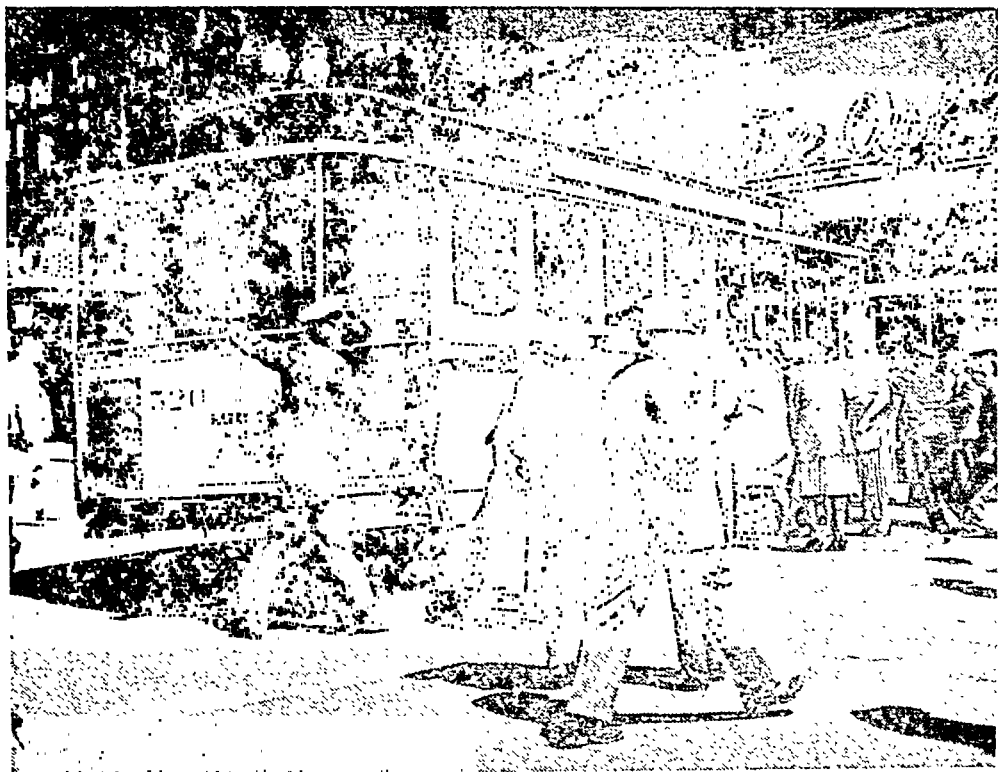
सेनफ्रांसिस्को की 'सुवेनियर' ट्राम को घुमाते हुए यात्री व चालक

सजा कर पेश किया गया तो भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजी ने अर्थभरी दृष्टि से देखा. मैं स्वयं ही इसी संकट में था कि कैसे बताऊं कि अंडे के स्पर्श से ही ये सुस्वाद सब्जी अब हमारे लिए ग्रहणीय नहीं रही. ऐसी ही एक घटना पेरिस में हुई थी. उस की याद आ गई. मैं ने हंसते हुए कहा कि अब हमारे जयपुर के सरकारी दूध वितरण केंद्रों में भी निरामिष अंडे मिल रहे हैं लेकिन हम तीनों अभी तक उस स्तर के निरामिष भोजी नहीं हो पाए हैं. पश्चिम में अंडे को दूध के स्तर का निरामिष समझते हैं. सही है, लेकिन अभी तक हम इस बात को नहीं अपना सके हैं. मेरी अटपटी सी बात पर सब हंस पड़े और हमारे लिए दूसरी सब्जियां फौरन मंगाई गई.

भारतीय व्यापार सचिव से हम ने स्थानीय भारतीय प्रवासियों के बारे में जानकारी प्राप्त की. इस शताब्दी के शुरू में पंजाब से कुछ सिख पश्चिमी अमरीका में कनाडा तथा कैलिफोर्निया के अंचल में आ कर बस गए थे. बढ़ईगीरी और खेती के मजदूरों के काम ये करते रहे और अपने मितव्ययी स्वभाव और मेहनत के कारण इन के पास कुछ पूंजी भी जमा हो गई. अब तो इन में से कई संपन्न और धनाढ्य हैं. कितनों के पास तो सैकड़ों एकड़ जमीन है, जहां यांत्रिक खेती होती है. बच्चे और इन की संतान अब अमरीकी नागरिक हैं. इन्हीं प्रवासियों में एक तो अमरीकी सीनेट में भी है. लेकिन अब भारतीयों के आगमन पर पहले जैसी छूट नहीं है. उन के लिए एक कोटे के अनुसार नए आने वालों की संख्या निश्चित कर दी गई है. आम तौर से वैवाहिक संबंध इन में आपस में ही होते

शिकागो

मोटर की तरह दौड़ता मोटर सिटी

लौस एंजेल्स और सेनफ्रांसिस्को के अनुभव ने स्पष्ट कर दिया था कि अमरीका वास्तव में नई दुनिया है. प्राच्य, मध्यपूर्व अथवा पाश्चात्य देशों की तरह अमरीका में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और गहराई नहीं के बराबर है. इतिहास यहां बन रहा है, संस्कृति पनप रही है, साहित्य मंज रहा है. अमरीका इन तीनों की एक विशाल प्रयोगशाला है. आने वाला समय इस के बारे में बता सकेगा. अभी कुछ कहना या निर्णय पर पहुंचना कठिन है.

इसी भावना से मैंने अमरीका को देखा. वैसे हमारी इस यात्रा का उद्देश्य था, वहां के औद्योगिक विकास का अध्ययन. हमारा वायुयान तेजी से पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ रहा था. प्लेन में बैठा मैं अमरीका का साहित्य पढ़ रहा था. तेल, अल्युमीनियम और सिने उद्योग में अग्रणी कैलिफोर्निया की यांत्रिक व्यवस्था के सिवा केमिकल उद्योग में बढ़ाचढ़ा नियाग्रा, डेट्रियोट मोटर निर्माण में माहिर, वाशिंगटन विश्व की राजनीति का संचालक, न्यूयार्क विश्व की शांति और सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के रूप में राष्ट्रों की सम्मिलित चेष्टा का केन्द्र और शिकागो? शिकागो सभी प्रकार के उद्योगव्यापार के लिए प्रसिद्ध है. वैसे अंडे, मांस, गल्ले और पशुओं की तो विश्व में सब से बड़ी मंडी है.

हम यहां के ओडहियर हवाई अड्डे पर उतरे. हमारे लिए तो लौस ऐंजेल्स और सेनफ्रांसिस्को के मकान ही काफी ऊंचे थे. यहां तो कुछ और ही नजारा नजर आया. ऐसा लगा कि मानो ऊंचाई की होड़ लगा कर मकान बनाए गए हैं. सड़कों पर गाड़ियां इतनी बेशुमार हैं कि समय बचाने के लिए लोग आमतौर पर हेलीकाप्टर से एयर पोर्ट पर आतेजाते हैं.

शिकागो में हमारे व्यावसायिक संबंध थे. इसलिये ठहरने की और घूमने की अच्छी व्यवस्था हो गई. हम तीनों साथी कोनार्ड हिल्टन होटल में ठहरे. यह विश्व का सब से बड़ा होटल है. होटल क्या है, एक अच्छाखासा शहर कहिए. हमारे यहां के अशोक, ग्रांड, ग्रेट ईस्टर्न की इस से तुलना ही नहीं की जा सकती. १७ मंजिलों का विशाल और प्रशस्त प्रासाद, प्रत्येक मंजिल पर दो सौ कक्ष. कुल मिला कर तीन हजार कमरे और कक्ष हैं जिन में सुखसुविधा के सभी साधन सहज उपलब्ध थे. कहीं दावतें हो रही हैं, तो कहीं देशविदेशों की एक नहीं अनेक कांग्रेसें चल रही हैं. फिर भी व्यवस्था और प्रबंध में कहीं भी शिथिलता नहीं. हम ने देखा

शिकागो शहर का एक विहंगम दृश्य

कि अस्थि विशेषज्ञों की एक कांफ्रेंस चल रही है. विभिन्न देशों के चिकित्सक आमंत्रित थे. उन का विषय हमारी समझ के बाहर था लेकिन उन की लगाई गई प्रदर्शनी ने हमें अवश्य आकृष्ट किया. कृत्रिम हाथपैर और अंगुलियां लगा कर विकलांग मनुष्य को काफी हद तक सुविधा हो जाती है. 'पंगु गिरि लंघे' आश्चर्य की बात नहीं लगती.

साधारण व्यक्ति के लिए हमारा होटल एक प्रकार से आधुनिक भूलभुलैया ही था. अलगअलग हिस्सों के लिए अलगअलग लिफ्टें थीं. मैं एक बार यों ही कौतूहलवश एक लिफ्ट पर चढ़ गया. पड़ गया चक्कर में. कहीं दूसरी ओर ही जा पहुंचा. वहां से काफी देर बाद अपने कमरे में आ सका. परेशानी की हालत में चंद्रकांता उपन्यास के अय्यारी महलों की याद आ गई.

यों तो पाश्चात्य में होटल व्यवसाय काफी उन्नत है लेकिन अमरीका में इसे चरमोन्नत कहना अत्युक्ति नहीं होगा. यहां होटलों में विभिन्न प्रकार की दुकानें हैं. हजामत बना लीजिए, हमाम में गुसल कर लीजिए, चाहें तो बैले, सिनेमा देख लीजिए, नाचने की इच्छा हो तो नाच लीजिए. नभ, जल, थल किसी भी यात्रा के लिए टिकटें मिल जाएंगी. विश्व के किसी भी कोने से टेलीफोन से बात कर लीजिए. सारी सुविधाएं हैं. रेडियो तो पुरानी बात है, टेलीविजन हर कमरे में उपलब्ध है. अगर कुछ चाहिए तो अंगुली से बटन छू दीजिए, पल भर में आप की ख्वाहिश पूरी.

शहर घूमने निकला. मकानों की ऊंचाई इतनी है कि देखने से गरदन

दुखने लगेगी. बीसपचीस मंजिलों के मकान तो यहां आमतौर पर हैं ही. पचाससाठ मंजिल के भी कुछ हैं. हम ने पूछा कि आखिर यह ऊंचाई की होड़ क्यों? उत्तर मिला कि शहर में विस्तार की गुंजाइश कम है. जमीन की कीमत बहुत है. आवादी तेजी से बढ़ रही है. उस अनुपात में आवास की आवश्यकता है. इसी लिए आसमान की ओर बढ़ने के सिवा दूसरा रास्ता नहीं है. मैं ने मन ही मन सोचा कि यही रोग तो हमारे कलकत्ते को लगा है और शौकिया छूत दिल्ली को भी.

हम ने मिशिगन एवेन्यू पर पायोनियर भवन को बनते देखा. १७ करोड़ रुपए की लागत से बन रहा था. काम इतनी तेजी से चल रहा था कि देख कर दंग रह जाना पड़ा. सोचने लगा कि अमरीकन जीवन में गति का महत्त्व बहुत है. यूनाइटेड अमरीका और प्रुडेंशियल विल्डिंग को देखने के बाद हम मेरीना सिटी नाम के दो भवनों को देखने गए. ६५ मंजिलों के इन वृत्ताकार भवनों में प्रत्येक मंजिल पर मोटरों के लिए गैरेजें भी बनी हैं. आप ने ६५ वीं मंजिल पर अपने कमरे से घंटी वजाई, गाड़ी आप के कक्ष के सामने हाजिर. आप बैठ जाइए, गाड़ी लिफ्ट से सड़क पर आ जाएगी और इसी प्रकार ऊपर भी चली जाएगी. सच मानिए अमरीका तंत्र मंत्र नहीं, यंत्र का बड़ा भक्त है.

राह चलते हुए मैं ने देखा कि कहींकहीं किसी भवन में गाड़ियों का आवागमन वहुत अधिक हो रहा है. कारण पूछने पर पता चला कि शहर में पंदरहबीस मंजिलों के गैरेज न हों तो सड़कों पर गाड़ियों के पार्किंग के लिए जगह कहां मिलेगी? कलकत्ते में भी मुझे एक भरी दोपहर में क्लाईवस्ट्रीट में पार्किंग के लिए कई फेरे लगाने पड़े थे. फिर यह तो अमरीका का प्रसिद्ध नगर शिकागो है!

शहर में कोई खास पुरानी चीज नहीं देखेंगे. एक पानी की टंकी जरूर देखी जो ९० वर्ष पहले पूरे शहर को पानी देने के लिए बनाई गई थी. उस समय से शिकागो की आवादी कितनी तेजी से वढ़ी है, इस का अनुमान इस टंकी के आकार को देखने से लग जाता है.

शिकागो, मिशिगन झील की देन है, क्योंकि इसी के कारण यहां कृषि का अच्छा विकास हुआ. फलस्वरूप पशुपालन का व्यवसाय बढ़ चला. आज तो शिकागो गल्ले, मांस, मुर्गी और अंडों के व्यवसाय का विश्व में सब से बड़ा केंद्र है. अमरीका में सब से बड़े और सब से आगे बढ़ने की होड़ है. यहां के हाईकोर्ट ने एक मुकदमे में एक कंपनी पर १४ करोड़ रुपया जुर्माना किया था. जो अब तक की जुर्माने की राशि में सब से अधिक मानी जाती है. सारी रकम की अदायगी समय पर कर दी गई! इस बात का भी शिकागो वाले बड़प्पन के साथ उल्लेख करते हैं.

होनोलूलू की तरह यहां भी विभिन्न जातियों का अपूर्व मिश्रण हुआ है. स्पेन, पुर्तगाल, इंगलैंड, फ्रांस, इटली, जरमनी, यहां तक कि रूस से भी लोग व्यवसाय के लिए शिकागो में आ कर बस गए. आज यहां का नागरिक अपने में योरोप की किस जाति का रक्त कितने अंश में है, यह शायद ही बता पाएगा.

एक ऐसा भी जमाना शिकागो का था जब कि उस की शोहरत अपराध के केंद्र के रूप में थी. दिनदहाड़े राहजनी, खूनखराबी, जुए और नशाखोरी के
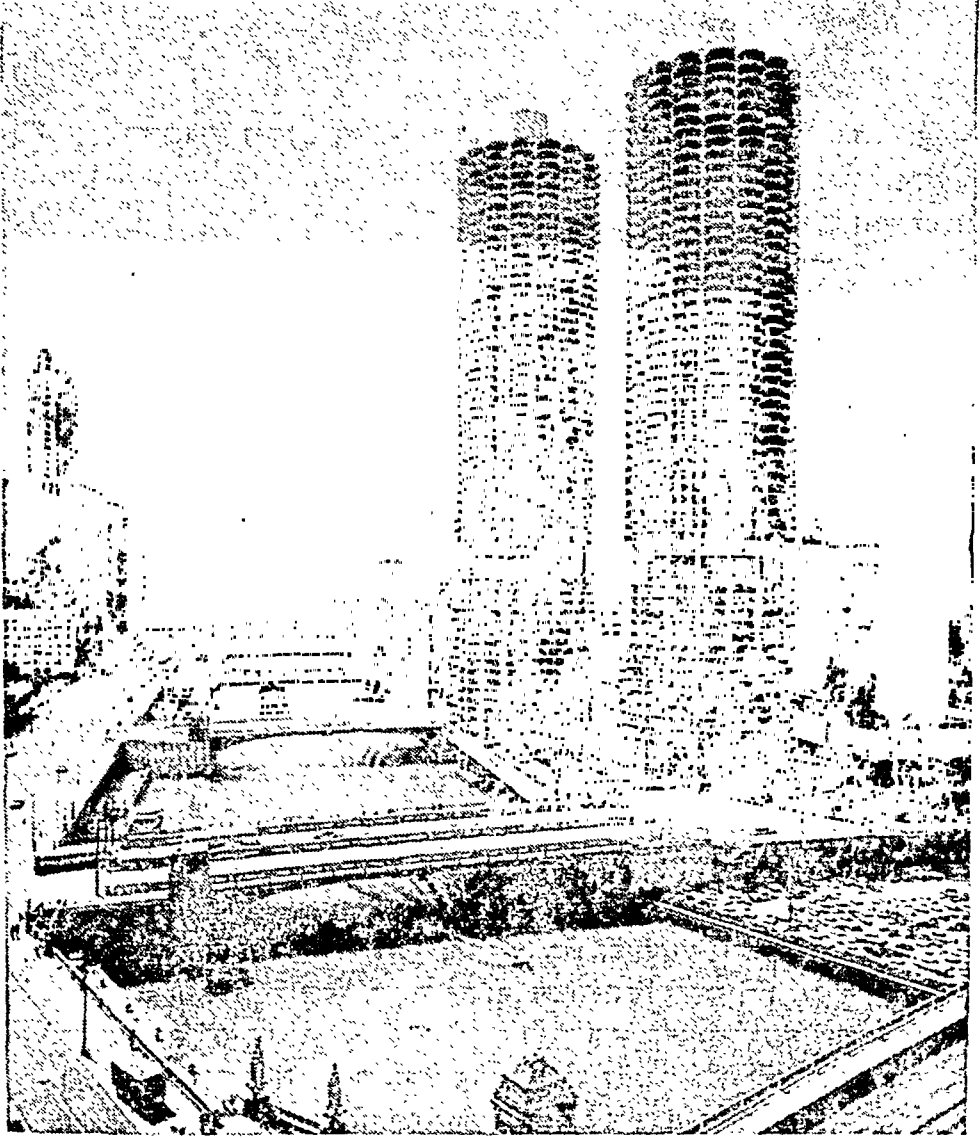
आकाश को छूने वाली ये इमारतें शिकागो की उन्नति की कहानी कहती प्रतीत होती हैं

डर से शिकागो के बहुत से महल्लों में भला आदमी जाने का साहस नहीं करता था. लेकिन वह सब अतीत की बातें हैं. आज वे दृश्य केवल सिनेमा में देखने में आते हैं या किताबों में.

नीग्रो बस्ती यहां भी हैं. शायद समस्या भी उतनी ही जटिल है जितनी कि कैलिफोर्निया में. बल्कि इस अंचल के नीग्रो जहां अधिक जागृत लगे वहां उग्र भी. इन के अलग महल्ले हैं और रात्रि में आमतौर पर गोरे लोग खासतौर से औरतें, वहां नहीं जातीं.

कच्चे माल की सहज उपलब्धि शिकागो के औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि रही है. सस्ती मजदूरी पर नीग्रो श्रम भी प्रचुर मात्रा में यहां मिलता रहा है. इस के अलावा मिशिगन झील के कारण देशविदेश के विभिन्न अंचलों से माल के आवागमन में सुविधा रही है. आज यहां प्रायः सभी प्रकार के कलकारखाने हैं. इन में से कई का उत्पादन तो हमारे देश के संपूर्ण उत्पादन से कहीं अधिक

हैं. यहां की एमस्टडन नाम की फर्म का अकेले का जितना उत्पादन इस्पात ढलाई में है, उस का आधा भी सारे भारतवर्ष में नहीं होता. इस ढंग के विभिन्न वस्तुओं के कारखाने यहां एक नहीं अनेक हैं.

अब तक हम ने भारत में, पाश्चात्य देशों में, जापान में जो म्यूजियम देखे थे उन से यहां के भिन्न लगे. नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम और इंडस्ट्री एंड साइंस म्यूजियम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम जीव के विकास-क्रम पर है. आदि काल से अब तक विभिन्न प्रकार के जीव अपनेअपने समय के वातावरण में कैसे रहते थे, वे किस प्रकार के थे, इन सबों के माडल बड़े ही स्वाभाविक ढंग से बना कर दिखाए गए हैं. प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय, दैत्याकार, दिनोसरों की प्राप्त अस्थियों पर मूल आकारप्रकार में उन के माडल जहां आकर्षक और भयानक हैं वहां ज्ञानवर्धन के लिए अत्यंत सहायक भी.

उद्योग विज्ञान संग्रहालय भी अन्य देशों से भिन्न देखा. कोयले की खान कैसी होती है, उस से कोयला कैसे निकलता है, जानने के लिए दर्शक को बनाई गई खान में उतार कर भूगर्भ में ले जाते हैं. आल्पस की चोटियों के वायुमंडल का दबाव और वहां के शीत का अनुभव कागजों और माडलों से नहीं, स्वयं कर लीजिए. मोटर, रेल और हवाई जहाज कैसे चलाए जाते हैं यह आप को उन में बैठा कर समझाया जाता है. इसी प्रकार सागर के गर्भ में रहने वाले यूबोट के कलपुरजों का परिचय प्राप्त कीजिए और राकेट के सिद्धांत का भी. अमरीका में गाइड बहुत महंगे हैं, यहां के गाइड मशीन होते हैं. आप को जो बातें जाननी हों, उन के लिए निर्देशक बटन दबा दीजिए. मशीन सारी बातें समझा देगी.

टोकियो में हम ने डिपार्टमेंटल स्टोर देखा था. मेरा अनुमान था कि यहां भी बहुत कुछ उसी ढंग के होंगे या उन से कुछ बड़े. लेकिन यहां तो सब कुछ कल्पनातीत है. हम 'मार्शल फील्ड' स्टोर देखने गए. तीन सड़कों तक इस का विस्तार है. इन का दावा है कि सूई से ले कर हाथी तक इन के यहां मिल सकता है. अनगिनत प्रकार की वस्तुएं विभागशः काउंटरों पर सजी हैं. सचमुच, पशुपक्षी भी हैं. मुझे यहां हाथी नहीं दिखा. उस समय तो मैं पूछना भूल गया मगर मेरा विश्वास है कि दुकान पर भले ही हाथी न हो पर इस की उपलब्धि की व्यवस्था जरूर होगी. केवल पशुपक्षी विभाग में बेचने वाले थे, शेष अन्य विभागों में शायद ही कोई हो. कई मंजिलों का स्टोर, करोड़ों का माल, जो जी में आए उठाते चलो और झोले में डालते चलो. दाम सब का लिखा है. दरवाजे पर आ कर झोला रख दीजिए. दाम देख कर मशीन पर अपनेआप जोड़ लग कर बिल बन जाएंगे.

इस का मतलब यह नहीं कि अमरीका में चोरी या अपराध नहीं हैं. चोरियां होती हैं. छोटी नहीं, बहुत बड़ी. जेब नहीं कटती, बैंकों पर डाके पड़ते हैं, थप्पड़ मार कर घड़ी या गले की सिकड़ी नहीं छीनते बल्कि किसी करोड़पति के लड़के को छिपा कर मांबाप से बड़ी रकम ऐंठते हैं. स्टोर देख कर निकलते समय मुझे अपने यहां के एक मित्र की याद आ गई जिन्होंने कलकत्ते में इसी ढंग का एक स्टोर खोला था. कुछ ही दिनों बाद बड़ा नुकसान उठा कर उसे बंद कर देना पड़ा. क्योंकि ज्यादातर माल बिना दाम दिए ही लोग ले गए.

हर प्रकार की सुख सुविधा का सामान एक मजदूर के घर में भी देखा जा सकता है

मैं सोचने लगा कि हमारी संस्कृति प्राचीन है और त्यागप्रधान भी. अमरीकी संस्कृति आधुनिक और भोगप्रधान है. फिर क्या कारण है कि हमारा नैतिक स्तर उन के मुकाबले में काफी नीचा है. मुझे लगा कि इस की जड़ में अभाव, गरीबी और अशिक्षा प्रधान रूप से है. आज राष्ट्र को एक बार फिर से आर्थिक दशा और शिक्षा पर सोचने की जरूरत है.

शिकागो विश्व में मांस का सब से बड़ा बाजार है. यहां का कसाईखाना बेजोड़ है. कतार की कतार में खड़े किए हजारों पशुओं के सिर बटन दबाते ही अलग हो जाते हैं. यह दैनिक क्रम कम से कम पिछले ५०-६० वर्षों से चला आ रहा है. फिर भी पशु वहां घटते नहीं, बढ़ते ही जा रहे हैं. वहां पुष्ट, स्वस्थ और मांसल गाएं मनों दूध देती हैं. और हमारे यहां मातृवत पूज्या गायों की कैसी दशा है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है.

मैं वहां के व्यापारिक संबंध के फर्म के बड़े साहब से मिलने गया. बड़े प्रेमपूर्वक मिले. शहर से २५ मील दूर रहते थे इसलिए उन के भोजन का निमंत्रण स्वीकार न कर सका लेकिन कारखाना देखना मंजूर कर लिया. अगले दिन दो बजे उन के आफिस में मिला, वह प्रतीक्षा कर रहे थे. सचिव को बुला कर उन्होंने आवश्यक निर्देश दिए और कहा कि वे दिन भर के लिए बाहर जा रहे हैं, दूसरे दिन आएंगे. अमरीकन बड़े बेतकल्लुफ होते हैं इसलिए उन से मिलने पर संकोच या झिझक नहीं रहती. हम दोनों आधे मील चल कर हर्टज गैरेज में गए और एक बड़ी कार ली. बातचीत में मुझे यह जान कर बड़ा ताज्जुब हुआ कि इतनी बड़ी फर्म के मालिक प्रतिदिन घर से २५ मील शिकागो का सफर रेल से करते हैं. मिस्टर लेगो ने बताया कि सड़कों पर गाड़ियों की भीड़ के कारण देर बहुत लगती है, दूसरे, शहर में पार्किंग की जगह नहीं मिलती. विश्व के संपन्न उद्योगपति साधारण क्लर्कों के साथ ट्रेन में रोज मुसाफिरी करने में संकोच नहीं

करते. हमारे यहां के उद्योगपतियों के लिए यह एक अच्छा दृष्टांत है.

जब हम कारखाने पहुंचे तो उस समय चार बज चुके थे. पहली पाली के मजदूर जा रहे थे. मैं ने लक्ष्य किया कि साफसुथरे इस्तरी किए हुए कपड़े, तरोताजा शकलें, स्वास्थ्य और मौज का वातावरण. मजदूर अपनीअपनी कारों पर बैठे हुए 'हैलो, लेगी,' 'ओ, हाउ,' इत्यादि अभिनंदन करते हुए बेफिक्री से जा रहे थे. पहले तो गाड़ियों की कतार देख कर मैं ने सोचा था कि कोई कांफ्रेंस समाप्त हुई है और प्रतिनिधि अपनीअपनी कारों में वापस जा रहे हैं. मुझे आश्चर्य हुआ कि मिस्टर लेगी के इतने दोस्त उन के आते ही केवल 'हैलो लेगी' कह कर चले गए. मैंने उन से कहा, "आप बड़े खुश किस्मत हैं, आप के इतने सारे दोस्त हैं. पर वे शायद जल्दी में हैं." उन्होंने उत्तर दिया, "हां, भाई, बात यह है कि दिन भर कारखाने में काम करने के बाद दोस्तों को घर की दोस्ती भी तो निभानी पड़ती है."

बात समझ में आ गई. कारखाने के अंदर गया. अभी भी कुछ मजदूर फव्वारों के नीचे नहा रहे थे. कुछ नहाधो कर काफी पी रहे थे. यहां भी 'हैलो लेगी' का जोर. मिस्टर लेगी भी कभी किसी से हैलो कह देते या मुसकरा कर आगे बढ़ जाते.

मैं यह सारे नजारे देख कर हैरत में था कि 'वसुधैव कुटुंबकम्' का मंत्रोच्चारण करने वाले हमारे देश के उद्योगपति और सरकारी अफसर अपने कारखानों के मजदूरों को तथा आफिसों के क्लर्कों को कुटुंबी का पद देना तो दूर रहा, उन के साथ थोड़ी सी सहानुभूति का भी बरताव करने लगें तो बड़ी बात होगी. आए-दिन की हड़तालें और तोड़फोड़ कम हो कर देश में उत्पादन की वृद्धि हो जाए.

कारखाने के मैनेजर ने मजदूरों के विषय में जानकारी दी कि वे प्रति दिन आठ घंटे और सप्ताह में पांच दिन काम करते हैं. प्रति घंटे की मजदूरी कम से कम दस रुपए और दक्षता के अनुसार २२ रुपए तक है. यानी कम से कम २००० रुपए से ले कर ४००० रुपए तक प्रति मजदूर की प्रति मास की आय है. प्रायः सब के पास अपना मकान, कार और टेलीविजन है. पतिपत्नी दोनों काम करते हैं. पति कारखाने का मजदूर है तो पत्नी आफिस क्लर्क, टाइपिस्ट या स्कूल में अध्यापिका है. परिवार नियोजन के महत्त्व को ये समझते हैं इसलिए बच्चे बहुत कम हैं. यही कारण है कि स्वास्थ्य उन का अच्छा है.

सब कुछ देख रहा था और सुन रहा था. मेरा मन बारबार अपने देश के कारखानों और कोयले की खानों में काम करने वाले पीले चेहरों को देख रहा था. मैले चिथड़ों में लिपटे बीमार बच्चों को छाती से चिपटाए हुए, टूटे छप्पर के नीचे बैठी हुई शकलें भी सामने आ जाती थीं.

उसी शाम को मिस्टर लेगी ने हमें शिकागो के प्रसिद्ध पामर्स हाउस रेस्तरां में डिनर का निमंत्रण दे रखा था. पामर्स हाउस शिकागो का सब से महंगा रेस्तरां है. एक बार के भोजन में कम से कम तीनचार घंटे लग जाते हैं और चार्ज भी सत्तरअस्सी रुपए प्रति व्यक्ति, क्योंकि भोजन के साथ चोटी के कलाकारों के नृत्य, संगीत, वाद्य आदि के कार्यक्रम चलते रहते हैं. मुझे उन के गानेबजाने में कोई विशेष आनंद नहीं आया पर बैले की भावमुद्राएं अच्छी तरह समझ

सका——पाश्चात्य के अन्य देशों की तरह वही निराश प्रेमियों का नृत्य या फिर मिलन नृत्य.

इन देशों में बड़ीबड़ी राजनीतिक या व्यापारिक उलझी समस्याएं भोजन की टेबलों पर खातेपीते सुलझा ली जाती हैं. शायद हमारे लिए पहले से ही निरामिष भोजन की तैयारी के लिए सूचित कर दिया गया था. इसलिए, हमारे सामने भांतिभांति की मिठाइयों, फलों और आइसक्रीम की तश्तरियां रखी जाने लगीं. खाने का ढेर सा सामान जब आने लगा तो श्री हिम्मतसिंहका ने धीरे से मिस्टर लेगी से कहा, "इन्हें बहुत कम करा दीजिए." उन्होंने मुसकरा कर कहा, "जितना चाहें, खा लें बाकी को नष्ट कर दिया जाएगा. आधिक्य हमारी समस्या है." मैं ने कहा, "एक ओर तो आप करोड़ों मन गल्ला और रुई जला देते हैं. दूसरी ओर इन के बिना बहुत से लोग भूखे और नंगे हैं. फिर क्यों नहीं आप यह बचा हुआ सामान उन देशों को दे देते हैं?"

मिस्टर लेगी कुछ संजीदगी से कहने लगे, "वैसे तो अमरीका प्रायः सभी अभावग्रस्त देशों को किसी न किसी रूप में सहायता या उधार देता रहता है पर इस के साथ ही हमारा एक कटु अनुभव भी हमें कुछ सोचने के लिए वाध्य कर देता है. जब भी हम ने किसी देश को बहुत ज्यादा दिया कि वह हमारे विरोधी विचार वालों के हाथ में चला गया. जैसे चीन, इंडोनेशिया और वर्मा आदि. हमारे देश में इस की प्रतिक्रिया हुई. इसलिए हमारी सरकार को जनता तथा समाचार-पत्रों की राय को मान कर ही चलना पड़ता है. विश्व के वाजार का संतुलन रखने के लिए बची हुई चीजों को कभीकभी नष्ट कर देना पड़ता है."

राजनीति या अर्थशास्त्र के आज के सिद्धांतों के आधार पर संभव है उन की बातें सही हों, पर मुझे जंची नहीं. क्योंकि चिरकाल से अपने धर्मग्रंथों और संतों की वाणी में पढ़ता आ रहा हूं कि मानवता की सेवा ही सव से बड़ा धर्म है. 'सर्वेन सुखिनः संतु, सर्वे संतु निरामया' आदि. रात्रि के १२ वज चुके थे, नींद आ रही थी. इसलिए ज्यादा बहस में न पड़ कर होटल को रवाना हुए.

नियाग्रा

मानव के पौरुष को चुनौती?

अमरीका क्षेत्रफल में भारत से तिगुना बड़ा है, जब कि जनसंख्या में ४० प्रति शत. इस के विपरीत वहां का औद्योगिक उत्पादन हमारे यहां से बहुत ज्यादा है, इसलिए वहां मजदूर बहुत महंगे हैं और ज्यादातर काम मशीनों द्वारा होता है. शिकागो के एक कारखाने में हम ने देखा कि एक बड़ेबड़े हाथों वाली मशीन छोटीबड़ी चीजों को चुन कर के अलगअलग रख रही थी. सुदक्ष कारीगरों से गलती होनी संभव है, पर इन मशीनों से नहीं. रेलवे, थियेटर और सिनेमा के टिकट बेचना, अगर आप के पास खुले पैसे नहीं हैं तो बाकी चेंज वापस देना आदि सब काम मशीनों के ही जिम्मे हैं.

शिकागो विश्व का प्रसिद्ध औद्योगिक शहर है और इसे देखने को बहुत समय चाहिए था. परंतु ५० दिनों में पृथ्वी प्रदिक्षण करने के संकल्प से हम रवाना हुए थे इसलिए तीन दिनों में जो कुछ भी संभव था, सरसरी तौर पर देख लिया. वहां के गगनचुंबी भवन, हजारों कारखानों की हुंकार और जनजीवन की व्यस्तता से हम प्रभावित तो बहुत हुए लेकिन मन अब और कहीं चलने को मचल रहा था.

नियाग्रा प्रपात का नाम बहुत दिनों से सुन रखा था. कई बार रांची के गौतमधारा और शिलांग के एलीफेंटा झरनों के नीचे स्नान भी कर चुका था. सुना था कि नियाग्रा इन सब से बड़ा है, इसलिए मन में उत्सुकता थी कि उस के नीचे स्नान करने में शायद और भी ज्यादा आनंद आता होगा. वहां जाने का प्रोग्राम पहले से बना हुआ था ही और बफैलो में रासायनिक कारखानों और स्टील प्लांट देखने का भी.

शिकागो से हवाई जहाज द्वारा हम बफैलो पहुंचे. वहां कारखानों को देखा, उन की उत्पादन क्षमता और कार्यप्रणाली के बारे में आवश्यक जानकारी ली. वहां के अधिकांश कारखाने नियाग्रा से प्राप्त की गई सस्ती बिजली से चलते हैं. उन में से कई कारखानों का उत्पादन तो हमारे देश के कुल उत्पादन से भी ज्यादा है.

हम एक खाद के कारखाने में गए. वहां महाकाय मशीनें तो बहुत सी थीं, पर मजदूर बहुत कम दिखाई दिए. हमें लगा कि शायद कारखाना बंद है और सफाई आदि हो रही है. पूछने पर पता चला कि कारखाना पूरी क्षमता से चालू है और आधुनिकतम यंत्रों से सुसज्जित है. वहां २,००,००,००,००० रुपए का वार्षिक उत्पादन होने पर भी मजदूर सिर्फ २,२०० ही हैं. हमारे यहां इतने बड़े कारखाने

में बीसपचीस हजार मजदूर से कम नहीं होते, इसी लिए वहां मजदूरों को ज्यादा मजदूरी दी जाती है. वैसे वहां भी मजदूरी भिन्नभिन्न उद्योगों में कमज्यादा है, रासायनिक और लोहे के कारखानों में दूसरों की अपेक्षा अधिक है. जिस कारखाने में हम गए थे वहां न्यूनतम ३,००० रुपए और अधिकतम ४,५०० रुपए वेतन २२ दिनों के काम पर था. आठ घंटे प्रति दिन से ज्यादा या शनिवार के काम पर वहां मजदूरों को दोगुनी मजदूरी देनी पड़ती है. हाल में दो वर्षों में मजदूरी की दरों में दस से १५ प्रति शत की वृद्धि और हो गई है.

बफैलो वैसे एक आधुनिक शहर है लेकिन शहर घूमने की हम लोगों की कोई इच्छा नहीं थी. दरअसल बफैलो का खास महत्त्व बहुत अंशों में नियाग्रा के कारण ही है. प्रपात यहां से केवल ११ मील की दूरी पर है. साधारणतः व्यस्त पर्यटक बफैलो में ही ठहरते हैं. हवाई जहाज से आए, कार से नियाग्रा पहुंचे, शाम तक प्रपात देखा, रात को लौटे और हवाई जहाज से दूसरे दिन वापस. हम नियाग्रा को इस तूफानी तरीके से नहीं देखना चाहते थे. हमें पता चला कि नियाग्रा में रहने के लिए अच्छे होटल हैं. यात्रियों के लिए उन में सुखसुविधा की व्यवस्था भी है. अतः हम तीनों साथियों ने वहीं ठहरने का निश्चय किया.

कार द्वारा नियाग्रा के लिए हम रवाना हो गए. पास पहुंचने पर प्रपात का गर्जन स्पष्ट होता जा रहा था. सागर और प्रपात की आवाज में अंतर होता है. सागर के घोष में एक प्रकार का ताल और स्वर सा रहता है, जिस में उतार और चढ़ाव होता है, लेकिन प्रपात मानों अनवरत हर... हर... हर... के रव से वंदना करता हुआ सा लगता है.

प्रपात के पास ही हम लोग एक होटल में ठहर गए. हम ने सामान रखा और हलकी काफी पी. शाम हो चुकी थी. दिन भर की थकान के बाद हम विश्राम भी चाहते थे. पर शिकारी और पर्यटक दोनों का नशा अजीब होता है. उन्हें चैन और आराम कहां? थोड़ी देर बाद ही हम होटल से बाहर निकल पड़े. बाहर की ताजी हवा ने हमारी थकान मिटा दी. हम टहलते हुए पुल पर पहुंचे. प्रपात यहां से करीब दोतीन फर्लांग की दूरी पर है. प्रथम दर्शन ने ही हमें वहां विमुग्ध और आत्मविभोर कर दिया. एक समतल छोटे गहरे गर्त में पठार से अपार जलराशि नीचे गिर रही थी. जल के अगणित सूक्ष्म कण हवा में उड़ कर कुहासे की सृष्टि कर रहे थे. रात के अंधकार में बिजली का प्रकाश सतरंगी इंद्रधनुष बना रहा था.

देशविदेश घूमता रहा हूं. धरती की मुसकान, प्रकृति का विविध शृंगार भारत, यूरोप और अफ्रीका में देखने का संयोग मुझे कई बार मिला. विभिन्न देशों के भ्रमण में मैं ने यह भी लक्ष्य किया कि मनुष्य की चेष्टा चिरकाल से नैसर्गिक वैभव से होड़ लेने की रही है. भारत का ताज, मिस्र के पिरामिड, पेरिस का लूव्रे, वरसाई और लेनिनग्राद के राजप्रासाद, वेटिकन में पोप की राजधानी, न्यूयार्क में मनहटन के गगनचुंबी भवन—ये सभी मनुष्य के ज्ञानविज्ञान के विकास के पुष्ट प्रमाण हैं. फिर भी ये वैभव नैसर्गिक सौंदर्य की तुलना में अत्यंत नगण्य हैं.

ध्रुवांचल में मध्य रात्रि का सूर्य और अमरनाथ के पथ पर शेषनाग में

के ब्रह्मा, विष्णु, महेश नामक हिमालय के हिमशिखरों की तरह नियाग्रा को दे
कर मनुष्य प्रकृति की शोभा और शक्ति का साक्षात परिचय पाता है. मुझे या
आती है एक घटना :

अमरनाथ के रास्ते में शेषनाग में ११,००० फुट की ऊंचाई पर कड़ा
की सर्दी भूल कर हिमशिखरों को मंत्रमुग्ध की तरह बहुत रात हो जाने पर भ
मैं देखता ही रह गया था. ऐसा लगता था कि हिमालय के वे धवल पुत्र मुझे जादू
सम्मोहित कर के अपने पास बुला रहे हैं. इसी प्रकार नार्वे में मध्य रात्रि के सूर्य क
देख कर चकित सा रह गया था कि परम रहस्यमय प्रकृति की कैसी माया है वि
प्रचंड मार्तंड प्रखर किरणें न बिखेर कर पूनम का चांद बन कर मुसकरा रहा है
मैं सोचने लगा था कि उसे दिवाकर कहूं, निशाकर कहूं या प्रभाकर.

नियाग्रा प्रपात का अपना बेजोड़ आकर्षण है. सैलानी और पर्यटक व
भर यहां आते रहते हैं. इसी कारण नियाग्रा में काफी भीड़ रहती है
ऊंचाई से गिरती हुई अजस्र जलधारा मानव के समर्थ पौरुष को चुनौती देती जा
पड़ती है. सैकड़ों व्यक्तियों ने मौत की परवा न कर के प्रपात की जलधारा के
साथ ऊंचाई से कूदने का दुस्साहस किया है.

यह कहना गलत होगा कि ऐसे प्रयासों के पीछे शत प्रति शत नाम कमाने की
भावना ही रही होगी. पाश्चात्य लोगों में इस प्रकार की धुन के अगणित उदाहरण
देखने में आते हैं. हिमालय के दुर्गम शिखरों पर चढ़ना, आल्प्स की बर्फानी चोटियों
को लांघ जाना और सहारा की आग उगलती मरुभूमि को पैदल ही पार करने
के ऐसे अनेक दृष्टांत हैं. हमारे यहां पांडवों के महाप्रस्थान और अशोक की
पुत्री संघमित्रा की धर्मयात्रा मनुष्य की आंतरिक सात्त्विक प्रवृत्ति और साहस के
उदाहरण हैं.

नियाग्रा प्रपात अपने ही नाम की नदी से बना है. यह नदी कुछ ही दूरी पर
३२५ फुट नीचे आ जाती है. इसलिए जहां झरना है वहां अत्यंत वेग से नीचे
गिरती है. नियाग्रा की विशेषता उस की ऊंचाई नहीं है, क्योंकि इस से भी अधिक
ऊंचाई से गिरने वाले प्रपातों की संख्या विश्व में बहुत है. इस की विशेषता तो
इस के विस्तार, दीर्घता और जल के घनत्व में है. अनुमान है कि अमरीका की ओर
६०,००,००० गैलन प्रति मिनट और कनाडा की ओर ११,५०,००,००० गैलन
प्रति मिनट पानी गिरता है—यानी एक घंटे में ८०,००,००,००० मन पानी!

नियाग्रा के इस प्रपात की शक्ति को व्यर्थ नहीं जाने दिया गया है. इस से
बिजली पैदा कर के आसपास के अंचल के नाना प्रकार के उद्योगधंधों को
चलाया जाता है. इस प्रकार रासायनिक, इस्पात, अल्युमिनियम, कपड़े, मशीनरी आदि
के करीब १,४०० कलकारखाने इस प्रपात की शक्ति से चलते हैं. इन कारखानों
में २,५०,००० से अधिक व्यक्ति काम करते हैं.

अमरीका ही नहीं, सभी पाश्चात्य देशों का एक ही लक्ष्य है कि उन की
सुरम्यस्थली या महत्त्वपूर्ण स्थानों पर अधिक से अधिक सैलानी और पर्यटक भ्रमण
के लिए आएं. इसलिए वहां यात्रियों की सुखसुविधा और स्थान को ज्यादा से ज्यादा
आकर्षक बनाने का ध्यान रखा जाता है. नियाग्रा को भी यात्रियों के लिए पूरे तौर
पर सजाया गया है. रात में विभिन्न रंगों के प्रकाश से झरने की सुंदरता में चार

स्थली है. मधुमय दांपत्य जीवन की कामना से मधुयामिनी (हनीमून) बिताने के लिए सैकड़ों युगल प्रेमालाप करते यहां नजर आते हैं. उन की उद्दाम लालसायुक्त गरम निश्वासों को नियाग्रा अपने प्रपात के जलकण बिखेर कर रंगीन शीतलता देता रहता है.

नियाग्रा नदी की धार झरने के नीचे बड़ी तेज है और वहां खतरा भी जबर्दस्त है, फिर भी लोग उस के पास जाते हैं. उन की साहसिक अभिलाषा की पूर्ति के लिए यहां दो शक्तिशाली मोटरबोट हैं जिन का नाम 'कुहासे की किन्नरी' है. ये किन्नरियां यात्रियों को बड़ी सफाई से झरने के पास तक ले जाती हैं. ऊंचाई से करोड़ों मन पानी मोटी धारों में गिरता है और असंख्य जलकण हवा में कुहासे की तरह बिखर जाते हैं.

यात्रियों के लिए यहां एक और भी आकर्षण है: दो बड़ीबड़ी लिफ्टें उन्हें झरने के नीचे के उस भाग में ले जाती हैं जहां से वे अपने ही ऊपर से झरने की अपार जलराशि को गिरता हुआ देखते हैं. हम भी पांच रुपए प्रति व्यक्ति का शुल्क दे कर, मोटे रबर के वस्त्र पहन कर लिफ्ट से नीचे गए.

यह देख कर ताज्जुब होता है कि कितनी जोखिम ले कर उस स्थान को बनाया गया है. ऊपर और अगलबगल पानी की तेज अनवरत धाराएं मोटे शीशे की दीवार पर पड़ती रहती हैं. यात्री उसी के बीच से मायामयी प्रकृति के इंद्रजाल से अभिभूत हो उठते हैं.

हमें बताया गया कि पिछले १२० वर्षों में कई प्रकार की साजसज्जा से लैस हो कर अनेक व्यक्तियों ने झरने की ऊंचाई से कूदने का दुस्साहस किया है. कोई लोहे के ड्रम में बैठ कर कूदा तो कोई मोटे रबर के थैले में या कार्क की बनी पेटी में. इन में बहुतों की जानें गईं, हाथपैर टूटने की बात तो साधारण सी है. नियाग्रा के म्यूजियम में इन के चित्र और सामान को देख कर विचार उठा कि जानबूझ कर मौत से खेलना एक सनक है या दुस्साहस!

एक घटना हम ने यहां भी सुनी कि एक सात वर्ष का लड़का नियाग्रा नदी में पांचछः मील ऊपर एक छोटी सी नाव में जा रहा था. अचानक तेज धार की चपेट में आ गया. उस ने लाख हाथपैर पटके मगर धार से नाव निकल न पाई. नियाग्रा के दोनों किनारों पर खड़े हजारों लोगों की आंखों के सामने तीर की तरह सनसनाती हुई उस की नाव प्रपात के किनारे की ओर बढ़ी. अगले ही क्षण में लोगों ने देखा कि किश्ती पानी की धारा के साथ नीचे गिरी. बचाने का उपाय भी क्या था? लेकिन लोगों ने देखा कि लड़का सहीसलामत झरने के दायरे से बाहर नदी की धार में अपनी नाव पर बैठा है. कोई युक्तिसंगत तर्क इस रहस्य को आज तक सुलझा नहीं पाया है.

एक फ्रांसीसी मोशिए फ्लांडिन के बारे में सुना कि उन्होंने सन १८६० में नियाग्रा के दोनों किनारों पर मोटे तार का रस्सा बांध कर हाथ में एक लंबी लग्गी लिए उस तार पर चल कर प्रपात को पार किया. पहली सफलता से उत्साहित हो कर दूसरी बार वह फिर कंधे पर अपने मैनेजर को बैठा कर नियाग्रा पार हुए.

गाइड से इन घटनाओं को सुन कर मैं ने प्रश्न किया "इस प्रकार के दुस्साहसिक कृत्यों में मृत्यु निश्चित जान कर भी जान पर खेल जाना क्या अर्थ रखता है?"
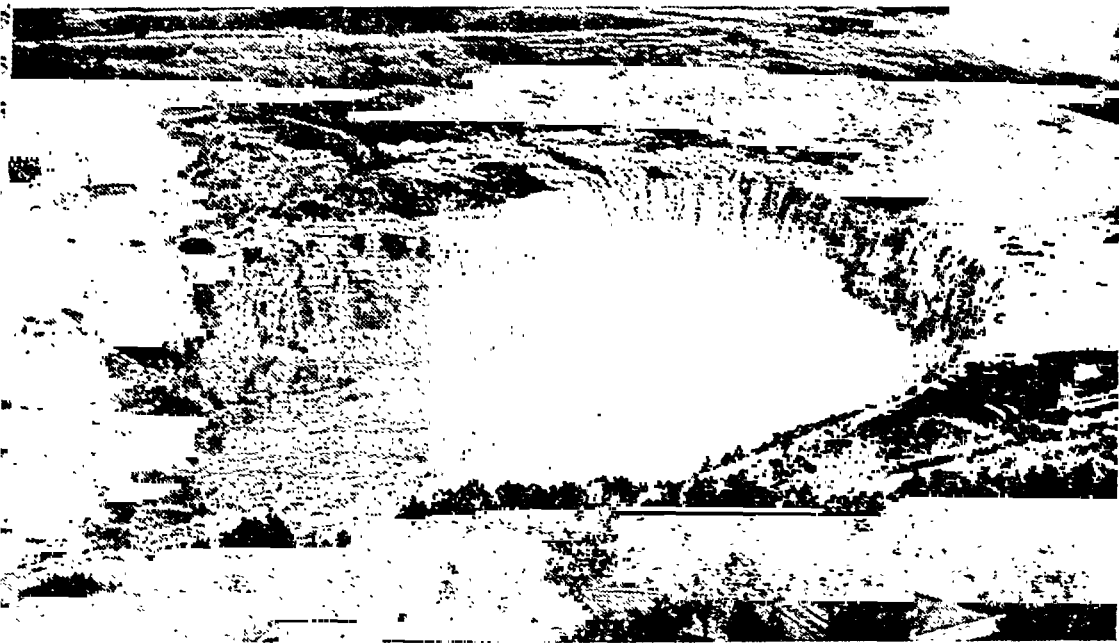
नियाग्रा से गिरने वाले पानी की तेज धारा से कड़ी चट्टान ३० फुट घिस गई है

गाइड बोला, "जनाब, मृत्यु ध्रुव है और सत्य है, फिर क्यों न यश पा कर ही दुनिया से विदा हों."

मुझे चित्तौड़ के गोरा और बादल की याद आ गई. वे भी तो केसरिया बाना पहन कर शत्रुओं की तूफानी लहरों में मौत के साथ खेलने ही गए थे. हाड़ी रानी की भी मुझे याद आ गई, जिस ने विवाह के दिन ही अपने पति चूड़ावत सरदार को शीश की भेंट दे कर रणक्षेत्र में मृत्यु वरण के लिए भेज दिया था.

हम दिन भर खूब घूमे, शाम को काफी थक चुके थे इसलिए सीधे होटल लौटे. मैं भोजन के बाद विश्राम करना चाहता था. बिस्तर पर जाने की तैयारी ही थी कि प्रभुदयालजी ने कहा, "चलिए, कुहासे की किन्नरियां हमें बुला रही हैं . . . कल तो जाना ही है इसलिए आज जीभर इन का सान्निध्य प्राप्त कर लें." हम होटल से निकले और प्रपात के पास एक बाग में जा बैठे. सतरंगी रोशनी पानी से खेलती हुई इंद्रधनुष सजा रही थी, ऊपर आकाश में तारे मुसकरा रहे थे.

एकाएक मैं ने नजर घुमाई तो जरा झेंप सा गया. लंदन के हाइड पार्क, होनोलूलू के समुद्री किनारे या वेनिस के गोंदोलो का नजारा बाग में जगहजगह पर था. प्रथम पहर बीतने पर होटल लौटते समय ऐसा लगा जैसे सचमुच नियाग्रा मुझे 'हर . . . हर. . .हर. . .' कह कर फिर से बुला रहा है.

वाशिंगटन

अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र

अंगरेजी में एक कहावत है कि 'सभी सड़कें रोम को जाती हैं.' रोमन साम्राज्य की प्रसिद्धि से सभी परिचित हैं. यूरोप, अफ्रीका और अरब पर उन का शासन सदियों तक रहा. साहित्य, कला, राजनीति और यहां तक कि इन देशों की संस्कृति पर भी रोमन प्रभाव पड़ा है. साम्राज्य का केंद्र था रोम. यहां सभी को आना ही पड़ता था. इसी संदर्भ में उक्त कहावत चल पड़ी.

जमाना करवटें बदलता है. रोम से पहले बेबीलोन, मिस्र और भारतीय साम्राज्य और सभ्यता के उत्कर्ष इतिहास के पृष्ठों में पढ़ने में आते हैं और देखने में आते हैं खंडहरों में. अभी पिछले महायुद्ध तक विश्व की राजनीति का संचालन लंदन से होता था. अब वह स्थान अमरीका का है.

आज विश्व राजनीति के सूत्र लंदन, पेरिस या बर्लिन के हाथों में नहीं, मास्को और वाशिंगटन के हाथों में हैं. वास्तव में अब संसार की राजनीति के ये दो सूत्रधार हैं.

सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में मेरी रुचि होने के कारण अमरीका के अभ्युदय को समझने की बहुत इच्छा थी. लास एंजेल्स और शिकागो में अमरीका के वैभव, उस के उन्नत शिल्पोद्योग और व्यापारिक संगठनों का अंदाज मिला. वहां के जनजीवन की विविध धाराओं का भी परिचय मिला. परंतु दिल्ली और कलकत्ता देखे बिना जैसे भारत की जानकारी अधूरी रह जाती है उसी तरह वाशिंगटन और न्यूयार्क के बिना अमरीका को जानना संभव नहीं.

नियाग्रा में हमें सूचना मिली कि हमारे राजदूत बी. के. नेहरू आवश्यक कार्य से दौरे पर जाने वाले हैं इसलिए उन्होंने पहले हमें वाशिंगटन बुलाया है. अतएव न्यूयार्क के लिए रिजर्वेशन रद्द करा कर हम सीधे वाशिंगटन पहुंचे. दूतावास ने हमारे लिए होटल मेफ्लावर में आवास की व्यवस्था कर दी थी.

भारत यदि मंदिरों का देश और इटली व बेलजियम गिरजों का देश कहा जाता है तो अमरीका को होटलों का देश कहना चाहिये. वहां एक से एक बढ़ कर होटल और मोटल हैं, और अब तो टोटल भी हैं. भारत में होटल तो हैं पर मोटल और टोटल शायद ही हों. मोटल में यात्रियों के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था के अलावा मोटर रखने एवं उस की आवश्यक मरम्मत की
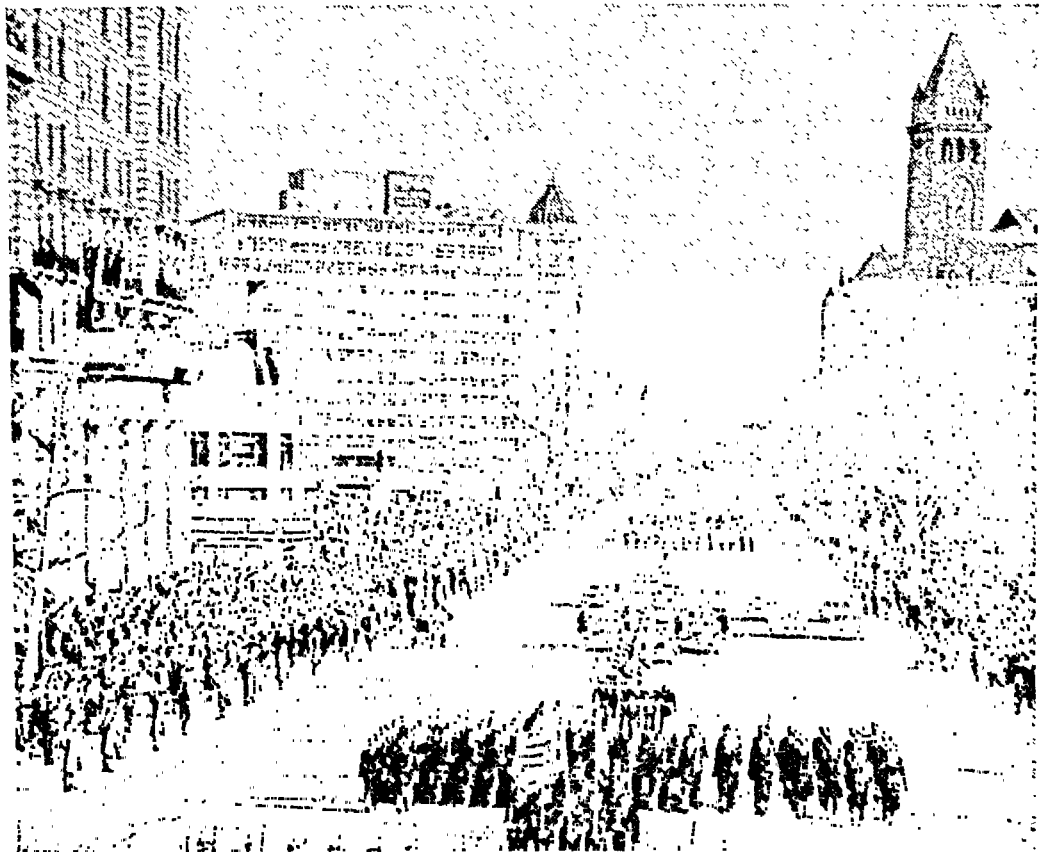
वारसाई की तरह चौड़ी व खुली सड़कें जिनका वैभव अनूठा है

भी सुविधा रहती है. आजकल मोटरों में पर्यटन करने वाले मोटलों में ही ठहरते हैं. टोटल एक नई व्यवस्था है. इन्हें चलताफिरता होटल कहना चाहिए. बड़े-बड़े ट्रेलर शक्तिशाली मोटरों से जुड़े रहते हैं. इन में खाने, पीने, सोने की व्यवस्था रहती है. अच्छे सुसज्जित बाथरूम भी इन में होते हैं. सफर का सफर, रहने का रहना, साथ ही समय और खर्च में बचत. लोगों ने इसे खूब पसंद किया है.

अमरीकी होटलों और रेस्तरांओं में विदेशियों को भाषा के कारण कठिनाई नहीं होती. अधिकांश कर्मचारी द्विभाषी होते हैं. मैनेजर और क्लर्क वगैरह तो चार या पांच भाषाएं आसानी से बोल लेते हैं. फ्रेंच, इटालियन, स्पेनिश, जरमन, रूसी इत्यादि किसी भी यूरोपीय भाषाभाषी को वहां दिक्कत नहीं होती. एशियाई भाषाओं में अरबी, तुर्की और जापानी भाषाओं को जानने वाले भी मिल जाते हैं. हिंदी या अन्य भारतीय भाषा की जानकारी शायद ही किसी को हो. यह उन की उपेक्षा नहीं बल्कि हमारी कमजोरी है, क्योंकि विदेशों में हम आपस में भी अंगरेजी बोलते हैं. यही नहीं, स्वदेश में भी हिंदी जानने वाले आपसी व्यवहार में, सफर में या संसद में अंगरेजी में ही बोलना पसंद करते हैं. नतीजा यह होता है कि विश्व की एक बड़ी और इतने बड़े देश की राजभाषा होते हुए भी हिंदी का महत्त्व बाहर वाले नहीं समझते और इसी लिए मानते नहीं.

होटलों के संचालकों में आपस में होड़ सी रहती है कि कौन कितनी सुविधा यात्रियों को देता है. जहां किसी होटल या मोटल की लोकप्रियता बढ़ी कि फौरन पता कराते हैं कि इस के पीछे कारण क्या है. इस के बाद वे भी अपने प्रतिष्ठानों

को उन से भी अधिक सुविधाजनक और सुसज्जित करने में प्रयत्नशील हो जाते हैं. वहां खर्च की तो किसी को परवाह ही नहीं है.

जिस समय हम होटल में पहुंचे, रात के दस बज चुके थे. सामान रख कर खिड़की के पास खड़े हो कर देखा, दूर दिखाई दे रहे गुंबदों पर चांदनी फिसल रही है. वाशिंगटन की सड़कें बिजली की रंगबिरंगी रोशनी में नहा रही हैं. कुबेरों का देश है अमरीका. यहां की हर रात दीवाली की रात है.

वाशिंगटन के प्रति तरह-तरह की कल्पनाएं और भावनाएं मेरे घुमक्कड़ मन में थीं. सोचा, 'इस समय के लिए निश्चित कार्यक्रम न भी हो, बारहएक बजे तक शहर घूम कर तो आ ही सकता हूं.' जल्दीजल्दी हाथमुंह धो कर हलकी चाय ली. प्रभुदयालजी कहते ही रह गए कि थकान बढ़ेगी, आराम करना चाहिए. मैं कोट ले कर कमरे के बाहर निकल पड़ा.

कमरे से निकल कर सब से पहले मैं ने अपने होटल का मुआयना किया. लास एंजेल्स से नियाग्रा तक हम जिन होटलों में ठहरे थे, उन से यह भिन्न था. इस की कलात्मक सजावट बेजोड़ मानी जाती है. अमरीका के कई राष्ट्रपति और राजनीतिज्ञ इस में ठहरते रहे हैं. विदेशों से आए कई सम्माननीय एवं उच्च पदस्थ राजन्य और राजनीतिज्ञों को अपने यहां ठहराने का गौरव मेफ्लावर को अनेक बार मिला है.

वाशिंगटन विस्तृत है और योजनानुसार बना है. फिर भी अमरीका के अन्य शहरों से भिन्न लगा. कई मंजिलों के ऊंचे मकान यहां हैं पर सेनफ्रांसिस्को और शिकागो की तरह आसमान को छूने की होड़ करने वाले नहीं. मौजमस्ती और तड़कभड़क भी उतनी नहीं दिखाई पड़ी. राजधानी होने के कारण यहां का मुख्य उद्योग है सरकार और शासन. फैक्टरी, मिल या व्यापार से वाशिंगटन का इतना ही सरोकार है कि उन के मालिक या प्रतिनिधि यहां अपनेअपने काम से आते रहते हैं. २०,००,००० की आबादी की इस महानगरी में ७,००,००० व्यक्ति ऐसे हैं जो स्थानीय सरकारी दफ्तरों में काम करते हैं. संसार के प्रायः सभी राष्ट्रों के दूतावास यहां हैं. प्रत्येक के अपनेअपने स्टाफ हैं. इस प्रकार विदेशियों की भी संख्या यहां कम नहीं है. इस के अलावा अमरीका के ५० प्रदेशों से निर्वाचित एवं मनोनीत संसद सदस्य तथा उन के सहकारी भी यहां रहते हैं. तात्पर्य यह है कि उद्योगव्यापार का वातावरण जैसा व्यस्त और भागदौड़ का बन जाता है, वाशिंगटन में वैसा देखने में नहीं आया.

भूख लगी थी. एक रेस्त्रां में गया, दूधरोटी ली. इतालियन रेस्त्रां था. दो लड़कियां चुटकी बजाबजा कर गा रही थीं और झुक कर पास बैठे लोगों के कानों तक स्वर खींच कर हट जाती थीं. कभीकभी थोड़ी देर के लिए दर्शकों की गोद में बैठ जाती थीं. सैक्सोफोन जोरजोर से बज रहा था. वहां अमरीकी अधिक थे, कुछ नीग्रो थे, इन के अलावा अन्य देशों के लोग भी. साज और आवाज का मजा लेते हुए लोग सिर हिला रहे थे. लेकिन गानाबजाना मेरी समझ में आ नहीं रहा था. बीचबीच में सामने बैठे अरब के एक शेख साहब को देख कर आनंद ले रहा था. लड़की कमर लचकाती हुई जिधरजिधर जाती थी, शेख साहब की

दाढ़ी की नोक चुंबक की सूई की तरह उधर ही घूम जाती थी. उन्हें देख कर मुझे जोश मलीहाबादी की एक कविता की पंक्तियां 'हिलने लगीं शयूख के सीने पै दाढ़ियां, नजरें नमाजियों की उसी ओर फिर गईं' याद आईं. लड़की लाल रंग का रूमाल हिलाती हुई शेख साहब के पास आई और दाढ़ी को दाएंबाएं हिला कर चूमने लगी. उन का शराब का गिलास उठा कर उस में से एक सिप ले कर शेख के मुंह से लगा दिया. जूठी शराब वह विभोर हो कर पीने लगे, जैसे बच्चा बोतल से दूध पीने लगता है. दूसरे लोगों के साथसाथ मुझे भी हंसी आ गई. पल भर में लड़की मेरे सामने हाजिर और गातेगाते सिसकारी भरते मेरे दूध के गिलास को उठा कर ऐसा कुछ कह गई कि सभी हंसने लगे.

बाहर निकला और बस पकड़ी. मेरा खयाल था कि यूरोप तथा अमरीका के अन्य शहरों की तरह यहां भी नाइट क्लब होंगे. पर वाशिंगटन में न नाइटक्लब हैं और न जुए के साथ कैबरे ही. एक खास बात यह भी देखने में आई कि अन्य आधुनिक शहरों की तरह लड़कियां या महिलाएं यहां रात में अकेली घूमती नहीं मिलीं. क़ारण बाद में मालूम हुआ कि आम तौर से रात को दस बजे तक लड़कियां अपने घरों में वापस आ जाती हैं. मन बहलाने के लिए टेलिविजन और पुस्तकें हैं. यहां का जीवन अमरीका के अन्य शहरों की अपेक्षा शिष्ट और संयत है.

बस से घूम कर शहर का जितना भी हिस्सा देखा, अच्छा लगा. फ्रांस के वरसाई की तरह यहां चौड़ी और सीधी सड़कें हैं, जो एक वृत्त के पास आ कर मिलती हैं और फिर वृत्त के चारों ओर सड़कें निकलती जाती हैं. नई दिल्ली का भी नक्शा कुछ इसी प्रकार है. यहां की सड़कों के बीच हरियाली की पट्टी है, जिन में फूलों की क्यारियां हैं. सड़कों के दोनों किनारों पर ऊंचे वृक्षों की कतारें हैं.

बस में मेरे बगल में एक नीग्रो बैठा था. मेरी आंखें खिड़की के बाहर भागते दृश्यों को पकड़ रही थीं. वह शायद समझ गया कि शहर घूमने निकला हूं. संजीदगी से उस ने पूछा, "कैसा लग रहा है?" मैं ने उत्तर दिया "अभी तो शुरू ही किया है." ढलती उमर के उस नीग्रो ने बताया कि अभी तो वाशिंगटन बन कर तैयार ही नहीं हो पाया है. नित्य नए मकान बन रहे हैं, पुराने गिराए जा रहे हैं. फिर उस ने पूछा, "आप भारत के हैं, या मिस्र के?"

मैं ने उत्तर दिया, "भारत का हूं." अपने प्रधान मंत्री के स्वास्थ्य के बारे में उस के प्रश्न से मुझे प्रतीत हुआ कि अमेरिकन नीग्रो भी गांधीजी और नेहरूजी से स्नेह रखते हैं.

हमारे होटल के करीब बस आ गई थी. घड़ी देखी, सवा १२ बज रहे थे. जल्दीजल्दी बस से उतर कर मैं कमरे में पहुंचा. देखा, प्रभुदयालजी जाग रहे थे. नई जगह और आधी रात हो गई थी, इसलिए उन को चिंता होनी स्वाभाविक ही थी. "परेशानी तो नहीं रही?" उन के स्नेह भरे शब्दों से मैं झेंप गया. इस के बाद विस्तर पर लेटते ही सो गया.

दूसरे दिन सुबह श्री बी. के. नेहरू ने हमें चायनाश्ते पर आमंत्रित किया था. श्री नेहरू का निवास बहुत ही करीने से सजा हुआ था. उन के बगीचे को

देख कर सुरुचि का परिचय मिलता है. नई दिल्ली की तरह अमरीका में भी दूतावासों को सुविधापूर्ण शर्तों पर काफी जमीनें वहां की सरकार द्वारा दी जाती हैं.

श्री नेहरू बड़ी ही आत्मीयता से मिले. भारत और अमरीका के उद्योगव्यापार और राजनीति के विभिन्न पहलुओं पर बातचीत हुई. वह अमरीका के अच्छे मित्रों में माने जाते हैं और उन की जानकारी भी काफी है. उन के व्यक्तिगत विचार थे कि हमारे यहां कुछ नेता और अखबारों को जिम्मेदारी की गहराई में जाना चाहिए और सोचसमझ कर अमरीका की आलोचना करनी चाहिए. खेद है कि ऐसा नहीं हो पा रहा है अन्यथा अन्य देशों की अपेक्षा हमें कहीं अधिक मदद अमरीका से मिल सकती है. अमरीकी सरकार और जनता दोनों भारत के प्रति स्नेह रखती हैं, पर हमारी अप्रासंगिक आलोचना से भ्रम फैलता है और उन की भावनाओं को ठेस पहुंचती है.

अमरीका में ड्राइवर, नौकर या रसोइया रखना बहुत ही महंगा पड़ता है. यही नहीं, हमारे यहां की तरह ३० दिन और १५ घंटे की ड्यूटी बजाने की तो वहां कोई कल्पना भी नहीं कर सकता. साधारण लोगों की बात ही क्या, अच्छे संपन्न व्यक्ति भी नौकर नहीं रखते. फिर भी दूतावासों को उन्हें रखना ही पड़ता है क्योंकि उन के यहां आए दिन मेहमान आते रहते हैं, जिन की आवभगत करनी पड़ती है. हमारे दूतावास में भी अमरीकन खानसामा और ड्राइवर थे लेकिन श्रीमती नेहरू ने स्नेहपूर्वक हमें स्वयं ही भारतीय नाश्ता कराया. हलवे के साथ मटर की कचौड़ियां बड़ी ही स्वादिष्ट बनी थीं. बहुत दिनों बाद इस ढंग की चीजें सामने आईं. मैं ने तो निस्संकोच तीसरी बार मांग कर खाया. मेरा विश्वास है कि खाने के मामले में तकल्लुफ बरत कर भूखा रहना किसी प्रकार से भी उचित नहीं है.

श्री नेहरू को अगले दिन वाशिंगटन से बाहर जाना था. अतएव हमारे लिए उन्होंने प्रयोजनीय व्यवस्था का निर्देश अपने सचिव को दे दिया. कम समय में शहर को अच्छे ढंग से देखने के लिए अपने सुझाव भी उन्होंने हमें बताए.

शहर देखने के लिए टूरिस्ट बसें हैं. इन के साथ अनुभवी गाइड रहते हैं. चीजों के समझने में आसानी रहती है और समय की बचत भी होती है.

वैसे टैक्सियां काफी हैं, पर उन का किराया बहुत अधिक है और ऊपर से उन पर टिप कितना लगेगा यह एक और समस्या है! टिप का अखंड एकाधिपत्य आप को यूरोप और अमरीका में मिलेगा. रेस्त्रां, होटल, टैक्सी जहां कहीं भी बिल चुकाया कि टिप साथ लगी रहती है. दस प्रति शत से २५ प्रति शत तक टिप लग जाता है. बिलों में टिप जोड़ दिया जाता है, फिर भी कुछ न कुछ अलग से और देना पड़ता है. हमारे देश में चूंकि टिप (बख्शीश) देना जरूरी नहीं है, इसलिए हमें अजीब सा लगता.

हम ने टूरिस्ट बस का टिकट खरीद लिया. गाइड को अपने विषय की अच्छी जानकारी थी और वह खुशमिजाज भी था. शहर के बारे में वह जानकारी देता जा रहा था. वाशिंगटन का निर्माण योजनानुसार हुआ है. उत्तर
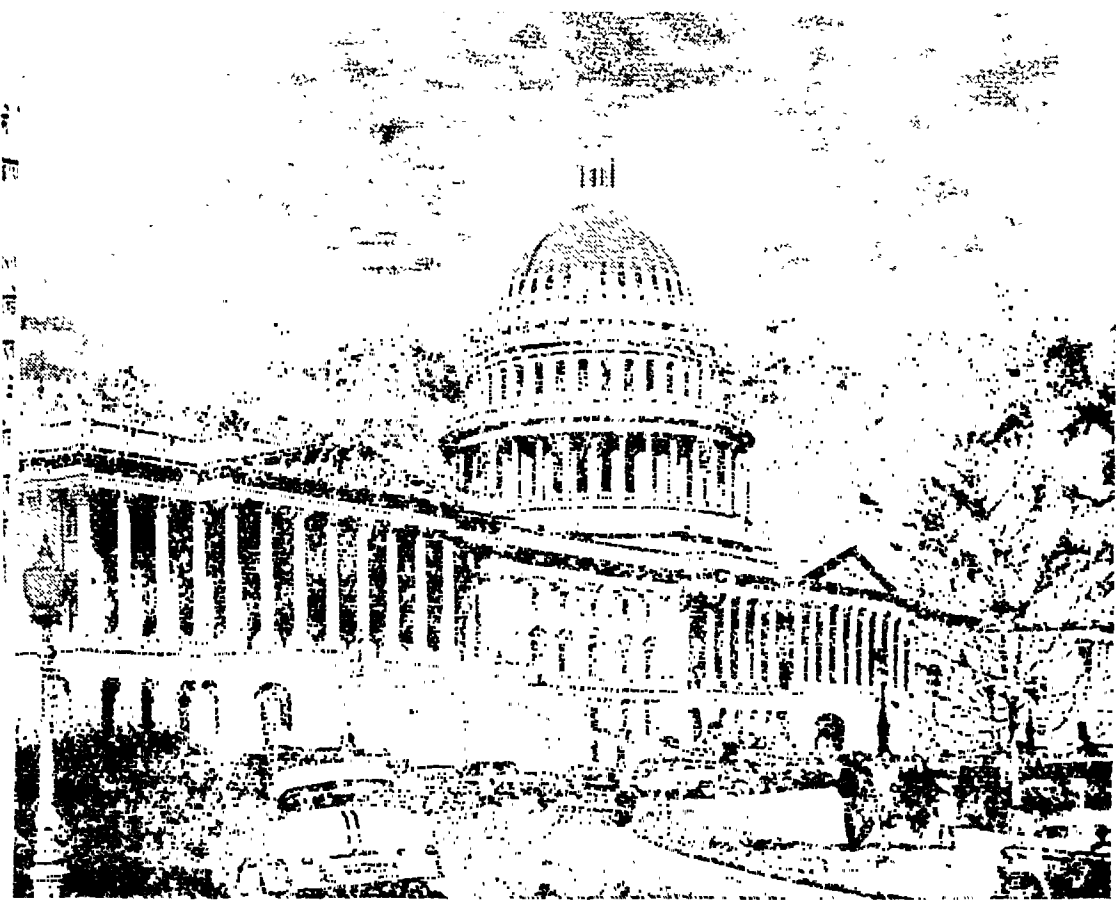
वाशिंगटन में अमरीकी कांग्रेस और सरकार का प्रधान कार्यालय

पश्चिम, दक्षिणपश्चिम, उत्तरपूर्व और दक्षिणपूर्व—ये चार अंचल हैं. सभी में सीधी चौड़ी सड़कें हैं. दिल्ली, रोम, एथेंस की तरह यहां प्राचीन खंडहर नहीं मिलेंगे. लंदन, पेरिस और वेनिस की तरह मध्ययुगीन अवशेष भी आप यहां नहीं पाएंगे. हंस कर उस ने कहा, "हम अतीत के वैभव और गौरव का दावा नहीं कर सकते, क्योंकि हमारा इतिहास ही लेदे कर कुल ३०० वर्ष का है. फिर भी हमारी करुण कहानी आप लाइब्रेरी आफ कांग्रेस में पढ़ सकते हैं या शहर की अगणित आर्ट गैलरियों और म्यूजियमों में देख सकते हैं."

हम जानते थे कि गाइड अपना पांडित्य प्रदर्शन करने में चूकते नहीं. सभी देशों में ऐसा होता है. ऐसा न हो तो पर्यटक ऊब जाएं और थकान भी महसूस करने लगें.

प्रसंग बदलने के खयाल से मैं ने पूछा, "वाशिंगटन को ही क्यों राजधानी के लिए चुना, जब कि बोस्टन, फिलाडेल्फिया न्यूयार्क आदि शहर इस से पहले ही बस गए थे. इन में से किसी को भी राजधानी बनाया जा सकता था?"

गाइड ने मुसकराते हुए कहा, "आप जानते हैं, पुरानी दुनिया को छोड़ कर हमारे पूर्वज नई दुनिया में नई जिंदगी की खोज में आए थे. इसलिए नया पन के प्रति हमारे स्वभाव में रुचि है. मगर इतिहास बताता है कि जब अमरीकन गणराज्य संगठित हो गया तो सभी शहर राजधानी के लिए अपनाअपना दावा पेश करने लगे. आपसी मतभेद न बढ़े, इस खयाल से प्रथम राष्ट्रपति जार्ज

वाशिंगटन ने सुझाव दिया कि राजधानी नई जगह बने. सब ने इसे मंजूर किया."

गाइड ने बताया कि आज से लगभग २०० वर्ष पहले यहां दलदल थी. जंगली घास की झाड़ियां और ऊबड़खाबड़ जमीन को देखकर कौन कल्पना कर सकता था कि विश्व की सब से बड़ी राजधानी इसी दलदली जमीन पर बनेगी.

मार्च १७९१ में प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने इस जगह शहर बसाने का काम प्रसिद्ध फ्रेंच वास्तुशिल्पी पीयरे को सौंपा. उस की देखरेख में शहर का एक हिस्सा बन गया. कुछ राजनीतिक कारणों से लोग उस से नाराज हो गए और बाकी काम पूरा करने का भार अमरीकन इंजीनियर एलकोट को दे दिया.

आज वाशिंगटन की बनावट दो प्रकार की देखने को मिलती है. मेजर पीयरे का हिस्सा वरसाई की तरह है, जिस में बागबगीचे, चौड़ी सड़कें और मध्ययुगीन यूरोपीय भवन हैं. जब कि एलकोट के वाशिंगटन में संसद भवन, कांग्रेस पुस्तकालय, उच्च न्यायालय और पेंटागन जैसी विशालकाय इमारतें हैं.

हम संसद भवन देखने गए. वास्तुशिल्प, सौंदर्य और सौष्ठव की दृष्टि से हमारे संसद भवन का अपना विशिष्ट स्थान है. लेकिन जहां तक विशालता का सवाल है, अमरीकी संसद विश्व में अद्वितीय है. ६० एकड़ के क्षेत्रफल में सुसज्जित उद्यान और कुंजों के बीच संसद भवन बड़ा ही शानदार लगता है. इस के विशाल गुंबद के ऊपर स्वतंत्रता की मूर्ति खड़ी है. गुंबद का वृत्त १३५ फुट और ऊंचाई २८५ फुट है.

अमरीकियों की भाषा अंगरेजी है. पर वे शब्दों में खींचखींच कर अनुनासिक स्वर लगा देते हैं और जल्दीजल्दी बोलते हैं, इसलिए दिक्कत हो जाती है. हमारे गाइड ने हमेशा इस बात का खयाल रखा कि वह अमरीकी अंगरेजी नहीं, सही अंगरेजी बोले.

उस ने संसद भवन के इतिहास की चर्चा करते हुए बताया कि यह स्थान एक पहाड़ी पर है और पास की पोटेमिक नदी से यहां की ऊंचाई लगभग १०० फुट है. मेरी ओर देखते हुए उस ने कहा, "सज्जनो, विश्व में ताजमहल बेजोड़ और लाजवाब है तो हमारा यह कैपिटल भी आज के युग में अद्वितीय है. उसे बनाया मुगल सम्राट शाहजहां ने अपनी प्रेयसी की स्मृति में तो इसे बनाया अमरीकी जनता ने स्वाधीनता और जनतंत्र की मर्यादा के लिए."

सभी यात्री मेरी ओर देखने लगे कि भारत का नाम आया है, शायद मैं कुछ बोलूं, पर मैं गाइड का मीठा व्यंग्य समझ गया. मैं ने कहा, "ताजमहल और कैपिटोल दोनों ही अपनीअपनी जगह महान हैं. वह है प्रेयसी के प्रति प्रेम का प्रतीक और यह है जनमानस की राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति. भावना दोनों में है, दोनों ही अपनीअपनी दृष्टि से पवित्र हैं."

संसद भवन अमरीकी विधानमंडल का केंद्र है. राष्ट्र के विधान और कानून यहीं बनते हैं. सन १८०० में संसद में ३२ सीनेटर एवं १०५ प्रतिनिधि थे जब कि आज १०० सीनेटर और ४३५ प्रतिनिधि अमरीका के ५० प्रदेशों और
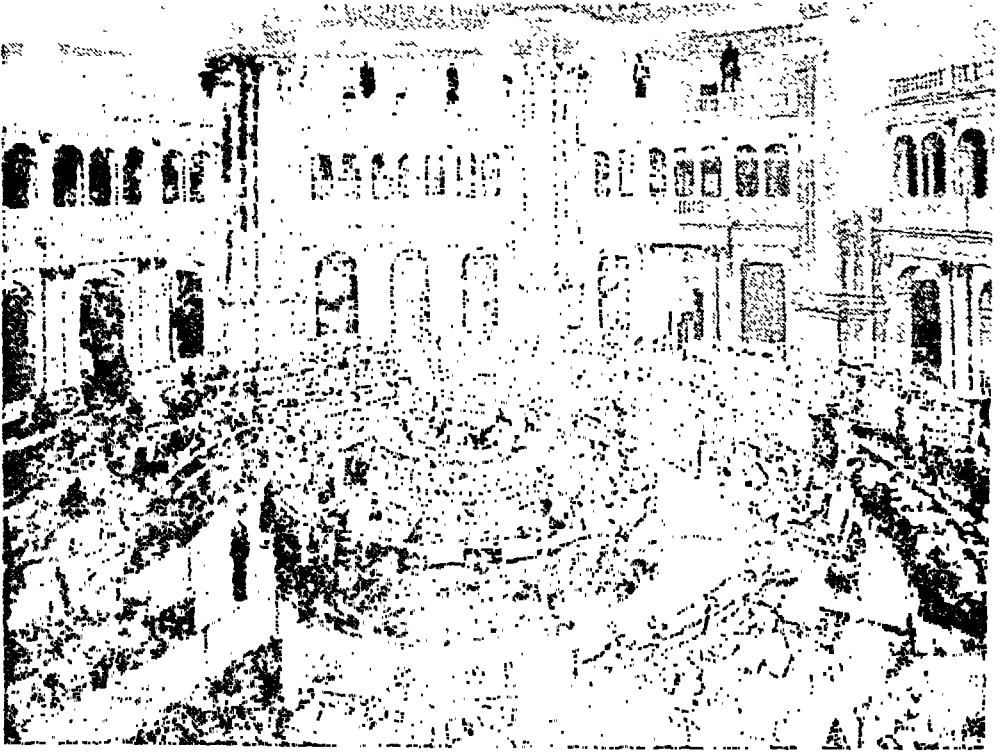
कांग्रेस पुस्तकालय जो विश्व में अपनी किस्म का अकेला है

१९,००,००,००० की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं.

अमरीका विभिन्न प्रदेशों का संयुक्त संघ राज्य है. शासन की क्षमता प्रेसीडेंट, कांग्रेस के दोनों सदनों और सुप्रीम कोर्ट में इस ढंग से विभाजित है कि संतुलन न बिगड़े, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि अमरीका के राष्ट्रपति को शासन संबंधी जितने अधिकार दिए गए हैं, विश्व में शायद ही किसी जनतांत्रिक राष्ट्रपति के हाथ में इतने अधिकार हों. अमरीका के प्रत्येक स्थानीय मामलों में स्वतंत्र व्यवस्था रखते हैं किंतु वाशिंगटन के इस गुंबद के नीचे जो भी नीति निर्धारित होती है उसी को सार्वदेशिक रूप में मानना पड़ता है. सेना एवं परराष्ट्र नीति पर केंद्र का नियंत्रण है, पर हमारे देश की तरह वहां भी पुलिस, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि प्रादेशिक शासन के नियंत्रण में हैं. हमारी दिल्ली की तरह वाशिंगटन भी किसी प्रदेश के अंतर्गत नहीं है. इस के शासन संचालन का अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में है. प्रत्येक चौथे वर्ष जनता द्वारा उस का निर्वाचन होता है. इस प्रकार अमरीका का सर्वोच्च शासक जनता के प्रत्यक्ष समर्थन से शासन करता है. अमरीकी जनता अपने प्रेसीडेंट के प्रति जो आदरभाव रखती है, वह हमारे लिए तो निस्संदेह अनुकरणीय है. विदेशों में मैंने देखा कि स्थानीय नागरिक विदेशियों से बातचीत में बहुत ही सावधान रहते हैं. शासन और शासक की आलोचना को सफाई से टाल देते हैं.

संसद सदस्य होने के कारण अमरीकी संसद के प्रति हमारी विशेष रुचि थी. हम इसे अच्छी तरह से देखना और समझना चाहते थे और इस के लिए सब प्रकार की सुव्यवस्था भी थी, परंतु हमारे पास समय कम था इसलिए हम ने यहां एक प्रकार से भागते दौड़ते ही सारी चीजें देखीं.

संसद के गुंबद की भीतरी दीवारों पर विश्व के शीर्ष कलाकारों ने जो चित्र बनाए हैं, वे देखते बनते हैं. अमरीकी इतिहास से संबंधित ये चित्र इतने सजीव हैं कि देखने वाले सैकड़ों वर्ष पीछे चले जाते हैं. अधिकांश चित्र इतालवी कलाकार कोंस्तांतिनो के बनाए हुए हैं. ७० वर्ष की उमर में ३०० फुट की वृत्ताकार नौ फुट ऊंची दीवार पर अंकित ये चित्र उस की प्रतिभा एवं दक्षता का परिचय देते हैं.

कोलंबस द्वारा अमरीका की खोज से ले कर स्वतंत्रता के युद्ध तक के सारे दृश्य देखते समय अमरीका का इतिहास चलचित्र की तरह आंखों के सामने आ जाता है. यहीं अमरीका के राष्ट्रपतियों की प्रस्तर मूर्तियां भी हम ने देखीं. वाशिंगटन, लिंकन, विल्सन, रूजवेल्ट, जेफर्सन आदि की मूर्तियां बड़ी स्वाभाविक मुद्रा में हैं.

हम ने सीनेट और प्रतिनिधि कक्ष (हाउस आफ रिप्रेजेंटेटिव्ज) देखा. हमारे संसद की राज्य सभा और लोक सभा के कक्ष की तरह इन में अर्धवृत्ताकार रूप में सदस्यों के बैठने के लिए व्यवस्था की गई है. अमरीकी संसद सदस्यों को, चाहे वे सरकारी दल के हों या विरोधी, सरकार की ओर से बड़ी सुविधाएं दी जाती हैं.

प्रत्येक सदस्य को करीब २,३२,५०० रुपए सालाना भत्ते के मिलते हैं. अन्य आवश्यक खर्चों के लिए पृथक रूप से सभी प्रकार की व्यवस्था है. हमारे यहां संसद सदस्यों को मिलते हैं सिर्फ १०,००० रुपए. वहां के प्रत्येक संसद सदस्य के पास निजी सचिव, स्टेनो और सहकारी होते हैं. अपने निर्वाचन क्षेत्र के दौरे के लिए किसीकिसी के पास तो हैलिकोप्टर भी रहते हैं.

संसद भवन के पास ही हमने प्रसिद्ध कांग्रेस पुस्तकालय देखा. यह विश्व का सब से बड़ा पुस्तकालय है. यहां ४,२५,००,००० से भी अधिक पुस्तकें हैं. दुर्लभ ग्रंथ और हस्तलिखित पुस्तकों का विभाग अलग है. अमरीका के ऐतिहासिक दस्तावेजों को बहुत ही संभाल कर रखा गया है. यों तो इस पुस्तकालय से छात्र, संसद सदस्य, अध्यापक, वैज्ञानिक सभी लाभ उठाते हैं लेकिन यह जान कर आश्चर्य हुआ कि अंधे भी यहां पुस्तकें पढ़ते हैं. उन के लिए उभरे अक्षरों की पुस्तकें यहां उपलब्ध हैं. यही नहीं, विभिन्न विषयों पर लिखी अच्छी से अच्छी पुस्तकों की टेप रिकार्डिंग करा ली गई है. कहते हैं कि इस पुस्तकालय की अलमारियों को एक लाइन में खड़ा किया जाए तो ४०० मील लंबी कतार हो जाएगी.

घूमतेघूमते हम थक गए थे. आराम करने की जरूरत थी. भूख भी लग रही थी. हमें रेस्त्रां खोजने में कठिनाई नहीं हुई. संसद में सभी कुछ है. हम ने रेस्त्रां में जा कर पहले पेट की मांग पूर्ति करने की व्यवस्था की और तब आगे का कार्यक्रम निश्चित करने लगे. निश्चित यह किया गया कि वाशिंगटन में हमारा अगला कदम व्हाइट हाउस (राष्ट्रपति भवन) और पेंटागन (सुरक्षा भवन) का होगा.

लाइब्रेरी में शीर्ष कलाकारों के संगीत की रिकार्डिंग कर उन्हें भी संग्रहीत
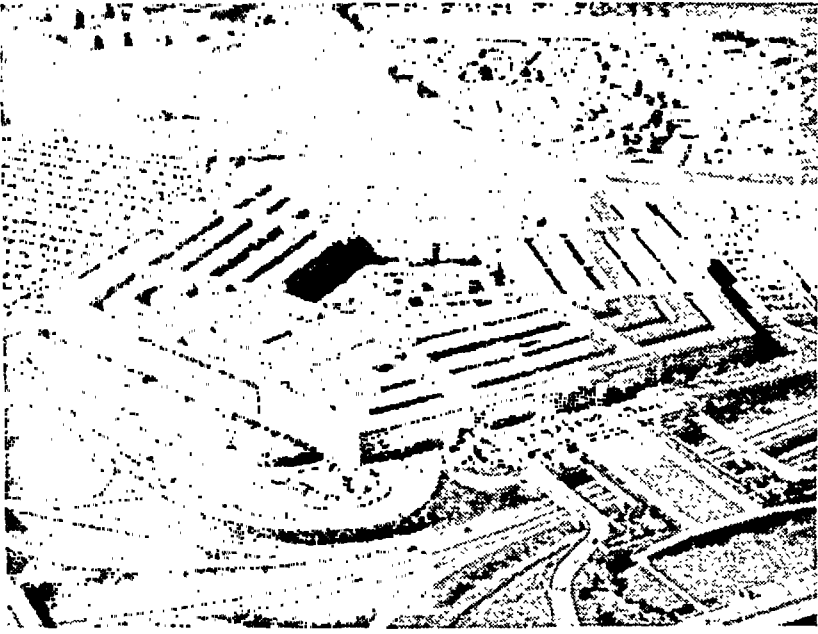
शहर के अंदर पैंटागन की अलग ही दुनिया है

किया गया है. महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय घटनाओं के फोटो भी संग्रहीत हैं.

लाइब्रेरी के कूलिज आडिटोरियम में ५२५ सीटें हैं. अतः देशविदेशों के चोटी के साहित्यकारों एवं वैज्ञानिकों के कार्यक्रम यहां समयसमय पर होते रहते हैं.

आप अपने मनचाहे कलाकार का संगीत सुनना चाहते हैं? अपने प्रिय कवि की कविता उस से ही सुनना पसंद करेंगे? अपने श्रद्धेय वैज्ञानिक की गवेषणा उन्हीं की जवानी सुनेंगे? एक पत्र डाल दीजिए, उत्तर मिल जाएगा कि प्रोग्राम कब है. सीट रिजर्व करा लीजिए, केवल २५ सेंट का खर्च है. अमीरों के मुल्क में किफायत में इतनी सुविधा मेरी कल्पना के वाहर की वात थी. हमारी राष्ट्रीय सरकार भी इस प्रकार की सुविधा कर दे तो शिक्षा में पिछड़े और गरीव देश के जन साधारण का वड़ा उपकार हो सकता है.

हमारी तरह अन्य कई विदेशी पर्यटक भी वहां थे. एक भारतीय दंपति को भी रेस्तरां में देखा. वे दोनों भी हमारी तरफ देख रहे थे. हम ने परस्पर परिचय प्राप्त किया. युवक दिल्ली का था. हमारे विदेश मंत्रालय की ओर से फारेन सर्विस की शिक्षा पाने के लिए यहां आया था. साथ में पत्नी को भी ले आया था. एक वात ध्यान देने की है कि अपने देश में हम उत्तर, दक्षिण, महाराष्ट्र, वंगाल और पंजाव की भले ही सोचते हों, पर विदेशों में स्वतः ही हमारी ये भावनाएं मिट जाती हैं. पतिपत्नी दोनों हम से मिलकर वहुत खुश हुए. देश के वारे में जानकारी दी. हमें अपने घर भोजन पर आमंत्रित किया. कमातेखाते सुखी भारतीय दंपति को देख कर वड़ा संतोष हुआ.

वाशिंगटन की जिंदगी में गंभीरता की छाप है. संसार के सव से अधिक

संपन्न और शक्तिशाली राष्ट्र की राजधानी होने के कारण सड़कों, होटलों, और सरकारी दफ्तरों में विदेशियों को अपनी राष्ट्रीय पोशाक में देख पाना साधारण सी बात लगती है. यों तो दिल्ली की चाणक्यपुरी में भी विदेशियों को देखा जा सकता है, पर उतने नहीं जितने कि यहां.

अमरीकी सैलानी तबीयत के होते हैं. मौजबहार और जिंदादिली उन की विशेषता है. होनोलूलू, नियाग्रा, मियामी और फ्लोरिडा में जो उन्हें मिल सकता है वह वाशिंगटन में नहीं, फिर भी अपनी राजधानी के प्रति उन्हें एक प्रकार का मोह है. वे अपने पर्यटन के प्रोग्राम में वाशिंगटन घूमना जरूर शामिल कर लेते हैं. हम ने अमरीकी संसद भवन देखते हुए इसे लक्ष्य किया कि देश के विभिन्न भागों से आए हुए अमरीकी नागरिक भी चाव से घूम रहे थे.

नवीन राष्ट्र होने के बावजूद जीवन की गहराइयों के प्रति आम तौर से अमरीकी भी हमारी तरह सोचते हैं, पर बातचीत में वे गंभीर कम दीखते हैं. यह उन की विशेषता है.

दूसरे दिन हम पैंटागन देखने गए. यह अमरीकी सुरक्षा का केंद्रीय दफ्तर है. इस की विशालता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि विश्व के सब से बड़े अमरीकी संसद भवन जैसे पांचछः तो इस में आसानी से समा जाएंगे; तब भी जगह बचेगी. न्यूयार्क की एंपायर स्टेट बिल्डिंग विश्व की सब से बड़ी इमारत है. उस मे जितने कमरे हैं उस के तिगुने पैंटागन में हैं. लगभग तीस हजार सैनिक और नागरिक कर्मचारी प्रति दिन यहां काम करने आते हैं. ६०० कर्मचारी तो केवल इस की सफाई के लिए नियुक्त हैं.

शहर के अंदर पैंटागन की अलग ही दुनिया है. यहां हेलीकाप्टर के उतरने का ग्राउंड है और रेलवे स्टेशन भी है. बसें लगभग ९०० बार आवागमन करती हैं. पार्किंग की जगह इतनी काफी है जिस में यहां के कर्मचारियों की ८३०० मोटरें एक साथ ठहर सकती हैं. पर्यटकों की गाड़ियों के लिए स्थान अलग है.

हम यहां के सूचना विभाग में गए, वहां हमें पैंटागन का नक्शा मिला और गाइड भी. यदि ये नहीं मिलें तो यहां के गोरख धंधे में फंस जाना मामूली सी बात है. इस के बारे में बड़े मजेदार किस्से प्रचलित हैं. किसी सर्कस से एक शेर भाग निकला. रात के अंधेरे में उस ने यहां पनाह ली. बड़ी खोज हुई उस की, पर वह मिला ही नहीं. कई महीने बाद कहीं से भागा हुआ एक दूसरा शेर भी पैंटागन के दफ्तरों में पहुंचा. पुराने शेर ने उस का स्वागत किया. नए शेर ने पूछा, "कहो भाई, भोजनपानी का यहां कैसा इंतजाम है, कहीं भूखे दिन न गुजारने पड़ते हों?" पुराने शेर ने कहा, "अरे, नहीं रे दोस्त, मुझे देखो न, कैसा मोटाताजा हूं. बड़ा आराम है, जब भी भूख लगी किसी कर्नल या जनरल को दबोच लिया. इतने हैं यहां कि कोई इन की गिनती ही नहीं करता."

इसी तरह एक दूसरा किस्सा भी है. एक पत्नी अपने पतिदेव को ढूंढ़ने यहां आई. उसे यहीं बच्चा हो गया. लोगों ने कहा, "आप ऐसी दशा में यहां
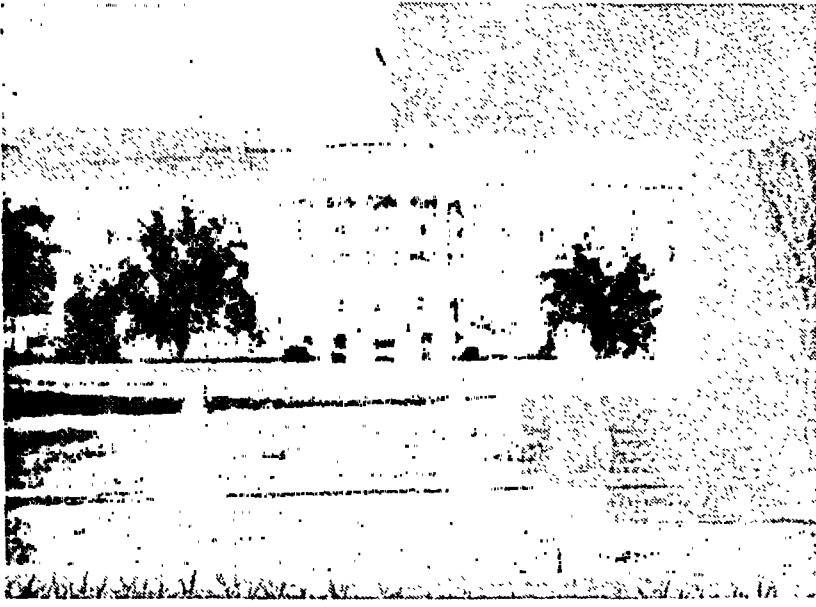
अमेरिका में राष्ट्रपति का निवास 'व्हाईट हाउस'

क्यों आई?" युवती ने बताया कि मैं इस हालत में नहीं थी. तीन महीनों से ढूंढ़ रही हूं लेकिन मेरे पति नहीं मिले, तव तक प्रसव का समय पूरा हो गया. मेरी लाचारी थी.

सत्य है, अजीब भूलभुलैया है पेंटागन. भीतर ही भीतर मीलों का चक्कर दफ्तरों का है. लिफ्ट, सीढ़ियां, एस्केलेटर, दालान, कमरे, दरवाजे सभी मायापुरी से हैं. इन्हें पार करते हुए हम तीसरी मंजिल पर रक्षा सचिव के दफ्तर के सामने से गुजरे. बड़ा ही शानदार लगा. इस के पास ही एस्केलेटर से हम चौथी मंजिल पर पहुंचे. वहां स्थल सेना के अंचल में विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र, टैंक इत्यादि के माडल देखे. युद्ध संबंधी विविध चित्र भी थे. इसी प्रकार नौसेना और वायु सेना के अंचलों में हम ने विभिन्न प्रकार के जहाजों और वायुयानों के माडल देखे जो प्राचीनकाल से अव तक युद्धों में काम आते रहे हैं. पेंटागन से ही अमरीकी सुरक्षा विभाग का संचालन होता है जिस का वार्षिक बजट ३४००० करोड़ रुपए है अर्थात प्रति व्यक्ति औसत १८०० रुपए, जब कि हमारे भारत का वार्षिक सुरक्षा बजट ८५० करोड़ है जो करीव १८ रुपए प्रति व्यक्ति होता है.

युद्ध हमारी रुचि का विषय नहीं है. इसलिए इस की बारीकियां समझ में नहीं आई. मगर इतना जरूर लगा कि इस विषय के विद्यार्थियों के लिए यह स्थान ज्ञानपीठ है.

पेंटागन का सैनिकी दफ्तर देखने से हो सकता है कि हमारे जैसों का जी उचटने लगे. अमरीकी सैनिक विभाग शायद अपनी इस कमी को समझता है. यहां छः काफेटेरिया हैं, जिन में प्रति दिन ३०,००० लोग भोजन करते हैं. दो बड़े रेस्तरां हैं और नौ बार हैं, जहां थके दिमाग और सूखते कंठ को तर करने की

सुविधा है. इस के अलावा, हजामत बनाने और कपड़े धुलवाने से ले कर आप की साजसज्जा के लिए जवाहरात की दुकानें भी हैं. पुस्तकें, फूल तथा अन्य हर प्रकार की, अपनी पसंद की दुकानें यहां मिल जाएंगी. यही नहीं, रेलवे और हवाई जहाज की बुकिंग भी यहां करा सकते हैं. पोस्ट आफिस, बैंक, बीमा कंपनियों के दफ्तर आदि तो मामूली बात है.

चौथाई पेंटागन देखने में ही हमें बहुत समय लग गया. थक भी गए, पर साथियों की राय थी कि धनकुबेरों के देश की टकसाल को तो देख ही लिया जाए. एक बज चुका था, दो बजे तक खुली रहती है. अतएव ब्यूरो आफ एंग्रेविंग एंड प्रिंटेज जा पहुंचे. अमरीका बृहद देश है. सब कुछ यहां बृहद पैमाने पर होता है. दुकान, मकान, दान, मान, शान सभी बृहद! ब्यूरो में हम ने अमरीकी नोटों के छपने का जो सिलसिला देखा तो चकित रह गए. हफ्ते में पांच दिन काम होता है. रोजाना तीन करोड़ डालर (चौदह करोड़ रुपए) के नोट तैयार हो कर निकलते हैं. इन में दो तिहाई तो एक डालर वाले नोट होते हैं. शेष अन्य जिन में १०,००० डालर वाले नोट भी हैं. दक्षता इतनी है कि छपे हुए नोटों में मुश्किल से एक प्रति शत रद्द किए जाते हैं. इस में एक म्युजियम भी है जहां हम ने १८६१ से अब तक के सरकारी बांड और स्टैंप देखे. सन १९३५ का छपा एक लाख डालर का एक नोट भी देखा.

नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी. इसे नेशनल म्युजियम भी कहते हैं. कला और उद्योग संबंधी नाना प्रकार की चीजें यहां रखी हुई हैं. शिकागो में हम इस प्रकार का म्यूजियम देख चुके थे, लेकिन वाशिंगटन का म्यूजियम उस से बहुत बड़ा है.

इस संग्रहालय में लगभग दो करोड़ नमूने संग्रहीत हैं. नाना प्रकार के पशुओं, प्रक्षिओं, और जलचरों की खालों में भूसे भर कर स्वाभाविक वातावरण में रखा गया है. प्रागैतिहासिक युग के जीव भी अनुमानित आकार में रखे हुए हैं. दैत्याकार दिना सूर के माडलों को देख कर भय और कंपकंपी सी आ जाती है. बहुत दिनों पहले राहुलजी की पुस्तक 'विस्मृति के गर्भ में' इन के बारे में पढ़ा था—उस समय ऐसा लगा था कि यह केवल किंवदंती है. लेकिन आज बहुत वर्षों बाद इन का संभावित आकार और रूप प्रत्यक्ष देखने का मौका मिला. हमारे यहां के हाथी और ऊंट तो इन के सामने बहुत ही छोटे हैं. जीव या प्राणी का विकास विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार होता रहा है, उस के क्रम का बड़ा अच्छा दिग्दर्शन यहां होता है.

खनिज और जवाहरातों का कक्ष भी हम ने देखा. फ्रांसीसी राजघराने की शान विश्व प्रसिद्ध हीरा 'ब्लूहोप' रखा हुआ है. नाना प्रकार के नीलम, पन्ने, पुखराज और हीरे छोटेबड़े सभी आकारप्रकार के रखे थे. ये कहां से मिले, कैसे मिले, क्या वजन है, कितनी कीमत लगी और क्या इतिहास है, सभी विवरण लिखे हुए हैं.

अमरीकी आदिवासियों के कक्ष में हम ने अमरीका के इतिहास की लगभग १०,००० वर्ष पुरानी झांकी देखी. अमरीका के इन आदिवासियों को आज भी

वाशिंगटन मोनूमेंट, लिंकन स्मारक व कैपीटल हाल स्वतन्त्रता दिवस पर जगमगाता हुआ

कोलंवस के भ्रम के कारण भारतीय कहा जाता है. जो भी हो इन के जीवन के तौरतरीकों में भारतीय छाया मुझे लगी. यह एक गवेषणा का विषय है. कोलंवस ने अमरीका की धरती पर पैर रखा और लाल भारतीय जब उस से मिलने आए उस समय का दृश्य माडल के रूप में यहां रखा है. इसी प्रकार उस समय ये कैसे रहते थे, उन की स्वाभाविक व्यवस्था और रीतियां कैसी थीं, इस के भी माडल वहां हैं.

इन्हें देख कर यह लगता है कि यूरोप के विभिन्न देशों से शांति के दूत महात्मा ईसा का पवित्र संदेश पहुंचाने के नाम पर धर्म प्रचारकों ने पिछली तीन शताब्दियों में जो कुछ भी यहां किया वह बहुत ही जघन्य और घृणित था. इस सिलसिले में मुझे अपने देश का प्राचीन इतिहास याद आया. हमारे यहां भी भील और किरात रहे हैं. अगस्त्य और राम ने सभ्यता और संस्कृति के नाम पर उन्हें लूटा नहीं था, उन्हें उखाड़ नहीं फेंका था. वानर, भालू और जटायु आदि बनवासी जातियों का सहयोग उन्हें तलवार की नोक से नहीं, हृदय की विशालता और उदारता से ही मिला था. आज भी हमारे देश में नागा, मिजो और संथालों में जिस रूप में मिशनरियों द्वारा धर्मप्रचार हो रहा है उसे केवल परोपकार की भावना नहीं कहा जा सकता.

लंदन, पेरिस और वाशिंगटन में इतने बड़ेबड़े म्यूजियम और आर्ट गैले-

रोज हैं कि अगर उन को ध्यान से देखा जाए तो महीनों लग जाएंगे. हम ने वहां यह भी देखा कि किसीकिसी तसवीर या मूर्ति को तन्मय हो कर लोग घंटों देखते रहते हैं. लेकिन, ये कलाकारों की बातें हैं. हमारे जैसे पर्यटक तो एक साधारण सा चक्कर सब कमरों का लगा लेते हैं. यहां तक कि विश्व प्रसिद्ध कृति 'मोनालीसा' या 'अंतिम भोज' को भी कुछ समय तक इसलिए देखते रहे कि उन का मूल्य एकडेढ़ करोड़ सुन रखा था. वाशिंगटन की नेशनल आर्ट गैलेरी भी विश्व की गिनीचुनी संस्थाओं में है. आप इस की विशालता का अनुमान इस से ही लगा सकते हैं कि यह डेढ़ लाख फीट के क्षेत्रफल में है और इस में २७,००० तसवीरें या मूर्तियां हैं, जिन में से कुछ तो दुष्प्राप्य और इतनी कीमती हैं कि सिवा राज्य सरकारों के सर्वसाधारण उन को खरीदने की सोच भी नहीं सकते. हम ने वहां नाना प्रकार के पत्थर और ब्रोंज की पुरानी भारतीय मूर्तियों के अलावा १७ वीं और १८ वीं शताब्दी के मुगल और राजपूत कला के चित्र भी काफी तादाद में देखे.

यों तो वाशिंगटन में बहुत से स्मारक हैं, लेकिन जार्ज वाशिंगटन एवं अब्राहम लिंकन के स्मारक सब से अधिक जनप्रिय एवं प्रसिद्ध हैं. वाशिंगटन स्मारक सुबह नौ बजे से शाम को पांच बजे तक और लिंकन स्मारक रात को नौ बजे तक खुला रहता है. हम लिंकन का स्मारक देखने गए.

शहर के दक्षिण में बहती हुई पोटोमेक नदी के किनारे लिंकन का स्मारक बहुत ही सौम्य है. यहां की अन्य इमारतों की तरह यह बहुत बड़ा नहीं है. ३६ खंभों पर इस की छत है. स्मारक के चारों ओर सुंदर उद्यान है. मुख्य कक्ष में पहुंचने के लिए ५६ सीढ़ियां हैं. लिंकन के समय में संयुक्त राज्य अमरीका में ३६ राज्य थे, इसलिए इस के ३६ खंभे हैं. इसी प्रकार लिंकन की ५६ वर्ष की आयु के प्रत्येक वर्ष के लिए सीढ़ी का एकएक कदम है.

हम सीढ़ियों पर से स्मारक के अंदर कक्ष में गए, लिंकन की तसवीरें पहले भी देखी थीं. लेकिन उन की मूर्ति इतनी सजीव होगी इस की आशा न थी. मानवता के कलंक दास प्रथा को अमरीका से मिटा देने का प्रयास ही उन का काल बना. गोली मार कर उन की हत्या कर दी गई. हमारे यहां गांधीजी की हत्या भी तो ऐसे ही एक कारण से हुई थी. अमरीकन नीग्रो को समान अधिकार दिलाने के प्रयास में अभी हाल ही में राष्ट्रपति कैनेडी को भी अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी. मैं सीढ़ियों से उतरता हुआ सोच रहा था, 'मानवता को सही मार्ग दिखाने के लिए अभी और कितने लिंकन, गांधी और कैनेडी की आहुतियां देनी होंगी.'

वाशिंगटन के अखबारों में संसद की जितनी, जैसी चर्चा होती है उसे देख कर लगता है कि यहां की आम जनता का आकर्षण राजनीति के प्रति अधिक नहीं है.

दैनिक समाचार पत्र बड़े साइज के १६ से १०० पेज तक के होते हैं, जिन में तीन चौथाई में तो विज्ञापन और सिनेमाथिएटर आदि के प्रोग्राम रहते हैं—बाकी चौथाई में स्थानीय समाचार तथा अन्य आवश्यक बातें. भारत के बारे

प्राकृतिक सौंदर्य से घिरा, संगमरमर का बना जैफर्सन स्मारक

में चर्चा तो बहुत ही कम देखने को मिलती है.

यहां के गिरजों में जैसी भीड़ हुआ करती है, उसे देख कर ताज्जुब होता है कि मौजबहारों में विश्वास करने वाले अमरीकन धर्मप्राण भी होते हैं. राजधानी में ५०० से भी अधिक गिरजे हैं, जिन में ६० विभिन्न पंथों के ईसाई नियमित रूप से आते रहते हैं. इन के अलावा यहूदियों के उपासना गृह भी कई हैं. इन गिरजों में से कई के पास बहुत बड़ी संपत्ति है, जिस में से अरबों रुपए सालाना विश्व के विभिन्न भागों में ईसाई धर्म के प्रचारप्रसार के लिए खर्च होते हैं.

यहां एक मसजिद भी है. इस की तारीफ हम ने सुन रखी थी. अतएव देखने गए. हमारे यहां की मसजिदों से यह बिलकुल ही दूसरे ढंग की है. न मेहराबदार बुलंद दरवाजे हैं और न गुंबद. हां, एक मीनार जरूर है. राजधानी की यह मसजिद तमाम अमरीकन मुस्लिमों का उपासना गृह है. मुसलमानी धर्म और संस्कृति का अध्ययन केंद्र भी.

विदेशों के बारे में भ्रांत धारणाएं तभी टूटती हैं जब वहां जा कर वस्तुस्थिति से साक्षात्कार हो. विदेशी, सिवा अंगरेजों के, हमारे देश के बारे में यह धारणा किए बैठे हैं कि भारत में केवल हिंदू ही हैं, मुसलमान स्वयं चले गए और जो थे, उन्हें हटा दिया गया है. ठीक इसी तरह हम भी साधारणतः यह समझते हैं कि यूरोप और अमरीका में केवल ईसाई हैं, अन्य मतावलंबी शायद ही हों. मगर बात ऐसी नहीं है. यूरोप में खास तौर से बलगारिया, अलबानिया, यूनान, यूगोस्लाविया आदि बलकान राज्यों में तुर्की और दक्षिणी रूस में मुस्लिम काफी संख्या में हैं. अमरीका में भी इस्लाम का प्रसार बढ़ रहा है. काले अमरीकन विशेष रूप से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रहे हैं.

एक नीग्रो अमरीकन ने मुझे शायद मिस्र का समझ लिया. बड़े शाइस्ता ढंग से अभिवादन किया, 'अस्सलाम अलैकुम'. बड़ी साफ जुबान और आवाज थी.

नेचुरल हिस्ट्री म्युजियम में तरह तरह के पशु की खालों में भूसा भर कर स्वाभाविक वातावरण में रखा गया है

"वालैकुम अस्लाम," कह कर मैं मुसकराया. उस ने मुझे मिस्र का समझा था, पर मैं ने बता दिया कि भारत से आया हूं. आगे न उस ने पूछा और न मुझे बताने का मौका ही मिला कि मैं किस धर्म को मानता हूं. युवक ने बड़े स्नेह और जिज्ञासा से भारतीय मुस्लिमों के प्रति सहानुभूति प्रकट की. उस की बातचीत से पता चला कि या तो पाकिस्तानी प्रचार के कारण या हमारी सरकार के प्रचार विभाग की शिथिलता के कारण हमारे देश की धर्म-निरपेक्ष नीति और मुसलमानों की सही स्थिति का परिचय साधारण अमरीकी जनता तक नहीं पहुंच पाया है.

लास एंजेल्स और शिकागो में मैं ने ब्लैक मुस्लिम आंदोलन के बारे में सुना था. यहां मेरा कौतूहल जाग उठा. मैं ने पूछा "यहां आप लोगों की कितनी संख्या होगी?" उस ने बड़े गौर से मुझे देखते हुए कहा, "ठीक नहीं बता सकता, पर यह जानता हूं कि हमारी जमायत बढ़ रही है और अब रंगीन (नीग्रो) अमरीकन यह महसूस कर रहे हैं कि पाक रसूल के दामन के सहारे ही हम अमरीका में हक और इज्जत पा सकते हैं. अगर इसराइल और पाकिस्तान बन सकते हैं तो क्या करोड़ों की तादाद में यहां बसने वाली हमारी कौम अपने लिए अलग एक मुल्क नहीं कायम कर सकेगी?"

उस की आंखें चमक उठीं. मैं स्तब्ध था. हिंदुस्तान को भी इसी मनोवृत्ति ने गहरी चोट पहुंचाई है. सोचने लगा, एक जमाना था, जब नीग्रो को गोरे जरा सी गलती पर जीतेजी जला देते थे, सूली पर चढ़ा देते थे, नाना प्रकार की यातनाएं देते थे. कहीं उसी कु क्लक्स क्लान आंदोलन की प्रतिक्रिया

'ब्लैक मुस्लिम' संप्रदाय तो नहीं है.

उस ने मुझे मसजिद का भीतरी हिस्सा बड़े चाव से दिखाया. भारतीय मसजिदों में जो बारीक कारीगरी है, वह यहां नहीं है, मगर तुर्की, ईरानी शैली काफी सफाई से उभरी नजर आती है. संसार के विभिन्न मुस्लिम देशों से भेजी गई खूबसूरत, नायाब चीजें बड़े करीने से रखी हुई थीं. छतों से लटकते ईरानी झाड़फानूस, मिस्र से भेजे गए गलीचे और ईरानी कालीन, दीवालों पर बैठाए गए तुर्की टाइल बड़े आकर्षक लग रहे थे.

नमाज का वक्त था. अजान सुनाई पड़ी, पर मुअज्जिन नजर नहीं आया. टेप रिकार्ड से यह काम चला लिया जाता है. कुछ ताज्जुब सा हुआ कि खुदा की राह पर चलने के लिए इनसान नहीं, मशीन आवाज लगाती है.

सुना था कि यहां एक बौद्ध विहार भी है. पता नहीं चला, गाइड बुक में या नक्शे में इस का कोई उल्लेख नहीं मिला. एक बात पर विचार गया कि बातबात में धर्म की चर्चा करने वाले हिंदुओं का एक छोटा सा मंदिर तक यहां नहीं है. लंदन में बिड़ला परिवार के प्रयास से यह कमी दूर हो गई है. आज वहां शांति और स्वच्छंदता से हिंदू अपने ढंग से उपासना कर सकते हैं. ताज्जुब इस बात का है कि हमारे देश में टीकाचंदन या रेशमी गेरुवाधारी बड़ेबड़े मठाधीश-महन्त यह नहीं सोचते कि उन्हें उत्तराधिकार में अतुल धनराशि इसलिए नहीं मिली है कि वे केवल अपनी मौजशौक में ही उसे खर्च करें, बल्कि उनका तो वास्तविक दायित्व है उस शिक्षा और संस्कृति के प्रचारप्रसार का जिसे भारत के ऋषि-मुनि, या मनीषियों और आचार्यों ने मानव कल्याण के लिए रूपायित किया था. हम स्वामी विवेकानंद का सिर्फ हवाला देते हैं, खुद उस मार्ग पर चलते तो शायद विश्व के कोनेकोने में भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में अनेकों मंदिर बन जाते और ये हमारे सांस्कृतिक केन्द्र होते.

हमारी यह कमी वाशिंगटन में बहुत खटकी. मुझे बड़ी ग्लानि हुई कि म्लेच्छ समझे जाने वाले अमरीकनों के धन से बेलूर में रामकृष्ण का मंदिर बना. भक्ष्याभक्ष्य का विचार न रखने वाले जापानियों ने काशी में बौद्ध विहार और मंदिर बनवा दिए, पर धर्म के नाम पर ध्वजा उठाने वालों का एक भी मंदिर न टोकियो में मिला न वाशिंगटन में. सैकड़ों की संख्या में भारतीय इन जगहों पर जाते हैं, व्यापार-व्यवसाय बढ़ाते हैं, पर किसी ने यह नहीं सोचा कि उपासना का एक स्थान तो बने यहां.

संगमरमर के बने तीन स्मारकों के लिए वाशिंगटन विख्यात है. तीनों ही अमरीका के तीन महान राष्ट्रपतियों वाशिंगटन, लिंकन और जैफर्सन की स्मृति में बनाए गए हैं. लिंकन स्मारक के पूर्व की ओर वाशिंगटन मोनूमेंट है. दिल्ली के लिए लाल किला, जामा मस्जिद, कुतुब मीनार और बनारस के लिए जैसे घाट प्रतीक हैं उसी प्रकार यह स्मारक राजधानी का प्रतीक है.

वाशिंगटन मोनूमेंट मीनार जैसा है, पर इस में कुतुब की तरह मंजिलों के बरामदे बाहर निकले नहीं हैं. सिरे पर यह तिकोना नुकीला सा है. दूर से बहुत कुछ चौकोर चिकनी पेंसिल जैसी शक्ल का लगता है. हरियाली के बीच संगमरमर

का बना यह मीनार बहुत सुंदर लगता है. इस की ऊंचाई ५५५ फीट है. सिरे पर खिड़कियां हैं. ऊपर चढ़ने के लिए ९०० सीढ़ियां हैं और एलीवेटर भी है. नीचे दीवार १५ फुट मोटी है और ज्योंज्यों ऊपर उठती है, पतली होती जाती है. बिलकुल ऊपर तो केवल १५ इंच ही की रह जाती है. मीनार के ऊपर खिड़कियों से राजधानी का दृश्य बड़ा मनोरम लगता है.

सुबह का समय था. वाशिंगटन पर धूप खेल रही थी. शहर को देखता हुआ मैं बारबार यही सोचता था कि यदि वाशिंगटन न होता तो आज का अमरीका कहां होता. स्वयं ही उत्तर मिला कि वाशिंगटन केवल व्यक्ति विशेष नहीं था, बल्कि वीरता, कर्मठता और धैर्य का प्रतीक था.

न्यूयार्क

अरब खरब की नगरी

वाशिंगटन अमरीका की नई दिल्ली है तो न्यूयार्क को कलकत्ता या बंबई कहा जा सकता है. जनसंख्या की दृष्टि से आज से कुछ ही वर्ष पहले तक यह विश्व का सब से बड़ा नगर कहलाता था, पर अब टोकियो को यह गौरव प्राप्त है. फिर भी वैभवविलास और व्यापारव्यवसाय में यह बेजोड़ है. हमारे यहां लंदन को विश्व व्यापार की एक बड़ी मंडी मानते हैं लेकिन न्यूयार्क के व्यापारिक महत्त्व का अंदाज इसी से लग जाता है कि जहां केवल वाल स्ट्रीट में लेनदेन का जितना सौदा होता है उतना सारे विश्व के बाजारों में जोड़ कर भी नहीं हो पाता. सौ दोसौ करोड़ के सौदे तो यहां कई बार हो जाया करते हैं.

न्यूयार्क का इतिहास केवल ३०० वर्षों का ही है. १७वीं शताब्दी में जब लंदन, पेरिस, वियना, पेट्रोग्राड विश्व की राजनीति के सूत्रधार थे उस समय न्यूयार्क, नई दुनिया में छोटेछोटे टापुओं पर बसी हुई बस्तियों का, हडसन नदी के मुहाने पर एक छोटा सा बंदरगाह था. यूरोप से तैयार माल आता था और यहां से कच्चा माल जाता था. माल के साथ रोजी की खोज में यूरोप में विभिन्न देशों के लोग भी यहीं उतरते थे. इन में बहुत से ऐसे भी थे जो किसी न किसी कारण से स्वदेश छोड़ यहां भाग आए थे. सन १७५० में इस की आबादी १०,००० थी, जो सन १८७० में बढ़ कर १५ लाख हो गई और आज तो इस की जनसंख्या ९० लाख है. इस में ११ लाख नीग्रो हैं और साढ़े छः लाख दक्षिणी अमरीका के लोग हैं. विभिन्न देशों से यहां बसे हुए लोगों की संख्या भी काफी है. एशियाई लोगों में कुछ चीनी तो जरूर दिखाई पड़े जो स्थायी रूप से यहां बस गए हैं, पर अन्य जातियां देखने में कम आईं.

आम तौर से अमरीका भ्रमण करने के लिए यात्री यूरोप से न्यूयार्क जाते हैं, वहां से वाशिंगटन, शिकागो देखते हुए सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ते हुए कैलिफोर्निया. हम ने ठीक इस के विपरीत ढंग से यात्रा की थी. हम भारत से पूर्व की ओर बढ़े. हांगकांग, जापान, हवाई द्वीपपुंज होते हुए अमरीका के पश्चिमी प्रदेश कैलिफोर्निया पहुंचे और वहां से नियाग्रा, शिकागो और वाशिंगटन देखते हुए अंत में न्यूयार्क. इस से एक लाभ तो यह हुआ कि न्यूयार्क के वैभव और वातावरण ने हमें अभिभूत नहीं किया, क्योंकि अबतक की यात्रा में हम अमरीकन

जीवन के कई पहलुओं से बहुत कुछ परिचित हो चुके थे. फिर भी यह मानना पड़ता है कि न्यूयार्क अपने में बेजोड़ है, हर माने में, हर बात में, चाहे वह अच्छी हो या बुरी.

जिन दिनों हम न्यूयार्क पहुंचे, वहां विश्व मेला लगा हुआ था. दुनिया के हर कोने से देखने के लिए लोग आ रहे थे. बहुत बड़ी संख्या में बड़ेबड़े होटलमोटल होते हुए भी स्थान मिलने में दिक्कत हो रही थी. वाशिंगटन में हमें इस की पूर्व सूचना मिल चुकी थी.

अमरीका में अब तक हमारी यात्रा हवाई जहाज से ही हुई थी. उद्देश्य था समय का बचाव, क्योंकि विदेशी मुद्रा की कमी थी, अधिक दिनों तक विदेशों में खर्च चलाते रहना हमारे लिए कठिन था. पर केवल हवाई जहाज की यात्रा से हमें संतोष नहीं था. अमरीकन शहरों के बाहर देहात कैसे लगते हैं? वहां का जनजीवन कैसा है? जमीन परती है या आबाद? ये सब देखने की बड़ी इच्छा थी. इसी लिए हम ने वाशिंगटन से न्यूयार्क की यात्रा 'ग्रेहांउड बस' से की.

ग्रेहांउड विश्व की सब से बड़ी संगठित ट्रांसपोर्ट कंपनी है. हमें बताया गया कि इस कंपनी के पास २५० करोड़ रुपए की तो केवल बसें ही हैं. वार्षिक आय ३० करोड़ रुपए है. समय की पाबंदी ऐसी है कि इन की पहुंच या रवानगी को देख कर लोग अपनी घड़ी मिला लेते हैं. निश्चित समय पर स्टापेजों पर पहुंचना और छूटना यंत्रवत चलता है. अमरीका में हवाई जहाज, हेलीकाप्टर, ट्रेनें और निजी मोटरें अनगिनत हैं, फिर भी लंबे सफर के लिए प्रति १५ मिनट पर 'ग्रेहांउड' की सर्विस है. इस से पता चलता है कि ग्रेहांउड कितनी लोकप्रिय है.

हमारे देश के अधिकांश राज्यों में बस सेवा स्थानीय सरकारों के हाथ में है, जिन में बड़ीबड़ी पूंजी लगी हुई है. विदेशों के लोग जब इन में बैठ कर सफर करते होंगे तो हमारे प्रति और हमारी सरकार के प्रति कैसी धारणा ले कर अपने देश लौटते होंगे! मुझे एक घटना याद आती है. सन १९६२ की बात है. मैं दिल्ली से बस द्वारा हिसार जा रहा था. निश्चित संख्या से भी अधिक यात्री बस में थे. छत पर भी सवारियों को बैठाया गया था. सीटों के नीचे मालअसबाब, बोरेथैले. अजीब घुटन महसूस हो रही थी. ड्राइवर और कंडक्टर समय का ध्यान न रख और भी सवारी लादने के फेर में बीड़ी फूंक रहे थे. शोरशराबा मचा, गाड़ी खुली. रोहतक में एक सवारी के साथ तीन बकरियां भी चढ़ीं. रास्ते भर वे बस को गंदा करती रहीं और मेंमें की रट लगाती रहीं. न कहीं चैकर का पता, न इंसपेक्टर का. पुलिस वाले आम तौर पर इन सब से मिले हुए होते हैं.

वाशिंगटन से कोई दसबारह मील पहुंचे होंगे कि हम ने एक जगह हजारों पुरानी मोटरकारों को एकदूसरे के ऊपर रखी हुई देखा. मोटरें टूटीफूटी होतीं तो समझा जाता कि कबाड़खाना है, पर देखने में यह आया कि गाड़ियां साधारणतया अच्छी थीं. कुछ तो केवल तीनचार वर्ष पुरानी. पूछने पर पता चला कि यह मोटरों का कब्रिस्तान है. आज तक तो हम यही जानते थे कि मुर्दों का कब्रिस्तान हुआ करता है. कौतूहल बढ़ा. मैं ने पूछा तो पता चला कि मामूली खराबी की वजह से या माडल पुराना होने पर यहां ला कर लोग अपनी गाड़ियों को छोड़
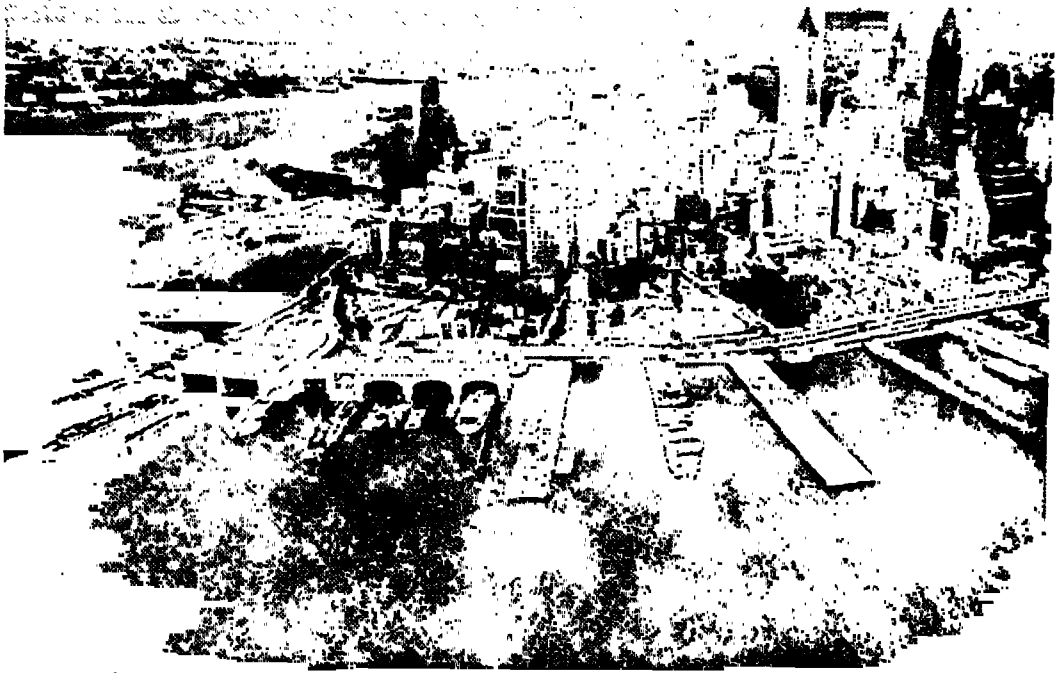
न्यूयार्क के मैनहट्टान द्वीप का एक विहंगम दृश्य

देते हैं. मजदूरी इतनी ज्यादा लगती है कि तीनचार वर्ष पुरानी मोटर को मरम्मत कराने के बजाए नई खरीद लेते हैं. मोटरनिर्माता या लोहे के कारखाने वाले बड़ेबड़े ट्रकों या ट्रेलरों में उन्हें एकदूसरे पर लाद अपने कारखानों में ले जा कर गला देते हैं. मैं ने प्रभुदयालजी से कहा कि यदि हमें यहां से एकएक मोटर भारत ले जाने की इजाजत अपनी सरकार से मिल जाती है तो सारे विश्वभ्रमण का खर्च आसानी से निकल जाता.

वाशिंगटन से जिस बस में हम रवाना हुए उस में रामकुमारजी को जगह नहीं मिल पाई थी. इसलिए न्यूयार्क के बस पड़ाव पर हम उन की प्रतीक्षा में रुके रहे. ठीक १५ मिनट बाद वे दूसरी बस से उतरे. इन १५ मिनटों में हम ने जो हुजूम वहां देखा, वह हमारे लिए एक नया अनुभव था.

इस के पहले विश्व के प्रायः सभी देशों की यात्रा कर चुका था. लंदन, पेरिस, वियना, स्टाकहोम, र्बालन, रोम, मास्को, टोकियो आदि देख चुका था. अमरीका के बड़े शहरों में लॉस एंजिल्स, सेनफ्रांसिस्को और शिकागो भी इस यात्रा में मैं ने देख लिया था. लेकिन यहां आ कर ऐसा लगा कि जनसमुद्र में मानो हम खो गए हों. अमरीका के हर हिस्से से बसें आ रही थीं और जा रही थीं. इन के ठहरने के लिए तीन मंजिलों का एक विशाल स्टेशन था. हम ने अपना कुछ सामान तो स्वयं ही उठा लिया और कुछ एक गोरे मजदूर को दिया. सामान टैक्सी में रखे जाने के बाद उसे जब एक डालर (साढ़े सात रुपये) दिया तो वह बड़बड़ाने लगा. आधा डालर और दे कर हम ने अपना पिंड छुड़ाया. हमारे यहां तो इतने सामान के बारह आने देने पर मजदूर खुश हो जाते हैं. हमें पता चला कि यहां स्टेशनों के मजदूर जिन्हें अपने यहां कुली कहते हैं, प्रति दिन लगभग सौ सवासौ की आमदनी कर लेते हैं. मजदूरी इतनी ज्यादा है कि लोग सफर

में सामान कम रखते हैं.

वाशिंगटन से ही हमारे लिए न्यूयार्क के हिल्टन होटल में आवास की व्यवस्था करा दी गई थी. हिल्टन को विश्व का होटल किंग कहते हैं. उचित खर्च में इन होटलों में सब तरह की सुविधाएं मिल जाती हैं. भारत सरकार भी इन के साझे में कलकत्ता, बंबई और दिल्ली में होटल खोलने की बात कर रही है.

न्यूयार्क में हमारा कार्यक्रम छः दिन तक ठहरने का था. इसी बीच वहां विश्व मेला भी देख लेना था. गाइड बुक देखने पर ऐसा लगा कि यदि हम रातदिन मोटर में घूमते रहें तो भी इस महानगर को पूरी तरह से इन छः दिनों में नहीं देख सकेंगे. मुझे उन अमरीकन यात्रियों की याद आ गई जो हवाई जहाज से बंबई उतरते हैं, रात में ताज होटल में खाना खाते हैं, दूसरे दिन सुबह हवाई जहाज से दिल्ली पहुंचते हैं. कुतुबमीनार, हुमायूं का मकबरा, राजघाट और चांदनी चौक घूम कर उसी दिन शाम को आगरे जा कर ताजमहल को चांदनी रात में देखते हैं और सुबह हवाई जहाज से ही वाराणसी के घाट देख कर उसी दिन दूसरे जहाज से कलकत्ता पहुंच जाते हैं. कलकत्ता में कालीघाट और नीमतल्ले के श्मशान के फोटो ले कर सारे भारत की यात्रा पूरी कर लेते हैं. अमरीका की हमारी यात्रा अब तक बहुत कुछ इसी तरीके की रही. भारत सरकार ने जितनी विदेशी मुद्रा हमें दी थी उस से अधिक पाना संभव भी न था. फिर भी हम जहां कहीं भी गए, हमें अपने व्यापारिक संबंधों के कारण उन के देश से परिचित होने में काफी मदद मिली. भारतीय दूतावास का भी सहयोग हमें हर प्रकार से मिला जिस से हम अमरीका के उद्योगधंधों के विकास के अलावा वहां के जनजीवन की जानकारी प्राप्त कर सकें.

न्यूयार्क में भारतीय टी बोर्ड की एक शाखा है. हमारे दूतावास के अंतर्गत वाणिज्यव्यापार विभाग के सचिव भी यहां रहते हैं. शहर देखने और उद्योग-व्यापार संबंधी विविध बातों को जानने की हर तरह की सुविधा इन से हमें मिली. इस के अलावा कलकत्ता के हमारे मित्र बी.पी. खेतान से भी यहां भेंट हो गई. उन के सुपुत्र भी उन दिनों किसी स्थानीय व्यापारी फर्म में काम कर रहे थे एवं सपत्नीक रहते थे. उन की पत्नी मेरे मित्र की पुत्री है. उन्होंने हमें कई प्रकार की भारतीय मिठाइयां और अचारमुरब्बे भेजे. सुदूर विदेश में स्नेह और श्रद्धा भरा 'ताऊजी' शब्द सुनने में अच्छा लगा.

न्यूयार्क के भारतीय वाणिज्य कौंसिल के सचिव ने बैंक आफ अमरीका के लिए कार्यक्रम निश्चित कर रखा था. यह विश्व का सब से बड़ा बैंक है. इस की कुल कार्यवाहक पूंजी ११,००० करोड़ है जो हमारे स्टेट बैंक तथा सारे निजी बैंकों की कुल पूंजी से चौगुनी है. बयालीस मंजिल के निजी शानदार भवन में बैंक का प्रधान कार्यालय है. जिस फुरती के साथ काम हो रहा था उसे देख कर आश्चर्य हुआ. अपने देश के बड़े से बड़े बैंकों में भुगतान के लिए रुकना पड़ता है. लोग बेंचों पर सोते रहते हैं या हथेली पर अंगूठे से खैनी को मसलमसल कर समय बिताने की चेष्टा करते हैं. इस बैंक के विभिन्न भागों को देखा, सभी जगह शांति, स्वच्छता और यंत्रवत कार्य.

वाल स्ट्रीट जहां एक मिनट में करोड़ों अरबों का नफा नुकसान हो जाता है.

हमें अमरीका की अर्थव्यवस्था के बारे में समझना था. बैंक के प्रेसिडेंट ने अपने यहां के ऊंचे अफसरों के साथ हमें काफी पिलाई और इस विषय पर चर्चा होती रही. इस के बाद वे हमें बैंक के एक पृथक कक्ष में ले गए. यह उन का रिसर्च चेंबर था. यहां न केवल अमरीका, बल्कि विश्व के सब छोटेबड़े देशों की वित्तीय संस्थाओं, वाणिज्यव्यापार आदि के संबंध में सारे आंकड़े उपलब्ध थे. उन के अलगअलग सारांश पट थे, जो पृष्ठों की तरह खंभों पर लगे थे. जिस तरह हम पुस्तक के पृष्ठों को उलटते हैं, ठीक उसी तरह आवश्यकतानुसार इन्हें उलट कर अपने विषय को ढूंढ़ निकालने में कठिनाई नहीं होती. बैंकों ने इसी विभाग के लिए कई विशेषज्ञ रखे हैं जो वित्तीय गवेषणा में लगे रहते हैं और इस विभाग के जरिए आधुनिकतम जानकारी देते रहते हैं. रिसर्च कक्ष में हमें करीब डेढ़ घंटा लगा. अनेक प्रश्न किए जिन के उत्तर हमें विभाग से संतोषजनक मिले.

उन के रिकार्ड विभाग से हमें जो सूचनाएं मिलीं वे जनसाधारण को तो यूटोपिया के बजट अथवा अलीबाबा का 'खुलजा समसम' लगेगा, पर वास्तविकता यह है कि ये प्रामाणिक और तथ्यपूर्ण हैं. यहां के दो जीवन बीमा निगम मेट्रोपोलिटन और प्रूडेंशियल की कार्यवाहक पूंजी क्रमशः १६,००० और १५,५०० करोड़ रुपयों की है जब कि हमारे देश की सारी बीमा कंपनियों को मिला कर राष्ट्रीयकरण करने पर जो जीवन बीमा निगम बना है उस की केवल ९५० करोड़ की है.

हमारे देश की तरह अमरीका में टेलीफोन और रेलें सरकारी क्षेत्र की नहीं, बल्कि निजी क्षेत्र में हैं. इन में आपस में होड़ रहती है कि कौन कितनी अधिक सुविधा अपने ग्राहकों को देती है. इन कंपनियों की आर्थिक दशा के बारे में जान कर चकित हो जाना पड़ता है. अकेली अमरीकन टेलीफोन कंपनी की पूंजी लगभग ८,००० करोड़ रुपए की है. उन के वार्षिक बिल दो खरब ३० अरब रुपए (२३,००० करोड़ रुपए) के बनते हैं. इन का शुद्ध लाभ १,२०० करोड़ रुपए का है. केवल न्यूयार्क शहर की जो पैसिफिक गैस कंपनी है, उसे गैस के बिलों से २,५०० करोड़ रुपए वार्षिक मिलते हैं और ७५ करोड़ का वार्षिक लाभ होता है. इस से अंदाज लगाया जा सकता है कि वहां औसतन प्रति व्यक्ति २५० रुपए मासिक तो केवल गैस पर खर्च करता है.

जनरल मोटर्स कारपोरेशन जिन की शेवरलेट गाड़ियां भारत में पहले आयात होती रही हैं, इसकी सालाना बिक्री १२७ अरब ५० करोड़ की और मुनाफा १,३०० करोड़ का है. इन के बाद का स्थान है—स्टैंडर्ड आयल (राकफेलर प्रतिष्ठानों) की चार शाखाओं का, जिन की बिक्री ११६ अरब और मुनाफा १२ अरब का है. इन में से प्रत्येक की बिक्री हमारे देश के सरकारी और निजी सारे उद्योगों की चौगुनी से भी अधिक है.

इन आंकड़ों को देख कर मैं दंग था. अपने देश के बारे में सोचता भी जा रहा था. हमारे यहां यदि किसी प्रतिष्ठान का कुल उत्पादन बीसपचीस करोड़ का भी हो जाता है तो फौरन वामपंथियों के नारे उसे मुनाफाखोरी और एकाधिकारी करार दे देते हैं. राष्ट्रीयकरण करने के लिए दबाव डाले जाते हैं. सरकार भी एकाधिकरण की रोकथाम के लिए जांच समिति बैठा देती है. फलाफल कुछ भी हो, पर इतना जरूर है कि उद्योगपति या व्यापारी का हौसला बैठ जाता है. और, उन में से अधिकांश को नए कारखाने लगा कर उत्पादन बढ़ाने में उत्साह नहीं रह जाता. राष्ट्र के विकास में ऐसी मनोवृत्ति कितनी घातक हो सकती है इसे बताने की आवश्यकता नहीं.

हम ने न्यूयार्क शहर की वार्षिक आय के बारे में पूछा तो रिसर्च चैंबर के एक अधिकारी ने वृत्ताकार लगे बोर्डों में से एक बोर्ड के पास ले जा कर उस के आंकड़े दिखाए. हम ने देखा कि शहर के वार्षिक खर्च का बजट ३,००० करोड़ रुपए का है. हम इस की तुलना कलकत्ता से करने लगे तो न्यूयार्क का लगभग तीन चौथाई है और बजट केवल दसग्यारह करोड़ रुपए का. न्यूयार्क के मेयर और चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर का मासिक भत्ता २५,००० रुपए और कौंसिलरों का ६,००० रुपए है. नगर निगम शिक्षा पर ६०० करोड़ एवं स्वास्थ्य और सफाई पर ३०० करोड़ रुपए व्यय करता है. शहर के मकानों से निगम को ८०० करोड़ टैक्स के रूप में मिल जाते हैं. सन १९६२ में यहां के मकानों की कीमत २०,००० करोड़ कूती गई थी. मकानों के टैक्स के अलावा अन्य करों से निगम को लगभग २,२०० करोड़ की वार्षिक आय हो जाती है. हमारे संपूर्ण देश के बजट से अकेले न्यूयार्क शहर का बजट कहीं ज्यादा है. वास्तव में ही अरबखरब की नगरी है न्यूयार्क.

न्यूयार्क के प्रसिद्ध डिपार्टमेंट स्टोर 'मैकी' में लोग खरीदारी करते हुए

आर्थिक या वित्तीय जानकारी के अलावा अमरीका की कृषि संबंधी आवश्यक बातों की जानकारी हमें लेनी थी. एक दूसरी ओर सजे बोर्डों के पास हमें ले जाया गया. वहां हमें सारे आंकड़े मिलते गए.

कृषि में भी अमरीका विश्व में सब से आगे है. यहां के किसान संपन्न और सुखी हैं. इन की कृषि संपत्ति करीब १५ खरब रुपयों की है. अमरीकन उद्योगपतियों की तरह वहां के कृषक भी धनीमानी हैं. विश्व के सब से बड़े धनी राकफेलर के एक पुत्र केवल कृषि कार्य करते हैं.

अमरीका की एक विशेषता रही है कि औद्योगिकीकरण की होड़ में वहां के लोगों ने और शासन ने कृषि की उपेक्षा नहीं की. यही कारण है कि अमरीका आज विश्व का अन्न भंडार है. अन्य देश कृषि के महत्त्व को बाद में समझ पाए और हम तो बहुत ही देर से. ४० वर्ष पूर्व अमरीकन किसान जितना उपजाता था उस से आज पांच गुना अधिक अनाज पैदा करता है और प्रति एकड़ कृषि उत्पादन ६० से ७० प्रति शत बढ़ गया है. आंकड़ों को देख कर आश्चर्य हुआ कि यहां के कृषक प्रति वर्ष २,३५० करोड़ रुपए खेती के लिए ट्रैक्टर और अन्यान्य औजारों के खरीदने में लगाते हैं, १,१०० करोड़ रुपए के डीजल और ८०० करोड़ रुपए की खाद खरीदते हैं. पिछले वर्ष वहां गेहूं, मकई तथा अन्य अनाजों की उपज बीस करोड़ टन के लगभग थी, जो अमरीका की जनसंख्या की छः वर्षों की आवश्यकता के लिए पर्याप्त थी. पशुओं के लिए सूखा घास भी १२ करोड़ टन पैदा हुआ. यहां घास की खेती भी अनाजों की तरह यत्नपूर्वक की जाती है, जिस के लिए अलग ही जमीन रखते हैं और अनेक प्रकार के प्रयोगों द्वारा इस की पैदावार और किस्म को उन्नत करते हैं. अमरीका घूमते समय हम ने यह लक्ष्य किया था कि उत्पादन, और अधिक उत्पादन अमरीकी उद्योगों का उद्देश्य रहता है. अमरीकी सरकार इसे कृषि के क्षेत्र में प्रोत्साहन नहीं देती, क्योंकि इससे कृषिउत्पादन इतना अधिक हो जाता है कि कीमतों को कायम रखने के लिए अतिरिक्त उत्पादन सरकार को

खरीदना पड़ता है और कभीकभी तो इसे खरीद कर नष्ट कर देना पड़ता है.

इन आंकड़ों को देखसुन रहा था और मेरी आंखों के सामने से उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उड़ीसा के किसानों के भूख से पीड़ित बच्चे, बूढ़े तथा स्त्रियों की शकलें गुजरती जा रही थीं.

लंच का समय हो गया था. हम ने बैंक के प्रेसिडेंट एवं अन्य कार्यकर्ताओं का अभिवादन कर उन से विदा ली. भुवालकाजी की सलाह के अनुसार हम एक सेल्फ सर्विस रेस्तरां में भोजन के लिए गए. ऐसे रेस्तरां में खानसामे या बेयरे नहीं रहते. स्वयं अपनी पसंद के अनुसार रकावियों में चीजें ले ली जाती हैं और काउंटर पर बैठी लड़कियों को दाम चुका कर वहीं सजी मेजों पर बैठ कर भोजन करते हैं. हम ने देखा, हमारी तरह ही सैकड़ों अमरीकन भी वहां लंच ले रहे थे. अमरीका में मजदूरी बहुत है, इसलिए ऐसे रेस्तरां में दूसरे बड़े भोजनालयों की अपेक्षा चार्ज बहुत कम लगता है. जहां तक मुझे याद है, हम तीनों का बिल केवल तीस रुपए के लगभग हुआ था.

लंच के बाद हम विश्व के सब से बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर्स 'मैंकी' में गए. यों तो टोकियो और शिकागो में हम ने बड़ेबड़े स्टोर्स देखे थे, लेकिन वे इस के मुकाबले में खिलौने से थे. हम ने यहां चीजें तो केवल डेढ़दो सौ रुपए की खरीदीं, लेकिन स्टोर्स की सभी मंजिलों पर स्वचल सीढ़ियों में जा कर विभिन्न क़क्षों को देखा. कहीं फलों का बाजार लगा था तो किसी ओर चिड़ियां और छोटे पालतू जानवर थे. एक कक्ष में नाना प्रकार की रंगबिरंगी मछलियां आकर्षक शीशे के हौजों में खेल रही थीं. दूसरी मंजिल पर पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की पोशाकें सजी हुई थीं. हमें आश्चर्य हुआ कि यहां बनारसी कलाबत्तू की साड़ियां भी थीं. सुनने में आया कि आधुनिक अमरीकन महिलाएं इन के गाउन पहनती हैं और फैंसी ड्रेस के प्रोग्रामों में तो भारतीय पोशाकें भी पहनी जाती हैं.

शाम के छः बज गए, पर मैंकी का स्टोर्स आधा भी नहीं देख पाए. यहां के विभिन्न विभागों और वस्तुओं के वर्णन में समय नहीं लेना चाहता, केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस की दैनिक बिक्री डेढ़ करोड़ रुपए की है. सेल्स गर्ल्स बहुत कम हैं. प्रत्येक वस्तु का मूल्य लिखा रहता है, चीजें लेते जाइए, काउंटर पर एकसाथ दाम जोड़ लिया जाता है.

न्यूयार्क अमरीका का ऐसा शहर है जहां की विभिन्न प्रकार की जनसंख्या संयुक्त राज्य के पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है. इस बात में यह कलकत्ते से बहुत कुछ मिलताजुलता है. न्यूयार्क का वैभव, व्यस्त जीवन, और अमीरी-गरीबी देख कर हैरत होती है.

हम तय नहीं कर पा रहे थे कि न्यूयार्क में क्या देखें और क्या छोड़ें. टी बोर्ड के श्री अहमद ने प्रोग्राम बना दिया. समय की बचत के साथसाथ समस्या का हल निकल आया. हम घूमने निकल पड़े. सर्वप्रथम स्वाधीनता की प्रतिमा देखने गए.

बंदरगाह के प्रवेश पथ पर एक छोटा सा द्वीप है. उसी पर स्वाधीनता की मूर्ति प्रतिष्ठित है. संयुक्त राज्य का जन्म ही साम्राज्यवाद के विरोध में हुआ

फ्रांस की जनता द्वारा स्वतंत्रता के उपलक्ष्य में उपहार स्वरूप दी गई स्वतंत्रता की मूर्ति

था. यही कारण है कि साधारण अमरीकी भले ही देशविदेश की राजधानियों में कम रुचि रखें लेकिन दूसरे देशों की स्वाधीनता की रक्षा करना और कम्युनिज्म के प्रसार की रोकथाम में मदद देना वे अपना कर्तव्य समझते हैं—चाहे वह पड़ोसी क्यूबा हो या सुदूर पूर्व का वियतनाम या कोरिया. स्वाधीनता की यह प्रतिमा उन की आंतरिक भावना को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है.

अब तक इतनी बड़ी मूर्ति मैं ने कहीं नहीं देखी. मिश्र के स्फिंक्स देखने पर अनुमान था कि शायद इस से बड़ी मूर्ति अन्यत्र न होगी. लेकिन इस के मुकाबले में तो वह आधी ही है. इस प्रतिमा को देख कर मेरी धारणा कुछ ऐसी बनी कि भविष्य में शायद ही इस ढंग की मूर्ति बनाई जा सके, क्योंकि आज के संसार में व्यक्ति का महत्त्व भावना से अधिक बढ़ रहा है. अतएव, नेताओं की बड़ीबड़ी मूर्तियां भले ही बन जाएं लेकिन स्वाधीनता, मुक्ति, शांति, शक्ति आदि के प्रतीक बनाने

के प्रति इस भौतिकवादी युग में प्रेरणा मुश्किल से ही मिलेगी.

वैसे दूर से भी यह मूर्ति बहुत ही आकर्षक लग रही थी, पर ज्योंज्यों हम इस के पास आ रहे थे त्योंत्यों इस की विशेषताएं स्पष्ट होती गईं. १५१ फीट ऊंची स्वतंत्रता की देवी गुलामी की जंजीरों को तोड़ कर हाथ में जलती मशाल ले कर स्वाधीनता का संदेश दे रही है. १४२ फीट ऊंचे मंच पर इस को रखा गया है. दाहिने हाथ में जलती मशाल ऊंची किए है. और बांए हाथ में स्वाधीनता का घोषणापत्र है. उस पर खुदा हुआ है: '४ जुलाई, १७७६.'

प्रतिमा तांबे की चादरों से बनी है, जिन्हें लोहे के ढांचे पर मढ़ा गया है इस का कुल वजन ५,५०० मन है. दाहिना हाथ, जिस में वह मशाल लिए हुए है, समुद्र की सतह से करीब ३०० फीट की ऊंचाई पर है. हाथ की लंबाई ४२ फीट और घेरा १२ फीट है. सिर दस फीट चौड़ा है, जिस पर कांटे का ताज है. ताज इतना बड़ा है कि ४० आदमी आसानी से उस पर खड़े हो सकते हैं. दोनों आंखों के बीच का फासला है ढाई फीट और नाक साढ़े चार फीट लंबी है. होंठ कुछ खुले से हैं, मानो कुछ कह रहे हों. होंठों की आपसी दूरी तीन फीट है. मशाल में १२ आदमी खड़े हो सकते हैं. इस विशालकाय मूर्ति के अंदर घुमावदार १६८ सीढ़ियां हैं. दर्शक इन पर से सिर तक चढ़ते हैं.

यह मूर्ति फ्रांस की जनता द्वारा भेंट में दी गई थी. इस के लिए १८७९ में दस लाख फ्रैंक का चंदा फ्रांसीसी जनता ने इकट्ठा किया था. ४ जुलाई, १८८४ को उन्हीं के द्वारा पेरिस में इसे अमरीकी जनता को भेंट किया गया.

फ्रांस भ्रमण के समय मैं ने यह लक्ष्य किया कि विलासिता और मौजमस्ती में यद्यपि फ्रेंच सदियों से डूबे रहे लेकिन स्वतंत्रता के प्रति उन के हृदय में सदैव श्रद्धा रही है. विदेशों में जहां कहीं संकट काल में उन की सहायता मांगी गई, फ्रांसीसी जनता ने स्वेच्छापूर्वक अपनी सेवाएं अर्पित की हैं. इस मूर्ति की स्थापना में करीब एक वर्ष का समय लगा, क्योंकि अमरीका के पास उन दिनों इतना भी धन नहीं था कि इस के लिए मंच बना सकता. अतएव, जब तक धन एकत्र नहीं किया जा सका, यह पेरिस में ही पड़ी रही. आज यह जान कर कुछ आश्चर्य तो जरूर होता होगा कि कुबेरों की नगरी न्यूयार्क के नागरिक आज से अस्सीबयासी वर्ष पहले इतने निर्धन थे कि उन दिनों न्यूयार्क के समाचारपत्रों में धनसंग्रह के लिए अपीलें निकला करती थीं. अंत में १८८५ को यह मूर्ति २१४ पेटियों में बंद कर अमरीका भेजी गई और २ अक्टूबर, १८८६ में अमरीकी राष्ट्रपति क्लीवलैंड ने इस स्मारक की प्रतिष्ठा की.

हम मूर्ति के ऊपर नहीं गये, क्योंकि हमें राष्ट्र संघ जाना था.

रोम में वैटिकन नगर का जो स्थान है उसी तरह संयुक्त राष्ट्र संघ का न्यूयार्क में है. शहर के पास बहती हुई ईस्ट नदी के किनारे इस का भवन है. ३९ मंजिलों का यह भवन न्यूयार्क की अन्य इमारतों से वास्तुशिल्प के दृष्टिकोण से सर्वथा भिन्न है. विभिन्न राष्ट्रों ने जिस लगन और उत्साह से इस भवन के निर्माण में सहयोग दिया, काश, वही भावना विश्व की शांति, स्वाधीनता और सुरक्षा के लिए बनी रहती तो संसार को स्वर्ग बनाया जा सकता था.
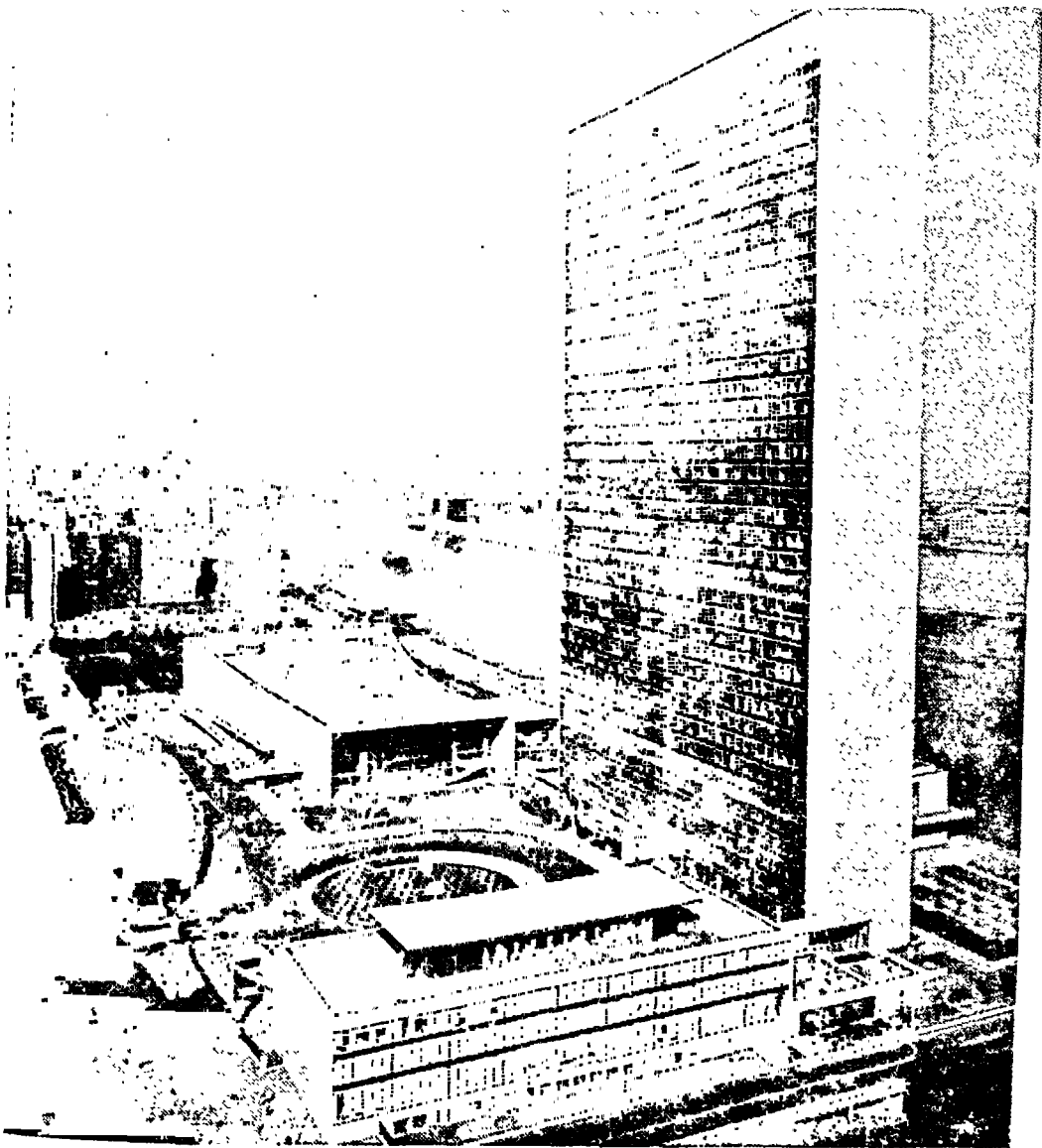
राष्ट्र संघ प्रधान कार्यालय, बीच में सभा भवन, व सामने डाग हैमरशोल्ड पुस्तकालय

राष्ट्र संघ का यह भवन ५४४ फीट ऊंचा, २८७ फीट चौड़ा है. १८ एकड़ की हरियाली के बीच आसमान को छूती हुई इस इमारत को देख कर मन में तरह-तरह की भावनाएं उठने लगती हैं. भवन के ऊपर राष्ट्र संघ का नीले रंग का झंडा फहरा रहा था और उस पर अंकित भूमंडल मानो नाच रहा था. मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "देखिए, नीले आसमान के बीच सफेद भूमंडल कितना सुहावना लग रहा है!"

हम भवन के अंदर दाखिल हुए. भीतर की साजसज्जा में सौष्ठव था. यह भी देखने में आया कि यहां पांच राजभाषाओं को मान्यता दी गई है. अंग्रेजी, फ्रांसीसी, स्पेनी, चीनी और रूसी. आश्चर्य तो नहीं पर खेद अवश्य हुआ कि यहां स्पेन जैसे साधारण राष्ट्र की भाषा को तो मान्यता दी गई है लेकिन ५० करोड़ के देश की भाषा हिंदी का कोई स्थान नहीं है. मेरी धारणा है कि हमारी सरकार

की ओर से यदि समुचित प्रयास किया जाए तो संसार की इतनी बड़ी आबादी की राजभाषा को राष्ट्र संघ में स्थान अवश्य मिल सकता है.

इस भवन में सम्मेलन सदन, बृहद परिषद, सचिवालय, पुस्तकालय आदि सभी दर्शनीय हैं. राष्ट्र संघ की बैठकें तो विश्व में कहीं भी हो सकती हैं, लेकिन कौंसिल (सुरक्षा परिषद), जनरल असेंबली (बृहद परिषद), कमेटियों और आयोगों की बैठकें यहीं होती हैं. राष्ट्र संघ का अंतरराष्ट्रीय न्यायालय हालैंड के हेग नगर में है. स्विट्जरलैंड इस का एक कार्यालय है, जहां पहले लीग आफ नेशन्स था.

राष्ट्र संघ के सचिवालय में महामंत्री के कार्यालय के अतिरिक्त सात अन्य विभाग हैं. बृहद परिषद को छोड़ कर राष्ट्र संघ के अंतर्गत पांच और संस्थान हैं. राष्ट्र संघ के चार उद्देश्य हैं : अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बनाए रखना, राष्ट्रों में पारस्परिक सम्मान, स्वाधीनता की भावना और मैत्री को प्रोत्साहन देना, विभिन्न समस्याओं को पारस्परिक सहयोग से हल करना और मानव अधिकार व स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील होना. समान लक्ष्य एवं उद्देश्यों की प्रतिष्ठा और संघटन.

राष्ट्र संघ की स्थापना २४ अक्टूबर, १९४५ को हुई और तभी से यह दिन संसार के सभी राष्ट्रों द्वारा संयुक्त राष्ट्र दिवस के रूप में मनाया जाता है.

राष्ट्र संघ को आज भले ही उतनी सफलता नहीं मिल पाई जितनी कि आशा की जाती थी, फिर भी यह तथ्य है कि इस के प्रयास ने भीषण रक्तपात और विनाश से विश्व को कई बार संभाला है. अरब, इसराइल, उत्तरदक्षिण कोरिया, कांगो आदि की उलझनों को बढ़ने न देने के कारण राष्ट्र संघ युद्ध जर्जरित विश्व में बधाई का पात्र है.

उन दिनों अधिवेशन नहीं था, इसलिए हम किसी बैठक की काररवाई नहीं देख पाए. गाइड ने हमें बताया कि वक्ता चाहे किसी भाषा में बोलते हों, श्रोता उन के भाषण को अपनी ही भाषा में सुन लेते हैं, क्योंकि भाषण का अनुवाद साथ-साथ होता रहता है. जिस भाषा में अनुवाद सुनना हो, उस का बटन दबा दिया जाता है, कान में रिसीवर से वही भाषा सुनी जा सकती है. हमारे यहां नई दिल्ली के विज्ञान भवन और संसद के दोनों सदनों में भी इस प्रकार की व्यवस्था है.

राष्ट्र संघ का भवन १८ एकड़ के क्षेत्रफल में है. वह जमीन हांगकांग की हालीवुड स्ट्रीट को छोड़ कर संसार में सब से कीमती है. इसे अमरीका के प्रसिद्ध धनकुबेर राकफेलर (जूनियर) ने ६५ करोड़ रुपए में खरीद कर भेंट में दी थी. न्यूयार्क में रहते हुए भी यह क्षेत्र अमरीकी कानून और नियमों में नहीं है. वेटिकन की तरह यहां भी अपने कानूनकायदे हैं. यहां पैर रखते ही व्यक्ति अंतरराष्ट्रीय धरती पर आ जाता है. यहां के डाकघर में राष्ट्र संघ की टिकट लगा कर आप विश्व में कहीं भी पत्र भेज सकते हैं.

लंच का समय हो रहा था. खेतानजी के अमरीकन व्यापारी मित्र केरलैंडर ने हमें टाइम एंड लाइफ भवन के बहुत महंगे रेस्तरां में भोजन का निमंत्रण दिया

था. हम ने सुना था कि यह रेस्तरां महंगा तो जरूर है पर है नायाब.

जैसे ही रेस्तरां के दरवाजे पर पहुंचे, अपनेआप खुल गया. फिर भीतर जाते ही स्वयं बंद हो गया. ४२ तल्ले के विशाल भवन की सब से ऊंची मंजिल पर रेस्तरां है. भोजन करने में कम से कम डेढ़दो घंटे लग जाना मामूली बात है. ऊंचे दरजे के नृत्य और संगीत का क्रम चलता रहता है. अमरीकी सार्वजनिक एवं सामाजिक जीवन में रेस्तरांओं का बहुत महत्त्व है. मैत्री, व्यापार, राजनीति, गीत, संगीत और भोजन साथसाथ चलते रहते हैं. लास एंजिल्स, सेनफ्रांसिस्को, वाशिंगटन, शिकागो सभी जगह ऐसी प्रथा देखने में आई. ऐसे रेस्तरांओं में आम तौर पर नकद भुगतान नहीं किए जाते क्योंकि खाने वाले डाइनर्स क्लब या अमरीकन एक्सप्रेस के सदस्य होते हैं. वे सिर्फ बिल पर अपने सदस्यता कार्ड का नंबर लिख कर हस्ताक्षर कर देते हैं.

भोजन के समय केरलैंडर ने हमारा बहुत ही ध्यान रखा. उन्हें हमारे शाकाहारी होने की जानकारी थी. बातचीत के दौरान अमरीकी उद्योगों के बारे में कुछ ऐसी बातें जानने में आईं, जिन की चर्चा अब तक हम ने नहीं सुनी थी. संयुक्त राज्य में लगभग ९०,००,००० शेयर होल्डरों में से आधी से अधिक संख्या महिलाओं की है. हमारी यह धारणा थी कि अमरीकन कंपनियों के शेयरहोल्डर धनाढ्य ही होते होंगे, पर यहां सुना कि अमरीका में १० लाख ऐसे शेयर होल्डर हैं, जिन की औसत वार्षिक आय ४०,००० रुपए से भी कम है. इस के अलावा १२ करोड़ व्यक्ति जीवन बीमा, युनिट ट्रस्टों या पेंशन निधि के जरिए अप्रत्यक्ष रूप से कंपनियों के शेयरहोल्डर हैं. स्थानस्थान पर पूंजीनिवेशक क्लब हैं. इन के जरिए छोटे खरीददार उन में पैसे जमा कर नियमित रूप से शेयर खरीदते रहते हैं. इस तरह की अनेक योजनाएं चल रही हैं. कर्मचारी शेयर खरीद योजनाओं के अंतर्गत कर्मचारियों को भी अपनी कंपनियों के शेयर खरीदने की सुविधा है. अमरीकन टेलीफोन एंड टेलीग्राफ कंपनी के करीब ढाई लाख कर्मचारियों के पास और सोकोनी मोबिल कंपनी के ९० प्रति शत कर्मचारियों के पास अपनीअपनी कंपनियों के शेयर हैं. हम लोगों ने भी अपने देश में १९६४ से यूनिट ट्रस्ट की स्थापना की है. इस का संचालन सरकार द्वारा होता है और उद्देश्य है जनसाधारण बचत कर इस के हिस्सों में रुपए लगाए.

चर्चा के बीच में मैं ने प्रश्न किया कि यदि कर्मचारी ही कंपनी के मालिक बन गए तो क्या होगा? सहज उत्तर मिला, "तब तो सारा झगड़ा ही खत्म हो जाएगा. हड़तालों का डर नहीं रहेगा, क्योंकि कंपनी के मालिक हड़ताल करेंगे कैसे?

शिकागो और न्यूयार्क में मैं ने यह लक्ष्य किया कि अमरीकन प्रणाली में उद्योगों के राष्ट्रीयकरण द्वारा राजनीति और अर्थनीति को मिलाने की प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि यह प्रयत्न रहता है कि उन का स्वामित्व अधिक से अधिक व्यक्तियों के हाथ में बांट दिया जाए ताकि राष्ट्रीयकरण की बजाय उनका लोकतंत्रीकरण हो जाए. हम जब जुलाई १९६४ में वहां थे तब सुना था कि जनरल मोटर्स के एक बड़े हिस्सेदार डू पौंट के शेयर सरकारी आदेश से बिकवा दिए गए थे. अमरीकन शेयर बाजारों

की स्थिरता और दृढ़ता से छोटी पूंजी लगाने वालों को बहुत प्रोत्साहन मिला है. उन्हें नियमित रूप से लाभांश मिलते रहे हैं और उन्होंने यह अनुभव किया कि गत ३० वर्षों में जहां पैसे की क्रय शक्ति घट कर करीब आधी हो गई, शेयरों की कीमत दोगुनी तिगुनी हो गई है. मैं सोचने लगा कि हमारे यहां रुपए की क्रय शक्ति इन ३८ वर्षों में दशमांश ही रह गई, पर अधिकतर शेयरों के दाम उसी अनुपात में बढ़ने की बजाए आधे रह गए हैं. हमारे देश के अर्थशास्त्रियों के लिए यह गंभीर अनुशीलन का विषय है, क्योंकि इस से शेयरों में पूंजी का नियोजन होना बंद हो गया और देश की मुद्रा स्फीति बढ़ गई. वहां इन छोटेछोटे निवेशकों की बूंदबूंद कर लगाई पूंजी ने बड़ेबड़े उद्योगपतियों के प्रभाव को कम कर दिया है. यह भी पता चला कि आज यहां के बड़ेबड़े औद्योगिक प्रतिष्ठान वाल स्ट्रीट के पूंजीपतियों के पास बिना गए स्वयं ही आवश्यक पूंजी का प्रबन्ध कर लेते हैं.

इस डेढ़ घंटे के दौरान अमरीका की वर्तमान आर्थिक अवस्था और व्यवस्था के बारे में बहुत सी तथ्यपूर्ण बातों की जानकारी हुई.

हाथ धोने के बाद बेसिन से स्वतः निकलती सुगंधित गरम हवा ने गीलापन मिटा दिया, तौलिए की जरूरत न रही. वेटर जब बिल ले कर हमारे मेजबान की सही लेने आया तो मैंने झांक कर देखा कि हम छः व्यक्तियों के खाने का चार्ज सात सौ था. दो दिन पहले हम ने सेल्फ सर्विस रेस्तरां में लंच लिया था, वहां लगा था दस रुपये प्रति व्यक्ति. मेनु और साजसज्जा में अन्तर अवश्य था, पर चार्ज के अनुपात में नहीं.

भोजन के बाद चार बजे मुझे टी बोर्ड के आफिस में जाना था. हम सभी विश्राम के लिए होटल वापस आ गए. शहर में आवागमन के नाना प्रकार के साधन हैं, बसें, टैक्सी और भूगर्भ ट्रेनें. केवल इतना ही नहीं आधुनिकतम हेलिकाप्टर सर्विस है तो स्टीमबोट भी. ये सारे इतने ज्यादा और सुविधाजनक हैं कि समय की बचत हो जाती है. कलकत्ता, बंबई और दिल्ली की तरह कतार लगा कर घंटों खड़े रहने का दृश्य कहीं भी नहीं दिखाई पड़ा. अरबपति मालिक और उस के कारखाने के मजदूर को एक ही बस या ट्रेन में अगलबगल बैठे देखना यहां साधारण सी बात है.

यहां की बड़ीछोटी सड़कें नामों की जगह नंबरों से हैं. जैसे, ५वीं एवेन्यू की ४५वीं सड़क का १३४वां मकान. लंबी और चौड़ी सड़कें एवेन्यू कहलाती हैं, इन्हें काटती हुई जो सड़कें हैं उन की संख्या करीब सौ सवा सौ है. इसलिए शहर में नए से नए व्यक्ति के भी खो जाने का डर नहीं रहता और बारबार पुलिस वालों से पूछने की जरूरत भी नहीं रहती है. टी बोर्ड का आफिस छठवीं एवेन्यू की ५२वीं सड़क के १०६ नंबर के मकान में था. मैं ने होटल से निकल कर सोचा कि पैदल ही चलूं. शहर को भी अच्छी तरह देख लूंगा और विभिन्न प्रकार के लोगों को भी देखनेसुनने का मौका मिल जाएगा.

छठवीं एवेन्यू की नौवीं सड़क के ५२वीं सड़क पहुंचा, वहां मकानों के नंबर देखता हुआ टी बोर्ड के दफ्तर में. जब मैं ने टी बोर्ड के श्री अहमद को अपनी इस शहरी पद यात्रा का हाल बताया तो बहुत हंसे, क्योंकि होटल से वहां तक पैदल
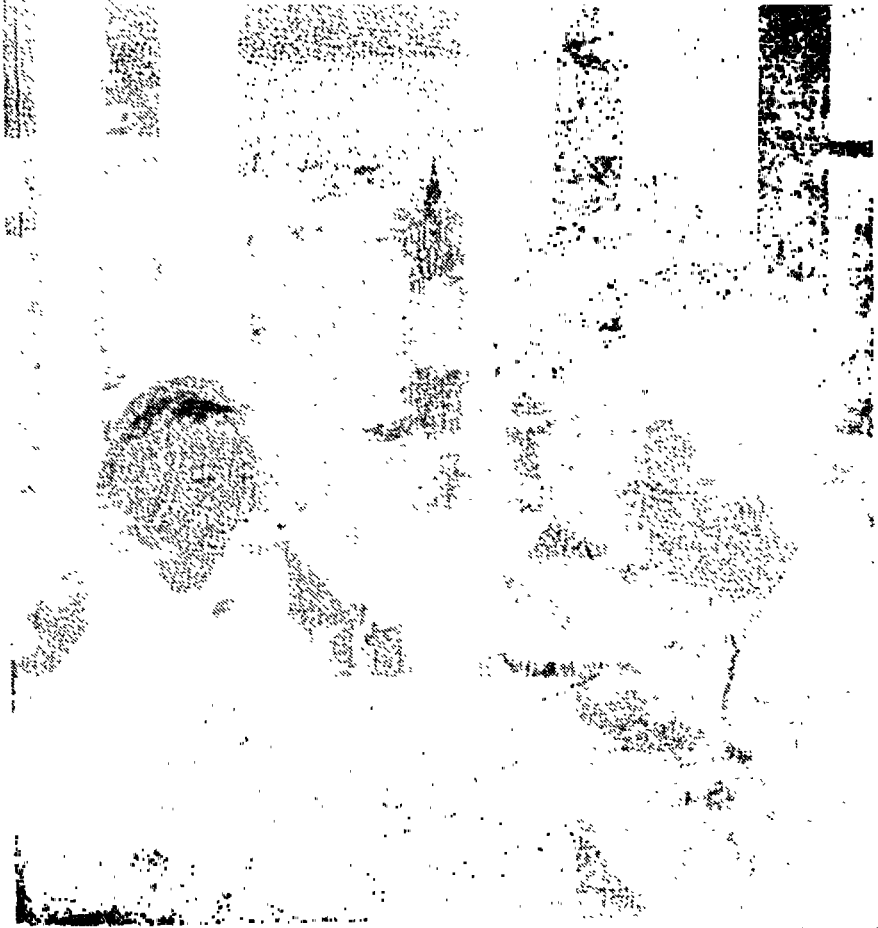
आरसीए बिल्डिंग की ६५वीं मंजिल पर रात का भोजन करते हुए न्यूयार्कवासी और पीछे बिजली में चमचमाती एम्पायर एस्टेट बिल्डिंग

जाने में डेढ़दो घंटे का समय लग जाना स्वाभाविक था. धनकुबेरों की नगरी में इतना फालतू समय किस के पास रहता है?

श्री अहमद जलपाईगुड़ी के नवाब के पुत्र हैं. बहुत ही मिलनसार और मेहनती. अपनी फ्रेंच पत्नी के साथ करीब तीन साल से यहां हैं. उन के घर भोजन का निमंत्रण समयाभाव के कारण स्वीकार न कर सका, पर उन के सौजन्य की याद आज भी ताजी है. न्यूयार्क के हमारे छोटे से प्रवास काल में उन्होंने गाइड के रूप में हमारी बड़ी मदद की. उन्होंने मुझे उपहार में चाय के डब्बे दिए, जो मैं ने अमरीका के विशिष्ट व्यक्तियों को भेंट कर दिए. मैं ने भी उन को देश से लाए हुए अचार और चिउड़े दिए, जिस के स्वाद की चर्चा वे मिलने पर जरूर कर देते थे, मानो मैं ने उन्हें कोई अमूल्य वस्तु भेंट कर दी थी.

टी बोर्ड का काम निपटा कर बस से होटल वापस आ गया. शाम हो रही थी. हम राकफेलर सेंटर देखने गए. कहते हैं एंपायर स्टेट बिल्डिंग न्यूयार्क का प्रथम आकर्षण है तो राकफेलर सेंटर दूसरा. उसे रेडियो सिटी भी कहते हैं या शहर में शहर कहा जा सकता है. इस केंद्र के अंतर्गत इतनी इमारतें हैं कि यहां पहुंच कर दर्शक खो जाता है. इंद्रधनुष कक्ष में बैठे भोजन-पान करते हुए

मैनहट्टन के दमकते आलोक को अपने चारों ओर देख कर एक विचित्र आनंद का अनुभव होता है.

हम रेडियो सिटी के संगीत भवन में गए. यह संसार का सब से बड़ा कला केंद्र है. यहां ६,५०० सीटें हैं. शो चलते ही रहते हैं. सिनेमा, संगीत, नृत्य, नाटक आदि कार्यक्रम एक ही मंच पर होते हैं. एक के बाद दूसरे मंच इस प्रकार उठते आते हैं मानो जमीन के अंदर से कलाकार ऊपर धरती पर आ रहे हों. दर्शक किसी भी कार्यक्रम में जा कर बैठ सकते हैं.

रेडियो सिटी को गगनचुंबी अट्टालिकाओं की नगरी कहना अत्युक्ति नहीं होगा. न्यूयार्क में जमीन बहुत महंगी है. व्यापार और उद्योग का केंद्र है, इसलिए दफ्तर और आबादी बहुत ज्यादा है. यही कारण है कि यहां ऊंचेऊंचे मकान बना कर जमीन की या स्थान की समस्या का समाधान किया गया है.

यहीं टेलीविजन और रेडियो विभाग हैं. रेडियो की तरह टेलीविजन के स्टूडियो और मंच हैं. इन पर अलगअलग कार्यक्रम होते रहते हैं और अमरीका के विभिन्न भागों में प्रसारित किए जाते हैं. रेडियो सिटी भवन के नीचे इतनी दुकानें हैं कि उसे रेस्तरां और दुकानों की निराली नगरी कहा जा सकता है. यहां भूगर्भ रेल का स्टेशन भी है जहां से न्यूयार्क के विभिन्न भागों में राकफेलर प्लाजा देखने के बाद जाया जा सकता है.

इस की शोहरत हम ने पेरिस और रोम में सुनी थी. सचमुच लंबीचौड़ी सड़क के दोनों ओर के ऊंचे मकानों ने इसे विश्व में बेजोड़ और शानदार महल्ला बना दिया है. यहां विश्व की मशहूर दुकानें हैं पर जो शानशौकत और मौजमस्ती पेरिस की साए लेंजा में हम ने देखी वैसी कहीं भी दिखाई नहीं दी. कहा जाता है, फैशन पैदा होता है फिफ्थ एवेन्यू में, पनपता है न्यूयार्क में और इठलाता है पेरिस में. यहीं प्रसिद्ध पुस्तक विक्रेता स्क्राइबनर में गया. अंगरेजी, फ्रेंच, जरमन स्पेनिश आदि यूरोपीय भाषाओं की पुस्तकें देखने में आईं. जापानी और कुछ चीनी पुस्तकें भी देखीं. मैं ने सहज भाव से पूछा, "भारतीय भाषा की कोई पुस्तक मिलेगी?" उस ने रवींद्र पर अंगरेजी की पांचसात किताबें दिखाईं. मैं ने बताया कि यह तो अंगरेजी है, मैं तो भारतीय भाषा की चाहता हूं. बेचारी लड़की हैरान थी. बड़ी नम्रता और कौतूहल से उस ने कहा, "क्या अंगरेजी भारत की भाषा नहीं है? भारतीय तो हमेशा अंगरेजी ही बोलते देखे गए, अंगरेजी किताबें ही खरीदते हैं." मैं ने कहा, "अंगरेजी भारतीय भाषा नहीं है, हमारी राजभाषा हिंदी है." धन्यवाद कह कर मैं दुकान के बाहर आ गया. पास ही से दो जापानी गुजरे, आपस में अपनी भाषा में बोलते जा रहे थे.

न्यूयार्क के आसमान पर रात की अंधेरी चादर थी, पर धरती पर रंगबिरंगी चांदनी. निओन और मर्करी के प्रकाश में सड़कें नहा रही थीं, पर राहगीर की चाल में पेरिस और होनोलूलू की मस्ती नजर नहीं आई. सुना भी था कि यहां ऐश्वर्य है, पर शायद सुख नहीं.

प्रोग्राम था हारलेम देखने का. न्यूयार्क का यह एक प्रसिद्ध बदनाम महल्ला है. इस के भी तीन भाग हैं, नीग्रो, स्पेनिश और इटालियन. नीग्रो भाग सब से बड़ा

ब्राडवे के एक बड़े नाइट क्लब का एक दृश्य

है और बहुचर्चित भी. इस महल्ले में जहां करुणा उमड़ती है वहीं वासना की गंदी नालियों की सड़ांध से घृणा फूट निकलती है.

हमें बताया गया था कि रात में हारलेम की नीग्रो बस्ती में जाना निरापद नहीं. लुच्चेउचक्के, खूनखराबी का भय रहता ही है, शरीफ आदमी का इस बस्ती में आनाजाना चर्चा का विषय बन जाता है. लास एंजल्स और शिकागो में मैंने नीग्रो लोगों के बारे में सुना था और देखा था उस ने मेरे कौतूहल को और भी बढ़ा दिया. मैं चाहता था कि संयुक्त राज्य के नीग्रो लोगों की सब से बड़ी जमात की इस बस्ती में जाऊं ताकि उन के जीवन को देखनेसमझने का मौका मिले. मित्रों की मनाही की बावजूद थोड़ी जोखिम उठा कर हारलेम चला ही गया.

सड़कों पर चहलपहल थी. न्यूयार्क की अन्य सड़कों से भिन्नता यही लगी कि यहां के मकान इतने ऊंचे नहीं जितने कि मैनहट्टन, फिफ्थ एवेन्यू आदि के. यहां का वातावरण बहुत कुछ कलकत्ते की फ्री स्ट्रीट, वेलेजली और रिपन स्ट्रीट का सा लगा.

हम १५५वीं सड़क से जा रहे थे. दोनों तरफ बड़ेबड़े मेंशनों को देख कर मैं यही सोच रहा था कि क्या ये बस्ती के मकान हैं? कलकत्ते, बंबई और दिल्ली की बस्तियों के मकान इन के मुकाबले शायद झोपड़ियां भी कहलाने लायक नहीं हैं. मुझे यह जान कर आश्चर्य हुआ कि न्यूयार्क के अन्य महल्लों से यहां किराया खास कम नहीं है. न्यूयार्क में और जगह नीग्रो लोगों के रहने पर कहीं भी

प्रतिबंध नहीं, फिर भी वे यहीं रहना पसंद करते हैं.

इस रुचि के पीछे यह तर्क जंचा कि कलकत्ते में जैसे मद्रासी, गुजराती और अन्य गैरबंगाली अपनेअपने ही टोले में रहना पसंद करते हैं, शायद वही भावना इन में भी हो.

सड़क पर हम ने देखा रंगीन (नीग्रो) ज्यादा थे, गोरे कम. इस का यह अर्थ नहीं कि हारलेम में श्वेत (गोरे) नहीं रहते. वे रहते हैं और इन में कभीकभार अंतरवर्णीय विवाह भी हुआ करते हैं.

हारलेम एक दूसरी दुनिया ही है. न्यूयार्क की इस बस्ती में रात की मस्ती में मन और तन का स्वाद बदलने के लिए न्यूयार्क तो क्या दूरदूर के श्वेत स्त्रीपुरुष आया करते हैं. शराब, जुआ, नाचघर, काफी हाउस और रेस्तरां सभी में अपनी एक नियमित जिंदगी है. फिफ्थ एवेन्यू की आडंबरपूर्ण तड़कभड़क यहां नहीं है. मगर जो है वह वास्तव में है कृत्रिम नहीं. हम ने देखा दो श्वेतांग युवतियां एक बलिष्ठ नीग्रो से चिपटी सड़क पर बेखबर चली जा रही हैं. ताज्जुब हुआ, हम ने अपने अमरीकन साथी से पूछा तो पता चला कि मस्त नीग्रो का बल शारीरिक पिपासा को शांत करने में जितना सक्षम होता है उतना किसी भी श्वेत का नहीं. नीग्रो संपन्न भले ही न हों लेकिन गोरों की तरह उन के जीवन में चिंता, विषाद और भागदौड़ नहीं है. उन्हें निद्रा के लिए नित्य प्रति गोलियां भी नहीं खानी पड़ती हैं. इसी कारण स्नायविक शक्ति उन में कहीं अधिक है. विश्व प्रसिद्ध कलाकार और सिने तारिकाओं को इन दैत्याकार नीग्रो के साथ खुलेआम रेस्तरां और शराब घरों में देखा जा सकता है. मुझे वेनिस, मियामी और होनोलूलू की याद आ गई, वहां भी यही बात देखी थी.

हमारे अमरीकन मित्र हमें हारलेम के प्रसिद्ध नाचघर सेवाय में ले गए. यह बहुत ही जनप्रिय है. कहा जाता है कि यहीं से 'टिवस्ट' विश्व के हर कोने में फैल गया. नाचगाना मुझे आता नहीं और न उस की बारीकियां ही समझता हूं, मगर जाज की स्वर लहरी जो यहां सुनने में आई वैसी कहीं भी मैं ने नहीं सुनी थी. जाज का जन्म और विकास अमरीका में हुआ. मूलतः यह लोक संगीत है जिस में अफ्रीकी और यूरोपीय संगीत परंपरा का मिश्रण है. इन दोनों से मिल कर जाज एक अभिनव वातावरण की सृष्टि करता है. अपने मूल रूप में यह नीग्रो संगीत है. अमरीका में लाए गए अफरीकी नीग्रो गुलाम खेतों में कड़ी मेहनत करते हुए या प्रार्थना करते हुए जो स्वर लहरी अपने अंतःकरण से निकालते थे उस का परिमार्जित रूप है आज का जाज.

हारलेम स्वयं में एक आकर्षण है. क्योंकि यहां के जीवन में वह भागदौड़ नहीं है ज़ो ऊंचे लोगों में है. औसत नीग्रो का पारिवारिक जीवन श्वेतों से अधिक सुखी और सफल होता है.

आज अमरीका की सरकार और नेता वर्ग इस बात का अनुभव कर रहे हैं कि समता, भ्रातृत्व और मुक्ति में विश्वास करने वाले अमरीका के लिए उन के अपने रंगीन नागरिकों की दशा एक कलंक है. वे यह अनुभव करते हैं कि लिंकन और कैनेडी जैसे महान व्यक्तियों के बलिदान के बावजूद अमरीकन समाज में नीग्रो

रात को बिजली से जगमगाता व दर्शकों से भरा टाइम्स स्क्वायर

लोगों को समान अवसर नहीं मिल पाया है.

मैं एक नीग्रो परिवार में गया. यह कार्यक्रम पहले से ही तय था. गृहस्वामी मिस्टर बेकर एक डाक्टर हैं. हमारे लिए वह प्रतीक्षा में थे. जाते ही बड़े स्नेह से उन्होंने बैठाया. अपनी पत्नी से परिचय कराया. श्रीमती बेकर औसत श्वेतांग स्त्रियों से कहीं ज्यादा सुंदर और आकर्षक थीं. उन के गेंहुए रंग में वह रूखापन नहीं था जो आम तौर से उत्तरी यूरोपीय या अमरीकन स्त्रियों में होता है.

मुझे उन्होंने बताया कि भारतीय दर्शन में उन की विशेष रुचि है, विशेष रूप से वे विवेकानंद का साहित्य पढ़ते हैं. उस में उन्हें ज्ञान और कर्ममय जीवन के प्रति प्रेरणा मिलती है.

मैं ने उन से पूछा कि गांधीजी के अहिंसात्मक सिद्धांत के आधार पर मार्टिन लूथर किंग के नेतृत्व में रंगीन अमरीकन जब अपने अधिकार प्राप्त करने में सफल हो रहे हैं तो फिर क्या कारण है कि मालकम एक्स के नेतृत्व में वहां के नीग्रो, मुसलमान बन कर हिंसात्मक आंदोलन करते जा रहे हैं.

मिस बेकर ने बताया कि मुसलिम संप्रदाय के आंदोलन के पीछे द्वेष और विद्रोह की भावना है, सदियों से नीग्रो रौंदे गए. गुलाम के रूप में उन से पशुवत आचरण किया गया. सभ्य कहलाने वाले श्वेतांगों ने असभ्य अफ्रीकी गुलामों के

प्रति जिस बर्बरता का परिचय दिया वह कल्पनातीत है. लिंकन के मुक्ति के सं
का आदर नहीं किया गया, बल्कि कूक्लूक्सक्लान जैसे दल कायम कर अमानु
उत्पीड़न और अत्याचार प्रारंभ किये गये. प्रत्येक क्रिया की एक प्रतिक्रि
होती है. द्वेष बढ़ता है, वही हुआ.

हमारे देश में भी सवर्णों के अत्याचार से लाखों अछूत मुसलमान और ईस
हो गए थे.

मुझे यह सुन कर ताज्जुब हुआ कि कम्युनिस्ट और कुछ मुसलिम राष्ट्रों
रुचि 'ब्लैक मुसलिम' आंदोलन में है और वे उस के प्रचारप्रसार में परोक्ष सहाय
पहुंचाते हैं. देखना है अमरीकी जनता और सरकार इस चुनौती का क्या ह
निकालती है.

आर्थिक स्थिति अमेरिकन नीग्रो की सुधरी है. पहले वे केवल मजदूर थे. अ
उन में सुदक्ष कारीगरों की संख्या बढ़ रही है. न्यूनतम मजदूरी अमरीका
निर्धारित है, इस कारण से उन की आर्थिक स्थिति दृढ़तर होती जा रही है. स
सोवियत रूस में जितनी मोटरें हैं उस से कहीं अधिक केवल अमरीकन नीग्रो के पा
हैं. सेना में भी अब नीग्रो और श्वेतों में कोई भेदभाव नहीं है. रात्रि के ११ ब
हम मिस्टर बेकर के यहां से होटल के लिए रवाना हुए. हमारे मना करने पर भ
वह हमें हारलेम के अंचल से बाहर तक पहुंचाने आए.

दूसरे दिन सुबह हमारे मित्र सुरेश देसाई मिलने आए. वे सपत्नी
अपने किसी मित्र के खाली फ्लैट में ठहरे हुए थे. न्यूयार्क की महंगाई की बात चली त
यह जान कर बड़ा ताज्जुब हुआ कि उन का भोजन पर खर्च न्यूयार्क में भी उतना ह
आता है जितना बंबई या दिल्ली में. उन्होंने बताया चावल, चीनी, आटा और दूध
भारत के ही दामों में यहां मिल जाता है, फल और सब्जी तो और भी सस्ते ह
इसलिए यदि स्वयं खाना बना लिया जाए तो तीन साढ़ेतीन रुपए में तृप्ति के साथ
भोजन हो जाता है. हम ने भी दूसरे दिन इस का प्रयोग कर के देखा. भारत से
लाए हुए चिउड़े गरम दूध में भिगो कर स्वादिष्ट खीर बनाई और उसे पावरोटी,
आचार, मुरब्बे के साथ खाया.

रात्रि के खाने पर दूतावास के ट्रेड कौंसिल ने अपने घर पर हमें आमंत्रित
किया. कुछ अमरीकन तथा भारतीय और हम तीनों मित्रों को मिला कर आठ-
दस व्यक्ति थे. वहां हम ने एक अधेड़ नीग्रो महिला को काम करते देखा.

मुझे मालूम था कि नौकर या दाई रखने का रिवाज वहां साधारणतया नहीं
है, क्योंकि यह बहुत महंगा पड़ता है. उस के बारे में पूछने पर पता चला कि
पांच घंटे के लिए दस डालर यानी ७५ रुपए लेगी. अपनी कार में आई है.

बातचीत में मजे की बात यह सुनने में आई कि कारखानों में कम से कम
१२५ रुपये से १५० रुपये तक की प्रति दिन की मजदूरी है, इसलिए घरेलू नौकर
मुश्किल से मिलते हैं. अगर कोई नौकर काम छोड़ कर चला जाता है तो मालिक
उस से सर्टिफिकेट लेते हैं कि उस से बड़ा अच्छा व्यवहार किया गया, उसे किसी
प्रकार की तकलीफ नहीं दी और काम भी इन के यहां ज्यादा नहीं है. यदि सर्टि-
फिकेट न रहे तो दूसरे नौकर मिलने में कठिनाई होती है. मैं अपने देश की बात

सोचने लगा, जहां आज भी हट्टेकट्टे जवान, दरबान के काम के लिए सतरअस्सी रुपए मासिक पर मिल जाते हैं.

मेहमानों में एक अमरीकी पत्रकार भी थे. उन से यहां के समाचारपत्रों के बारे में यथेष्ट जानकारी मिली. उन्होंने बताया कि यहां समाचारपत्रों की सरकार और जनता दोनों पर ही बड़ी धाक है. एक तरह से देश की नीति निर्धारित करने में उन का प्रमुख हाथ रहता है.

उन में से कई पत्रों के पांचछः संस्करण प्रति दिन निकलते हैं. पृष्ठ संख्या होती है ३२ से १०० तक. और रविवार के दिन तो यह ४०० तक पहुंच जाती है. आधे से ज्यादा तो विज्ञापन ही रहते हैं और यही इन की आमदनी का खास जरिया है.

बड़े पत्रों के तीसपैंतीस विभागीय संपादक होते हैं. संवाददाताओं की संख्या तो सैकड़ों तक पहुंच जाती है, जो विश्व के हर कोने में फैले हुए रहते हैं. इन में से किसीकिसी के पास हवाईजहाज और हेलीकाप्टर भी होते हैं, जिस से मौके पर जा कर खबरें जल्दी भेजने में सुविधा हो.

विश्व प्रसिद्ध टाइम एंड लाइफ की तो अपनी कागज की मिलें हैं, जिन के बने हुए विशेष कागजों पर ये पत्र छपते हैं.

ज्यादातर पत्र सनसनीखेज समाचारों से भरे रहते हैं. मैं ने यहां के समाचारपत्रों के भारत के प्रति सहानुभूतिहीन रवैये का उल्लेख किया तो उन का उत्तर था कि इस के लिए आप की सरकार की जिम्मेदारी भी कम नहीं है. क्योंकि पिछले वर्षोंतक प्रति वर्ष यू. एन. ओ. की बैठकों में जिस व्यक्ति (कृष्ण मेनन) को नेता बना कर भेजा जाता रहा, वह यहां आ कर अमरीकी सरकार की बुराई और साम्यवादी देशों का समर्थन करता रहा. यही नहीं, एक बार तो उस ने पत्र संवाददाताओं का किसी भोज में अपमान भी कर दिया. वियतनाम और क्यूबा के बारे में तो आप ने निंदा प्रस्ताव किए, पर हंगरी में जिस प्रकार की नृशंसता की गई उस के लिए एक शब्द भी नहीं कहा.

बातचीत और भोजन में रात्रि के ११ बज गए थे. इसलिए हम पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार विश्व की सर्वोच्च इमारत एंपायर स्टेट बिल्डिंग देखने गए.

एक युग था जब २३४ फुट ऊंची हमारी कुतुबमीनार दुनिया में सर्वोच्च मानी जाती थी. उस के बाद विगत महायुद्ध तक पेरिस का एफिल टावर इस कीर्ति का अधिकारी बना. एफिल की ऊंचाई १०४३ फुट थी. भला जापान पीछे क्यों रहता? उस ने टोकियो में १०८२ फीट ऊंचा टेलीविजन टावर बनाया. अमरीका नई दुनिया है, यहां नया इतिहास बन रहा है, नई संस्कृति पनप रही है. यह केवल विश्व का सब से धनी देश ही नहीं है, बल्कि यहां हर एक क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त करने की प्रतिस्पर्धा भी रहती है. इसी के परिणामस्वरूप न्यूयार्क की एंपायर स्टेट बिल्डिंग बनी. १०२ मंजिला और १,२५० फुट ऊंचा भवन. इस के टेलीविजन टावर को भी शामिल कर दें तो कुल ऊंचाई १,४५० फुट हो जाएगी.

दर्शकों के लिए यह सुबह दस बजे से रात्रि के एक बजे तक खुला रहता है.

प्रवेश शुल्क आठ रुपए है. इसे भवन कहा जाए या अच्छाखासा कसबा? यहां बड़ेबड़े दफ्तरों के अलावा होटल, रेस्तरां, बीमा कंपनी, बैंक, दुकानें, स्टोर्स आदि सबकुछ एक जगह पर हैं, जहां प्रति दिन २५,००० व्यक्ति काम करने आते हैं. इस के विभिन्न भागों तथा मंजिलों तक पहुंचने के लिए ६७ लिफ्टें हैं, जिन में से कुछ की गति प्रति मिनट १,२०० फुट है.

मैं सोच रहा था कि मैनहट्टन वही तो है, जिसे आदिवासियों से सन १६२६ में केवल २४ डालर के कांच की मणियां, टीन के डब्बे और कुछ कपड़े दे कर डचों ने खरीदा था. आज इस द्वीप में एक इंच जमीन मिलनी कठिन है. मुझे मेरे एक मित्र की याद आ गई. जिन्होंने नई दिल्ली की पृथ्वीराज रोड की १२,००० वर्ग गज जमीन ४,५०० रुपए में ली थी, जिस की कीमत आज करीब २४ लाख है.

अपने ही विचारों पर मन ही मन मुसकरा उठा. संसार के सब से धनी देश की सब से ऊंची इमारत की सब से ऊंची मंजिल पर इन्हीं सब बातों को सोच रहा था.

"जी, एक बज रहा है," गाइड ने धीरे से कहा. वह मुसकरा रहा था. एलिवेटर ने हमें कब नीचे उतार दिया, इस का अंदाज भी नहीं लगा.

न्यूयार्क विश्वमेला

चकाचौंध कर देने वाली वैज्ञानिक प्रगति

जिन दिनों हम न्यूयार्क में थे, वहां विश्व मेला चल रहा था. हम ने केवल मेला देखने के लिए दो दिन का समय रखा. वैसे तो इसे पूरी तौर से देखने के लिए एक महीने का समय भी कम था. हम ने मेले के बारे में जानकारी ली और तय किया कि केवल खासखास कक्ष देख लिए जाएं. हमारे दूतावास के सचिव हमारे साथ थे, इसलिए चीजों के देखनेसमझने में सुविधा रही और समय कम लगा. बड़े एवं मशहूर स्टालों को देखने के लिए लंबी कतारें थीं, मगर हमें हर जगह प्राथमिकता मिलती रही.

यों तो मेले दुनिया में और जगहों पर भी होते रहते हैं, जिन में जरमनी और मिलान के मेले प्रसिद्ध हैं. अपने देश में १९४८ में कलकत्ते की और १९६१ की दिल्ली प्रदर्शनी को भी काफी शोहरत मिली थी.

संयुक्त राज्य अमरीका में विश्व मेला सर्वप्रथम न्यूयार्क में १९३९ में आयोजित किया गया था. यह इतना लोकप्रिय रहा कि इस में लगभग साढ़े चार करोड़ दर्शक आए. इस प्रकार की प्रदर्शनियों का आयोजन उन्नत राष्ट्रों के लिए आवश्यक है, क्योंकि इन से देश के औद्योगिक विकास तथा ज्ञानविज्ञान की प्रगति का परिचय मिल जाता है. १९३९ के मेले का और इस का तुलनात्मक विवरण दिया गया था, जिस से पता चलता था कि इन २५ वर्षों में अमरीका ने हर दिशा में कितनी उन्नति की है.

वह डकोटा का युग था, जब कि आज हम सुपर सोनिक जेट के युग से गुजर रहे हैं. उन दिनों हालांकि रेडियो वन चुके थे, लेकिन लोग टेलीविजन का अंदाज भी नहीं कर पाए थे और चंद्रमा की यात्रा तो स्वप्नलोक की वात थी.

न्यूयार्क के विश्व मेले की तैयारी में ढाई वर्ष लगे. अमरीका के प्रसिद्ध वास्तुकार राबर्ट मोजेज को इस के निर्माण और सजावट का भार दिया गया. विश्व मेले का आयोजन था, देशविदेश से दुनिया के हर कोने से व्यापारी, उद्योगपति एवं पर्यटकों का आलम उमड़ेगा, अंतरराष्ट्रीय ख्याति के नेता एवं वैज्ञानिक भी प्रदर्शनी में आएंगे. स्वाभाविक वात थी, न्यूयार्क नहीं, वल्कि अमरीका की प्रतिष्ठा का प्रश्न था. श्री मोजेज ने ६५,००० रुपए मासिक वेतन पर काम करना स्वीकार कर लिया.

वास्तव में विश्व के सभी राष्ट्रों ने वड़े उत्साह से न्यूयार्क के इस वृहद आयोजन में भाग लिया और अपनेअपने कक्ष वनवाए. केवल कुछ वैधानिक कारणों से रूस, ब्रिटेन और कम्युनिस्ट देशों ने इस का वायकाट किया. दुनिया के प्राय: सभी

राष्ट्रों के उद्योग एवं व्यापारी प्रतिष्ठानों ने इतने बड़े पैमाने पर स्थान सुरक्षित कराया कि आयोजकों को दिल खोल कर खर्च करने की सुविधा हो गई. विश्व मेला कमेटी ने केवल ७५० करोड़ रुपए का बजट खर्च के लिए बनाया था, पर अन्यान्य देशों और प्रतिष्ठानों ने जो खर्च किया उस का अनुमान इसी से लग सकता है कि अमरीका के जनरल मोटर्स, फोर्ड, ड्यूपोंट और जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी के केवल चार कक्षों में ३७० करोड़ रुपए लगे. भारतीय कक्ष में तीन करोड़ और पाकिस्तानी कक्ष में ८० लाख रुपए.

विश्व मेले का बहुत बड़ा विस्तार था. पैदल घूमना संभव न था. मगर इच्छा थी कि कम से कम एक चक्कर लगा कर के संतोष कर लिया जाए. हम ने मेले की ट्रेन में बैठ कर सारे मेले का एक चक्कर लगा लिया. इस के बाद फोर्ड मोटर कंपनी के पेवीलियन में गए. विद्युत चालित पटरियों पर पचासों बड़ीबड़ी नई मोटरें धीमी चाल से चल रही थीं. एक गाड़ी में हम लोग भी बैठ गए. मोटर हमें एक अंधेरी गुफा में ले गई.

यहां प्रागैतिहासिक युग के महाकाय दिनासुर और ब्रांटासुर जानवर अपने सहज भाव से विचर रहे थे, जिन की लंबाई सत्तरअस्सी फीट की थी. हमारे यहां के हाथी और गैंडों को तो इन के मुकाबले में बच्चों के खिलौने कहा जा सकता है. २०वीं शताब्दी के जानवरों से सर्वथा भिन्न इन दैत्याकार जीवों की लपलपाती जीभ, लाल अंगारे जैसी आंखें और बड़ेबड़े चमकते दांतों को देख कर रोमांचित हो जाना स्वाभाविक था. अगर यह पता न रहे कि ये जंतु वाल्ट डिजनी द्वारा बनाए गए प्लास्टिक माडल हैं तो कमजोर दिल वालों की तो शामत ही समझिए.

लाखों वर्ष पूर्व के आदि मानव को देखा. गिरि कंदराओं में रहने वाला, सुपुष्ट लंबी भुजाएं, कंधों के नीचे तक झूलती केश राशि चौड़े सीने पर खेल रही थी. किसी प्रकार के परिधान का तो उस समय तक आविष्कार ही नहीं हुआ था. मैं आश्चर्य से देखने लगा. मुझे उस की आंखों में ऐसा लगा कि मानो मुझ से पूछ रहा है कि मुझे पहचानते नहीं? मैं तुम्हारा पूर्वज हूं. तुम जेट युग में भले ही हो, पर दुख है कि तुम खुद बहुत कमजोर हो. तुम्हारा मन और साहस तुम से भी कमजोर है. इतने में ही मोटर सरकती हुई आगे बढ़ गई. दूसरे कक्षों में दिखाया गया था कि सभ्यता का विकास गुफाओं से एंपायर स्टेट बिल्डिंग के ताप नियंत्रित कक्षों तक किस प्रकार क्रमानुसार हुआ है. इतने सजीव माडल बने थे कि स्वाभाविकता में संदेह की गुंजाइश नहीं थी. पत्थर के चक्कों की गाड़ियों से ले कर हवा से होड़ लेने वाली आज की मोटरों के निर्माण का क्रम बड़ी कुशलता से दिखाया गया था.

फोर्ड ने पुरानी बातें दिखाईं और हमें युगों पहले ले गया तो जनरल मोटर्स कारपोरेशन ने आज से ४० या ५० वर्ष बाद की झांकी दिखाई.

यहां हम एक विशेष प्रकार के यान में बैठे और हजारों फीट नीचे समुद्रतल में पहुंचे. हम ने देखा, वहां एक खूबसूरत रेस्तरां है. लोग खापी रहे हैं, गप्पें लड़ा रहे हैं. कभीकभी खिड़कियों से शार्क या ह्वेल झांक कर चली जा रही हैं.
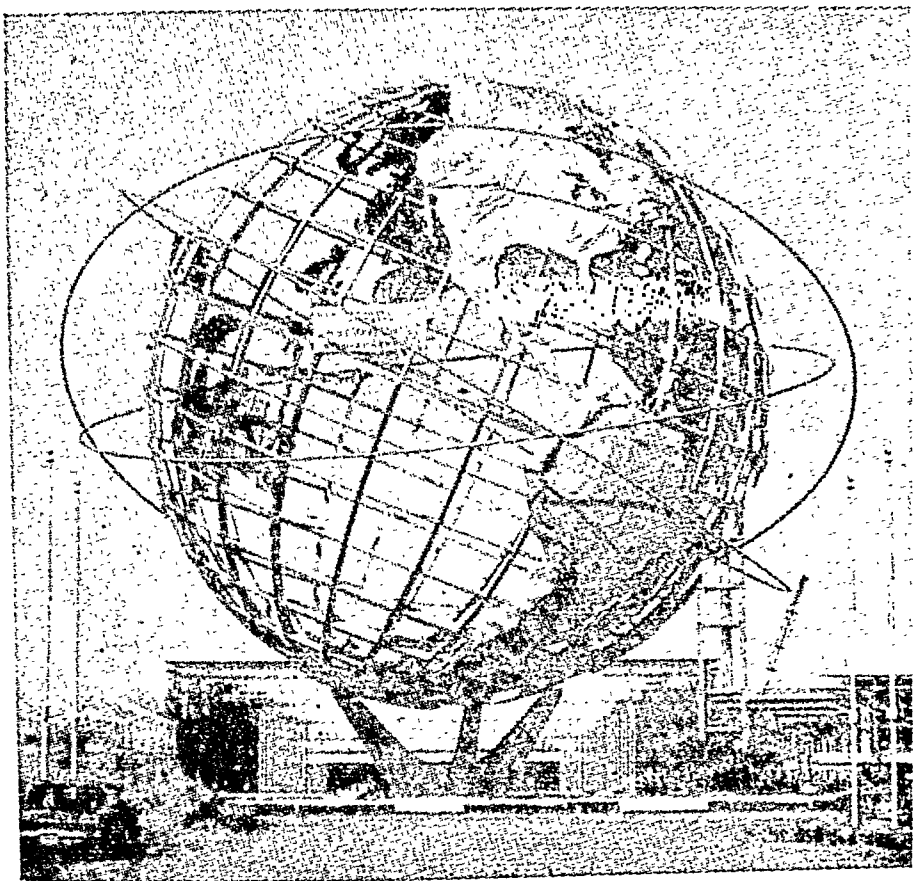
युनाइटेड स्टील द्वारा वनाई गई लोहे की पृथ्वी

झुंड की झुंड मछलियां, रंगविरंगी किरणें बिखेरती चली जा रही हैं. वड़ा सुहावना लगा. इतने में देखा एक ह्वेल मुंह खोले खड़ी है. लगा, टेवलकुरसियों समेत हमें निगल जाएगी. गनीमत थी कि खिड़कियों पर मोटे शीशे थे.

समुद्रतल से वाहर आ कर हम एक जगह और ले जाए गए. हरियाली की लहरें खेतों में दौड़ रही थीं. चारों तरफ फलों और फूलों के वगीचे थे. मैंने पूछा, "यह कौन सी जगह है?" उत्तर मिला, "पचास वर्ष पहले आप जिसे सहारा का रेगिस्तान कहते थे."

यहां यह लिख देना जरूरी है कि हम ने जिन चीजों को देखा, वे असली नहीं थीं. आने वाले ५० वर्षों में विज्ञान के वल पर मनुष्य कितना साधन संपन्न हो जाएगा इस की कल्पना मात्र थी. पर इस प्रकार की व्यवस्था की गई थी, जैसे कि वास्तव में ही हम समुद्र के गर्त्त में उतर रहे हैं. आज एक देश से दूसरे देश में जिस आसानी से हम जातेआते हैं उसी प्रकार ग्रहउपग्रहों की यात्रा संभव हो जाएगी. आज की तरह हमें सड़कों पर ट्रैफिक की दिक्कत न होगी. मोटरें मकान की छतों पर से ही उड़ेंगी.

ये सारी वातें कल्पना भले ही हों, पर इतना स्वाभाविक वातावरण वना दिया गया था और इस ढंग से प्रस्तुत किया गया था कि वास्तविकता का वोध

होता था. मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "काश, हम चालीसपचास वर्ष बाद जन्म लेते और इन सुविधाओं का उपभोग कर पाते!"

"ऐसी भी क्या बात है," उन्होंने हंस कर कहा. "विज्ञान जिस गति से बढ़ रहा है, पंदरहबीस वर्षों में भी ये बातें संभव हो सकती हैं और तब हम भी चंद्रमा की सैर कर लेंगे."

इन दोनों कक्षों को देखने के बाद हम तीसरे में गए. यह ड्यूपोंट कारपोरेशन का था. ड्यूपोंट विश्व के प्रथम १५ प्रतिष्ठानों में है, जिन का वार्षिक उत्पादन ५,००० करोड़ का है--अर्थात सारे भारत के कारखानों से ज्यादा. नाइलन आदि रासायनिक रेशों के आविष्कारक होने का उन्हें गौरव प्राप्त है. इन के पेवीलियन में हम ने विभिन्न प्रकार की आवश्यक वस्तुओं की निर्माण विधि और क्रियाएं देखी. इस के अलावा एक कौमिक ड्रामा भी देखा. अभिनेताओं या अभिनेत्रियों में कौन वास्तविक है और कौन प्लास्टिक का माडल है, पहचानना मुश्किल था. इस ढंग से हावभाव का प्रदर्शन और बातें करते थे कि जब तक यह बताया न गया कि अमुक पात्र प्लास्टिक का बना है, हम उसे असली ही समझ बैठे थे. पिछले दोनों कक्षों के अद्भुत और भयावह दृश्यों के कारण ड्यूपोंट के इस चमत्कारिक कलात्मक प्रदर्शन ने मन को मोह लिया. वास्तव में उन का उद्देश्य भी यही था कि दर्शकों के मन से बहुत दिनों तक उन का नाम न हटे. विज्ञापन और प्रचार की यही सफलता है.

जनरल इलेक्ट्रिक कंपनी के पेवीलियन में बिजली के आविष्कार से शुरू कर आज तक इस के कितने विभिन्न ढंग के उपयोग होते रहे हैं, इस का प्रदर्शन बड़े आकर्षक तरीके से किया गया था. बिजली क्या है, उस की शक्ति कितनी है--यह सब बहुत ही सुंदर तरीके से दिखाया गया था. एक अंधेरा कमरा था, वहां जाने पर ऐसा लगता था कि सारा कक्ष जोरों से हिल रहा हो, आसमान में बिजली की चमक और कड़क--साथ ही जोरों की वर्षा. एक दूसरे कक्ष में दिखाया गया था, जब बिजली न थी, मनुष्य भोजन कैसे बनाता था. बेचारी गृहिणी की आंखें चूल्हा फूंकतेफूंकते लाल हो गई थीं. शायद लकड़ियां गीली थीं और आग नहीं जल रही थी, उधर पति को शिकार में जाने की जल्दी थी. उस का शिकारी कुत्ता पास में खड़ा पूंछ हिला रहा था. प्लास्टिक के सारे माडल आदमकद थे और बड़े ही स्वाभाविक बनाए गए थे.

इन चारों कक्षों को देखने में दोढाई घंटे लग गए. और अभी भी सैकड़ों बाकी थे. इसलिए कुछ और देख लेना तय किया. जनरल सिगरेट कारपोरेशन के कक्ष में गए. इन के प्रचार का तरीका भी कम मजेदार नहीं था. बच्चे बूढ़े, जवान, औरत, मर्द सभी आनंद ले रहे थे. एक प्रकार का मैजिक शो था--भारतीय रस्सी की जादुई करामात पर एक महिला खड़ी रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ती जाती है और वहां गायब हो जाती है. वह तो फिर दिखाई नहीं देती, मगर अंधेरे में कुछ पक्षी सिगरेट पीते दिखाई देते हैं. इस दृश्य को ऐसे ढंग से प्रस्तुत किया गया था कि सभी हंस रहे थे. बच्चे तो बेहद खुश, हटने का नाम नहीं लेते थे.

डेढ़ बज चुके थे. भूख जोर से लग रही थी. शहर जा कर मेले में वापस

कमजोर दिल वालों की शामत के लिए महाकाय दिनासुर व ब्रांटासुर

आने के बजाए यहीं भारतीय गेलार्ड रेस्तरां में खाने का निश्चय हुआ. विभिन्न देशों के रेस्तरां अपनेअपने राष्ट्रीय व्यंजनों की विशेषताओं के साथ मेले में खोले गए थे. भारतीय रेस्तरां काफी जनप्रिय साबित हुआ. शमी कबाब, मुर्ग मुसल्लम, मुर्ग तंदूरी, आदि नाना प्रकार के भारतीय व्यंजन मांसाहारियों के लिए थे. हम तीनों साथी शाकाहारी थे. जलेबियां और खीर बनी थी. हमारे लिए यह भारतीय मीनू बहुत अच्छा रहा, स्वादिष्ट था, डट कर खाया. बिल आया तो कुछ अखरा जरूर. चार व्यक्तियों के लिए करीब १८० रुपए लगे, २० रुपए बख्शीश के अलग. केशरिया खीर और जलेबी बहुत महंगी पड़ी.

खुले लान में कुछ आराम करने के बाद तीन बजे से हम ने घूमना शुरू किया. भारतीय पेवीलियन में आए. अपने देश की बनी चीजें बड़े आकर्षक ढंग से सजी देख चित्त प्रसन्न हो उठा. भारतीय वेशभूषा में दसबारह युवतियां दर्शकों को हर चीज की जानकारी दे रही थीं. इन में से एक तो आसाम के संसद सदस्य हमारे मित्र पी. सी. बरुआ की पुत्रवधू थीं. हम अपने देश की महिलाओं के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए. बातचीत और हावभाव में भारतीय शालीनता और

विनय पाश्चात्य के आडंवरपूर्ण वातावरण में बड़ा मधुर लगा. उन सब से बात कर प्रसन्नता हुई. उन्होंने वताया कि वे सव २५ हैं और किराए के एक फ्लैट में दूतावास की देखरेख में हैं. वे वहुत खुश थीं और मन लगा कर खूब मेहनत करती थीं.

भारत के बारे में बहुत से चित्र हमारे कक्ष में थे. विभिन्न प्रदेशों की दस्तकारी के सामान सजे थे, जिस में राजस्थान और मैसूर के हाथीदांत के खिलौने, वनारसी जरी के काम की साड़ियां और पल्ले, कांगड़ा, पहाड़ी, मुगल और राजपूत शैली के चित्र थे.

भारतीय कक्ष का उदघाटन श्रीमती इंदिरा गांधी कर गई थीं. प्रचार के दृष्टिकोण से इस का भी महत्त्व था क्योंकि श्रीमती गांधी को देखने भारतीय पेवी-लियन में काफी लोग आए थे.

आगरे के एक मशहूर जौहरी ने एक गलीचा भेजा था. जवाहिरात से जड़े १८ फुट के इस गलीचे की कीमत शायद साढ़े चार लाख रुपए. हमें पता नहीं, प्रदर्शनी की समाप्ति पर वह बिक गया या वापस आया.

इस के बाद हम अपने पड़ोसी पाकिस्तान के कक्ष में गए. भारतीय कक्ष से यह काफी छोटा था. पाट के बने बोरे और चटों के अलावा पाकिस्तान के नए बनते हुए उद्योगधंधों की झांकी थी. जैसा कि उन का कायदा है भारत के विरुद्ध अनर्गल प्रचार भी था. हम ने दूसरे जितने देशों के कक्ष देखे, उन सब में हमें यह घटिया और उबा देने वाला लगा. दूसरे लोग भी इस में से बहुत जल्दी बाहर आ जाते थे. यहां हम ने मोहनजोदड़ो तक्षशिला के माडल रखे देखे. पाकिस्तान का प्रचार है कि वह विश्व की इस प्राचीनतम संस्कृति का अधिकारी है. अरब के संस्कार और संस्कृति को जिन्होंने अपनाया और अपनी संस्कृति को ठुकराया, तोड़ा और नष्ट किया आज वह मौलिक भारतीय संस्कृति को अपना कहने का दावा करते हैं, यह स्वयं में एक बहुत बड़ा व्यंग्य है. पर यात्री व्यवसाय को बढ़ाने के लिए इन विश्व प्रसिद्ध पुरातन आर्य अवशेषों के सिवा उन के पास और है ही क्या?

इस के बाद बारीबारी से हम ने न्यूयार्क, अलास्का, बैंकाक, जापान, मलएशिया, तैवान, हवाई, जोरडन और मैक्सिको के कक्षों को सरसरी तौर पर देखा.

न्यूयार्क के कक्ष में शहर का एक माडल देखा, जिस में उस की सारी सड़कें और ८८,००० मकान थे. केवल इस माडल के वनाने का खर्च लगा था ६० लाख रुपया. तैवान (राष्ट्रवादी चीन) के कक्ष में चीनी सभ्यता, वास्तु शिल्प और इतिहास की झांकी थी और था इन १४ वर्षों का उन का इतिहास. किस प्रकार से मातृभूमि से भाग कर आए हुए कुछ लाख व्यक्तियों ने अपने कठिन परिश्रम और सूझबूझ से फारमोसा को हराभरा और उपजाऊ बना कर न केवल आत्मनिर्भर, बल्कि निर्यात करने वाला देश बना लिया है, आंकड़ों और चित्रों द्वारा यह सब यहां दिखाया गया था.

इन कक्षों में घूमतेघूमते पैर जवाब देने लगे. रात भी हो आई थी. विश्राम
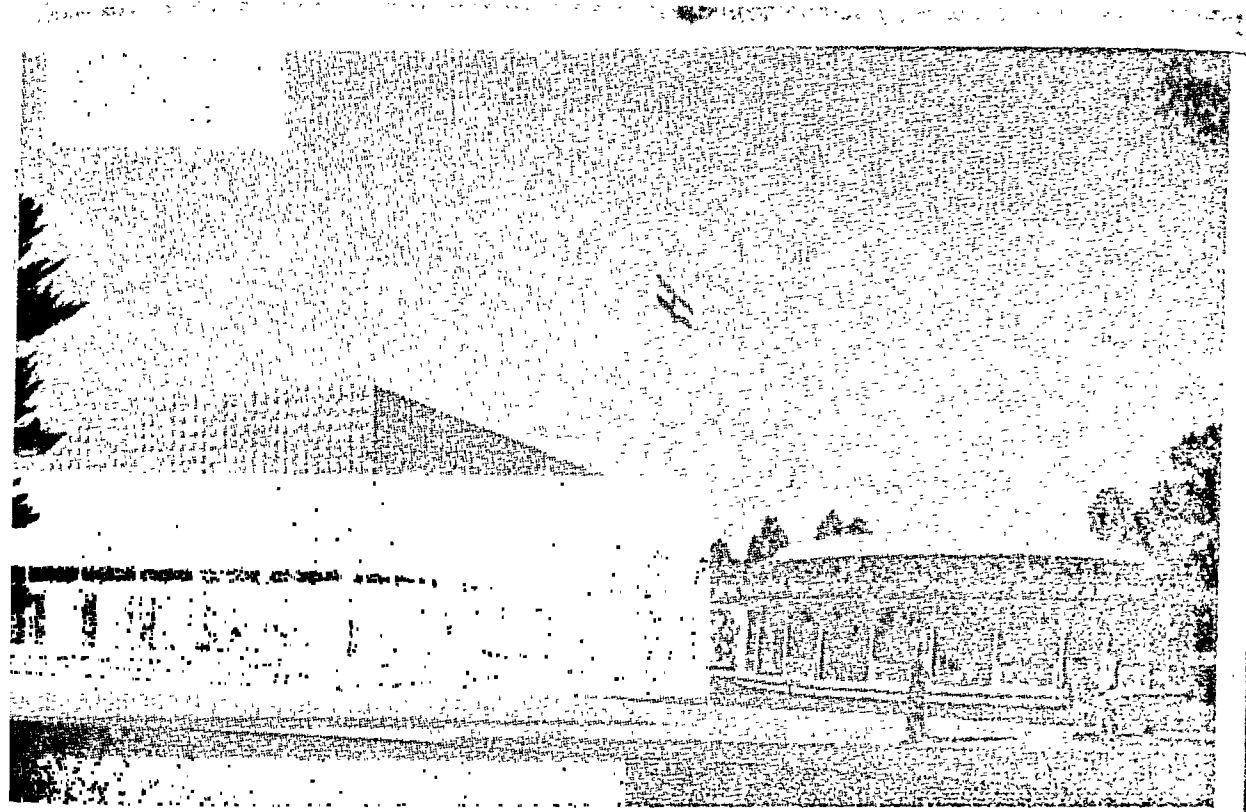
भारतीय मंडप और दाएं भारतीय रेस्तरां

आवश्यक हो गया. अतएव, लिफ्ट से आवजरवेशन टावर पर चढ़ कर मेले का एक विहंगम दृश्य देखना अंतिम कार्यक्रम बना.

इस मीनार की ऊंचाई, लगभग २२६ फुट थी, (हमारे कुतुब के समान) ऊपर एक बड़ा मंच बनाया गया था, जिस पर से मेले का पूरा दृश्य दिखता था.

हम ने ऊपर से देखा, रंगबिरंगे आलोक में २०वीं सदी दीवाली मना रही है. न्यूयार्क के थाल में वैभव और समृद्धि सजा कर विश्व मुसकरा रहा है. रात के दस बजे होटल लौट कर खापी कर सो गए. विचित्र प्रकार के स्वप्न आते रहे, दिन में कुछ इस प्रकार की भयावह चीजों को देखा था जिन की छाप मस्तिष्क पर अंकित होनी स्वाभाविक थी.

दूसरे दिन आठ बजे नाश्ता कर हम मेले के लिए फिर निकल पड़े, पहले दिन वहां से कुछ परिपत्र ले आए थे, उन्हें पढ़ने पर पता चला कि ९,००० कारीगरों ने दो वर्ष के परिश्रम से मेले को तैयार किया. इस के अतिरिक्त ३०,००० मजदूर और कारीगर विभिन्न कक्षों के बनाने में लगे. जिस देश में कारीगरों की दैनिक मजदूरी १२५ से १५० रुपए है, वहां इस पर कितना खर्च लगा होगा! ढाई लाख टन लोहा तो केवल ढांचे की तैयारी में ही लगा. पीने के पानी के लिए ८० लाख गैलन की टंकी बनी. ३०० औद्योगिक प्रतिष्ठान और ६६ राष्ट्रों के अलावा ईसाई धर्म के विभिन्न संप्रदायों की ओर से भी प्रचार के लिए मेले में कक्ष लिए गए थे. प्रति दिन दो लाख दर्शक मेले में आते थे. सुदूर विदेशों से भी इसे देखने के लिए लोगों के आने का तांता बंधा हुआ था.

समय अब केवल एक दिन का था. इसलिए मेले में जाने के पूर्व ही हम ने तय कर लिया कि हमें आज क्याक्या देखना है.

सब से पहले हम पेप्सीकोला के कक्ष में गए. इस का पेय मशहूर है. इन की वार्षिक बिक्री २०० करोड़ रुपए की है. इन के कक्ष में भी डिजनी द्वारा बनाई गई ३५ बड़ीबड़ी गुड़ियों को देखा, पानी में नाव चला रही हैं, गाना गा रही हैं, ईरान की कालीन पर बैठ आसमान की सैर कर रही हैं. बच्चों की भीड़ जमी थी. कौतूहल भरी सरल आंखें और हंसते चेहरों में हम भी अपना बुढ़ापा भूल गए.

बेलजियम के कक्ष में हम ने देखा, आज से २०० वर्ष पूर्व का एक गांव. मकान, दुकान, रहनसहन, पहनावा सभी उस जमाने का. वातावरण बिलकुल ऐसा लगा कि मानों कहीं हम १८ वीं सदी में हों. दुकानदार, खरीदार और वस्तुएं सभी उस जमाने की. सड़कों पर चूल्हे रख कर तेल में पकौड़िएं तली जा रही थीं तो कहीं सड़क के किनारे ही बैठ कर लोग ताश और शतरंज खेल रहे थे.

विश्व विख्यात क्राइसलर मोटर के कक्ष में दस मंजिला एक राकेट दिखाया गया था और हरेक मंजिल पर मशीनों से बना आदमी. इस के अलावा एक क्राइसलर कार भी थी, जो दुनिया की सब से बड़ी मोटर बनाई गई थी.

स्पेन और वेटिकन (पोप) के कक्ष में वे अमूल्य चित्र देखने में आए, जिन्हें कभी भी अपने स्थान से अलग नहीं हटाया गया था. माइकल एंजेलो, गोया, पिकासो, एलग्रेवो आदि की सर्वोत्तम कृतियां एक ही स्थान पर देखने को मिलीं. 'अंतिम भोज', 'माता और शिशु' तथा 'ईशु और संत पीटर' के अनेक चित्र यहां सजे थे, जिन में कइयों की कीमत ५० लाख से दो करोड़ तक की थी.

विश्व विख्यात पेय कोकाकोला का पेवीलियन भी हम ने देखा. पेप्सीकोला की वार्षिक बिक्री २०० करोड़ की है तो इन की ६६० करोड़ रुपए अर्थात हमारे यहां के टाटा और बिड़ला दोनों के सारे कारखानों से भी अधिक. इन के स्टाल में हम ने एक प्रकार का रेडियो देखा. इसे ट्रांसफार्मर और रिसीवर का सम्मिलित रूप कहा जा सकता है. इस के द्वारा दुनिया के किसी भी कोने से आपस में बात की जा सकती है, बशर्ते कि दोनों के पास इसी प्रकार के सेट हों. यह यंत्र जनसाधारण के व्यवहार के लिए नहीं है. केवल सरकारी तौर पर इस का उपयोग सीमित रखा गया है और अभी प्रारंभिक अवस्था में है.

कोडक ने अपने कक्ष में एक रंगीन तसवीर दिखाई थी. आकार था, ३६ × ३० फुट. उन का दावा था कि इस आकार का फोटोग्राफ अब तक बन नहीं पाया है. इन के कक्ष में संसार के सर्वोत्तम फोटोग्राफ देखने को मिले.

सभी देशों ने अपनेअपने राष्ट्रीय जीवन और उद्योगधंधों का प्रदर्शन किया था. अफ्रीका के देशों के कक्षों में उन की संस्कृति, कला, प्राकृतिक दृश्य और वन्य पशु कम आकर्षक नहीं लगे. उन्हें अच्छी तरह देखने से एक प्रकार से विश्व भ्रमण हो जाता है.

अफ्रीकी देशों में हमें संयुक्त अरब राज्य (मिस्र) का कक्ष अधिक आकर्षक लगा. हमारी तरह इन की भी संस्कृति प्राचीन है. पाश्चात्य के विद्वानों की तो मान्यता रही है कि मानव सभ्यता का विकास नील घाटी से प्रारंभ हुआ, पर हमारे मनीषी लोकमान्य तिलक ने अपनी 'वैदिक सभ्यता' में ऐसी धारणाओं को

टारपीडो नुमा 'टाइम कैपसूल' जो ५००० वर्ष बाद भी आज की याद दिलाएगा

भ्रमपूर्ण सिद्ध करते हुए बताया है कि वैदिक सभ्यता ही प्राचीनतम है.

ईसा पूर्व ५,००० वर्ष से ईसा पूर्व, २००० वर्षों तक विभिन्न काल में प्रयोग में आने वाले लोहे, सोने और चांदी के गहने, पोशाकें, बरतन आदि इस कक्ष में देखने में आए. सम्राट तूतनखामेन का सुवर्ण मंडित शव भी वहां देखा. मिस्र की अपनी पिछली यात्रा में इन वस्तुओं को काहिरा के म्यूजियम में देखने का अवसर मिला था.

इस के बाद हम ने इसराइल का कक्ष देखा. इस ने हमें बहुत प्रभावित किया. यहां १६ वर्ष के इसराइल के निर्माण का इतिहास चित्रों के माध्यम से दिखाया गया था. यह यहूदियों का एक मात्र नया राज्य है. हिटलर ने यहूदियों पर अमानुषिक अत्याचार किए जिस से विश्व की सहानुभूति उन के प्रति हो गई.

द्वितीय महायुद्ध में यहूदियों ने मित्र राज्यों को तनमनधन से सहायता भी पहुंचाई. इसी कारण ब्रिटेन को बाध्य हो कर फिलस्तीन में यहूदियों के राज्य की मांग स्वीकार करनी पड़ी. राज्य बना, पर मिली बंजर भूमि और साथसाथ पड़ोसी अरब राज्यों से भी युद्ध छिड़ा. बीचबचाव के कारण संधि हो गई, पर मनमुटाव और तनाव अब भी है. सीमांत पर मिस्र, सीरिया, ईराक और जोरडन के अरब राज्य पैंतरे कसे हुए हैं. इसराइली किसान कंधे पर बंदूक लादे खेती और बागबानी करते जा रहे हैं. इन पंदरहसोलह वर्षों में इसराइल ने हर क्षेत्र में विकास और उन्नति की है. जिन वीरान जगहों में धरती फटी थी और रेत की आंधियां चलती थीं, आज वहां नाशपाती, अंगूर और माल्टा के

ग्रेट ब्रिटेन

दुनिया की समस्या सुलझाने वाला, खुद उलझा हुआ

अंगरेज अपने छोटे से देश को सिर्फ ब्रिटेन ही नहीं कहते बल्कि ग्रेट ब्रिटेन भी कहते हैं.

ब्रिटेन अब भले ही ग्रेट न रह गया हो पर था एक जमाना इस का भी. संपूर्ण पृथ्वी पर जगहजगह फैले हुए इस के विस्तृत साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता था. इस की सेना पृथ्वी के पांचों महाद्वीपों में सीना फुलाए, संगीनें ताने खड़ी रहती थी. इस के जंगी जहाजों के बेड़े सागर की लहरों पर शान से बेरोकटोक घूमते थे. इस के व्यापारी जहाज देशविदेशों से सोनाचांदी जवाहरात, धातु और कच्चा माल ला कर ब्रिटेन को दौलतमंद बनाते थे. वास्तव में ब्रिटेन महान था, ग्रेट था, उस का लोहा सभी मानते थे.

सन १९३० तक औसत भारतीय अंगरेज को देख कर भयभीत सा हो जाता था. यही कारण था कि तेंतीस करोड़ भारतीयों पर अंगरेजों ने अपनी एक लाख ब्रिटिश फौजों से लंबे समय तक शासन किया.

मैकाले के समय से ही शिक्षा के पाठ्यक्रमों में अंगरेजों की बड़ाई, उन के धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता आदि का इस ढंग से समावेश किया गया कि भारतीय विद्यार्थी अंगरेज, अंगरेजी और अंगरेजियत के अंधभक्त बनते गए. लोगों में यह धारणा बन गई कि रेल, डाकतार, पक्की सड़कें, नहरें, बिजली आदि अपने देश में अंगरेजों की बदौलत ही हम देख पाए. स्मिथ और मार्संडन का इतिहास पढ़ कर हम टीपू सुलतान, सिराजुद्दौला, चेतसिंह, महाराज नंदकुमार आदि सब को कुचक्री, विलासी और डरपोक मानने लगे जब कि क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी का असली रूप हमारे सामने कभी भी नहीं आ पाया.

जो भी हो, सन १९२० से १९४७ तक गांधीजी के नेतृत्व में जो स्वराज्य आंदोलन चला, उस से देश में राजनीतिक चेतना जाग उठी. जनसाधारण यह समझने लगा कि अंगरेजों की मंशा भारत की सेवा करना नहीं, बल्कि शासन और शोषण करने की है.

दो महायुद्धों के कारण ब्रिटेन कमजोर हो गया और उस का खोखलापन सामने आ गया. इसी कारण अपनी रक्षा के लिए अंगरेजों को सिमटने के लिए बाध्य होना पड़ा. एकएक कर के भारत, लंका, बर्मा, मलाया आदि सब अधीन देशों को उसे स्वतंत्रता देनी पड़ी. ग्रेट ब्रिटेन नाममात्र को ग्रेट रह गया.
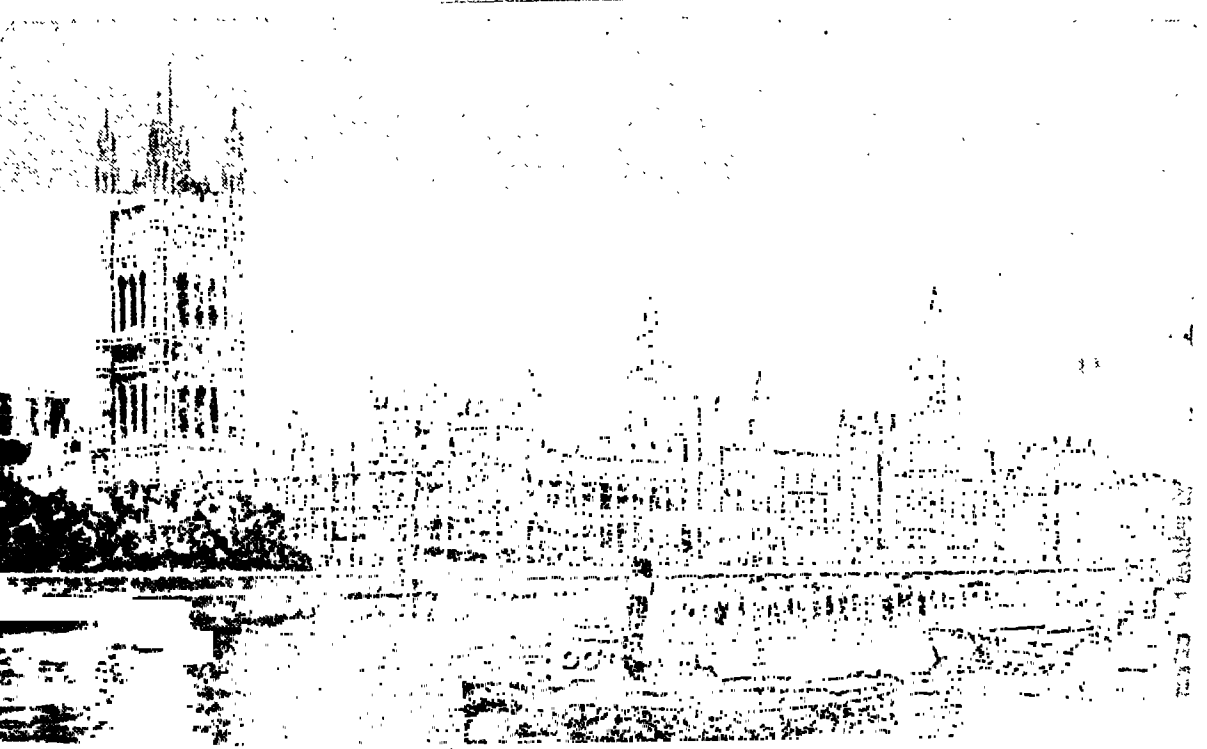
ब्रिटिश पार्लियामेंट और टेंम्स नदी : खामोशी के बीच

बचपन से ही जिज्ञासा थी कि अंगरेज इतने बढ़े कैसे? महाभारत की कथाओं में हम ने पढ़ा था कि भारत भी कभी संसार में श्रेष्ठ माना जाता था. अश्वमेध यज्ञ में हस्तिनापुर और इंद्रप्रस्थ में विश्व के कोनेकोने से प्रतिनिधि आए थे, साथ में भेंट उपहार भी लाए थे. उस समय के बाद हमारा पतन हमारी आपसी लड़ाई के कारण हुआ. उस के बहुत बाद तक भी छोटीछोटी बातों को ले कर कभी राठौर और बुंदेलों में, तो कभी सिसोदियों और तंवरों में लड़ाइयां होती रहतीं. इतना ही नहीं बल्कि वे एकदूसरे को नीचा दिखाने के लिए मुगलों और पठानों से भी मिल जाते. लेकिन ठीक इस के विपरीत अंगरेज अपने देश में स्काट, नार्मन, डेन, रोमन आदि को मिलाते गए और वे सब ब्रिटिश बन गए जब कि हम एक रक्त तो क्या, एक स्वर भी नहीं हो सके. इसी के चलते ब्रिटेन की सर्वांगीण उन्नति अ हमारी गुलामी का इतिहास बना.

ब्रिटेन के भूगोल को पढ़ने से पता चलता है कि इस की धरती की कोख में खनिज पदार्थों का प्राचुर्य तो है—पर अन्न कम है. खाद्यान्नों के लिए इसे सदैव विदेशों पर निर्भर रहना पड़ा है. छोटा सा द्वीपपुंज है, चारों ओर सागर की जलराशि से घिरा हुआ है. खाद्यान्न लाने के लिए जहाजों की जरूरत इसे हमेशा से रही है. स्वरक्षा और सुरक्षा के लिए भी जहाजी बेड़े को तैयार रखना पड़ता था. इन्हीं कारणों से यह अपनी नौसेना को हर तरह से साधन-संपन्न और सुसज्जित रखता आया है.

ब्रिटेन द्वारा साम्राज्य का विस्तार भी उस की एक आवश्यकता की प्रतिक्रिया थी. अपनी दलदली जमीन, बढ़ती हुई आबादी और खाद्यान्नों की कमी के कारण इस का विदेशों में फैलना स्वाभाविक था. यूरोप में यह सहज और संभव नहीं था क्योंकि वहां पहले ही से फ्रांस, आस्ट्रिया, जरमनी, स्पेन आदि पासपड़ोस में थे जिन

की ताकत इस से कम नहीं थी. इसलिए अंगरेजों ने दूर के देशों में पैर फैलाने शुरू किए. यों तो फ्रांस, हालैंड, स्पेन और पुर्तगाल भी इस के प्रतिद्वंद्वी हो कर पहले से ही वहां जमे हुए थे मगर अंगरेजों की कूटनीति और धूर्तता के कारण वे पिछड़ गए. अंगरेजों का शासन यथार्थ रूप से सागर की लहरों पर हो गया. अंगरेज बड़े गर्व से लिखते और कहते कि बरतानिया लहरों पर राज्य करता है.

भारत में आए थे व्यापारी बन कर. जहांगीर के दरबार में सर टामस रो ने घुटने टेक कर, दस्तबस्ता हो कर व्यापार के लिए कुछ सुविधाओं की अर्जी मंजूर करवाई थी, पर थोड़े समय बाद ही जब पैर जमने लगे तो भारतीयों को आपस में एकदूसरे से भिड़ा कर हेस्टिंग्स की रवानगी तक देश के बहुत से हिस्सों पर इन्होंने अपना आधिपत्य जमा लिया.

१७८२ में इन्हें अमरीका में जार्ज वाशिंगटन से करारी हार खानी पड़ी. तब से इन का सारा ध्यान भारत की ओर हो गया, क्योंकि कच्चा माल यहां से यथेष्ट मिल सकता था. यहां का धनवैभव आंखों में चमक पैदा कर रहा था. अमरीका में योजना विफल हो गई थी. कनाडा और अफरीका के देश उस समय तक अविकसित थे. भारत पारस्परिक फूट में बिखर रहा था इसलिए भारत ने ब्रिटेन को सर्वाधिक आकर्षित किया.

मुगल साम्राज्य लड़खड़ा रहा था. उस के प्रांतीय गवर्नर या सूबेदार अथवा निजाम स्वतंत्र थे, जो आपस में लड़तेभिड़ते और संधि करते थे. राजस्व मिल नहीं रहा था. केंद्रीय शासन चलता कैसे? शहंशाहे हिंदुस्तान शाहआलम का शासन लालकिले से पालम तक रह गया था. अंगरेज मौकेबेमौके किसी न किसी बहाने, कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष ले कर राजेनवाबों को आपस में लड़ाते रहते थे. इस प्रकार भारतीय राजनीति में इन का प्रवेश हो गया. पलासी के युद्ध में इसी तरह की कूटनीति से इन को आशातीत सफलता मिली. मराठों के साथ भी इन्होंने यही नीति अपनाई. परिणामस्वरूप इन्हें अपार धनराशि हाथ लगने लगी. अंगरेजी जहाज सोनाचांदी और जवाहरात के संदूकों को लादलाद कर लंदन पहुंचाने लगे.

राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने तो भारत में ऐसे अत्याचार किए और लूट मचाई कि शरीफ अंगरेज आज भी इन का नाम सुन कर शर्मिन्दा हो जाता है. इसी प्रकार अंगरेजों ने एशिया और अफ्रीका के पिछड़े देशों चीन, स्याम, मलाया, ईरान, ईराक व मिस्र को भी न छोड़ा, यहां तक कि चीन को जबरन अफीम खिलाने के लिए युद्ध छेड़ दिया. इस तरह फटेहाल ब्रिटेन खुशहाल बन गया.

सन १९१४ के प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटेन का दबदबा विश्व के सभी देश मानते थे. आज जिस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में डालर को सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है और लेनदेन भी ज्यादातर इसी के माध्यम से होता है, उसी प्रकार प्रथम महायुद्ध तक ब्रिटिश पाउंड को विश्व के बाजारों में मान्यता मिली हुई थी. उन दिनों अमरीका को अपने खनिज पदार्थों के अपार वैभव का पता तो चल गया था पर सैनिक शक्ति में वह ब्रिटेन, जरमनी और फ्रांस से पिछड़ा हुआ था इसलिए विश्व के रंगमंच पर प्रथम श्रेणी में नहीं था.

युद्ध साढ़े चार साल तक चला. ब्रिटेन की भौगोलिक स्थिति और ब्रिटिश
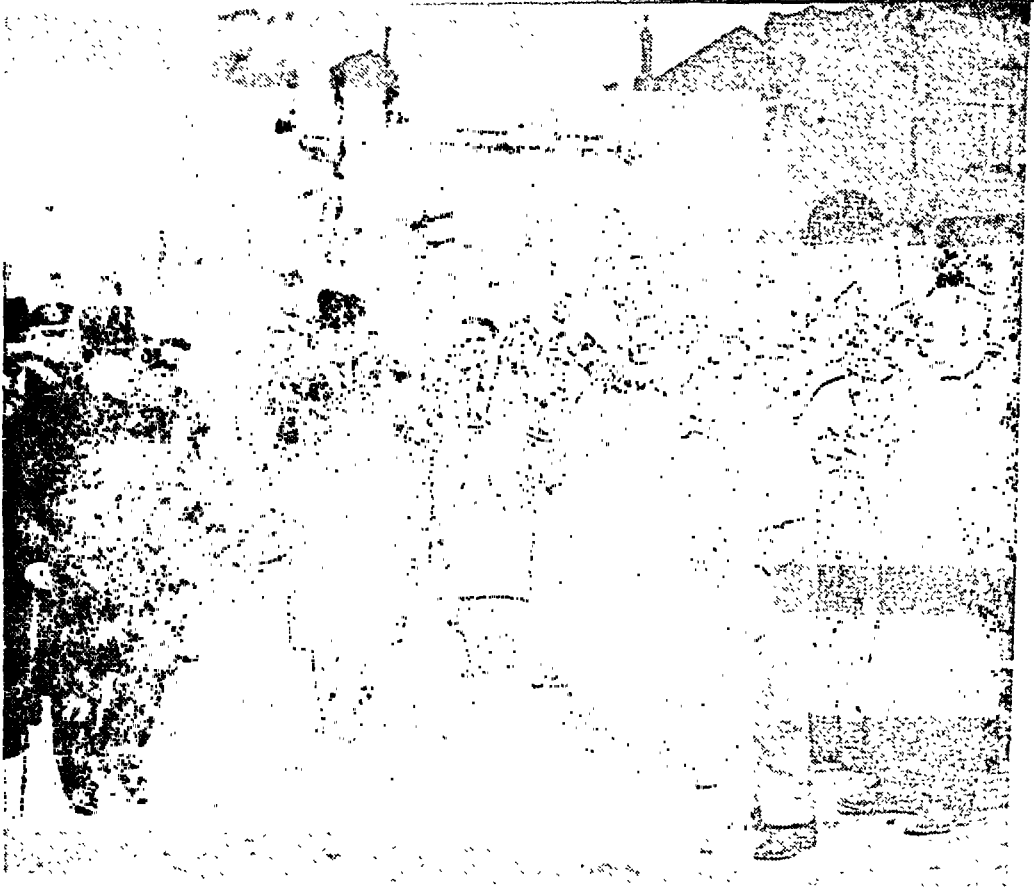
मैनचेस्टर में बमबारी से ध्वस्त मकानों का निरीक्षण करते हुए श्री चर्चिल

जनता के त्याग, बलिदान, साहस और देशप्रेम ने जरमनों की बड़ी शक्ति को धैर्यपूर्वक रोका. बहुत बड़ी संख्या में भारत के बहादुर जवान युद्ध में शहीद हुए. युद्धऋण और सहायता के नाम पर खरबों रुपए का सामान और सोना भारत से जबरन ब्रिटेन ले जाया गया. अजेय जरमनों को केवल भारतीय सेना और अमरीकी साधन ही रोक सके थे, वरना यूरोपीय फौजें तो घुटने टेक चुकी थीं. ब्रिटेन ने वादा किया कि युद्ध समाप्त होने पर वह भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देगा.

युद्ध समाप्त हुआ. भारत को पुरस्कार मिला—जलियांवाला बाग का हत्याकांड और रौलट ऐक्ट. शोषण और दमन की चक्की जोरों से चल पड़ी.

भारतीय जनता अपमान, दुख और क्षोभ से विकल हो उठी. दरअसल यहीं से अंगरेजों की राजनीति और कूटनीति के कारण उन के प्रति भारतीयों के मन में संदेह बढ़ता गया और पारस्परिक संबंध बिगड़ते गए.

जो भी हो, अंगरेजों में एक सब से बड़ा गुण रहा है उन का स्वदेश प्रेम. दूसरे देशों के प्रति जहां अवसरवादिता और वादाखिलाफी की नीति उन्होंने बरती, वहीं अपने देश के प्रति ऊंची वफादारी और त्याग की भावना उन में सदैव रही है. ब्रिटिश, चाहे स्काट हों या इंगलिश, रोमन कैथोलिक हों या प्रोटेस्टेंट, हमारी तरह भाषा, प्रदेश या धर्म के कारण कभी भी बिखरे नहीं. यही वजह है कि विश्व में प्रजातंत्र की व्यवस्था यहां सर्वाधिक सफल रही है. ब्रिटिश संसद के प्रति इन की श्रद्धा और अनुशासन को दूसरे देशों में उदाहरणस्वरूप माना जाता है.

अंगरेजों से मेरा १९२५ से ही घनिष्ठ संबंध रहा है. मैं ने यह महसूस किया कि राजनीतिक क्षेत्र में वे भले ही दूसरे देशों के प्रति कुटिल हों, पर व्यापारिक व्यवहार में वे अन्य देशों की अपेक्षा कहीं अधिक निर्भर योग्य हैं. घटिया माल दे कर ग्राहक को धोखा देने की बात शायद ही कोई ब्रिटिश फर्म सोचेगी. इस ढंग के व्यवहार से राष्ट्र की प्रतिष्ठा में बट्टा लगता है, इस का उन्हें सदा ध्यान रहता है.

सन १९२५ तक हमारे यहां महीन कपड़े ज्यादातर ब्रिटेन के मैनचेस्टर से या लंकाशायर से आते थे. इन के अर्ज, माप और किस्म में किसी प्रकार की शिकायत का मौका नहीं आता. भारत में जो अंगरेजी फर्में आयात का व्यापार करती थीं, वे अपने लाभ में से बेनियन, दलाल, मुकादम और दुकानदार को भी हिस्सा देती थीं. इसलिए इन के प्रतिष्ठानों के प्रति सैकड़ों व्यक्तियों की शुभकामनाएं रहती थीं और उन को हर प्रकार का सहयोग इन से मिलता था. जब से भारतीयों के हाथ में कारोबार आया, उन्होंने इन सब को हटा कर सब काम स्वयं करना शुरू कर दिया.

मैं ऐसे कई अंगरेजों को नजदीक से जानता हूं जिन्होंने अवकाश ग्रहण कर भारत से स्वदेश जाते समय कारोबार का अपना हिस्सा अपने भारतीय सहयोगियों को अत्यंत उदार शर्तों पर बेच दिया. एक लंबी अवधि तक ब्रिटिश फर्म में काम करने के कारण बहुत से अंगरेज मेरे मित्र हो गए थे. वे बराबर लंदन आने के लिए मुझे निमंत्रण देते. अपने देश का वर्णन करते समय उन के चेहरे पर एक प्रकार की चमक आ जाती थी. उन के स्वर में गर्व की मधुर गूंज भी रहती थी.

मेरी घुमक्कड़ी की वृत्ति शुरू से ही रही है, इसलिए इच्छा होती थी कि यूरोप देख लूं पर सन १९३८ तक यह संभव न हो सका. इस के बाद द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया और सारी संभावनाएं समाप्त हो गईं.

इस समय तक ब्रिटेन और हमारे पारस्परिक संबंध न केवल बिगड़ते ही गए बल्कि उन में कटुता भी बढ़ती गई. अपनी इच्छा के खिलाफ हमें ब्रिटेन के पक्ष में द्वितीय महायुद्ध के दौरान अपनी फौज और प्रचुर युद्धसामग्री भेजनी पड़ी. दिल से हम ब्रिटेन की हार की मनौतियां मानते थे. प्रत्येक रात्रि हम लोग बर्लिन रेडियो पर ब्रिटेन की हार और जरमनों की जीत की खबरें सुनते और अपने मित्रों और परिवार में उस की चर्चा बड़े उत्साह से करते थे. देश के अधिकांश लोग हिटलर को भारत का हितैषी, चरित्रवान और बहादुर समझते थे. शत्रु का शत्रु सदैव मित्र हो जाता है.

अंगरेजों की कूटनीति और हिटलर के दंभ के कारण इस बार भी अमरीका व रूस ब्रिटेन के पक्ष में युद्ध में उतर पड़े. अमरीका के पास अटूट साधन और सामान था, उस की फौजें भी ताजादम थीं. उधर जरमनी थक गया था. इस-लिए लंबे समय तक जरमन टिक न पाए. सन १९४५ में उन की फौजों ने हथियार डाल दिए. मित्रशक्तियों की जीत हुई, ब्रिटेन विजयी हुआ. पर जीत उसे महंगी पड़ी. वह जर्जर हो गया. जीत कर भी हार गया. विश्व राजनीति में प्रथम शक्ति का पद अब मिला अमरीका व रूस को. महाजन ब्रिटेन, अमरीका और भारत का कर्जदार बन गया. सन १९४७ में उस पर हमारा चौदह अरब रुपयों

का कर्ज था.

सन १९४६ से १९५० तक संकट और अभाव में रह कर ब्रिटेन ने जिस प्रकार अपना पुनर्गठन किया, वह सभी देशों के लिए और खासतौर से हमारे लिए अनुकरणीय है. स्वयं अपने को अभाव में रख कर विदेशों में माल निर्यात कर उन्होंने न केवल कर्ज चुकाया बल्कि आज बहुत से देश उन के कर्जदार हैं. अपने अधीन भारत से उन्होंने कर्ज लिया, स्वाधीन भारत का कर्ज चुकाया और उसे फिर कर्ज दिया.

उन्होंने महीने में चार औंस मक्खन, छः औंस चीनी, १५ अंडे और अपेक्षित खुराक से कम चावल और आटे के राशन पर शांति और धैर्य से वर्षों गुजार दिए. किसी ने सरकार से न शिकवाशिकायत की और न इस कठोर व्यवस्था की आलोचना ही. अनुशासन और समता की भावना का इसी से अंदाजा लग जाता है कि किसी धनी व्यक्ति ने अधिक मूल्य दे कर दूसरे के हिस्से को हथियाने की कोशिश नहीं की. यही वजह है कि यूरोप के सभी देशों में जब काले बाजार की कालिमा छाई हुई थी, ब्रिटेन में उस का नामोनिशान तक न था.

मुझे सन १९५० में पहली बार लंदन जाने का मौका मिला. उस समय मैंने देखा कि लंदन के अधिकांश हिस्से खंडहर से हो रहे थे. जरमनों की बमबारी से मकान, अस्पताल गिरजे सभी ध्वस्त हो गए थे. अंगरेज गंभीर था पर उस के चेहरे पर उदासी के साथ दृढ़ता भी थी. उन दिनों वहां विदेशियों को तो पूरी खुराक मिलती थी पर अंगरेज नागरिक आंशिक खुराक पर ही संतुष्ट थे. मकान, गिरजे और दुकानें अभी भी टूटीफूटी थीं. पांच वर्षों के लंबे समय में भी इन की मरम्मत नहीं हो सकी, यह मेरे लिए आश्चर्य का विषय था. पूछने पर उत्तर मिला : "इन पर बाद में ध्यान दिया जाएगा. सब से पहले हम निर्यात को संगठित करना चाहते हैं इसलिए कारखानों और जहाजों पर ध्यान दिया जा रहा है."

उन दिनों लंदन की सड़कों पर स्वस्थ और जवान अंगरेज बहुत ही कम दिखाई पड़ते थे. ज्यादातर युद्ध में काम आ चुके थे या घायल हो कर बेकाम हो गए थे. पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या काफी अधिक थी.

पेट और शरीर की भूख मिटाने के लिए माताएं अपनी जवान बेटियों के लिए साथियों की तलाश में रहती थीं. कभीकभी तो समाचारपत्रों में इस ढंग के विज्ञापन भी पढ़ने को मिलते थे कि सुंदरी युवती को धनी विदेशी यात्रियों की सेवा के लिए गाइड अथवा निजी सचिव के रूप में काम चाहिए, जो उन के साथ विदेशों की यात्रा के लिए भी राजी हैं. पर यह सब कुछ था व्यक्तिगत सीमा तक. राष्ट्रीय मर्यादा और संघर्ष में सब एक से थे. कहीं भी चूके नहीं थे.

विदेश यात्रा का पहला मौका था. स्विट्जरलैंड से सीधे लंदन गया. स्विट्जरलैंड का जीवन व्यवस्थित और शांत देखा. युद्ध से वह बिगड़ा नहीं था, बल्कि दूसरे देशों को ऊंचे दामों में वस्तुएं बेच कर समृद्ध हुआ था. जब लंदन पहुंचा तो वहां का वातावरण ही बदला हुआ नजर आया. लगा, लोग चलते नहीं बल्कि दौड़ते थे. किसी को बात करने या सुनने का समय नहीं. सब से ज्यादा मुझे यहां की यातायात और परिवहन की व्यवस्था ने प्रभावित किया. हजारों

चौराहों की बत्तियों के अतिरिक्त शहर में भूमिगत ट्रेनों का जाल सा बिछा है. कार्यकाल के समय ठीक मिनट ट्रेनों का आवागमन, सवारियों का अनुशासन और समय की पाबंदी ने मुझे विस्मय में डाल दिया. अस्सी लाख की आबादी के घने बसे शहर में लोगों को अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए कहीं भी अनुशासन भंग करते नहीं देखा. सभी कुछ मानो यंत्रवत चल रहा हो.

अभाव से स्वभाव बिगड़ता है, सभी देशों और व्यक्तियों पर यह बात लागू होती है, मात्रा में कमीबेशी का अंतर भले ही हो. रूस में पिछले पचास वर्षों से साम्यवादी व्यवस्था होने के बावजूद अभी तक काला बाजार है. इसी तरह किसी देश में वेश्यावृत्ति, कहीं पाकेटमारी और गुंडागर्दी है तो कहीं ठगी. यूरोप में स्केंडिनेविया के देशों—डेनमार्क, फिनलैंड, स्वीडन, नार्वे और स्विट्जरलैंड को छोड़ कर बाकी सभी देशों में समाजविरोधी तत्त्व न्यूनाधिक मात्रा में हैं. ब्रिटेन भी इस से मुक्त नहीं. गुंडागर्दी और पाकेटमारी यहां है पर और देशों से कम. दक्षिणी यूरोप में, जहां विदेशियों को बेहिसाब ठगा जाता है, वहां ब्रिटेन में अंगरेज विदेशियों के प्रति सदैव सतर्क रहते हैं ताकि उन के राष्ट्र का चित्र दागी न हो जाए.

लंदन के पुलिस वालों को देख कर पता चलता है कि इनके पुलिस वाले दंडधारी यमदूत नहीं बल्कि नागरिकों के सच्चे साथी हैं. हमारे यहां के पुलिस वालों में और उन में जमीनआसमान का अंतर है. अपने यहां के कानून के रक्षक किस ढंग से और किस हद तक गैरकानूनी काररवाई करते हैं, इस का परिचय हमें प्रेमचंद से ले कर अब तक के साहित्य में मिलता है.

लंदन में कांस्टेबल दिखाई पड़े सबल व स्वस्थ छः फुटे जवान, जो बड़े ही विनम्र, प्रशिक्षित और कर्तव्यनिष्ठ थे. विदेशियों को हर तरह की सहायता देने को ये हमेशा तत्पर रहते. बच्चों के तो ये खास दोस्त कहे जा सकते हैं. सड़क, महल्ले, प्रसिद्ध मकान और व्यक्तियों की जानकारी के लिए वे चलती-फिरती डायरेक्टरी हैं.

मैं किसी सड़क को खोजता इधरउधर जा रहा था. पास आ कर भद्रतापूर्वक एक कांस्टेबल ने अभिवादन किया और कहा, "क्या मैं आप की कुछ सहायता करूं?"

मैं ने सड़क का नाम और मकान का नंबर बताया. उस ने बड़े शाइस्ता ढंग से मुझे सही और आसान रास्ता बता दिया.

चूंकि यह मेरी पहली विदेश यात्रा थी, अतः व्यक्तिगत अनुभव तो कुछ था नहीं. देश से चलते समय मित्रों ने सलाह दी थी कि कम कपड़े साथ रखे जाएं ताकि सफर हल्का रहे. सलाह ठीक थी पर व्यावहारिक नहीं हो सकी, क्योंकि लंदन का मौसम दिन में कई बार बदलता है और हल्की बूंदाबांदी होती ही रहती है.

मैं कुछ कमीजें और एक हैट खरीदने के लिए सेलफिज के प्रसिद्ध स्टोर में गया. यह आक्सफोर्ड स्ट्रीट पर स्थित है. सुई से लेकर हाथी तक बेचने वाली दुकानों में इस की गिनती है. खानेपीने, विश्राम, किताब पढ़ने, रेडियो और टेलीविजन सुननेदेखने की सारी सुविधाएं यहां सहज उपलब्ध हैं. हजारों आदमी इस स्टोर के विभिन्न विभागों में घूमते रहते हैं. स्टोर कई मंजिलों का है. मैंने सभी मंजिलों में घूम कर पूरी दुकान का चक्कर लगा दिया. रेडिमेड कपड़ों के

श्री चर्चिल जर्मनों द्वारा ध्वस्त की गई 'हाउस आफ कामन्स' में

दाम हमारे यहां से अधिक नहीं थे. ब्रिटेन में चीजों पर सेलटैक्स अवश्य बहुत ज्यादा है पर विदेशियों को पासपोर्ट दिखाने पर इस की छूट है.

भूख लग आई थी इसलिए वहीं रेस्तरां में नाश्ता कर लिया. ऐसे डिपार्टमेंटल स्टोरों में रेस्तरां के चार्ज अपेक्षाकृत कम रहते हैं इसलिए बहुत से लोग केवल जलपान करने के लिए यहां आ जाते हैं. यहां पहली बार स्वचालित सीढ़ियों पर चढ़ने का मुझे मौका मिला. मेरे लिए यह एक नया अनुभव था. अब तो हमारे देश में भी दिल्ली के रेलवे स्टेशन और कलकत्ता के रिजर्व बैंक के भवन में ऐसी व्यवस्था हो गई है.

मुझे एक अंगरेज मित्र से मिलना था, कलकत्ता से ही उन से पुराना परिचय था. वह रिटायर हो कर कई वर्षों से लंदन में काम कर रहे थे. वह बड़े प्रेम से मिले. भारत में जो अभिमान की झलक उन में पायी थी, उस का यहां सर्वथा अभाव था. भारत के पुराने मित्रों के बारे में वह विस्तारपूर्वक पूछने लगे. मनुष्य को अतीत की स्मृतियों की परतें खोलने में बड़ा ही रस आता है. दूसरे दिन उन्होंने नाश्ते पर मुझे अपने घर आमंत्रित किया.

शहर से लगभग आठ मील दूर उन का छोटा सा फ्लैट था. उन के पास न कोई नौकर था, न आया. सब काम पतिपत्नी स्वयं अपने हाथों कर रहे

थे. कलकत्ता में कई बार उन के यहां आने का मौका मिला था. यहां उन
काम साधारणतः नौकर थे. यहां घरेलू काम सब हाथ से करने पड़ते हैं. दूस
कई परिचित अंगरेजों के बारे में पूछने पर पता चला कि कोई मुर्गों व अंडों का का
कर रहा है तो कोई ट्रक चला रहा है.

पता ले कर दूसरे दिन सुबह ट्रेन से मिस्टर जॉन के गांव पहुंचा. उन का
असली नाम न दे कर अंगरेजों में बहुप्रचलित नाम जॉन दे रहा हूं. पति
पत्नी दोनों मजदूरों से मैले कपड़े पहने मुर्गियों के बाड़े को साफ कर रहे थे, अं
बटोर कर बिक्री के लिए टोकरों में रख रहे थे. मुझे अप्रत्याशित रूप से देख क
बड़े ही प्रसन्न हुए. गांव में ही छोटा सा पर साफसुथरा घर था. वे मुझे वहां ले
गए और बहुत अच्छा खाना खिलाया. शाम को उन्होंने अपनी मोटर से स्टेशन
पहुंचा कर मुझे छोड़ा. मैं जॉन के साथ बहुत दिनों तक कलकत्ता में काम क
चुका था पर इस समय यह जॉन नहीं था जो गुस्सा होने पर मुझे धमक
देता था.

शिष्टता के नाते यहां बड़ेबड़े दुकानदार, होटल वाले या पुलिस वाले विदे
शियों को 'सर' कह कर संबोधित करते हैं. जब अंगरेजों के द्वारा मुझे 'सर' कह
कर संबोधित किया गया तो मेरे अंदर एक गुदगुदी सी होने लगी. आश्चर्य से
नजर घुमा कर देखा. पराधीन भारत में हम अंगरेजों को बातबात में 'सर' कहने
के आदी हो गए थे. हालत यहां तक थी कि मेरे कई भारतीय मित्र अपने जूट के
काम की देखभाल के लिए नियुक्त अंगरेज कर्मचारियों को भी स्वभाववश 'सर'
कह कर संबोधित करते थे.

दूसरे दिन सुबह नाश्ते के बाद शहर का नक्शा और गाइडबुक जेब में रख
घूमने निकल पड़ा.

लंदन का सेंट पाल कैथेड्रल विश्वप्रसिद्ध है. यों तो इसे लगभग सन ६०० में
बनाया गया था पर कई बार आग लग जाने के कारण इस का पुनर्निर्माण होता
रहा है. प्रोटेस्टेंट ईसाइयों का यह सब से बड़ा केंद्र माना जाता है. ईसाइयों
के इस संप्रदाय की स्थापना प्रसिद्ध जरमन चिंतक मार्टिन लूथर ने की. प्राचीन-
पंथी कैथोलिकों के गुण्डम और आडंबर के विरोध में उस ने नवीन विचारों और
संस्कारों को प्रस्तुत किया था. जरमनों के लिए यह नाज की बात है. मगर युद्ध
की ज्वाला में धार्मिक या ऐतिहासिक मान्यताओं की गुंजाइश कहां! प्रोटेस्टेंट
जरमनों की बमबारी से सन १९४१ में इस विशाल गिरजे का बहुत सा
भाग ध्वस्त हो गया था.

ब्रिटेन में राष्ट्रीय मान के लोगों को यहां समाधिस्थ कर गौरव प्रदान किया
जाता है. यहां कई सम्राट, मनीषी, साहित्यकार और राजनीतिज्ञों की
समाधियां हैं. ऊपर के गुंबद से लंदन का बहुत बड़ा भाग साफ दिखाई देता है.
इस की ऊंचाई ३२५ फुट है, अर्थात कुतुबमीनार से १०० फुट अधिक.

रविवार के कारण हजारों स्त्रीपुरुष प्रार्थना के लिए आ रहे थे. मुझे ऐसा
लगा कि हमारे यहां भी महज दिखावे के लिए या व्यक्तिगत मेलमिलाप के लिए
जिस प्रकार आज कल लोग मंदिरों में जाते हैं, वैसा ही कुछ ढंग यहां का भी है.
महिलाओं के साथ उन की जवान बेटियां भी थीं, जिन्हें शायद इसलिए सजा कर

साथ लाया गया था कि ईसामसीह की दया से किसी युवक की निगाह पड़ जाए तो कन्याभार से मुक्ति हो. मेरी भी इच्छा हुई कि मैं भी चर्च की प्रार्थना में शामिल हो जाऊं. उपासना के सभी स्थान तो एक से ही हैं. पर पता नहीं क्यों, झेंप सा गया. शायद लंदन में नयानया आया था इसलिए या फिर मेरे भारतीय संस्कारों ने मुझे रोक दिया. धीरेधीरे उस मेले से मैं हट गया.

लंदन-१

सर्वाधिक सम्मान केवल सम्राटों को !

संसार के सभी बड़े शहरों की अपनीअपनी विशेषता होती है. कोई ऐतिहासिक है तो कोई आधुनिक. किसी का धार्मिक महत्त्व है तो कहीं चहलपहल और घुटन है. लंदन में इन सभी बातों का समावेश है. मुझे ऐसा लगा मानो इसका अपना एक निजी सौन्दर्य है जो न मास्को में देखने में आया और न पेरिस में. सेंट पाल्स कैथेड्रल कल देख चुका था. आज ब्रिटेन का दूसरा बड़ा गिरजा और मठ वेस्टमिंस्टर एबे देखने गया. हजारों वर्ष पहले मठ या विहार के रूप में यह बना था. बाद में इसमें परिवर्तन होते गए. फिर भी लंदन की सबसे पुरानी इमारतों में यह है.

ईसाइयों में अपने एबे के प्रति बड़ी श्रद्धा रहती है. दरअसल हमारे यहां के मठ या बौद्ध विहारों की ही तरह यह भी साधुओं का आवास है. अंतर केवल इतना है कि हमारे मठ या विहार ईसाइयों के एबे की तरह भव्य नहीं होते. एबे के बड़ेबड़े ऊंचे कक्ष और यहां के ईसाई संन्यासियों या साधुओं के पहनावे और चाल में हमें वह सहज और सरल भाव नहीं लगा जिस का होना वैरागियों या त्यागियों के लिए अपेक्षित है. फिर भी लगन, निष्ठा और कठोर अनुशासनप्रियता के कारण इन की मान्यता इस वैज्ञानिक युग के जनसमाज में भी है.

वेस्टमिंस्टर एबे का प्रभुत्व इंगलैंड के इतिहास और उस की राजनीति पर मध्य युग तक रहा है. शासकों को सदैव यहां के प्रधान धर्मयाजक की स्वीकृति ले कर शासन अथवा संविधान में परिवर्तन करना पड़ता था. उन के व्यक्तिगत जीवन और वैवाहिक संबंधों पर भी यदि एबे के कार्डिनल की सहमति नहीं मिलती थी तो स्थिति बड़ी समस्यापूर्ण हो जाती थी. जनता की दृष्टि में कार्डिनल देश के सर्वोच्च धर्माधिकारी थे. उधर सम्राट देश के शासक थे. सत्ता के लिए आपस में इन के संघर्ष होते रहते थे. हेनरी अष्टम के राज्यकाल में दोनों के आपसी संबंध बहुत कटु हो गए थे पर उस ने तलवार के सहारे समस्या सुलझा ली. कार्डिनल बैकेट की गर्दन उतरवादी गई थी.

यूरोप में गाइड बहुत महंगे पड़ते हैं इसलिए यात्री टोलियों में दर्शनीय स्थानों को देखने जाते हैं. मैं अकेला था इसलिए गाइड साथ नहीं लिया. फिर भी मुझे असुविधा नहीं हुई क्योंकि वहां के सहायक पादरी सब प्रकार की जानकारी दे रहे थे. प्राचीन गोथिक शैली पर बना हुआ यह भवन बहुत ही भव्य है. इस के प्रति
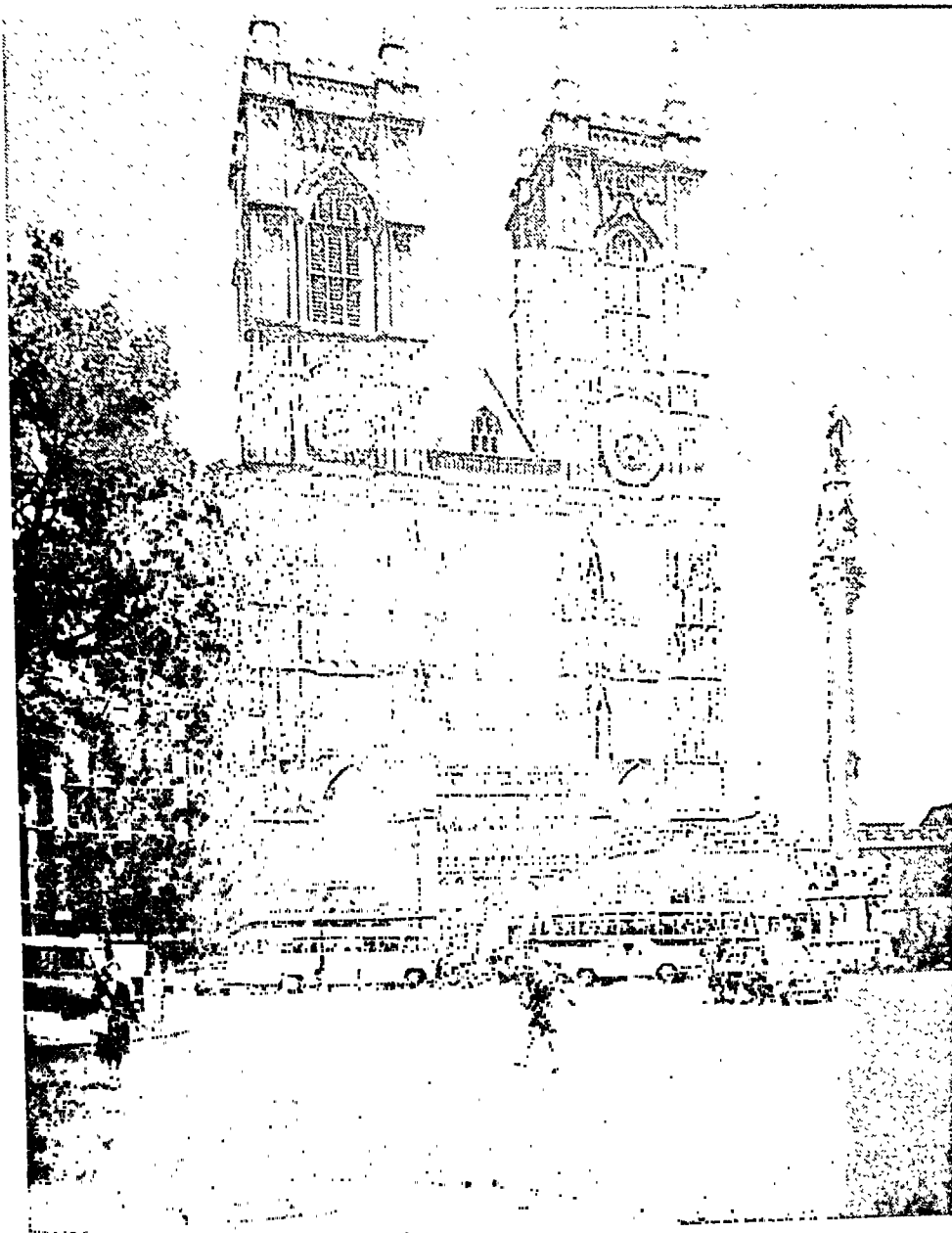
वेस्टमिंस्टर एबे, जिस का प्रभुत्व इंगलैंड पर मध्य युग तक रहा

ब्रिटेन के लोगों में इतनी श्रद्धा है कि सेंट पाल गिरजे की तरह यहां भी राष्ट्र के प्रमुख व्यक्तियों को समाधि दे कर उन की स्मृति को गौरवान्वित किया जाता है. पिछले ६०० वर्षों में सैकड़ों की संख्या में ब्रिटेन के सम्राट, सेनापति, वैज्ञानिक यहां दफनाए गए हैं. यहीं मैं ने हार्डी, लिटन, थेकरे, विलियम स्काट आदि प्रसिद्ध लेखकों की कब्रें देखीं. कवियों में किपलिंग, ब्राउनिंग, टेनिसन भी चिरनिद्रा में यहां सोए हुए हैं. मुझे पढ़ने का शौक वर्षों से रहा है. जिन प्रिय लेखकों को इतने समय से पढ़तासुनता आ रहा था, उन सबों की समाधि एक ही स्थान पर देख कर मन नाना प्रकार की भावनाओं से भर गया. श्रद्धानत हो कर उन की समाधियों पर अपने साथ लाए फूल चढ़ाए.

मेरा खयाल था कि ब्रिटेन में सर्वाधिक मान सम्राटों के बाद राजनीतिज्ञों को

मिलता रहा है. वेस्टमिंस्टर एबे देखने पर इस भ्रम का निवारण हुआ. राजनीतिक नेताओं से भी कहीं अधिक प्यार और इज्जत ब्रिटेन में लेखकों, कवियों और सैनिकों को दी जाती रही है. यही कारण है कि यहां की धरती ने जहां शेक्सपीयर, बर्नार्ड शा जैसे साहित्यिक पैदा किए वहीं वेलिंग्टन और नेलसन जैसे रणबांकुरे भी.

पार्लियामेंट हाउस वेस्टमिंस्टर के पास ही है. उन दिनों सत्र चल नहीं रहा था इसलिए यहां बैठक देखने की इच्छा धरी रह गई. बहरहाल, इस पर लगी विश्वविख्यात विशाल घड़ी 'बिगबेन' को देख कर ही संतोष कर लेना पड़ा. पार्लियामेंट भवन भी गोथिक वास्तु शैली पर बना है. आकर्षक और प्रभावपूर्ण लगता है पर हमारे भारतीय संसद भवन की तरह बड़ा और शानदार नहीं.

दोपहर हो आई थी. लंच के लिए इंडिया हाउस चला गया. यों तो लंदन में भारतीय ढंग का निरामिष भोजन कई जगह मिल जाता है, पर सस्ते और बढ़िया भोजन की व्यवस्था इंडिया हाउस (भारतीय दूतावास) में ही है. लंच के समय भारतीय यहां काफी संख्या में मिल जाते हैं. इन की संख्या इतनी अधिक है कि मिलने पर एकदूसरे के प्रति उतने आकृष्ट नहीं होते जितने कि विदेशों में दूसरी जगह.

इन दिनों उत्तर भारत में जिस तरह इडली, डोसे के प्रति लोगों की रुचि बढ़ती जा रही है उसी तरह यहां भी दक्षिण भारतीय इडली, डोसे को मैं ने प्रचलित पाया. भारतीयों के अलावा यूरोपीय भी स्वाद बदलने के लिए यहां आते हैं. मिरचों के हाल से उन का 'शीशी' करना देखते ही बनता है. सांभर और रसम के साथ मैं ने कई दिनों बाद पेट भर खाया. बिल बना लगभग दस रुपए का. स्वदेश के हिसाब से यह ऊंचा जरूर था मगर यहां के कोहेनूर, ताज आदि रेस्टोरेंटों के मुकाबले बहुत कम था.

लंदन में तीन दिन रहने का प्रोग्राम था. अतएव इस छोटी सी अवधि में इस महानगरी के दर्शनीय स्थान देखना चाहता था. खाना खा कर टेम्स के किनारे ७०० वर्ष पहले बने हुए टावर आफ लंदन को देखने गया. टेम्स का नाम स्कूली जीवन से ही सुनता आ रहा था. अंगरेज मित्रों से भी इस की चर्चा सुनी थी. गंगा, गोदावरी या यमुना के प्रति हमारी जो भक्ति भावना है, भले ही उस प्रकार की भक्ति टेम्स के प्रति अंगरेजों में न हो फिर भी उसमें पंजाबियों के दिल का जैसा वही प्यार है जो झेलम के जल में मुसकराता है. यूं औसत भारतीय इसे देख कर जरूर कह देगा, 'नाम बड़े, दर्शन छोटे!' हमारी गंगा से इस की लंबाई तो बहुत कम है ही, चौड़ाई भी चौथाई से अधिक न होगी. शायद गहराई ज्यादा है क्योंकि सैकड़ों छोटेबड़े जहाज इस में चल रहे थे.

टावर आफ लंदन के बारे में ब्रिटिश इतिहास तथा उपन्यासों में इतनी बार जिक्र आ चुका था कि देखने पर कुछ नयापन नहीं लगा. फिर भी टेढ़ेमेढ़े पत्थरों की बनी मोटी दीवारें, जंग खाए लोहे से जड़े लकड़ी के बड़ेबड़े फाटकों से अंदर गुजरते समय ऐसा लगता है कि बीते इतिहास की कहानी कहने के लिए ये दोनों ओर खड़े हैं. अंदर के सीलनभरे कमरों से आती हुई हवा कानों में न जाने कितनी आह, चीखपुकार भरने लग जाती है. इसी एक स्थान पर ब्रिटेन के सैकड़ों बड़ेबड़े सामंतों के सर काटे गए. सर टामस मूर, सम्राट अष्टम हेनरी की

चेलसी का बाजार किंग्स रोड, जो कभी कलाकारों का मुख्य केन्द्र था

दो रानियां, महारानी एलिजाबेथ के प्रेमी एसेक्स के अर्ल, न जाने और भी कितने ही. राजद्रोह और देशद्रोह के अपराधी दंडित हों तो कारण समझ में आ सकता है पर आज जो राजारानी का कृपाभाजन है वही कल कोपभाजन बन कर सूली पर चढ़ा दिया जाए तो उन की कृपा से दूर रहने में ही कल्याण है. शाही मुहब्बत की कीमत बहुत ही महंगी पड़ी है, हर देश और हर समय में, जनता की निंदा की बिना परवा किए जिस सिर को गोद में रख कर न जाने कितनी रातें महारानी एलिजाबेथ ने गुजारी थीं, उसी लार्ड एसेक्स के सिर को प्रेयसी रानी ने कुल्हाड़ी से कटवा दिया. वही कुल्हाड़ी और सिर रखने की अर्ध चंद्राकार लकड़ी की वेदी कितनी जानें ले कर भी वहां निर्जीव पड़ी है. न जाने क्यों मुझे भय और कंपकंपी सी हो आई. मैं उस स्थान से हट आया.

यहां दूसरे बहुत सारे तरहतरह के औजार भी देखे जिन से अपराधियों को दंड दिया जाता था. बहुत सी कालकोठरियां भी देखीं, जिन में कैदी न तो बैठ सकता है और न लेट ही सकता है. यहां तक कि सीधे खड़ा होना भी संभव नहीं. इन्हें देख कर रोमांच हो आता है. मैं यही सोचने लगा कि संसार के सामने आखिर किस बूते पर अंगरेज अपने को सभ्य कहते रहे हैं. बड़ा ताज्जुब इस बात पर होता है कि अपने आराध्य ईसा मसीह को वे सूली पर बिंधा हुआ पूजते रहे हैं. शारीरिक यातना देना बहुत बड़ा पाप है, इस का बड़ीबड़ी तसवीरों, साहित्य और रंगमंच द्वारा हजारों वर्षों से ये प्रचार करते आ रहे हैं. फिर त्रास से भी कहीं अधिक यंत्रणादायक इन अस्त्रों का वे भला किस प्रकार प्रयोग करते होंगे!

उन अंधेरी, सड़ी कोठरियों से बाहर आया. पास ही एक स्टाल पर जल्दी

प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय (नेचुरल हिस्ट्री म्यूजियम) में कीटपतंग, पशुपक्षी आदि को उन के आकार का बना कर स्वाभाविक परिवेश में रखा गया है. प्रागैतिहासिक युग के विशालकाय डिनोसोरस, ब्रांटोसोरस नाना प्रकार के प्राणी यहां देखने में आए. उसी काल के वृक्ष और पौधे भी देखे. कितना परिश्रम और धैर्य इन के अन्वेषण में लगा होगा! इस में संदेह नहीं कि परिश्रम अंगरेजों का जातीय गुण है. आज अमरीका या रूस अथवा विश्व के अन्य देश भले ही ब्रिटेन से शक्ति और क्षमता में आगे बढ़ जाएं, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि ज्ञानवर्धन की प्रेरणा उन्हें बहुत अंशों में अंगरेजों से ही मिली है. पृथ्वी के प्रागैतिहासिक युग का, गिरिकंदराओं का आदिमानव किस प्रकार आत्मरक्षा और संघर्ष करता हुआ आज टेलिविजन सेट के सामने बैठ सका है, इस का सिलसिलेवार दिग्दर्शन यंत्रों और मूर्तियों के माध्यम से कराया गया है. राहुलजी की 'विस्मृति के गर्भ में' पुस्तक में दैत्याकार डिनोसोरसों के बारे में पढ़ा था, आज उन के कंकालों को यहां प्रत्यक्ष देखा.

विक्टोरिया अलबर्ट म्यूजियम में विश्व के सारे देशों की तरहतरह की पोशाकें, वरतन, गहने आदि रखे हैं. यहां मैंने भारतीय मुगल बादशाहों, नवाबों और बेगमों की शाही पोशाकें व आभूषण देखे. औरंगजेब के हाथों से स्वर्णाक्षरों में लिखी कुरान देखी. कहना न होगा ये सब यहां कैसे पहुंचे होंगे, कीमत तो इंगलैंड ने शायद ही अदा की होगी. वारेन हेस्टिंग्स और क्लाइव की लूट ऐतिहासिक प्रमाण है. रहीसही कसर लार्ड कर्जन ने पूरी कर दी.

भूगर्भ ट्रेन से डाटी स्ट्रीट पर आया. मुझे प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकेंस का मकान देखना था. इसे उस की स्मृति में संग्रहालय वना दिया गया है. अव तक जिन बड़ेबड़े म्यूजियमों को देख कर आ रहा था, उन की तुलना में यह वहुत ही छोटा है. फिर भी इस का अपना आकर्षण और महत्त्व है. इस महान लेखक ने अपनी कलम से लोगों के दिल को छुआ था. उस के पाठकों में अंगरेज ही नहीं बल्कि विभिन्न देशों के लोग हैं. आज भी शरत और प्रेमचंद की तरह चार्ल्स डिकेंस यूरोपीय जनसमाज की श्रद्धा और स्नेह का पात्र है. इसी लिए यह छोटा सा भवन साहित्यिकों का तीर्थ वन गया है. शेक्सपीयर के स्टाफर्ड एवेन के स्मारक के वाद विदेशी पर्यटक और साहित्यिक इसे निश्चित रूप से देखते हैं. यहां डिकेंस कुछ काल तक रहा था. उस के उपन्यासों की पांडुलिपियां भी यहां रखी हैं.

मुझे ख्याल आ गया 'डेविड कापरफील्ड' पढ़ते समय मेरी आंखें भीग गई थीं. किसी मित्र ने कहा कि ऐसी किताबें क्यों पढ़ी जाएं जिन से मन में दुख हो. पर आज भी जव दूसरे कामों में मन नहीं लगता तो शरत की 'शेष प्रश्न' अथवा डिकेंस की 'डेविड कापरफील्ड' पढ़ने लग जाता हूं. वे मुझे हमेशा नई लगती हैं. दिल की गहराई को वे छू लेती हैं. गजव का जादू है डिकेंस की कलम में. खड़ा हुआ उस की पांडुलिपि देख रहा था, एकएक कर के डेविड, मर्डस्टोन, एमिली, मिकावर आदि चरित्र जैसे सामने आ कर मेरे परिचित वाक्य बोलते से लगे.

सोचने लगा, हमारे यहां भी तो वाल्मीकि, कालिदास, तुलसी, भूषण आदि महान कवि हो गए हैं. हम ने उन के स्मारक क्यों नहीं बनाए? शायद पठन-पाठन से ही उन की स्मृति बनाए रखने की परंपरा हमारे यहां रही हो या नश्वरता

ब्रिटिश सैनिकों का अनुशासन संसार में अद्वितीय है. एक सैनिक के गिर पड़ने पर भी किसी का उसकी ओर ध्यान नहीं

के प्रति हम सदैव उदासीन रहे हैं. इसी कारण से ब्रिटिश काल के पूर्व तक के व्यक्तियों के स्मारक नहीं बनाए गए. मुगल बादशाहों या नवाबों और फकीरपीरों की कब्रों या किलों के रूप में जरूर कुछ स्मारक मिल जाते हैं. जो भी हो, स्मारकों का भी अपना महत्त्व कम नहीं है.

दोपहर का भोजन किया भारतीय विद्यार्थी क्लब में. ब्रिटेन में हजारों की संख्या में भारतीय विद्यार्थी पढ़ रहे हैं. अपनी सुविधा के लिए इन्होंने लंदन में कोआपरेटिव के तौर पर यह कैंटीन चला रखी है. चीजें अच्छी मिलती हैं और दाम बहुत ही कम. भीड़ इतनी रहती है कि बैठने की जगह आसानी से नहीं मिलती.

भोजन के बाद ट्राफलगर स्क्वायर की नेशनल आर्ट गैलरी देखने गया. बहुत विशाल भवन है. इस में पिछले ५०० वर्षों के बड़ेछोटे चित्रों का सुंदर संग्रह है. ये चित्र विश्व के प्रसिद्ध चित्रकारों के द्वारा बनाए हुए हैं. चित्रों के संकलन का शौक सभी देशों को है. इस के लिए बड़ीबड़ी धनराशियां खर्च की जाती हैं. रोम के वेटिकन और फ्रांस के लूव्रे के संग्रह के बाद बाकी बचे हुए नामी चित्रों के लिए विश्व के देशों में होड़ सी लगी रहती है. इस दिशा में अमरीका से टक्कर लेना कठिन है.

फिर भी, ब्रिटेन के धनी और संपन्न व्यक्ति उदारतापूर्वक अलभ्य चित्रों को खरीदते रहते हैं और अपने अमूल्य संग्रह इस गैलरी को भेंट कर देते हैं. यही कारण है कि यह विश्व की चुनी हुई आर्ट गैलरियों में मानी जाती है.

ब्रिटेन में मृत्यु कर की दर बहुत अधिक है, पर कला की वस्तुओं पर छूट है. इसलिए यहां के धनी मरने से पहले अपनी संपत्ति से दुर्लभ चित्रों को खरीद लेते हैं. समय पा कर उन के उत्तराधिकारियों द्वारा ये चित्र इस गैलरी को भेंट कर दिए जाते हैं. इस से उन की स्मृति बनी रहती है और राष्ट्र का गौरव भी बढ़ता है.

इस गैलरी के एक कक्ष में भारत के कांगड़ा, किशनगढ़, राजपूत, मुगल और पटना शैली के अलभ्य चित्र देखे. मैं चित्रकला का पारखी तो नहीं हूं, पर देखने में ये मुझे बहुत ही बेहतरीन लगे. अन्य देशों से इन में बारीकी और रंगों के संतुलन का सम्मिश्रण अधिक स्पष्ट लगा. अधिकांश चित्र कृष्ण और राधा की पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं. ऋतु और रागमालाओं के चित्रों का भी अच्छा संग्रह है. क्यूरेटर से बातें करने पर पता चला कि भारतीय तूलिका के संबंध में उन को यथेष्ट ज्ञान है. उन से यह भी पता चला कि बहुत से चित्र भारत से खरीद कर मंगाए गए हैं. कुछ भेंट स्वरूप भी आए हैं.

मैंने सुना था कि बहुत से चित्र तो हमारे राजेमहाराजों ने बहुत सस्ते दामों पर बेच दिए थे या फिर अंगरेजों को खुश करने के लिए भेंट में दिए थे. अपने देश के गौरव की वृद्धि के प्रति हमारे यहां की उदासीन मनोवृत्ति का परिचय पा कर ग्लानि सी हुई. आज भी बहुत से चित्र मंदिरों में पड़े हैं या रईसों, राजेरजवाड़ों के पास बेकार पड़े हैं. उन्हें यदि काशी विश्वविद्यालय के भारत कला भवन या दिल्ली की नेशनल गैलरी को दे दिया जाए तो भारतीय चित्रकला के प्रति बहुत बड़ा उपकार हो सकता है.

गैलरी देख कर फाटक के बाहर आया. सामने ही एडमिरल लार्ड नेलसन की बहुत ही बड़ी मूर्ति ऊंचे चबूतरे पर खड़ी है. सन १७९२ से १८०५ ईसवी तक सारा यूरोप नेपोलियन के युद्धों से आतंकित हो उठा था. उस की सेनाएं यूरोप के प्रायः सभी देशों को रौंद चुकी थीं. केवल ब्रिटेन अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण बचा हुआ था. नेपोलियन ने बड़ी जबरदस्त तैयारी से ब्रिटेन की चौतरफा नाकेबंदी की. सन १८०५ में एक बहुत बड़े जहाजी बेड़े को ले कर उस ने ट्राफलगर की खाड़ी में ब्रिटेन की नौशक्ति को खत्म करने के लिए हमला कर दिया. ब्रिटेन का जहाजी बेड़ा छोटा था, पर नेलसन की निपुण रणचातुरी के कारण फ्रांस की अजेय सेना को हार खानी पड़ी. उस की हिम्मत पूरी तौर से पस्त हो गई.

इतिहासकारों का कहना है कि इतनी बड़ी समुद्री लड़ाई पहले कभी नहीं हुई थी. इस युद्ध में ब्रिटेन जीता जरूर मगर उसे नेलसन को खोना पड़ा. नेलसन के मुंह से मृत्यु के समय निकले ये शब्द अमर हो गए ह. 'हे प्रभु, तुम्हारी कृपा से अपने कर्तव्य का पालन पूरी तौर पर कर सका.' इसी युद्ध का परिणाम था कि पिछले महायुद्ध तक ब्रिटेन की नौशक्ति का लोहा दुनिया में सभी मानते थे.

कलकत्ता की तरह लंदन में टैक्सियों की कमी नहीं है. फिर भी यहां आम तौर पर लोग बसों या भूगर्भ ट्रेनों से यात्रा करते हैं. यहां के टैक्सी ड्राइवर मुझे रूखे से लगे. किराए के अलावा टिप देने की परिपाटी यहां है. इस वजह से विदेशियों को बड़ी परेशानी होती है क्योंकि उन्हें मालूम नहीं रहता कि किस हिसाब से देना चाहिए. अधिकांश टैक्सी वाले ऐसी स्थिति में रूखा सा

व्यवहार करते हैं, खास तौर से उन के साथ जो गोरे रंग के नहीं होते. मुझे एक बार इस प्रकार का व्यक्तिगत अनुभव हो चुका था. इसलिए मैं ने लंदन में दोबारा टैक्सी नहीं की.

शाम हो रही थी. मैं लंदन का प्रसिद्ध बाग हाइड पार्क देखने निकल गया. बीच में सरपेंटाइन झील है. पृथ्वी के दूसरे किसी भी शहर में इतना बड़ा मैदान शहर के बीच नहीं होगा. कलकत्ते के किले का मैदान काफी विस्तृत माना जाता है पर वह भी इस के मुकाबले में छोटा है. वैसे तो लंदन में रीजेंट, सेंट जेम्स, केंसिंगटन आदि अन्यान्य पार्क भी हैं, पर हाइड पार्क की तो बात ही न्यारी है. शाम के समय बीसियों सिरफिरे स्टूल पर खड़े हो कर व्याख्यान देते यहां मिल जाएंगे. श्रोता भी जुट जाते हैं. मनोरंजन के सिवा कुछ ध्यान दे कर सुनने वाले भी रहते हैं. बीचबीच में हंसीमजाक भी कर लेते हैं. वक्ता जिस विषय पर चाहे बोल सकता है, कोई रोकटोक या कानूनी पाबंदी नहीं है. एक जगह मैं भी खड़ा हो कर सुनने लगा. श्रोताओं की संख्या लगभग साठसत्तर रही होगी. वक्ता कह रहा था, "स्त्रियां बदतमीज होती जा रही हैं. इन को यदि समय रहते नहीं संभाला गया तो ब्रिटिश जाति का पतन हो जाएगा. आज मुझे जैसा फटेहाल देख रहे उस का कारण है स्त्रियों की स्वच्छंदता. मेरी एक प्रेयसी है, खूबसूरत है, लाजवाब है.

"मुसीबत आ पड़ी है कि उस की बुढ़िया चाची मेरे ऊपर डोरे डाल रही है. बुढ़िया दौलतमंद है. नाना प्रकार के उपहार रोज मेरे पास भेज देती है. नतीजा क्या हो सकता है, इसे आप खुद समझ सकते हैं. यानी मैं बदनसीबी का मारा उस खूसट बुढ़िया के चंगुल में फंस गया हूं. इधर मेरी प्रेयसी मुझ से रूठ गई है. अब आप ही बताएं, मैं क्या करूं!"

मैंने देखा वहां खड़ी औरतें उस की बातों में हंसहंस कर रस ले रही थीं. दोएक ने उस से कहा, "महाशय, आप उन दोनों का पता बताएं. हम बुढ़िया को समझा कर आप की प्रेमिका को मना लेंगी."

कुछ दूर आगे बढ़ कर देखा, एक व्यक्ति भारत के विरोध में अनर्गल प्रचार कर रहा है. बड़ा आश्चर्य हुआ और खेद भी. बाद में पता चला कि पाकिस्तान ने अपने कई विद्यार्थियों तथा अन्य व्यक्तियों को नियमित रूप से इस ढंग के प्रचार के लिए लगा रखा है.

कहीं एक कोने में अणुबम विरोधी भाषण सुनने में आया तो कहीं इंगलैंड की विदेश नीति की कटु आलोचना. भाषण सुनतेसुनते लगभग आठ बज गए. लौटने लगा तो देखा पिंप (औरतों के दलाल) चक्कर लगा रहे हैं. इन की चाल और हावभाव से पता चल जाता है कि वे दलाल हैं. इन के इर्दगिर्द दोएक लड़कियां घूमतीफिरती या बैठी रहती हैं. यों तो लंदन में कानूनन वेश्यावृत्ति बंद है पर ग्राहक को अपने साथ घर ले जाने की छूट है.

पार्क में एक जगह बेंच पर जा कर बैठ गया. आसपास की बेंचों पर पुरुषों और लड़कियों की उपस्थिति का अर्थ स्पष्ट हो गया. सोचने लगा, हमारे यहां अत्यधिक गरीबी से अधिकतर स्त्रियां मजबूर हो कर अपने तन का सौदा करती हैं, मगर इस प्रकार सार्वजनिक पार्कों में ऐसी हरकतें नहीं होतीं. ब्रिटेन के लोग अपनी सभ्यता और शालीनता की डींग एशियाई मुल्कों में हांकते रहते हैं

पर उन की असलियत की झलक तो हाइड पार्क में ही खुलती है. चुंबन औ
आलिंगन से आगे के दृश्य भी यहां देखने में आए, पर रूस को छोड़ क
यूरोप के प्रायः सभी देशों में यह है.

थोड़ी देर यहां विश्राम कर अपने होटल वापस आया. दिन भर की थका
का बोझ था. नींद नहीं आ रही थी. तरहतरह के विचार मन में आते गए
हमारे देश में विदेशी यात्री कम क्यों आते हैं? इस का एक बड़ा कारण शाय
यह भी हो सकता है कि विदेशियों को मौजबहार की वह छूट हमारे यहां नह
मिलती जो अन्यान्य देशों में है. पर हम खुश हैं कि पेरिस, वेनिस और लंद
की तरह अनैतिक और कामोत्तेजक मनोरंजनों द्वारा पैसे बटोरना हम ने य
हमारी सरकार ने अच्छा नहीं माना है.

मैं जिस होटल में ठहरा था वह साधारण ढंग का था. यहां नाश्ते के लि
क्यू में खड़ा होना पड़ता था. वैसे तो लंदन में रेस्तरां बहुत हैं. पर होटल के
किराए में नाश्ता भी शामिल था इसलिए पेट भर नाश्ता कर सारे दिन के लि
छुट्टी पा जाता था. विदेशों में पैसों की बचत का यदि विशेष ध्यान रखा जा
तो बहुत कम खर्च में काम चल सकता है.

नाश्ते के बाद सब से पहले बकिंघम महल देखने गया. महल के प्रति मेर
कोई विशेष आकर्षण नहीं था पर यहां प्रहरियों के पाली बदली का दृश्य बड़
शानदार रहता है, उसे देखना था. मेरी तरह यहां बहुत से लोग उस विशेष समय
की प्रतीक्षा में खड़े थे.

ब्रिटेन की विशेषता यह रही है कि यहां अपनी परंपरा के प्रति श्रद्धा है. अंगरेजो
ने समाज के ढांचे को बहुत कुछ बदल दिया है पर ऐतिहासिक परंपरा को वे आज
भी सावधानी से संजोए हुए हैं. सैकड़ों वर्ष पहले जिस ढंग की पोशाक में राजा के
महलों में प्रहरी तैनात रहते थे, आज भी उसी प्रकार तैनात रहते हैं. रात के
पहरेदार सुबह जब बदलते हैं तो एक खास कवायद के साथ. बड़ा प्रभावपूर्ण
दृश्य लगता है. सब की पोशाक एक सी, एक से अस्त्रशस्त्र से लैस, एक से घोड़े,
एक सी चाल, चेहरे पर गंभीर निर्विकार भाव. बच्चों को देखा, बड़ी उत्सुकता
से मगर आंखों में कुछ डर लिए, पहरेदारों की बदली देख रहे थे.

यहां से थोड़ी दूरी पर इंगलैंड के प्रधान मंत्री का १०, डाईनिंग स्ट्रीट नाम का
सरकारी निवास है. तीन मंजिलों का छोटा सा पुराने ढंग का मकान है. इस
में न बाग है, न लान है. वर्षों से यहां इंगलैंड के प्रधान मंत्री रहते आए हैं. देख
कर आश्चर्य होता है कि इतने संपन्न और विशाल ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मंत्री
का घर भी यही और दफ्तर भी. और हमारे यहां? हम गरीब हैं, दुनिया के
सामने हाथ भी पसारते हैं. मगर हमारे मंत्रियों के सरकारी निवास! वे तो कहीं
शानदार और सजीले हैं. वैसे हम गांधीजी के आदर्शों की दुहाई देते रहते हैं!

मैडम तुसान के संग्रहों का उल्लेख स्वर्गीय राहुलजी ने एक बार मुझ से किया
था. लंदन पर लिखी गई अन्य पुस्तकों में भी इस का जिक्र पढ़ा था. वास्तव में
अपने ढंग का यह एक नायाब संग्रह है. मोम की बनी ३०० आदमकद प्रतिमाएं
यहां हैं. इतनी स्वाभाविक हैं कि मानो जीवित व्यक्ति के सामने हम खड़े हैं और
ऐसा लगता है कि अब वे कुछ बोलेंगे. विश्व के प्रायः सभी देशों के शीर्ष लेखक,

कलाकार, वैज्ञानिक, राजारानी और राजनीतिक नेताओं की मूर्तियां यहां देखीं.

महात्मा गांधी और नेहरूजी की मूर्तियों को देख कर लगा कि चलो अंगरेजों ने इसे माना तो सही कि विश्व को दिशादान देने में भारत का भी योग रहा है.

टावर आफ लंदन में जिन दंडशालाओं और दंड देने के औजारों का जिक्र आया है, उन की झांकी यहां देखने में आई. कहीं जीवित व्यक्तियों को जलाया जा रहा है तो कहीं लाल तपी सलाखों से उन की आंखें फोड़ी जा रही हैं. कहीं सिर तोड़ा जा रहा है. तो कहीं कांटे गड़ाए जा रहे हैं. बड़े भयंकर और बीभत्स दृश्य देखने में आए.

मध्यकालीन यूरोप के इतिहास में पढ़ने में आता है कि उन दिनों बड़े अमानुषिक तरीकों से वध किया जाता था और लोग इसे देखने के लिए इकट्ठे होते थे. पेरिस और रोम में तो वध के स्थान पर हजारों की भीड़ लग जाती थी. स्त्री पुरुष सजधज कर देखने आते थे. बैठने के स्थानों के आरक्षण का चार्ज रहता था. ड्यूमा के 'काउंट आफ मांटेक्रिस्टो' में इस का अच्छा वर्णन है. भारत में मुगलकाल में क्रूरता के साथ वध करने के दृष्टांत हैं, पर जनता की रुचि मनोरंजन के लिए ऐसे नजारे देखने की रही है, यह कहीं भी नहीं मिलता. पता नहीं, सभ्य यूरोप और हमारे यहां यह अंतर कैसे रह गया?

लंदन-२

मादक संगीत धुनें, नाचती नंगी लड़कियां . . . क्या लंदन की यही खूबसूरती है ?

सन १९६४ में मुझे तीसरी बार लंदन जाने का मौका मिला. भारतीय दूतावास के सहयोग के कारण पहले की यात्राओं की अपेक्षा इस बार देखनेसुनने की ज्यादा सुविधाएं मिलीं. लोगों के रहनसहन और दुकानों की सजावट देख कर अंदाज होता था कि पिछले पंद्रह वर्षों में ब्रिटेन ने महायुद्ध के भीषण धक्के से अपने को कितना अधिक संभाल लिया है. यहां के होटलों की हफ्तों की नहीं, महीनों की अग्रिम बुकिंग बताती थी कि पिछले वर्षों में युद्ध जर्जरित ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति कितनी अधिक मजबूत हो उठी है.

सब से पहले मैं भारतीय राजदूत जीवराज मेहता से मिलने गया. उन का निवासस्थान बहुत ही सुंदर उद्यान के बीच है. भारत और ब्रिटेन के लंबे अर्से तक पारस्परिक संबंध रहे हैं. उन के अनुरूप ही हमारे दूतावास का भवन है.

जीवराज भाई और श्रीमती हंसा मेहता से मेरा पूर्व परिचय था. ८० वर्ष की आयु में भी वह स्वस्थ और फुरतीले हैं. इस कारण उन के व्यक्तित्व में सहज आकर्षण है. वह बड़ी आत्मीयता से मिले. गुजराती ढंग के कलाकंद, डोसा और चिवड़े का सुस्वाद जलपान कराया. भारत की राजनीतिक गतिविधियों के विषय में भी उन्होंने चर्चा की.

उसी दिन १२ बजे दोपहर को उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेंस बुलाई थी. ब्रिटेन की प्रेसचर्चा के सिलसिले में उन्होंने मुझे सावधान कर दिया कि यहां के पत्रकार बड़े चतुर होते हैं, शब्द और वाक्यों पर मनचाहे रंग की कलई चढ़ाने में पटु होते हैं, इसलिए इन के प्रश्नों का उत्तर बहुत सावधानी से देना चाहिए.

निर्धारित समय पर प्रेस कान्फ्रेंस हुई. दसबारह पत्रकार थे. सभी वहां के प्रमुख समाचारपत्रों या न्यूज एजेंसियों से संबंधित थे. मेहताजी की सलाह सचमुच अच्छी रही. मैं ने लक्ष्य किया कि अंगरेजों की वाक्‌चातुरी भी एक कला है. इस के लिए अनुभव और अभ्यास दोनों आवश्यक हैं. हम ने अपनी ओर से प्रभुदयालजी को प्रधान बना लिया था. सभी प्रश्नों का उत्तर वे बहुत ही संक्षेप में किंतु स्पष्ट दे रहे थे.

हम ने महसूस किया कि कशमीर के मामले में अंगरेजों के दिमाग में एक विशेष दृष्टिकोण बैठ गया है. अन्य बातों में तो उन्हें हम संतोष दिलाने में सफल हुए, किंतु जहां तक कशमीर का सवाल था, वे हमारे युक्ति और तर्क को स्वीकार ही करने को तैयार नहीं थे. उन की सहानुभूति पाकिस्तान के साथ थी. उन का

सोहो : इनसानं की कमजोरियों का घर

यह तर्क था कि जब श्री नेहरू ने कशमीर में जनमत संग्रह स्वीकार किया और उसे पूरा आश्वासन दिया था तो इसे भारत क्यों नहीं मानता? दोनों देशों के बीच आपसी समझौते और अमन कायम रखने के लिए यह निहायत जरूरी है.

प्रभुदयालजी उन्हें बारबार समझा रहे थे कि इन वर्षों में पाकिस्तान और भारत के आपसी संबंधों में काफी कटुता आ गई है. कशमीर और भारत युगों से एकदूसरे से भाषा, संस्कृति और भौगोलिक दृष्टि से बंधे रहे हैं, अतः अब जनमत का प्रश्न ही नहीं रह जाता. पाकिस्तान कुछ धर्मांधों को उभार कर वहां अशांति पैदा करता रहता है. भारतीय व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक कशमीरी सुखी है, उस की आर्थिक दशा भी सुधरी है. दूसरी ओर पाकिस्तानी व्यवस्था के नीचे, कशमीरी जनता पीड़ित है, उस का दमन भी किया जाता है.

इस के अलावा जब तक पाकिस्तान कशमीर के उस अंचल से हट नहीं जाता जिस पर उस ने जबरदस्ती कब्जा जमा रखा है, तब तक कशमीर में जनमत संग्रह का कोई अर्थ नहीं.

पता नहीं क्यों ब्रिटिश पत्रकार इसे मानने से इनकार करते रहे. भारत के विकास और आर्थिक उन्नति के संबंध में उन लोगों की धारणा थी कि इन वर्षों में हमारे देश ने प्रगति की है अवश्य, फिर भी यदि हम अपनी बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ोतरी को नहीं रोक पाएंगे तो हमारी योजनाएं निष्फल सिद्ध होंगी. उन का खयाल था कि इस दिशा में भारत का प्रयास शिथिल रहा है.

दोपहर के बाद जूट एक्सचेंज देखने गया. मैं लंबे समय तक पटसन का व्यवसायी रहा हूं—आकर्षण स्वाभाविक था. जूट के क्रयविक्रय के लिए यह एक्सचेंज विश्व में सब से बड़ा केंद्र माना जाता है. प्रायः सभी देशों को अपना कच्चा पाट यहां के नियमों से खरीदना पड़ता है. यहां मेरे मित्र बाबूलाल

सेठिया मिल गए. १९३५ में साधारण स्थिति में लंदन आए थे और यहीं बस गए. अब तो करोड़ों रुपए कमा लिए हैं और यहां के बड़े व्यापारियों में गिनती है. विदेशों में पुराने साथियों के मिलने पर बड़ी खुशी होती है. अगले दिन उन के घर भोजन का निमंत्रण मिला. बेसन की रोटी और कानरी के साग में पकवानों से कहीं अधिक स्वाद मिला.

शाम के बाद पिकाडिली सर्कस पहुंचा, यह फैशन, रोशनी और रईसी की जगह है. लंदन जाग उठता है. रंगबिरंगे नियोन के प्रकाश इंद्रधनुष से खेलते रहते हैं. कलकत्ता का पार्क स्ट्रीट और दिल्ली का कनाट प्लेस इस की थोड़ी सी झांकी पेश करते हैं. यहां नियोन के तरहतरह के विज्ञापनों के बीच ओवलटीन और बोवरील की विशेषताएं देखीं. ओवल्टीन में अंडे और बोवरील में गोमांस का रस रहता है. हमारे यहां सनातनी घरों में भी इन दोनों का प्रयोग होता है.

सोहो का महल्ला पिकाडिली के पास ही है. बदनाम जगह है. दुनिया के हर शहर में इस प्रकार के स्थान होते हैं, लंदन कोई अपवाद नहीं. इनसान में कमजोरियां होती हैं. गम को खुद बुलाता है और उसे गलत करने के लिए गलतियां करता जाता है. हमारे यहां समाज के भय से लोग लुकछिप कर करते हैं, जब कि यूरोप में इसे जीवन की आवश्यकता मान कर बिना झिझक के. लंबे-चौड़े पुलिसमैनों को चक्कर लगाते देखा. निर्विकार से घूम रहे थे. शायद उन्हें हिदायत थी कि आनेजाने में दखल न दें. बस इतना ध्यान रखें कि दंगाफसाद, राहजनी और गुंडागर्दी न हो. खास तौर से किसी विदेशी को ऐसी परेशानी में न पड़ना पड़े. सोहो में सब कुछ चलता है. वैधअवैध सभी तरह की नशीली चीजों के अड्डे हैं, जिन के संचालक ज्यादातर चीनी हैं. चकलों की भी कमी नहीं. कानून से बचने के लिए इन्हें क्लबों के नाम पर चलाया जाता है. ग्राहक के पहुंचते ही उसे सदस्य बना लेते हैं और कार्ड दे दिया जाता है.

इसी ढंग के एक क्लब में जा पहुंचा, दस रुपए दे कर सदस्य बना. शराब और जुए का दौर चल रहा था. काउंटर पर एक मोटी सी औरत बैठी थी. ग्राहकों में अधिकांश पिए हुए थे. एक वृत के चारों ओर टेबलें लगी थीं और उन के इर्द-गिर्द कुरसियां. युवतियां शराब ला कर ग्राहकों को दे रही थीं. कारबार बिलकुल रोकड़ी था, यानी नकद. जो लड़की जितना पिलाती थी, कमीशन भी उसी मुताबिक बनता था. रोशनी धीमी थी. कौन आया और कौन गया, आसानी से जाना नहीं जा सकता था. इस पर सिगरेट के धुंए का कुहरा.

बाजे की धुन पर एक नंगी लड़की नाच रही थी. अंगरेजों के अलावा अन्य देशों के लोग भी थे, कुछेक भारतीय भी. दोतीन टेबल हट कर दो सिक्ख युवक पी कर धुत हो चुके थे. दोनों के सामने लड़कियां प्यालियां भर कर लातीं, वे उन की कमर में हाथ डाल कर पास खींचते और गोद में बैठा लेते थे. लड़कियां प्यालियां होठों से लगा देती थीं और बढ़ावा देती जा रही थीं.

मैं हैरत से यह सब देख रहा था, न जाने कब एक लड़की मेरे बगल में आई, मुझे पता भी नहीं चला.

"क्या पसंद करेंगे, हलकी या कड़ी," बड़ी मधुरता से उस ने पूछा. मैंने देखा उन्नीसबीस साल की यूवती है, छरहरा बदन, खूबसूरत नाकनक्शा.

सूपर सोहो में मिनीसूट पहने 'डिस्काथकूय' करते हुए

"पीना नहीं, देखना है . . ." मेरे मुंह से निकल गया. फिर जगह का खयाल हो आया, मैं ने कहा मुझे सिर्फ कोल्ड ड्रिंक में दिलचस्पी है.

उस ने बड़ी मायूसी से मेरी ओर देखा और दूसरे ग्राहक के पास चली गई.

मैं ने देखा—काउंटर पर बैठी मोटी मालकिन गोलगोल आंखों के नीचे होंठ बिचकाए मुझे देख रही है. थोड़ी देर बाद लड़की ने लैमनेड ला कर मेरे सामने रख दिया. और कहने लगी, "शायद आप गलत जगह आ गए हैं."

लैमनेड खतम कर मैं उठा. देखा दोनों सिख चित्त हो चुके हैं. लड़खड़ाते हुए वे लड़कियों को ले कर पास के कमरों में जा रहे थे.

क्लब से बाहर फाटक पर आ गया. देखा, लड़की भी पीछेपीछे आ रही है. मैं ने उस से कहा, "तुम्हारा समय नष्ट होगा कोई फायदा नहीं."

बड़े दर्द से उस ने कहा, "आप मुझे जैसा सोचते हैं मैं वैसी नहीं हूं. आखिर छात्रा हूं. उस ने बताया कि सोहो में थोड़ी सी देर के लिए आने से उस को अच्छी आमदनी हो जाती है. इस से उस का और उस की मां का रहनेखाने का खर्च चल जाता है और कुछ पैसे बचा भी लेती है. आगे चल कर वह सम्मानपूर्वक अच्छी जिंदगी बिताएगी, पढ़ाई पूरी कर आस्ट्रेलिया जाकर जीवन का नया अध्याय शुरू करेगी.

के मुकद्दमे का प्रमुख गवाह आज दोपहर में हालबोर्न की बस से ईस्ट चीप की तरफ जा रहा था, बकरी के बच्चे ने कुत्ते के पिल्ले का कान चबा लिया, आदि.

इन हैडलाइनों को मोटेमोटे अक्षरों में कार्ड बोर्डों पर छपवा कर अखबार के एजेंटों को अपनीअपनी दुकानों या स्टालों पर टांगने के लिए दे दिए जाते हैं. लोगों की निगाह पड़ी कि दौड़े खबर पढ़ने. मेरी समझ में नहीं आ रहा कि कीलर का गवाह किस बस से कहां गया और कुत्ते के पिल्ले का कान बकरी के बच्चे ने काट लिया तो इस में पाठकों के काम की कौन सी बात है. मगर यहां ऐसे ही पत्र ज्यादा बिकते हैं. नंगी तसवीरों के तथा कामोद्दीपक विषयों के मासिक या साप्ताहिक पत्रों के ग्राहक बहुत बड़ी संख्या में हैं.

प्रमुख पत्रों के संवाददाताओं की बड़ी इज्जत है और वे मेहनत भी खूब करते हैं. समाचारपत्र अपने संवाददाताओं को खतरे की जगहों पर भी भेजते हैं, ताकि आंखों देखा सच्चा हाल पाठकों तक पहुंचाया जा सके. पत्रकार भी बड़े साहसिक होते हैं. युद्ध के मोर्चों पर जा कर वहां की गतिविधि का विवरण भेजना कम खतरे का काम नहीं. कभीकभी कइयों को जान से हाथ धोने पड़े हैं. विशिष्ट संवाददाताओं के पास तो अपने निजी हेलिकोप्टर या छोटे हवाई जहाज रहते हैं, जिस से घटनास्थल पर शीघ्र ही पहुंचने में सुविधा रहे.

यहां परिवार के सदस्य अपनीअपनी रुचि के अनुसार अखबार खरीदते हैं. यदि घर में छः व्यक्ति हैं तो छः पत्र रोजाना आएंगे ही, कई अखबारों के तो दिन में छःसात संस्करण तक निकलते हैं. इन में से किसीकिसी की करोड़ों रुपए की वार्षिक आय केवल विज्ञापनों से होती है.

आज हालांकि ब्रिटेन दुनिया में पहली श्रेणी का राष्ट्र नहीं रहा, फिर भी अखबारी दुनिया में फ्लीट स्ट्रीट और उस के संवाददाता प्रथम श्रेणी में आते हैं. भाषा की चटक, कार्टून और पत्रकारिता में अब भी ब्रिटेन से फ्रांस, अमरीका और मास्को को बहुत कुछ सीखना है और हमें भी.

फ्लीट स्ट्रीट से हम ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद भवन) देखने गए. हम अपने देश के संसद सदस्य थे, इसलिए वहां के अधिकारियों ने हमारी अच्छी खातिर की, बैठने के लिए विशेष स्थान दिया. पार्लियामेंट आज जिस जगह पर है, वहां पहले वेस्टमिंस्टर पैलेस नामक प्रासाद था. वर्तमान संसद भवन १५ वीं शताब्दी के अंत में बना था. बीचबीच में कई बार इस में आग लगी. फलतः कुछ न कुछ रद्दोबदल होते रहे. अंगरेज जमाने के साथ बदलते जरूर हैं, मगर अपनी संस्कृति के कट्टर प्रेमी होते हैं. अपने संसद भवन की मरम्मत और सुधार में उन्होंने इस बात का ख्याल रखा कि उस की मौलिकता नष्ट न हो. इसलिए आज भी संसद भवन पहले के रंगढंग में है.

यों तो हम ने पुस्तकों में ब्रिटिश पार्लियामेंट भवन के चित्र पहले ही देखे थे, किंतु यहां इसे प्रत्यक्ष देख कर बीते हुए जमाने की बातें एक बार दिमाग में घूम गईं. इन्हीं में से किसी एक कुरसी पर राबर्ट क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने बैठ कर भारत में अपने किए गए कुकृत्यों पर बहस सुनी होगी. सन १८५८ में इसी भवन में कानून बना कर भारत को ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया की पूर्ण अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया था. भारत के शिल्पोद्योग
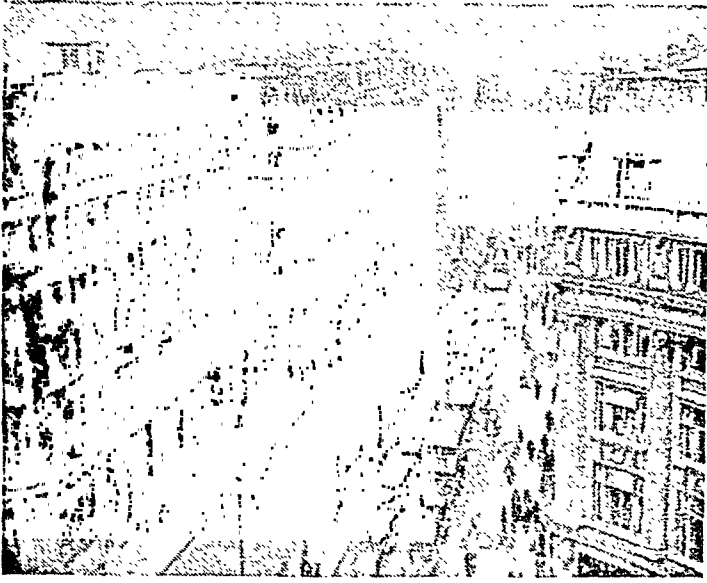
रीजेंट स्ट्रीट : फैशन की दुकानों के लिए लंदन भर में प्रसिद्ध

को कुंठित करने के लिए नाना कार के कानूनकायदे इसी संसद ने वनाए और अंगरेजी व्यापार को भारत में अनेक तरह के संरक्षण मिले.

जो भी हो, ब्रिटिश पार्लियामेंट का इतिहास अपने में अनोखा है. फ्रांस में इस से भी पहले संसद की स्थापना हो चुकी थी, किंतु वहां के राजाओं ने उस की सत्ता को सर्वोच्च नहीं माना. ब्रिटेन में राजाओं ने समयसमय पर संसद के अधिकारों का अतिक्रमण करने के प्रयत्न किए थे, लेकिन जनमत के सामने उन्हें भी सिर झुकाना पड़ा.

१६४९ में अपने सम्राट चार्ल्स प्रथम के शिरच्छेद का आदेश संसद ने दिया. सन १९३६ में एक वर्ष के अंदर ही सम्राट अष्टम एडवर्ड को राजमुकुट त्यागने के लिए बाध्य किया गया. एडवर्ड साधारण घराने की एक तलाकशुदा महिला से विवाह करना चाहते थे. ब्रिटिश पार्लियामेंट ने स्वीकृति नहीं दी. एडवर्ड के सामने सिंपसन या सिंहासन दोनों में से एक को चुनना था.

यद्यपि विधानतः ब्रिटिश सम्राट ही सार्वभौम सत्ता का अधिकारी है, फिर भी परंपरा का पालन ब्रिटेन के शासक करते आए हैं. संसद के वनाए कानूनकायदे और उस के निर्णय को वे सदैव मानते आए हैं.

हम जिन दिनों वहां थे, उन दिनों अनुदार दल की सरकार थी. प्रधान मंत्री थे लार्ड मैकमिलन. ब्रिटेन में हमारे यहां की तरह अनेक राजनीतिक दल नहीं हैं. अनुदार दल और श्रमिक दल ये दो ही मुख्य हैं. श्रमिक दल है जरूर, पर यह साम्यवादी या मार्क्सवादी नहीं है. विदेशों से निर्देश और प्रेरणा प्राप्त करने वाले व्यक्ति या दल को यहां जनता प्रश्रय नहीं देती, भले ही वह क्यों न भूलोक में स्वर्ग उतार लाने का पट्टा लिख दे.

विरोधी दल को भी शासक दल और जनता, दोनों के द्वारा मान्यता और प्रतिष्ठा मिलती है, क्योंकि उन के द्वारा स्वस्थ विरोध एवं आलोचना होती है.

हम जिस दिन संसद गए, वहां प्रोफ्यूमो कांड पर बहस हो रही थी. स्तर काफी ऊंचा था. ऐसा लगता था कि प्रत्येक सदस्य पूरी जानकारी कर के आता है. विरोधी सदस्य इस कांड की सारी जिम्मेदारी पूरे मंत्रीमंडल पर थोपना चाहते थे, जब कि सरकारी दल के सदस्य मंत्रीमंडल को इस से मुक्त रखना चाहते थे. उन का कहना था कि एक व्यक्ति की कमजोरी के लिए सारे के सारे दोषी क्यों ठहराए जाएं?

संसद भवन देख कर हम लोग बस से लंदन के उस अंचल को देखने गए, जो 'ईस्ट एंड' के नाम से मशहूर है. यह गरीबों की बस्ती है. इस के बारे में पहले भी सुन चुका था, किंतु प्रत्यक्ष जो कुछ भी देखा वह उस से कहीं ज्यादा था और विचारोत्तेजक भी. यहां से करीब पौन मील की दूरी पर ही डोर चेस्टर और पार्कलेन जैसे महंगे होटल, बकिंघम पैलेस, रिजेंट स्ट्रीट व बोंड स्ट्रीट की महंगी दुकानें हैं. लगता है जैसे ईस्ट एंड कोई अभिशप्त स्थान है. लंदन बदला पर यह नहीं बदल सका.

यहां है कीचड़ और गंदगी भरे रास्ते, मैलेफटे वस्त्र पहने मुरझाए पीले चेहरे के साथ जिंदगी के बोझ ढोते हुए स्त्रीपुरुष, बच्चे, पुरानी सस्ती चीजों की दुकानें, तन का सौदा करती चलतीफिरती स्त्रियां. खूबसूरत मासूम बच्चे और किशोर अपनी मांबहनों के लिए ग्राहक ढूंढ़ने को तैयार, गांजा, अफीम, चंडू, चरस आदि अवैध नशों की पुड़िया पहुंचाने को तत्पर. महज इसलिए कि पैसे मिलेंगे. पैसे चाहिए जीने के लिए.

अजीब सी घुटन थी. विचित्र दृश्य था. इस से तो सोहो कहीं बेहतर था. यहां की एक दुकान में देखा, कुछ लोग अपने सामान बंधक रख कर रुपए ले रहे थे. सामान में पुराने कोट, पतलून और कमीजें तक थी.

ईस्ट एंड बंदरगाह के नजदीक है. यही इस का सब से बड़ा अभिशाप है. सभी बंदरगाहों के आसपास ऐसी बस्तियां होती हैं. महीनों घर से दूर समुद्र में बिताने के बाद मल्लाह और नाविक हर जगह जुटते हैं. हमारे देश कलकत्ता में भी खिदिरपुर इसी प्रकार का महल्ला है, किंतु वहां ऐसी छूट और सुविधा नहीं है. यहां देखा विदेशी मल्लाह और नाविक भांतिभांति की पोशाकों में चक्कर लगा रहे हैं. शराब की दुकानों में लड़कियों को लिए बैठे हैं और चिल्ला रहे हैं. नशे में यहां झगड़े और मारपीट होते रहना मामूली बात है, दैनिक वारदातें हैं.

ऐसी जगह पर चीनियों की बन आती है. कलकत्ता के चीनी महल्ले के बारे में हम ने सुना था, यहां भी देखा. चीनी चोरी के कारबार में दक्ष होते हैं. चंडू और चरस के अड्डे यहां भी उन्हीं के चलते हैं. सैकड़ों वर्षों से हर देश में उन का यही धंधा रहा है. हमें पहले ही से सावधान कर दिया गया था, इसलिए इन अड्डों पर मैं नहीं गया. इच्छा तो बहुत थी कि खुद जा कर नजारा देखूं, मगर सूत्र न था और अकेले जाने में खतरा, इसलिए मन की मन में रह गई.

रात दस बजे हम होटल वापस लौटे. अंतिम दोतीन घंटों में जो कुछ देखा, उस से बहुत आश्चर्य नहीं हुआ. ब्रिटेन से कहीं ज्यादा संपन्न देश है अमरीका. वहां न्यूयार्क के हारलेम महल्ले का भी नजारा ईस्ट एंड जैसा था. फर्क केवल यही था कि इतनी गरीबी और गंदगी वहां नहीं थी.

फैशन में पेरिस के बाद लंदन? मिनिस्कर्ट: नाचने, घूमने व दिखावे के लिए अधिक!

हमें सूचना मिली कि श्री घनश्याम दास बिड़ला अमरीका से लौट आए हैं. दूसरे दिन सुबह ग्रोसवेनर होटल में उन से मिलने गए. लंदन के सब से महंगे होटलों में यह माना जाता है. उन के साथ बोंड स्ट्रीट की चमड़े के सामान की एक दुकान में गया. कई तरह के बक्स, हैंड बैग और पोर्टफोलियो देखे. कीमत डेढ़ से तीन हजार तक. अधिक कीमत का कारण पूछा तो सेल्समैन ने शाइस्ता ढंग से मुसकरा कर बताया, "हमारी यह दुकान लगभग २५० वर्षों से आप लोगों की खिदमत करती आ रही है. डिजरैली, ग्लैडस्टोन, जर्मन सम्राट कैसर विलियम, जार्ज बर्नार्ड शा तथा विंस्टन चर्चिल जैसे मूर्धन्य महानुभावों की सेवा कर उन की प्रशंसाएं अर्जित करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है. हमारे यहां बने माल में शिकायत का मौका शायद ही मिले.

हम बेहतरीन चीजें खरीदते हैं और सुदक्ष कारीगरों को अच्छी मजदूरी दे कर तैयार कराते हैं. इसलिए हमें आप को संतोष देने का पूरा विश्वास है."

बिड़लाजी ने करीब दो हजार रुपए में एक पोर्टफोलियो बैग खरीदा. मुझे लगा कि मोलभाव करने से शायद कीमत कुछ कम हो सकती थी, पर खरीददार भी बड़ा और दुकान भी ऊंची, दोनों ही इसे अच्छा नहीं समझते होंगे.

दूसरे दिन अकेला ही वूल्यंवर्थ के चेन स्टोर्स में गया, यहां उसी तरह की पोर्टफोलियो के दाम १०० व १२५ रुपए थे. शायद क्वालिटी में कुछ फरक था जरूर, पर कीमत के अनुपात से नहीं के बराबर. यहां कीमत हैं दुकान की साख पर. बड़ीबड़ी दुकानों में जो फल तीन या चार रुपए पौंड में मिलते हैं, बाहर सड़कों पर ठेले वालों से रुपए सवा रुपए में मिल जाएंगे. हम ने देखा वर्षा और ठंड की परवा किए बिना वे रात के दसग्यारह बजे तक ठेलों में फल, सूखे मेवे इत्यादि बेचते रहते हैं.

आज प्रभुदयालजी साथ नहीं थे, इसलिए घूमनेफिरने में स्वतंत्रता थी. चेयरिंग क्रास में बेरी ब्रदर्स की दुकान पर क्यू सी लगी देखी. मैं भी खड़ा हो गया. यह शराब की प्रसिद्ध दुकान है, जो पिछले ३६५ वर्षों से लंदन में इसी जगह पर है. इस के ग्राहकों में अनेक देशों के राजे, महाराजे, शेख, सुलतान, मिनिस्टर, राजनीतिज्ञ और सेनाधिकारी रहे हैं. इन लोगों के निजी हस्ताक्षर से युक्त तसवीरें दुकान के मालिक ने सजा रखी हैं. इन का दावा है कि महारानी विक्टोरिया के परदादा के समय की शराब इन के यहां मिल जाएगी.

लगभग उसी जमाने का एक बेडौल सा तराजू भी वहां देखा. इस पर किसी समय अंगूर, जौ और गुड़ तौले जाते थे, आजकल ग्राहकों को इस पर निःशुल्क अपना वजन लेने की छूट है. इस कांटे के बारे में बताया गया कि ३५० वर्षों के इस पुराने कांटे का वजन तोले तक सही उतरता है. एक ओर पुराने जमाने के बटखरे रखे थे और दूसरी ओर लोहे की सांकलों में झूलते हुए पलड़े पर स्त्रीपुरुष बारीबारी से बैठ कर अपना वजन कर रहे थे. हंसी और चुहल का वातावरण था. मैं भी क्यू में अपनी बारी आने पर पलड़े पर बैठ गया. नीचे उतरते ही वहां की सेल्स गर्ल ने मुसकरा कर वजन का सुंदर कार्ड दिया और बेहतरीन किस्म की शराब का एक पेग भी. शराब से हमें हमेशा परहेज रहा है, पर वहां 'ना' नहीं कर सका. बहरहाल, पीने के बाद उर्दू का एक शेर जरूर याद आया :

"जाहिद शराब पीने से काफिर बना मैं क्यों,
क्या एक चुल्लू पानी में ईमान बह गया?"

हालांकि इस व्यवस्था से प्रति दिन इन का बहुत खर्च होता होगा लेकिन मेरा खयाल है, प्रचार की दृष्टि से यह निस्संदेह लाभदायक है. पश्चिमी देशों में विज्ञापन का बड़ा महत्त्व है. आदम के जमाने के कांटे पर निःशुल्क वजन करने के बाद इस 'एक पेग' के मुफ्त बांटने पर उन की बिक्री बहुत बढ़ जाती है. हमारे यहां चाय का प्रचार भी इसी तरह हुआ था. मैं ने देखा, वहां जाने वाले सभी कुछ न कुछ खरीद करते ही हैं. मेरी तरह खाली हाथ तो एकआध ही आता होगा.

अगले दिन श्री ब्रजमोहन बिड़ला से मिलने डारचेस्टर होटल गए. बड़ी

चहलपहल थी. लंबे चोगे पहने अरब काफी संख्या में इधरउधर आजा रहे थे. पता चला, कुवैत के कोई शेख वहां ठहरे हैं. उन्होंने इस महंगे होटल का एक पूरा तल्ला ले रखा है, क्योंकि इन के मुसाहिबों और बेगमों की एक पूरी टोली इन के साथ आई है. मुझे पचीस वर्ष पहले के भारतीय राजाओं की याद आ गई. वे भी तो यहां आ कर इस तरह बेशुमार दौलत लुटाते थे. ऐश और मौज में गरीब भारत के करोड़ों रुपए खर्च कर डालते थे. कभीकभी तो लाखों रुपए के कुत्ते ही खरीद लेते थे और इन की संभाल के नाम पर सुंदर लड़कियां भी ले जाते थे. सोचने लगा, 'बिना मेहनत की कमाई पर मोह कैसा? चाहे वह गरीब प्रजा से ली गई हो या तेल की रायल्टी से मिली हो.'

रविवार का दिन था. श्री ब्रजमोहन बिड़ला ने समुद्र तट के सुंदर शहर ब्राइटन में पिकनिक का आयोजन कर रखा था. हम आठदस व्यक्ति रहे होंगे. तीन बड़ी हंबर सिडली मोटरें थीं. उन में से दो की ड्राइवर स्वस्थ और सुंदर युवतियां थीं. लंदन से बाहर आते ही सड़क के दोनों बाजुओं पर करीने से बने सैकड़ों एक सरीखे मकान दिखाई पड़े. बीचबीच में हरियाली. लंदन की घुटन से मानो राहत मिली.

बिड़लाजी के लंदन आफिस के मैनेजर श्री गम्बे ने बताया कि ये सारे मकान पिछले पंदरह वर्षों में बने हैं जिन में अधिकांश मध्यम वर्ग के लोगों के हैं. आवास की समस्या को हल करने के लिए सरकार अत्यंत उदार शर्तों पर ऋण देती है.

आबादी धीरेधीरे पीछे छूटती गई और हम खुली जगह पर आ गए. हमारी कारों में तेज रफ्तार की होड़ लग गई. लड़कियां भला क्यों हार मानतीं. सुई ८० मील पर जा पहुंची. प्रभुदयालजी ने बहुतेरा समझाने का प्रयत्न किया पर हमारी ड्राइवर केवल मुसकराती रही और गाड़ी की चाल तेज करती गई. आखिर, हम लोगों ने आंखें बंद कर लीं. किसी तरह ब्राइटन पहुंचे. यहां के एक प्रसिद्ध होटल में लंच लिया. निरामिष भोजन के लिए उन्हें लंदन से पूर्व सूचना दी जा चुकी थी. शायद बिड़लाजी की टिप के बारे में होटल के कर्मचारियों को पहले से पता था, इसी लिए खातिरदारी भी उसी तरह जम कर हुई.

लंच ले कर जब हम समुद्र के किनारे आए तो ऐसा लगा कि लंदन उठ कर यहां आ गया हो. किनारे पर तीनचार लंबे डेक बने हुए थे, जिन पर दुकानों के सिवा कार्निवल सा लगा था. तरहतरह के खेल और जुए चल रहे थे. हम लोगों ने भी किस्मत की आजमाइश करनी चाही. मैं ने दस रुपए की गेंदें खरीदीं. इन्हें सामने खड़े राक्षस के मुंह में डालना था. मुंह काफी खुला था, होंठों का फासला भी बहुत था, पर एक भी गेंद भीतर न जा सकी. शायद बनावट की खूबी हो, वैसे निशाने अच्छे साधे थे. प्रभुदयालजी तथा अन्य साथियों ने भी कुछ न कुछ अलगअलग खेलों पर खर्च किया. लगभग एक सौ रुपए खर्च कर के इनाम में मिली दो कागज की टोपियां और अन्य दोतीन मामूली चीजें. स्टालों में बहुत सी कीमती चीजें सजा कर रखी गई थीं, लेकिन वे सब दिखावे के लिए ही थीं, क्योंकि दूसरे लोग भी हमारी तरह अपने इनाम देखदेख कर हंस रहे थे. एक वृद्धा तो बुरी तरह चिढ़ गई. वह दुकानदारों को ठग बता कर बुराभला कह रही थी.

शाम हो रही थी. हम समुद्र के किनारे घूमने निकले. कई मील लंबा समुद्र तट है. जूहू, गोपालपुर या पुरी से कहीं अधिक विस्तार है. सैलानी शनिवार को ही मनपसंद जगह रोक लेते हैं. खानेपीने का सामान साथ ले आते हैं. यहां आ कर अपनी व्यावसायिक अथवा नौकरी की सारी परेशानियां और दिक्कतें भूल जाते हैं. किसी के साथ उस की स्त्री और बच्चे हैं, तो कोई प्रेयसी के साथ है. सभी जोड़े में मिलेंगे.

यूरोप में स्त्रियों के समक्ष पुरुषों को पूरे कपड़ों में रहना ही शिष्टता है. पर इन स्थानों पर इस की छूट है. इसलिए पुरुष केवल जांघियां पहने मिलेंगे और बिकनी पहने स्त्रियां. सभी बालू पर धूप सेंक कर बदन को सांवला बनाने की कोशिश करते रहते हैं. होनोलूलू की तरह तो यहां नजारे नहीं दिखाई दिए, पर जितना भी देखा वह भारतीय मर्यादा की लक्ष्मण रेखा से कहीं बाहर था.

एक जगह बहुत शोर शराबा हो रहा था. काफी भीड़ लगी थी और पुलिस वाले भी इकट्ठे हो गए थे. पूछने पर पता चला कि छात्रों के दो दलों में मारपीट हो गई. अनेक के सिर फटे हैं, किसी की कलाई टूटी है तो किसी की टांग. आश्चर्य की बात यह थी कि लड़ने वालों में लड़कियां भी थीं. खूब जम कर हाकीस्टिक चला रही थीं. हमें बताया गया कि यहां 'राकेट' और 'माड' नाम के दो दल विद्यार्थियों के हैं, जो एकदूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश में रहते हैं. इसलिए जहां कहीं ये इकट्ठे हुए कि झगड़ा और मारपीट हो जाती है.

मैं तो समझता था कि हमारे देश में ही उच्छृंखलता का रोग छात्र समाज में है, पर यहां आ कर देखा कि इस की हवा यहां कहीं अधिक है.

वापस जब लंदन आए, रात हो चुकी थी. दिन में इतनी ज्यादा आइसक्रीम खा चुका था कि डिनर लेने की तबीयत नहीं थी. इस के अलावा, ऐसे मौकों पर प्रभुदयालजी याद दिला देते थे कि 'खाए कि न खाए तो न खाए भला,' अर्थात कम भूखा रहने पर नहीं खाना ही अच्छा रहता है, इस से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता.

लंदन में हमारे इतने परिचित मित्र थे कि होटल या रेस्तरां में खाने का कम ही मौका लगा. दूसरे दिन दोपहर में श्री जी. डी. बिन्नानी के लंदन कार्यालय व्यवस्थापक श्री बागड़ी के यहां गए. वे यहां एक फ्लैट ले कर सपत्नी रहते हैं. बहुत ही सुस्वादु भारतीय भोजन मिला. हलुवे के साथ बीकानेरी भुजिए भी थे. बहुत दिनों बाद लता मंगेशकर और मुकेश की सुरीली आवाज में रिकार्डों पर हिंदी गाने भी सुनने को मिले.

रात के भोजन का निमंत्रण था—रामकुमारजी के मित्र श्री हून के यहां. बहुत ही संभ्रांत महल्ले में श्री हून का अपना मकान है. १५ वर्ष पहले साधारण स्थिति में यहां आए थे. अब तो यहां के विशिष्ट व्यापारियों में इन की गणना है. टर्नर मोरिसन नामक प्रसिद्ध फर्म के अध्यक्ष हैं. उन्होंने हमारे सिवा और भी दसपंदरह मित्रों को बुलाया था. भोजन के साथसाथ विविध चर्चाएं—विशेषतः भारतीय अर्थनीति और राजनीति पर चलती रहीं. पता ही नहीं चला कि रात के बारह बज गए हैं. बहुत मना करने पर भी श्रीमती हून हमें अपनी कार से होटल तक पहुंचा ही गईं.

लंदन के मध्यमवर्गीय परिवारों के मकानों का समूह

दो दिन वाद हमें लंदन से विएना जाना था. इसलिए अगले दिन की मैं ने अपने साथियों से छुट्टी ली. नाश्ता कर सुवह की चेयरिंग क्रास से ट्रेन में वैठ कर लंदन से लगभग तीन मील दूर अपने एक पुराने मित्र से मिलने चला गया. १५ वर्षों के लंवे अर्से के वाद हमारी मुलाकात हुई. मैं ने महसूस किया कि मुझे देख कर वह कुछ झेंप सा रहा था. मैं कारण ठीक समझ नहीं पाया. प्राविजन स्टोर्स की अपनी छोटी सी दुकान पर वैठा था. कुशलमंगल पूछने के वाद भीतर से आती हुई एक प्रौढ़ा से परिचय कराया—वह इस की पत्नी थी. भारत से आने के वाद मित्र ने इस से विवाह कर लिया था. पति की मृत्यु के वाद महिला को दुकान और खेती संभालने के लिए एक साथी की जरूरत थी. मेरे मित्र को लंदन के व्यस्त जीवन और नौकरी की झंझटों से कहीं अच्छा यह काम और स्थान जंच गया. एक परिचित के माध्यम से परस्पर जानपहचान हो गई और दोनों विवाह सूत्र में वंध गए. अव मुझे उस की झेंप का कारण समझ में आ गया.

पत्नी उमर में मेरे मित्र से करीव दसवारह साल वड़ी थी. फिर भी मैं ने उसे हर काम को तत्परता और उत्साह से करते हुए पाया. उस दिन की दोपहर का भोजन मुझे आज तक याद है. थोड़ी ही देर में खीर, रोटी, फलों के मुरव्वे और न जाने कितने तरह के सुस्वादु व्यंजन वने थे. मैं ने यह भी लक्ष्य किया कि इतनी खातिरखिदमत और मेहनत करने पर भी वह अपने पति का काफी अदव करती थी, शायद डरती भी थी. आम तौर पर पश्चिमी देशों की पत्नियां मैं

ऐसा कम ही होता है. मुझे अपने यहां के वृद्ध पतियों की याद आई जो जवान बीवियों से झिड़कियां खा कर भी दांत निपोरते रहते हैं. शायद आयु के अधिक अंतर से मन में हीनता की भावना का संचार होना स्वाभाविक है.

पूरे दिन उन्होंने मुझे अपने यहां रोके रखा. मुझे भी यहां बड़ी शांति मिली. लंदन की भीड़ और व्यस्त जीवन ने दिमाग को बोझिल बना दिया था. पुराने दिनों की याद कर हम दोनों कभी खूब हंसते तो कभी उन्हीं में डूब जाते थे. हम दोनों ने ढाका, नारायणगंज और खुलना आदि पटसन के केंद्रों की बहुत बार एक साथ यात्रा की थी. बड़ी आरजू के बाद पतिपत्नी दोनों ने छः बजे शाम को नाश्ता कराने के बाद लंदन वापस आने दिया. स्टेशन तक अपनी कार से पहुंचाने आए.

लंदन पहुंचा, उस समय आठ बज चुके जोरों की बारिश हो रही थी. अपने एक भारतीय मित्र के पुत्र के विशेष आग्रह पर आठ बजे उस के घर पर भोजन करना स्वीकार कर लिया था. वह यहां पढ़ने के लिए भारत से आया था किंतु एक स्पेनिश विधवा से विवाह कर यहीं बस गया था. उस का घर स्टेशन से करीब बारहचौदह मील पर था. जोरों की वर्षा, और मेरे पास छाता नहीं. दूसरे ही दिन मुझे लंदन छोड़ देना था. अतएव, एक दुकान से बरसाती और बच्चों के लिए कुछ उपहार खरीद कर जब उस के घर पहुंचा तो रात के नौ बज चुके थे. मैं ने देखा पतिपत्नी दोनों उस वर्षा और ठंड में मेरी प्रतीक्षा में सड़क पर खड़े थे. उन्हें भय था कि मुझे शायद उन का फ्लेट खोजने में दिक्कत हो. देर के कारण अपने ऊपर झल्लाहट सी हो रही थी, उन्हें इस हालत में देख कर झेंप सा गया. यदि न आता तो न जाने कितनी देर तक भीगते रहते.

दोनों बड़े खुश हुए. छोटा सा, दो कमरों का फ्लेट था. पत्नी की मां और पहले पति द्वारा एक बच्ची भी साथ रहती थी. पतिपत्नी दोनों काम कर जीवन निर्वाह कर रहे थे. रहनसहन का स्तर बुरा नहीं था. लड़के की इच्छा देश जा कर पिता से मिलने की थी पर सुयोग नहीं बन पा रहा था.

लड़के ने बताया कि इस महल्ले में और भी सैकड़ों भारतीय परिवार हैं, जिन में पंजाबी अधिक हैं. सिक्खों की संख्या भी काफी है. ये नौकरी, दुकानदारी और मजदूरी करते हैं. इन में से बहुतों ने तो भारत से अपने स्त्रीबच्चों को भी यहीं बुला लिया है और स्थायी रूप से बसते जा रहे हैं. इन में शादीविवाह, रीतिरस्म अभी तक भारतीय हैं. कभीकभी तो इन अवसरों पर ढोलक पर गीत वगैरह भी होते रहते हैं.

मौसम बहुत खराब था और रात भी ज्यादा हो गई थी. इच्छा होते हुए भी यहां के भारतीयों से मिल नहीं सका. उन्हें मेरे आने की सूचना पहले ही दे दी थी, उन में से कुछ मिलना चाहते थे. भांगरा नृत्य और गीत का प्रोग्राम भी रखना चाहते थे, पर पहले से प्रोग्राम तय नहीं हो सका था.

रात बारह बजे होटल पहुंचा. दबे पांव कमरे में घुस रहा था, देखा कि प्रभुदयालजी जाग रहे हैं. सनसनाती ठंडी हवा और जोरों की वर्षा में मुझे बाहर से लौटा न देख कर परेशान हो रहे थे और मेरी राह देख रहे थे. सुबह आठ बजे ही उन के पास से चला गया था.

बिस्तर पर पड़ते ही नींद आ गई.

दूसरे दिन सुबह हमें विएना के लिए रवाना होना था. जल्दी ही उठ कर नाश्ता इत्यादि कर तैयार हो गए. नौ बजे कमरे के दरवाजे पर दस्तक हुई. देखा, श्री हून ने अपने पुत्र को एयरपोर्ट तक पहुंचाने के लिए भेजा था. हमारे मना करने पर भी स्वयं ड्राइव कर हमें अपनी गाड़ी से उस ने एयरपोर्ट पर पहुंचा दिया. एक डब्बा हाथ में देते हुए उस ने कहा, "आप लोगों के लिए माताजी ने मिठाइयां भेजी हैं."

बहुत वर्षों से श्रीमती हून भारत नहीं जा सकी थीं. शायद इसी लिए अपने देश के लोगों के प्रति स्नेह और ममता उड़ेल कर उस की पूर्ति कर रही थीं. वैसे इतने व्यस्त नगर में इतनी फुरसत कहां और किसे है? जब कि साधारण सी औपचारिकता निबाहनी मुश्किल हो उठती है.

मुझे लगा श्रीमती हून की मिठाइयों ने भारतीय तरीके से विदाई को मधुर बना दिया.

स्काटलैंड

इंगलैंड से कितना अलग?

स्काटलैंड, ब्रिटेन का उत्तरी भाग है. सरसरी तौर पर वेल्स, आयरलैंड, इंगलैंड और स्काटलैंड में विशेष अंतर नहीं दिखाई देता. फिर भी, गौर से देखा जाए तो इन राज्यों की संस्कृति और यहां के निवासियों के रहनसहन, चालढाल, पहनावे, यहां तक कि बोली में भी स्पष्ट अंतर दिखेगा. इंगलैंड और स्काटलैंड के प्राकृतिक दृश्यों और भौगोलिक बनावट में भी काफी अंतर है. स्काट और अंगरेजों के शारीरिक गठन में भी भिन्नता है. स्काट लंबे कद और चौड़ी हड्डी वाले तथा अपेक्षाकृत कष्टसहिष्णु होते हैं.

ब्रिटेन का इतिहास बताता है कि इंगलैंड और स्काटलैंड में एक अरसे तक लड़ाइयां होती रही हैं. दोनों पृथकपृथक राज्यों के रूप में थे. कभी इंगलैंड का अधिकार स्काटलैंड पर हो जाता था तो कभी स्काट शासक इंगलैंड पर आधिपत्य जमा लेते. दोनों राज्यों की जनता में आपस में विवाह होते थे पर ये बहुप्रचलित नहीं थे. आखिर सन १७०७ में दोनों राज्य एक हो कर ग्रेट ब्रिटेन बने. लेकिन आज भी दोनों के बीच भावात्मक एकता पूर्ण रूप से पैदा नहीं हो पाई है. स्काट लोगों की शिकायत है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट में उन का प्रतिनिधित्व कम है और अंगरेज उन पर प्रभुत्व सा जमाए रखना चाहते हैं. जो भी हो, यह उन का पारस्परिक या घरेलू विवाद है. विदेशों में जहां कहीं भी वे गए, ब्रिटिश बने रहे. दोनों के दृष्टिकोण में कोई भी अंतर नहीं आया. निस्संदेह यह एक स्वस्थ राष्ट्रीय गुण है. भारत में हम इन्हें अंगरेज नाम से ही जानते थे और इसी नाम से इन का उल्लेख सब जगह होता था.

कलकत्ता में जूट की जिस व्यापारी फर्म में मैं लंबे अरसे तक काम करता रहा वहां स्काटिश लोगों की ही प्रधानता थी. उन दिनों वे पटसन के काम में विश्व में सब से अधिक जानकार माने जाते थे. यहां काम करने वाले अंगरेजों को हर तीन वर्ष बाद एक साथ छः महीने की छुट्टी अपने देश जाने के लिए दी जाती. छुट्टी की अवधि ज्योंज्यों नजदीक आती, वे 'होम. . . स्वीट होम' (घर. . . प्यारा घर) अलापने लगते. अपने देश के पर्वतों, नदियों, खेतों, चरागाहों की तारीफ करते समय उन के चेहरों पर एक उल्लासपूर्ण आभा सी दिखाई देती थी. अपने काम के दौरान मेरी उन से घनिष्टता हो गई थी. मैं उन से पूछता, "आप 'स्वीट होम' कहते हैं, उसी तरह हमें भी अपना घर प्यारा लगता है.
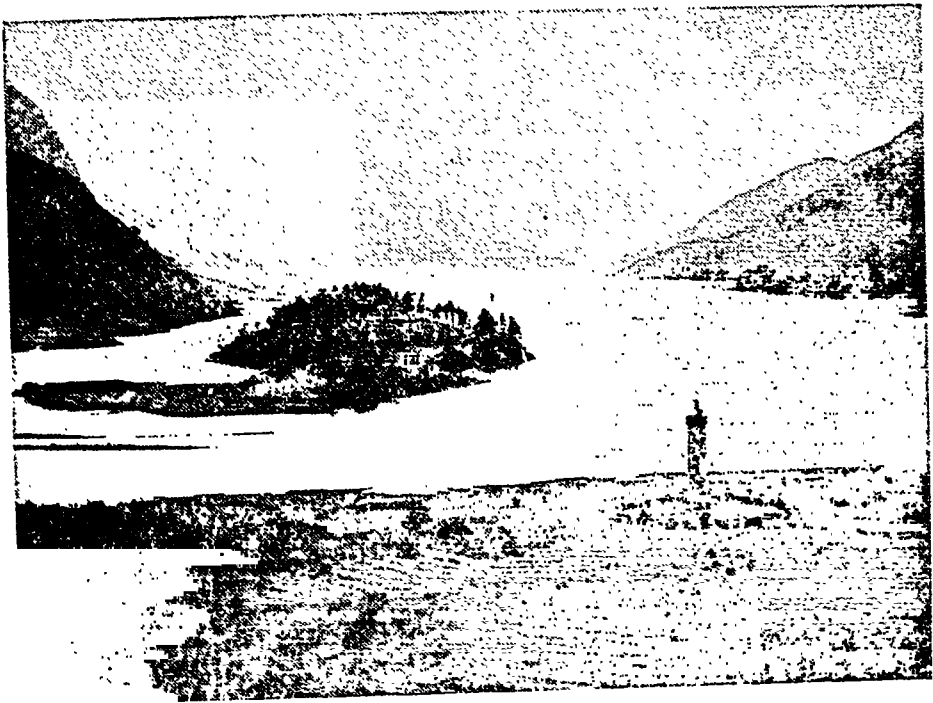
१७४५ की क्रांति के नेता प्रिंस चार्ल्स एडवर्ड की एक यादगार

फिर क्यों 'वंदेमातरम्' या 'भारत प्यारा देश हमारा' कहने पर आप लोग इसे गुनाह मानते हैं?"

उत्तर में वे या तो चुप रहते या कह देते कि यह राजनीतिक विवाद का प्रश्न है, हमें इस में नहीं पड़ना है.

जो भी हो, अंगरेजों से और खास तौर से स्काट लोगों से, उन के देश का जो वर्णन सुनने को मिला, उस से उसे जानने की और देखने की इच्छा पैदा हो गई. अंगरेजी साहित्य में भी हमारे यहां की तरह वीर गाथाएं ज्यादातर स्काटलैंड के वीरों पर ही लिखी गई हैं. बचपन में राबर्ट ब्रूस की कहानी पढ़ी थी. उस के बाद स्काट की रचनाएं पढ़ कर इच्छा होती थी कि देखूं हमारे राजस्थान से स्काटलैंड की क्या समता है. इंगलैंड पहुंचने पर अपनी उस इच्छा की पूर्ति का अवसर मिला.

एक दिन अचानक ही लंदन से ट्रेन में बैठ कर स्काटलैंड के औद्योगिक नगर डंडी जा पहुंचा. रात थी इसलिए सफर में रास्ते के दृश्य देख नहीं पाया. सवेरे जब नींद खुली, खिड़की से देखने में आया कि बरफ की चादर से ऊंचीनीची जमीन ढकी हुई है. वृक्ष और मकानों की छतें भी बरफ से ढकी पड़ी थीं.

ट्रेन के डब्बे से बाहर निकलते ही बरफानी तूफान और बौछारों ने कंपकपी पैदा कर दी. कड़ाके की सर्दी थी. उस समय तक मैं उत्तरी ध्रुवांचलीय देशों की यात्रा नहीं कर पाया था इसलिए यहां की सर्दी असह्य मालूम पड़ी. अपनी आदत के कारण किसी को पूर्व सूचना नहीं दी थी. कड़ाके की सर्दी, और एकदम नई जगह. अनजानअपरिचित में अपने इस स्वभाव पर खुद ही पछता उठा. बहरहाल, एक टैक्सी वाले से किसी होटल में ले चलने को कहा.

उन दिनों वहां बरफ के खेलों के कई एक टूर्नामेंट चल रहे थे, ठहरने के लिए स्थान का अभाव था. खैर, तीनचार होटलों के चक्कर लगाने के बाद एक में जगह मिल ही गई. नाश्ता करने के बाद टेलीफोन डायरेक्टरी उठा कर अपने मित्र मिस्टर बैंक का पता ढूंढ़ निकाला और उन्हें फोन किया. वह अपनी खेती देखने गए थे. एक दूसरे मित्र जोन स्मिथ का नाम ढूंढ़ने लगा तो आश्चर्य में पड़ गया. हमारे यहां के राम, श्याम और गोपाल की तरह वहां स्मिथ बहुप्रचलित नाम है. एक बार तो सोचा कि जितने जोन स्मिथ हैं, सब को फोन करूं पर अपने इस खयाल पर खुद ही हंसी आ गई. सोचा कि रविवार का दिन है लोगों को अकारण ही परेशान करने से क्या लाभ?

आखिर तीनचार गरम कपड़े पहन, छाता ले, होटल से बाहर निकला और ड्यूटी पर खड़े पुलिस सार्जेंट की सहायता ली. वह बड़ी तत्परता से पास की एक पुलिस चौकी पर मुझे ले गया. अपनी जगह उस ने एक अन्य सार्जेंट को ड्यूटी पर भेज दिया. वहां से उस ने दोतीन 'जोन स्मिथों' को फोन भी किए पर काम बना नहीं. मेरे पास अपने मित्र स्मिथ के आफिस का पता था. लेकिन यह तो रविवार का दिन था. सारे दफ्तर बंद थे. सार्जेंट ने अनुमान लगाया कि केयरटेकर आफिस के ऊपर की मंजिल में रहता होगा.

उस ने विचार प्रकट किया कि आफिस चल कर केयरटेकर से मिला जाए और मिस्टर स्मिथ के घर का पता मालूम किया जाए. मैं हिचकिचा रहा था कि इसे नाहक परेशानी होगी पर सार्जेंट कब रुकने वाला था. बरफीली हवा और बौछार में मेरे साथ हो लिया. लगभग एक मील पैदल चल कर हम स्मिथ के दफ्तर पहुंचे. केयरटेकर बाजार गया हुआ था पर उस की पत्नी घर पर थी.

मिस्टर स्मिथ का फोन नंबर मिल गया. केयरटेकर की पत्नी ने आफिस का कमरा भी खोल दिया. हम ने फोन किया, स्मिथ घर पर ही था. उस का घर वहां से सातआठ मील दूर रहा होगा. उसे मेरे लंदन आने का समाचार तो मिल चुका था पर डंडी आने के प्रोग्राम का पता नहीं था. होता भी कैसे, प्रोग्राम अचानक ही तो बना था! बड़ा प्रसन्न हुआ और खुद ही चंद मिनटों में बड़ी सी हंबर कार ले कर आ पहुंचा. सार्जेंट विदा लेते समय मुझे ही धन्यवाद देने लगा कि इतने समय तक मेरा साथ रहा. मैं उस के सहज, शिष्टतापूर्ण व्यवहार पर चकित था. मन ही मन सोचता रहा अपने यहां के दंभी पुलिस विभाग के अफसरों के बारे में.

बारह वर्ष की लंबी अवधि के बाद अपने मित्र से मिल रहा था. मैं ने देखा, वह पहले से भी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न था सिर्फ उस के बालों में कुछ सफेदी आ गई थी.

उस का बंगला एक छोटी सी पहाड़ी की टेकरी पर था. बहुत ही सुंदर और सुरम्य स्थान लगा. चारों तरफ हरियाली और बीचबीच में फूल खिले थे. थोड़ीबहुत बरफ अब भी थी मगर उस से प्राकृतिक सौंदर्य में और भी निखार आ गया था. हम जैसे ही घर पहुंचे, एक निहायत खूबसूरत युवती ने मुसकराते हुए स्वागत किया. स्मिथ ने परिचय कराया, "मेरी पत्नी डोरा..."

डोरा ने बताया, "मेरे पति अकसर आप की चर्चा करते रहे हैं."
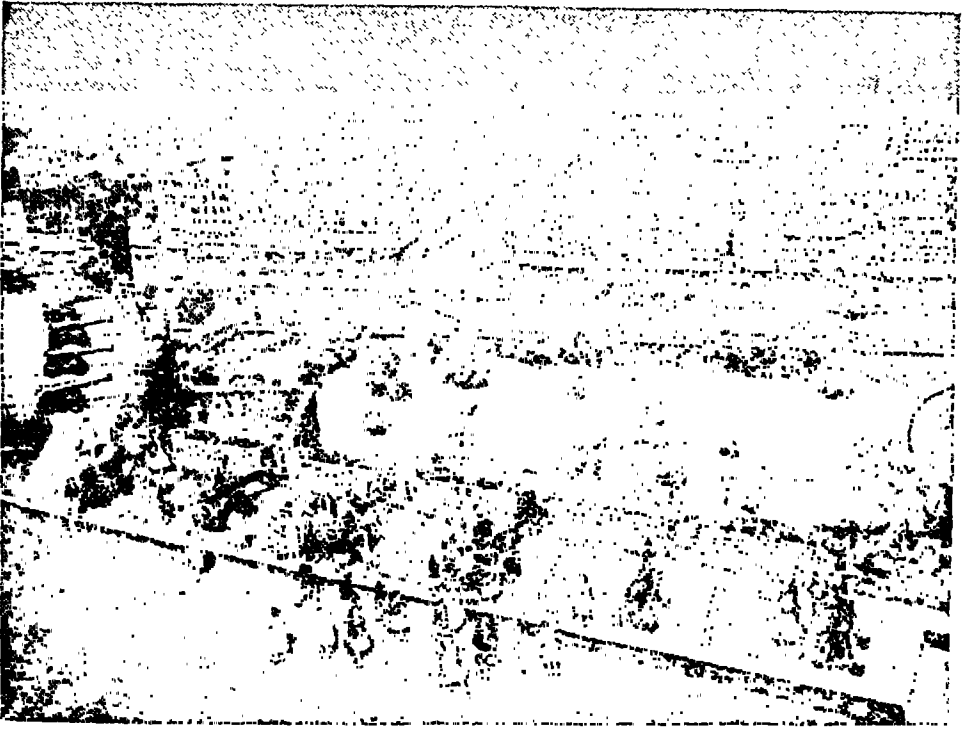
एडिनवरा के किले में उछलते-कूदते स्कूली वच्चे और पीछे है एक खूवसूरत पार्क

खाने की व्यवस्था इतनी देर में हो चुकी थी. भूख मुझे भी लग आई थी. बहुत ही जायकेदार निरामिष भोजन मिला. मिसेज स्मिथ ने बड़े स्नेह और आग्रह के साथ भोजन कराया. उस का व्यवहार कुछ ऐसे ढंग का था मानो वर्षों का परिचय हो. मैं भोजन कर रहा था और सोचता जाता था कि इन दोनों की उमर में लगभग पचीस वर्ष का फर्क है. द्वितीय पत्नी और वह भी सुंदरी, फिर भी परस्पर इतना स्नेह और विश्वास! हमारे देश में गरीव मांवाप की बेटियां ही वृद्धों को दी जाती हैं. पर ऐसी स्थिति में पत्नियां पति पर शासन करती हैं और उन पर संदेह भी.

स्मिथ ने मुझे मौन देख कर पूछा, "क्या सोचने लगे?"

मैं ने मुसकरा कर कहा, "अव मालूम हुआ कि आप जवान कैसे बन गए!" दोनों की जिज्ञासाभरी दृष्टि मुझ पर थी. मैं कहने लगा, "हमारे यहां कामशास्त्र के आचार्य महर्षि वात्स्यायन ने लिखा है कि युवा, स्वस्थ, मधुरभाषिणी और सुंदरी स्त्री के साथ अच्छा भोजन और सेवा मिले तो वृद्ध भी जवान हो जाता है. अब समझ जाइए कि आप पर उमर का असर क्यों नहीं हुआ."

दोनों हंसने लगे.

स्त्रियों को अपनी प्रशंसा अच्छी लगती है, चाहे वे किसी भी देश की हों. मेरी बात से डोरा बहुत खुश हुई. खातिरदारी और अधिक हो गई. उस ने विशेष अनुरोध किया कि वात्स्यायन के कामविज्ञान का अंग्रेजी अनुवाद अवश्य भेज दें. मैं ने वादा किया कि भेज दूंगा.

यूरोप के विद्वानों में भारतीय संस्कृति और दर्शन के प्रति बड़ा आदर है.

पर जनसाधारण भारतीय ज्योतिष में विश्वास रखते हैं. मैं इस बात को पहले से जानता था इसलिए विदेश यात्रा के पूर्व मैं ने हस्तरेखा के संबंध में दोचार पुस्तकें पढ़ कर हलकी सी जानकारी ले ली थी. किताबें साथ रखता था. अकसर मित्रमंडली या परिचितों में लोग अपनीअपनी किस्मत के राज पूछ बैठते थे. मैं ने कुछ गोलमोल बातें याद कर लीं. दस में सातआठ तो सब पर सही बैठ ही जाती थीं. भविष्य जानने की इच्छा मंत्री से चपरासी और राजा से रंक तक सब में रहती है. मेरे नुसखे से मुझे बड़ी मदद मिल जाती. ट्रेन, बस, रेस्तरां और क्लबों में रंग जम जाता.

डोरा का हाथ भी मैं ने देखा. बताया, "बचपन संघर्षमय वातावरण से गुजरा है, पर जवानी और बुढ़ापा आनंद से कटेगा. प्रसिद्धि भी है भाग्य में. समाजसेवा के प्रति रुचि होनी चाहिए क्योंकि दया और करुणा के लक्षण हैं. संतान दो होनी चाहिए."

इतनी ही देर में डोरा के चेहरे पर लाली आ गई थी. वह खुश नजर आई. कहने लगी, "देखा, जोन, मिस्टर टांटिया कहते हैं कि हमें दो बच्चे होंगे. मैं ने तो तुम से पहले ही कह दिया था."

मैं सोचने लगा, चाहे पूरब की हो या पश्चिम की, नारी मातृत्व का गौरव पाए बिना अपने को पूर्ण नहीं मानती. प्रकृति का यह विधान चिरकाल से सर्वत्र एक सा रहा है.

दोनों ने वादा किया कि पहला बच्चा होने के बाद वे भारत आएंगे और मेरे साथ ताजमहल और कश्मीर देखने जाएंगे.

थोड़ी देर विश्राम करने के बाद स्मिथ दंपति मुझे आसपास के गांवों में घुमाने ले गए. डोरा कार चला रही थी. मैं उस के पास बैठा था, स्मिथ पीछे की सीट पर. उस दिन हम ने शायद सौसवासौ मील का चक्कर लगाया होगा. वर्षा कम हो गई थी और हलकी धूप निकल आई थी. खेतों में अनाज की बालियां झूम रही थीं. कहींकहीं खेत कट भी चुके थे. काफी बड़े पैमाने पर यांत्रिक खेती यहां होती है. जगहजगह नाज के ढेर लगे हुए थे. मोटी-मोटी गायों, भेड़ों और सुअरों को चरते देखा. बातचीत में पता चला कि गायों से औसतन दैनिक तीसपैंतीस सेर दूध मिलता है. सांड़ों की कीमत यहां पचास हजार से पांच लाख तक है. यहां से ब्राजील और मेक्सिको तक सांड़ भेजे जाते हैं.

एक किसान के बंगले पर गए. वह स्मिथ का परिचित था.

ताप नियंत्रित छोटा सा मकान, टेलिविजन, टेलीफोन, लाइब्रेरी और सारी आधुनिक सुविधाएं. करीब आधा सेर ताजी क्रीम के साथ चेरी का नाश्ता हम सभी के सामने रख दिया गया. बहुत कहने पर भी वह किसान नाश्ता कम करने पर राजी न हुआ. हमारे गांवों की तरह यहां भी जबरन परोसने का रिवाज है.

देहातों को देख कर जब हम घर लौटे तो रात के नौ बज गए थे. देखा, चारपांच स्त्रीपुरुष हमारी राह देख रहे हैं. शायद उन्हें किसी ने बता दिया था कि भारत से एक अच्छे ज्योतिषी आए हैं. वे सब अपनाअपना भाग्य जानने की उत्सुकता ले कर तीनचार घंटों से धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा में बैठे थे. थकावट

टे घाटियों की खामोशियों के बीच किनौल का किला व इंवरनेस के देहात में टट्टुओं की सवारी

का वहाना करना उचित नहीं लगा. एकएक कर सब की हस्तरेखाओं को एक कागज पर उतारा और सब को अलगअलग ढंग से अलगअलग बातें बताई. कुल मिला कर सारांश था: उपकार का वदला अपकार से मिलता है, घरवालों से सहयोग और प्रेरणा कम मिलती है, बचपन में दोतीन बार बीमारी ने घेरा, तीन-चार वर्ष बाद अच्छे दिन आ रहे हैं आदि. मैं ने सदा ध्यान में रखा है कि निराशा-जनक बातें न कहना ही अच्छा रहता है. कभीकभी इस से मानसिक धक्का पहुंचने का अंदेशा रहता है. आश्चर्य है, मेरी भविष्यवाणी से सबों को संतोष हुआ और वे धन्यवाद देते हुए चले गए. रह गई केवल एक किशोरी. वह एकांत में कुछ बातें करना चाहती थी. मैं ने उसे अगले दिन सुबह आने के लिए कहा.

स्मिथ दंपति के साथ भोजन की टेबल पर बैठा. गांव में किसान के घर क्रीम और चेरी बहुत खा चुका था इसलिए भूख थी नहीं. फिर भी आग्रहवश कुछ ले लिया. डोरा से मालूम हुआ कि लड़की का नाम जेन है. एक लड़के से प्रेम हो गया और लड़के ने विवाह का वादा किया था. पिछले साल लड़का न्यूजीलैंड चला गया और वहां शायद किसी दूसरी लड़की के प्यार में फंस गया. यह है, जो उस की प्रतीक्षा में बैठी है, नहीं तो बीसियों युवक इस से शादी करने को तैयार हैं. धनवान पिता की इकलौती बेटी है, कालिज तक की शिक्षा पाई है.

यही सब बातें तो मैं जानना चाहता था. भोजन कर के जब मैं अपने कमरे में गया, रात के १२ बज रहे थे. मिसेज स्मिथ एक बार कमरे में फिर आई और मेरे लिए की गई व्यवस्था खुद देख कर चली गई. शायद कुछ देर और बातें करतीं पर मुझे जोरों की नींद आ रही थी.

दूसरे दिन सुबह डोरा बहुत ही प्रसन्न दिखाई दी. वही फुर्तीलापन और चुहल. कहने लगी, "यदि आप भी जवानी का नुसखा आजमाना चाहते हैं तो

जेन या किसी दूसरी लड़की से बात चलाऊं. स्काट लड़कियां अच्छी पत्नियां साबित होती हैं. हमारे यहां एक भारतीय डाक्टर हैं, वह अपनी स्काट पत्नी से बहुत खुश हैं. सुस्वादु भोजन बनाने की कला और खुशमिजाजी जितनी हम में आप पाएंगे उस की चौथाई भी अंगरेज स्त्रियों में नहीं."

मैं ने हंसते हुए धन्यवाद दिया और कहा, "क्षमा करें, मेरी स्वस्थ और सुंदर पत्नी भारत में मौजूद है."

इसी बीच जेन पहुंच गई. बहुत ही सुंदर कपड़ों में, सुमधुर सुगंध लगाए हुए. उपहारस्वरूप एक गुलदस्ता और फल उस के साथ थे. मैं उसे एक एकांत कमरे में ले गया. चारपांच मिनट तक हाथ उलटपलट कर देखे, फिर बताया, "सच्चा प्यार धैर्य मांगता है. प्रेमी पूर्व दिशा में कहीं है, वह जल्द ही आएगा. परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए."

जेन के चेहरे पर खुशी की लहरें नाच उठीं. उस की पलकें भीग गई थीं. पूछने लगी, "महोदय, कितने दिन में मेरा रोबी आ जाएगा? उस का स्वास्थ्य तो ठीक है?"

वह मुझे अपनी शादी में आमंत्रित करना चाहती थी. मैं ने उसे अपना कार्ड दे दिया.

डंडी की जूट मिलें और डोक्स देखने में मेरी दिलचस्पी नहीं थी इसलिए हम लोगों ने ५० मील दूर स्काटलैंड की राजधानी और बड़ा शहर एडिनबरा देखने का प्रोग्राम बनाया. दोपहर के खाने के लिए वहां के एक होटल में सूचना दे दी.

एडिनबरा की आबादी करीब पांच लाख है. इसे यूरोप के उत्तर पश्चिम का भाग एथेंस भी कहते हैं क्योंकि शहर का एक भाग पुराना है और दसरा भाग नया. बाजार, दुकानें, होटल और क्लब यूरोप के सभी शहरों में लगभग एक जैसे हैं. फिर भी मैं शहर या देश विशेष की कोई खास कलात्मक अथवा कारीगरी की चीज अवश्य संग्रह कर लेता था. एडिनबरा की ऊनी ट्वीड मशहूर है. गरम कपड़ों में आज भी इस का मुकाबला नहीं. कलकत्ते में डी. सी. एल. आई. या हाइलेंडर्स टीम के फुटबाल खिलाड़ियों को या ईडन गार्डन के बैंड बजाने वालों को मोटी धारीदार ऊनी ट्वीड के ऊंचे घाघरे पहने कई बार देखा था. एक स्टोर से मैं ने कुछ कपड़े खरीदे. बहुत मना करने पर भी स्मिथ ने खुद ही दाम दे दिए. इच्छा थी, कुछ और भी चीजें खरीदूं, पर फिर संकोचवश विचार बदलना पड़ा.

होटल में निरामिष भोजन के लिए हिदायत दी गई थी पर खाना खाने के बाद पता चला कि आलू चर्बी में तले गए थे. मन में बड़ी ग्लानि हुई, पर कहता क्या! होटल वाला यह सुन कर चकित रह गया कि निरामिष भोजन में चर्बी का उपयोग करना भी हमारे यहां वर्जित है.

लंच के बाद हम एडिनबरा कैसल देखने गए. यह ऐतिहासिक दुर्ग ४५० फीट ऊंची पहाड़ी पर है. प्राचीन काल में सुरक्षा की दृष्टि से किले पहाड़ियों पर ही बनाए जाते थे. ऊपर से तीर और गोलों के अलावा शत्रुओं पर पत्थर और गरम तेल भी फेंके जाते थे. इस का वास्तविक इतिहास सातवीं शताब्दी
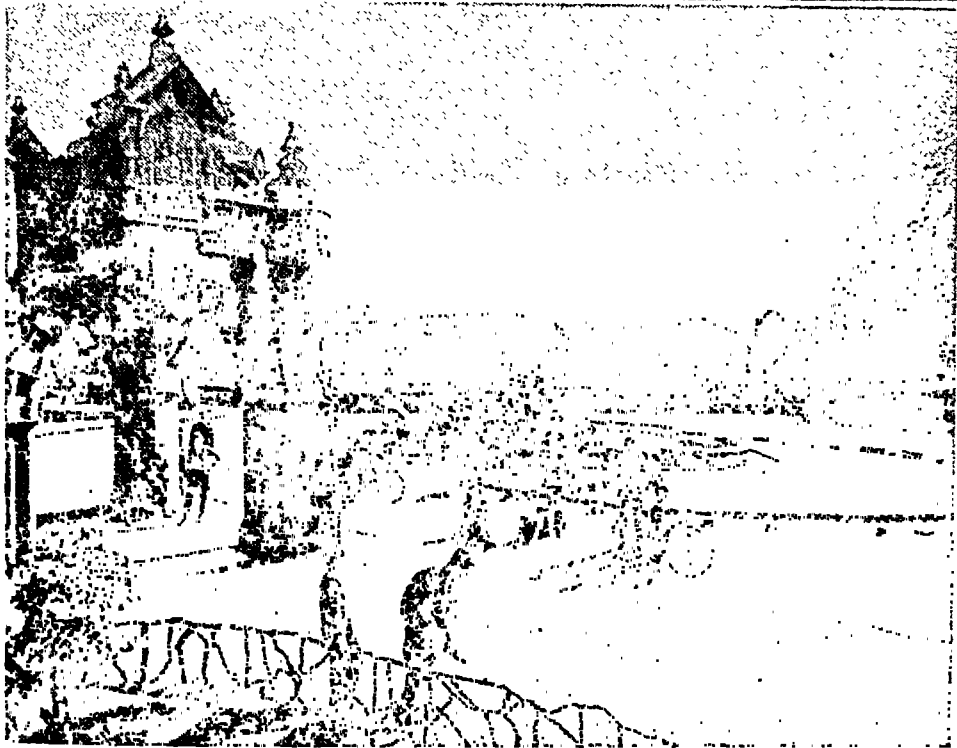
लोच लामांड का यूथ होस्टल : जहां दुनिया भर के युवक-युवतियां आ कर ठहरते हैं

से मिलता है. बताते हैं, राजा एडविन न इसे बनवाया. अट्ठारहवीं शताब्दी तक यानी ११०० वर्षों में इस की यूरोप के महत्त्वपूर्ण दुर्गों में गिनती की जाती थी. इस की चर्चा और उल्लेख इतिहास और साहित्य में भी मिलता है.

शेक्सपीयर के मैकबेथ का मालकम ग्यारहवीं शताब्दी में यहां रहता था. ब्रिटेन के इतिहास में प्रसिद्ध मेरी क्वीन आफ स्काट्स भी कुछ दिन तक इस में रही थी. २० इंच के मुंह की १५० मन वजनदार पंदरहवीं शताब्दी की एक तोप भी यहां रखी है. शायद यह अपने जमाने में यूरोप की सब से बड़ी तोप थी. इस कैसल ने बड़ीबड़ी लड़ाइयां देखी हैं. सर वाल्टर स्काट ने इस की पृष्ठभूमि पर अपने कई प्रसिद्ध उपन्यास लिखे हैं.

किले को देख कर मुझे चित्तौड़ और रणथंभौर के गढ़ों की याद आ गई. शौर्य और साहस का परिचय यहां भी रहा है पर त्याग, बलिदान और मान के लिए मर मिटने का अद्वितीय जौहरव्रत भारत के सिवा और किस देश के इतिहास में देखने को मिलता है? सिर पर केसरिया पगड़ी बांधे शत्रुओं के उमड़ते सागर में नंगी तलवार लिए वीरों का कूद पड़ना, स्वयं चिता बना कर सतीत्व रक्षा के लिए हजारों रमणियों द्वारा बच्चों को गोद में लिए मृत्यु का आलिंगन कर लेने का गौरवपूर्ण अध्याय हमारे अलावा किस देश के इतिहास में है? मैं ने डोरा को यह सब बताया तो वह सन्न रह गई. कहने लगी, "भला अबोध बच्चों को भारतीय नारियां किस प्रकार जला देती थीं?"

मेरा जवाब था, "यह बात आप लोगों की समझ में आने की नहीं है."

किले के विभिन्न कक्षों में बादशाहों के हथियार, पोशाक और गहने रखे थे. डोरा सब के बारे में बता रही थी. इस ढंग के संग्रह इंगलैंड और यूरोप के विभिन्न नगरों में इतनी बार देख चुका था कि अब उन के प्रति विशेष आकर्षण नहीं रह

गया था.

मेरी क्वीन आफ स्काट्स के बारे में इंगलैंड के इतिहास में पढ़ चुका था. स्काटों की यह रानी इंगलैंड की प्रसिद्ध एलिजाबेथ प्रथम की समकालीन थी. इस ढंग की महिलाएं सदियों में एकाध ही हुआ करती हैं. भारत में भी लगभग १५० वर्ष पहले सरधना की बेगम समरू में अत्यधिक कामुक प्रवृत्ति के साथसाथ राजनीतिक षड्यंत्र और साहस का परिचय मेरी की तरह ही मिलता है.

रानी मेरी का महल होलीरूड देखने गया. यह ८०० वर्ष पुराना है. ऊबड़-खाबड़ पत्थरों के बेडौल कमरों, पुराने राजाओं की दिनरात के काम में आने वाली चीजों को देख कर ऐसा लगता था कि वास्तव में ३०० वर्ष पहले तक ब्रिटेन हमारे मुकाबले में असभ्य और जंगली देश रहा होगा, जहां या तो समुद्री लुटेरों की या फिर स्काट के उपन्यासों में वर्णित ड्यूक अथवा लार्ड नामक सामंत जमींदारों की प्रधानता रही होगी. इन की क्रूरता और शोषण के तरीकों को पढ़ कर रोएं खड़े हो जाते हैं.
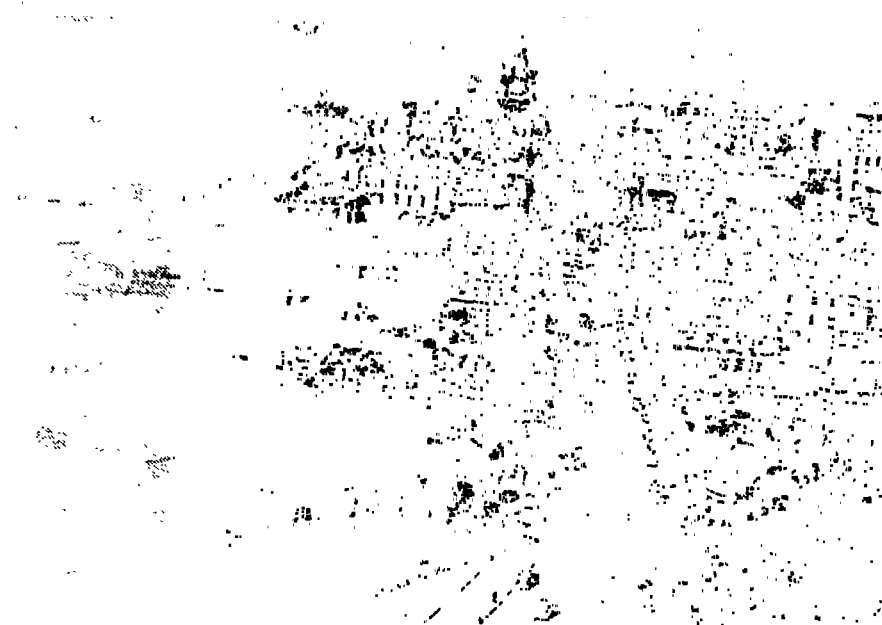
जिस कक्ष में मेरी रहती थी, उसे आज भी पूर्ववत रखा गया है. यहां तक कि ४०० वर्ष पहले के फर्नीचर, बरतन, कपड़े और अन्य वस्तुएं भी पहले की तरह रखी हैं. रानी मेरी के प्रेमी रोजियो की, उस के द्वितीय पति डार्नले ने जिस कमरे में हत्या की थी, वहां पीतल की एक तख्ती भी लगी देखी. समझ में नहीं आया कि कौन सी बहादुरी, त्याग या बलिदान के स्मारक के रूप में इसे लगाया गया है.

यहां दो प्रसिद्ध गिरजे भी देखे. एक रोमन कैथोलिक है, दूसरा प्रोटेस्टेंट. दोनों ही ईसाई धर्म के दो अलगअलग पंथों के हैं. धर्मांधता के कारण दोनों के अनुयायियों ने एकदूसरे के गिरजे को कई बार नष्ट किया और आग लगाई. मैं ने डोरा से कहा, "यदि असभ्य और बर्बर लोग ऐसा जघन्य काम करते तो बात समझ में आ सकती थी पर ब्रिटेन तो संसार में सभ्य कहलाने का दावा करता था. दया, क्षमा, प्रेम की अमर वाणी के प्रचारक यीशू के मंदिरों को ईसाइयों द्वारा नष्ट किया जाना, अन्य धर्म वालों या अल्प विकसित लोगों के सामने ब्रिटेन का क्या स्वरूप उपस्थित करता होगा?"

डोरा चुप थी मगर स्मिथ ने कहा, "पाशविकता मनुष्य की सब से बड़ी कमजोरी है. वह किसी भी आड़ में उभर सकती है. उस के लिए धर्म को दोषी नहीं ठहराया जा सकता. भारत में भी तो उस के उदाहरण हैं."

डोरा ने प्रश्न भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा. मैं ने कहा, "ठीक है, भारत में उदाहरण हैं पर वह भारतीयों के नहीं. भारत में अरब, तुर्क और ईरानी आए, अपने साथ इसलाम लाए. उसी परंपरा में धर्मांधता ने तोड़फोड़ मचाई, मंदिरों और पुस्तकालयों को नष्ट किया गया. लेकिन मुसलमानों ने एकदूसरे की मसजिदों को कभी नहीं तोड़ा."

शाम हो रही थी. अभी तक हम सर वाल्टर स्काट का निवासस्थान नहीं देख सके थे. स्काट की कलम में गजब का जादू था. इस एक कवि और उपन्यासकार ने स्काटलैंड जैसे छोटे से प्रदेश को दुनिया में मशहूर कर दिया. अंगरेजी पढ़ा हुआ शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिस ने स्काट को नहीं पढ़ा होगा. स्काट ने जितना लिखा है, उतना विश्व के दसपांच ही लेखक लिख

स्काटलैंड की राजधानी : कैलटन की पहाड़ियों से लिया गया एक चित्र

पाए होंगे. हमारे यहां रवींद्र की तुलना उस से की जा सकती है.

स्काटलैंड के रमणीक स्थानों का वर्णन, उस के वीरों की गाथाएं, स्काट ने अपनी रचनाओं में लिपिबद्ध की हैं. उस के उपन्यासों में 'दि एबोट एंड केविलवर्थ' नामक रचना मैं ने दोदो बार पढ़ी थी, इसलिए जब होलीरूड महल देखा तो कुछ नवीनता नहीं लगी. एडिनबरा की प्रिंसेस स्ट्रीट में उस की स्मृति में गोथिक शैली का एक भव्य स्मारक बना कर स्काटलैंड की जनता ने वाल्टर स्काट के प्रति स्नेह और कृतज्ञता व्यक्त की है. यहां स्काट और उस के प्रिय कुत्ते की बड़ी सजीव मूर्ति प्रसिद्ध मूर्तिकार सर जान स्टील द्वारा निर्मित है.

डंडी वापस पहुंचतेपहुंचते रात के दस बज गए. थकान कुछ इतनी हो गई थी कि अपने कमरे में लौटते ही मुझे गहरी नींद आ गई.

स्काटलैंड तीसहजार वर्ग मील का छोटा सा देश है. हमारे यहां के राजस्थान राज्य की जनसंख्या की चौथाई आबादी है, केवल बावन लाख. इस का उत्तरी भाग पहाड़ी है और वहां आबादी भी बहुत कम है. शिल्प, उद्योगधंधे आदि ज्यादातर दक्षिणी भाग में ही केन्द्रित हैं. यहां का सब से बड़ा उद्योग है, जहाज निर्माण. कोनार्ड लाइन्स के विश्व विख्यात जहाज 'क्वीन मेरी' और 'क्वीन एलिजाबेथ' इस अंचल के ग्लासगो नगर में बने थे. पटसन की बहुत सी मिलें और कारखाने भी स्काटलैंड में हैं. शीशे और स्टील के कारखाने भी इस प्रदेश में काफी हैं. स्काटलैंड की सब से बड़ी खूबी है इस की बेहतरीन व्हिस्की. यह फ्रेंच और इतालियन शराबों को मात देती है. वे दोनों उम्दा किस्म के अंगूरों के देश होने पर भी, लाख कोशिशों के बावजूद स्काच व्हिस्की की क्वालिटी नहीं बना पाए.

स्काटलैंड का सब से बड़ा शहर है ग्लासगो. बड़े शहरों में हर जगह एक सा वातावरण रहता है. एक जैसे होटलक्लब, म्यूजियम, नाइट क्लब आदि.

इन में मुझ जैसों के लिए न तो कोई नवीनता थी और न आकर्षण. इसलिए हमारे कुल्लू या मनाली की तरह के उत्तरी स्काटलैंड, जिसे हाइलैंड कहते हैं, देख कर स्काटलैंड की यात्रा समाप्त करने का स्मिथ से अनुरोध किया. उसे दफ्तर में जरूरी काम भी था. शायद डायरेक्टरों की मीटिंग बुलाई गई थी. उस की फर्म काफी बड़ी थी और वह उस का अध्यक्ष था. इसलिए मीटिंग में उस की उपस्थिति आवश्यक थी. अपनी विवशता के लिए वह बड़ा संकोच अनुभव कर रहा था. बड़े प्यार भरे शब्दों में डोरा से उस ने मेरा साथ देने के लिए अनुरोध किया. मैं सोच रहा था कि इतना संपन्न व्यक्ति है, पर जरा भी अभिमान नहीं. अपनी सुंदर युवती पत्नी को मेरे साथ ऐसी बीहड़ यात्रा पर दो दिनों के लिए अकेले छोड़ दे रहा है. हमारे यहां शायद कोई साधारण व्यक्ति भी ऐसा न करे, धनिकों की बात तो दूर रही. इन को एकदूसरे पर कितना गहरा विश्वास है.

डोरा खुशीखुशी राजी हो गई. जेनी भी वहीं बैठी थी, वह भी साथ चलने को तैयार थी. हम तीनों नाश्ता कर मिस्टर स्मिथ की बड़ी हंबर कार में पश्चिम उत्तर के पर्वतीय अंचल को देखने निकल पड़े. रात में वहीं एक होटल में ठहरने की व्यवस्था की.

यात्रा लंबी थी. रास्ता भी बहुत उतारचढ़ाव वाला था. इसलिए शोफर को साथ ले लिया. लेकिन कार बारीबारी से वे दोनों चला रही थीं. शायद इतनी मेहनत न भी करतीं पर मैं ने डोरा के दो बच्चे और जेनी को उस का मनचाहा पति जो दे दिया था.

स्काटलैंड के जिस हिस्से से हम जा रहे थे, वह पहाड़ों, नदियों और झीलों का प्रदेश है. यद्यपि रास्ता चढ़ावउतार वाला है, फिर भी खेती सभी जगह दिखाई दी. हमारे यहां के पहाड़ी प्रदेशों की तरह कटावदार खेत बने हुए थे.

लंच हमें इंवरनेस में लेना था. यह स्काटलैंड के पर्वतीय उत्तरी अंचल की राजधानी है. १२५ मील लंबा सफर था मगर हंसी, दिल्लगी और बातचीत में रास्ता आसानी से कट गया. समय और थकान का अनुभव भी न हुआ. चाकलेट, बिस्कुट के अलावा फ्लास्क में काफी भी रख ली गई थी.

रास्ते में थोड़ी देर के लिए माधुहेराग नाम के एक पहाड़ी कसबे के क्लब में कुछ देर के लिए ठहरे. चारों ओर पहाड़ और हरियाली थी. इन की ऊंचाई हमारे यहां के पहाड़ों की सी नहीं थी, फिर भी उत्तरी ध्रुवांचल के निकट होने के कारण यहां सर्दी बहुत थी.

माधुहेराग अच्छा रमणीक स्थान है. देवप्रयाग, केदारनाथ के मार्ग में भी ऐसे पहाड़ हैं, पर यहां के पर्वत सीधे दीवार की भांति खड़े हैं. इन्हें अंगरेजी में 'क्लिफ' कहते हैं. इन ऊंचे कगारों से नीचे, बहुत नीचे रुपहली नागन सी बहती नदी, कुंडली मारे सर्प की तरह घुमावदार सड़कें और घनी हरियाली, आंखों को कहीं और देखने नहीं देती.

हम जहां चाय पी रहे थे, वह स्थान एक ऊंचे स्थान पर था. नीचे गहराई इतनी कि देखते ही कंपकपी आ जाए. डोरा ने बताया कि इस से भी कहीं अधिक ऊंचे और भयावह 'क्लिफ' देखने के लिए हम लोग चल रहे हैं.

इंवरनेस पहुंचे. दिन के एक बजे का समय था. देखा, हम दोनों के
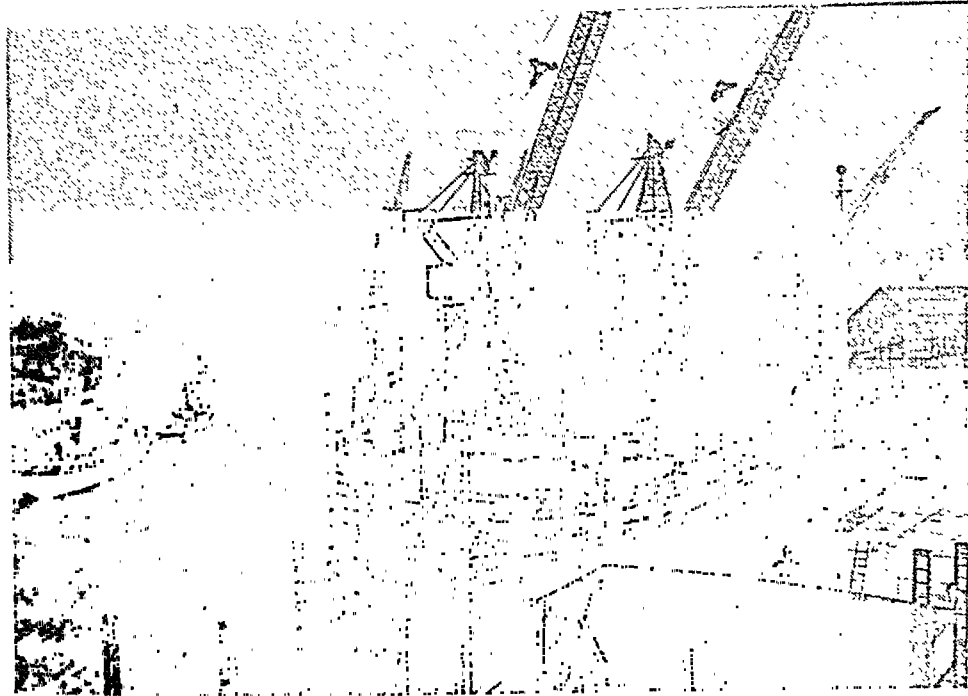
जहाजरानी उद्योग की प्रगति की झांकी प्रस्तुत करता हुआ, क्लाइड नदी के किनारे गोवन बंदरगाह

लिए निरामिष भोजन की व्यवस्था की गई है. मैं ने डोरा से उस की असुविधा की चर्चा की तो उस ने हंस कर कहा, "मेहमान जब निरामिष में रुचि रखे तो मेजबान को वही करना चाहिए. यों कभीकभी जायका बदलने के लिए भी यह जरूरी है."

मैं ने भी हंसते हुए तुरंत कहा, "वर्ष में छः महीने घूमता रहता हूं, सब जगह आप सरीखे मेजबान तो मिलते नहीं, खाना तो होटलों में ही पड़ता है. कोशिश रहती है कि निरामिष रहूं पर कहींकहीं अपवाद हो जाता है. आपने देखा, कल एडिनबरा में चर्बी में तले आलू खा लिए."

वेटर कहने पर भी बिल नहीं ला रहा था. मैं ने कारण जानना चाहा. डोरा ने बताया कि स्मिथ चूंकि डाइनर्स क्लब का सदस्य है इसलिए बिल क्लब की मारफत बाद में भेज दिया जायगा.

इंवरनेस तीस हजार की आबादी वाला पुराना शहर है. समुद्र से थोड़ा हट कर मोरे नदी के किनारे बसा हुआ है पर बड़ेबड़े जहाज यहां साल भर आया करते हैं. ऊनी कपड़े, मशीनें, लोहे का सामान और जहाज बनाने के कारखाने भी यहां हैं. कलकत्ता की जूट मिलों के केलेडोनियन, चिवियट और फोर्ट विलियम आदि परिचित नाम यहां सुनने में आए. हमारे यहां की मिलों के नाम हिंद, बंगाल या कलकत्ता पर नहीं दे कर विदेशी नामकरण करना उचित तो नहीं था पर गुलामी हमारी थी और राज्य इन का, इसलिए इन की मरजी को कौन चुनौती देता!

स्थानीय बाजार और नदी किनारे का चक्कर लगा कर हम आगे जाने की तैयारी करने लगे. जेनी ने कहा, "यहां से लगभग एक मील पर नेस नाम का एक छोटा सा द्वीप है. वहां के मनोरम प्राकृतिक दृश्यों को देख कर मनुष्य अपनी

सारी परेशानियां भूल जाता हूं. मधुयामिनी मनाने के लिए यहां सैकड़ों जोड़े आया करते हैं. क्या आप वहां जाना पसंद करेंगे?"

हंसते हुए मैं ने उत्तर दिया, "रोबी के विदेश से आ जाने के बाद तुम उस स्थान को अपने लिए सुरक्षित रखो. जब मेरी शादी हुई, उस समय तक न तो हमारे यहां मधुयामिनी की प्रथा चली थी और न इस की सुविधा ही थी. वैसे इस के लिए हमारे यहां भी एक से एक रमणीक स्थल हैं."

करीब पांच बजे हम इंवरनेस से सिलमेन के लिए रवाना हुए. यह स्काटलैंड के सब से उत्तरी छोर पर है. रास्ता बीहड़ और सुनसान होता जा रहा था. शाम होने के कारण हवा में ठंडक आ गई थी. डोरा और जेनी बीचबीच में थोड़ी सी व्हिस्की ले कर आदत के अनुसार शरीर को गरम रखने की कोशिश कर रही थीं. मुझ से भी उन्होंने बहुतेरा कहा पर मैं अलर्जी का बहाना बता कर टाल गया. पश्चिमी देशों में यदि कोई महिला साथ पीने या नाचने के लिए अनुरोध करे तो उसे धन्यवाद दे कर मंजूर कर लेने का रिवाज है. इनकार करने पर वे बुरा मान जाती हैं.

इंवरनेस से सिलमेन की दूरी लगभग सौ मील है. इस रास्ते में मैं ने जो दृश्य देखे उन्हें आज भी नहीं भूल पाया हूं. हमारे यहां नदियां पहाड़ों से निकलती हैं और समुद्र में गिरती हैं पर इन उत्तर यूरोपीय देशों में उलटी बात है. समुद्र से पानी रास्ता काट कर बड़े जोरों से भूभाग में सैकड़ों मील बढ़ जाता है. यहां इन्हें फियर्ड, फर्थ या लोच कहते हैं. पानी के कटाव से रास्ते में कच्ची चट्टानें टूट या कट जाती हैं, पक्के पत्थर बच जाते हैं. इस प्रकार फर्थ या फियर्ड के दोनों ओर के पहाड़ ऊंची दीवार या कगार से बन जाते हैं जिन्हें यहां क्लिफ कहते हैं. ऐसे दृश्य हमारे यहां देखने को नहीं मिलते. सैकड़ों फीट नीचे सागर का जल धरती की गोद में लोटने के लिए बढ़ता जाता है. किनारों पर के ऊंचे कगारों से देखने पर रोमांच हो आता है.

एक जगह देखा, शायद एक हजार फीट से भी ऊंचा क्लिफ होगा. वहां खूंटी गाड़ कर रस्से के सहारे कुछ युवक उतर रहे थे. जरा भी पैर फिसला कि मृत्यु निश्चित. दोनों ओर की पहाड़ियों पर एक मजबूत मोटा रस्सा बांध रखा था. वे लोग इस के सहारे लटकते हुए पार जा रहे थे. मैं सोच रहा था कि खेल या कौतुक जरूर है पर है बड़ा दुस्साहसिक. डोरा से पूछा, "आखिर अकारण इस तरह का खतरा मोल लेने से क्या लाभ? कहीं चक्कर आ गया, मामूली चूक हो गई तो हजारों फीट नीचे गहरे पानी में गिर कर मौत की लपेट में आ जाना निश्चित है."

डोरा का जवाब था, "अगर आप ही की बात मान ली जाए तो फिर न तो उत्तरी ध्रुव में स्काट जाता और न तेनसिंह और हिलेरी ही एवरेस्ट पर चढ़ते."

सिलमेन पहुंचे तो रात के नौ बज गए थे. हलकी वर्षा हो रही थी. सर्द हवा कंपा देने वाली थी. जोरों से 'सांयसांय' की आवाज आ रही थी मानो कोई अजगर फुफकार रहा हो.

होटल की बुकिंग पहले से करा रखी थी. इसलिए कार से उतरते ही दौड़ कर भीतर चले गए. ताप नियंत्रित हाल में पहुंच कर बड़ी राहत मिली. रास्ते

भर कुछ न कुछ खाते हुए आए थे. पर इन उत्तरी ठंडे देशों में भूख जोरों की लगती है. ओट्स का दलिया, क्रीम मिला दूध और कई तरह की मिठाइयां परोसी गईं. भोजन कर के उठे, तब दस बजे थे.

डोरा ने अनुरोध किया, "बाहर निकल कर जरा प्रकृति के दृश्य देखे जाएं. इस ढंग की हवा और मौसम उत्तरी अंचल की अपनी विशेषता है, इस का अनुभव आप को जरूर कर लेना चाहिए."

उस झंझावात में बाहर जाने का मन तो कतई नहीं था. मगर डोरा के अनुनयविनय को टाल न सका. मतवाले हाथी की तरह वेग से चलते प्रभंजन की चाल देखने हम निकल पड़े.

इस अंचल में अमरीका तथा अन्य यूरोपीय देशों से यात्री काफी संख्या में आया करते हैं. इसलिए रात के एकडेढ़ बजे नाचगाने, ताश और तरह तरह के खेल होते रहते हैं. पर्वतीय स्काटलैंड का जीवन बहुत ही अबाध रहा है. जलवायु और प्रकृति ने यहां के लोगों को सदियों से कष्टसहिष्णु और परिश्रमी बनाया है. इसी लिए उन्मुक्त जीवन और अबाध गति इन के स्वभाव की विशेषता है.

नाच और गाने का समां बंधा था. लोक नृत्य की ताल पर सभी मस्त थे. सब ने पी रखी थी, इतनी कि मतवाले से हो रहे थे. फिर भी देखा, अभद्रता और अशिष्टता कहीं भी नहीं है. डोरा और जेनी, दोनों ने मुझे नाच में साथ देने के लिए कहा. भला मैं उस हाइलैंडरी उछलकूद में कहां साथ देता! थकावट आदि का बहाना बना कर टालमटोल कर ही रहा था कि उन्हें दो साथी खींच ले गए. दोनों खूब नाचीं. अच्छी लग रही थीं. नाचतेनाचते जब थक जातीं तो आ कर दो घूंट गले के नीचे उतार लेतीं.

डेढ़ बज रहे थे. मैं ने उन्हें इशारे से बुला कर कहा कि कल हमें २०० मील का सफर करना है, अब सोना चाहिए. दोनों मुसकराने लगीं और नाच के गोल से निकल आईं.

उस दिन की याद आज भी आ जाती है. शरत बाबू के 'शेष प्रश्न' के कमल की उक्ति भी इस तरह की है कि जीवन के कुछ क्षणों में सुख का भी यथेष्ट मूल्य है.

दूसरे दिन वापस डंडी के लिए रवाना हुए. रास्ते भर दोनों ज्योतिष, दर्शन, साहित्य, भारतीय स्त्रियों, वैवाहिक जीवन आदि पर तरहतरह के प्रश्न करती रहीं. शाम को डंडी पहुंच गए. स्मिथ राह देख रहा था. इन लोगों ने इस ढंग की यात्रा न जाने कितनी बार की होगी, फिर भी मुझे खुश करने के लिए कहने लगीं कि इस बार की तरह आनंद शायद ही कभी मिला हो. हमारी बातचीत स्मिथ को सुनाने लगीं. स्मिथ कह रहा था, "साथ न जा सका." अतिथि सत्कार की यह मधुरता बरबस स्नेह में बांध देती है.

अगले दिन सुबह उन सब को भारत आने का निमंत्रण दे कर लंदन के लिए रवाना हो गया. स्टेशन पर स्मिथ, डोरा और जेन के अलावा और कई परिचित आए थे. ट्रेन बहुत दूर निकल गई. तब भी दूर, बहुत दूर डोरा और जेनी के हिलते हुए रूमाल स्नेह बिखेर रहे थे.

पेरिस में एक रात

राजनीति, शासक बदलते रहे, लेकिन पेरिस की परियां?

लंदन से पेरिस वायुयान द्वारा सिर्फ घंटे भर का सफर है. दृष्टि खिड़की से बाहर थी. कहींकहीं रूई जैसे बादलों के ढेर दिखलाई पड़ रहे थे. लेकिन मन की दृष्टि पेरिस पर थी.

पेरिस! फ्रांस की राजधानी! फ्रांस! वह देश जो आधुनिक पाश्चात्य विचार-धारा का प्रवर्त्तक है. वाल्तेयर, विक्टर ह्यूगो, अनातोले फ्रांस, रोमांरोलां और बाल्जाक का देश फ्रांस! पश्चिम को समता, बंधुत्व और स्वाधीनता का पाठ पढ़ा कर साहित्य, संस्कृति और राजनीति को एक नई दिशा देने वाला फ्रांस! और पेरिस! फ्रांसीसी लोग उसे 'पारी' कहते हैं लेकिन पारी नहीं, वह परी है—सजीली, छबीली, चिरयौवना! सीन नदी के दर्पण में वह अपना सौंदर्य देखती है, मुसकराती है और इठलाती है. राजनीति बदलती रही, सत्ता हस्तांतरित होती रही, पर परी मुसकराती ही रही.

सोचने लगा, 'रोम और एथेंस के वैभव-काल को विजित न कर सका, लेकिन पेरिस? इस को तो निराली ही जन्मघुट्टी मिली है. तीनतीन बार जर्मन तोपें गरजीं, इस के सीने से टकराईं, पर इस की मुसकान बंद न कर सकीं. यह हंसती ही रही और आज भी हंस रही है, इठला रही है.'

पेरिस की मीनारें दिखलाई देने लगीं. वायुयान की परिचारिका की आवाज आई, "हम पेरिस पहुंच रहे हैं." और कुछ ही क्षणों में वायुयान पंख तोलता हुआ पेरिस की धरती चूमने लगा. कौतूहल बल्लियों उछल रहा था. वायुयान एक हलकी सी उछाल के बाद स्थिर हो गया.

सीढ़ियों से उतरने लगा. शाम की ठंडी हवा के एक झोंके ने कहा, 'यह पेरिस है! कदम जरा संभाल कर रखना.'

पूर्वनिश्चित होटल में पहुंच कर यात्रा की क्लांति दूर की. इस यात्रा में मेरे पास पेरिस घूमने के लिए समय कम था. लंदन में ही तय हो गया था कि सब से पहले पेरिस की रात देखी जाए. भोजन आदि से निवृत हो कर घूमने निकला. चौड़ी सड़कें, दोनों ओर वृक्षों की कतारों के पीछे बादलों को छेड़ती हुई मीनारें, गुंबदों की चोटियां बिजली के प्रकाश में मानो परी की सजधज से आंखें चौंधिया रही थीं. स्त्रीपुरुष मौज में चले जा रहे थे. दुकानें तो मानो सजी हुई प्रदर्शनी ही हों. चीजें इस कदर आकर्षक ढंग से सजी थीं कि आंखें देखती ही रह जातीं.

द्वारपाल सामंत युग के प्रहरी से लगते थे. भड़कीली पोशाकें, ऊंचे कालर, उठी हुई गरदनें और तना सीना, कोई ताज्जुब नहीं यदि इन दुकानों से गुजरते हुए आदमी को अपनी उम्दा से उम्दा पोशाक में भी कुछ नुक्स दिखलाई पड़ जाए. 'साए लेजां' नाम की विश्वविख्यात सड़क की दुकानों को देखता हुआ आगे बढ़ रहा था. संसार की सब से प्रसिद्ध दुकानें और सब से चतुर तथा व्यवहारकुशल दुकानदार यहीं देखने में आते हैं.

रात के दस बज रहे थे. पर पेरिस की शाम की अभी शुरुआत ही हुई थी. पेरिस की शाम मशहूर है. जहां कहीं जाओ मौज के सभी साधन मौजूद हैं. कानून की मानो कोई पाबंदी नहीं. आपेरा, थियेटर, सिनेमा तो सभी शहरों में हैं. लेकिन 'रात्रि क्लब' और 'कैसेनो' इस इंद्रपुरी की अपनी विशेषताएं हैं. ऐसे क्लबों की संख्या काफी है. आप की जेब भारी होनी चाहिए, फिर जैसी इच्छा हो वैसा क्लब चुन लीजिए. रात हंसतेखेलते, आमोदप्रमोद में गुजर जाएगी.

मैं इसी तरह का एक रात्रि क्लब देखने जा रहा था कि अचानक किसी ने पीछे से आ कर पूछा, "महाशय, कैसा लगा पेरिस?"

"अभी तो देख रहा हूं," मैं ने उत्तर दिया.

उस ने तुरंत हीकहा, "क्या आप पेरिस की कलात्मक चीजें भी देखना पसंद करेंगे?"

"अवश्य, लेकिन, मुझे जोरों की प्यास लगी है."

उस भले आदमी ने एक भेदभरी मुसकान के साथ मेरी ओर देखा और पास ही के रेस्तरां में ले गया. मुझ से पूछा, "कौन सी शराब पसंद करेंगे?"

मैं ने उसे बताया, "मैं शराब नहीं पीता, अलबत्ता दूध या चाय पी लूंगा."

पेरिस के उस देवदूत ने बड़े तपाक से मेरे लिए दूध का आदेश देते हुए अपने लिए शराब की फरमाइश कर दी. कहना नहीं होगा कि मुझे ही दोनों का बिल चुका कर अपनी जेब कुछ हलकी करनी पड़ी. शराब पीते हुए, उस ने अपनी जेब से कई तरह की अश्लील तसवीरों का एक लिफाफा निकाला. लेकिन मेरी बेरुखी देख कर बेचारा चुप रह गया. पर उस ने हिम्मत नहीं हारी. कहने लगा, "महाशय, पेरिस है और जीवन है. दुनिया के किसी भी कोने के आनंद प्राप्ति के दुर्लभ साधन भी यहां मनुष्य को सहज प्राप्त हैं. लोग पेरिस आते ही इसी लिए हैं. यहां मनुष्य तो क्या, पत्थर की प्रतिमाएं भी बोलती हैं."

इसी दौरान उस लिफाफे से एक मस्ती भरी नवयौवना की तसवीर निकाल कर दिखाते हुए वह कहने लगा, "इसे देखिए. यह मेरी भतीजी है. इस का भारत तथा उस के निवासियों के प्रति बड़ा रुझान है. बहुत अच्छा रहे कि जब तक आप पेरिस में हैं, इस के साथ कुछ समय बिताएं."

परंतु मैं पेरिस के ऐसे बिना पहचाने हुए मित्रों से पहले से ही सावधान था, इसी लिए, मोशिए को धन्यवाद देता हुआ रात्रि क्लब के लिए आगे बढ़ गया.

पेरिस के रात्रि क्लबों में लोग लुकछिप कर नहीं जाते. एक ही क्लब में भाईबहन, पितापुत्र और मांबेटी निस्संकोच भाव से पीते या नाचते हुए मिल जाते हैं. वहां बड़ेबड़े राजनीतिज्ञों, कलाकारों, लेखकों और विचारकों को देख कर भी आप को आश्चर्य नहीं होना चाहिए. पतिपत्नी को भी आप वहां पाएंगे, लेकिन अलग-

यहां जिंदगी में प्यार ही प्यार है, इसी का नाम जिंदादिली है

अलग जोड़ों में नाचते हुए.

मध्यम स्तर के एक क्लब के फाटक पर पहुंचा. सुसज्जित द्वारपाल वरदी पहने खड़ा था. मुझे देख कर, उस ने बड़े अदब के साथ दरवाजा खोला और जरा झुका. मैं अंदर चला गया. पास ही काउंटर पर बैठी एक षोडशी ने मदभरी मुसकान के साथ ओवरकोट और टोपी रख देने के लिए कहा. ओवरकोट की जरूरत थी भी नहीं. कारण, बाहर जैसी सर्दी अंदर न थी. इमारत ताप नियंत्रित थी.

क्लब का प्रवेश शुल्क भारतीय मुद्रा के हिसाब से सोलह रुपए चुका कर ऊपर हाल में गया. फर्श पर मोटे रोएंदार नरम गलीचे. छतों से लटकती हुई वेनिस के कीमती बिल्लोरी शीशों की बड़ीबड़ी फानूसें तथा दीवारों पर कीमती चित्रों और आदमकद आईनों वाला हाल ऐसा लगता था मानो मध्य युग का कोई भव्य राजप्रासाद हो. फर्क केवल इतना ही था कि जहां उस समय के राजप्रासादों में केवल एक ही देश के लोग दिखलाई पड़ सकते थे, वहां बीसवीं सदी के इस राजप्रासाद में विभिन्न देशों के लोग आनंद ले रहे थे.

सामने से एक वेटर आया. उस ने झुक कर सलाम करने के बाद एक खाली कुरसी की ओर बैठने का संकेत किया. मेरे मस्तिष्क में नाना प्रकार के प्रश्न चक्कर काट रहे थे. रात का सूर्य देखा लेपलैंड में, नंदन कानन की छटा देखी स्विट्जरलैंड में और अब साक्षात इंद्र का दरबार देख रहा हूं पेरिस में. सब के सामने टेबल पर मदिरा के अधभरे प्याले थे और आंखों में थी खुमारी, मानो सारा वातावरण ही मदिरामय हो. सामने ही एक बड़ा मंच था जिस पर संगीत की हर तान पर पूर्ण और अर्धनग्न युवतियां थिरकती हुई नाच रही थीं. लखनऊ

नृत्य और प्यार चलता रहा, नजर वहकती रही . . .

के अंतिम नवाव वाजिदअली शाह की विलासिता का हाल पढ़ा था. वह इंद्रसभा रचाता था. पर जो मैं यहां देख रहा हूं, इस के सामने वह इंद्रसभा एक खिलवाड़ ही रही होगी!

विचारों में गोते लगा रहा था कि दो सुंदरियां वगल में आ वैठीं, ऐसे निस्संकोच भाव से जैसे मेरी और उन की वर्षों पुरानी जानपहचान रही हो. वेटर ने भी वड़े तपाक से शरावों की एक लंवी फेहरिस्त पेश की. ऊपर से नीचे तक कई तरह की शरावों के नाम और दाम लिखे हुए थे. कीमत वाजार से छः गुना अधिक थी.

जव मैं ने वेटर से कहा कि मैं शराव नहीं पीता तो उस ने वड़े आश्चर्य से मुझे देखा और तुरंत ही हेडवेटर को वुला लाया.

उस ने वड़े ही नम्र भाव से कहा, "कोई वात नहीं. सुरा न सही, सुंदरियां तो हैं. सुरापान वे करेंगी, मनोरंजन आप का होगा."

लेकिन इस वात पर भी मेरे राजी न होने पर उस ने अपने निचले होंठ को जरा विचका कर दोनों कंधों को ऊपर की ओर सिकोड़ लिया. फिर उसी संकोच और विनम्रता के साथ कहा, "महाशय, सुरापान न करने वालों के लिए वह सामने की गैलरी है जहां से खड़े हो कर नाच देखा जा सकता है." पंच मकार के भैरवी चक्र से वचे रहने के लिए मैं ने गैलरी में खड़े रहने में ही अपनी और अपने वटुए की भलाई समझी.

प्रायः घंटे भर गैलरी में रहा. एक लैमनेड पिया. दाम चुकाए दस रुपए. यहां से सारे हाल की रंगरेलियों का दृश्य वखूवी देखा जा सकता था. सभी यौवन

पेरिस की हसीन रात जिसकी रंगीनियों में दिल मचल उठते हैं

और मदिरा के नशे में झूमते हुए आनंद ले रहे थे. सभी जिंदगी के इस पार की ही फिक्र में थे. उस पार की बात सोचने की फुरसत भला किसे थी!

चित्त एकाएक ऊब गया और होटल की ओर लौट पड़ा. मध्य रात्रि का

काश, यह घड़ी सदियों बनी रहे

समय था. सड़कों पर भीड़ नहीं थी, पर लोग चलफिर रहे थे. रास्ते में भी कई महिलाओं ने अभिवादन किया. क्यों? मन में आया कि यह प्रश्न पूछें, पर फ्रेंच नहीं जानता था. मैं ने एक स्त्री को तो अंगरेजी में जवाब भी दिया. "मेरे पास पैसे नहीं हैं, आप को निराशा होगी."

उस का जवाब था. "कितने हैं?"

मैं तेजी से कदम बढ़ाता हुआ आगे निकल गया.

होटल पहुंच कर कपड़े बदले और बिस्तर पर लेट गया. बड़ी शांति अनुभव की. इतने अल्प समय में परियों के पेरिस का जो दृश्य सामने आया, उस ने मस्तिष्क को सोचने के लिए काफी सामग्री दी. यही वह नगरी पेरिस है जहां सऊदी अरब के अमीर और ईरान के पाशा तेल की रायल्टी से प्राप्त धन को पानी की तरह बहाने के लिए आते रहते हैं! अपने देश की बातें याद आ गईं. राजमहाराजे, रईस और जमींदार भी कभी इस पेरिस में गरीब प्रजा की गाढ़ी कमाई को दोनों हाथ लुटाते थे. कभीकभी तो पेरिस के किसी विख्यात क्लब में एक ही रात्रि का उन का बिल लाखों रुपए तक पहुंच जाता था.

यही कारण है कि आज भी भारतीयों के पीछे पेरिस की सुंदरियां दौड़ती रहती हैं. उन बेचारियों को क्या मालूम कि अब न वे राजेमहाराजे रहे और न रजवाड़े. सामंतशाही के अवसान से नरेशों को तो खेद हुआ ही पर यहां की परियों और दुकानदारों को भी कम दुख न हुआ होगा.

पेरिस

कला और संस्कृति का केंद्र

रात्रि क्लबों का माहौल पेरिस का इकतरफा पहलू है. फ्रांस और पेरिस को केवल ऐय्याशी, मौज और शौक की जगह समझना भारी भूल होगी.

पेरिस में दूसरा दिन. तड़के ही उठा. नाश्तापानी किया. आज पेरिस का एक और रूप देखना था. यह नगरी सिर्फ परी ही नहीं है बल्कि फ्रांसीसी संस्कृति, सभ्यता और चेतना का उद्गम है. आज उस पेरिस को देखना था जिस ने बड़ेबड़े विचारक, कलाकार, लेखक और शिल्पी पैदा किए हैं, जिस के विश्वविद्यालय में दीक्षित होने वाले आज भी हजारों विद्यार्थी विदेशों से आते रहते हैं, जिस ने नेपोलियन और फॉस जैसे वीर, जोन ऑफ आर्क जैसी वीरांगना, राब्सपिअर जैसे राजनीतिज्ञ संसार को दिए हैं.

इस उद्देश्य से टामस कुक की पैसेंजर बस का एक टिकट २५ रुपए में लिया. इस में सब से बड़ी सुविधा यह थी कि अंगरेजी में सब बातें समझने वाला एक गाइड भी साथ था. इस बस में चालीसपचास यात्री आराम से बैठ सकते हैं. सुबह नौ से बारह बजे दोपहर तक, और फिर दो से छः बजे शाम तक बस पेरिस के मुख्यमुख्य दर्शनीय स्थानों को दिखा देती है. इस में स्थानों को अपनी इच्छानुसार देखने का सिलसिला तो नहीं बन पाता और न किसी स्थान विशेष को अधिक समय तक देखने का अवसर ही मिल पाता है, फिर भी बहुत कम खर्च में इतने सारे स्थान एक ही बार में देख लेने की बड़ी सहूलियत हो जाती है. इस के अलावा कई यात्रियों से परिचय लाभ का भी अच्छा अवसर मिल जाता है. हां, यदि किसी स्थान को विशेष रूप से देखने की इच्छा हो तो उसे दूसरी बार अलग से जा कर देखा जा सकता है.

सब से पहले इतोले पहुंचा. यहां से १२ सड़कें निकलती हैं. ठीक बीचोंबीच साएं लेजा का एक वृत्ताकार उद्यान है. इसी उद्यान के केन्द्र में विजय-तोरण है जिसे सम्राट नेपोलियन ने अपनी विजय के स्मारक स्वरूप बनवाया था. १६४ फीट ऊंचा फ्रांस का यह स्मारक अपने देश के गौरवमय इतिहास के उस पृष्ठ की याद दिलाता है जब साधारण परिवार में उत्पन्न होने वाले एक असाधारण वीर ने यूरोप के बड़ेबड़े सम्राटों का दर्प चूर कर दिया था. फ्रांस के लोग विलास-प्रिय हैं लेकिन वे तलवार के धनी भी हैं. वे अपने देश के लिए, भारत के राजपूतों की तरह, जान हथेली पर रख कर मृत्यु से खेलना भी जानते हैं. इस विजय-

दुनियां का प्रसिद्ध 'एफिल टावर'
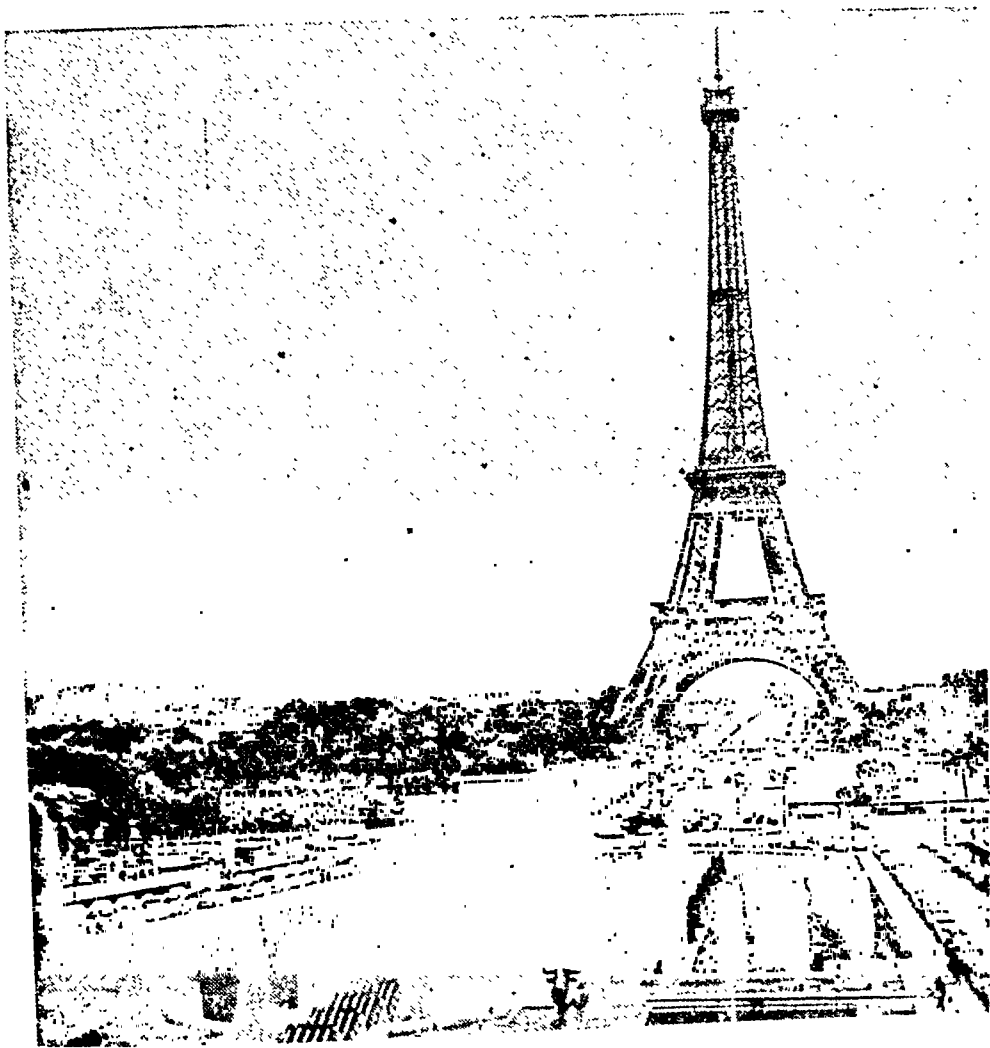
तोरण के चारों कोनों पर चमकीली धातु से बनी चार भव्य मूर्तियां हैं जिन में कलाकारों ने रण प्रयाण, विजय, शांति और प्रतिरोध की भावनाओं को अपनी कल्पना के अनुसार मूर्त रूप दिया है.

इन मूर्तियों की कारीगरी और कला को देख कर फ्रांस की १८वीं शती की कला का उत्कर्ष प्रत्यक्ष सामने आ जाता है.

संसार प्रसिद्ध साएं लेजाँ नाम की सड़क यहीं से निकलती है, जो संसार भर में अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध है. मैं ने यूरोप के प्रायः सभी देशों का भ्रमण किया है. ज्यूरिच, स्टाकहोम, कोपेनहेगन, हेग और ब्रूशेल्स आदि सुंदर से सुंदर शहरों को देखा, लेकिन इतनी सुंदर सुविस्तृत सड़क कहीं भी देखने में नहीं आई. बीच में सवारियों के लिए बहुत चौड़ा रास्ता, दोनों तरफ वृक्षों की कतारें, उस के बाद पैदल चलने वालों के लिए रास्ते, और फिर बड़ीबड़ी दुकानें, जिन में सुई से ले कर हीरेजवाहरात तक खरीदे जा सकते हैं. सड़क की सफाई और चमक तो इतनी ज्यादा है कि बहुत से विदेशियों को तो इस के रबर की बनी हुई होने का भ्रम हो जाता है. हमारे देश में तो यह मशहूर भी है कि पेरिस में रबड़ की सड़कें हैं.

फ्रांस के सौंदर्य का प्रतीक सीन नदी के किनारे बसा नात्रेदम

इस के बाद प्लेस द ला कंकर्ड देखा. फ्रेंच सम्राट लुई १५व ने इस स्मारक को अपनी विजय के उपलक्ष में बनवाया था. लेकिन इसी स्मारक के नीचे जनता ने उस के उत्तराधिकारी १६वें लुई की गरदन फरसे से काट दी थी. वास्तुशिल्प और कला की दृष्टि से निःसंदेह १५वें लुई का यह स्मारक संसार में एक विशिष्ट स्थान रखता है. मिस्र की विजय के बाद नेपोलियन वहां से ७५॥ फुट ऊंचा एक स्तंभ लाया था. २३० टन के पत्थर का यह स्तंभ अनुमानतः ३,३०० वर्ष पुराना है और इस पर प्राचीन मिस्री लिपि में कुछ लेख खुदे हुए हैं. इस स्तंभ को स्मारक के ऊपर खड़ा किया गया है.

इस के बाद हम विश्व का सब से विशाल और प्रशस्त राजप्रासाद देखने गए जिसे लूव्रे कहते हैं. इस का निर्माण १२०० ई. में प्रारंभ हुआ और १८७० ई. में यह बन कर तैयार हुआ था. इस के बनाने में लगभग ७०० वर्ष लगे थे. पहले यह एक किला था, बाद में फ्रांस के राजाओं ने इसे महल के रूप में परिवर्तित कर दिया. अब इस के एक भाग में फ्रांस का वित्तमंत्रालय है और शेष भागों में सात बड़ेबड़े संग्रहालय जिन में विश्व की बहुमूल्य कलात्मक वस्तुओं का संग्रह है. मोना लिसा का प्रख्यात चित्र मैं देखता ही रह गया. उस के मुख की रहस्यमयी मुसकान आज भी स्मृति में ताजा है. इस चित्र को बेचा जाए तो वाशिंगटन तथा ब्रिटिश म्यूजियम कई करोड़ रुपए तक दे सकते हैं.

फ्रांस के विभिन्न नरेशों के जवाहरात यहां देखे. राजाओं के पतन के कारण प्रायः सभी देशों में एक से ही रहे हैं—सत्ता का दुरुपयोग और विलासिता. हमारे यहां मुगल सम्राट और लखनऊ के नवाब भी इसी कारण गए लेकिन फ्रांस
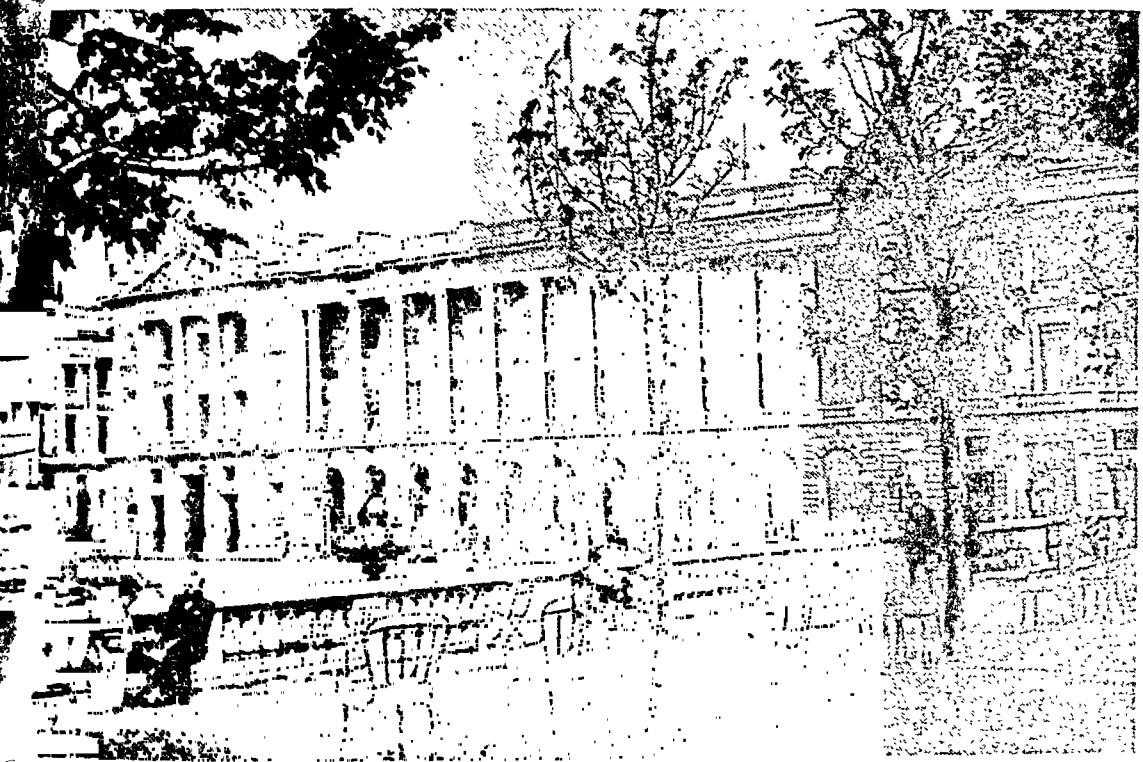
सम्राट लुई १५वें का बनवाया हुआ स्मारक प्लेस दला कंकर्ड

के राजाओं की अपेक्षा उन की किस्मत अच्छी रही क्योंकि जनता ने उन्हें केवल तख्त से ही ढकेला, फरसे से उन की गरदन नहीं उड़ाई.

लूव्रे के बाद विश्वविख्यात नात्रेदम का प्राचीन गिरजा देखने गया. छोटी सी पहाड़ी पर बना यह गिरजा दूर से भी प्रभावशाली लगता है. पेरिस के इतिहास में इसका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है. नेपोलियन का राज्याभिषेक इसी गिरजे में हुआ था. इस गिरजे की वेदी फ्रांस के अनेकों राजाओं और राजकुमारों के विवाहों की साक्षी है. नात्रेदम फ्रांस की सात्विक भावना का जीवित प्रतीक लगता है.

इस गिरजे की दीवारों पर माता मरियम, ईसा और अनेक संतों के चित्र अंकित हैं. खिड़कियों में रंगबिरंगे पारदर्शी शीशों के टुकड़ों से अत्यंत सुंदर चित्र बनाए गए हैं. यह यूरोप की एक अनूठी कला है, इस गिरजे में उस के बहुत सुंदर नमूने हैं.

नेपोलियन की कब्र देख कर उस की स्मृति ताजी हो उठी. फ्रांस का यह साधारण व्यक्ति अपने अदम्य उत्साह, साहस और वीरता से यूरोप की राजनीति का श्रेष्ठ नायक बन गया. उस ने फ्रांस की नालियों में लुढ़कते हुए राजमुकुट को तलवार की नोक से उठा कर, अपने सिर पर रख लिया.

एक समय ऐसा भी था जब इंगलैंड में माताएं अपने बच्चों को नेपोलियन के नाम से डरा कर सुलाती थीं, फिर एक जमाना ऐसा भी आया जब वह अंगरेजों का कैदी बन गया. अपने देश से बहुत दूर, सेंट हेलेना के निर्जन टापू पर कैद में उस की मृत्यु रहस्यमय ढंग से हुई. अपनी मृत्यु के पूर्व उस ने इच्छा प्रकट की थी,

पेरिस नाइट कल्बों के
अतिरिक्त, फैशन व
आर्ट में भी बहुत
प्रसिद्ध है.

बाएं: युवती मार्डेलिंग
की तैयारी में.

ऊपर: मार्डेलिंग
करते हुए कला के कुछ छात्र : दाएं पृष्ठ पर
माडल का चित्र बनाते हुए चित्रकार

'मेरी लाश सीन नदी के किनारे फ्रांसीसियों के बीच दफनाई जाए, जिन्हें मैं ने आजीवन प्यार किया है.'

यह स्पष्ट है कि नेपोलियन के विजय अभियानों से फ्रांस का गौरव बढ़ा था. उस के प्रताप के आगे सारा यूरोप झुक गया था. फ्रांसीसियों ने अपने इस राष्ट्रीय वीर की कब्र को जी भर कर सजाया है और इस के प्रति श्रद्धा और स्नेह प्रदर्शित किया है. जिस जगह नेपोलियन की कब्र है वहां एक बड़ा संग्रहालय भी है. प्रसिद्ध बादशाह लुई १४वें ने घायल सिपाहियों के रहने के लिए इसे बनवाया था. इसी कारण इस का नाम 'घायलों का स्थान' है. यहीं 'चर्च आफ इनवालिद्स' है जिस के गुंबद में सोने के ३,५०,००० पत्र लगे हैं.

दिल्ली की कुतुबमीनार, कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल, लंदन का टावर आफ लंदन, रोम का सेंट पीटर का गिरजा, जिस तरह अपनेअपने नगर के प्रतीक हो गए हैं, उसी तरह पेरिस का प्रतीक है—एफिल टावर. १५,००० टन लोहे की मीनार के इस ढांचे को खड़ा करने में दो वर्ष का समय लगा था. इस की ऊंचाई ९८४ फुट है. इस पर चढ़ कर सारा पेरिस बखूबी देखा जा सकता है.

लिफ्ट से ऊपर चढ़ा. ऊपर एक छोटा सा रेस्तरां है. ऊपर से देखने पर पेरिस खिलौने सी लगी. पिछले महायुद्ध में विजेता जर्मनों ने इस के लोहे को युद्ध के कार्यों में लगाने की बात एक बार सोची थी लेकिन आने वाली पीढ़ियां उन का
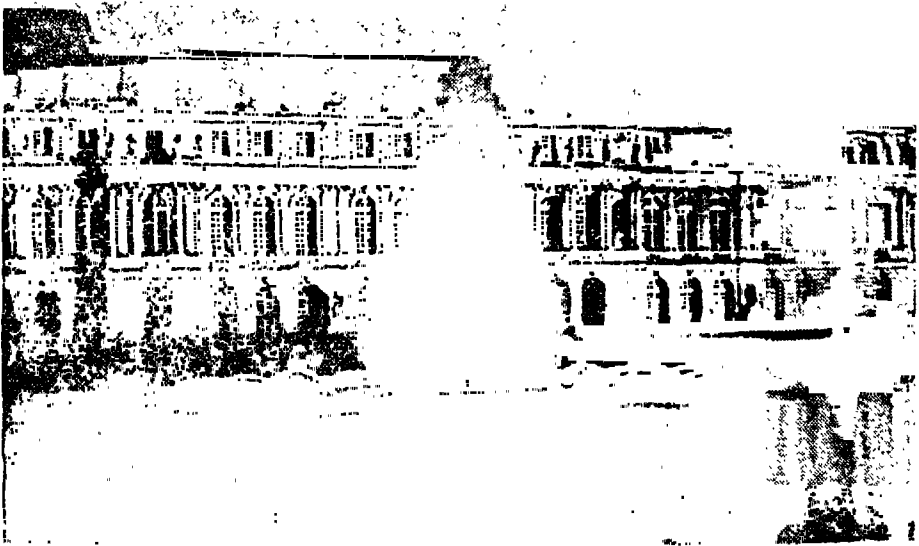
अपने ढंग का अकेला वरसाई का प्रसिद्ध राजमहल

नाम किस प्रकार स्मरण करेंगी, यह सोच कर उन्होंने अपना विचार त्याग दिया था.

जैसे लंदन का केंद्रस्थल पिकाडली सर्कस है, इसी तरह पेरिस के सामाजिक जीवन का केंद्र ओपेरा है. यहां कई तरफ से प्रधान सड़कें आ कर मिलती हैं. बीचोंबीच में विश्वविख्यात ओपेरा है. यह संसार का सब से बड़ा थियेटर है, जिस को बनाने में उस समय भी ढाई करोड़ रुपए लगे थे.

इस के साथ ही कलाकारों की ज्ञानवृद्धि के लिए एक उत्तम संग्रहालय भी है, जिस में नाट्यशाला संबंधी चालीस हजार पुस्तकें और साठ हजार चित्र हैं. संपूर्ण भवन संगमरमर से बना है. इस में २,२०० आदमियों के बैठने की जगह है. विश्व के बड़े से बड़े कलाकार की भी यह इच्छा रहती है कि उसे इस के रंगमंच पर एक बार अभिनय करने का अवसर प्राप्त हो.

वरसाई पेरिस से बारह मील दूर है. इतिहास ने यहां कई करवटें बदली हैं. यहां का राजमहल संसार के प्रसिद्ध राजमहलों में से एक है, वल्कि यों कहिए कि यह अपने ढंग का निराला ही है. लुई १३वें ने इसे सन १६२९ ई. में बनवाना प्रारंभ किया था. इस के बाद उस के जितने भी उत्तराधिकारी हुए, सभी ने इस के निर्माण में अरबों रुपए लगाए. लाखों लोगों से बेगार ली गई.

राजप्रासाद तैयार हुआ. फ्रांस का सरकारी केंद्र पेरिस से हट कर वरसाई के महलों में आ गया जिस में राजकाज के उत्तरदायी दस हजार अमीर-उमरावों के रहने की व्यवस्था थी. उस समय वरसाई के राजप्रासाद के उद्यान विश्व में अपनी सुंदरता का सानी नहीं रखते थे. इन की हरियाली कायम रखने के लिए सीन नदी से नहर लाने में करोड़ों रुपए खर्च हो गए थे.

इस महल के पश्चिमी भाग की लंबाई १,८०० फुट है. ३७५ खिड़कियां महल के कक्षों को सूर्य के प्रकाश से आलोकित करने के लिए वनाई गई हैं. महल में देखने लायक जगह है—लुई १४वें का शयनागार और उस से लगा
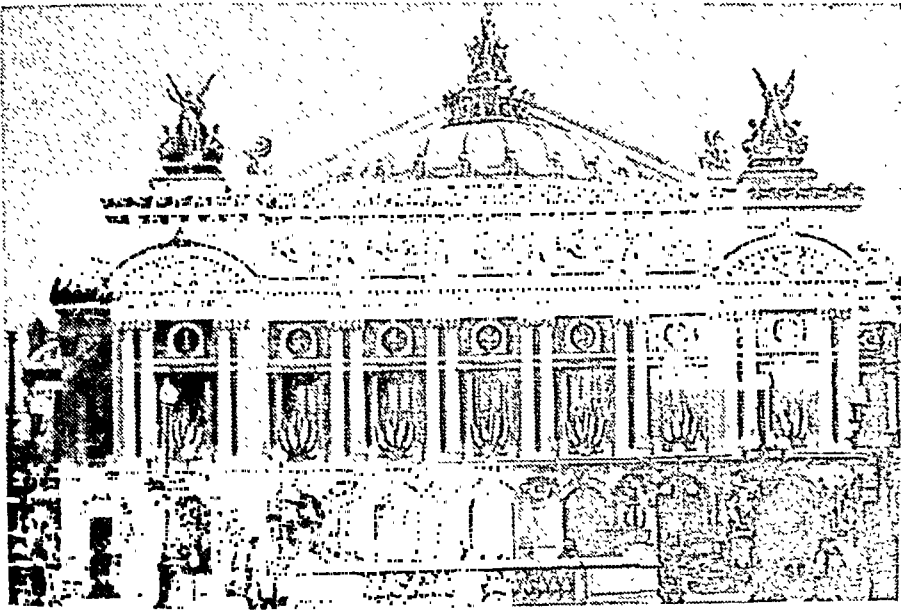
पेरिस के सामाजिक जीवन का केंद्र ओपेरा हाउस

हुआ शीशमहल.

यह सम्राट लुई १६वें की प्रियतमा महारानी मेरी अंतोनिता का नृत्यकक्ष था. संसार के इतिहास में इस की बहुत चर्चा हुई है. शीशमहल सचमुच अपूर्व कल्पना और रुचि का द्योतक है. बहुमूल्य शीशों के झाड़ टंगे हैं, बिल्लौरी कटाई के अगणित शीशे कमरों की दीवारों में ऊपर से नीचे तक जड़े हुए हैं. जहां प्रकाश की एक ही किरण लाखों में बदल जाए, वहां रोशनी जलाने पर कैसी अपूर्व छटा होती होगी, इस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. इस को देख कर यही अनुभव होता है कि लुई १६वें और मेरी अंतोनिता ने वैभव, विलासिता और ऐश्वर्य की हद पार कर दी थी. तभी तो नंगीभूखी प्रजा ने उन को महलों से बाहर निकाल कर पेरिस की सड़कों पर खड़ा कर, उन के सिर धड़ से अलग कर दिए थे.

कलकत्ते में जैसे चाइना टाउन, बनारस में ठठेरी बाजार और दिल्ली में दरीबा के आसपास की गलियां हैं, पेरिस में इसी से मिलताजुलता है लेतिन क्वार्टर. यहां पर आज से १,७०० वर्ष पहले रोमन विजेता रहते थे. उस के बाद पेरिस का रूप बदलता गया. लेकिन यह जगह आज भी उसी रूप में है. रूस के महान शासक लेनिन ने यहां की छोटीछोटी चाय की दुकानों में बैठ कर अपने निष्कासन के दिन बिताए थे. उस ने यहीं पर रूसी क्रांति की योजना तैयार की थी. पेरिस के वैभव के साथसाथ इस को भी देखना जरूरी है.

पेरिस कई सदियों से शिक्षा का केंद्र रहा है और आज भी यहां दुनिया के हर कोने से हजारों की संख्या में विद्यार्थी आ कर शिक्षा ग्रहण करते हैं.

वैसे तो इस इंद्रपुरी में जितना भी खर्च किया जाए, कम है, लेकिन साधारण ढंग से एक व्यक्ति का निवास और भोजनादि का खर्च चालीस-पैंतालीस रुपए प्रति दिन पड़ जाता है.
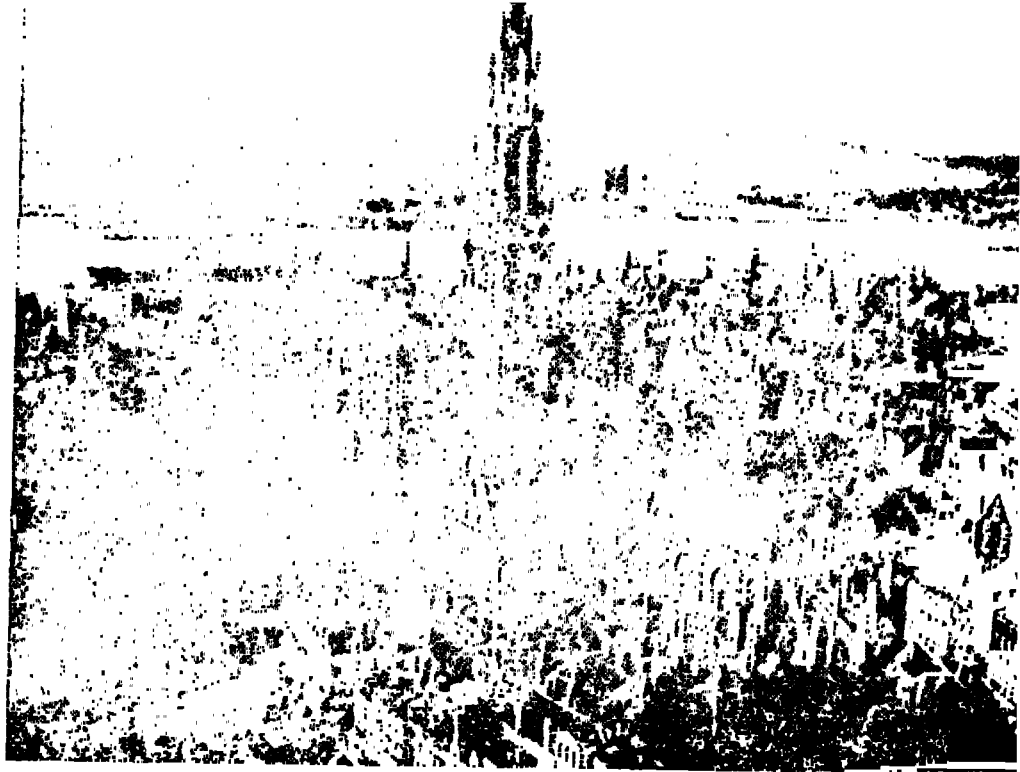
योरुप के अन्य देशों के मुकाबले कें गिरजे यहाँ भी हैं

कितनी गंदगी और बेसब्री का वातावरण रहता है उन में!

जहाज के डेक पर आ कर रेलिंग के सहारे खड़ा हो गया. यूरोप का किनारा दिखाई देने लगा. मछली पकड़ने की आधुनिक नावें भी समुद्र में दिखाई पड़ीं. पास के लाइट हाउसों के पीछे से गिरजों की ऊंची मीनारें बहुत अच्छी लग रही थीं.

लगभग ढाई बजे जहाज ऑस्टेंड बंदरगाह पर पहुंचा. बेलजियम का यह तीसरा प्रमुख बंदरगाह है. युद्ध के बाद इसकी और भी उन्नति हुई है. यहां से ब्रुशेल्स, कोलोन, और बर्लिन को सीधी ट्रेनें जाती हैं. ब्रुजे और घेंट तक नहरें भी गई हैं, जिन से माल के परिवहन में सुविधा रहती है.

यहां का मछली का व्यवसाय अच्छा बढ़ाचढ़ा है. पता चला कि बेलजियम में मत्स्य उद्योग का यह केंद्र माना जाता है. शहर घूम कर देखा, अच्छा लगा. बंदरगाहों में आम तौर से गंदगी रहती है पर यहां वैसा वातावरण नहीं था. यहां का समुद्रतट सुंदर और मनोरम है. इस लिए बेलजियम के अलावा यूरोप के अन्य भागों से भी लोग यहां छुट्टियां मनाने आते हैं. शहर में मत्स्य उद्योग प्रक्षिशण केंद्र तथा नौविद्यालय देखा. इन उद्योगों के कारण ऑस्टेंड की शोभा बढ़ गई है. यहां का अधिकांश व्यापार इंगलैंड से होता है, अतएव, अंगरेजी समझने वाले मिल जाते हैं.

यहां से बेलजियम के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर ब्रुजे गया. ब्रुजे का अर्थ फ्लेमिश में होता है—पुल अथवा वह स्थान जहां पुल हों. यह नहरों का नगर है. यहां सड़कों की तरह नहरें हैं. इन पर ८२ पुल हैं. शायद इसी लिए इस का नाम ब्रुजे पड़ा. मध्य युग में यह उत्तर यूरोप का पेरिस था. आज से पांच सौ वर्ष
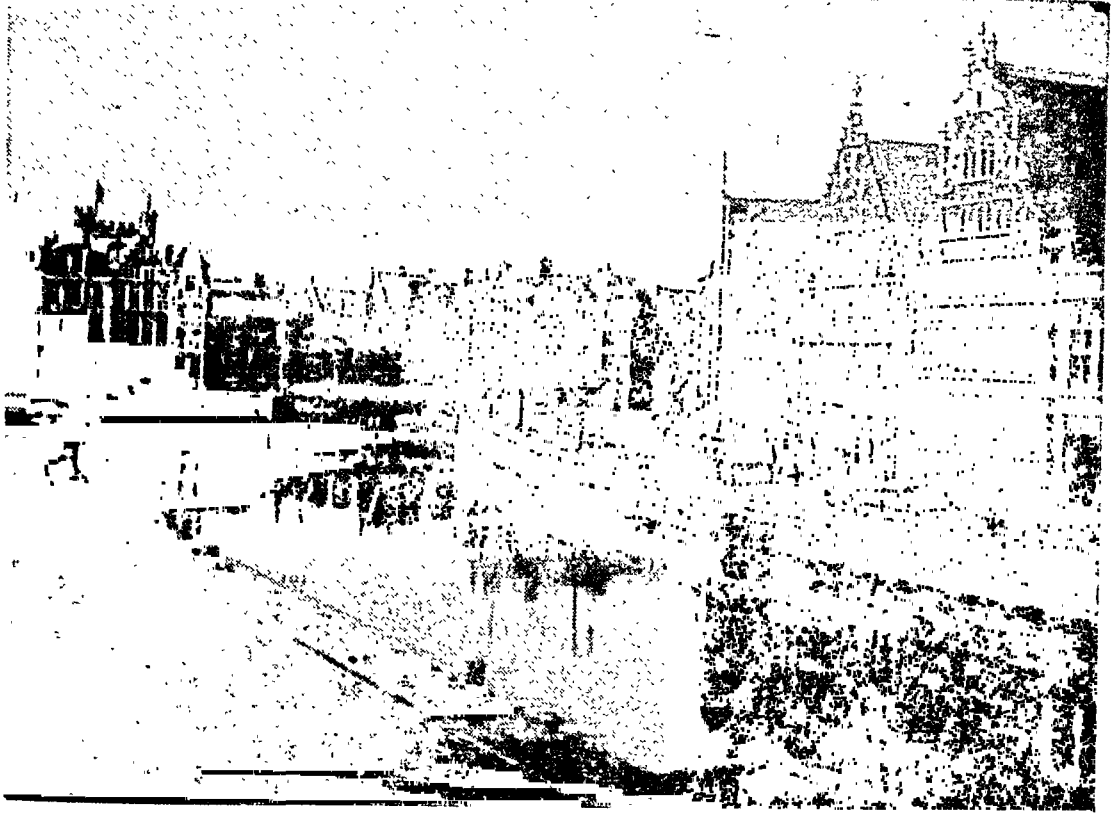
ब्रुजे नहरों और पुलों का नगर

पहले इस के किनारे तक समुद्र था. संसार के बड़ेबड़े जहाज देशदेशांतर से माल ले कर इस के बंदरगाह में पहुंचते थे. व्यापार का बड़ा केंद्र होने के कारण जहाजों की भीड़ लगी रहती थी. यहां के भाव से यूरोप के भाव घटतेबढ़ते थे. सभी देशों के प्रतिनिधि तथा व्यापारी यहां रहते थे.

लेकिन सब दिन एक से नहीं होते. ब्रुजे से समुद्र दूर हटने लगा और बंदरगाह में रेत भरने लगी. इसलिए जहाजों का आना भी बंद हो गया. धीरेधीरे समुद्र यहां से छः मील दूर हट गया. बाहरी दुनिया से इस का संपर्क टूट सा गया. अब, यह केवल १५वीं शताब्दी का एक श्रीहीन नगर मात्र रह गया है.

शहर देखने से ऐसा लगता था कि मध्ययुगीन यूरोप में पहुंच गया हूं. जिधर दृष्टि जाती थी, चिमनी लगे, ढलुवा छतों वाले दोमंजिले तिमंजिले मकान, शीशेदार लंबी खिड़कियां, दीवारों से निकली छड़ों के सहारे लटकते वर्गाकार झंडे, जिन पर धार्मिक कथानक तथा 'क्रूसेड' के रंगबिरंगे चित्र कढ़े हुए थे. नहरों में झांकते हुए ये मकान हलके प्रकाश में बड़े सुंदर लग रहे थे.

पेरिस की तरह यहां भी सड़कों की पटरियों पर काफे और रेस्तरां हैं. नागरिक यहां बैठे गप्पें लड़ाते हैं, शतरंज खेलते हैं. मैं एक रेस्तरां में गया. शाकाहारी भोजन यहां आसानी से मिल गया ! भोजन अच्छा बना था. इंगलैंड से यहां पैसे भी कम लगे.

शहर के अंतिम छोर पर 'प्रेम सरोवर' देखने गया. कलकत्ता की लेक की तरह लोग यहां टहलने आते हैं. मनोरंजन के लिए क्लब भी है. जगह साफ और खुली है. नावों की दौड़, तैराकी और अन्यान्य खेलकूद भी होते रहते हैं.

विश्राम के लिए एक बेंच पर बैठ गया. थोड़ी देर बाद मुझ से पूछ कर एक प्रौढ़ सज्जन बेंच की दूसरी ओर बैठ गए. आपसी परिचय के बाद बात ही बात में मैं ने पूछा, "ब्रुजे के जीवन में आधुनिकता है पर मकानों में नहीं. ऐसा क्यों?"

उन्होंने बताया कि यहां के पौरनिगम की ओर से शहर की विशेषता बनाए रखने के लिए मकानों में मध्ययुगीन परंपरा के कायम रखने की हिदायत है.

दूसरे दिन घूमते हुए देखा कि मध्ययुगीन पोशाक में बड़ीबड़ी प्रतिमाएं एक जुलूस में निकाली जा रही हैं. छोटे बच्चे इन्हें देख कर बहुत खुश हो रहे थे. अपने यहां दशहरे में कुंभकर्ण तथा रावण की कागज और कमचियों की प्रतिमाओं का खयाल आ गया. पूछने पर पता चला कि इन प्रतिमाओं को पास ही किसी मेले में ले जाया जा रहा है.

ब्रुजे के गिरजों में 'पवित्र रक्त', सेंट साव्यूर और नात्रेदाम प्रसिद्ध हैं. यहां का नात्रेदाम १४वीं शताब्दी का है. यह उतना बड़ा नहीं है जितना कि पेरिस का. माइकेल एंजेलो की एक उत्तम कलाकृति 'माता और शिशु' ब्रुजे के नात्रेदाम में देखी. यह एक पत्थर की मूर्त्ति है. माता मरियम की गोद में बालक यीशु है. सरलता और वात्सल्य की बड़ी स्वाभाविक अभिव्यंजना इस में दिखाई पड़ी.

सेंट साव्यूर का गिरजा १३वीं या १४वीं शताब्दी का है. इस की दीवारों और खिड़कियों पर बने चित्र देख रहा था कि तभी एक वृद्ध पादरी आए. पूछने पर उन्होंने चित्रों के भाव समझाए. चित्र बाइबिल की विभिन्न कथाओं से संबंधित थे.

मेरे मन में एक प्रश्न बारबार उठता था. बेलजियम के लोग उद्यमी और धार्मिक प्रवृत्ति के हैं और हर प्रकार से साधन संपन्न भी. अफ्रीका में इन का उपनिवेश, बेलजियम कांगो, इन के अपने देश से ९० गुना बड़ा था. हीरा, तांबा, लोहा और रेडियम वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे. फिर भी बेलजियम की उतनी उन्नति नहीं हुई जितनी होनी चाहिए.

वृद्ध पादरी महोदय से मैं ने पूछा, "बारबार बेलजियम में ही युद्ध, अग्निकांड आदि क्यों होते हैं जिस से देश की प्रगति रुक जाती है?"

"महाशय, शोषण और अत्याचार पाप है. इस का फल हमारा देश भोगता है."

"लेकिन मैं ने कभी इसे दूसरे राष्ट्र पर हमला करते नहीं सुना, बल्कि इस के विपरीत दूसरे राष्ट्र ही इस की स्वाधीनता का हरण करते रहे हैं," आश्चर्य से मैं ने कहा.

"यह तो ठीक है और आप जहां कहीं भी जाएंगे, बेलजियम सभ्य, शिष्ट और स्नेहशील मिलेंगे, लेकिन इन्हें बेलजियम कांगो में आप क्रूर और अशिष्ट पाएंगे. . . और हमारी सरकार भी इस विषय में चुप रह कर शोषण को बढ़ावा देती रही है," पादरी ने कहा.

"इस का कारण!"

"हीन मनोवृत्ति के लोग उपनिवेश में प्रारंभ से ही जाते रहे हैं. सामाजिक अपराध, चोरी, व्यभिचार, हत्या आदि के मामले में दंडित होने पर सरकार इन्हें वहां भेजती रही है. इस प्रकार ऐसे लोग वहां इकट्ठे होते गए. वे ही शोषण

और गंदगी का वातावरण फैला रहे हैं. . . हमें प्रभु ईसा ने क्षमा, दया और प्रेम की सीख दी है. कयामत के दिन भगवान प्रत्येक से हिसाब लेंगे. और प्रभु की कृपा से हम बच भी जाएंगे पर यीशु की बात माने तब तो! . . .कयामत तक के लिए ईश्वर दंड को टाल थोड़े ही देंगे."

इसे सुन कर मुझे अपने देश में डलहौजी, क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्ज के कुकृत्य तथा गोरों के अत्याचार की बातें याद आ गईं.

'पवित्र रक्त' का गिरजा, ब्रुजे में सब से अधिक प्रतिष्ठित है. यह बहुत बड़ा नहीं है पर महात्मा ईसा के रक्त की कुछ बूंदें यहां सुरक्षित हैं, इसलिए इस गिरजे के प्रति विश्व में बड़ी श्रद्धा है. गिरजा दोमंजिला है और १२वीं शताब्दी का बना हुआ है. पवित्र रक्त कैसे प्राप्त हुआ और किस प्रकार यहां पहुंचा, यह मेरे लिए कौतूहल का विषय था. पूछने पर पता चला कि सन ११५० में फ्लैंडर्स के काउंट मुसलमानों से येरूशलम को बचाने के लिए क्रूसेड (धर्मयुद्ध) में शामिल हुए. उन की अपूर्व वीरता और साहस के कारण ईसा मसीह का जन्मस्थान बच गया. इसलिए येरूशलम के राजा ने प्रसन्न हो कर महात्मा ईसा के रक्त की ये बूंदें एक बंद ताबीज में काउंट को भेंट दीं. महात्मा ईसा को जब सूली पर चढ़ाया गया तो रक्त की बूंदें उन के एक शिष्य ने इकट्ठी कर ली थीं. अब आठ सौ वर्षों से यह ताबीज बड़ी सावधानी से इस गिरजे में सुरक्षित है. १४ वीं शताब्दी से यह परंपरा है कि वर्ष में एक बार पवित्र रक्त को बड़े धूमधाम से जुलूस में ले कर सारे शहर में घुमाया जाता है. जुलूस में सरकारी अफसर और नगर के प्रतिष्ठित मध्ययुगीन पोशाकों में सम्मिलित होते हैं.

सन १९३८ में यहां के एक पादरी ने पवित्र रक्त के इतिहास के आधार पर नाटक लिखा था. शहर के घंटाघर के खुले स्थान पर यह अभिनीत हुआ. लगभग २,५०० व्यक्तियों ने इस में भाग लिया, जिस में बच्चेबूढ़े, मर्दऔरत सभी नागरिक शामिल थे. यह नाटक इतना सफल रहा कि बाद में कई बार खेला गया. लाखों लोगों ने इसे देखा, जिस में यूरोप के अन्यान्य देशों के अलावा अमरीका से भी दर्शक आए थे. इसे आज भी हर पांचवें साल खेला जाता है.

ब्रुजे का सब से प्रसिद्ध स्थान है मार्केट स्क्वायर. पास ही १३वीं शताब्दी का बना घंटाघर है. पहले इस के सब से नीचे के भाग में गोदाम थे जिन में जहाजों से उतार कर माल रखा जाता था.

आवश्यक अनुमति ले कर इस की वर्गाकार मीनार की ऊपरी मंजिल में पहुंचा जहां छोटेबड़े ४७ घंटे लगे हुए हैं. ये प्रत्येक १५ मिनट पर, निश्चित राग में, बजाए जाते हैं. मीनार के सब से ऊंचे हिस्से में एक विशाल घंटा था. मध्य युग में इसी मीनार पर खड़े हो कर पहरेदार चारों ओर नजर रखते थे. आग लगने पर अथवा शत्रुओं के आक्रमण के समय घंटे बजा कर लोगों को सावधान करते थे. मध्ययुगीन यूरोप में नगरों को स्वायत्तशासन के अधिकार प्राप्त थे. ब्रुजे के इन अधिकारों के कागजात बड़ी सावधानी से आज भी यहां सुरक्षित हैं.

ब्रुजे से ट्रेन में बैठ कर एक घंटे में घेंट पहुंचा. शहर पुराना जरूर है, पर ब्रुजे जैसा नहीं है. दो छोटीछोटी नदियां घेंट के बीच से हो कर बहती हैं और कई नहरें भी हैं जिन से यहां के महल्ले छोटेछोटे द्वीपों जैसे लगते हैं. पहले यह एक प्रसिद्ध

बंदरगाह था लेकिन एंटवर्प की उन्नति के कारण इस का महत्त्व अब कम हो गया है. यहां दसवीं शताब्दी में बना सेंट बेवो का गिरजा देखा. वैसे सेंट निकोलस का गिरजा यहां सब से पुराना है. शहर के बीच एक घंटाघर है. इस की वर्गाकार मीनार ३०० फीट ऊंची है.

यहां एक विश्वविद्यालय है जिस में शिल्पोद्योग, इंजीनियरिंग और कला की शिक्षा दी जाती है. इस के पुस्तकालय में तीन लाख से अधिक पुस्तकें और दो हजार से अधिक हस्तलिखित ग्रंथ हैं.

व्यापार की दृष्टि से बेलजियम के प्रमुख शहरों में यह एक है. यहां रुई और पटसन के सूती कपड़ों की रंगाई के तथा चमड़े और चीनी के कारखाने हैं. इन के अलावा लोहे और तांबे की ढलाई के तथा मशीनें, कलपुर्जे और शराब बनाने के कारखाने भी हैं.

घेंट को पिछले दो महायुद्धों से बहुत नुकसान उठाना पड़ा था. उद्योग धंधे बरबाद हो गए थे. लेकिन अब यह प्रगति कर रहा है.

हीरों के देश बेलजियम में

आधुनिक व प्राचीन योरुप की मिलीजुली झलक

घेंट से ब्रुशल्स पहुंचा. ट्रेन में एक अमरीकन यात्री ने बताया था कि आधुनिक और प्राचीन यूरोप को बेलजियम में पा सकते हैं और बेलजियम को ब्रुशल्स में. बात कुछ उलझी सी लगी थी पर निकली सही. ब्रुशल्स यूरोप में अपने ढंग का एक ही शहर है. यहां, जहां शताब्दियों पुराने मकान हैं वहां आधुनिक ढंग के बने भव्य भवन भी हैं. बेलजियम यों गिरजों का देश है. इसी से ब्रुजे और घेंट की तरह यहां भी विशाल और ऊंचे गिरजे देखने को मिले.

बेलजियम के इतिहास में ब्रुशल्स का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है. इसी की सड़कों पर डच सेनाओं को परास्त कर स्वाधीन बेलजियम की नींव पड़ी. सन १८३० में यह शहर बेलजियम की राजधानी बना. आज भी ब्रुशल्स के नागरिक बड़ी शान से इसे 'ला कपिताल' कहते हैं.

उद्योगधंधों में ब्रुशल्स सदियों से बढ़ाचढ़ा रहा है. यूरोप के अन्य उन्नत देशों में ज्योंज्यों औद्योगिक विकास होता गया, ब्रुशल्स भी इस दौड़ में उन से पीछे नहीं रहा. हीरों के लिए एंटवर्प प्रसिद्ध है तो शीशे के सामान के लिए ब्रुशल्स. युरोप के प्रायः सभी बड़े शहरों से रेलों और सड़कों द्वारा सीधा संबंध जुड़ा होने के कारण यह एक बड़ा व्यापारिक केंद्र है. यही कारण है कि यहां की सड़कों पर प्रायः सभी देशों की बोली सुनने को मिल जाती है.

ब्रुशल्स को दूसरा पेरिस भी कहते हैं. बड़ेबड़े होटल, नाइट क्लब, रेस्तरां और काफे. आधुनिक जीवन के प्रायः सभी आकर्षण यहां मौजूद हैं. लेकिन फिर भी पेरिस की सी उच्छृंखलता और नग्नता का प्रदर्शन यहां अपेक्षाकृत कम है.

शहर देखने के लिए ट्राम अच्छा साधन लगा. अन्य सवारियों के मुकाबले ट्राम कहीं अधिक सस्ती और सुविधाजनक है. पांच फ्रैंक यानी आठ आने के टिकट से एक यात्रा कर सकते हैं. दो बार में यदि ट्राम बदलनी है तो सात फ्रैंक का एक टिकट मिलता है. ६० फ्रैंक के टिकट से बीस बार यात्रा की जा सकती है. नवागंतुक को यहां कठिनाई नहीं होती क्योंकि स्टेशनरी और पुस्तकों की दुकानों पर शहर का नक्शा मिल जाता है. ट्रामों पर सड़कों के नंबर लिखे रहते हैं इसी से नक्शा देख कर सही स्थान पर आसानी से पहुंचा जा सकता है.

शहर घूमते हुए मैं ने देखा कि यहां का ग्रांड पैलेस अपने शहरों के चौक जैसा है. बेलजियम के अन्य शहरों में भी इसी प्रकार के ग्रांडपैलेस हैं. ब्रुशल्स का टाउनहाल

भी यहीं है. इस के मुकाबले की इमारत बेलजियम में दूसरी नहीं. इस के बीच की मीनार ३६० फुट ऊंची है जो दिल्ली की कुतुबमीनार से भी १२० फुट अधिक ऊंची है. टाउनहाल भवन में सुप्रसिद्ध चित्रकारों तथा मूर्तिकारों की कला-कृतियां हैं.

ग्रांड पैलेस के चारों ओर पुराने ढंग के मकान हैं जिन में व्यापारिक कोठियां हैं. चौक में प्रातः बाजार लगता है जहां शहर के आसपास से किसान आदि अपनाअपना माल थोक व्यापार के लिए ले जाते हैं. बड़ी जल्दी क्रयविक्रय समाप्त हो जाता है. दिन निकल आने पर जरा भी अनुमान नहीं होता कि यहां बाजार लगा था.

रविवार की सुबह यहां तरहतरह की चिड़ियां बिकती हैं. मुझे पता चला कि बेलजियम में कबूतरबाजी का बड़ा शौक है. इन की उड़ानें स्पेन और उत्तरी अफ्रीका तक होती हैं. रेडियो में प्रति रविवार को प्रसिद्ध उड़ानों की सूचनाएं प्रसारित की जाती हैं. यहां के लोगों को मुर्गे लड़ाने का शौक भी है, पर इसे रुचि संपन्न लोग कम पसंद करते हैं.

ब्रुशल्स भी दिल्ली और नई दिल्ली की तरह दो भागों में बंटा हुआ है. शहर के पुराने भाग से नए में जाते हुए सेंट गुडले का गिरजा बहुत आकर्षक लगा. प्लेस रायल पर शहर के नए भाग की प्रायः सभी बड़ी सड़कें आ कर मिलती हैं. पास 'पार्क ब्रुशल्स' है, जहां सन १८३० में बेलजियनों ने डच सेना को पराजित किया था.

यहां के न्यायालय का विशाल और शानदार भवन खुली चौकोर जगह में बना हुआ है. पास ही ब्रुशल्स का प्रसिद्ध पुस्तकालय बिब्लियोथिक रायल देखा. यहां की पुस्तकों का संग्रह न केवल बेलजियम में बल्कि सारे यूरोप में महत्त्वपूर्ण माना जाता है. हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर यूरोप की मध्ययुगीन संस्कृति, कला, धर्म तथा इतिहास का अध्ययन करने के लिए बहुत से विद्यार्थी दूरदूर से यहां आया करते हैं.

एक जमाना था जब ब्रुशल्स के चारों ओर दिल्ली की तरह दीवारें थीं, इस का परिचय 'पोर्ट द हाल' से मिलता है. यहां प्रवेश द्वार पर किले के अनुरूप एक इमारत है. आजकल यहां प्राचीन अस्त्रशस्त्रों का एक संग्रहालय है.

बेलजियम में उत्सव खूब मनाए जाते हैं! मेले यहां अकसर होते रहते हैं. शहर के अनेक पार्कों में कोई न कोई कार्निवल या मेला लगा ही रहता है. यहां प्रति वर्ष जुलाई और अगस्त मास में एक बड़ा मेला लगता है. इस मेले में देश के विभिन्न स्थानों के निवासी परस्पर मिल कर उत्सव मनाते हैं.

ब्रुशल्स बेलजियम की दिल्ली है तो एंटवर्प कलकत्ता या बंबई. कला एवं संस्कृति के साथ ही यह व्यापार का एक प्रमुख केंद्र है, इसलिए यहां के नागरिक इसे 'ला मेत्रोपाले' कह कर फूले नहीं समाते.

एंटवर्प में पटसन के हमारे एक बड़े एजेंट मिस्टर विलियम रहते थे. यद्यपि अब तक उन से साक्षात्कार नहीं हुआ था, फिर भी व्यापारिक संबंध होने के कारण हम आपस में अच्छी तरह परिचित थे. मैं इन के आफिस पहुंचा. मैं ने अपना विजिटिंग कार्ड भेजा, कुछ क्षण बाद ही एक वयोवृद्ध किंतु स्वस्थ और प्रसन्न
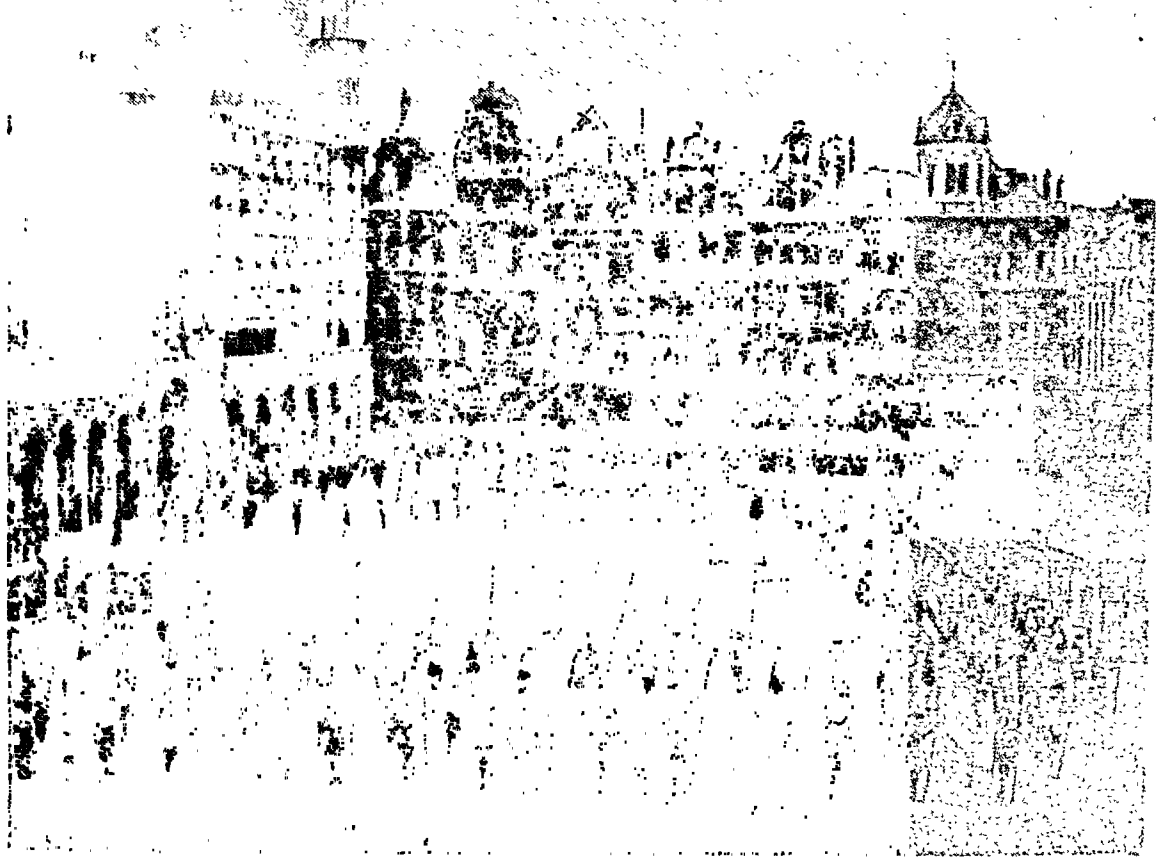
ग्रांड पैलेस के सामने लोक नृत्य करते हुए

व्यक्ति कमरे से वाहर आए. उन्होंने वड़े स्नेह और आत्मीयता के साथ हाथ मिला कर पूछा, "कव आए? आप के आने की सूचना हमें नहीं मिली."

मैं ने उन्हें बताया कि मैं ब्रुशल्स से सीधा यहां आ रहा हूं. दोएक दिन आप के शहर को देख कर फिर राटरडम जाऊंगा.

"ठहरे कहां हैं?"

"क्वींस होटल में."

मिस्टर विलियम ने हंसते हुए कहा, "आप वेलजियम घूमन आए हैं तो हमारे देश के घरेलू जीवन की झांकी भी आप को देखनी चाहिए. होटलों में भला यह सब कहां मिलेगी!" अपने कमरे में वैठाते हुए उन्होंने कहा, "होटल से सामान लाने के लिए फोन कर दीजिए."

मेरे वहुत समझाने पर भी वह न माने. मुझे होटल फोन करना ही पड़ा. वह घर साथ ले जाने लगे, पर मैं ने कहा, "पता दे दीजिए, मैं शाम को पहुंच जाऊंगा, तब तक शहर घूम लूं." उन्होंने पता देने के वदले अपनी मोटर दे दी.

ड्राइवर होशियार था. शहर देखने में सुविधा रही. वेलजियम के अन्य शहरों की अपेक्षा यहां पुराने ढंग के मकान कम हैं. ब्रुजे के वंदरगाह में रेत भर जाने के कारण एंटवर्प ने पिछले दो सौ वर्षों में वहुत उन्नति की है. यहां १५वीं शताब्दी तक के गिरजे और इमारतें हैं जो पहले सरकारी दफ्तर, सैनिक कार्यालय, ड्यूकों अथवा काउंटों के आवास थे. नात्रेदाम का गिरजा यहां भी देखा. यहां के म्यूजियम और गिरजों में वेलजियम की कला और संस्कृति की
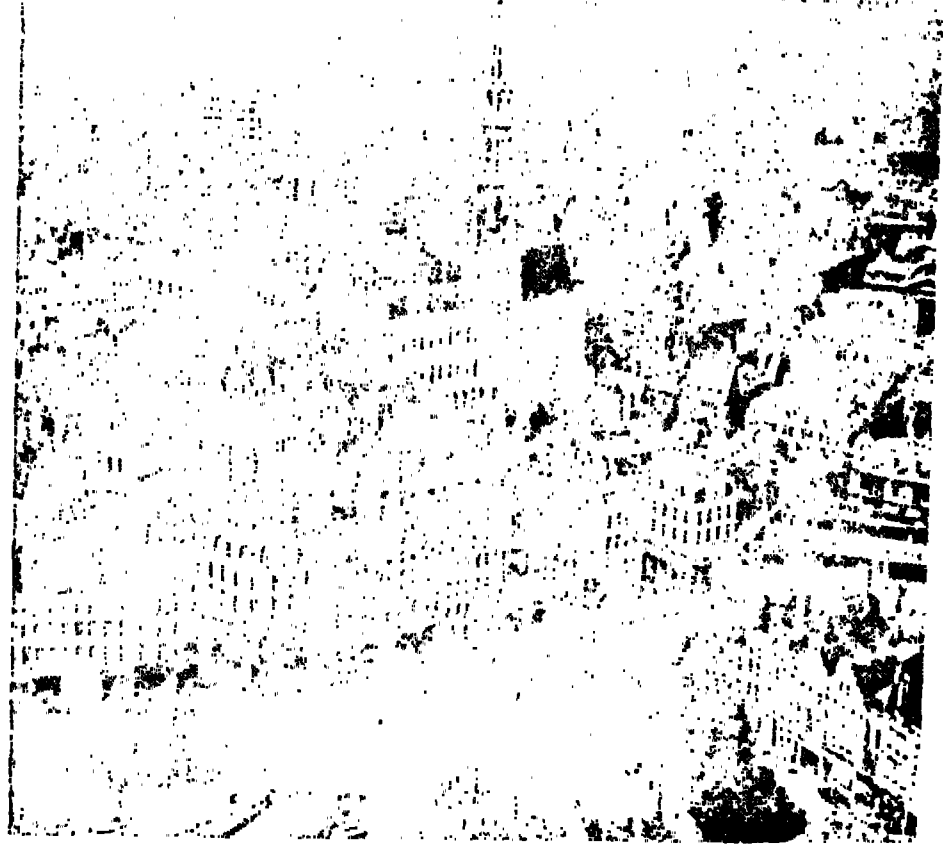
ब्रुशल्स शहर का एक विहगम दृश्य

महत्त्वपूर्ण निधियां सुरक्षित हैं. चित्रों के समृद्ध संकलन में फ्लेमिश, डच, जर्मन तथा फ्रेंच शैली के अतिरिक्त आधुनिक ढंग की यूरोपीय कृतियां भी देखने को मिलीं.

वागबगीचे ब्रुशल्स की भांति यहां भी काफी संख्या में हैं. शहर की १८ लाख जनसंख्या है, फिर भी शहर खुला और साफ है. यहां के चिड़ियाघर की वहुत तारीफ सुनी थी. यहां पशुपक्षियों को स्वाभाविक वातावरण में रखा जाता है. दर्शक भी इन्हें छेड़ते नहीं, इसलिए यहां के पशुपक्षी परेशान नहीं लगे.

शाम हो रही थी. वाजार में रंगविरंगे फूल विक रहे थे. डचों की तरह वेलजियन भी फूल वहुत पसंद करते हैं. आपसी व्यवहार में अपना स्नेह और सौजन्य प्रदर्शित करने के लिए उपहारस्वरूप फूलों का गुच्छा देते हैं. श्रीमती विलियम को भेंट देने के लिए मैं ने भी कुछ फूल लिए. मिस्टर विलियम के घर पहुंचा. उन्होंने अपनी पत्नी और पुत्र से मेरा परिचय कराया. लुई अपने पिता के साथ ही व्यापार की देखभाल करता है. उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, "ये शाकाहारी हैं, भोजन निरामिष वनाना."

नौकर के होते हुए भी अतिथि के लिए खाना स्वयं घर की मालकिन ही वनाती हैं. यूरोप में कई जगह यह वात देखी.

श्रीमती विलियम भोजन की तैयारी के लिए चली गईं, हम तीनों में वातों का सिलसिला जारी हुआ. इसी सिलसिले में मुझे ज्ञात हुआ कि पिछले महायुद्ध
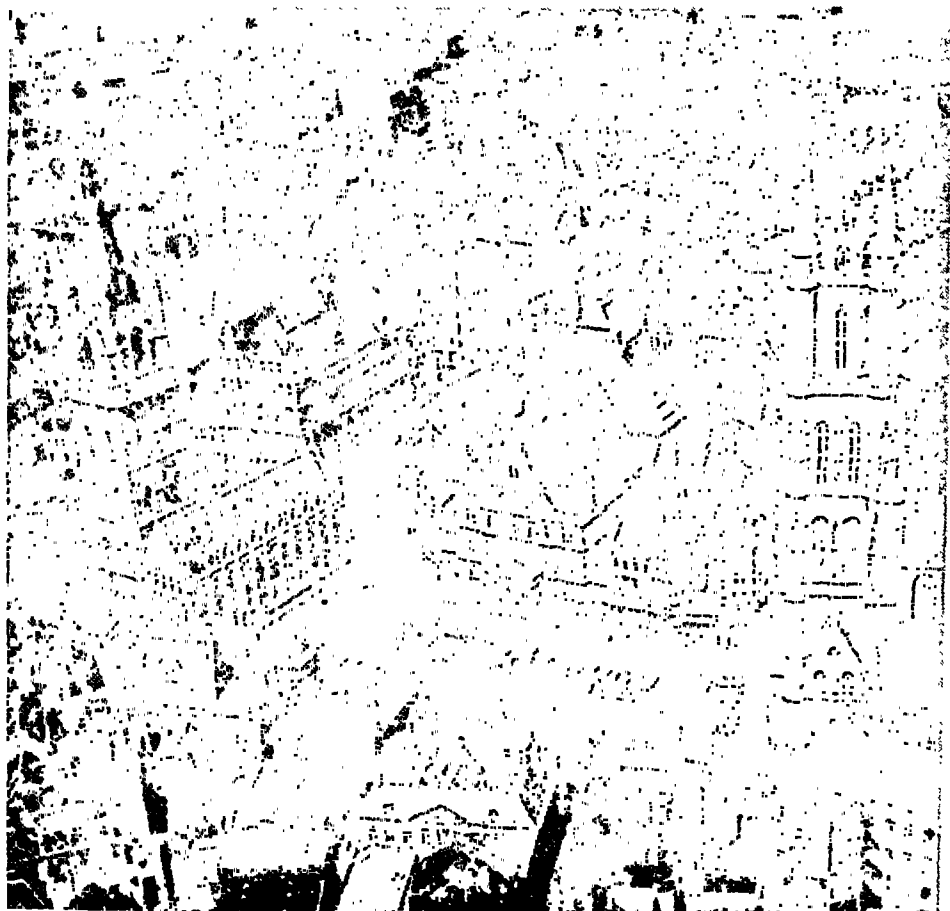
बेलजियम की प्राचीन संस्कृति का प्रतीक शहर घेंट

में एंटवर्प को भीषण क्षति उठानी पड़ी. बमों की मार से शहर के २० हजार मकान बरबाद हुए और तीन हजार नागरिकों के प्राण गए. मैं आश्चर्यचकित था कि युद्ध की समाप्ति के बाद बेलजियम ने कितनी उन्नति कर ली है. तभी लुई ने प्रश्न किया, "कैसा लगा हमारा देश?"

मैं ने कहा, "सरसरी तौर पर देखने से हम पूर्व के लोगों के लिए पश्चिम के सभी देशों की सभ्यता और संस्कृति एक सी जान पड़ती है. इन देशों में लोग रूढ़ियों को उखाड़ते हैं. पर स्वस्थ परंपरा को भी संजो कर रखते हैं. इस से संस्कृति निखर उठती है. मुझे आप की बातें विशेष पसंद आई.

भोजन तैयार हो कर आ गया था. हम चारों भोजन करने बैठ गए. तभी मिस्टर विलियम ने अपनी पत्नी की ओर देखते हुए कहा, "लुई को जूट की पूरी जानकारी के लिए भारत भेजना चाहता हूं, पर ये जाने नहीं देतीं."

मैं ने पूछा, "क्यों?"

महिला ने सिर हिला कर कहा, "ना. . .ना. . .मैं ने सुना है और अखबारों में पढ़ा है कि हिंदुस्तान में लोग दिनदहाड़े एकदूसरे को छुरा भोंक देते हैं."

मैं यह सुन कर मन में झेंपा. लेकिन बात को संभालते हुए मैं ने कहा, "देश के विभाजन के बाद राजनीति के विषैले प्रभाव और धर्मांधता की वजह से कुछ इस तरह की दुर्घटनाएं हो जाती हैं. आप विश्वास करें आम तौर पर ऐसी वारदातें नहीं होतीं."

मिस्टर विलियम ने बात जारी रखते हुए कहा, "ये भूल जाती हैं कि मध्ययुगीन यूरोप में कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट एकदूसरे की जान के किस कदर दुश्मन हो गए थे."

मैं ने मुसकराते हुए कहा, "मिस्टर विलियम, यह मां का दिल है."

भोजन बहुत स्वादिष्ट लगा पर मिस्टर विलियम को संतोष न था, कहने लगे, "मैं बड़ाई तो नहीं करता. लेकिन भोजन के मामले में हम लोग इटालियनों की तरह बनाने, खाने और खिलाने के लिए प्रसिद्ध हैं. भ्रमण और भोजन के आनंद के लिए विदेशी यहां आते हैं. . . क्या बताऊं, आप शाकाहारी हैं. . ."

मैं ने कहा, "इस में यह और जोड़ दीजिए कि बेलजियन निरामिष भोजन भी अत्यंत स्वादिष्ट बनाते हैं."

हम लोग हंस पड़े. भोजन के बाद कॉफी पीते हुए अगले दिन का कार्यक्रम बना. मेरे बारबार मना करने पर भी लुई को आफिस से छुट्टी दे कर उन्होंने मेरा गाइड बना दिया.

सुबह नाश्ता कर घूमने निकले. पिछले दिन क्या-क्या देख लिया था, वह लुई को बता दिया. हम एंटवर्प के चौक ग्रांड पैलेस पहुंचे. यहां का टाउनहाल ब्रुशल्स जैसा पुराना नहीं है. आसपास के मकान भी नए ढंग के हैं. लुई ने चौक के बीच का फव्वारा दिखाते हुए कहा, "यह ब्रेवी का फव्वारा है."

पास जा कर देखा कि विजय गर्व से खड़े एक पुरुष के पास झुकी हुई असुर की सी आकृति की कटी बांह में से पानी की धार निकल रही है. लुई ने बताया, "इस मूर्ति में शहर के नाम का रहस्य है. लोक कथा है कि रोमन शासनकाल में द्रुआंन एंतिगांन नाम का एक असुर यहां रहता था. पास बहती शेल्ड नदी से गुजरने वाली नावों से वह कर वसूल करता था. कर न अदा करने पर मल्लाहों का दाहिना हाथ काट कर नदी में फेंक देता था. हाथ काट कर फेंकने को हमारी फ्लेमिश भाषा में हेंडवर्पन कहते हैं, जो कालांतर में एंटवर्प हो गया."

वीर पुरुष की आकृति की ओर इंगित कर उस ने बताया, "इन का नाम सेल्वियस ब्रेवी है. इन्होंने असुर को पराजित किया और उस के हाथ काट दिए."

प्रोटेस्टेंट होने पर भी भारत और ग्रीस की तरह बेलजियम में भी पौराणिक कथाओं पर विश्वास किया जाता है, इन्हीं के आधार पर प्रतिमाएं बनाने में इन की रुचि है. यहां के गिरजों में भी पौराणिक कथाओं के चित्र और प्रतिमाएं बहुत हैं.

एंटवर्प को हीरों की नगरी भी कहते हैं. विश्व में राटरडाम और एंटवर्प हीरे की उम्दा तराशी के लिए प्रसिद्ध हैं.

यहां के इस उद्योग ने बेलजियम की आर्थिक उन्नति में बहुत महत्त्वपूर्ण योग दिया है. पिछले महायुद्ध में इस क्षेत्र को बहुत क्षति पहुंची, लेकिन मेहनतकश कारीगरों और व्यवसायियों ने बिगड़ी हुई स्थिति को फिर से संभाल लिया. बेलजियम को इस व्यापार से विदेशों से अच्छी आय हो जाती है. पेलिकान स्ट्रीट हीरे का प्रमुख बाजार है.

लुई मुझे अपने एक परिचित व्यापारी के यहां ले गया. तराशी की सफाई और कारीगरी को देख कर तबियत खुश हो गई. छोटेबड़े सभी आकार के हीरे थे. लाल, नीली, पीली और हरी आभाओं के हीरे पहलेपहल यहां देखे. दाम

भी सस्ते थ, भारत से आधे बल्कि उस से भी कम.

व्यापारी ने आग्रह किया, "अपनी पसंद के चुन लीजिए."

मैं ने बताया, "हमारी सरकार ने इस के आयात पर प्रतिबंध लगा रखा है."

उस ने हंस कर कहा, "इस बाजार में प्रति दिन विश्व के कोनेकोने से न जाने कितने हीरे किस राह आते हैं और चले जाते हैं. भारत से तो कई व्यापारी साल में कई बार आ कर काफी माल उठा ले जाते हैं."

मैं ने कहा, "यह संभव है, क्योंकि तस्कर व्यापार की रोकथाम बड़ी मुश्किल से हो पाती है. फिर भी हमारी सरकार इस दिशा में काफी प्रयत्नशील है."

पता चला है कि बेलजियम की सरकार भी अब इस दिशा में सख्ती करने जा रही है ताकि आनेजाने वाले समस्त रत्नों का ब्योरा व्यापारियों से ले कर वसूल करने में सुविधा रहे.

वैसे तो शहर में कई अच्छे बाजार हैं किंतु इन में मेईर अपनी सजावट और विविधता के लिए लोकप्रिय है. लखनऊ की तरह यहां भी चिकन की जैसी कढ़ाई होती है. बहुत ही आकर्षक बेलबूटे यहां की महिलाएं हाथ से काढ़ती हैं. मुझे यह बहुत पसंद आए, कुछ मैं ने भी खरीदे. एक सिरे पर २४ मंजिली इमारत दिखाते हुए लुई ने कहा, "तोरेन जे बौ पर से आप को सारा शहर एक नजर में दिखा दूं."

कलकत्ते में १५ मंजिली इमारतों पर तो चढ़ा था पर इतनी ऊंची इमारत पर अब तक चढ़ कर नहीं देखा था. शहर के बाहर हरेभरे खेतों की हरियाली के बीच शेल्ड नदी का जल हीरों की पंक्ति की तरह चमक रहा था. गिरजों के ऊंचे बुर्जों पर तथा क्रासों पर सूर्य की सुनहली किरणें फिसल रही थीं.

वहां से उतर कर नदी के किनारे स्टीन देखने गए. पहले यह एक दुर्ग था लेकिन अब यहां एक नौसंग्रहालय है. यहां समुद्र और जहाजरानी की सभी आवश्यक वस्तुओं का अच्छा संग्रह है. मुझे इस संबंध में थोड़ीबहुत जानकारी मिली. मुझे आश्चर्य हो रहा था कि कितना छोटा सा देश है बेलजियम, सिर्फ ४० मील का समुद्रतट इस के पास है, फिर भी हालैंड और नार्वे की तरह इस ने कितनी प्रगति इस दिशा में कर ली है. हम हजारों वर्षों से वरुण देव की पूजा जरूर करते रहे हैं, पर इतना विस्तृत समुद्रतट होते हुए भी इस दिशा में हम कितने पिछड़े हुए हैं!

लुई का साथ मेरे लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ बेलजियन जीवन की बहुत सी बातें उस ने बताईं. एक मजे की बात यह भी सुनी कि हमारी तरह उन के यहां भी घरों की दीवार, जमीन या चूल्हों के पीछे से वक्त जरूरत खासी रकम निकल आती है. डेनमार्क की तरह साइकिल दौड़ यहां का प्रमुख राष्ट्रीय खेल है. भारतीयों की तरह फुटबाल के खेल में भी इन्हें बहुत दिलचस्पी है.

स्टीन के पास से ही एंटवर्प का बंदरगाह शुरू हो जाता है. यह यूरोप के बड़े बंदरगाहों में से एक है. विदेशों से कई जहाज यहां माल लेने और उतारने आते हैं क्योंकि हेमबर्ग की तरह मध्य यूरोप के देशों के माल का आवागमन इसी मार्ग से होता है. जहाजों की मरम्मत की व्यवस्था भी यहां अच्छी है. माल की लदाई और निकासी इतनी तत्परता और कुशलता से की जाती है कि आए हुए

जहाजों को ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती.

एंटवर्प का पटसन उद्योग डंडी की तरह काफी उन्नत है. भारत और पाकिस्तान से पाट यहां की मिलों के लिए आता है. यहां की जूट मिलें देखना चाहता था, लुई ने टेलीफोन से पहले ही प्रबंध कर लिया था. जूट मिलें बड़ी तो नहीं हैं, मगर बहुत साफ और यांत्रिक दृष्टि से हमारे यहां से काफी उन्नत. इन में केवल बोरे और चट ही नहीं बनाए जाते बल्कि तरहतरह की अन्य वस्तुएं, जैसे गलीचे, कंबल, दरियां आदि भी बनती हैं.

मजदूरी हमारे यहां से छः गुनी अधिक है लेकिन प्रति मजदूर उत्पादन भी इसी अनुपात में अधिक है. यही कारण है कि जूट पैदा करने वाले देश भारत की टक्कर में विश्व के बाजारों में यह टिका हुआ है.

शहर देख कर हम शाम को घर लौटे. मिस्टर विलियम पहले ही आ गए थे. हम ने साथ ही भोजन किया.

रोटरडम जाने के लिए विदा लेते समय मैं ने श्रीमती विलियम से कहा, "लुई को अकेला आप नहीं छोड़ना चाहतीं तो आप चारों भारत आइए."

श्रीमती विलियम ने आश्चर्य से पूछा, "चौथा कौन?"

मैं ने कहा, "आप की होने वाली पुत्रवधू!"

सभी हंसने लगे.

हाथ में फूलों का गुच्छा देते हुए उन्होंने दो छोटेछोटे पैकेट दिए. एक में हाथ की बुनी सूत की जालियां थीं और दूसरे में रोटरडम तक के लिए केक और बिस्कुटों का नाश्ता था.

स्विट्ज़रलैंड

भूलोक का एकमात्र नंदनकानन?

भूलोक का नंदनकानन कहने से भारतीयों को सहज ही कश्मीर का ध्यान आता है लेकिन संसार का कोई देश यदि वास्तव में इस नाम का अधिकारी है तो वह स्विट्ज़रलैंड है. प्रकृति का सौंदर्य कश्मीर में भी अनुपम है और निस्संदेह प्रकृति अपना रूप वहां पलपल संवारती रहती है, लेकिन मानव के हाथ उसे नहीं संवारते. इसलिए स्वच्छता की कमी उस के रूप को निखरने नहीं देती.

इस के विपरीत स्विस लोगों ने अपने देश में जहां भी कहीं सुरम्य स्थल पाया, उस की शोभा बढ़ाई है, उसे सजाया और संवारा है. उन्होंने विज्ञान की उन्नति के दंभ में अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के खयाल से प्रकृति के रूप को वैज्ञानिक अस्त्रों से बिगाड़ा नहीं, बल्कि विज्ञान की सहायता से अपने देश के सुंदर स्थानों को पर्यटकों के लिए सुगम, सुविधापूर्ण और सुरक्षित बना लिया है.

वैसे तो हमारे देश में भी सुंदर स्थानों और प्राकृतिक छटा का अभाव नहीं है पर इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि हम ने उसे सजानेसंवारने की कभी कोशिश नहीं की. आज स्वाधीन होने के बाद भी इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम ही गया है.

स्विट्ज़रलैंड में मैं ने ऊंचीऊंची दुर्गम पहाड़ियों की चोटियों पर लोगों को तार की मजबूत रस्सियों के सहारे झूलते हुए देखा है. कहीं कोई पहाड़ी नदी उर्वशी की भांति धरती पर उतर रही है तो कहीं कोई पहाड़ी नदी हजारों फीट ऊंचे पर्वतों की घनी वनाली के बीच लुकछिप कर मुसकान बिखेरती भाग रही है. ऐसे अवसरों पर मन में बराबर यही बात आई कि स्वदेश लौटने पर प्रकृति को कुरूप बनाने की चेष्टाओं में यदि कुछ भी रोकथाम करा सका तो अपने को धन्य मानूंगा.

डेवोस के पहाड़ों के पास एक सुंदर झरने के किनारे नाश्ता करने बैठा तो मुझे अपनी बद्रीनाथ यात्रा का स्मरण हो आया. मैं ने वहां भी हनुमान चट्टी से आगे कलकल करते एक झरने के किनारे सुस्ता कर कुछ चनाचबैना करने का विचार किया था, लेकिन कहीं से दुर्गंध का एक झोंका आया और मैं ने सिर घुमा कर जो दृश्य देखा, उस से भूख का भाग जाना स्वाभाविक ही था.

मन में बड़ी ग्लानि हुई. कुछ तीर्थ यात्री झरने के किनारे बैठे शौच कर रहे थे. मैं ने दो गेरुआ वस्त्रधारी साधुओं को रोका तो वे झगड़े पर उतारू हो गए. दूसरे भक्तों ने भी मुझे ही बुराभला कहा. मुझे चुप हो जाना पड़ा.

दूसरी ओर स्विट्ज़रलैंड के लोगों को सफाई का इतना अधिक ध्यान रहता

है कि यदि कहीं कूड़े का टब न हो तो वे छिलके वगैरह अपनी जेबों में डाल लेंगे और स्थान को गंदा करने का विचार तक भी मन में नहीं लाएंगे.

स्विट्जरलैंड की प्राकृतिक छवि में अपनी अलग विलक्षणता है. सारा देश ही सुंदर है, पर मुझे यंगफ्राऊ की छटा ने सब से अधिक प्रभावित किया. आज भी वे दृश्य मानसपटल पर ज्यों के त्यों अंकित हैं. यंगफ्राऊ का अर्थ है नवयुवती. मैं ने स्विट्जरलैंड में सभी के मुंह से इस स्थान के अप्रतिम सौंदर्य की चर्चा सुनी थी. इसी लिए मैं यंगफ्राऊ के आकर्षण में बंधा हुआ इंतरलाकेन जा पहुंचा.

इंतरलाकेन का अर्थ है, दो झीलों के बीच की भूमि. नाम सार्थक है. यह ब्रायंज और थून नामक दो झीलों के बीच बसा छोटा सा कस्बा है. चारों ओर के पहाड़ झीलों के जलदर्पण में अपनी शोभा देख कर झूमने से लगते हैं. कभी-कभी लगता है कि बादल अपना रूप निरखने के लिए झीलों की सतह पर झुकते चले आ रहे हैं.

इस की अपनी आबादी करीब तीनचार हजार ही होगी. लेकिन गरमियों में बर्फ पिघलने और शीत का प्रकोप कम होने पर यहां पर्यटकों का अच्छाखासा जमाव हो जाता है. इसी कारण इतना छोटा सा कस्बा होने पर भी यहां चौंसठ होटल हैं, जिन में पांच हजार यात्री ठहर सकते हैं.
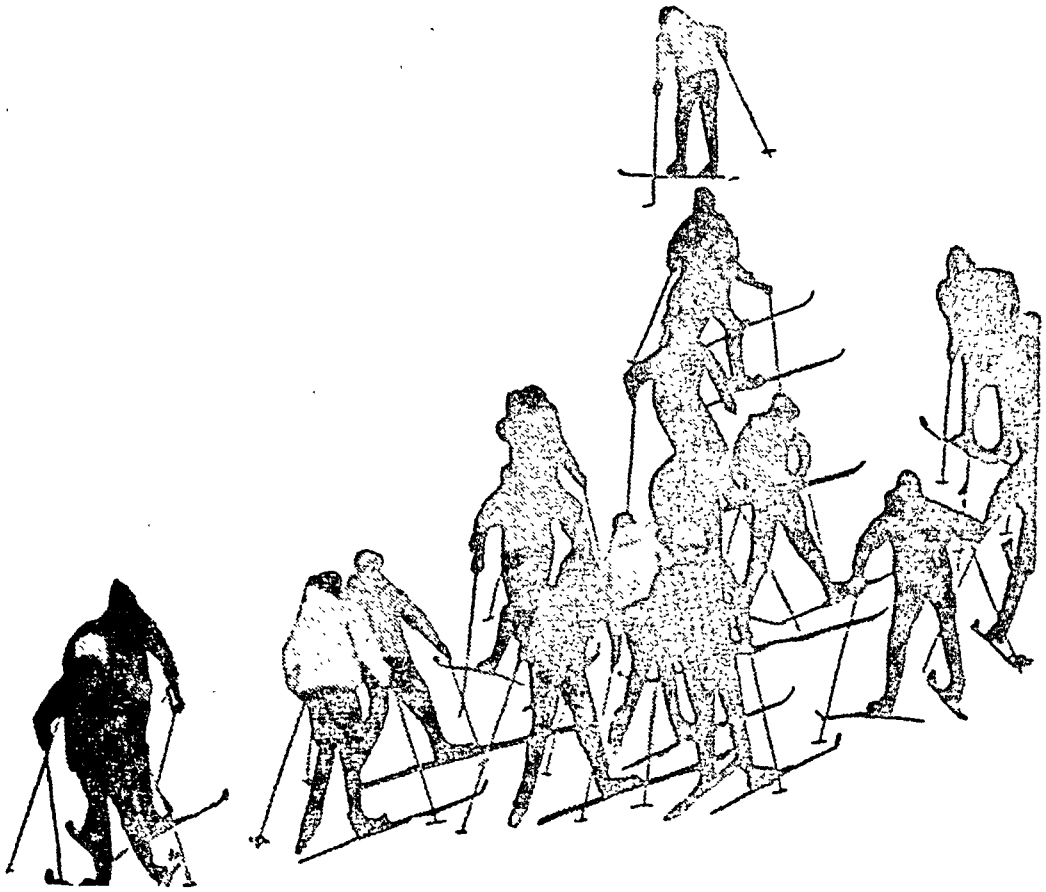
यहां के कस्बों और बाजारों में पर्वतारोहण तथा अन्य कई प्रकार के खेलकूद की सारी सामग्री मिल जाती है. पर्यटक लोग अपने साथ अनुभवी तथा कुशल गाइड ले कर पर्वतारोहण के लिए निकल पड़ते हैं.

स्विट्जरलैंड के गाइड और दुकानदार पर्यटकों से अधिक पैसा लेने के चक्कर में नहीं रहते. वे उतना ही पैसा मांगते हैं जितना उचित होता है. साथ ही ग्राहक को शिष्टाचार और स्नेह भी देते हैं. यही वजह है कि यहां खर्च करना खलता नहीं.

यहां जर्मन भाषा बोली जाती है. भावताव में दुकानदारों को अपनी बात समझाने में असमर्थ होने पर मैं उन के सामने पैसे रख देता और वे खुद ही अपने वाजिब दाम उठा लेते थे. ऐसा कभी नहीं लगा कि मैं ठगा गया हूं. दुकानों में सामान बेचने वाली प्रायः सुंदर और स्वस्थ युवतियां ही होती हैं, जो सामान दिखाने के साथ ही साथ शिष्ट मुसकान भी बिखेरती रहती हैं.

मैं ने एक बार एक दुकान में कई चीजें देखने पर भी कुछ नहीं खरीदा, फिर भी वहां की सेल्स गर्ल मुझे फाटक तक पहुंचाने आई और वापस जाते हुए कहती गई, "थैंक्यू सर!" मुझे बरबस ही कलकत्ता की एक घटना याद आ गई. मैं एक दुकान में पेन खरीदने गया था. दोतीन मिनट तक तो दुकानदार ने बात ही नहीं की, फिर जब मैं ने खुद ही पेन के चुनाव करने की सोची तो उस ने इस तरह घूरना शुरू किया जैसे मैं पेन उठा कर भागने वाला हूं. मैं ने जब उस से वाटरमैन या स्वान पेन दिखाने को कहा तो वह झल्ला कर बोला, "क्यों शोर मचाता! हमारा भी टाइम वेस्ट करता और अपना भी. तुम को पेनवेन कुछ नहीं खरीदना,

स्की के लिए 'इलैक्ट्रिक रोप' के द्वारा जाते हुए

जाओ!" जरा देखिए, कितना अंतर है दोनों में.

पश्चिम के लोगों में मैं ने एक विशेषता पाई कि उन के खेलकूद और मनोरंजन में साहस और सजीवता का पुट रहता है. वहां प्रत्येक सबल, स्वस्थ और समर्थ नागरिक जिस ढंग से अपने अवकाश का उपभोग करता है, वैसा साधारणतया हमारे यहां नहीं पाया जाता.

मार्च का महीना बीत रहा था लेकिन ठंडक कम नहीं हुई थी. इस के बावजूद इंतरलाकेन में पर्यटकों का आगमन शुरू हो गया था. क्लबों और होटलों में चहलपहल बढ़ रही थी. नृत्यशालाओं और रेस्तराओं में खिलखिलाहट गूंजने लगी थी. लोग हंसी और नाच के साथ अपने अवकाश का लाभ उठा रहे थे. कोई स्केटिंग की तैयारी कर रहा था तो कोई स्की की और कोई रस्सियों के सहारे दुर्गम पहाड़ियों पर चढ़ कर उन के शिखर को चूमने के प्रयास में लगा था.

स्की भी कितने जीवट का खेल है. दोनों पैरों के तलवों में आगे की ओर उठी हुई लकड़ी की दो चिकनी पटरियां बांध कर बर्फ पर फिसलना. मैं ने भी पांच सवारों में अपना नाम लिखाना चाहा, पर बिलकुल निकम्मा साबित हुआ. दसबीस फीट फिसलने पर ही या तो आसमान देखता था जमीन सूंघने लगता. कई बार कोशिश की पर सब बेकार रहा. लिहाजा स्की को दंडवत् प्रणाम किया

जरमिट शहर में घोड़ा स्लेज

और अन्य लोगों को स्की करते देख कर ही दिल का अरमान पूरा कर लिया. स्की की पटरियां बांधे हजारों फीट की ऊंचाई से वर्फ पर तेजी से फिसलते और छलांगें भरते लोगों को देख कर दांतों तले उंगली दवानी पड़ती है.

स्विट्जरलैंड का यह राष्ट्रीय खेल है. इस के अलावा विदेशों से प्रति वर्ष हजारों खिलाड़ी यहां अपना करतव दिखाने आते हैं. स्की के लिए वास्तव में अभ्यास के साथ ही बल और एकाग्रता भी चाहिए. मेरे पास उत्साह, बल और कुशल गाइड, सब थे. लेकिन मेरा वल स्की के मामले में वल खा गया क्योंकि प्रिंस अलीखां की तरह अपना पैर तुड़वाना मुझे ठीक नहीं जंचा.

इंतरलाकेन और उस के आसपास खूब घूमा. दृश्य बड़े ही सुंदर थे. उन को देख कर जब मुझ जैसे साधारण मनुष्य का हृदय भी खुशी से भर उठा तो पश्चिम के बड़ेबड़े कलाकारों और साहित्यकारों का भावविभोर हो जाना स्वाभाविक ही है. महाकवि गेटे, शैली, कीट्स और महान विचारक तथा साहित्यकार थैकरे, रस्किन, लांगफैलो, मार्कट्वेन आदि की कृतियों में इंतरलाकेन के मनोरम दृश्यों की नैसर्गिक छाया स्पष्ट दिखाई देती है. अंगरेजी के रोमांटिक कवि बायरन ने अपनी विश्व प्रसिद्ध कृति 'मैनफ्रेड बेजनेज' यहीं लिखी थी.

लेकिन इंतरलाकेन मुझे रोक न सका. यंगफ्राऊ का आकर्षण अपनी ओर खींच रहा था. मैं उसी ओर बढ़ चला. कई पर्यटक साथ थे. उन में से अधिकांश विदेशी थे और बड़े हंसमुख थे. यूरोप में, इंगलैंड को छोड़ कर, साधारणतया

यात्रा नीरस नहीं होती. वहां के लोग विदेशियों और विशेष कर हम भारतवासियों से तो जानपहचान कर ही लेते हैं.

मैं ट्रेन में बैठा बाहर के दृश्य देख रहा था. पास ही दो युवतियां बैठी थीं. वे अपनी भाषा में बातचीत कर रही थीं. कभीकभी नजर बचा कर मेरी ओर भी देख लेती थीं. लगा जैसे वे मेरे ही बारे में बातें कर रही हैं. मैं ने उन की ओर मुड़ कर देखा तो उन में से एक अंगरेजी में पूछ ही बैठी, "क्षमा कीजिएगा, क्या आप भारतीय हैं?"

"जी, हां, आप का अनुमान सही है," मैं ने कहा.

"देखिए न, मेरी बहन कहती है कि आप भारतीय नहीं हो सकते. भारतीय इतने स्वस्थ नहीं होते."

मुझे हंसी आ गई. मैं ने कहा, "दुबलेमोटे और लंबेनाटे मनुष्य तो हर देश में होते हैं."

दोनों हंस पड़ीं. परिचय होने पर पता चला कि वे रईस घर की हैं और छुट्टियां मनाने निकली हैं. विचारविनिमय का सिलसिला चला. गांधी, नेहरू और रवीन्द्र से ले कर हमारी सांस्कृतिक तथा सामाजिक व्यवस्था ही नहीं, स्त्रियों के अधिकार, विवाह, भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या और यहां तक कि परिवार नियोजन आदि पर चर्चा हुई. उन के साथ जिस तरह बिना किसी झिझक के खुल कर बातें हुईं, उस तरह बातें करना हमारे देश में संभव नहीं. मैं शुरू में कुछ हिचक रहा था. स्वाभाविक भी था क्योंकि महिलाओं के साथ इन विषयों पर विचारविनिमय करने का पहले कभी मौका नहीं पड़ा था. लेकिन उन यूरोपीय बहनों के सहज, मुक्त भाव ने मेरी हिचक मिटा दी.

उस घटना की याद आते ही मन में विचार उठता है कि हम अपने यहां यथार्थ पर जो परदा डालते हैं, उसे पश्चिम में बुरा माना जाता है. वैसे यह बात काफी हद तक सही भी है क्योंकि हमारी वर्तमान संस्कृति में शिष्टाचार के नाम पर दकियानूसी खयालों का समावेश हो गया है और आचारभ्रष्ट होते हुए भी सदाचार का दिखावा किया जाता है.

विद्युत चालित हमारी ट्रेन पहाड़ की ऊंचाई पर क्रमशः बढ़ती जा रही थी. स्विट्जरलैंड में सभी ट्रेनें बिजली से चलती हैं. लेकिन हमारी यह यात्रा पूरी तरह से भिन्न थी. हमारे देश के दार्जिलिंग और शिमला की भांति यहां यंगफ्राउ की चोटी पर चढ़ने के लिए पहाड़ की ढलान को काटछांट कर रास्ता नहीं बनाया गया है. स्विस इंजीनियरों ने पहाड़ के भीतर ही सुरंगें काट दी हैं. ट्रेन उन में से गुजरती हुई चोटी की ओर बढ़ती जाती है. यात्रियों को पता तक नहीं चलता कि वे प्रति पल समतल भूमि से कितने ऊपर उठते जा रहे हैं. जहां पहाड़ काट कर बाहर का दृश्य देखने के लिए जगह बनाई गई है, वहां ट्रेन बीचबीच में कुछ देर के लिए रुकती भी है. यात्री वहां उतर कर पहाड़ की ऊंचाई से शोर मचा कर गिरते हुए झरने, इठलाती हुई पहाड़ी नदियां और स्वच्छ बर्फ पर तैरते हुए बादल देखते हैं.

हमारी ट्रेन बेनजेन में कुछ देर रुकी. सुन रखा था कि वहां से सूर्यास्त का बड़ा

ही अनुपम दृश्य दिखाई देता है. लौटते समय बेनजेन पहुंचा तो सूर्यास्त का ही समय था. अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहता था. बाहर की ओर आया. देखा कि सूर्य पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे जा रहा है और संध्या बर्फीले शिखरों तथा घाटियों पर केसरिया रंग कर के सूर्य को विदा दे रही है.

बेनजेन के बाद हमारी ट्रेन फिर सुरंगों में खो गई. ट्रेन के प्रकाश में पहाड़ी चट्टानों के अलावा कुछ नहीं सूझता था. हम कुछ ही देर में शेईदेग पहुंच गए. यहां से यंगफ्राऊ के लिए ट्रेन बदलनी पड़ती है. यंगफ्राऊ की खास यात्रा यहीं से शुरू होती है. ट्रेन फिर पर्वत के गर्भ में समा गई और चक्कर काटती हुई आइजमीयर (हिम सागर) पहुंची. यह स्थान १०,३६८ फीट की ऊंचाई पर पर्वत की विशाल ठोस चट्टानों को काट कर बनाया गया है और स्विस इंजीनियरिंग कौशल का एक उत्तम नमूना है. आइजमीयर जैसा नाम है, वैसा ही उसे पाया. गरम कपड़े पहन रखे थे, फिर भी ठंड महसूस होने लगी. यहां से हमारी यात्रा का अंतिम चरण आरंभ हुआ.

आखिर ट्रेन यंगफ्राऊ पहुंच ही गई. यह संसार का सब से ऊंचा रेलवे स्टेशन है. मैं ने यहीं पर यूरोप के सब से ऊंचे होटल 'बर्ग हाऊस' में नाश्ता किया. इस होटल में यात्रियों के लिए सभी सुविधाएं उपलब्ध हैं. स्की से हाथपैर टूटने पर प्राथमिक चिकित्सा की भी व्यवस्था है. रहने के लिए गरम और आरामदेह जगह तथा भोजन की सुव्यवस्था देख कर मन खुश हो गया.

लिफ्ट के सहारे यंगफ्राऊ की ऊंची चोटी पर जा पहुंचा. इस चोटी पर एक विशालकाय दूरबीन लगी हुई है जिस से समीपवर्ती देश देखे जा सकते हैं. यह सब देख कर चारों ओर बचपन में पढ़ी परियों की कहानी जैसी विचित्रता नजर आई. यहां बर्फ का एक मकान है जिस में बर्फ की ही मेजें, कुरसियां और मोटर मौजूद हैं. पैंसठ वर्षों से यह मकान और इस की सभी वस्तुएं आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं. सर्दी की वजह से यहां बर्फ पिघल नहीं पाती.

यंगफ्राऊ १२,००० फीट ऊंचा है. यद्यपि इस की ऊंचाई हिमालय की चोटियों से कम है, फिर भी इस की अपनी एक विशेषता है और अपना एक आकर्षण है. इस के पार्श्व में पहुंचना उतना कठिन नहीं. विज्ञान ने सब कुछ सुलभ बना दिया है. यहां प्रकृति की मुक्त छवि के विभिन्न रूपरंगों का आनंद जिस सरलता से लिया जा सकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है.

यह देख कर तो दांतों तले उंगली दबानी पड़ी कि इतनी खतरनाक ऊंचाई पर भी लोग स्की करते हैं. जरा भी चूके कि जान गई. हालैंडवासी जिस प्रकार समुद्र के चप्पेचप्पे की पूरी जानकारी रखते हैं, उसी प्रकार स्विस लोगों को अपने पर्वतों की जानकारी है. उन का साहस और उत्साह असीम है. यहां तक पहुंचना कभी असंभव रहा होगा, लेकिन स्विस इंजीनियरिंग कौशल ने यंगफ्राऊ का प्राकृतिक सौंदर्य संसार के लिए सुलभ बना दिया है.

मैं जिस समय यंगफ्राऊ के शिखर पर पहुंचा, वहां दोपहर थी. सूर्य के प्रकाश में बर्फ चांदी की तरह चमक रही थी. चारों ओर कुहासा था. उस शांत वातावरण में मानस पटल पर स्विट्जरलैंड की सारी यात्रा के चित्र एकएक कर उभर आए. सोचा, 'आखिर यह भी मर्त्यलोक है, यहां भी कभी अवसाद और

आवश्यकता रही होगी. लेकिन अब यहां गरीबी का दानव क्यों नहीं दिखलाई पड़ता?' मुझे लगा, मेरा स्विस गाइड मुझे देख कर मुसकरा रहा है. मुझे वहीं अनुभव हुआ कि श्रम का सही अर्थ समझने पर मनुष्य देवत्व पा सकता है.

गाइड ने पूछा, "सर्दी अधिक तो नहीं लग रही है? नीचे उतरेंगे?"

"स्वर्ग से नीचे उतरने को क्यों कहते हैं!" मैं ने उत्तर दिया.

हम दोनों हंस पड़े.

स्विट्जरलैंड जैसे एक छोटे से देश के जिन कुशल इंजीनियरों को विश्व की सब से ऊंची रेलवे लाइन बिछाने का यश प्राप्त है, उन्हीं को यूरोप के हिमालय आल्प्स को काट कर भूतल की सब से लंबी सुरंग बनाने का भी श्रेय है.

वैसे तो उन्होंने १७७८ में ही मोंटकेनिस नामक आठ मील लंबी सुरंग बना ली थी लेकिन सिंपलन सुरंग का तो अपना अलग ही महत्त्व है. इस सुरंग के बनाने का काम १८९८ में शुरू हुआ था और १९०५ में पूरा हुआ.

इस कठिन कार्य को १,००० मजदूरों ने रातदिन तीन पाली में काम कर के साढ़ेछः वर्षों में पूरा किया. सवाबारह मील लंबी इस सुरंग को कहींकहीं तो सात हजार फीट ऊंचे पहाड़ों का बोझ सहना पड़ता है. अधिक चौड़ी सुरंग बनाने से ऊपर के पहाड़ों के धंसकने का भय था, इसलिए ५६ फीट की दूरी पर दो समानांतर सुरंगें बनाई गई हैं और हर छः सौ फीट के बाद दोनों के बीच आनेजाने का मार्ग बना दिया गया है. इस तरकीब से काम भी शीघ्र समाप्त हो गया और सुरंगों के भीतर हवा के प्रवेश में भी आसानी हो गई.

ढाई मील तक सुरंग बन जाने पर एकदम ठंडे बर्फीले जल की धारा प्रबल वेग से निकल आई, जिस का बहाव प्रति मिनट साढ़ेदस हजार गैलन और दबाव प्रति इंच छःसौ पौंड था. इस आकस्मिक विपत्ति से वे घबराए तो, लेकिन उन्होंने साहस नहीं छोड़ा. काम चलता रहा. प्रकृति का कमाल देखिए, कुछ ही आगे बढ़ने पर गरम पानी की धारा निकल आई. दोनों के मिलने से तापमान संतुलित हो गया. सिंपलन सुरंग बन कर तैयार हो गई. इस सुरंग को देखने आज भी दुनिया के हर कोने से लाखों पर्यटक आते हैं और मनुष्य की इस रचना को देख कर विस्मित हो उठते हैं.

विश्व विजयी वीर नेपोलियन को आल्प्स के ऊपर अपनी सेना ले जाने में हजारों सैनिकों तथा अपरिमित युद्ध सामग्री से हाथ धोना पड़ा था. उसी आल्प्स पर अब मुट्ठी भर इंजीनियरों ने काबू पा लिया है. अब इस समय लोग रात में जेनेवा से चल कर ट्रेन में आराम से सोते हुए सुबह इटली के मिलान नगर पहुंच जाते हैं.

आल्प्स की गोद में

पश्चिमी योरुपियन संस्कृतियों का मेल?

मैं दो तीन बार स्विट्जरलैंड हो आया हूं—पहले १९५० और फिर १९६२ और १९६४ में. पहली बार मुझे दो महीने रहने का अवसर मिला था. सारा देश घूमने के लिए पर्याप्त अवकाश था. प्राकृतिक सौंदर्य देखने के साथसाथ मुझे स्विस जनता के निकट संपर्क में आने और उस का जीवन देखनेसमझने का भी मौका मिला. प्राकृतिक छवि तो आकर्षक थी ही परंतु मैं वहां के सामाजिक जीवन से कहीं अधिक प्रभावित हुआ. कर्मठ जीवन उस देश की बहुमुखी उन्नति का एकमात्र कारण है. कश्मीर में केवल प्रकृति मुसकराती है पर स्विट्जरलैंड में प्रकृति और स्विस जनता दोनों ही मुसकराते मिलते हैं.

आल्प्स की गोद में बसा हुआ वह एक छोटा सा देश है. उस की आबादी केवल ५६ लाख है, लेकिन वहां इतनी सी आबादी के लिए भी न पर्याप्त अन्न पैदा हो पाता है और न उस के पास खनिज पदार्थों का कोई भंडार ही है जिस से वहां की जनता अपने लिए खाद्य सामग्री तथा जीवन के अन्य आवश्यक साधन जुटा सके.

वहां परिवार नियोजन द्वारा जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण रखा जाता है. इसी का फल है कि पिछले कुछ वर्षों के दौरान संसार के दूसरे देशों की जनसंख्या में साठसत्तर प्रति शत तक वृद्धि हो गई है पर स्विट्जरलैंड की जनसंख्या उस अनुपात में नहीं बढ़ पाई.

खाद्य सामग्री तथा जीवन के दूसरे आवश्यक साधन जुटाने के लिए स्विट्जरलैंड के निवासियों ने निर्यात का मार्ग अपनाया है. उन्होंने अपने सभी शिल्पोद्योगों का यही एक उद्देश्य बना रखा है. वे विदेशों से कच्चा माल, जैसे लोहा, कोयला तथा अन्य आवश्यक खनिज पदार्थ मंगा कर अपने यहां तैयार किया हुआ माल, मशीनें, घड़ियां, दवाएं, बिजली का सामान आदि विदेशों को भेजते हैं. शिल्पोद्योगों की इस नीति के कारण स्विट्जरलैंड को विदेशों से काफी धन मिल जाता है. इस धन का कुछ भाग खाद्य सामग्री जुटाने में, कुछ कच्चे माल के आयात में और शेष राष्ट्र की उन्नति के लिए व्यय किया जाता है.

स्विस सामाजिक जीवन की रीढ़ शिल्पोद्योग ही है. इसी लिए वहां की जनसंख्या का ४२ प्रति शत भाग किसी न किसी रूप में शिल्प से संबंधित है. हर व्यक्ति की कार्यकुशलता तथा उस की क्षमता का वहां ध्यान रखा जाता है. स्विसों को सदा इस बात की चिंता बनी रहती है कि उन की वस्तुएं दूसरे देशों की

वस्तुओं के मुकाबले ऊंची किस्म की और टिकाऊ सिद्ध हों. यही कारण है कि संसार भर में स्विट्जरलैंड में बने डीजल और मैरीन के बड़ेबड़े इंजनों से ले कर छोटीछोटी घड़ियों तक की मांग सब से अधिक रहती है. अमरीका, फ्रांस और जर्मनी जैसे औद्योगिक राष्ट्रों के बीच भी स्विट्जरलैंड का अपना एक विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण स्थान है.

इस का एक दूसरा कारण यह है कि उन्होंने अपने उद्योगधंधों को अन्य देशों की भांति पूरी तरह मशीनों के हवाले नहीं किया है. इसी लिए उन की बारीकी और उन के टिकाऊपन का मुकाबला करना कठिन होता है. यहां कुटीर, शिल्प और वृहद् उद्योग में बड़ा सुंदर समन्वय हुआ है. उदाहरण के लिए, एक घड़ी में १२६ से २०० तक पुरजे लगते हैं और सामान्यतः हम समझते हैं कि इन के लिए वहां बड़ेबड़े कारखाने खड़े होंगे. लेकिन मैं ने ज्यूरा अंचल में हजारों कारीगरों को अपनेअपने घरों में ही इन पुरजों को तैयार करते देखा है. हर कारीगर घड़ी का एक न एक पुरजा तैयार करने में सिद्धहस्त होता है. इसी लिए अमरीका और ब्रिटेन की घड़ियां लाख कोशिश के बावजूद स्विट्जरलैंड की ओमेगा और रोलेक्स के आगे ठहर नहीं पातीं.

शिल्पोद्योग की यह नीति इतनी सफल हुई है कि आज स्विट्जरलैंड की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई है. पिछले वर्षों के दौरान बड़ेबड़े राष्ट्रों के सिक्कों की कीमतों में काफी उतारचढ़ाव आए, लेकिन स्विस सिक्के की कीमत स्थिर ही रही. इतना ही नहीं, स्विस सरकार को अपनी अर्थ व्यवस्था की दृढ़ता पर इतना भरोसा है कि वहां आप बैंकों में किसी भी देश की मुद्रा बदल सकते हैं. उन को इस बात का भय नहीं कि उन की मुद्रा बाहर चली जाएगी.

द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप सन १९५० में सारा यूरोप महंगाई के बोझ से दिनोंदिन दबता जा रहा था, लेकिन स्विट्जरलैंड में महंगाई अपना पैर ज्यादा नहीं पसार पाई. उन दिनों वहां अधिक आवश्यक वस्तुओं के दाम भी सामान्य थे—दूध आठ आने सेर था, दही बारह आने सेर, आटा एक रुपए सेर और सेब तीन आने का एक था.

चौदह वर्ष बाद यानी सन १९६४ में जब मैं तीसरी बार वहां गया तो मूल्यों में पचास प्रति शत वृद्धि तो अवश्य हो गई थी लेकिन औसत आय के हिसाब से वे मूल्य भारत के मुकाबले बहुत कम थे.

वहां मजदूरी के काम की इतनी अधिक गुंजाइश है कि पड़ोस के देशों से भी लोग आ कर मजे में जीविकोपार्जन करते हैं. इटली और ग्रीस के लोग काफी संख्या में आते हैं. कहींकहीं तो भारतीय डाक्टर भी बसे हुए हैं. उन की प्रैक्टिस भी अच्छी चलती है.

एक स्विस परिवार में आम तौर से चार व्यक्ति होते हैं. प्रति व्यक्ति हजार-बारह सौ रुपए मासिक आय के हिसाब से पूरे परिवार की औसत आय तीनचार हजार रुपए तक बैठती है. हमारे देश जैसी आर्थिक असमानता भी वहां नहीं दिखाई देती है कि एक ओर तो असंख्य परिवारों को एक वक्त खाना भी मुअस्सर नहीं और दूसरी ओर ऐसे लोग भी हैं जिन की मासिक आय कई लाख रुपए तक पहुंचती है. संपन्न से संपन्न स्विस परिवार की मासिक
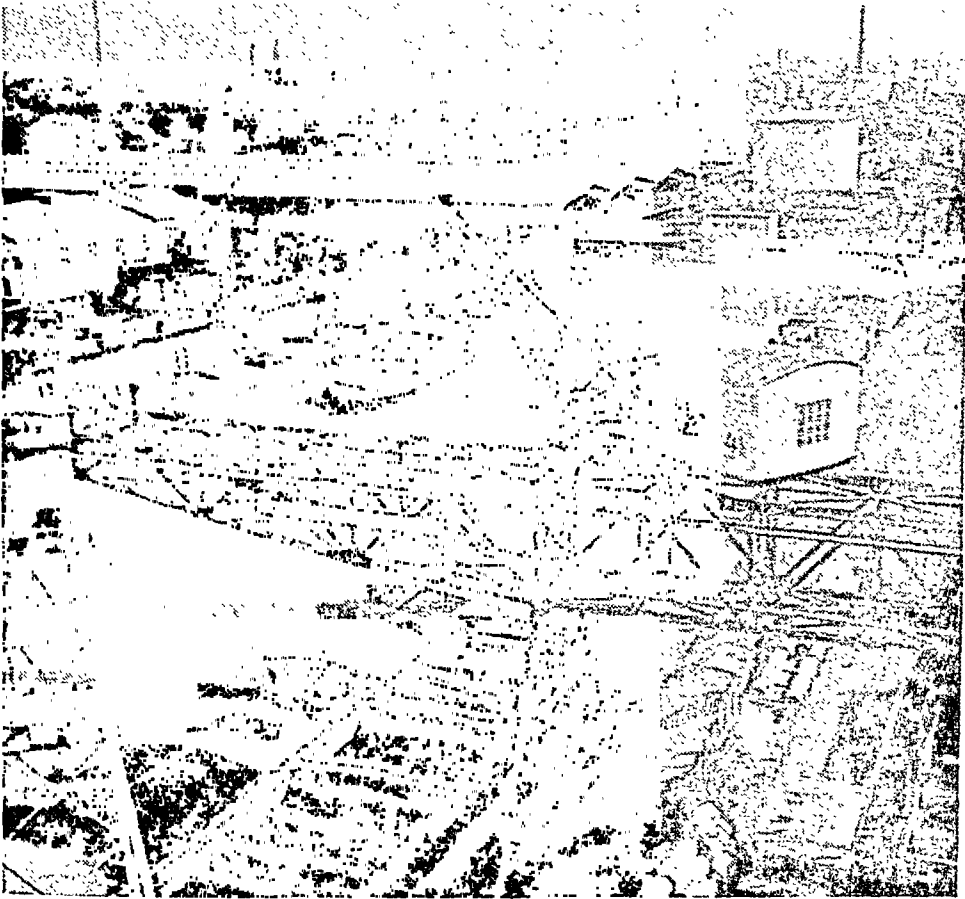
स्विट्जरलैंड का प्रमुख व्यापारिक केंद्र वेजल

आय, आय कर देने के बाद, पचीस तीस हजार रुपए से अधिक नहीं बैठती. यही वजह है कि अधिक असमानता न होने के कारण जनजीवन में विषमता नहीं दिखाई पड़ती.

उन का आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण भी इतना स्पष्ट और स्वस्थ है कि आज वे साम्यवाद को खुली चुनौती दे रहे हैं. उन का मत है कि राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक नहीं कि व्यक्ति के श्रम का जबरन राष्ट्रीयकरण कर के उसे मनुष्य से मशीन का पुरजा बना दिया जाए. स्विट्जरलैंड के सारे उद्योगधंधे गैर सरकारी क्षेत्र में हैं. केवल डाकतार, टेलीफोन और रेलवे सरकारी क्षेत्र में हैं.

उन्होंने इसी तरह अपनी राजनीतिक समस्या भी हल कर ली है. सारा देश २२ छोटेछोटे कैंटनों (स्वतंत्र राज्य सरकारों) का एक संघ है. प्रत्येक कैंटन स्वतंत्र है. उस के अपने अलग नियम और कानून बने हुए हैं. ये कैंटन कभी भी एकदूसरे के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते. यहां तक कि केंद्र भी इन के मामलों में दखल नहीं देता.

स्विट्जरलैंड की सीमा जर्मनी, फ्रांस और इटली से मिली हुई है. इन देशों के लोग सदियों पहले वहां जा कर बस गए थे. इसलिए वहां आज भी इन तीनों देशों की भाषाएं बोली जाती हैं. इन तीनों राष्ट्रों में अनेक बार भयानक युद्ध हो चुके हैं, रक्तपात हो चुका है पर स्विस राष्ट्रीयता के संगम पर जर्मन, फ्रेंच और

इतालियन सांस्कृतिक धाराएं अपना वैमनस्य भुलाकर त्रिवेणी बन गई हैं.

उत्तरपूर्व में जर्मनभाषी, पश्चिम के फ्रेंचभाषी और दक्षिण के इतालियनभाषी स्विस नागरिकों के शरीर में जर्मन, फ्रेंच और इतालियन पूर्वजों का रक्त भले ही वहता हो, अपने व्यक्तिगत जीवन में उन को अपनी भाषा और संस्कृति पर कितना भी नाज क्यों न हो, लेकिन राष्ट्र का सवाल उठने पर वे सभी एक हो जाते हैं. वे केवल इतना जानते हैं कि वे स्विस हैं और स्विट्जरलैंड उन का अपना देश है. काश, हम भारतीयों में भी यह भावना इतनी ही गहरी होती!

स्विट्जरलैंड में जहां भी जाइए, सभी जगह कर्त्तव्य और नैतिकता की भावना दिखाई पड़ती है. लोग शांतिप्रिय हैं. 'जियो और जीने दो,' के सिद्धांत का प्रभाव उन के जीवन और उन की विचारधारा में स्पष्ट झलकता है. चोरी और उचक्केपन का कहीं नाम नहीं है. पेरिस और काहिरा की तरह वहां परदेसियों, बच्चों, बूढ़ों और स्त्रियों के ठगे जाने का भय भी नहीं है. पुलिस का काम शांति बनाए रखना और लोगों की सहायता करना है. विदेशियों के निरंतर आवागमन के कारण उन की सहायता के लिए पुलिस विभाग का रहना जरूरी है.

मैं ने इस का प्रत्यक्ष अनुभव भी किया है. एक बार मेरा पासपोर्ट खो गया था. चित्त उदास और परेशान था क्योंकि उस के विना विदेशों में बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं. पासपोर्ट के साथ ही कुछ रुपए और कुछ जरूरी कागजात भी थे. चिंता में था, लेकिन दूसरे दिन सुवह की डाक से पासपोर्ट आ पहुंचा. सारे कागजात और रुपए ज्यों के त्यों थे. दूसरा कोई देश होता तो कागजात और पासपोर्ट भले ही मिल जाते पर रुपए शायद ही मिलते. दरअसल जिन सज्जन को वह पासपोर्ट मिला था, उन्होंने भारतीय नाम देख कर उसे एयर इंडिया के जेनेवा कार्यालय को भेज दिया और वहां से मेरे पास भेज दिया गया.

मैं एक बार जेनेवा के एक कैफे में खूंटी पर फैल्ट हैट लटका कर टेबल पर चला गया था. काफी पी कर पैसे चुकाने के बाद जब चलने लगा तो देखा हैट नदारद. आश्चर्य तो हुआ, पर चुपचाप अपने होटल लौट आया. दूसरे दिन जब फिर पहुंचा तो देखा हैट उसी खूंटी पर ज्यों का त्यों टंगा था और साथ में एक पुर्जा था—'भूल के लिए खेद है.'

स्विस लोगों में अनुचित लाभ उठाने की प्रवृत्ति भी नहीं दिखाई दी. इस का भी मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है. मेरे छोटे भाई तपेदिक की चिकित्सा के लिए लेजां में रहते थे. लेजां पहाड़ी पर बसा हुआ एक छोटा सा कस्बा है और अपनी खास जलवायु के कारण तपेदिक की चिकित्सा के एक केंद्र के रूप में भी प्रसिद्ध है. वहीं भाई की चिकित्सा के सिलसिले में मुझे विश्वविख्यात चिकित्सक और शल्यशास्त्री डाक्टर जेनेर से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ. उन्होंने मेरे भाई का आपरेशन किया. यद्यपि आपरेशन काफी बड़ा था, लेकिन पारिश्रमिक के रूप में उन्होंने केवल बारह सौ रुपए ही लिए. वे आपरेशन के बाद भी १५ दिन तक प्रति दिन जा कर रोगी को देख आते थे. उस की अलग से कोई फीस उन्होंने नहीं ली. सहज ही मेरा ध्यान अपने गरीब देश के चिकित्सकों की बढ़ी हुई फीस की ओर चला गया.

स्विट्जरलैंड सदा से शांतिप्रिय और निरपेक्ष राष्ट्र रहा है. उस के सीमावर्ती

देश सदियों से आपस में लड़तेझगड़ते और मारपीट करते रहे हैं, पर उस ने स्वयं कभी किसी का पक्ष नहीं लिया. जर्मनी, इटली और फ्रांस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र यदि चाहते तो दो महायुद्धों के दौरान कभी भी अपने इस छोटे से पड़ोसी को कुचल सकते थे, पर उन को भी इस की निरपेक्षता का लिहाज करना पड़ा. उन्होंने एक ऐसे राष्ट्र की आवश्यकता महसूस की जहां बैठ कर वे समझौते की बातचीत कर सकें. ऐसी स्थितियों में स्विट्जरलैंड ने संदेशवाहक का काम कर के विपक्षियों को एकदूसरे के निकट आने का अवसर दिया. इस के अतिरिक्त, जब युद्ध से जर्जर यूरोप के नागरिक अन्नवस्त्र के अभाव में त्राहित्राहि करने लगे, तब इस छोटे से राष्ट्र ने उन को अन्नवस्त्र दिया और असहाय तथा अनाथ बच्चों का पालन-पोषण भी किया.

इस छोटे से राष्ट्र ने सेना का संगठन अपनी शांतिप्रिय नीति के अनुकूल ही किया है. स्विसवासी न तो किसी दूसरे देश पर अधिकार करने की इच्छा रखते हैं और न ही किसी दूसरे राष्ट्र का अधिकार अपनी धरती पर सहन करने को तैयार हैं. उन का समूचा सैनिक संगठन सुरक्षा की दृष्टि से ही किया गया है.

१९ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक स्विस नागरिक के लिए चार महीने की सैनिक शिक्षा अनिवार्य है. इस के अतिरिक्त उन को अभ्यास के लिए प्रति वर्ष एक निश्चित अवधि तक सैनिक दस्तों में रहना पड़ता है. इस प्रकार प्रत्येक नागरिक एक समर्थ सैनिक भी होता है. आवश्यकता पड़ने पर स्विस सेना बात की बात

में आधुनिकतम अस्त्रों से लैस हो कर मातृभूमि की रक्षा के लिए डट सकती है, लेकिन स्विस सरकार एक विशाल सेना रखने के व्यय भार से हमेशा ही मुक्त रहती है. राष्ट्र का धन सेना और अस्त्रशस्त्रों पर खर्च न कर के अन्य उपयोगी तथा उत्पादन कार्यों में लगाया जाता है.

स्विस लोगों का घरेलू जीवन भी यूरोप के अन्य देशों से थोड़ा भिन्न है. उन में फ्रांस के लोगों जैसी स्वच्छंदता नहीं. उन की बातचीत, व्यवहार और काम के तरीकों में एक संयमित गति रहती है. जीवन में स्वतंत्रता है, पर पेरिस और वेनिस जैसी नहीं. स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि वह नैतिकता की सीमा पार कर जाए. स्विट्जरलैंड में जहां भी किसी स्त्री या पुरुष ने सीमारेखा को पार किया, वहीं वह लोगों की निगाह से गिर जाता है. वहां समाज में स्त्रियों का दरजा बहुत कुछ भारत जैसा है. हां, हमारे यहां स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हैं और वे राजनीति में भी दखल रखती हैं लेकिन स्विस स्त्रियां इन दोनों अधिकारों से वंचित हैं.

स्विस लोगों को देशविदेश के पर्यटकों से करोड़ों रुपए की आमदनी होती है. संसार के सभी देशों से लाखों की संख्या में पर्यटक यहां आ कर प्रकृति की अनुपम छटा देख कर व्यस्त और थके हुए जीवन से कुछ समय के लिए छुटकारा पाते हैं. इन पर्यटकों का आदरसत्कार भी एक बड़ा अच्छा व्यवसाय हो गया है, जिस में जनसंख्या का काफी बड़ा भाग लगा हुआ है. स्विस लोगों ने अपने अन्य धंधों की भांति इसे भी एक सुव्यवस्थित रूप दे दिया है.

सभी रमणीय स्थानों में गाइड और होटल मौजूद हैं. उन के कारण पर्यटकों को यह नहीं लगता कि वे किसी अपरिचित और अनजान देश में आ गए हैं. सभी जगह स्वाभाविक मुसकान के साथ उन का स्वागत किया जाता है. वे अपनी जेब के मुताबिक होटल चुन सकते हैं. १० से ७० रुपए प्रति दिन तक के होटल मिलते हैं. इस किराए में रहने के साथसाथ सुबह का नाश्ता भी शामिल रहता है.

सरकार भी पर्यटकों के लिए हर प्रकार की सुविधाएं जुटाती है. प्रत्येक स्टेशन पर स्टेट बूफे हैं, जहां सस्तेदामों में अच्छा भोजन मिल जाता है. रेलवे की ओर से भी सस्ती दर पर पंद्रह दिन तक इच्छानुसार यात्रा के टिकट मिलते हैं, जिन्हें ले कर आप कहीं भी जा सकते हैं.

यों तो स्विट्जरलैंड के सभी शहरों और कस्बों को स्विस जनता ने आकर्षक ढंग से सजायासंवारा है, उन की सफाई का पूरा खयाल रखा है, लेकिन मुझे जेनेवा, बर्न, बेजल, ज्यूरिख और ल्यूजर्न विशेष सुंदर लगे.

जेनेवा अपने ही नाम की झील के दक्षिणी किनारे पर बसा हुआ है. शहर की आबादी तो डेढ़ लाख ही है, पर इस का महत्त्व अंतरराष्ट्रीय है. प्रथम महायुद्ध के बाद 'लीग आफ नेशंस' का प्रधान कार्यालय यहीं स्थित था. आज भी संसार की बड़ीबड़ी राजनीतिक समस्याएं हल करने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधि और राजदूत यहां अधिवेशनों और सम्मेलनों में एक साथ बैठ कर विचार करते हैं. ऐसे अधिवेशनों से संसार में स्विट्जरलैंड का यश बढ़ता है और इसे अच्छाखासा आर्थिक लाभ भी होता है.

वर्न के भारतीय दूतावास में मैं ने अपने देश के प्रमुख नेताओं के चित्र देखे. यूरोप में काफी लंबे अरसे के बाद मुझे यहीं के वातावरण में अपने देश की सहज आत्मीयता मिली. दूतावास यहां से एक बुलेटिन के रूप में भारतीय समाचार प्रकाशित करता है. स्विट्जरलैंड की राजधानी होने के अलावा वर्न एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर भी है.

बेजल उत्तरपश्चिमी कोने पर बसा हुआ है और व्यापार की दृष्टि से राइन नदी का प्रमुख बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र है. अंतरराष्ट्रीय लेनदेन के कारोबार में यह अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है. स्विट्जरलैंड के रासायनिक उत्पादनों के मामले में यह सब से बढ़ाचढ़ा है. विश्व प्रसिद्ध औषधि निर्माता सीबा कंपनी का कारखाना यहीं है. बेजल में ही संसार की प्रसिद्ध आयात-निर्यात कंपनियों के कार्यालय हैं. यहां प्रति वर्ष अप्रैल में एक औद्योगिक प्रदर्शनी आयोजित की जाती है जिस में संसार के विभिन्न देशों से लाखों ग्राहक पहुंचते हैं.

ज्यूरिख यहां का सब से बड़ा शहर है. इस की आबादी लगभग चार लाख है. इस की गणना विश्व के सब से सुंदर और बड़े शहरों में की जाती है. यह संसार भर में घड़ियों और मशीनों के निर्माण का एक प्रमुख केंद्र माना जाता है. सभी कलकारखाने प्रायः बिजली से चलाए जाते हैं. इसी लिए ज्यूरिख के आसपास कलकारखानों की भरमार होते हुए भी गर्द और धुएं का नाम नहीं है. उन की बनावट भी स्कूलों जैसी है.

इस शहर की एक विशेषता यह है कि अन्य शहरों की भांति यहां लोग रात में काफी देर तक क्लबों और रेस्टोरेंटों में नहीं रहते. सारा वातावरण रात के १२ बजे तक शांत हो जाता है.

इस के आसपास प्राकृतिक दृश्यों का भी काफी आकर्षण है. पहाड़ियां, झीलें और वन बरबस ही आकर्षित कर लेते हैं. ज्यूरिख यों भी झील के किनारे बसा हुआ है और फिर शहर के बीचोबीच लिम्मत नदी की धारा इस की छटा को और भी कई गुनी बढ़ा देती है. विश्वप्रसिद्ध होटल दोल देयर यहीं पर है. इस होटल में प्रायः अमरीकन और भारतीय ही ठहरते हैं.

छोटे कस्बों में मोंत्रो, भेवे, लूजां, न्यू सेटल आदि बड़े ही सुंदर कस्बे हैं. लूजां और न्यू सेटल विद्या के केंद्र भी हैं. यहां विदेशों से हजारों छात्र पढ़नेलिखने के लिए आते हैं.

हालैंड

जहां असंभव भी संभव हो गया

राम ने समुद्र को मानव के पराक्रम और पौरुष की एक सीमा के रूप में स्वीकार नहीं किया था. रामेश्वरम् का पुल इस का साक्षी है. यह बात त्रेता युग की है और एक किंवदंती मालूम पड़ती है. लेकिन चौंकिए नहीं! इस संसार में एक ऐसा देश भी मौजूद है जिस ने महासागर को अपने पराक्रम की सीमा मानने पर विवश कर दिया है. उस ने महासागर को बांधा ही नहीं, उसे मीलों पीछे धकेल दिया है, उस से अपने उपयोग के लिए लाखों एकड़ भूमि छीन ली है और अपनी लगातार मेहनत के बल पर उसे उपजाऊ बना लिया है. इसी लिए इस संबंध में एक कहावत प्रसिद्ध है : विश्व को परमात्मा ने बनाया लेकिन हालैंड को डचों ने.

हालैंड समुद्र से नीचा है, इसलिए उसे नीदरलैंड यानी निचली भूमि वाला प्रदेश भी कहा जाता है. हालैंडवासी डच कहलाते हैं.

महाभारत में एक कथा है कि किसी नगर के समीप एक दानव रहता था. उस की भूख मिटाने के लिए नगर के परिवारों को बारीबारी से प्रति दिन एक व्यक्ति भेजना पड़ता था. हालैंडवासियों को भी अपने पड़ोसी दानव समुद्र से जूझने के लिए लगातार ८०० वर्षों तक अपने हर परिवार से सबल स्त्रीपुरुषों को हाथों में बेलचे थमा कर निश्चित समय के लिए मौत और जिंदगी की लड़ाई पर बारीबारी से भेजना पड़ता था. अंत में वे विजयी हुए.

लेकिन हमेशा से पराक्रमी समुद्र भला इतनी जल्दी अपनी हार क्यों मानता! एक बार तो वह क्रोध से कांपता हुआ, प्रलयंकारी गर्जनतर्जन करता हुआ बांध तोड़ कर आगे बढ़ गया. सारा का सारा हालैंड जलमग्न हो गया था. चारों तरफ विनाश ही विनाश दिखाई देने लगा था. धनजन की इतनी क्षति हुई कि अनुमान लगाना संभव नहीं.

यह घटना आज से लगभग ५०० वर्ष पहले की है. तब न आज जैसे साधन थे और न सुविधाएं उपलब्ध थीं. केवल कुछ पनचक्कियों द्वारा अथाह जलराशि को उलीचना तो टिटहरी का समुद्र सोखने का प्रयास जैसा ही था. उस आपत्तिकाल में पड़ोसी राष्ट्रों ने अन्नवस्त्र आदि से हालैंड को सहायता तो दी पर ताने भी कम नहीं दिए, 'चले ये कुदरत को बदलने! अरे, भला कभी समुद्र को भी बांधा जा सकता है!'

हालैंडवासियों के क्षोभ का अंत नहीं था. लेकिन संकट के समय वे हिम्मत न

हारे और अपने पुरुषार्थ द्वारा उन तीखे व्यंग्य वचनों का करारा जवाब देने को कटिबद्ध हो गए. सारे देश में समुद्र के खिलाफ युद्ध पर जुट जाने का ढिंढोरा पिटवा दिया गया. बचे हुए बच्चे, नौजवान, बूढ़े और युवतियां सभी ने मिल कर दृढ़ प्रतिज्ञा की— कार्यं वा साधयामि, शरीरं वा पातयामी अर्थात या तो समुद्र बांध कर रहेंगे या मौत का आलिंगन करेंगे!

सदियों तक हालैंडवासियों का एकमात्र लक्ष्य समुद्र पर विजय प्राप्त करना ही था. दिनरात के अथक परिश्रम तथा अनेक बलिदानों के बाद एक दिन उन की मनोकामना पूरी भी हुई. उन्होंने अपनी खोई हुई जमीन को समुद्र से छीन कर एक बड़ा ही सुदृढ़ बांध (डाइक) का निर्माण किया, जिस का कुछ हिस्सा आज भी मौजूद है.

इस अभूतपूर्व विजय ने हालैंडवासियों को संसार के दूसरे राष्ट्रों की नजरों में बहुत ऊंचा उठा दिया और वे स्वयं भी अपनेआप को पराक्रमी, सहनशील और धैर्यवान अनुभव करने लगे. इन सैकड़ों वर्षों के युद्ध में वे समुद्र के स्वभाव को इतनी अच्छी तरह पहचान गए कि उन की नौकाएं बिना रोकटोक विश्व के कोनेकोने की यात्रा करने लगीं. उन की गणना प्रथम कोटि के नाविकों में होने लगी.

उस समय ब्रिटिश की नौशक्ति काफी बढ़ीचढ़ी थी. भला डचों को इस क्षेत्र में बढ़ते हुए वे कैसे देख सकते थे? एक दिन अकारण ही उन्होंने इस गरीब थके हुए देश पर धावा बोल दिया. परंतु जिस वीर जाति ने समुद्र के छक्के छुड़ा दिए थे वह मनुष्यों से कहां हार मानने वाली थी? उन्होंने अंतिम सांस तक शत्रुओं का वीरता के साथ मुकाबला किया. नतीजा यह हुआ कि सन १६७४ ई० में अंगरेजों को संधि करने पर बाध्य होना पड़ा.

अठारहवीं सदी के अंत में नेपोलियन बोनापार्ट की आंधी सारे यूरोप पर छा गई थी. दूसरे देशों की तरह, छोटे से हालैंड को भी उस के सामने घुटने टेक देने पड़े थे, पर कुछ वर्षों बाद ही वह पुनः स्वतंत्र हो गया.

स्वाधीनता की इस नवीन अवधि के १५० वर्षों में डचों ने अपने देश को हर तरह उन्नत बनाया. बड़ेबड़े जहाज बनाने के कारखाने खुल गए, बिजली के सामानों, मशीनों और रेडियो का तो यह प्रमुख निर्माता बन गया. हेग में विश्व का उच्चतम न्यायालय स्थापित हुआ. एमस्टर्डम दुनिया के बहुमूल्य हीरों के क्रयविक्रय का मुख्य केंद्र बना और रोटरडम लंदन के बाद यूरोप का सब से बड़ा बंदरगाह.

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, डच कष्ट सहने के अभ्यासी होते हैं, पर वे बड़े सैलानी, कलाप्रेमी, खानेपीने के शौकीन और फूलों के अनुरागी भी कम नहीं होते. प्रत्येक घर में फूलों का एक छोटा सा बगीचा और कुछ हाथ की बनी तस्वीरें मिलेंगी, चाहे वे सुप्रसिद्ध चित्रकारों की हों अथवा उन की स्वयं की बनाई हुई.

वहां वर्ष में कई बार फूलों की प्रदर्शनियां होती हैं, जिन में अच्छे फूलों पर इनाम दिए जाते हैं. इस तरह हालैंड को फूलों के व्यापार से भी बड़ी आमदनी हो जाती है. प्रदर्शनी में आए हुए फूलों के पौधों में से किसीकिसी के तो बीस हजार रुपयों तक दाम लग जाते हैं.

हालैंड और डेनमार्क में साइकिलों का प्रचलन है. छुट्टी के दिन यदि हल्की सी धूप निकल आती है तो हजारों की संख्या में वे लोग बालबच्चों के साथ साइकिलों
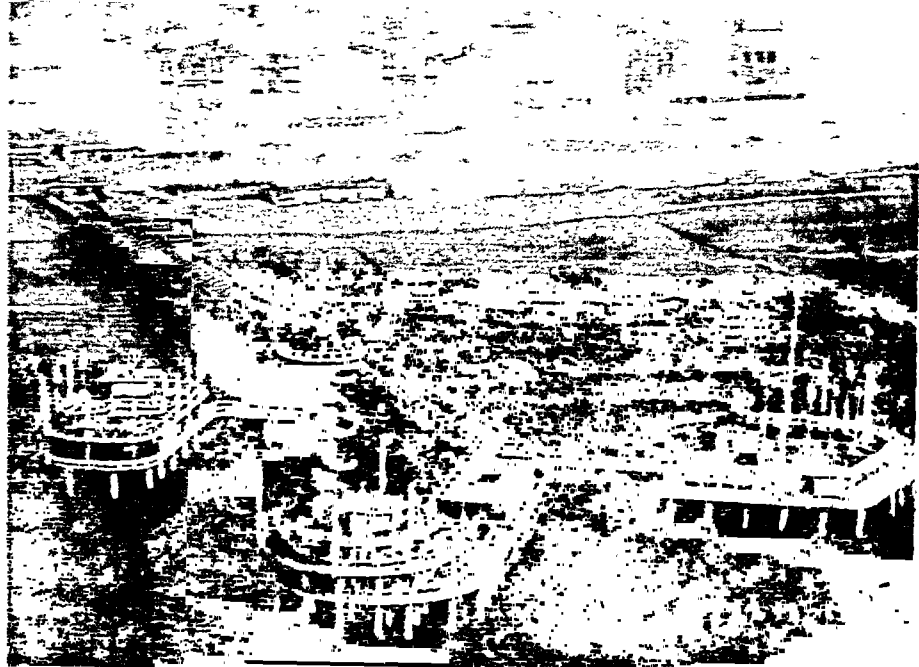
गोदियों की कलापूर्ण निर्माण शैली का एक नमूना : हेग में सेवेनिगेन का बंदरगाह

पर सवार हो कर दूर समुद्र तट या डाइक पर सैर के लिए चले जाते हैं. एक साइकिल पर पतिपत्नी और दो बच्चों का बैठना तो साधारण बात है. इस दृश्य का संवाद नई दिल्ली की उन सड़कों से लगाया जा सकता है जहां दफ्तरों की छुट्टी के समय सड़क अनगिनत साइकिल सवारों से भर जाती है.

हालैंड में गोपालन भी एक मुख्य धंधा है. एकएक गाय से प्रति दिन मनमनभर दूध पाना तो साधारण बात है. वहां की गायें हमारे यहां की भैंसों से भी बड़ी होती हैं. दक्षिण व उत्तरी अमरीका वाले अच्छी नस्ल के बछड़े पैदा करने के लिए यहां से एकएक सांड़ पचासपचास हजार रुपयों तक मूल्य दे कर खरीदते हैं. अपने यहां पिलानी (राजस्थान) में भी हालैंड का सांड़ है जिस से उत्पन्न गायों के ४५ पौंड तक दूध प्रति दिन होता है.

यहां खेलकूद भी जीवन का एक प्रमुख अंग है. वैसे तो सभी तरह के खेल होते हैं, परंतु शीतकाल में जब नहरें जम जाती हैं, तब बर्फ पर स्की का खेल शुरू हो जाता है. इसी तरह गरमी में इन्हीं नहरों में नावों की दौड़ और तैरने की प्रतियोगिताएं भी होती रहती हैं.

हालैंड के सभी शहर समुद्र के किनारे पर [illegible] स्नान और तैरना जीवन का आवश्यक अंग हो ग[illegible] व्यवस्था है. [illegible] देशों की तरह यह[illegible] स्नान करते [illegible] बैनिस और [illegible] नग्नावस्था में [illegible] वस्तुओं का [illegible] देशों की [illegible] पनीर, मक्खन [illegible] सस्ते हैं.

इस छोटे [illegible] संग्रहालय ([illegible] एमस्टर्डम और [illegible]

यद्यपि इंगलैंड की तरह हालैंड भी एक साम्राज्यवादी देश है, पर दोनों के वर्तमान शासकों के रहनसहन और शानशौकत में बहुत बड़ा अंतर है. ब्रिटेन की महारानी का निजी खर्च प्रति वर्ष लाखों रुपए होता है, जब कि हालैंड की महारानी जुलियाना बहुत ही साधारण ढंग से अपने पति और बच्चों के साथ हेग के एक देहाती अंचल में रहती हैं. उन की तीन लड़कियां पब्लिक स्कूल में आम बच्चों के साथ ही पढ़ती हैं.

मैं सर्वप्रथम एंटसर्व से ट्रेन द्वारा रोटरडम गया. रास्ते में एक सीमा चौकी पर पासपोर्ट की जांच की गई. हमारे देश की चौकियों की तरह यहां मालअसबाब उलट-पलट और अव्यवस्थित नहीं किया गया और न वस्त्र खुलवा कर तलाशी ही ली गई. इस का कारण है कि इन देशों के आपसी संबंध अच्छे हैं और लोगों का नैतिक स्तर भी ऊंचा है. यहां पूर्वी देशों जैसा तस्कर व्यापार नहीं होता.

रोटरडम की आबादी करीब दस लाख है. द्वितीय महायुद्ध में जर्मनों ने बमबारी से कुछ दिनों में ही इस के दस हजार मकान और तेरह सौ कारखाने नष्ट कर दिए थे. इस से जो हानि हुई उस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. तेजी से रोटरडम का पुनर्निर्माण हुआ और थोड़े समय में ही वह पहले से अधिक सुंदर और समृद्ध बन गया. यह डचों के परंपरागत मेहनती होने का सबूत है.

समुद्र के किनारे, राइन तथा मांज नदियों के मुहाने पर स्थित होने के कारण, रोटरडम विश्व के सर्वोत्तम बंदरगाहों में गिना जाता है. उत्तरी जर्मनी और स्विट्जरलैंड के आयातनिर्यात के लिए यह एक बड़ा बंदरगाह है, और इसे भी उन देशों के विकास का लाभ मिल रहा है.

रोटरडम बंदरगाह के गोदामों में आठ करोड़ मन माल रखने की जगह है. प्रति दिन यहां तीस लाख मन माल चढ़ाया और उतारा जाता है. इस काम के लिए ३५० छोटीबड़ी मशीनें लगी हुई हैं. बंदरगाह के अनुरूप ही, यहां विशाल रेलवे-स्टेशन है, जहां केवल मालअसबाब उतारनेचढ़ाने के लिए साइडिंग की लंबाई १२५ मील है.

दर्शनीय इमारतों में प्रथम स्थान यहां के नवनिर्मित वाणिज्यभवन का है, जिस के निर्माण में पांच करोड़ रुपए खर्च हुए हैं. उस में सब प्रकार के व्यावसायिक और औद्योगिक कार्यालय हैं. साथ में माल रखने के गोदाम भी हैं. इस से आपसी विनियम में समय, शक्ति और व्यय तीनों की बचत हो जाती है. अगर भारत के कलकत्ता, बंबई और मद्रास आदि बड़ेबड़े औद्योगिक केंद्रों में भी इसी तरह के वाणिज्यभवनों का निर्माण हो जाए, तो लोगों के श्रम की बड़ी बचत हो और कितनी ही अनावश्यक कठिनाइयां दूर हो जाएं.

अन्य दर्शनीय स्थानों में, यहां नदी के नीचे बनाई हुई सुरंग की सड़क भी है. पहले इस नदी के ऊपर बने हुए पुल द्वारा आवागमन होता था, परंतु ज्योंज्यों रोटर-डम का महत्त्व बढ़ता गया, उन्हें इस सुरंग की अधिकाधिक आवश्यकता महसूस होती गई.

रोटरडम से ट्रेन द्वारा शाम को विश्वविख्यात नगर व हालैंड की राजधानी हेग पहुंचा. हेग न केवल हालैंड की राजधानी है, बल्कि यहां विश्व का उच्चतम न्यायालय भी है, जिस के अधिवेशन संसार के प्रसिद्ध पीस पैलेस (शांति भवन)
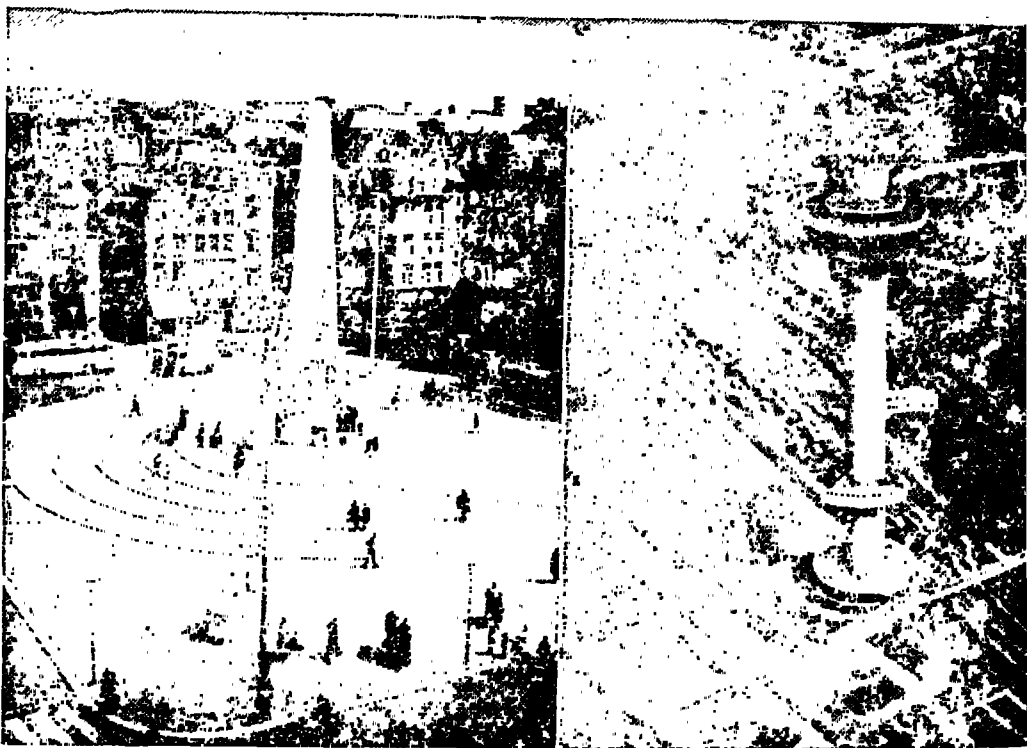
एमस्टर्डम नगर का हृदय स्थल : मध्य में हालैंड का राष्ट्रीय युद्ध स्मारक. दाएं : रोटरडम नगर में स्थित विमान टावर जो पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र है

में होते हैं. सर्वप्रथम इस भवन के निर्माण के लिए सन १९०० ई० में अमरीका के उदार, मानवताप्रेमी अरबपति एंड्रयू कारनेगी ने ६० लाख रुपए दिए थे. उस के बाद अन्य देशों ने भी इसे बनाने में काफी सहयोग दिया था. सन १९१३ ई० में यह भव्य भवन बन कर तैयार हो गया था. इस में अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के अलावा कानूनी पुस्तकों का भी विशाल संग्रह है.

सुंदरता व भव्यता की दृष्टि से हेग मुझे यूरोप के अन्य सभी नगरों से अधिक आकर्षक और मनोरम प्रतीत हुआ. डचों को अपने इस नगर पर नाज है. वे उसे यूरोप का सब से सुंदर नगर कहते हैं. यहां विश्व की विविध समस्याओं के समाधान के लिए वर्ष में पचासों सम्मेलन होते रहते हैं, जिन में सम्मिलित होने के लिए संसार के विभिन्न भागों से हजारों की संख्या में बड़ेबड़े राजनीतिज्ञ और विधिवेत्ता आते हैं. इस से हालैंड को राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के साथसाथ विदेशी मुद्रा भी कम नहीं प्राप्त होती.

हेग के सेवेननिगेम समुद्रतट की स्मृति मेरे मन में आज भी ताजी है. यह यूरोप के प्रसिद्ध समुद्री तटों में से एक है. मीलों तक पक्की सड़क है. एक तरफ बड़ेबड़े होटलों की कतारें हैं, दूसरी तरफ समुद्री रेत पर नहाने वालों के लिए काठ के छोटेछोटे केबिन बने हुए हैं.

काफी घूमने व देखने के बाद थकावट महसूस हुई और भूख भी जोरों से लग आई. इसलिए निकट के 'विक्टोरिया' नामक होटल में पहुंचा. इस का विशाल और सुसज्जित डाइनिंग हाल देख कर मैं दंग रह गया. फर्श पर कीमती

कालीन बिछे हुए थे और ऊपर वेनिस के बिल्लौरी कांच के बड़ेबड़े फानूस लटक रहे थे. इस होटल की गणना यूरोप के सर्वश्रेष्ठ होटलों में है. कहते हैं कि महारानी विक्टोरिया भी कभीकभी राजकाज से अवकाश निकाल कर यहां आ कर ठहरती थीं.

परिचारिका को मैं ने दूध, मक्खन और रोटी लाने के लिए कहा. यूरोप के इन उत्तरी देशों में चाय और काफी की अपेक्षा दूध बहुत ही सस्ता है. यहां एक बात विशेष उल्लेखनीय है कि इन देशों में दूध के लिए केवल गाय का ही उपयोग होता है, भैंसों या बकरियों का नहीं.

मेरी मेज पर पहली बार जितनी खाद्यसामग्री आई, उस से क्षुधा शांत नहीं हुई तो परिचारिका को बुला कर एक बार और लाने को कहा. यूरोप के इन बड़ेबड़े होटलों में जो परिचारिकाएं रखी जाती हैं, वे बहुत ही स्वस्थ और सुन्दर युवतियां होती हैं. स्त्रियों में मातृभावना प्रायः सर्वत्र समान रूप से मिलती है, चाहे वे किसी भी आयु अथवा देश की क्यों न हों.

परिचारिका ने मुझे एक ग्राहक मात्र ही न समझ कर विदेशी अतिथि के रूप में देखा और दूसरी बार बहुत सा मक्खन, रोटी और दूध ले आई. खापी कर तृप्त होने के बाद बिल आया तो केवल सवा दो रुपए का. इतनी ही सामग्री का बंबई, कलकत्ता या नई दिल्ली के होटलों में पांचछः रुपयों से कम नहीं लगता. हालैंड के इस होटल की खाद्यसामग्री से अपने यहां के होटलों की कोई तुलना ही नहीं हो सकती.

हेग और सेवेननिगेम के बीच में छोटे बच्चों के लिए मदुरोडेम नाम का एक बौना आदर्श शहर बसा हुआ है. इस का क्षेत्रफल तो कुल साढ़े चार एकड़ है, परंतु इतनी सी जगह में ट्रेन, बस, एयरपोर्ट, होटल, मकान, कारखाने, बाजार, रेस्तरां, टाउनहाल आदि सभी कुछ हैं. इस के निर्माण का भी अपना एक अनोखा इतिहास है. हालैंड के एक धनी व्यापारी का किशोर पुत्र युद्धकाल में जर्मनों की कैद में भीषण यातनाओं से मार डाला गया था. उसी की यादगार में बच्चों का यह शहर बसाया गया है. इस आधुनिक लिलिपुटियन शहर (बौने नगर) को देखने के लिए लाखों की संख्या में यात्री आते हैं. जिन से साधारण शुल्क लिया जाता है और वह सारी निधि टी. बी. सेनीटोरियम को दे दी जाती है. इस प्रकार लोगों के मनोरंजन के साथ एक उपयोगी संस्था के संचालन में भी बड़ी सहायता मिल जाती है.

ऊपर हम उल्लेख कर आए हैं कि डच फूलों के बड़े शौकीन होते हैं. उन्होंने सुंदर तरीके से इस शौक को देश की आमदनी का भी एक जरिया बना दिया है. कोकनहाफ शहर में सिर्फ फूलों के ही बाग हैं, जहां सैकड़ों तरह से प्रयोग और परीक्षण उन पर होते रहते हैं.

विभिन्न नस्लों के पशुओं की मिश्रित जातियां जैसे तैयार की जाती हैं वैसे ही भिन्नभिन्न जाति के पौधों की कलमों के चश्मे चढ़ा कर नाना प्रकार के रंगों और आकृतियों के फूल उपजाए जाते हैं, जिन्हें देखने के लिए विदेशों से लाखों की संख्या में यात्री आतेजाते रहते हैं. कोकनहाफ के समीप ही आल्समीर नामक शहर में इन फूलों का नीलाम प्रति सप्ताह होता है. इस शहर का अस्तित्व ही यदि फूलों के इस व्यापार पर आधारित कहा जाए, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी. फूलों के

निर्यात से हालैंड को बीस करोड़ रुपए की वार्षिक आमदनी हो जाती है.

एमस्टर्डम हालैंड की व्यापारिक राजधानी तथा सब से बड़ा शहर है. ५०० वर्ष पहले जहां दलदली जमीन और छिछले पानी का जमाव था, वहां डचों ने इतना सुंदर और विशाल नगर बना लिया है कि इस को यूरोप का दूसरा वेनिस कहा जाता है. स्वच्छता, मकानों की सुंदरता और सड़कों की चौड़ाई में तो यह वेनिस से भी बढ़ाचढ़ा है. वेनिस को यदि हम भारत का वाराणसी कहें, तो इसे सहज ही बंगलौर की उपमा दी जा सकती है.

नौबजे ही जलपान से निवृत्त हो कर शहर देखने निकला. होटल के सामने की नहर में एक मोटर बोट खड़ा देखा, जिस में लोग सवार हो रहे थे. मैं ने समझा कि यह भी कोई किराए का बोट है, अतः मैं भी उस में जा सवार हुआ. कोई पंद्रह मिनट बाद करीब ५० यात्रियों को ले कर बोट कई नहरों से गुजरता हुआ खुले समुद्र में पहुंच गया. मैं ने साथ के यात्रियों से पूछने की चेष्टा भी की कि हम जा कहां रहे हैं, परंतु अंगरेजी यूरोप के खासखास होटलों व बड़ीबड़ी दुकानों के अलावा और कहीं काम नहीं देती. फ्रेंच मैं जानता नहीं था. लाचार हो कर चुपचाप बैठा रहा.

कुछ देर बाद मोटर बोट अथाह जलराशि के बीच एक टापू के पास जा कर रुका. वहां एक जहाज बनाने का बड़ा कारखाना था. सब यात्री बोट से उतर पड़े, केवल मैं ही रह गया. समझ में नहीं आया कि वास्तविकता क्या है? संकेत की भाषा में बोट चालकों को समझाया कि मुझे तो वापस शहर जाना है, परंतु सफलता नहीं मिली. सौभाग्य से, वहीं पर कारखाने में अंगरेजी जानने वाला एक कर्मचारी मिल गया. उस ने बताया कि यह बोट तो इस जहाजी कारखाने के कर्मचारियों को शहर से लाने और ले जाने के लिए है, यह इन्हें ले कर शाम को ही वापस लौटेगा.

अब मेरी समझ में बात आई कि मुझे भी कारखाने में जाने वाला समझ कर न तो किराया ही मांगा गया और न जाने की जगह का नाम ही पूछा गया. बड़े असमंजस में पड़ा. शहर से मीलों दूर, समुद्र के बीच, भूख काफी महसूस हो रही थी. कोई एक घंटे बाद सामने से एक बड़ा बोट आया. संयोग से यह यात्रीबोट था. डेढ़ रुपया दे कर उस से करीब दो बजे वापस एमस्टर्डम पहुंचा. इस के बाद तो यात्री सहायक केंद्र पर जा कर सारी बातों की जानकारी कर ली और वहीं से शहर का एक नकशा भी ले लिया.

एमस्टर्डम की एक छोटी सी घटना मैं आज भी नहीं भूल पाता. एक महिला से मैं ने किसी रास्ते का पता पूछा जो उस ने संकेत से बता दिया. थोड़ी दूर जाने के बाद पीछे से एक आदमी दौड़ता हुआ आया और टूटीफूटी अंगरेजी में बताया कि मेरा रास्ता उस तरफ न हो कर दूसरी तरफ से है. वह महिला भी उतनी देर तक वहीं खड़ी हुई मेरी तरफ देखती रही. जब मैं सही रास्ते की तरफ मुड़ गया तब वह अभिवादन कर के लौटी. संभवतः जो रास्ता बताया था उस में भूल हो गई थी और इसी लिए उस ने वह आदमी दौड़ा कर मुझे परेशानी से बचा लिया. इस घटना से मेरा ध्यान अपने देश के ऐसे लोगों की तरफ चला गया जो अपरिचित राहगीरों को रास्ता पूछने पर या तो झिड़क देंगे या जानबूझ कर गलत

रास्ता बता देंगे.

हालेंड में जा कर यदि जाइडरजी का बांध, सीफोल का हवाई अड्डा न देखा जाए, तो यात्रा अधूरी ही समझी जाएगी. जाइडरजी का बांध १९२० में बनना शुरू हुआ और १९३२ में बन कर तैयार हुआ था. यह २७ मील लंबा है. एक तरफ अथाह खारा समुद्र है, तो दूसरी तरफ मनुष्य निर्मित मीठे पानी की झीलें व हरी-भरी कृषि योग्य उपजाऊ जमीन. बांध की दीवार इतनी चौड़ी बनाई गई है कि उस पर एक साथ मोटर, साइकिल, पैदल चलने वालों के लिए अलगअलग सड़कें हैं. छुट्टी के दिन इस बांध पर हालेंड के युवक और युवतियों व बच्चों का मेला लगा रहता है.

इसी तरह सीफोल के हवाई अड्डे को भी दुनिया का आठवां आश्चर्य कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा. सौ वर्ष पहले जहां समुद्र लहरा रहा था, वहां विश्व का सब से बड़ा हवाई अड्डा बन जाना, कम आश्चर्य की बात नहीं. प्रति दिन सैकड़ों वायुयान यहां आतेजाते हैं. उड्डयन के क्षेत्र में आज भी 'के. एल. ए' के हवाई जहाज और उन के डच चालक संसार में अपना सानी नहीं रखते.

अंत में यहां के विश्व प्रसिद्ध फिलिप्स के कारखाने के बारे में दो शब्द लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा. जहां फिलिप्स का कारखाना है, वहां जमशेदपुर की तरह आइडहोवेन नाम का एक नगर ही बस गया है. पैंसठ वर्ष पहले बहुत छोटे पैमाने पर इस कारखाने की नींव पड़ी थी. आज दुनिया में उस की पचहत्तर शाखाएं हैं, जिन में एक लाख से भी अधिक आदमी काम करते हैं. फिलिप्स के रेडियो, माइक्रोस्कोप एवं बिजली के अन्य उपकरणों का वार्षिक उत्पादन करीब दो सौ करोड़ रुपए के मूल्य का होता है.

गिरजों गोंदोलों के बीच

आक्रमणकारियों का शिकार

विश्व के नंदनकानन में घूमते समय मन में विचार उठे कि पेरिस, बर्लिन, मास्को, हेग, लंदन आदि यूरोपीय शहरों में विविधता और वैचित्र्य की कमी नहीं. सभी यूरोपीय शहरों का अपनाअपना रूप है, अपनीअपनी विशिष्टताएं हैं. मन पर इन सभी शहरों और देशों की अलगअलग तरह की छापें पड़ती हैं, अनेकता का पता चलता है. लेकिन इस अनेकता में एकता का आभास भी स्पष्ट है.

जीवन और जीवन की मूल समस्याओं के प्रति पश्चिमी देशों के लोगों के दृष्टिकोण, उन की सहज प्रतिक्रियाओं और उन के तौरतरीकों में काफी हद तक समानता है. लगता है कि उन के संस्कारों की बुनियाद एक ही है. पश्चिमी सभ्यता की विभिन्न बेलें रोमन और यूनानी संस्कृतियों की मिट्टी और खाद से पनपी और फलीफूली हैं.

इसी लिए इच्छा हुई कि इटली और यूनान को भी अवश्य देखना चाहिए. उस से पश्चिमी संसार को समझने में और अधिक सहायता मिलेगी. स्विट्-जरलैंड से फिर मैं रोमन संस्कृति का केंद्र इटली देखने उड़ चला. हमारा विमान अपने पंख पसारे आल्प्स की ऊंची, बरफानी चोटियां लांघ कर मिलान के हवाई अड्डे पर मंडराने लगा. इटली पहुंचना आज कितना आसान हो गया है!

अभी पिछली शताब्दी तक तो इटली पहुंचने का सब से आसान साधन समुद्री मार्ग ही था क्योंकि इस के उत्तर में हिमालय की तरह आल्प्स की ऊंचीऊंची चोटियां खड़ी हैं. उन को पार करने में कई विदेशी आक्रांता प्राणों की बलि दे चुके थे. समुद्री मार्ग आसान था. इटली के तीन ओर समुद्र है. मानचित्र देखने से लगता है जैसे वह भूमध्य सागर के जल में एड़ी तक अपने पैर डाले बैठा हो.

अब विज्ञान ने वायु मार्ग के अतिरिक्त एक स्थल मार्ग भी सुलभ बना दिया है. आल्प्स का पेट चीर कर सुरंगें बना दी गई हैं. संसार की सबसे लंबी बारह मील की सुरंग—सिंपलन, के जरिए हम चंद ही घंटों में पेरिस से मिलान पहुंच जाते हैं.

मिलान के हवाई अड्डे से अपने पहले से तय किए हुए होटल में पहुंचा. शहर का नक्शा पेरिस से बहुत कुछ मिलताजुलता है लेकिन पेरिस की भव्यता और सजीवता तो उस की अपनी ही है. इस में मध्य भाग को केंद्र बना कर परिधि की

तरह दो सड़कें एकदूसरे के समानांतर चली गई हैं जिन को सीधी सड़कें आपस में जोड़ती हैं. लगभग सभी बड़ी सड़कों पर छायादार वृक्षों की कतारें करीने से लगी हुई हैं.

मध्य भाग को ऐतिहासिक मिलान कहना ही ठीक रहेगा. यहीं अधिकांश प्राचीन इमारतें और भग्नावशेष हैं. समय की कमी के कारण मैं उन खंडहरों के वैभव को सरसरी निगाह से ही देख पाया. फिर भी उन को देखते समय मुझे बारबार यही लगा कि इतिहास ने हमारे देश की तरह यहां भी कई वार करवटें बदली हैं.

जैसे भारत पर शक, हूण, तुर्क, पठान और मुगलों के आक्रमण गंगायमुना की शस्यश्यामला भूमि के कारण होते रहे हैं, उसी तरह इटली के लोंबार्डी के हरेभरे मैदानों ने अपने धनवैभव के कारण यूरोप के आक्रमणकारियों को अपनी ओर आकर्षित किया. नुकीले भालों और चमचमाती तलवारों की टक्करें देखने के अनगिनत अवसर दिल्ली की तरह मिलान को भी प्राप्त हुए हैं.

मिलान उत्तरी इटली का एक प्रमुख धार्मिक केंद्र रहा है. शहर के मध्य भाग में स्थित प्राचीन गिरजे, संन्यासियों के मठ और संकरी गलियां सदियों की घटनाओं पर प्रकाश डालती हैं. शहर के इस भाग में वातावरण बिलकुल बदला हुआ सा मिलता है. कुछ देर के लिए उन में खो जाना पड़ता है, तब खयाल तक नहीं आता कि हम २०वीं सदी के किसी आधुनिक शहर में हैं.

वास्तुकला और विशिष्ट मतों के कारण प्रत्येक गिरजा अपना अलग महत्त्व रखता है. मुझे संत अंब्रोजियो का गिरजा तथा ड्यूमा कैथेड्रल बड़े भव्य और आकर्षक लगे. विगत महायुद्ध की विभीषिका के परिणामस्वरूप संत अंब्रोजियो के गिरजे को बड़ी क्षति पहुंची है. १९४३ की बमबारी से कई अंश ध्वस्त हो गए थे.

इस गिरजे का धार्मिक तथा ऐतिहासिक महत्व भी है. इस का निर्माण चौथी शताब्दी में शुरू हुआ था. फिर बारहवीं शताब्दी में इस का पुनर्निर्माण हुआ और कुछ नए अंश जोड़े गए. इस की वेदी पर अनेक नरेशों को राजमुकुट पहनाया गया है. भित्ति चित्र काफी प्राचीन हैं. मैं ने संत अंब्रोजियो के विविध चित्र देखे जो नवीं शताब्दी के आसपास के हैं. इन से उस काल के रहनसहन, पोशाक और आचारविचार का परिचय मिला है.

ड्यूमा कैथेड्रल की गणना संसार के विशाल गिरजों में की जाती है. कहते हैं कि इस के निर्माण में लगभग ५०० वर्ष लगे थे. दूसरे महायुद्ध की बमबारी ने इसे भी बहुत हानि पहुंचाई. गनीमत है कि यह पूरी तरह से समाप्त हो जाने से बच गया, वरना आने वाली पीढ़ियां विश्व की एक बहुत सुंदर कलाकृति से वंचित रह जातीं. मैं ने सुप्रसिद्ध चित्रकार ल्योनार्दो की श्रेष्ठतम कृति 'अंतिम भोज' भी यहीं देखी. सचमुच यह चित्र बेहद आकर्षक है.

चित्र में महात्मा ईसा अपने शिष्यों के साथ अंतिम भोज पर बैठे हैं. उन्हें दूसरे ही दिन सूली पर चढ़ाया जाने वाला था. भोज में वह व्यक्ति भी शामिल है जिस ने महात्मा ईसा के साथ विश्वासघात किया था. ल्योनार्दो की तूलिका ने प्रत्येक व्यक्ति के मनोभावों को बड़ी सफाई और खूबसूरती से व्यक्त किया है.

कारण दुनिया में अद्वितीय हैं. सजावट के लिहाज से यहां के झाड़फानूस विश्व के सभी देशों में बड़े लोकप्रिय हैं. ये सामान यहां लाखों लोगों की रोजी का बहुत अच्छा साधन बन गया है.

वैसे इटली के सभी देशों में मोलभाव चलता है पर वेनिस के बाजारों के क्रयविक्रय का दृश्य तो देखने ही लायक होता है. यहां यों भी चीजें मंहगी हैं, फिर नफीस चीजों का तो कहना ही क्या! यहां विदेशों से आने वाले यात्रियों को फंसाने वालों की कमी नहीं है. मुझे भी एक ऐसा मौका पड़ा.

चाय का एक सेट खरीदना चाहता था. सन मारको के विश्वप्रसिद्ध बाजार में गया, एक दुकान पर पहुंचा. दाम अनापशनाप. मुंह फेर कर लौटने लगा तो दाम तीनचौथाई. दुकान के बाहर पैर रखा कि दाम आधा.

इस चमत्कार से पुराने समय के जयपुर की दुकानें याद आ गईं. मैं ने जिस दुकान से सेट खरीदा उस ने तो कई गुना दाम बता दिया था. मैंने भी सोचसमझ कर अपना दाम बताया. पैर बाहर रखा पर सिन्योर कुछ बोले नहीं. मुझे कुछ आश्चर्य तो हुआ पर इस से अधिक आश्चर्य तब हुआ जब दुकान छोड़ कर चार कदम आगे बढ़ गया.

सिन्योर दुकान से उतर आए और एहसान जताकर कहने लगे, "आप विदेशी हैं, वरना. . .क्या कहूं, आप ने तो कौड़ियों का भाव बताया है." फिर आसमान की ओर देख और अपनी गोलमटोल आंखें नचाते हुए बोले, "क्या कहूं, सिन्योर, लोग वेनिस की चीजें विदेश न ले जाएं, यह मुझे गवारा नहीं. चलिए, ले जाइए!"

आखिर इटालियन मुद्रा में कीमत (भारतीय ३७० रुपए) देकर वह सेट खरीद ही लिया. आज भी जब विशिष्ट अतिथियों को उन कपों में चाय पिलाता हूं तो वे उस की नक्काशी और सुनहरे काम की सराहना किए बिना नहीं रहते.

वेनिस शहर की बनावट निराली है. छोटेछोटे द्वीपों पर बसा होने के कारण आज भी यातायात के प्रमुख साधन नावें और मोटरबोटें हैं. हालांकि पुलों द्वारा द्वीप कहींकहीं पर जुड़े हुए हैं और इन पुलों पर मोटरें और बसें भी दौड़ती हैं. लेकिन फिर भी खासखास रास्ते नहरों के ही हैं. वास्तुशिल्प की दृष्टि से इटली के अन्य शहरों की तुलना में यहां विशेष अंतर नहीं. एक बात अवश्य है कि यहां गिरजों के अलावा बहुत सी ऐसी पुरानी भव्य इमारतें भी हैं जिन्हें मध्य युग में रईसों या सामंतों ने बनवाया था. हां, आज मरम्मत के अभाव में वे जीर्णशीर्ण पड़ी हैं.

वेनिस में सिनेमाघर हैं, थियेटर, म्यूजियम और आपेरा हाउस भी हैं. आकर्षण के सभी प्राचीन और आधुनिक साधन वहां उपलब्ध हैं. लेकिन इतना सब होते हुए भी वहां का विशेष आकर्षण है गोंदोला.

हंसिनी की भांति सुंदर सजीली इन नौकाओं को वेनिस की नहरों के शांत जल में मस्ती के साथ चलते देख कर सम्मोहित हो जाना स्वाभाविक है.

गोंदोलों में सजावट के साथसाथ आराम का भी पूरा ध्यान रखा जाता है. इन में साफ और नरम बिस्तरे, शीशे जड़े शृंगार टेबल, आईने और कामदार परदे लगे होते हैं. विलास के इन सारे साधनों का आकर्षण सजावट और सफाई के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है.

बनारस के बजरे और कशमीर के शिकारे गोंदोलों के सामने कुछ नहीं हैं, क्योंकि इन में सुख और विलास के उतने साधन नहीं होते. यही कारण है कि आज मोटरबोट के युग में भी वेनिस में गोंदोला मस्ती और शान से झूमता है.

गोंदोला खुद ही बहुत आकर्षक होता है लेकिन उस के प्रति आकर्षित होने का कारण है उस का एकाकी मल्लाह, उस का स्वस्थ और सुगठित शरीर तथा उस का मस्ती भरा प्रेम संगीत. यही कारण है कि संसार के दूरदूर के इलाकों से आ कर विलासप्रिय स्त्रियां गोंदोलों में हफ्तों गुजार देती हैं. मल्लाहों पर धन और तन निछावर करती हैं. गोंदोला उन के लिए शारीरिक सुख प्राप्त करने का प्रतीक बन गया है.

नहर के किनारे खड़ा मैं इन्हीं बातों पर विचार कर रहा था कि रात ढलने लगी. मैं होटल की ओर चल पड़ा.

सुबह देर से उठा. उस वक्त वेनिस धूप में नहा रहा था. आज वेनिस से विदाई लेनी थी. सोचा, 'यहां का विश्व प्रसिद्ध समुद्र तट लिडी अवश्य देख लेना चाहिए'. मैं ग्रांड कैनाल (बड़ी नहर) से होता हुआ समुद्र तट पर पहुंचा.

योरुप की अमरपुरी रोम

क्या अभी भी विश्व की सारी सड़कें रोम पहुंचती हैं ?

वेनिस से रोम के लिए ट्रेन में बैठा. उत्तरी इटली की यात्रा मिलान और वेनिस देख कर समाप्त कर चुका था. अब रोम और नेपल्स देख कर दक्षिणी भाग की यात्रा पूरी करना चाहता था. सुंदरता की रानी फ्लोरेंस और जेनेवा को देखने की इच्छा मन में ही रह गई. समय बहुत कम था.

रोम पहुंचने की खुशी में रोमरोम पुलकित हो रहा था. ट्रेन अपनी रफ्तार से भाग रही थी. स्वीडन और स्विट्‌जरलेंड की ट्रेनों में बहुत घूम चुका था इसलिए इटली की ट्रेन यात्रा उन के मुकाबले अच्छी नहीं लगी.

बचपन में पढ़ा था कि रोम एक दिन में नहीं बना, विश्व की सारी सड़कें रोम पहुंचती हैं, इत्यादि. अब प्रौढ़ मस्तिष्क उन्हीं बातों पर विचार कर रहा था. अवश्य ही रोम का निर्माण एक दिन में नहीं हुआ होगा. उसे बनने में सदियां लगी होंगी. नईनई विचारधाराओं ने उसे प्रभावित किया होगा. धर्म और संस्कृति का केंद्र रहा है रोम. आज भी है.

ईसाई धर्म के कैथोलिक मत का तो यह तीर्थ है. सारा पाश्चात्य जगत ही ईसाई है. इसी लिए श्रद्धा, भक्ति और प्रेम ने उन्हें रोम की ओर आकृष्ट किया. बाधाएं, विपत्तियां पार कर इस तीर्थ स्थली के दर्शन मात्र से अपनी आंखों को तृप्त कर अपने को और अपने जीवन को वे आज भी धन्य मानते हैं. सोचने लगा, 'वैभवशाली इतिहास के रोम का रूप आज जाने कैसा होगा! शायद हमारी दिल्ली की तरह या काशी की तरह. मकानों की बनावट में भिन्नता भले ही हो, वातावरण एक सा ही होगा.'

रोम पहुंचा. देखा, बिलकुल आधुनिक वातावरण था वहां. स्टेशन पर अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा कुछ शोरगुल अधिक था—बहुत कुछ हमारे देश का सा. सामान उठा कर होटल की ओर जाते हुए सोचने लगा कि संसार के प्राचीनतम समझे जाने वाले इस नगर में तो लंदन, पेरिस, स्टाकहोम, ब्रुसेल्स नजर आते हैं. पर प्राचीन रोम की झांकी नहीं मिलती. कहीं भी नहीं मिलती, न पोशाक में और न लोगों के ढंग में.

मेरा आकर्षण आधुनिक रोम से अधिक प्राचीन रोम की ओर था. अतः मैं ने पहले इसे ही देख लेना ज्यादा ठीक समझा.

रोम की पहली बस्ती ईसा पूर्व आठवीं सदी में बसी थी. आज तक

रोम का पुराना खंडहर शहर

स्थिर नहीं हो पाया है कि इस अमरपुरी के आदिवासी कौन थे और कहां से आ कर बसे थे. बहुत से लोगों की धारणा है कि ट्राय के युद्ध से बच कर भागे हुए कुछ लोग एशिया माइनर से आ कर पहलेपहल यहां बस गए थे.

रोम के खंडहरों को देख कर ध्यान बरबस सुदूर अतीत की ओर चला जाता है. राजवंश और जनतंत्रों के उत्थानपतन, रोमन प्रभुत्व का उदय और अवसान मानो सभी एक साथ मस्तिष्क में घूम जाते हैं. रोम में इतने ऐतिहासिक खंडहर और भवन हैं कि प्रत्येक का वर्णन कर सकना संभव नहीं. यहां सदियों तक आक्रमणकारियों के प्रहार होते रहे हैं. नएनए प्रासाद बने, पिछले कुछ तोड़े गए, कुछ स्वयं ही देखरेख के अभाव में पुराने पड़ गए.

इन्हीं खंडहरों में रोम के प्रसिद्ध कोलीसियम (एंफी थियेटर) को देखा. चार तल्ले के इस विशाल वृत्ताकार भवन के चारों ओर दर्शकों के बैठने का स्थान है. एक ओर वह स्थान भी है जहां सम्राट खुद बैठ कर प्रदर्शन देखते थे. सामंत अपने पदानुसार बैठते थे. ठीक बीच के हिस्से में एक वृत्ताकार बड़ा सा आंगन है. यहीं वे प्रदर्शन हुआ करते थे. प्रदर्शन क्या थे—नृशंसता का नग्नतम रूप था. हमारे देश में तो शायद ही इस प्रकार के प्रदर्शनों का विवरण मिले.

एंफी थियेटर के विशाल आंगन में मनुष्य और पशु में युद्ध कराया जाता था. कभी जंगली सूअर तो कभी भूखे सिंह के सामने मनुष्य को छोड़ दिया जाता था. दृश्य कितना वीभत्स हो उठता होगा.

याद आया कि यहीं तो क्रूर सम्राट नीरो ने ईसा मतावलंबियों को एक जगह इकट्ठा कर, उन पर भूखे सिंह छोड़ दिए थे. रोमांच हो आया. आश्चर्य हुआ कि क्या यही जूलियस सीजर के सुरम्य देश की संस्कृति और सभ्यता थी? क्या इसी रोमन संस्कृति और सभ्यता ने पश्चिम को कानून का बोध कराया था? क्या यह वही रोमन संस्कृति थी जो आज भी यूरोप ही नहीं बल्कि सारी पाश्चात्य सभ्यता की आधारशिला है? किस प्रकार एंफी थियेटर में बैठे पचास हजार

२५.७
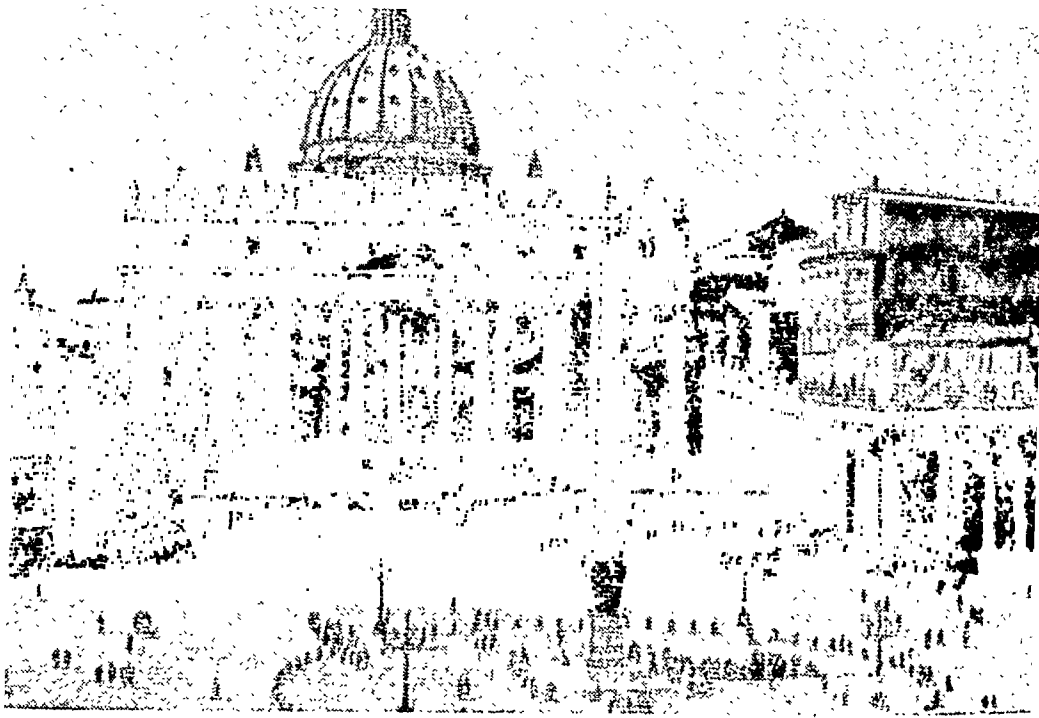
सेंट पीटर स्क्वायर : पोप का निवास

दर्शक मनुष्य के चिथड़े उड़ते देखते और बरदाश्त करते थे? परंतु मनुष्य भी तो मूलतः पशु ही है. पश्चिम का महान जीवशास्त्री डारविन यही तो कहता था.

रोम के खंडहरों और प्राचीन भवनों को देख कर बीती हुई शताब्दियों के इतिहास की परतें एकएक कर खोलने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि उन में अपने-अपने समय की छाप अंकित मिलती है. लोगों के रहनसहन और रुचि का परिचय मिल जाता है. यह निस्संदेह इटली और खासतौर पर रोम की सभ्यता के लिए सौभाग्य की बात है कि विदेशियों के आक्रमण तो उन पर हुए पर वहां के सांस्कृतिक चिह्नों को हमारे देश की तरह मटियामेट नहीं किया गया.

यही नहीं, रोम का यह भी सौभाग्य रहा है कि प्राचीन भवनों और जीर्ण-प्राय ऐतिहासिक स्थलों का पुनर्निर्माण भी समयसमय पर होता रहा है. इस दृष्टि से वहां के पोप (धर्मगुरु) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. १५वीं शताब्दी से तो समयसमय पर विभिन्न पोपों की चेष्टा यही रही है कि रोम का गौरव बढ़े और सांस्कृतिक केंद्र कहलाने का उस का अधिकार कायम रहे.

यही कारण है कि आज भी रोम में ऐतिहासिक श्रृंखला की कड़ियां टूटी नहीं हैं. नेपोलियन के साथ युद्ध होने के बाद, इटली में प्रादेशिकता की भावना धीरेधीरे घटने लगी और एकता की भावना बढ़ने लगी. रोम का महत्त्व बढ़ा और एक बार फिर रोम यूरोप की संस्कृति का नियंत्रण करने लगा. बाद में भी सम्राट विक्टर एमेन्युएल ने इसे सजानेसंवारने में कोई कसर न रखी. यूरोप और सुदूर अमरीका से लोग वहां के जीवन का आनंद लेने के लिए आने लगे. आज का रोम अपने उस गौरव को अभी तक सफल उत्तराधिकारी के रूप में सुरक्षित रखता आया है.
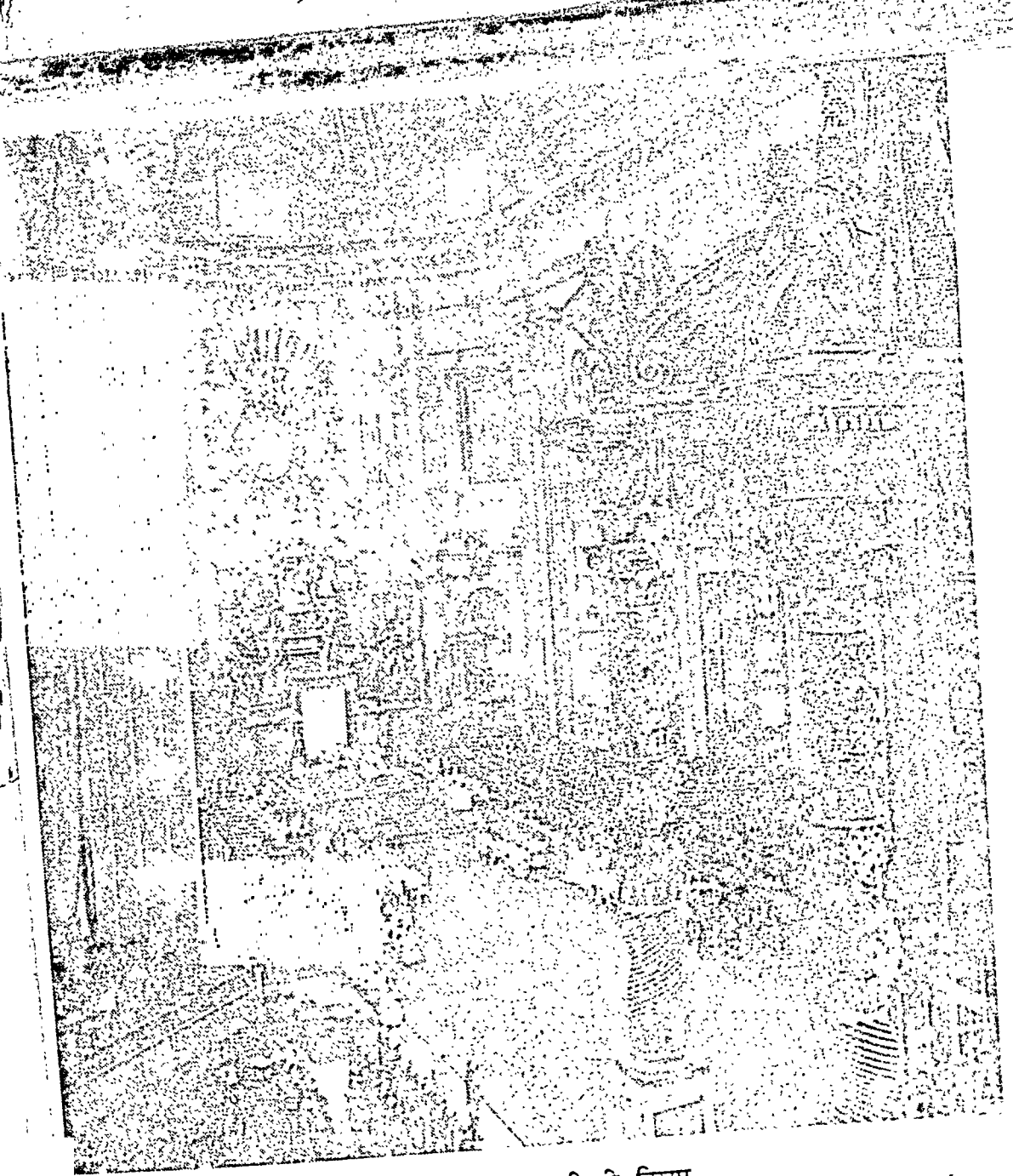
सेंट पीटर का भीतरी हिस्सा

पिआजा द स्पाना के महल्ले में टहलते हुए मैं ने ग्रीक, अमरीकी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी आदि तमाम लोग देखे. पिछले महायुद्ध से पहले इटली के तानाशाह बेनिटो मुसोलिनी ने भी इटली की राजधानी को खूब संवारा था.

चौड़े रास्तों, बागबगीचों, नए ढंग के बड़ेबड़े भवनों और बिजली की सुविधा के कारण रोम यूरोप के अच्छे से अच्छे शहर से टक्कर लेने लगा. आज रोम की आबादी बीस लाख से भी ऊपर है, जब कि इसी शताब्दी के प्रारंभ में वह सिर्फ चार लाख थी. शहर की सब से बड़ी समस्या है यातायात की भीड़. ठीक यही समस्या तो हमारे यहां बंबई, कलकत्ता और दिल्ली में भी है.

शाम का समय था. मैं काफे ग्रेको में बैठा काफी पी रहा था. काफे ग्रेको रोम का एक प्रसिद्ध कैफे है जहां लेखक, कलाकार, पत्रकार और कुछ छात्र एकत्र

हो जाते हैं. मेरे पास की टेबल पर इटालियन, अंगरेज और अमरीकी युवक बैठे हुए थे. वे आपस में बातें कर रहे थे. इटालियन भी साफ अंगरेजी बोल रहा था. कभीकभी तीनों ही मेरी ओर देख लेते थे. मेरी दृष्टि इटालियन से मिली तो उस ने मुसकरा कर अभिवादन किया और तुरंत आ कर पूछा, "अंगरेजी, फ्रेंच, इटालियन कौन सी भाषा में बात करने में आप को सुविधा होगी? शायद आप भारतीय हैं!"

मैं ने अंगरेजी में कहा, "आप का अनुमान सही है. मैं भारतीय हूं."

हम चारों एक टेबल को घेर कर बैठ गए. अब मैं वक्ता बना और शेष तीनों श्रोता. उन्होंने भारत और भारतीय संस्कृति के संबंध में प्रश्नों की झड़ी लगा दी. मैं ने समझाने की कोशिश की कि मैं व्यवसायी हूं और राजनीति, साहित्य तथा इतिहास का मेरा अध्ययन साधारण सा है. हां, अपने यहां सामाजिक कार्यों में उत्साह से भाग लेता हूं.

जिस प्रकार काशी की यात्रा सारनाथ के बिना और मथुरा की वृन्दावन के बिना पूरी नहीं होती, उसी प्रकार रोम जा कर वेटिकन न देखना रोम न देखने के बराबर ही है. रोम का महत्त्व केवल ऐतिहासिक ही नहीं है, बल्कि उस के साथ ईसाई धर्म का गौरव भी जुड़ा हुआ है. उस का केंद्र स्थल है वेटिकन—पोप का प्रासाद.

वेटिकन रोम के अंतर्गत एक छोटा सा राज्य है. इस की अपनी सरकार है, अपनी डाकतार व्यवस्था है और साथ ही अपनी पुलिस और रेडियो स्टेशन है. इस राज्य का सर्वोच्च शासक है धर्मगुरु पोप. पोप का अधिकार, उस की श्रद्धा का साम्राज्य इतना विस्तृत और असीम है कि वहां सूर्यास्त होता ही नहीं. पोप का सारा समय धम चिंतन और अध्ययन में ही बीतता है. विश्व में उन का प्रभाव तथा आदर कम नहीं है. ईसाई चाहे कैथोलिक हो या प्रोटेस्टेंट, पोप को दोनों ही आदर की दृष्टि से देखते हैं.

संसार के सभी देशों के कैथोलिक ईसाई पोप के वाक्य को वेदवाक्य मानते हैं. संसार के सभी राष्ट्र वेटिकन राज्य की सुरक्षा का ध्यान रखते हैं. पिछले महायुद्ध के दौरान रोम पर सैकड़ों बार बमबारी हुई लेकिन बमवर्षकों ने हमेशा इस बात का ध्यान रखा कि कहीं वेटिकन राज्य को कोई हानि न पहुंचे.

वेटिकन का निर्माण वास्तव में पांचवीं शताब्दी के शुरू में हुआ था. पिछली पंदरह शताब्दियों में संसार के कोनेकोने से श्रद्धालुओं ने श्रेष्ठतम वस्तुएं यहां भेंट में ला कर अपने को धन्य माना. लोगों ने अपने जीवन भर की कमाई पोप के चरणों में अर्पित कर दी. यही कारण है कि आज यहां जैसी बहुमूल्य सामग्री संग्रहीत है, वैसी न ब्रिटिश म्यूजियम में है और न वाशिंगटन या लूव्र में है.

विश्व की दुर्लभ वस्तुएं, महत्त्वपूर्ण पुस्तकें और चित्र यहां देखने को मिलते हैं. विश्व के महान कलाकारों ने वेटिकन गिरजों और मठों को सजाने में अपने को धन्य माना और इसी में सारा जीवन लगा दिया.

इतना वैभव, आदर और असीम अधिकार किसी भी व्यक्ति का चित्त डावांडोल कर सकता है लेकिन मौजूदा पोप को देख कर मानना पड़ता है कि सात्त्विकता के आगे मानसिक विकार ठहर नहीं पाते. यों पिछली दोतीन सदियों

से पोप के चुनाव में बहुत सतर्कता और सावधानी बरती जाती है.

वेटिकन को अच्छी तरह से देखने के लिए काफी समय चाहिए. मैं ने तो सरसरी निगाह से दीवारों पर टंगे चित्र देखे. ज्यादातर जिहाद के चित्र थे. इस के अलावा ईसाई धर्म से संबंधित और बहुत से सुंदर तथा चित्ताकर्षक चित्र भी थे. ये चित्र विश्व के सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाशाली कलाकारों द्वारा बनाए गए हैं. कुछ तो इतने बहुमूल्य हैं कि प्रत्येक का मूल्य पचास लाख रुपए तक आंका गया है. यदि पोप के संग्रहालय का मूल्य आंका जाए तो अरबों तक पहुंचेगा. मैं ने यहीं पर सिस्टाइन के गिरजे में विश्व के दो प्रसिद्ध कलाकारों, माइकेल एंजिलो और रेफियल के सर्वोत्तम चित्र देखे.

वेटिकन में बहुत से गिरजे और मठ हैं. मठों में ईसाई साधु रहते हैं. वहां किशोर साधुओं को भी देखा जिन्हें ईसाई धर्म तथा धार्मिक आचारव्यवहार में पारंगत बना कर पूर्ण रूप से योग्य साधु बना दिया जाता है. इटली की पहाड़ियों में साधुओं के कुछ ऐसे संप्रदाय भी हैं जो अपने मठों में ही तपस्या करतेकरते सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं और वहां से कभी नीचे नहीं उतरते.

वेटिकन में ही विश्व प्रसिद्ध संत पीटर का गिरजा है. यह महात्मा ईसा के मुख्य शिष्य संत पीटर के स्मारक स्वरूप बनाया गया है. ईसाई मत वास्तव में संत पीटर का बड़ा ऋणी है. फिलस्तीन के मरुस्थल में महात्मा ईसा ने करुणा और क्षमा का मंत्र वर्बर गिरोहों को सुनाया पर वह सूली पर चढ़ा दिए गए थे.

ईसा की मृत्यु के बाद, संत पीटर उन का संदेश पश्चिम की ओर पहुंचाते हुए रोम पहुंचे. रोमन शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता में इन के प्रेम और शांति के संदेश से आशा, धैर्य और जीवन के प्रति विश्वास का संचार हुआ.

ईसा को मानने वालों की संख्या बढ़ने लगी. ईसा के जन्म को ६७ वर्ष हो चुके थे. रोमन साम्राज्य का गौरव नष्ट होने की राह पर था. नीरो जैसा विवेकहीन सम्राट गद्दी पर था. उस ने ईसाइयों को हजारों की संख्या में या तो पहाड़ों की चोटी से गिरवा दिया या आग में भुनवा दिया. संत पीटर भी जीवित ही जला दिए गए. ईसाइयों पर भूखे सिंह छोड़े गए. सब कुछ होते हुए भी अंत में सच की ही जीत हुई. नीरो पागल हो कर मर गया.

ईसाई धर्म रोमनों में और फिर रोमनों के द्वारा उन के साम्राज्य के कोनेकोने में फैला. थोड़े ही दिनों में सारा यूरोप तथा उत्तरी अफ्रीका ईसा की वाणी में दीक्षित हो गया. यूरोप के प्रभुत्व के साथसाथ विश्व के कोनेकोने में ईसाई धर्म का प्रचार हो गया.

संत पीटर का गिरजा विश्व की सब से बड़ी इमारत तो है ही, साथ ही कलापूर्ण भी कम नहीं है. इस की ऊंचाई के सामने दिल्ली की जामा मस्जिद बहुत छोटी है. इस की वास्तुकला तो अचंभे में डाल देती है किंतु निर्माण कौशल भी कम आश्चर्य नहीं पैदा करता. इस के अंदर ६० हजार व्यक्ति बड़ी आसानी से प्रार्थना कर सकते हैं. अंदर चारों ओर दीवारों और मेहराबों पर धार्मिक चित्र बने हुए हैं.

इस गिरजे में अनगिनत स्मारक और समाधियां हैं. सब से महत्वपूर्ण है संत पीटर की कांस्य की विशाल मूर्ति. संत पीटर एक कुरसी पर बैठे हैं और

उन का शरीर वस्त्र से ढका हुआ है. एक हाथ में कुंजियां हैं और एक हाथ की तर्जनी तथा बीच की उंगली किसी विशेष भाव को बता रही है. चेहरे पर घनी दाढ़ी है. सिर के घुंघराले बालों के पीछे एक चक्र सा है जो सहज ही श्रद्धा और आदर की भावना जगाता है. संत पीटर का एक पैर कपड़ों में ढका हुआ है और दूसरा बाहर की ओर बढ़ा है. भक्तों के स्पर्श से चरण का यह अंश घिस गया है.

दिन भर घूमते रहने के कारण मैं काफी थक गया था. इसलिए अपने होटल जल्दी लौट आया और आराम करने लगा. खिड़की के सामने टाइबर नदी दिखाई दे रही थी. उसी को एकटक देखने लगा. देख कर बड़ी शांति मिली. लगा कि सिकंदर ने जो एक साम्राज्य फैलाया था, सो ढह गया. रोमन भी तलवार की नोंक पर साम्राज्य पर साम्राज्य स्थापित करते गए पर वे भी टिक न सके. आश्चर्य है कि निहत्थे गौतम और ईसा का साम्राज्य काल के गाल में क्यों नहीं समाया!

टाइबर से आती हुई हवा के एक झोंके ने फुसफुसा कर कान में कहा, "तलवार की नोंक शरीर ही छेद सकती है पर क्षमा और प्रेम तो हृदय में घर बना लेते हैं." तुरंत ही खयाल आया स्तालिन, मुसोलिनी, हिटलर का और उन की तुलना में अपने बापू का.

पांपियाई की भस्म समाधि पर...

संस्कृति व सभ्यता ज्वालामुखी को भेंट

सुबह के आठ बज चुके थे. बादलों के टुकड़े आसमान में धीरेधीरे तैर रहे थे. समुद्र की लहरों से अठखेलियां करती हुई हवा पास से कुछ फुसफुसा कर चली जाती थी. जाड़ा बीत चुका था, फिर भी रहरह कर एक सिहरन हो उठती थी.

हमारी बस नेपल्स से पांपियाई का रास्ता तय कर रही थी. बस काफी आरामदेह थी. सामने ड्राइवर की बगल में गाइड हाथ में एक छोटा सा माइक्रोफोन लिए बीचबीच में हमें आसपास के स्थानों की विशेषताएं बताता जा रहा था.

नेपल्स से पांपियाई का फासला केवल १४ मील है. अलकतरे की साफ सड़क पर बस दौड़ रही थी. दोनों ओर के खेत, अंगूर, सेब और दूसरी किस्म के फलों के बाग बड़े ही मोहक लग रहे थे. बीचबीच में किसानों के साफसुथरे मकान वातावरण की शोभा और भी आकर्षक बना रहे थे. इन्हें देख कर मेरा ध्यान अनायास ही अपने देहातों के घरों की ओर चला गया. मुझे लगा कि विदेशी जब हमारे यहां देहात के घरों को देखते होंगे तो सोचते होंगे कि हम भारतीयों को रहने का ढंग नहीं आता. स्वच्छता और सौंदर्य के प्रति हमारा आकर्षण कम है. इटली की आर्थिक अवस्था साधारण है. वहां के रहनसहन का स्तर भी अन्य यूरोपीय देशों से कहीं अधिक गिरा हुआ है. फिर भी, यहां के किसानों के घर गरीबी को जाहिर भले ही करें, पर उन में फूहड़पन हरगिज नहीं मिलेगा.

दाहिनी ओर नजर गई. समुद्र गर्जन कर रहा था. कुछ दूरी पर देखा, विसुवियस खड़ा था. एकटक देखता रहा उस ज्वालामुखी को. बादलों की चादर से उस का सिर ढका हुआ था और शरीर कुहासे के झीने आवरण में घिरा हुआ था. लगा कि विसुवियस प्रगाढ़ निद्रा में मग्न है.

गाइड की आवाज आई, "ये कालेकाले पत्थर जो आप लोग देख रहे हैं, विसुवियस के लावा से बने हैं. रागरंग के इस सुंदरतम नगर के साथ विसुवियस ने आग की फाग खेली थी और कुछ ही देर में वह भस्मसमाधि में लीन हो गया था."

सामने विसुवियस था और उस के पैरों पर पांपियाई. पांपियाई नहीं, बल्कि उस के खंडहर और राख की ढेरियां.

"इस नगर का भी अपना एक जमाना था. कितनी ही शताब्दियों की मंजी हुई, अपनी संस्कृति और सभ्यता की गरिमा में डूबी हुई पांपियाई सुंदरता में

अद्वितीय थी. नगरवासी ऐश्वर्य संपन्न थे. इस की रीतिनीति और संस्कार के अनुकरण में देशदेशांतर अपने को धन्य मानते थे. लेकिन कराल काल की गति इतनी न्यारी है कि उस के एक ही इशारे पर विसुवियस ने हुंकार भरी और उसके एक ही विकट उच्छवास में सदियों की सभ्यता और संस्कृति राख की ढेरी के नीचे दब गई. जिंदगी की मुसकान पर मृत्यु की यवनिका गिर पड़ी. मिट गया पांपियाई का अस्तित्व और बच रहे ये खंडहर. . ."

एक झटका लगा. हमारी बस रुक गई. सभी यात्री बस से उतर पड़े. पांपियाई में प्रवेश किया.

गाइड परिचय देने लगा, "इस नगर की उत्पत्ति के बारे में विद्वान आज भी एकमत नहीं हो पाए हैं कि यह सर्वप्रथम कब बसा था. लेकिन इतना सभी मानते हैं कि ईसा के जन्म से कई सौ वर्ष पूर्व इस नगर का यश और ऐश्वर्य विश्व प्रसिद्ध हो चुका था." उस ने मुसकरा कर कहा, "महानुभावों, किसी सुंदरी के लिए तलवारों का खटकना कोई आश्चर्य नहीं. कई साम्राज्यों ने पांपियाई को अपनाने के लिए आपस में अपनीअपनी शक्ति आजमाई और खून की नदियां बह गई. अंत में ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी में इस पर रोम का अधिकार हुआ. इस के बाद से इस जनपद के ऐश्वर्य का विकास निरंतर होता ही गया. रोम के धनिक सामंत, व्यापारी तथा नागरिकों के आवास यहां तभी से बनने शुरू हुए. समुद्र के सान्निध्य ने इसे वाणिज्य में प्रतिष्ठा दी और कृषि ने इसे उन्नतिशील बनाया. इस की जनसंख्या क्रमशः बढ़ती गई."

पांपियाई का इतिहास बताता है कि सन ६३ ईसवी में एक भीषण भूकंप ने नगरी को बुरी तरह झकझोरा था और काफी नुकसान पहुंचाया था. वर्षों तक पुर्ननिर्माण का कार्य नागरिकों ने साहस और उत्साह के साथ चलाया. लेकिन उसे कहां पूरा होना था!

सन ७९ ईसवी की बात है, रात हो चुकी थी. दिन भर के परिश्रम से निपट कर लोग घरों में निश्चिंत बैठे थे. कुछ आमोदप्रमोद में लीन थे. विसुवियस अपने चरणों के पास बैठी सुंदरी पांपियाई पर एक विकट अट्टहास कर उठा. फूट निकले धुएं के बादल, राख के गुबार और दहकते शोलों के फव्वारे. जलते हुए लावा की सहस्र धाराएं फूट पड़ीं.

काल की इन लपलपाती जीभों के बीच पांपियाई घिर गई. लोगों को भागने का मौका तक नहीं मिला. जहरीले धुएं और राख की आंधी और अंगारों की वर्षा. जो जहां था, वहीं रह गया. समुद्र के रास्ते भी बच निकलना असंभव था. समुद्र में भी लावा अनेक धाराओं में बह रहा था. मीलों तक समुद्र का पानी खौल उठा. ध्वंस इतना व्यापक हुआ कि फिर इसे सिर उठाने का मौका नहीं मिला. पुर्ननिर्माण असंभव था. करता कौन? किस में इतना साहस था कि विसुवियस के पराक्रम को चुनौती दे?

प्रलय-तांडव के शांत होने पर बच कर भागे हुए कुछ लोग अपनीअपनी धनसंपत्ति के उद्धार के लिए लौटे, लेकिन सफल न हो सके. अब तो सब कुछ राख, पत्थर और लावा के नीचे दबा पड़ा था. लावा जम कर चट्टान बन गया था. कहींकहीं तो ३० फुट मोटी परत जम गई थी. खोद कर कुछ निकालना व्यर्थ था.

पांपियाई में ज्वालामुखी के फटते समय का एक चित्रकार का चित्रण

प्रकृति के सामने मनुष्य को पराजय स्वीकार करनी पड़ी.

मध्य युग में पांपियाई की ओर किसी का विशेष ध्यान नहीं गया. इस की कहानी विस्मृति के गर्भ में पड़ी रही. १६वीं शताब्दी के अंतिम चरण में लोगों का ध्यान इस की तरफ गया. उद्धार का कार्य प्रारंभ किया गया लेकिन प्रगति बहुत ही सुस्त और सीमित रही. १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में फ्रांसीसी सरकार ने यह कार्य अपने हाथों में लिया और तब से लगातार इस दिशा में प्रगति होती रही है. धीरेधीरे इटली सरकार का भी ध्यान पांपियाई की ओर गया और उस ने १८६१ में खुदाई का काम अपने जिम्मे ले लिया.

गाइड के साथ घूमता हुआ सब कुछ देख रहा था. दो हजार वर्ष पूर्व यहीं सब एक जनपद था. इस की निर्माणव्यवस्था, कानूनकायदे और यहां के रहनसहन के तरीके को देख कर ऐसा अनुमान होता है कि आधुनिक ढंग के शहरों का सूत्र हमारे यहां के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की तरह यहां भी रहा होगा. नगर के चारों ओर दीवारें थीं. उन दिनों स्वरक्षा और सुरक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था का रहना आवश्यक माना जाता था. रास्ते अच्छे बने थे. बारहचौदह फुट से अधिक चौड़े तो नहीं थे, मगर विशेषता यह थी कि इन पर फुटपाथ बने थे. सड़कें नगर के महत्त्वपूर्ण अंचलों में अपेक्षाकृत प्रशस्त बनाई गई थीं. इन पर चौड़ी-चौड़ी पटरियां भी थीं. ये पटरियां अथवा फुटपाथ प्रायः सभी सड़कों में ऊंचे रखे गए थे. इस से गाड़ियों के आनेजाने में दिक्कत होने की संभावना नहीं थी.

मकान और रास्ते जल निस्सारण सुविधा को ध्यान में रख कर बनाए गए थे. कई स्नानागारों के ध्वंसावशेष स्पष्ट बताते हैं कि एक साथ ही गरम और ठंडे पानी के भरे जाने का प्रबंध था.

एक स्थान बहुत कुछ चौक जैसा लगा. शायद यही पांपियाई का व्यवसाय केंद्र रहा होगा, क्योंकि इसी के चारों ओर नगर का विस्तार है. केंद्रस्थल में

पांपियाई में खुदाई के समय मिले एक व्यक्ति व कुत्ते का माडल

बाजार हाट और न्यायालय भी था. इन्हें देख कर पता चलता है कि पांपियाई का वाणिज्यव्यापार कितना उन्नतिशील रहा होगा. नागरिकों के मनोरंजन की भी व्यवस्था थी. नाट्यशालाओं के खंडहरों को देख कर ताज्जुब होता है. उन में पांच हजार व्यक्तियों तक के बैठने की व्यवस्था थी. इन नाट्यशालाओं पर यूनानी वास्तुशैली का प्रभाव है.

इटली की सरकार ने पांपियाई में एक म्यूजियम बना दिया है. म्यूजियम छोटा लेकिन अच्छा है. यहां संग्रहीत नमूनों से पांपियाई की कहानी स्पष्ट हो जाती है. लेकिन व्यवहार में आने वाली विभिन्न वस्तुओं को देख कर नागरिकों के जीवन स्तर का सहज अनुमान हो जाता है. केशविन्यास के कांटे, गले के हार, चूड़ियां तथा इसी तरह के नाना प्रकार के वस्त्राभूषण स्त्रियों के शृंगार और रुचि का परिचय देते हैं.

तरहतरह के बरतनों के साथ सुरापात्र भी हैं, जो बताते हैं कि जीवन में विलास का प्रवेश कहां तक था. विभिन्न प्रकार की प्रतिमाएं भी वहां देखने में आईं. ये सभी, अधिकांश लोहे और तांबे की बनी थीं. यहां रखे छुरीकांटे, तराजू और तमाम वस्तुओं से उन के सामाजिक जीवन का भी परिचय मिला.

म्यूजियम के एक भाग में प्लास्टर किए गए शरीर देखने में आए. एक स्त्री

का शरीर देखा. वह एक हाथ की कोहनी में अपना मुंह छिपाए है और दूसरे हाथ की मुद्रा उस की घबराहट बताती है. ज्वालामुखी से निकलते विषैले धुएं से बेचारी का दम घुटा होगा. एक कुत्ते का शरीर देखा, विष के प्रभाव से उस का शरीर बिलकुल धनुष की तरह ऐंठ गया था.

म्यूजियम में जो भी संग्रहीत है, वह वास्तव में उद्धार से प्राप्त वस्तुओं का एक अंश मात्र है. बहुत सी वस्तुएं यूरोप के अन्य देशों में ले जाई गई हैं, जिस में सब से अधिक फ्रांस के लूव्रे म्यूजियम में संग्रहीत हैं. अमरीका के न्यूयार्क संग्रहालय में भी पांपियाई के कुछ ध्वंसावशेष ले जाए गए हैं.

ज्वालामुखी विसुवियस पर चढ़ने के लिए एक सड़क बना दी गई है. मोटर इसी रास्ते पर विसुवियस के मुख से कुछ सौ फीट दूर तक यात्रियों को ले जा सकती है. पैदल तो कोई मुंह तक भी पहुंच जाए, पर शामत किसे आई है और आफत मोल लेना किसे पसंद होगा!

यात्रियों की सुविधा के लिए यहां एक पोस्टआफिस है, एक अच्छा सा रेस्तरां है और कुछ छोटीछोटी दुकानें हैं. इन दुकानों में इटली के विभिन्न भागों में बनी शौक की चीजें मिलती हैं.

शाम हो चुकी थी. घूमतेघूमते काफी थक गया था. बस लौटने में अभी देर थी. मैं रेस्तरां में बैठ कर काफी पीने लगा. खिड़की के बाहर विसुवियस दिखाई पड़ रहा था. वह अब भी हल्का धुआं उगल रहा था.

मैं सोचने लगा कि इस का धुआं बताता है कि यह सुप्त नहीं है और न शांत ही है. पर अब यह किस पांपियाई को ग्रसने के लिए भीतर ही भीतर उबल रहा है?

सहसा लगा कि हल्के से वाष्प ने मेरी दृष्टि को धुंधला कर दिया और कान में कोई कह गया, 'यह नफरत भरी निगाहें मुझ पर हैं या प्रकृति पर? खुद पर क्यों नहीं! हिरोशिमा और नागासाकी को किस ने ग्रसा? मैं ने, पयुजियमा (जापान का एक ज्वालामुखी) ने या तुम ने?'

मैं चौंक उठा. देखा गरम काफी के भाप ने चश्मा धुंधला कर दिया है. उतार कर चश्मे को साफ किया और जल्दीजल्दी काफी पीने की कोशिश करने लगा.

ग्रीस

जो योरोपियन सभ्यता की जन्मभूमि थी

रोम से वायुयान द्वारा एथेंस आ रहा था, पाश्चात्य सभ्यता के दूसरे मूल स्रोत यूनान की राजधानी एथेंस. जहाज जब यूनान की भूमि पर मंडराया तो ऊबड़खाबड़, बंजर पर्वतीय भूमि देख कर राजस्थान के चितौड़ क्षेत्र की याद आ गई. मन में प्रश्न उठा, क्या इस प्रकार की शुष्क भूमि में ही ऐसे वीर उत्पन्न होते हैं, जिन की गौरवगाथा वर्णन कर के होमर और चंदवरदाई अमर हो गए!

फ्रांस और स्विट्जरलैंड में मित्रों ने कहा था कि आप विश्व के सुंदरतम स्थानों को देखने के बाद यूनान जैसे नीरस और निर्जन देश में क्यों जा रहे हैं? परंतु प्राचीन सभ्यता के अवशेषों, विश्वविख्यात आर्कोपोलिस पर्वत और देवी एथीना का मंदिर देखने के मोह ने विवश कर दिया.

विश्व के इतिहास में भारत एवं मिस्र के समान यूनान का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है. जिस समय अन्य यूरोपीय देशों के निवासी गुफाओं में रहते और वल्कल पहनते थे, उस समय यूनान अपनी सभ्यता के चरमोत्कर्ष पर था. यद्यपि भारत और मिस्र जैसा पुराना इतिहास तो यूनान का नहीं है, परंतु जितनी सामग्री उस के इतिहास के बारे में उपलब्ध है, वह इन दोनों देशों की अपेक्षा कहीं अधिक है. यदि किसी को केवल आमोदप्रमोद के लिए रात्रिक्लब और बड़ेबड़े ऐय्याशी के साधन ही चाहिए, तो यह उपयुक्त स्थान नहीं; किंतु जो मानव की सतत विकासोन्मुख प्रवृत्तियों का अध्ययन करने के अभिलाषी हों, उन्हें यूनान अवश्य जाना चाहिए. भारत से लंदन जाने वाले यात्रियों को यूनान जाने के लिए कोई अतिरिक्त व्यय नहीं करना पड़ता. कुछ हवाई कंपनियों के जहाज एथेंस में भी उतरते हैं. वे यात्रियों को इस बात की सुविधा देते हैं कि वे कुछ दिन वहां बिता सकें.

एथेंस को यूनान की दिल्ली कहना उपयुक्त होगा. यूनान के इतिहास में इस नगर का वैसा ही स्थान है, जैसा भारत के इतिहास में दिल्ली का. एजियन समुद्र के किनारे बारह लाख की जनसंख्या का यह नगर राजधानी होने के साथसाथ एक बड़ा बंदरगाह और व्यापार केंद्र भी है.

ग्रीस बहुत धनी देश नहीं है और उस के साधन भी सीमित हैं, इसलिए एथेंस में नई दिल्ली की तरह बड़ेबड़े भव्य भवन देखने को नहीं मिलते. परंतु वहां के निवासियों का आतिथ्य सत्कार और नगर की सुंदरता व स्वच्छता यह कमी पूरी कर देती है.
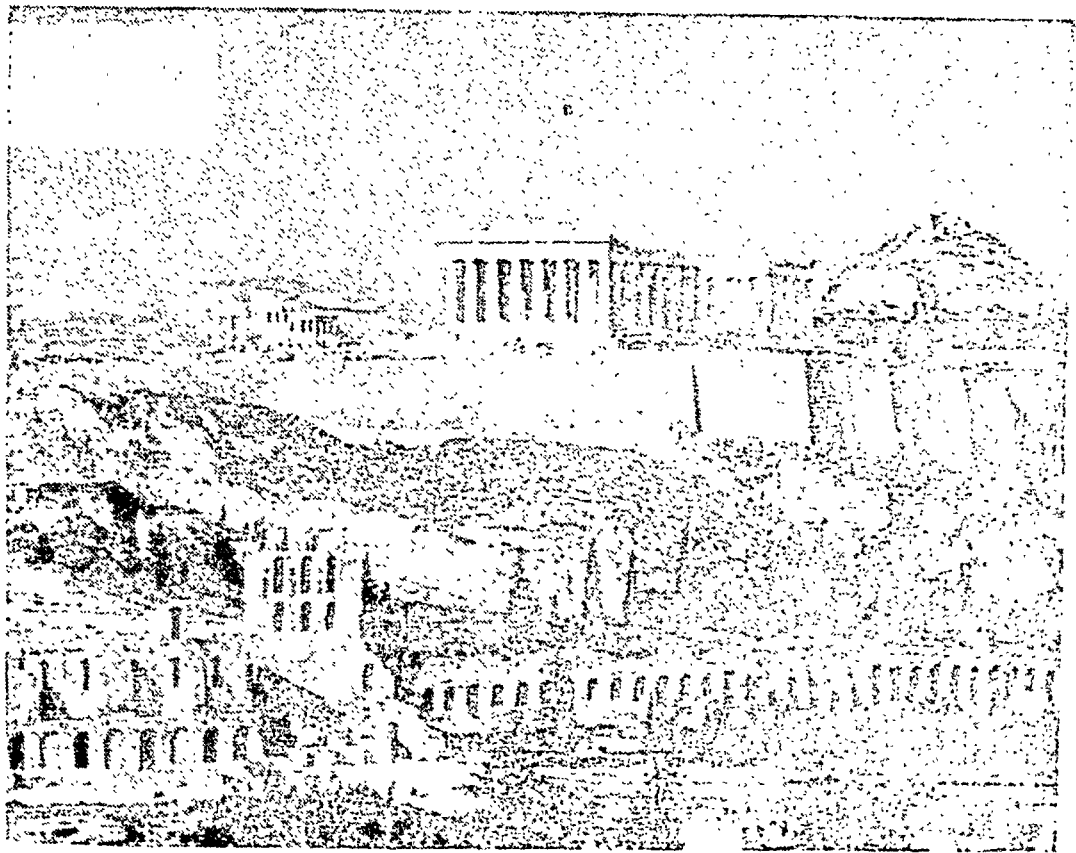
आर्कोपोलिस पर्वत पर सबसे प्रसिद्ध इमारत पार्थेनान

मैं नाश्ता कर के पैदल घूमने निकल गया. सब से पहले आर्कोपोलिस पर्वत पर गया जो शहर से थोड़ी दूर पर ही है. इस पर्वत ने अनेक उतारचढ़ाव देखे हैं. यहीं पर सत्यान्वेषी सुकरात को जहर का प्याला पिलाया गया था. यहीं वीर सिकंदर ने अपनी विश्वविजय का अभियान आरंभ किया था. जिस समय सिकंदर की वीर जननी अपने पुत्र को विश्वविजय के लिए लाखों सैनिकों के साथ आशा भरी विदाई दे रही थी, उस समय यह निर्मोही पर्वत मन ही मन सोच कर हंस रहा होगा कि यह विदाई ही अंतिम विदाई है.

उस बात को आज ढाई हजार वर्ष हो चुके हैं. अन्य देशों की तरह यूनान में भी परिवर्तन चक्र निरंतर चला. कभी तो यहां के वीर अनेक देशों से लूट की सामग्री और दासदासियों को ले कर विजयी होकर आए और कभी ऐसा समय भी आया कि रोमन और तुर्की सेना के आक्रमण से इन्हें एथेंस खाली कर के भाग जाना पड़ा.

वैसे तो आर्कोपोलिस पर्वत पर कई इमारतों के खंडहर दृष्टिगोचर होते हैं, पर सब से पहले मैं पार्थेनान के खंडहरों में संगमरमर से बने देवी एथीना के मंदिर में गया.

विश्व की कला कृतियों में इस मंदिर का अनुपम स्थान है. आज यहां चारों तरफ बिखरे हुए संगमरमर के पत्थरों और खंडित मूर्तियों के सिवाय और कुछ दिखाई नहीं देता; पर २,००० वर्ष पहले एक ऐसा भी समय था, जब इसी मंदिर के प्रांगण में बैठ कर सम्राट नीरो अपने सरदारों के साथ विश्वविजय की
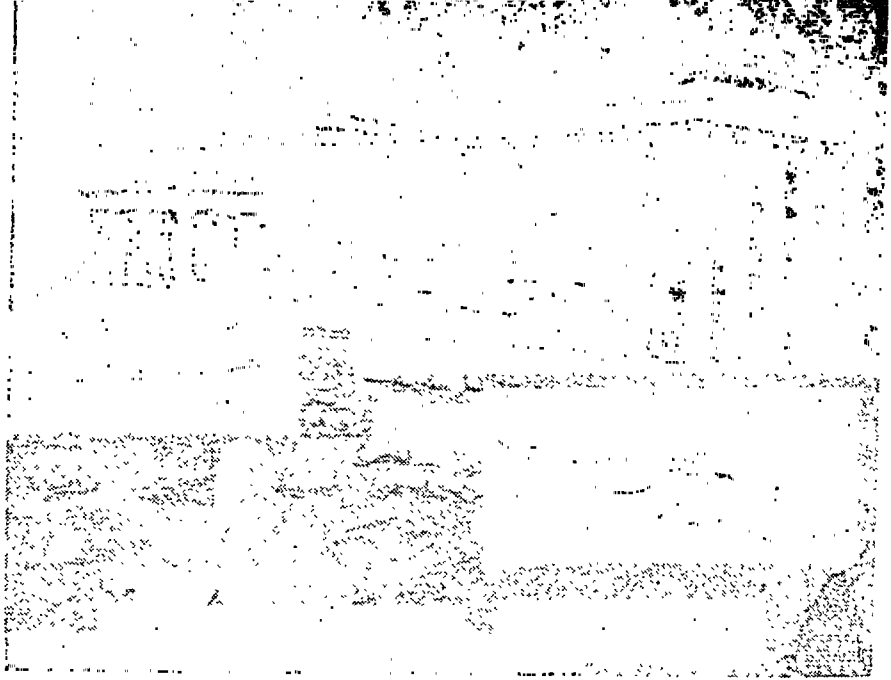
एरक्थम : अपनी बनावट व मौलिकता के लिए विश्व में प्रसिद्ध

रूपरेखा बनाया करते थे और विजय अभियान के पूर्व देवी एथीना से वरदान मांगते थे.

एक कोने में कब्र के एक पत्थर पर बैठे हुए मैं ने सोचा—मनुष्य कितना विस्मरणशील है. शायद इस कब्र में ही कोई ऐसा प्रतापी सरदार सोया होगा, जिस ने किसी समय अपनी तलवार से हजारों बच्चों और स्त्रियों को अनाथ कर दिया होगा और आज उस के अवशेष कुछ मिट्टी के कणों में बदल गए हैं. उस समय मुझे कवि की यह वाणी याद आ गई :

जहां शाह जमशेद विभव था, वही जहां मदिरा लहरी,
बने आज उन राजगृहों के सिंह श्रृगालादिक प्रहरी.
करते थे जो यहांवहां की व्याख्या रातरात भर जाग,
सब धकियाए गए अंत में, भूल गए सब रागविराग.

करीब तीन हजार वर्ष पूर्व एथेंस का नाम केक्रोपिया था. यहां के एक वीर सरदार थेसस ने देवी एथीना के नाम पर नगर का यह नाम रखा था. उस के बाद की छः शताब्दियों में तो इसी जगह से यूनानी साम्राज्य का शासन संचालित होता रहा.

ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में ग्रीस में पैरीक्लीज नाम का एक महापुरुष हुआ, जिस की वक्तृत्वशक्ति और कार्यकौशल से ही आर्कोपोलिस की इमारतें बनीं. इन्हें बनाने में मिस्र के पिरामिडों की तरह गुलामों से जबरन मेहनत नहीं कराई गई थी. ग्रीसवासियों ने स्वेच्छा से श्रमदान द्वारा लगातार चौदह वर्ष में इसे पूरा किया था. ऐसा कहा जाता है कि उस समय ऐसी इमारत विश्व के किसी भी देश

में नहीं थी. अंग्रेजी में एक कहावत भी है कि दुनिया में आ कर यदि एथेंस नहीं देखा तो जीवन वृथा है.

प्रथम ईसवी शताब्दी में रोमनों ने यूनान को विजित कर लिया और एथीना के मंदिर में माता मरियम की मूर्ति स्थापित कर दी गई. इस के बाद पंद्रहवीं शताब्दी में तुर्कों ने एथेंस पर कब्जा कर लिया और एथीना का मंदिर, माता मरियम का गिरजा कुछ शताब्दियों के लिए मसजिद के रूप में बदल गया. तीन सौ वर्षों के तुर्की शासन में यूनान को जो सांस्कृतिक और जन हानि उठानी पड़ी, वह कभी पूरी न हो सकी.

आर्कोपोलिस के खंडहर देखतेदेखते शाम हो गई. गरमी महसूस हो रही थी, क्योंकि अन्य यूरोपीय देशों की अपेक्षा यूनान अधिक गरम देश है. तो भी इन खंडहरों में कुछ ऐसा आकर्षण था कि वहां से वापस आने को जी नहीं करता था. एक बड़े खंडहर में बैठ कर थकावट मिटा रहा था कि नींद सी आ गई. हठात् रवि बाबू की 'क्षुधित पाषाण' कहानी के नायक की तरह मैं भी दो हजार वर्ष पहले के यूनान में पहुंच गया, जहां विचित्र वेशभूषा में लोग अनेक प्रकार के रागरंग कर रहे थे. थोड़ी देर बाद एक सिहरन सी महसूस हुई और आंखें खुलने पर परियों की जगह विशाल संगमरमर के खंभे दिखलाई दिए. आखिर, जी कड़ा कर के पर्वत से नीचे उतर वास्तविक जगत में आ गया.

संध्या समय एथेंस का राष्ट्रीय संग्रहालय देखने गया. २,७०० वर्षों के लंबे व्यवधान की जितनी यादगारें, मूर्तियां और वस्तुएं इस में संग्रहीत हैं, उतनी शायद ही अन्यत्र कहीं हों. वैसे तो लंदन, मास्को, पेरिस और वाशिंगटन के संग्रहालय संसार में बड़े अद्भुत माने जाते हैं, पर एथेंस में अन्य प्राचीन दर्शनीय वस्तुओं की भी कमी नहीं. इन में प्रमुख है: नायक का मंदिर, एपागस और एगस के गिरजे, क्रेमिसिर्स की कब्रगाह, डिनोश का थियेटर हाल और स्टेडियम. परंतु एथीना के मंदिर और पार्थेनान के खंडहरों का वर्णन ही यहां पर्याप्त होगा.

इस प्राचीन एथेंस के साथ एक नया एथेंस भी है, जिसे हम इंद्रप्रस्थ के मुकाबिले में नई दिल्ली कह सकते हैं. यह नगर आज से १२५ वर्ष पूर्व बसाया गया था. अन्य यूरोपीय नगरों की तरह यहां भी विश्वविद्यालय, क्लब, बाजार, दुकानें, सड़कें, पुस्तकालय, सरकारी दफ्तर, सिनेमा, नाटक गृह आदि सब कुछ हैं. परंतु फ्रांस और बेलजियम से लौटे पर्यटक के लिए इन में कुछ आकर्षण नहीं रह जाता. एक बात मुझे अवश्य अनुभव हुई कि यहां के निवासियों में पूर्व और पश्चिम का सम्मिश्रण है, इसलिए यूरोप के पश्चिमी देशों की अपेक्षा वे सुंदर और गोलाकार मुखाकृति वाले हैं. वेशभूषा में भी पश्चिमी यूरोपीय देशों से कुछ अंतर मालूम देता है. कई जगह लंबी दाढ़ी वाले, चोगे और लंबी टोपी पहने पादरी भी दिखाई दिए. इस के सिवाय, गलियों और सड़कों पर भी हमारे यहां की तरह मिठाइयां और अन्य वस्तुएं बेचने वालों के खोमचे दिखलाई पड़ जाते हैं. कुछ बाजार तो भारत के बाजारों जैसे हैं.

यूनान बहुत बड़ा देश नहीं है. इस का क्षेत्रफल ५० हजार वर्गमील और आबादी करीब ७५ लाख है. न तो यहां बड़ेबड़े कारखाने हैं और न खनिज संपत्ति ही अधिक है. इसलिए अमेरिका व यूरोप के संपन्न देशों की तरह
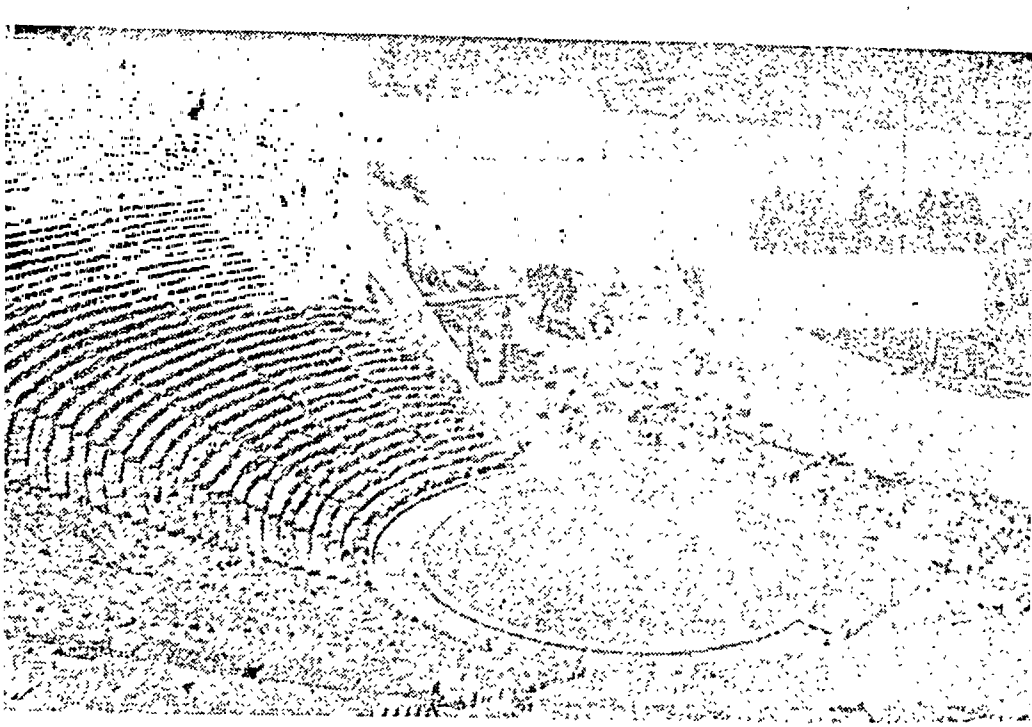
ईसा से ३२५ वर्ष पूर्व बना इपीडोरस का थियेटर

यह देश धनी नहीं है, तो भी इस की अपनी सभ्यता है, अपना इतिहास है. आज भी जब कोई विदेशी यूनानियों से बातें करता है तो उसे उन के गौरवपूर्ण अतीत की झलक मिलती है.

१९४० के अंत में जर्मनों और इटालियनों ने इस देश पर अधिकार कर लिया था जो तीन वर्षों तक कायम रहा. इस अवधि में इसे बहुत हानि उठानी पड़ी. १९४४ में मित्र राष्ट्रों की सहायता से वह फिर स्वतंत्र हुआ और वहां के लोग इन २० वर्षों में अपने देश को आगे बढ़ाने में कुछ अंशों तक सफल भी हुए हैं.

एथेंस और आर्कोपोलिस के अतिरिक्त और भी बहुत से स्थान देखने योग्य हैं, जैसे क्रीट और स्पार्टा. परंतु मेरे पास समय कम था और स्वदेश लौटने की जल्दी थी, इसलिए उन्हें देख न सका और वायुयान से काहिरा आ गया.

यद्यपि थोड़े समय ही ठहर सका, परंतु जो भी देखा, उस की स्मृति जीवन भर बनी रहेगी. यहां की एक घटना आज भी हृदय पर अंकित है. उस का उल्लेख कर यह लेख समाप्त करूंगा.

एथेंस प्रवास के समय 'टी. डब्लू. ए.' (एक अमरीकी वायुयान कंपनी) के युवक अफसर श्री कोर्नोपोलिस से मेरी मित्रता हो गई थी. उन्होंने मुझ से कहा कि वे एक बार मुझे अपनी पत्नी से मिलाना चाहते हैं. चार महीने पहले उन का ढाई वर्ष का इकलौता बच्चा काल कवलित हो गया था. उस दिन के बाद से प्रत्येक दिन उन की स्त्री तीनचार घंटे उस की कब्र पर बैठ कर रोती थी. वह कुछ विक्षिप्त सी भी हो गई थी. उन्होंने उस से मेरा जिक्र किया था. वह मुझ से एक बार मिलना चाहती थी.

दूसरे दिन उन के घर जा कर थोड़ा नाश्ता किया और उन की पत्नी से

मिला. वह उस समय भी शोक चिह्न धारण किए हुए थी और बहुत ही उदास मालूम देती थी. उस ने मुझ से कहा, "भारत की ज्योतिष विद्या के बारे में मैं ने बहुत कुछ सुन रखा है. कृपया मेरा हाथ देख कर बताएं कि मेरा भविष्य क्या है?"

यद्यपि मैं ज्योतिष का क ख ग भी न जानता था, परंतु उस शोक संतप्त मातृ हृदय को सांत्वना देने के विचार से मैं ने हाथ देख कर कहा, "दो वर्ष के भीतर ही आप को पुनः पुत्र प्राप्ति होगी."

यह सुन कर उस के उदासीन चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दी. मैं ने भी अपनी बात में असत्य के पीछे सत्य के दर्शन पाए. संयोग वश दो वर्ष बाद अचानक ही एक दिन उस के पति का पत्र मिला, जिस में उस ने अपनी और अपनी स्त्री की ओर से बहुत ही कृतज्ञता से लिखा था 'आप के कथनानुसार हमें पुत्र की प्राप्ति हुई है. हमें बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि आप एक बार हमारे यहां आ कर बच्चे को आशीर्वाद दें."

काश! मैं फिर से यूनान जा कर उस दम्पति से मिल पाता!

ताशकन्द

सुख व समृद्धि का प्रचार...लेकिन वास्तविकता क्या है?

१९६५ के ताशकन्द समझौते के बाद हमारे देश के साधारण से साधारण व्यक्ति की जबान पर यह नाम आ गया. किन्तु सन् १९६१ में जब हम ताशकन्द गये थे, उन दिनों भारत के बहुत कम लोग इस के नाम से परिचित थे. इनमें भी बहुतों की जानकारी इतनी सी थी कि ताशकन्द रूस के विशाल सोवियत संघ के एक राज्य का प्रमुख शहर है. कुछ लोगों का यह ख्याल था कि ताशकन्द हिमालय के उस पार मध्य एशिया में इस्लामी सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र है.

वचपन में पढ़ा था कि हिमालय पर शिवपार्वती विचरण करते हैं. वाल-वुद्धि इन सब वातों को सत्य मानती थी. महाभारत की कथा में भी सुनते थे कि सम्राट युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चीन, अफगानिस्तान और गांधार तथा हिमालय के उस पार के देशों से बहुमूल्य उपहार भेजे गये थे. वैसे ये पड़ोसी देश भी हैं इसलिए इन्हें देखने की वहुत दिनों से इच्छा थी.

कुछ वर्षों वाद प्रसिद्ध पर्यटक स्वर्गीय राहुल सांकृत्यायन के सम्पर्क में आया. वे तन्मय होकर सोवियत रूस की सर्वांगीण उन्नति के वारे में सुनाते थे. उनकी 'वोलगा से गंगा' ने भी जिज्ञासा के वीज को अंकुरित किया. परन्तु उन दिनों रूस देखने की अनुमति सिवाय साम्यवादी विचारधारा के लोगों के किसी को नहीं मिलती थी. हिमालय का लंघन संभव था परन्तु लौह प्राचीर के भीतर जाना दुष्कर था. उधर झांकना तक खतरे से खाली नहीं था.

मई सन् १९६१ को एक दिन श्री जी०डी० बिड़ला ने कहा—"रूस सरकार का निमंत्रण है, तुम चलोगे क्या?" भला मेरी इन्कारी का सवाल ही कहां था? इसी प्रकार की ताक में तो था ही. दूसरे ही दिन उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी.

यात्रा की तैयारी कर ली गयी. श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका को भी साथ जाने के लिए राजी कर लिया. वे आयु में ७५ वर्ष के हैं परन्तु उनमें शारीरिक शक्ति और जोश युवकों से भी ज्यादा है. यात्रा के लिए तो हमेशा तैयार रहते हैं चाहे उत्तरी ध्रुव की हो या टिम्बकटू की. यात्रा में हमारे अलावा बिड़लाजी के दो निजी सचिव और तीनचार अन्य मित्र थे.

मई का महीना था. दिल्ली में इन दिनों नौ वजे सुबह से ही आसमान से आग वरसती है और राजस्थान से उड़ी धूल की आंधियां चलती हैं. मगर हम

ताशकन्द की रिपब्लिकन एस्टेट लाइब्रेरी जो 'अलीशेर नावोई' के नाम से मशहूर है

ऊनी गरम कपड़े पहने हाथों में ओवरकोट लिए रूस की यात्रा पर चल पड़े. लोगों की निगाह में भले ही कुछ लगे हों पर बात यह थी कि रूस में इस समय भी जोरों की सर्दी पड़ रही थी. मोटे गरम कपड़े और ओवरकोट सन्दूक में रखते तो सामान के बतौर उनका भी किराया लग जाता.

अबतक हम अधिकतर अपने ही देश के एयर इण्डिया या अन्य आरामदेह हवाई जहाजों से यात्रा करते रहे थे. इनमें सब प्रकार की सुविधा रहती है. इस यात्रा में जिस रूसी यान एयरो फ्लैट में बैठे वह बड़ा और तेज तो जरूर था मगर साज-सज्जा में मामूली सा था. इसके अलावा जो तहजीब, खातिरदारी और स्नेहपूर्ण व्यवहार भारतीय या अन्य यूरोपीय एयर होस्टेसों से मिलती रही है, उसका इसमें सर्वथा अभाव मिला. सच पूछा जाय तो हवाई जहाज की लम्बी और उबा देने वाली यात्रा में आधी थकावट तो इनकी सुन्दरी परिचारिकाओं के मधुर व्यवहार और बातचीत से ही मिट जाती है. यह रूसी यान १२० यात्रियों का था, एयर होस्टेस की जगह थे कद्दावर रूसी जवान. अपनी तरफ से तो ये बिचारे हर तरह की सहायता करने को तैयार रहते परन्तु वह स्नेहपूर्ण मुस्कान और सुमधुर सुगन्ध इनके पास कहां से आती? इनकी भाषा भी साफ समझ में नहीं आती थी. कुर्सियों के गद्दे और कमर की पट्टियां सेना के प्लेनों जैसी थी. ऐसा लगा मानो रूस का सबसे पहला काम सैनिक तैयारी के बारे में सोचना है फिर और सब कुछ. हमें बताया गया कि इसी ढंग के दोतल्ले के हवाई जहाज भी रूस में बनाये जा रहे हैं जिनमें ढाई सौ यात्री बैठ सकेंगे.

यान की गति संभवतः ६०० मील प्रति घन्टे की थी इसलिए हम दो ही घन्टों में नगराज हिमालय की ऊंची चोटियों पर से उड़ रहे थे.

हमारे प्लेन की ऊंचाई ३५-४० हजार फीट थी परन्तु वर्फानी चोटियां भी बीस पचीस हजार फीट ऊंची थीं. इसलिए वे काफी नजदीक दिखाई पड़ रही थीं और ऐसा लग रहा था कि हिमसागर की ऊंची लहरों पर से हम उड़ रहे हैं. वर्फ ही वर्फ, न हरियाली और न नदी नाले या सड़कें. चमकीली बर्फ पर धूप पड़ रही थी. मानो चांदी का सागर लहरा रहा हो. दुर्गम हिमालय चांदी की चादर ओढ़े मुझे बुलाता सा लगा. सोचने लगा—यात्रियों ने ठीक ही लिखा है कि कैलाश और मानसरोवर के दृश्यों को देखकर मनुष्य आत्म-विस्मृत हो जाता है, वहां से वापस आने को जी नहीं चाहता. कठोर शीत में मृत्यु की आशंका रहती है, फिर भी वह खिचा ही रह जाता है. अमरनाथ की यात्रा की मेरी अपनी ही घटना का स्मरण आया. मैं भी तो वहां पर बर्फानी चोटियों के शांत और सौम्य दृश्य को आधी रात तक देखता ही रह गया था.

इन्हीं ऊंचे हिम शिखरों को पार कर कितनी जातियां हमारे देश में आयीं. हमारे यहां से कितने ही लोग इन्हीं घाटियों से गुजरे. वलख, बदख्शां, समरकन्द और बुखारा. . . ताशकन्द भी तो इन्हीं में है. . . हिमालय के उस पार. कल्पना में ऐसा लगा मानो गैरिक वस्त्र पहने बौद्ध भिक्षुओं की कतार धीरेधीरे इन्हीं बर्फानी घाटियों से आगे वढ़ रही है.

भारी सी आवाज सुनाई पड़ी. वेटर ने नाश्ते के लिए पूछा था. इच्छा नहीं थी, मैंने इन्कार कर दिया. विचारों का तार टूट गया. मन में सोचा, कल्पना से यथार्थ कितना भिन्न होता है.

यदि हम किसी दूसरी कम्पनी के हवाई जहाज से जाते तो उसी किराये में कावुल को देखने का सुयोग मिल जाता. मगर ये वड़े जहाज दिल्ली से उड़कर सीधे ताशकन्द आकर रुकते हैं. हम तीनसाढ़ेतीन घंटों में ताशकन्द हवाई अड्डे पर पहुंच गये. मन में प्रसन्नता सी हुई. आखिर पहुंच ही गया हिमालय के उस पार और लौह प्राचीर के भीतर!

यद्यपि यूरोप के कई देशों की यात्रा पहले कर चुका था परन्तु रूस की यह मेरी प्रथम यात्रा थी. ताशकन्द सोवियत संघ के उजवेकिस्तान की राजधानी है. यों भी रूस अन्य यूरोपीय देशों से भिन्न सा लगता है और यहां का वातावरण तो रूस से भी काफी अलग ढंग का है. हमारी अगवानी के लिए मास्को से रूसी सरकार के विदेश मंत्रालय के दो अधिकारी आये थे, वे अंग्रेजी अच्छी तरह समझते और बोलते थे. अत्यन्त सौजन्य से उन्होंने अपना परिचय देते हुए सोवियत सरकार की ओर से हमारा स्वागत किया. अन्य तीनचार व्यक्ति जो वहां खड़े थे, उनसे परिचय कराया. नगर के मेयर के अलावा यहां के व्यापार चेम्बर की प्रधान श्रीमती हमीदा भी थीं. ये अंग्रेजी नहीं जानती थीं अतएव, परिचायक के माध्यम से वातचीत हुई. परिचय से अन्दाज मिला कि श्रीमती हमीदा न केवल सुशिक्षिता हैं बल्कि अपने विषय और दायित्व की काफी जानकारी रखती हैं.

ताशकन्द का एयरपोर्ट कोई खास अच्छा नहीं लगा. साधारण सा

सोवियत उजबेक की सुप्रसिद्ध नतकी, गालिया इज्माएलोवा भारतीय नृत्य की एक मुद्रा में

था, हमारे यहां के पटना या वाराणसी के जैसा कहा जा सकता है. कई प्रकार के छोटेबड़े हवाई जहाज बहुत बड़ी संख्या में खड़े थे. विश्व में अमेरिका के सिवाय रूस के पास सबसे ज्यादा हवाई जहाज हैं, जिन्हें देश के भिन्न भिन्न हिस्सों में बांट रखा है.

हमारे स्वागत के लिए एयरपोर्ट के रेस्तरां में नाश्ते का आयोजन किया गया था. दरअसल बात यह थी कि हमारे पासपोर्ट और विसा की जांच की जा रही थी. इसमें कुछ देर लगनी संभव थी. चूंकि, हम सरकार द्वारा आमंत्रित थे, इसलिए वे इन बातों का हमें आभास नहीं होने देना चाहते थे. रूस में विदेशियों के विसा वगैरह की जांच बड़ी सतर्कता और कड़ाई से की जाती है. यों, हमारे बारे में पूरी जानकारी भारत में रूसी राजदूत श्री बेनेडिक्टोव द्वारा वहां दी जा चुकी थी. साथ ही यह भी बता दिया गया था कि हम निरामिष भोजी हैं और वोदका की जगह पानी पीते हैं. पानी का खास हवाला देना भी जरूरी था क्योंकि यूरोप में आमतौर से पानी की जगह लोग बियर पीते हैं. खैर, रेस्तरां में हमारे सामने रोटी, मक्खन और फलों की तश्तरियां रखी गयीं. ये सब तो साधारणतया अच्छी थीं, मगर काफी जो हमें दी गयी थी, वह काली और कुछ बदबूदार थी, दूध-चीनी भी उसमें नहीं था. थोड़ी सी ही गले की नीचे उतार पाये, उबकाई आने लगी.

मि० मिरकाव, जो हमें मास्को से लेने आये थे, आग्रह करने लगे कि थोड़ी ही सही हमें वोदका मेजबानों की स्वास्थ्य कामना के लिए जरूर पीनी चाहिए वरना वे अपना अपमान समझेंगे. वोदका की तेजी की शोहरत हम सुन चुके थे, इसलिए

उनकी शुभकामनाएं हमने पानी के गिलास दिखाकर ही की. हमारे एक साथी ने कुछ वोदका पी, वे इससे पूर्व कई बार रूस आ चुके थे.

एयर पोर्ट से हमारा होटल करीब आठदस मील था. सड़क तो अच्छी थी, दोनों तरफ हरे वृक्षों की लम्बी कतार थी, मगर मकान बहुत ही साधारण तरीके के थे. यूरोप के अन्य देशों की सी उनमें भव्यता नहीं थी. इन्हें देखकर रूसी जनजीवन में समृद्धि का परिचय भी नहीं मिलता. हमने रूस के विदेशी प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित पत्रपत्रिकाओं में पढ़ा था कि सोवियत संघ में पिछड़े इलाकों को भी खुशहाल बना दिया गया है. मगर जो कुछ भी हमने पहली नजर में देखा, उससे यही लगा कि साम्यवाद ने प्रचार में अच्छी कुशलता और निपुणता प्राप्त की है.

सोवियत संघ का यह अंचल मध्य एशिया के तुर्किस्तान का अंश है. उजबेक, कज्जाक, किरगिज आदि जातियां यहां रहती हैं. इनके रक्त में मंगोल मिश्रण है. अधिकांश इस्लाम के अनुयायी हैं. मुल्ले और मौलवियों का चूड़ान्त प्रभाव यहां के जनसमाज पर सदियों से रहा है. छोटेछोटे स्वतंत्र जनपद के रूप में ये बिखरे हुए थे. लगभग एक सौ वर्ष पूर्व रूस ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था. पिछले पैंतालिस वर्षों से यहां साम्यवादी शासन है. फिर भी, वही इस्लामी शक्लें दिखाई पड़ीं. लोग लम्बे चोगे, अमामे की जगह घटिया पुराने कोटपतलून पहने हुए थे—जैसे हमारे कलकत्ते की हरिसन रोड की दुकानों में मिलते हैं. कपड़े की गोल और छोटी टोपी. हमारे यहां वेढंगे या नासमझ को 'उजबक' कहते हैं. क्यों कहते हैं पता नहीं. वैसे उजबेक बहादुर और लड़ाकू भी होते हैं. इन्हें जो बात जंच गयी, उसमें तर्क की गुंजाइश नहीं. यह इनकी खूबी है. संभव है, अभी तक साम्यवाद इनके मन में जंचा बैठा है वरना कुछ न कुछ ये कर ही बैठते.

हम जिस होटल में ठहराये गये थे, वह छः मंजिला था. आधुनिक साज-सज्जा से सम्पन्न भी था फिर भी फर्नीचर और गलीचों को देखकर ऐसा आभास हुआ कि हमारे देश के कलकत्ते, बम्बई या दिल्ली के बड़े होटलों से यहां का स्तर काफी नीचा है.

अभी शाम के भोजन में तीनचार घन्टे का समय था. अपनी घुमक्कड़ आदत के अनुसार मैं बिना किसी को सूचना दिए शहर देखने निकल पड़ा. ताशकन्द भी दुनिया के पुराने शहरों की तरह दो हिस्सों (नये और पुराने) में बंटा हुआ है. शहर के पुराने भाग को देखने के प्रति मेरी रुचि अधिक रहती है, क्योंकि इन जगहों में वहां की प्राचीन संस्कृति का परिचय मिलता है. साथ ही, देश और जाति के इतिहास की परतें भी सामने आ जाती हैं. आधुनिक भाग के प्रति आकर्षण न रहने का कारण है कि यहां लन्दन, पेरिस, ब्रुसेल्स, बर्लिन आदि शहरों की नकल दिखाई देती है.

ताशकन्द का शहर मध्य एशिया के बुखारा, समरकन्द, बल्ख या बदख्शां की तरह प्राचीन तो नहीं है फिर भी अरब से फैली इस्लामी सभ्यता और संस्कार के पिछले १४०० वर्षों का इतिहास यहां मिलता है. पुराने गन्दे मकान, तंग गलियां, फटे गन्दे और पुराने कपड़े पहने आदमी और बच्चे, पीठ पर चमड़े के थैले लिए

ताशकन्द का एक रस्तोरेंत : अन्य पश्चिमी देशों की तड़क भड़क से दूर

आवाजें लगाकर शरबत बेचते फेरीवाले—ये सारे दृश्य हमें सदियों पहले के बगदाद और बसरा में ले जाते हैं. मैं घूमता हुआ यह सब देख रहा था, दिमाग में ख्याल उठ रहे थे अरबों रुपये प्रति वर्ष प्रचार में खर्च कर सोवियत रूस दुनिया को यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि साम्यवादी विशाल साम्राज्य के हर क्षेत्र में अमनचैन है, खुशहाली है, गरीबी, गन्दगी और जहालत नहीं है. हम अपने देश के साम्यवादी मित्रों से भी रूस और चीन में की गयी तरक्की की तारीफ सुनते ही रहते थे. मुझे पहले अनुभव ने ही यह बता दिया कि साम्यवाद और कुछ हो, न हो भ्रमवाद तो जरूर है.

सूखा जलवायु है. प्यास लग आयी परन्तु पानी पीने को मन नहीं हुआ. दिक्कत भी थी. हिन्दी की तो बात ही क्या अंग्रेजी जानने वाला भी कोई नहीं मिला. थोड़े से सिके हुए तरबूज के बीज लिए और पानी की जगह लेना पड़ा घटिये दरजे का एक लेमन. अवसाद और थकान का मारा किसी तरह होटल वापस आया.

पहुंचते ही प्रश्नों की झड़ी बरस पड़ी. "कहां गये," "कब गये, "कैसे गये," "किससे मिले," "क्या कहा" . . . और न जाने क्या क्या. झुंझलाहट खुद पर आगयी, क्योंकि मैं भूल गया कि लौह दीवार के अन्दर आया हूं. परन्तु भूल तो मुझ से हो चुकी थी, पछतावा भी हुआ. कुछ झमेला उठता परन्तु दिल्ली में रूसी दूतावास ने शायद हमारे बारे में अच्छी सिफारिश की थी, इसलिए बात वहीं खत्म हो गयी. हमारे सरकारी रूसी सहायक कहने लगे "बात कुछ नहीं, हम नहीं चाहते कि अनजान जगह हमारे मेहमान परेशान हों. उन पर भाषा की भी तो
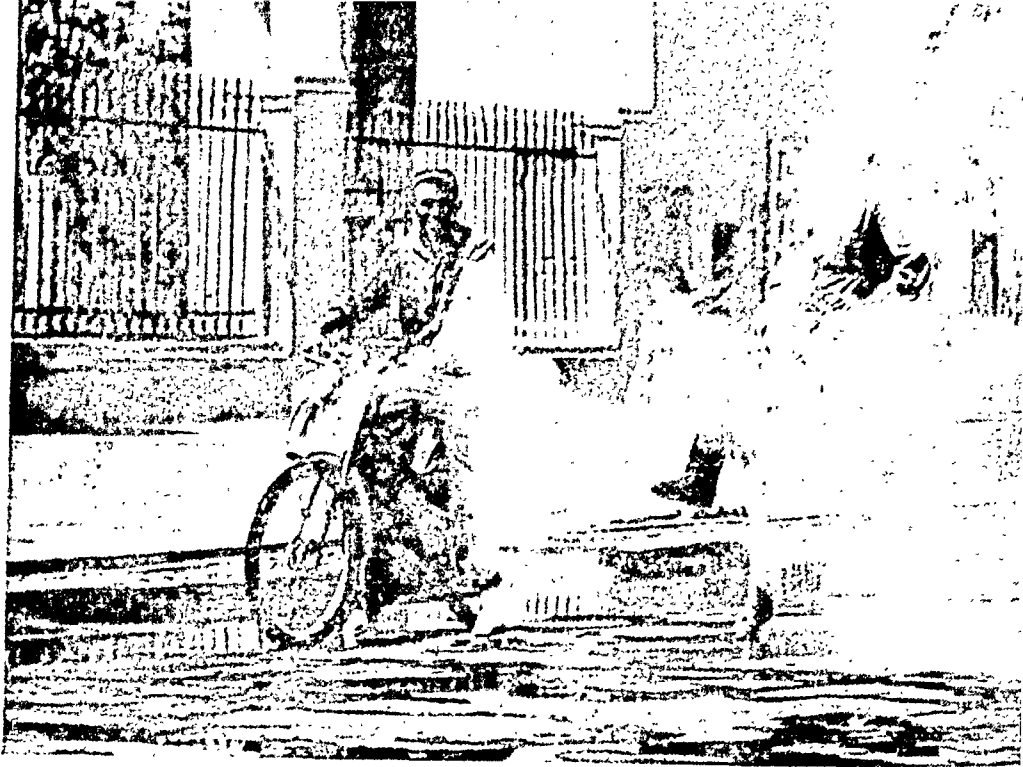
फटे पुराने और गंदे कपड़े पहने आदमी और पुराने मकान हमें सदियों पहले के वगदाद और वसरा की याद दिलाते हैं

दिक्कत है और बिलावजह आपका समय वर्वाद होने का अंदेशा रहता है. आप जहां भी जाना चाहें, हम में से किसी को साथ ले लें. इससे आपको जाने और समझने में सुविधा रहेगी." मैं मुस्करा उठा. शायद हम दोनों एक दूसरे का आशय समझ गये.

थकावट थी ही, मन में ग्लानि भी थी. न भूख लगी न प्यास, फिर भी औपचारिकता के नाते भोजन की टेबूल पर बैठना पड़ा. क्राकरी बहुत साधारण सी और नेपकिन घटिया कपड़ों की. मक्खन, रोटी और फल बेशक बड़ी मात्रा में थे. अपनी टेबुल से नजर हटाकर दूसरी टेबुलों को देखा—बहुत सी मोटी रोटियां और काली काफी थी, नेपकिन कागज के. कहना न होगा कि हमारे लिए विशेष प्रवन्ध किया गया था.

भोजन के उपरान्त होटल की छत पर के रेस्तरां में हम गये. और जाते भी कहां? व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी नहीं. रेस्तरां में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था. समझ में नहीं आया, उजवेकी धुनें हैं या रूसी. पेरिस के फौली वर्जे और सेवाय के संगीत तथा नृत्य की तुलना में ये बहुत ही हल्के लगे.

रात दस वजे सोने के कमरे में चला आया. जी चाहता था जरा घूम आऊं. हवा में ठंडक हो गयी थी, मगर मन की घुटन से परेशान था. ख्याल आ गया कि दिन में थोड़ी देर के लिए गया, उसकी इतनी जांचपड़ताल हुई तो फिर रात में जाना तो और भी सन्देहास्पद हो सकता है. सोने की चेष्टा करने लगा, कमरा ताप-नियंत्रित नहीं था. विस्तर वगैरह भी साधारण से थे किन्तु दिन भर की थकान

के कारण आंखें लग गयीं. दुस्वप्न आते रहे—मुझे गिरफ्तार कर लिया गया है, साईबेरिया चालान कर दिया गया है, चारों ओर बर्फ ही बर्फ है. कहीं रेनडियर दीखते हैं तो कहीं भालू. सुबह उठने पर सपनों की छाप का असर दिमाग में था. यह थी रूस में मेरी पहली रात.

दूसरे दिन सुबह नाश्ता कर यहां के व्यापारिक चेम्बर में गये. यद्यपि यहां के सारे कारखाने और उद्योग सरकारी नियंत्रण में हैं फिर भी चेम्बर वगैरह हमारे यहां की तरह ही हैं. अध्यक्षा ने हमें वहां के व्यापार, उद्योग की जानकारी संक्षेप में दी और अंग्रेजी में छपे कुछ विवरण-पत्र दिये. उन्होंने बताया कि १९१७ के पहले यह इलाका पिछड़ा हुआ था. न तो यहां कारखाने थे और न पर्याप्त रूप में खेती ही थी. सोवियत संघ में यह १९२५ में आया. उसके वाद यहां नाना प्रकार के कारखाने खुले हैं. पास की पहाड़ियों में तेल, तांवा तथा अन्य खनिज पदार्थ भी मिले हैं—बेहतरीन किस्म की रूई, फल और सूखे मेवे उत्पन्न करते हैं. विदा के समय हमें उजवेकी काली टोपी दी जिसे पहना कर फोटो लिया गया. यहां चायपान के दौरान में हमारे दल के नेता श्री विड़ला का संक्षिप्त भाषण भी हुआ.

इसके बाद हमें कपड़े की एक मिल दिखाने ले गये. यह काफी वड़ी थी किन्तु मशीनें हमारे यहां की आधुनिक मिलों से कहीं घटिया थीं. किसी देश विशेष की समृद्धि का अनुमान वहां के पहनावे और खानपान से लग जाता है. यहां हमारे देखने में आया कि वहुत हल्के दरजे का और मोटा कपड़ा वनाया जा रहा है. मजदूरों के वारे में पता चला कि ३५०)-४००) रु० मासिक प्रति व्यक्ति है. जनरल मैनेजर और अन्य आफिसरों को १५००) रु० से २०००) तक का वेतन मिलता है अर्थात मजदूर और आफिसरों का वेतनमान का अन्तर अधिक से अधिक १और५ का है. हमने महसूस किया कि इस वात में साम्यवादी विचारधारा को अवश्य सफलता मिली है. हमारे यहां वड़े साहवों का मासिक वेतन किसीकिसी प्रतिष्ठानों में सब मिलाकर २०-२२ हजार तक है, जवकि उनके साथ काम करने वाले मजदूरों को १२५)-१५०) रु० ही मिलता है.

मिल देखने के वाद हम दोपहर के भोजन के लिए होटल वापस आ गये. भोजन की टेवुल पर कई प्रकार के फलों को देखकर मैंने पूछा कि क्या ये विविध प्रकार के फल यहीं होते हैं? पता चला कि सोवियत संघ के इस अंचल में कुछ फल तो होते हैं मगर वाकी वाहर से मंगाये गये हैं.

भोजन के वाद हमें शहर के नये हिस्से को और वहां की संस्थाओं को दिखाने के लिए ले जाया गया. रास्ते में हमने लक्ष्य किया कि लोग वेकाम वैठे वातचीत कर रहे हैं. उनकी शक्ल, उनका पहनावा, उनकी चाल वता रही थी कि जिन्दगी का वोझ वे ढो रहे हैं. इसके पूर्व हमने भारत में सोवियत पत्रों मे पढ़ा था कि साम्य-वादी रूस में वेकारी की समस्या का हल निकाल लिया गया है.

हम एक स्टोर में गये. चीजें अधिक नहीं थीं. जो भी थीं घटिया किस्म की. हमें खरीदारी करनी नहीं थी फिर भी जिज्ञासावश दाम पूछे. प्रत्येक के लगभग इस प्रकार थे:

महिलाओं के लिए रेक्सिन हैण्डबैग	—	१००)	से	१५०)रु०
टेबल क्लाथ	—	१२५)	से	१५०)रु०
चाकलेट (एक पाउण्ड)	—	२०)	से	३०)रु०
नेकटाई	—	४०)	से	६०)रु०
सूती कमीजें	—	१२०)	से	२००)रु०
ऊनी सूट (साधारण)	—	१०००)	से	१५००)रु०
सूती सूट ,,	—	४००)	से	६००)रु०
सिगरेट केस (साधारण धातु का)	—	२००)	से	३००)रु०
जूते	—	३५)	से	१६०)रु०

चीजों का दाम जानकर चकित होना स्वाभाविक था. हमने यह भी सुना कि कोई-कोई विदेशी पर्यटक चुपके से यहां कुछ चीजें वेच भी देते हैं. मगर इससे क्रेता और विक्रेता दोनों को ही खतरा रहता है. सोवियत सरकार इस ढंग के कानून उल्लंघन पर कड़ा दण्ड देती है. हमने साथ के सरकारी अधिकारी से इन ऊंचे दामों के वारे में पूछा तो वे बिचारे संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाये. दूकानें सब सरकारी थीं इसलिए लागत और पड़ता का तो सवाल ही नहीं था.

कार्यक्रम कुछ अरुचिकर सा लग रहा था. हमने लक्ष्य किया कि हमें पहले से निर्धारित की हुई जगहें दिखाई जा रही हैं, जहां हमारे लिए पूर्व निश्चित तैयारी है. उपाय भी नहीं था. तन के साथ मन को भी चलाने का असफल प्रयोग साम्यवादी कहां तक करते रहेंगे कुछ समझ में नहीं आया. प्रभुदयाल जी ने शहर के पुराने हिस्से को देखने की इच्छा प्रकट की तो सरकारी आफिसर वहाने बनाकर उसे टाल गये. हम लोगों ने भी अधिक आग्रह करना उचित नहीं समझा. मैंने धीरे से उन्हें कहा, "कोई वात नहीं, कल मैं अकेले ही वहुत कुछ देख आया हूं आपको पूरी जानकारी दे दूंगा."

हम चाहते थे कि यहां की आर्थिक अवस्था और व्यवस्था की कुछ जानकारी पा सकें. श्री मिरकोव से पूछने के अलावा कोई चारा नहीं था. रीडर्स डाइजेस्ट में एक लेख पढ़ा था कि साम्यवादी देश कुछ समय पहले तक तो अभेद्य, लौह प्राचीर के अन्दर थे. वहां से किसी प्रकार के आंकड़े मिलने संभव नहीं. हालांकि, अब कुछ शिथिलता अवश्य की गयी है परन्तु वहां दूसरे देशों की तरह जानने या जांचने की सुविधा कतई उपलब्ध नहीं है. फिर भी, मेरा अनुमान है जो बातें हमने पूछीं—उनका जवाव गलत मानने का हमारे पास कोई कारण नहीं है. १८६५ तक उजवेकिस्तान तुर्किस्तान का एक अंचल था. ज्यादातर जमीन रेतीली और रेगिस्तानी है, पहाड़ भी हैं. नदियों में आमू और सायर हैं जिनके किनारे रूई और फलों की खेती और वागवानी की जाती है. रेगिस्तानी हिस्सों में वैज्ञानिक साधनों के द्वारा खेती करने का प्रयास प्रारम्भ किया गया है जिससे अच्छी किस्म की रूई यहां बड़ी मात्रा में पैदा होने लग गयी है. फिर भी अन्न के लिए इस अंचल को सोवियत संघ के अन्य देशों पर निर्भर रहना पड़ता है. साम्यवादी क्रांति के पूर्व यहां की साक्षरता थी तीन प्रतिशत किन्तु इस समय यह बढ़ कर अस्सी प्रतिशत हो गयी है. महिलाओं को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त हैं. कुछ कट्टर मुल्ला

सौवियत उजबेक की विज्ञान अकादमी के अणु-केंद्र में अणु संयंत्र

और मौलवियों ने इसका विरोध किया और उत्पात-उपद्रव की चेष्टा की किन्तु उनका कठोरता के साथ दमन कर दिया गया. यद्यपि सोवियत संघ के केन्द्रीय भाग की तरह यहां उन्नत वैज्ञानिक प्रयोग-शालाएं और अनुसंधान केन्द्र नहीं हैं फिर भी कपड़े की मिल, रासायनिक और लकड़ी चिराई के कारखाने हैं. हम जानना चाहते थे कि यहां के मिल और कारखानों की उत्पादन क्षमता कितनी है पर पूछने पर हमें जानकारी नहीं मिली. वे लोग विवश थे, शायद उन्हें पहले ही हिदायत दी जा चुकी थी कि क्या दिखाना और कितना बताना है.
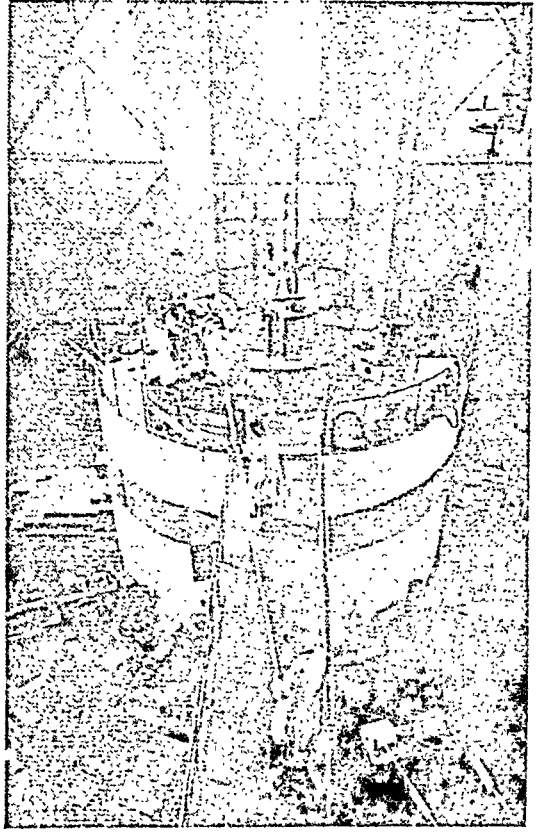
दूसरे दिन जब हम मास्को के लिए रवाना होने लगे तो ताशकन्द के अपने मेजबानों को भारत से लाये छोटेछोटे उपहार भेंट दिये. शुरू में तो वे इन्हें स्वीकारने में कुछ हिचके परन्तु आफिसरों के रुख को देखकर खुशीखुशी सबों ने ले लिया. हमारे लिए तो वे कुछ ही रुपयों के थे किन्तु वहां के दामों में ये दुर्लभ जरूर थे और शायद इनका खरीदना उनके बस की बात भी नहीं थी.

प्लेन में बैठा सोचने लगा कि जीवन में इस प्रकार के अवसर कई बार आते हैं. हम नयी जगह जाते हैं—वहां के लोगों से मिलते हैं—कभीकभी उनमें से किसी से मेलजोल भी हो जाता है. परन्तु फिर शायद ही कभी उनसे मिलना होता है. यात्री यदि इन यादों को मन में संजोए रखे तो उसके लिए शान्ति से जीवनयापन कठिन हो जाता है. इसलिए ही शायद हमारे धर्म ग्रन्थों में लिखा है कि किसी भी वस्तु या घटना से लगाव मत रखो.

मास्को-१

रूस के उतारचढ़ाव से संबंधित प्रसिद्ध शहर

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक म रूस व जापान के युद्ध के कारण भारतीय राजनीति के विद्यार्थी यूरोप में ब्रिटिश ओर जर्मनी के अतिरिक्त रूस का नाम भी जानने लगे थे. १९१९ में जलियांवाला बाग का हत्याकांड हुआ और इस के बाद १९४२ तक भारतीय स्वतंत्रता के सेनानियों पर विदेशी नौकरशाही के साथसाथ देशी रियासतों के राजेमहाराजे और नवाबों के अत्याचार इस कदर बढ़ रहे थे कि उन की स्वेच्छाचारिता, नृशंसता और बर्बरता को जारशाही कहा जाता था अर्थात रूस के सम्राट जार के द्वारा किए गए अत्याचारों से तुलना की जाती थी. रूस में जारों का शासन १९१७ तक रहा. उस के बाद वहां लेनिन के नेतृत्व में जनता ने विद्रोह किया. अंतिम जार सम्राट प्रजा द्वारा परिवार सहित मार डाला गया. इस से पूर्व भी कई बार जनता ने जारशाही का अंत करने के लिए विद्रोह किया था. किंतु कज्जाक सिपाहियों के द्वारा उसे कुचल दिया गया. इन घटनाओं को पढ़सुन कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं.

१९१७ के बाद से रूस में राजतंत्र का अंत कर साम्यवादी शासन की स्थापना हुई. पूर्व में प्रशांत महासागर, उत्तर में उत्तरी ध्रुव सागर, पश्चिम में बाल्टिक सागर तथा दक्षिण में हिमालय की हिंदूकुश की श्रेणियां तथा पामीर का पठार. इस विशाल भूखंड में फैले रूस साम्राज्य को सोवियत समाजवादी संघ की संज्ञा दी गई. साम्यवादी सरकार का शासन यहां १९३९ ई० तक निर्विघ्न चलता रहा.

इस समय तक यूरोप के राजनीतिक मंच पर हिटलर का सिक्का जम चुका था.

हिटलर भी अपने को समाजवादी कहता था और उस ने अपने दल का नाम भी रखा राष्ट्रीय समाजवादी दल (नेशनल सोशलिस्ट पार्टी—नात्सी). प्रथम महायुद्ध के बाद दो धाराएं यूरोप में पनपीं—एक साम्यवाद के रूप में रूस में, दूसरी उस के कुछ वर्ष बाद, नात्सीवाद या फासिस्टवाद के रूप में जर्मनी, इटली और स्पेन में. हिटलर के अधिनायकत्व में जर्मनी ने आशातीत प्रगति की. वह अपने देश में पूजा जाने लगा. विदेशों के लोग विस्मय से उसे देखने लगे. रूस की प्रगति तब तक धीमी ही रही.

जो भी हो, ये दोनों धाराएं एकदूसरे से दूर हटती गईं. स्थिति यहां तक बनी कि कएदूसरे को साम्राज्यवादी, विस्तारवादी आदि कहने लगे. हिटलर के प्रताप
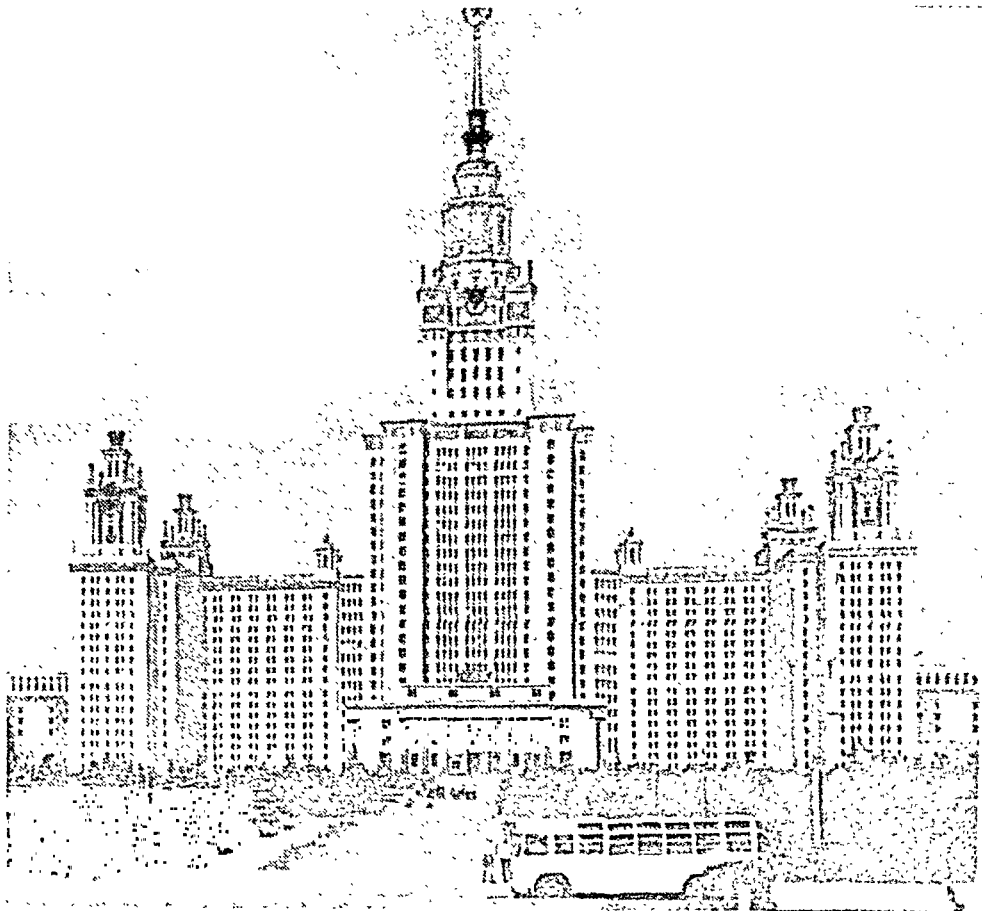
मास्को शहर की सबसे बड़ी इमारत 'मास्को विश्व विद्यालय'

और प्रभुत्व से सारे यूरोप के देश, विशेषतः ब्रिटेन और फ्रांस आतंकित हो उठे. हिटलर दहाड़ उठा. साम्राज्यवादी ब्रिटेन और फ्रांस के विरुद्ध उत्कट राष्ट्रवाद और जातिवाद ने जिहाद बोल दिया. १९३९ में युद्ध छिड़ गया. मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि नये युग के यूरोप की एक विशेष धारा का संघर्ष साम्राज्यवाद से छिड़ा, किंतु आश्चर्य की बात यह हुई कि एक वर्ष के अंदर ही समाजवादी रूस और जर्मनी की टक्कर कमजोर पोलैंड के बंटवारे को ले कर हो गई. रूस भी ब्रिटेन व फ्रांस की मित्रशक्ति में सम्मिलित हो गया.

सन १९४१ से १९४५ तक चार वर्षों में मित्र राष्ट्रों ने रूस को अपरिमित युद्ध सामग्री दी. इसी सिलसिले में इन देशों के लोगों का आवागमन भी वहां संभव हुआ, अन्यथा रूस में दूसरे देशों की भांति प्रवेश पाना सहज और सरल नहीं था. इस प्रकार बाहरी दुनिया को रूस के साम्यवादी शासन एवं उस की प्रगति का अनुमान हो सका. पर ज्यों ही युद्ध समाप्त हुआ, मित्रों की मैत्री टोली पड़ गई. सोवियत रूस और अन्य जनतंत्री राष्ट्रों में संदेह की खाई बढ़ती गई. ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि दोनों के शासनतंत्र के सिद्धांतों में मूलभूत अंतर तो था ही.

स्वाधीनता के बाद भारत ने प्रारंभ से ही विश्व की राजनीति में अपने को गुटबंदी से पृथक रखने की तथा सब से मैत्री की नीति अपनाई. इसलिए स्तालिन के शासनकाल में भी रूस से हमारा व्यवहार मैत्रीपूर्ण रहा. फिर भी साम्यवादी

शासन ने रूस को लौह प्राचीर के अंतर्गत ही रखा. जो समाचार रूसी सरकार के मुखपत्र 'प्रावदा' में प्रकाशित होते थे, उन से ही थोड़ी बहुत जानकारी वहां की मिलती थी.

१९५५ में रूसी प्रधानमंत्री बुलगानिन और वहां के साम्यवादी दल के मुख्य नेता श्री ख्रुश्चेव भारत आए. आज भी हमें याद है कि भारतीय जनता ने उन का अपूर्व स्वागत किया था. उस के बाद जब हमारे प्रधानमंत्री श्री नेहरू रूस गए तो रूसी जनता ने उन का हार्दिक अभिनंदन किया. रूस के इतिहास में शायद ही इतना विशाल जनसमूह किसी विदेशी राजन्य अथवा नेता के लिए एकत्र हुआ होगा. रूसी जनता भारत की गुटनिरपेक्ष नीति से प्रभावित थी और उसे एशियाई देशों में अग्रणी समझती थी. उन्हें विश्वास था कि श्री नेहरू विश्वशांति के लिए अटूट प्रयत्न और परिश्रम कर रहे हैं.

निकिता ख्रुश्चेव के प्रधानमंत्री बनने के बाद रूस के बंधनों में कुछ ढिलाई हुई. भारतीयों के लिए विसा (प्रवेश पत्र) मिलने में भी कुछ सुविधा होने लगी. वहां स्टालिन की दमन नीति की खुले तौर पर आलोचना होने लगी. विदेशों से बहुत से यात्री जाने लगे तथा रूसी कलाकार और इंजीनियरों को भी दूसरे देशों में जाने की अनुमति मिलने लगी.

इससे पूर्व हमारे देश से कुछ पर्यटक विद्वान रूस हो आए थे, जिन में राहुल सांकृत्यायन तथा यशपाल उल्लेखनीय हैं. इन दोनों ने वहां के बारे में लिखा भी है किंतु ऐसी धारणा है कि ये साम्यवादी विचारधारा के पोषक थे, इसलिए इन की बातें पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं.

ताशकंद में दो दिन ठहर कर हम मई की एक दोपहर में मास्को पहुंचे. एयरपोर्ट पर कई रूसी अधिकारी थे, इसलिए जांच पड़ताल में देर नहीं लगी. इस समय तक मैं अमरीका नहीं गया था. इसलिए एयरपोर्ट का भव्य रूप देख कर चकित रह गया. हजारों छोटे बड़े वायुयान खड़े थे.

वहां से मास्को शहर लगभग पचास किलोमीटर होगा. रास्ते में हरे भरे खेत और बस्तियां दिखाई पड़ीं. फिर एक बहुत ही शानदार गुंबज दिखने लगा. हमें बताया गया यह मास्को विश्वविद्यालय का गुंबज है. इस के बाद एक अच्छी चौड़ी सड़क पर पहुंचे. दोनों ओर एक सरीखे बने सात मंजिले मकान थे. इन की संख्या हजारों की रही हो तो आश्चर्य नहीं. हमें श्री मिरकोव ने बताया कि साम्यवादी सरकार ने पहला काम लोगों के आवास की व्यवस्था का किया है और उसी उद्देश्य से ये मकान बनाए गए हैं. पहले के बने सारे मकान जो व्यक्तिगत संपत्ति के रूप में थे, उन का राष्ट्रीयकरण कर लिया गया. इसलिए व्यक्तिविशेष द्वारा कानूनी अड़चन उठाने का सवाल नहीं रहा.

हमें वहां के प्रसिद्ध होटल 'लेनिनग्राड' में ठहराया गया. सारा होटल वातानुकूलित था. सर्दी इतनी अधिक थी कि बिना इस के कमरे में रहना या काम करना संभव नहीं था. एयरपोर्ट से चलते समय सनसनाती सर्द हवा ने हमें आगाह कर दिया था कि हम उस मास्को में हैं जहां की ठंडक में नेपोलियन और हिटलर की फौजें जम गई थीं. पूछने पर पता चला कि इन महीनों में जब कि भारत में गरमी के मारे शरीर पसीने से नहा उठता है और धरती तवा हो जाती है, यहां
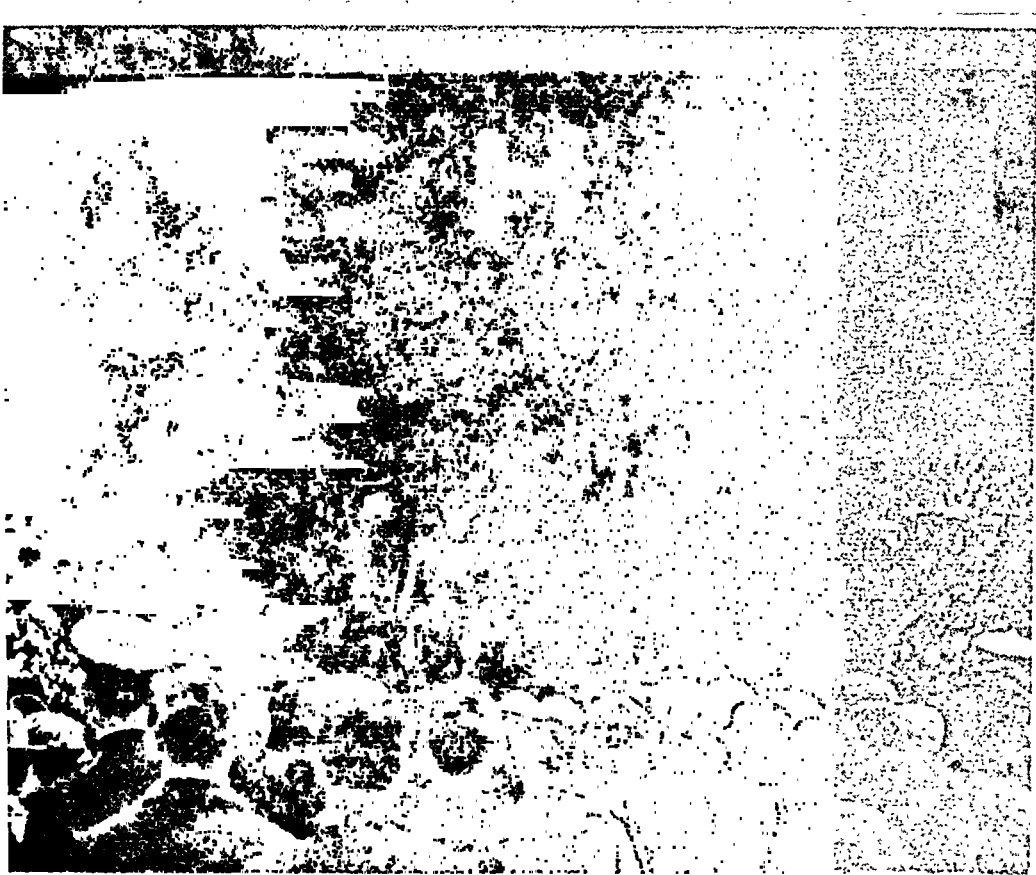
लैनिन स्मारक पर सिपाही ड्यूटी वदलते हुए

तापमान शून्य तक रहता है तथा जाड़े में तो शून्य से भी कहीं नीचे चला जाता है.

होटल पहुंचते शाम हो गई थी परंतु लगता था दिन ढला नहीं. यहां मई जून में १०, ११ बजे तक प्रकाश रहता है. खाना खा कर वाहर जाने का मन था, किंतु मिरकोव और उस के साथी किसी काम से वाहर गए थे. शायद हमारी अब तक की यात्रा का हवाला देने और आगे के लिए हिदायत लेने. ताशकंद के अनुभव ने हमें सिखा दिया था कि पूर्व सूचना और सरकारी साथी के विना सोवियत देश में घूमना परेशानी को न्योता देना है. अतएव, होटल के ही इर्दगिर्द टहलने लगे.

होटल के स्वागत कक्ष मे काफी संख्या में विदेशी देखने में आए. इच्छा तो हुई कि बातचीत कर जानकारी प्राप्त की जाए, पर प्रभुदयालजी के संकेत से संभल गया. अंगरेजी के कुछ समाचारपत्र वहां दिखाई पड़े. देखा, मास्को से ही प्रकाशित थे और समाचारपत्र की अपेक्षा प्रचारपत्र अधिक लगे. वाद में पता चला कि यहां विदेशी समाचारपत्रों के प्रसार को सरकार प्रश्रय नहीं देती.

होटल के सामने एक वहुत वड़ा मैदान था. घुटन सी हो रही थी. अतः मैं और प्रभुदयालजी वहां आ कर एक वेंच पर वैठ गए. आसपास रूसी नागरिक भी घूमफिर रहे थे. इन का स्वास्थ्य अच्छा था. कद लंबा, चौड़ी हड्डियां और चेहरे पर चमक थी. स्त्रियां अपेक्षाकृत स्थूल और ठिगनी लगीं. शरीर पर इन के गरम कपड़े तो जरूर थे, पर थे घटिया दरजे के. जूते भी फटे थे. खाना-

वरण स्वच्छंद और उन्मुक्त था, पर यूरोप के अन्य शहरों जैसा उच्छृंखल नहीं. पेरिस, लंदन और रोम के पार्कों के रात्रिकालीन दृश्य तो यहां कतई नहीं दिखे.

हमारे पास कुछ स्त्रीपुरुष आ कर खड़े हो गए. पूछने लगे. 'तुर्की या इंदिस्की (भारतीय)?' रूसी हमें आती नहीं थी, अंगरेजी बेकार थी, हिंदी का सवाल नहीं. हम ने मुसकराते हुए कहा, 'इंदिस्की' और नमस्कार किया. पंडित नेहरू ने रूस में नमस्कार को लोकप्रिय बना दिया था. हमारे नमस्कार से सभी प्रसन्न हुए. दोएक ने तो मुसकरा कर हाथ भी जोड़े. मैंने लक्ष्य किया कि हमारे गरम मोटे ओवरकोट, कलाइयों पर दस्ताने और जूतों को वे निगाह बचा कर वारबार देख रहे थे. स्वाभाविक ही था, क्योंकि वहां के स्तर के अनुसार ये चीजें बेशकीमती थीं.

सर्दी बढ़ने लगी. लोगबाग जाने लगे. हम भी ग्यारह बजे अपने कमरे में आ गए और सो गए. होटल की ग्यारहवीं मंजिल पर हमें कमरा दिया गया था.

दूसरे दिन सुबह उठ कर खिड़की के पास आया. हलका कुहरा था, फिर भी पास के मकान और सड़कें साफ दिखाई पड़ रही थीं. नीचे झुक कर देखा, पुराने मकान थे. जर्जर. रहनसहन का स्तर भी काफी नीचा लगा.

इन उत्तरी देशों में सर्दी इतनी अधिक पड़ती है कि पसीना आता ही नहीं. इसलिए लोग स्नान की आवश्यकता महसूस नहीं करते. यों अरब में भी जहां गरमी काफी पड़ती है, वहां स्नान के प्रति लोगों में उदासीनता ही है, शायद पानी की कमी के कारण. पर हम तो भारतीय संस्कारों में पले हैं. इसलिए रूसी सर्दी का हमारी दिनचर्या पर असर नहीं पड़ा. हम ने स्नान किया और नाश्ते के लिए तैयार हो गए.

आठ बजे हम नाश्ते के लिए भोजन कक्ष (डाइनिंग रूम) में आए. हमारे लिए अलग से एक बड़ी सी मेज सजा कर रखी गई थी. उस पर गुलदस्ते रखे थे, सभी तश्तरियों में अनेक प्रकार के फल, फलों के रस, दूध के बड़ेबड़े कंटर आदि. कई प्रकार की मिठाइयां भी थीं. हम ने लक्ष्य किया, ताशकंद की भांति यहां भी अन्य व्यक्तियों की मेजों पर मोटी रोटियां, भुना हुआ रसदार मांस और काली कॉफी रखी हुई है. मैंने धीरे से प्रभुदयालजी से कहा, "रूस की जलवायु अच्छी है, वरना ऐसे आहार पर इन का स्वास्थ्य कैसे बना रहता!"

हमारा एक अन्य साथी फुसफुसाया, "साम्यवाद तो सब के लिए बराबरी का दावा करता है, फिर भोजन में इतना अंतर क्यों है?

श्री भट्टाचार्य ने इस का जवाब दिया, "हमारे यहां भी तो विदेशी मेहमानों के लिए ट्रेनों में नई बोगियां लगती हैं, स्पेशल ट्रेनें दौड़ा दी जाती हैं, वरना आम जनता तो तीसरे दरजे में खड़ेखड़े भी चली जाए तो गनीमत है."

नाश्ता कर के सब से पहले हम लेनिन और स्टालिन की समाधियां देखने गए. ये क्रेमलिन की दीवार के बाहर रेड स्क्वायर में हैं. इस जगह के बारे में हम ने बहुत कुछ पढ़ रखा था. राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति के सेनानी वीरों की खून की होली—जार के कज्जाक सैनिकों द्वारा यहां अनेकों बार खेली गई थी. अंतिम युद्ध भी इसी लाल चौक में सन १९१७ में लड़ा गया, जब कि जार सरकार के सशस्त्र सैनिकों ने भूखीनंगी निरीह जनता पर गोली चलाने और उन्हें घोड़ों के पैरों के नीचे रौंदने से इनकार कर दिया था. उस समय के शहीदों की
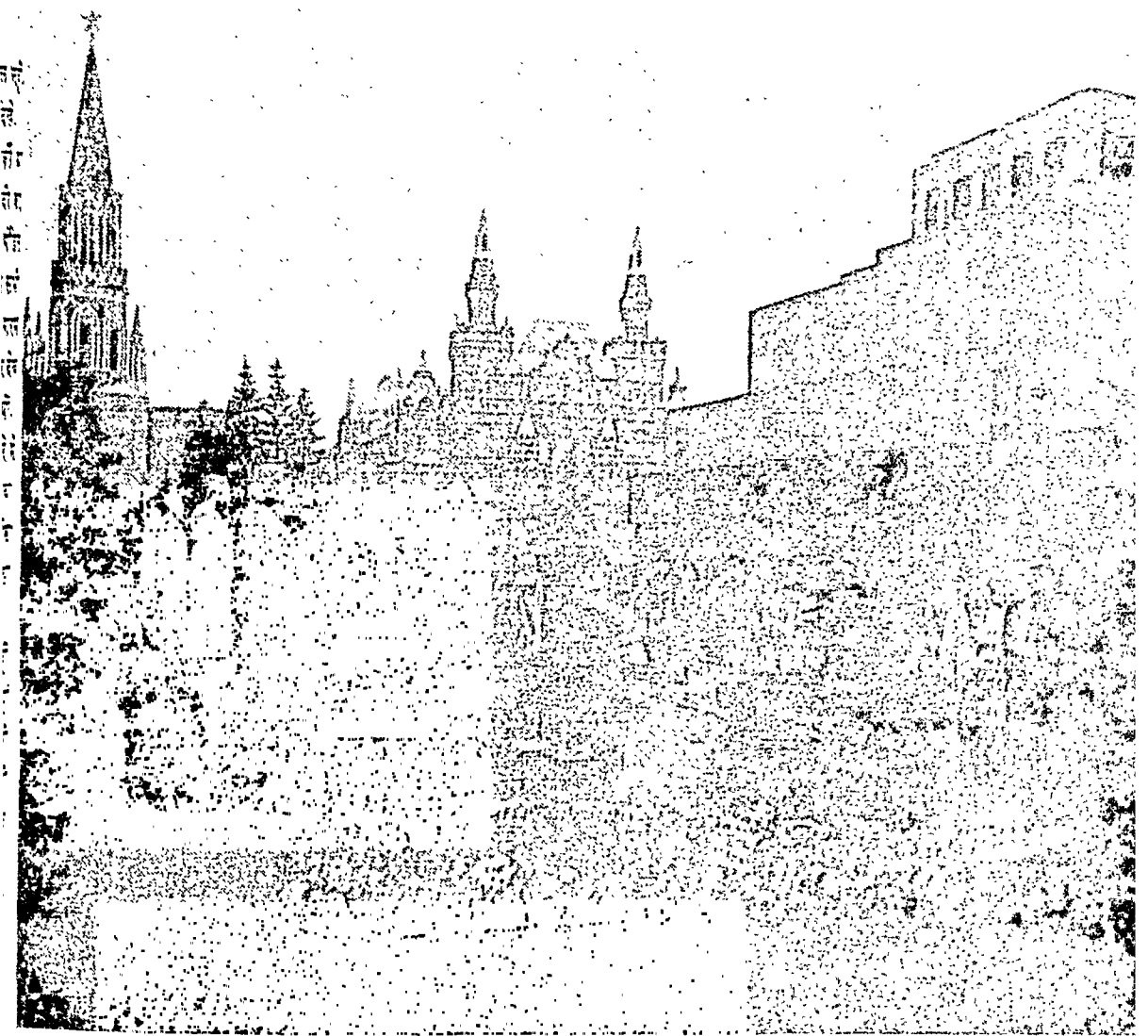
स्टालिन की कब्र सिर्फ फूलों से ढकी ?

पांच सौ समाधियां क्रेमलिन की दीवार से सटी हुई हैं.

लेनिन और स्टालिन का समाधि स्थल भी क्रेमलिन की दीवार के पास रेड स्क्वायर के पास के कोने में है. बाहर से काले और लाल संगमरमर की बनी यह इमारत विशेष आकर्षक नहीं लगती. फिर भी देशविदेश के दर्शनार्थियों की लंबी कतारें यहां लगी ही रहती हैं. हमारे साथ के अधिकारी ने वहां खड़े प्रहरियों को कुछ संकेत किया, हमें क्यू में खड़ा नहीं होना पड़ा. हम ने यह भी लक्ष्य किया कि रूसी नागरिक जो वहां खड़े थे, उन्हें बुरा नहीं लगा, अपितु हमें विदेशी जान प्राथमिकता देने पर वे प्रसन्न थे.

प्रवेश द्वार से लगी कुछ सीढ़ियां उतरने पर हम ने देखा, दो ऊंची टेबलें शीशे से ढकी कक्ष में रखी हैं. एक पर लेनिन और दूसरी पर स्टालिन फौजी वर्दी में सोए हुए हैं. चेहरे की भावभंगिमा, कपड़ों की ताजगी और सफाई देख कर यह अनुभव ही नहीं होता कि वे शव हैं. लेनिन की शक्ल पर कुछ सिकुड़न आ गई है, ऐसा शायद इसलिए कि लेनिन अंतिम वर्षों में अस्वस्थ रहा. पर स्टालिन तो

ऐसा लगता है जैसे अभी सोया है. जो भी हो रूस के इन दो भाग्यविधायकों को देख कर बहुत सी बातें मेरे दिमाग में घूमने लगीं.

साम्यवाद ईश्वर को अथवा दैवी शक्ति को नहीं मानता. धर्म उस के लिए मानसिक विकृति अथवा दुर्बलता का द्योतक है. किंतु मनुष्य के शव की पूजा! इसलाम में भी तो मूर्तिपूजा का निषेध है, पर काबा के पत्थर को सभी चूमते हैं. हजरत मुहम्मद साहब के बाल को शीशे की नली में हिफाजत से रखा गया है. हजारों सिर उसे देखते ही झुक जाते हैं. फिर क्यों मुसलमानों ने नालंदा और राजगृह के बौद्धविहार उजाड़े, सोमनाथ को खंडहर बनाया. ईसाइयों ने भी यही किया. क्रुसेड के नाम पर दानव बन मानवता को तलवार के घाट उतार कर अपने लिए स्वर्ग द्वार खुलवाए. साम्यवाद ने उसे दोहराया. गिरजों और मसजिदों को म्यूजियम बना दिया. हजारों पादरियों और मुल्लाओं को साइबेरिया भिजवा दिया. साम्यवाद के नशे में या उस के आतंक से रूसी जनता ने सब कुछ सहा.

मैं देख रहा था, कितना सुंदर और आकर्षक व्यक्तित्व था स्टालिन का. फिर भी यह व्यक्ति कितना क्रूर और दुर्घर्ष आजीवन रहा. इस के सामने जाने की और बोलने की लोगों की हिम्मत नहीं होती थी. आज वह निर्जीव और असमर्थ पड़ा है. शीशे से ढका न रहता और प्रहरी भी नहीं रहते तो शायद मैं उस की उस तर्जनी को अवश्य छूता, जिस के इशारे से लाखों के जीवन का ही नहीं, अनेक देशों के भाग्य का वारान्यारा होता था.

हम जिन दिनों रूस में थे, स्टालिन की नीति की खुली आलोचना वहां होने लगी थी. उस की तस्वीरें राजकीय भवनों से हटा दी गई थीं. कहा जाता था कि वह मार्क्सवादी की जगह व्यक्तिवादी था.

स्वदेश आने के कुछ दिनों बाद पता चला कि स्टालिन का शव क्रेमलिन की उस समाधि से हटा दिया गया है और कहीं दूर अनजान जगह भेज दिया गया है. आश्चर्य हुआ. जीवित व्यक्तियों से तो वैर भुगताने की बात सुनने और समझने में आती है. मरने के बाद तो बड़े से बड़े शत्रु के प्रति भी वैर की भावना समाप्त हो जाती है, फिर स्टालिन तो थोड़े वर्ष पूर्व रूस के वर्तमान नेता और अधिकारियों का सर्वोच्च कामरेड था. पर यहां शव को भी प्रायश्चित्त करना पड़ा. स्टालिन ने भी अपने जीवन में लाखों को मौत के घाट उतारा. बेघरबार किया. अपने साथियों में से बहुतों को साइबेरिया की सर्दी में ठिठुर कर मरने को भेज दिया या षड्यंत्र कर उन की हत्या करा दी. ट्राटस्की को, जिस ने साम्यवाद की स्थापना में उस से कम सेवा नहीं की, स्टालिन के आतंक से स्वदेश छोड़ना पड़ा. फिर भी सुदूर मेक्सिको में जिस नृशंसता से उस की हत्या हुई, वह किसी से छिपी हुई बात नहीं है. हमारे देश में ऐसी घोर नृशंसता का केवल एक ही उदाहरण मिलता है औरंगजेब का, जिस ने दारा के कटे सिर को धूल में लपेट, बूढ़े हाथी पर रख सारे शहर में घुमाया था. सभी कट्टरताओं का रूप एक सा होता है.

समाधि स्थल देख कर हम क्रेमलिन गए. क्रेमलिन के साथ रूस का इतिहास कुछ इस कदर जुड़ गया है कि इसे एकदूसरे से अलग नहीं किया जा सकता. इस का निर्माण १२वीं शताब्दी में हुआ. इन दिनों मंगोल और तातारों के
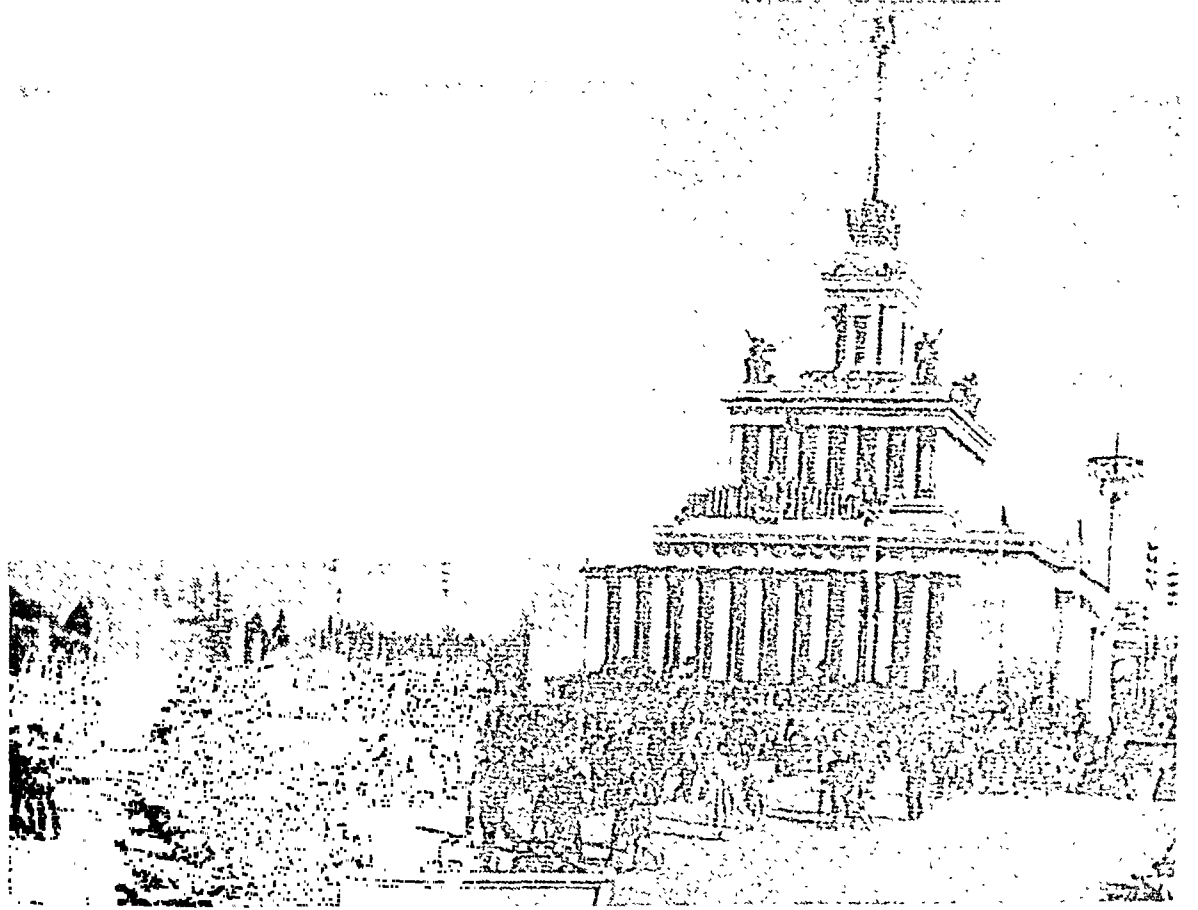
रूस की आर्थिक प्रगति की सचित्र झांकी प्रस्तुत करने वाली इमारत

हमले अकसर हुआ करते थे. इसलिए सुरक्षा की दृष्टि से क्रेमलिन के चारों ओर प्राचीर बना दी गई. शुरू में यह लकड़ी की बनी थी, जो हमलावरों को रोकने में असफल रही, बाद में इसे ईंटों और पत्थरों की बना कर पक्का कर दिया गया. प्राचीर खड़ी करने के बाद धीरेधीरे इस में गिरजे, गुंबज और महल बनते गए. सब से विशाल मीनार की ऊंचाई २२१ फुट है, हमारे कुतुब मीनार के बराबर.

मास्कोवा नदी क्रेमलिन से सट कर बहती है. यहीं लगभग १२५ वर्ष पूर्व जार ने अपना प्रसिद्ध महल बनवाया जिस में आजकल साम्यवादी पार्टी के बड़ेबड़े जलसे हुआ करते हैं. यहीं क्रेमलिन का म्यूजियम भी है जिस की गणना संसार के बड़े संग्रहालयों में होती है. यह तीन विशाल भवनों में है. पहले में जारों की निजी वस्तुएं संग्रहीत हैं, राजमुकुट, सिंहासन, वस्त्र, पोशाक आदि. विदेशों से उन्हें जो बहुमूल्य उपहार भेंट किए जाते थे, वे सब यहां सजा कर रखे गए हैं. यों तो ब्रिटेन तथा अन्य कई देशों में म्यूजियम हैं, जिन में अच्छे और कीमती संग्रह हैं, किंतु जैसा कि हम ने पेरिस के लुव्रे और मास्को के क्रेमलिन में देखा, अन्यत्र कहीं भी इतनी दुर्लभ और अमूल्य वस्तुएं देखने में नहीं आईं.

दूसरे भवन में हथियारों का अद्वितीय संग्रह है. नाना प्रकार के हथियार विभिन्न समय के हैं. फ्रांस के सम्राट नेपोलियन से छीनी गई अनेक प्रकार की तोपें भी रखी हैं.

तीसरे भवन में जार की सरकार का सचिवालय था. राजतंत्र के अवसा
बाद यह लेनिन का आवास बना. हम ने उस का अध्ययन कक्ष देखा. द
कलम, पैड आदि सारी चीजें इस प्रकार सजीसजाई रखी हैं, मानो थोड़ी देर
ही लेनिन वहां से लिख कर गया हो.

इन सामग्रियों के बारे में जानकारी देने के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित ग
रहते हैं. इन के अलावा विभिन्न भाषाओं में पुस्तकें भी हैं. किंतु वे तो रि
स्कालरों के काम की हैं जो महीनों यहां बैठ कर साम्यवाद के विकास और उ
गूढ़ तत्त्वों का अध्ययन करते हैं. हमें तो दोतीन घंटों में यहां सब कुछ देख लेना

क्रेमलिन में तीन प्राचीन गिरजे भी हैं. एक में जहां जारों का राजति
होता था, वहां अब साम्यवादी नेताओं की समाधियां हैं. यहां हम ने विश्व का
से बड़ा घंटा देखा. २३० वर्ष पूर्व इसे जार ने बनवाया था. वजन है ५,६०० म
ऊंचाई और घेरा है क्रमशः १८ फुट और २० फुट.

दोपहर हो आई थी. यद्यपि सुबह डट कर नाश्ता किया था, ठंडा देश
घूमे भी बहुत, भूख लग आई. फाटक के बाहर रेड स्क्वायर में आ गए. छु
का दिन था हजारों दर्शक इधरउधर घूम रहे थे. हम ने १ मई की फौजी प
की तसवीरें देखी थीं, यह चौक हमें अपरिचित नहीं लगा.

एक बजे होटल आ कर भोजन कक्ष में गए. हम शाकाहारियों के लिए रोट
मुरब्बे, मक्खन, केक और फलों के रस की व्यवस्था थी. हमारे साथियों में
आमिषाहारी थे, उन के लिए एक बेशकीमती और दुष्प्राप्य सामग्री मंगाई ग
थी मछली के अंडे. रूसी भाषा में इसे 'केवेयर' कहते हैं. चिरमी के आका
के काले मटमैले से. इन्हें चख कर हमारे साथी स्वाद की बड़ी प्रशंसा कर र
थे. भोजन के बाद प्रथानुसार वोदका पी कर स्वास्थ्य के लिए शुभकामन
की गई. हम ने फलों के रस के गिलास ऊंचे उठा कर प्रथा का निर्वाह किया.

मास्को में हमारा प्रवास छः दिन का था. इसी के अनुसार सरकार
प्रोग्राम बना दिया था. मैं इस आशा में रहा कि अन्य देशों की भांति यह
भी सरकारी मेहमानों के लिए एक दिन 'अपनी मर्जी से घूमोफिरो' की छू
मिलेगी, पर मेरा अनुमान गलत निकला.

दिन के तीन बजे श्री मिरकोव के साथ उद्योग और कृषि संबंधी यहां की स्थाय
प्रदर्शनी देखने गए. वैसे हमारे देश में भी प्रदर्शनियों के आयोजन होते रह
हैं. पर यहां जो कुछ देखा, अद्भुत और कल्पनातीत था. ५०० एकड़
मैदान में सैकड़ों विशाल भवन बने थे. बीचबीच में दूब के लान और फूल
के बगीचे थे, जिन में फव्वारे चल रहे थे.

प्रवेश द्वार देखते ही प्रदर्शनी की भव्यता का अनुमान हो जाता है. द्वार
ऊपर रूसी कृषक दंपति की विशाल धातु मूर्ति है जो वहां के मूर्धन्य शिल्पियों द्वार
बनाई गई है. हाथों में जौ की बालियां लिए हुए वे कदम बढ़ा रहे हैं. मिरको
ने बताया कि इस में ३०० से अधिक मंडप सोवियत संघ के प्रत्येक जिलों के है
जिन में वहां के उद्योग और कृषि के उत्पादन का प्रदर्शन किया गया है. लाखों व्यक्ति
इसे देखने के लिए प्रति वर्ष आते हैं. विद्यार्थियों के लिए तो यहां इतनी सामग्री
एकत्रित है कि उन्हें बहुत कुछ सीखने और समझने की सुविधा सहज ही मिल जाती

है. अनेक विदेशी यात्री और विद्यार्थी भी यहां आते रहते हैं. श्री मिरकोव ने बताया कि इसे अच्छी प्रकार देखने के लिए महीनों का समय चाहिए. हमें तो उसे समयाभाव के कारण सरसरी तौर पर देखना था इसलिए मोटरों से ही प्रमुख मंडपों को देखा.

केंद्रीय मंडप सब से बड़ा है. यहां जारों के समय की खेती की स्थिति, उस के आंकड़े, भूमि की उर्वरा शक्ति, उत्पादन और कृषि के औजार आदि दिखाए गए हैं. साथ ही साम्यवादी शासन के इन ४५ वर्षों में कृषि की कितनी उन्नति हुई है और वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग से कितना अधिक विकास हो सका है, इस के आंकड़े एवं विवरण चित्रों तथा प्रत्यक्ष यंत्रों द्वारा प्रदर्शित हैं. सब प्रकार के शस्यादि अन्न एवं फल शीशे की मेजों पर बड़े ही कलापूर्ण ढंग से सजे हैं.

अन्य मंडपों में अपनेअपने अंचल की विशेष जानकारी दी गई है. किसी में भेड़बकरियों एवं मधुमक्खियों की नसलसुधार की दिशा में प्रगति, तो किसी में मुर्गी पालन की, कहीं मछली तो कहीं सुअर, गाय, घोड़े की. कहीं जंगली पेड़ों की नसल सुधार कर उन्हें मोटा और लंबा बनाने की दिशा में प्रगति दिखाई गई है तो कहीं सब्जियों और फलों के विकास और उत्पादन का नवीनतम परिचय दिया गया है. जार्जिया के चाय के उत्पादन प्रयास पर भी प्रकाश डाला गया है. सभी मंडपों में गाइडों के अलावा सभी भाषाओं में आवश्यक विवरण उपलब्ध हैं. अंग-रेजी और फ्रेंच की तो बात ही क्या, अरबी, फारसी, चीनी और जापानी में भी हैं. पर भारतीय भाषाओं में कोई भी परिचय देखने में नहीं आया, हिंदी में भी नहीं. भारत में सोवियत प्रचार विभाग द्वारा प्रसारित रूस के हिंदी प्रेम की यह असलियत जान कर आश्चर्य हुआ.

दर्शकों में विद्यार्थी काफी संख्या में थे. इन्हें तीनचार कक्षों को सरसरी तौर पर देखने में दो घंटे लग गए. अभी हमारी रुचि के विषय—उद्योग और विज्ञान के मंडप नहीं देखे जा सके थे. इसलिए कार में बैठ कर उस हिस्से में गए.

यहां जो कुछ देखा, उस से अंदाजा हुआ कि द्वितीय महायुद्ध के समाप्त होने तक रूस औद्योगिक यंत्रों के निर्माण और कौशल में ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और अम-रीका से काफी पिछड़ा हुआ था, क्योंकि उस ने अपनी सारी शक्ति कृषि के विकास में नियोजित कर दी थी. युद्ध के बाद के इन १५ वर्षों में शिल्प और उद्योग की ओर ध्यान दिया गया और विभिन्न प्रकार की छोटीबड़ी मशीनों का उत्पादन किया जाने लगा है. फिर भी जो निपुणता और कारीगरी पश्चिमी जरमनी, स्विटजरलैंड और ब्रिटेन की मशीनों में दिखाई पड़ती है, वह यहां नहीं है. हां, खेती के ट्रैक्टरों के उत्पादन में ये सब से आगे हैं. वे सस्ते हैं तथा छोटेबड़े कई प्रकार के हैं.

विज्ञान मंडप में राकेट और स्पूतनिक के माडल देखने को मिले. प्रथम स्पूत-निक, जो अंतरिक्ष में भूमंडल की कई परिक्रमा कर चुका था, हम ने यहां देखा. गाइड ने गर्व से कहा, "इस दिशा में हम अमरीका से बहुत आगे बढ़ चुके हैं."

यह सही था, क्योंकि कुछ दिनों पूर्व ही रूसी युवक यूरी गागारिन अंतरिक्ष की सफल यात्रा कर आया था. हम ने मिरकोव से पूछा, "क्या सोवियत संघ ऐसे भी राकेट बना रहा है जो बटन दबाते ही निर्दिष्ट लक्ष्य पर विस्फोट कर दें?"

उस ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया. संभवतः उसे पता न हो या इन विषयों पर न बोलने के सरकारी निर्देश हों. जो भी हो, किंतु आज यह किसी से छिपा नहीं कि अमरीका और रूस दोनों ने ही ऐसे संहारक प्रक्षेपास्त्र बना लिए हैं.

उस समय तक हाइड्रोजन बम बन चुका था. किंतु प्रदर्शनी में एटम और हाइड्रोजन दोनों ही प्रकार के बम नहीं रखे गए थे.

३०० मंडपों में से हम केवल सातआठ ही देख पाए थे कि रात होने लगी. ठंडक होने के बावजूद थकावट आ गई. वहीं एक कक्ष में बैठ कर गरम काफी ली और रवाना हुए. देखा, करोड़ों पावर की तेज रोशनी के रंगीन बल्ब और नियोन जगमगा रहे हैं. यदि आधुनिक रूस का सही परिचय इस प्रदर्शनी से मिलता है तो यह मानना पड़ेगा कि साम्यवादी प्रयोग को सफलता मिली है, किंतु निर्णय पर तो तभी पहुंचा जा सकता है जब जनसाधारण से मिल कर, गांवों में जा कर वास्तविक स्थिति का अध्ययन स्वतंत्र एवं बेरोकटोक करने दिया जाए. यों तो हम भी विदेशियों को भाखड़ानंगल और चंडीगढ़ दिखा कर अपने देश की प्रगति का परिचय करा देते हैं. हम इतनी ईमानदारी अवश्य रखते हैं कि विदेशियों पर आवागमन के और जनसाधारण से मिलने के मामले में कोई प्रतिबंध नहीं रखते.

हमारे यहां जिस प्रकार महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता मानते हैं, आधुनिक रूस में लेनिन के प्रति उसी प्रकार की श्रद्धा है. रूस भी भारत की तरह सदियों तक ऐयाश और क्रूर शासकों द्वारा शोषित और त्रस्त रहा. दोनों ही देशों में आम लोग भूखों मरते रहे हैं. अन्न उपजाने वाले किसानों के बच्चे अभावों में दम तोड़ते रहे हैं. नवाबों और राजाओं ने तीतर, बटेर तथा कुत्तों की फौज पर लाखों रुपए बरबाद किए, पर रियाया की राहत के लिए अस्पताल और स्कूल की आवश्यकता नहीं समझी. किसी ने आवाज उठाई तो कोड़े बरसे. भारत में गांधीजी ने अहिंसात्मक आंदोलन चला कर राष्ट्र को नया जीवन दिया. रूस में लेनिन ने हिंसात्मक क्रांति से राजतंत्र को समाप्त किया. यह विवाद अभी अनावश्यक है कि सही रास्ता कौन सा था. समय इस का निर्णय करेगा.

दूसरे दिन हम लेनिन की स्मृति में बने स्मारकभवन को देखने गए. सर्वप्रथम हमें क्रांति चौक के संग्रहालय में ले जाया गया. इस विशाल भवन में १९१७ में जार के समर्थकों ने भाग कर शरण ली थी, किंतु क्रांतिकारी सैनिकों ने उन को बाहर ला कर गोली से उड़ा दिया था. इसलिए इस का नाम क्रांति चौक पड़ा.

संग्रहालय में रूस के गत १०० वर्षों का पूरा इतिहास है. क्रांतिकारियों को कैसी यातनाएं दी गईं, किन संघर्षों से गुजर कर साम्यवादी शासन की स्थापना की जा सकी आदि सब बातें चित्रों और चार्टों के माध्यम से दिखाई गई हैं. लेनिन द्वारा बरती गई सभी वस्तुएं यहां सजा कर रखी गई हैं. उस के अंतिम काल में पहने गए ओवरकोट को भी देखा, जिसे छेद कर गोली निकल गई थी.

मास्को से २० मील दूर गोर्की नाम का गांव है, जहां लेनिन ने अपने जीवन के अंतिम छः वर्ष बिताए थे. जीवन की विषमताओं से और देश की उथलपुथल की चिंताओं से जूझते हुए, विदेशों में दीर्घ काल तक अभावग्रस्त में रहने के कारण उस का स्वास्थ्य टूट चुका था. इसलिए स्वतंत्रता के बाद १९१८ में वह

मास्को से यहां आ कर रहने लगा. १९२४ तक यहीं रहा. आसपास गरीब किसानों के छोटेछोटे घर हैं. एक प्रकार से यह देहात ही है. लेनिन के इस स्मारक में उसे लिखे गए अगणित पत्र तथा उपहारों का संग्रह है. लिखने की मेज, पहनने के कपड़े और पलंग आदि सभी सुरक्षित हैं. इन्हें देखते हुए मुझे लेनिन के जीवन की एक घटना याद आ गई. हमारे क्रांतिकारी नेता राजा महेंद्रप्रताप एक बार लेनिन से मिलने यहां आए थे. उन का सामान एक मजदूर ढो कर लाया था. लेनिन ने पहले उस मजदूर से हाथ मिलाया फिर राजा साहब से.

रूस के महान लेखक मैक्सिम गोर्की से लेनिन की गहरी मित्रता थी. कहना चाहिए कि वह गोर्की का अनन्य भक्त था. इसलिए इस गांव का नाम गोर्की रखा गया. रूस में आज भी लेनिन के बाद यदि किसी का नाम है तो वह है गोर्की और तालस्ताय का.

मास्को से गोर्की जाते समय किसानों के घर दिखाई दिए. इन से सटे हुए छोटेछोटे खेत और फलों के बगीचे थे. पूछने पर पता चला कि ख्रुश्चेव की सरकार ने सहकारी खेती (कलखोज) के साथसाथ इन लोगों को छोटे पैमाने पर निजी खेती करने की भी छूट दी है. इस की उपज को वे खुद काम में ले सकते हैं अथवा बाजार में बेच भी सकते हैं. हमें अन्य सूत्रों से यह जानकारी भी मिली कि निजी खेती की प्रति एकड़ उपज सहकारी खेती की उपज से दुगुनी से भी अधिक है. उन के द्वारा वह प्रचारित सहकारी खेती की वास्तविकता की पोल न खुल जाए, इसलिए रूसी सरकार इस तथ्य को छिपाती है. किसानों का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा दिखा. हम उनके घरों में जा कर उन के रहनसहन को तो देखना चाहते थे पर यह संभव न था. दूर से ही देख कर संतोष कर लिया. छोटे खेतों में ट्रैक्टर के उपयोग का प्रश्न नहीं उठता. हां, इन में छोटे मोटरचालित यंत्रों को देखा. जमीन की खुदाई वगैरह का काम किसान नरनारी अपने हाथों से ही कर रहे थे.

दोपहर बाद हमें विदेश व्यापार मंत्री से मिलने जाना था. नई दिल्ली की तरह यहां भी विभिन्न मंत्रालयों के अलग-अलग भवन हैं. शान्त वातावरण, सफाई और अपने काम के प्रति रुचि ने हमें वहां के अनुशासन का अच्छा एवं प्रभावशाली परिचय दिया. मंत्री महोदय से औपचारिक बातों के बाद रूस के आयातनिर्यात से संबंधित चर्चा हुई. भारत से रूस में किस प्रकार आयात बढ़ाया जाए, चायनाश्ता के साथ इस पर भी चर्चा हुई.

हम ने लक्ष्य किया कि यद्यपि उन में बहुत से अंगरेजी जानते थे, फिर भी बातचीत दुभाषिए के माध्यम से कर रहे थे. इस प्रकार उन्हें सोचने और समझने का मौका मिल जाता था. शायद यह भी उद्देश्य हो कि एकदूसरे की बातों पर निगरानी भी रख सकें.

उन की बातचीत से ऐसा आभास हुआ कि सारी बातों का खाका पहले ही तैयार कर लिया गया था. विदा करते समय उन्होंने हमें रूस के व्यापार के संबंध में बहुत सी सचित्र पुस्तकें भेंट कीं.

मास्को-२

धर्म के साथ-साथ मानवता से भी चिढ़?

मास्को में रहते दो दिन हो गये थे. इस छोटे से अर्से में कभीकदास अकेले ही घूम लेने के बाद कुछ हिम्मत बढ़ी.

डा० राजेन्द्र प्रसाद की निजी सचिव श्रीमती ज्ञान दरबार के भाई श्री परमात्मा प्रकाश वहां के रेडियो के हिन्दी विभाग में थे. दिल्ली से रवाना होते समय श्रीमती दरबार ने उन का एक परिचय पत्र मुझे दे दिया था. रूस के बारे में निष्पक्ष जानकारी भी लेनी थी इसलिए अगले दिन उन से मिलने का प्रोग्राम तय किया.

सुबह चार बजे उठा. प्रभुदयालजी सो रहे थे. चुपके से बिस्तर छोड़ तैयार हो गया. खिड़की से बाहर झांक कर देखा—कुहासे की हल्की सी चादर में मास्को अलसाया सा करवटें ले रहा था. किसी को कुछ कहे बिना होटल से बाहर निकल आया.

उजाला हो गया था पर सड़कों पर इक्केदुक्के ही आदमी दिखाई पड़ रहे थे. औरतें लम्बे ब्रश से सड़कें साफ कर रही थी. स्वास्थ्य इन का अच्छा था पर इन में से कुछ काफी वृद्धा थीं. वे इस काम के लायक नहीं थीं. भारत में इस उम्र की औरतें शायद ही काम करती हों. आम तौर से अपने यहां इन की परवरिश परिवार वाले ही करते हैं. जो निहायत अभागन होती हैं, उन्हें पेट पालने के लिए भीख मिल जाती है. धीरेधीरे सड़क पर बढ़ता हुआ सोचने लगा साम्यवादी व्यवस्था में संयुक्त परिवार का तो सवाल ही नहीं रहता. फिर इन बूढ़ेबूढ़ियों के पालनपोषण की जिम्मेदारी तो सरकार की है. जीवन की संध्या के बोझ ढोते हुए इन के लिए यदि आश्रम बना कर विश्राम करने की व्यवस्था होती तो कहा जा सकता था कि सामाजिक दायित्व का निर्वाह सरकार स्वयं कर देती है. कम से कम मानवता के नाते यह अपेक्षित भी है. भले ही धर्म के नाम से साम्यवादी चिढ़ते हों पर मानवता का तो वे दावा रखते हैं. हम ने अन्य यूरोपीय देशों में देखा था वृद्धों के लिए आवासगृह और खाने पीने की व्यवस्था सरकार द्वारा समुचित रूप से है.

कदम बढ़ता हुआ भूगर्भ ट्रेन के स्टेशन पर पहुंचा. नक्शा जेब में था ही. एक बार फिर से उसे देख लिया. यूनिवर्सिटी क्षेत्र में जाना था. मास्को की खूबी है भूगर्भ ट्रेनों की. लन्दन, पेरिस, बर्लिन अथवा पृथ्वी के किसी भी देश

सभी जगह मुक्त परिवेश और स्वच्छन्दता का अभाव

में इस का मुकाबला नहीं. भूगर्भ स्टेशनें क्या हैं मानो वास्तुशिल्प और कलाकारीगरी के अद्भुत नमूने हैं. सफाई बेमिसाल और बेजोड़. मुझे ऐसा लगा कि साम्यवादी सरकार विशेष रूप से इन की व्यवस्था पर ध्यान रखती है. प्रकाश की सुन्दर व्यवस्था और जगह जगह साम्यवादी प्रतीक, विचारक और नेतृवर्ग की मूर्तियां करीने से लगी हैं. रूस के सर्वोत्तम रंगीन मारबल का प्रयोग यहां किया गया है.

कुछ ही मिनटों में ट्रेन आ गयी. कम ही यात्री थे. बहुत धीरेधीरे आपस में बोल रहे थे. कुछ बची नजर से मुझे देख भी लेते थे. कुछ मुस्कराते भी थे देख कर. मुझे पिछले ५-६ दिनों में पता चल गया था कि रूस वालों के लिए विदेशियों से मिलनाजुलना खतरे से खाली नहीं और बिला वजह न्योता देने का खतरा साम्यवादी शासन में शायद ही कोई साहस करे. इंगलैंड के लोग साधारणतया अपरिचितों से खिंचे से रहते हैं किन्तु यहां वालों की तरह बंधेबंधे नहीं. फ्रांस, जर्मनी, इटली या यूरोप और अमेरिका के सभी देशों में जनता को विदेशियों से बोलने या मिलने जुलने की पूरी छूट है. यांत्रिक व्यवसाय की वृद्धि के लिए वे विदेशियों से बातचीत और मित्रता करने को उत्सुक रहते हैं. किन्तु मानव समाज में पारस्परिक मिलन को नियंत्रण में रख कर आज के साम्यवादी देश किस प्रकार अनुप्रेरित करने की सोच रहे हैं—समझ में आया नहीं.

बात की बात में गन्तव्य स्टेशन पर ट्रेन पहुंच गयी. स्टेशन से निकल कर ऊपर सड़क पर आया. देखा सैकड़ों मकान एक सरीखे चारों तरफ बने हुए हैं और बहुत से बन रहे हैं. हमारे यहां भी कलकत्ते में साल्टलेक अंचल में ग०

विधानचन्द्र राय की प्रेरणा से पश्चिम बंग सरकार ने जनता के आवास के लिए कुछ मकान बनाये हैं. परन्तु कलकत्ते की बढ़ती हुई आबादी के लिए अब तक यह प्रयत्न अपर्याप्त सा ही रहा है. मास्को में पश्चिम जर्मनी या हालैंड की तरह सब के लिए तो मकान नहीं बन पाये फिर भी प्रयत्न जोरों से चालू है. सड़क का नाम खोजने लगा. दिक्कत हुई, कारण कि रूसी लिपि समझ में आती नहीं थी. लोगों से बातचीत करने में भाषा की समस्या बाधक थी. आखिरकार सभ्यता के आदिम युग की भाषा का प्रयोग किया यानी हाथ और मुंह से संकेत. काम कुछ बना, रूसी अंग्रेजी सहायक पुस्तक भी कुछ सहायक बनी.

करीब तीस मिनट लगे. चक्कर लगाता हुआ उन के मकान पर पहुंचा. स्वचालित लिफ्ट से सातवीं मंजिल पर पहुंच कर उन के फ्लैट में लगी घन्टी की बटन दबाई. कुछ ही देर बाद रात के लिबास में ही पतिपत्नी ने दरवाजा खोला. उन की शक्ल के तनाव से जाहिर हो रहा था कि इतनी सुबह को अप्रत्याशित रूप से मीठी नींद में विघ्न पहुंचाने वाले का स्वागत करने को वे दरवाजा नहीं खोल रहे हैं. किन्तु ज्यों ही उन्होंने मुझे देखा, पहचान लिया, "अरे रामेश्वर जी, आइए. नमस्ते. . . हम तो आप की प्रतीक्षा में परसों से ही थे. . . दिल्ली से आप के बारे में हमें हेडाजी ने लिखा है." श्रीमती हेडा, श्रीमती प्रकाश की बड़ी बहन थी और दिल्ली में मेरे पड़ोसी हैं. इसलिए एक प्रकार से बिना पूर्व मिलन के ही पतिपत्नी दोनों का ही मैं परिचित था. पारस्परिक झिझक क्षणों में मिट गया. मुझे ड्राइंग रूम में बैठा कर दोनों कपड़े बदल कर आ गये. उन्हें ताज्जुब हो रहा था कि इतने सवेरे होटल से चल कर इतनी दूर अकेला ही आया हूं. मैंने हंसते हुए कहा, "घुमक्कड़ों के लिए अकेलापन या अजनबीपन बाधक नहीं, प्रेरक होता है. मैंने तो सुदूर उत्तर के वीरान लैपलैन्ड में भी अकेले ही भ्रमण किया है." श्री प्रकाश कहने लगे, "भाई वह तो स्वीडेन है, वहां की बात और है. क्या यहां आप से किसी सिपाही ने पूछताछ नहीं की? आप ने हिम्मत के साथसाथ जोखिम का काम किया, टांटिया जी. यह न भूलें यह मास्को है, साम्यवादी रूस की राजधानी. यहां के नियम मानने में शिथिलता न लायें. आप ने खुफिया पुलिस के सर्वोच्च अधिकारी बेरिया के बारे में तो पढ़ा ही है. भविष्य में सतर्क रह कर घूमाफिरा करें."

करीब घंटे भर तक बातचीत होती रही. अपने परिचित और रिश्तेदारों की खोजखबर, दिल्ली की गतिविधि, देश के बारे में नाना प्रकार की जिज्ञासा, सभी पर जीभर कर उन्होंने बातें की. छोड़ना ही नहीं चाहते थे क्योंकि स्वदेश के लोग वहां बहुत कम मिलते हैं. कुछ भारतीय हैं जरूर पर वे या तो दूतावास में या इंजीनियरिंग कालेजों में. कहने लगे, "मास्को रेडियो पिछले चार दिनों से आप लोगों की खबरें प्रसारित कर रहा है. मुझे तो आश्चर्य हो रहा है कि भारतीय पूंजीपतियों के सिरमौर श्री बिड़ला को यह साम्यवादी सरकार इतना महत्त्व किस कारण से दे रही है. शायद रूसी प्रधान मंत्री ख्रुश्चेव की नीति कुछ मौलिक परिवर्तन की दिशा में बढ़ रही है."

मैंने उन का फ्लैट देखा. तापनियंत्रित दो कमरों का है, स्वयं सम्पूर्ण यानी गुसलखाना, रसोई पानी वगैरह सब कुछ है. किराया यहां मासिक वेतन और

'गुम' में खरीदारी करते हुए

परिवार के सदस्यों की संख्या पर धार्य है. यदि केवल पतिपत्नी हैं और मासिक आय १५००) है तो फ्लैट का किराया लगेगा २००) रु०. किन्तु यदि साथ में दो बच्चे हैं और वेतन ५००) है तो उसी फ्लैट का किराया होगा केवल ३५) रु०. मुझे यह व्यवस्था और अनुपात बहुत जंचा. भारत में भी इस पद्धति को अपनाना अपेक्षित है. रूस में सारे मकान सरकारी हैं. हजारों की तादाद में हर साल मकान बनाये जा रहे हैं फिर भी आवास का अभाव अभी बना हुआ है. मजदूरों के कमरों में रेल के कम्पार्टमेंट की तरह सोने के लिए नीचे ऊपर खाटें बनी हैं. यानी १० × १२ फीट के कमरे में आठ व्यक्ति रहते हैं. वे बारीबारी से सोते हैं. पहली पारी के मजदूर जब आते हैं तो दूसरी पारी के कारखाने चले जाते हैं. इनके सामान रखने की सन्दूकें खाट में ही बनी हैं. एक प्रकार से, इस ढंग के आवास को छोटी डोरमेटरी कहा जा सकता है.

खाने की चीजों के बारे में उन्होंने बताया कि मोटी रोटी और सुअर का मांस तो सस्ता मिल जाता है. इन के अलावा, दूसरी चीजें काफी मंहगी हैं दूध-मक्खन और फलों की बहुतायत नहीं है. चिकनाई की पूर्ति सुअर की चर्बी से हो जाती है. आम तौर से यहां के लोगों की खुराक अधिक है यानी ३०००-३२०० कैलोरी प्रति व्यक्ति का औसत है. सर्द मुल्क के लिए इतना शायद जरूरी है भी. निरामिषों के लिए काफी दिक्कत है.

काम करना सब के लिए जरूरी है, चाहे स्त्री हो या पुरुष. जब महिलाएं

काम पर जाती हैं तो अपने शिशुओं को सरकारी 'क्रीजों' में छोड़ जाती हैं. यहां उन की देखभाल नर्सें करती हैं, काम से वापसी पर अपनेअपने बच्चे लेकर घर चली जाती हैं. इन क्रीजों का संचालन और संगठन सरकार स्वयं करती है.

उन की बातों से काफी जानकारी मिली, जो रूस में दूसरी जगह मिलनी संभव नहीं थी. रूस के बारे में पक्ष विपक्ष में अतिरंजित चित्रण ही मिलते हैं. इसी कारण साम्यवादी पद्धति के प्रयोग का यथार्थ परिणाम सामने आ नहीं पाता.

बहुत दिलचस्प बातें हो रही थीं, मगर मेरी लाचारी थी कि नाश्ते के पहले ही मुझे अपने होस्टल पहुंच जाना चाहिए था. अतएव, उन्हें दूसरे दिन सुबह अपने यहां आने का निमंत्रण देकर विदा ली.

होटल वापस आकर देखा मि० भट्टाचार्य ढूंढ रहे थे. कुछ चिन्तित भी थे. मैंने अपना भ्रमण वृतान्त सुनाया तो वे चकित रह गये. उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ कि इतनी जल्दी और अकेले दस मील जाकर, भेंट मुलाकात कर कैसे ८ बजे तक वापस आ गया. मैंने धीरे से कहा—"भट्टाचार्य जी, घुमक्कड़ लोगों के पैरों में चक्कर होता है. वे एक जगह जमकर बैठ ही नहीं सकते. रही खतरे और झंझट की बात सो वह उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और अफ्रीका के भयावह जंगली देशों से तो यहां कम ही है."

८॥ बजे मिरकोव वगैरह आ पहुंचे. उनसे मैंने अपनी सुबह की सैर के बारे में कोई जिक्र नहीं किया.

नाश्ते के बाद यहां के ट्रक निर्माण के कारखाने को देखने गये. काफी बड़ा था. संभवतः पैंतालीस हजार मजदूर वहां काम कर रहे थे. इस कारखाने की उत्पादन क्षमता थी१॥ लाख ट्रक प्रति वर्ष की. हमारे देश के मोटरट्रकों के सारे कारखानों से अकेले ही इसका उत्पादन कहीं ज्यादा था किन्तु अमेरिका के बड़ेबड़े कारखानों से इसकी तुलना नहीं की जा सकती. यहां भी चेन सिस्टम यानी श्रृंखला पद्धति थी. एक ओर से चलकर घूमती हुई जंजीरों पर इंजन के पुर्जे लगते जाते थे, फिर चेसिस बैठाई जाती थी और इस प्रकार अन्त में दूसरी ओर से ट्रक तैयार होकर निकलती थी. यहां के एक ट्रक पर लागत बैठती थी लगभग १०,०००) रु०. देखने में काफी मजबूत लगती थी. हमारे यहां एक ट्रक पर लागत बैठती है लगभग २२,०००)रु०. इसके अलावा सरकारी टैक्स है १५,०००) रु० अर्थात ग्राहक को ३७,०००) रु० में एक ट्रक पड़ जाती है. कारखाने की व्यवस्था अच्छी थी और लगा मजदूर अनुशासन मानते हैं. काम के समय बातचीत और चुहलबाजी जो आमतौर से हमारे यहां साधारणसी बात है, यहां के मजदूरों में नहीं देखने में आयी. मुझे बताया गया कि व्यक्ति की कार्य-क्षमता पर पदोन्नति और सुखसुविधा का ध्यान रखा जाता है. अनुशासन का स्तर सैनिक कठोरता की तरह है. कारखानों के अन्दर दलबन्दी या विरोध प्रदर्शन की गुंजाइश नहीं है और न इन हरकतों को सरकार ही प्रोत्साहन देती है. मजदूर स्वस्थ और प्रसन्न लगे. इन में स्त्रियों की भी काफी संख्या थी जो भारी काम भी बड़ी दक्षता से कर रही थीं. हड़ताल के बारे में मैंने पूछा तो बताया गया, मजदूर कारखानों को अपना समझते हैं क्योंकि सब राष्ट्र की सम्पत्ति है और देश की समृद्धि में ही उन का जीवन और सुखसुविधा सम्पूर्ण रूप से आधारित
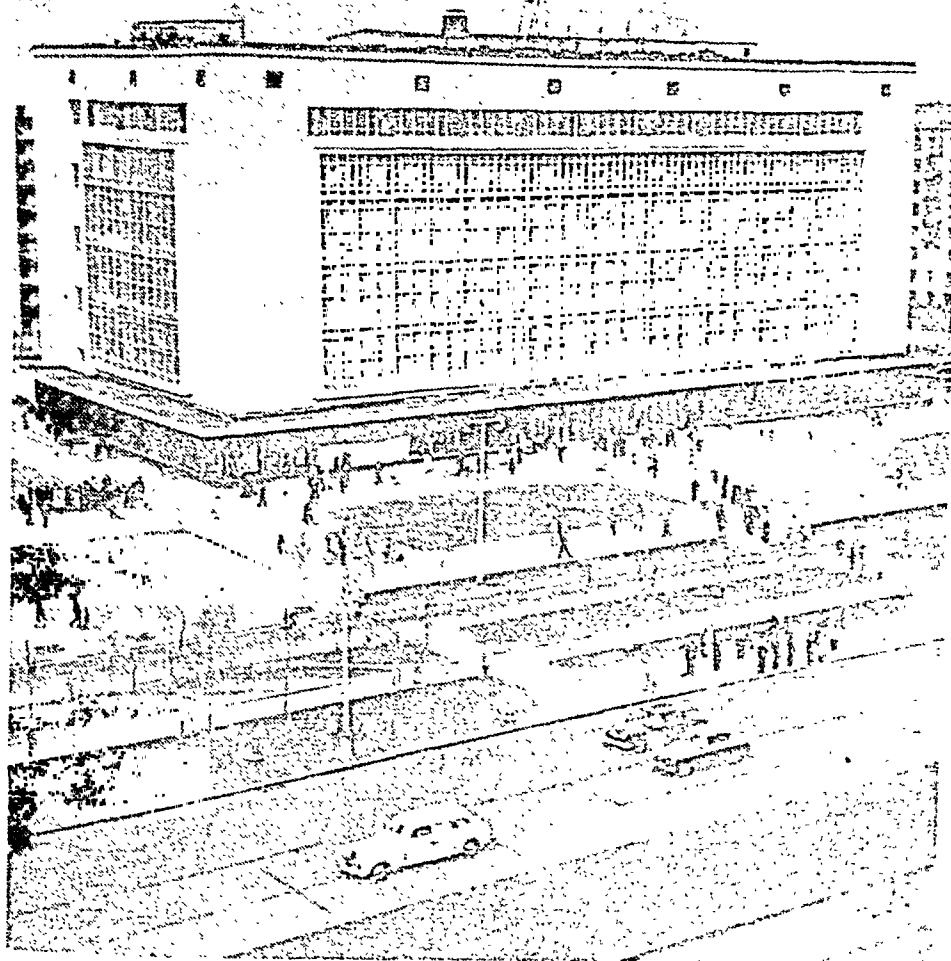
रूस का प्रसिद्ध डिपार्टमेंट स्टोर 'गुम'

है. सरकार की व्यवस्था और नियंत्रण रहने के कारण सब के साथ एक सा व्यवहार रहता है. अनुशासन भंग के लिए कड़ा दण्ड है. यह भी सुना गया बड़ेबड़े खुफिया अफसर साधारण मजदूरों के साथ मिलकर काम करते हैं और उन की गतिविधि पर नजर रखते हैं. इस स्थिति में हड़ताल की कल्पना में ही जान पर जोखिम है. मैं सोचने लगा कि भारतीय साम्यवादी दल के नेतागण तो आये दिन कारखानों की तोड़फोड़, दंगे और हड़तालों को प्रोत्साहन देते रहते हैं. शायद मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार उन के लिए सबसे जरूरी और पहला काम है साम्य-वाद प्रचार. इस के लिए अगर देश का औद्योगिक उत्पादन घटे या बेकारी हो तो भी उन्हें कोई परवाह नहीं. सच पूछा जाय तो वे तो चाहते ही हैं कि पूरी तौर से अव्यवस्था हो जिससे पड़ोसी साम्यवादी देशों को हस्तक्षेप का मौका मिले.

इसमें कोई सन्देह नहीं कि राष्ट्र के निर्माण या पुनर्गठन में अनुशासन और कठोर

नियंत्रण परमावश्यक है. रूस ने पूरी तौर से इसका प्रयोग किया. जनता का सहयोग भी उसे मिला. कारण कि उस के सामने राष्ट्र का और उन के स्वयं के जीवनमरण का प्रश्न था. १९४२ में जर्मनी की नाजी फौजें पोलेण्ड आदि देशों को रौंदती हुई मास्को के भीतर पहुंच गयी थीं. वहां के कारखाने ध्वस्त किये जा चुके थे या रूसियों ने स्वयं नष्ट कर दिये थे ताकि जर्मनों को फायदा उठाने का मौका न मिले. अधिकांश मकान भी वमों की मार से ढह चुके थे. उसी रूस में अब एक दूसरा ही नजारा देखने में आता है. नाजियों की पराजय के बाद जिस द्रुत गति से देश का पुनर्निर्माण और पुनर्गठन हुआ वह अनुकरणीय है. मास्को के पुनर्निर्माण को तो अद्भूत और अभूतपूर्व कहना चाहिए. यहां के स्वस्थ और प्रसन्न नागरिकों के चेहरे पर इस सफलता का गर्व परिलक्षित होता है.

मोटर ट्रकों का कारखाना देखने के बाद हम शहर के अन्य स्थानों को देखने के लिए निकले. तीन एक सरीखी बड़ीबड़ी कारों का एक साथ होना वहां वालों के लिए कुछ ताज्जुब की बात थी. क्योंकि, एक तो वहां कारें कम हैं और दूसरे जो हैं भी वे आमतौर से मंझोली या छोटी हैं. 'पोवेदा' कार के दाम १२,०००) थे जब कि जिन कारों में हम सैर कर रहे थे उन की उन दिनों कीमत ५५,०००) थी.

टैक्सियां सबकीसब सरकारी थी ही--कारें भी अधिकतर मंत्री, अफसर या विदेशी दूतावासों की थीं. किसीकिसी प्रोफेसर या कलाकार के पास अपनी कार भी थी.

मास्को आधुनिक रूस की सर्वोत्तम कृति है. इसे वे बड़ गर्व से विदेशियों को दिखाते हैं. बड़ीबड़ी चौड़ी सड़कें, दोनों तरफ एक सरीखे बने नएनए मकान, थोड़ीथोड़ी दूरी पर बागबगीचे और विभिन्न विषय और रुचि के संग्रहालय. दुनियावालों के सामने इन सब को साम्यवादी सरकार अपनी सफलताओं के प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करती है.

यहां का लेनिन पुस्तकालय वाशिंगटन के कांग्रेस पुस्तकालय के बाद विश्व का सबसे बड़ा पुस्तकालय माना जाता है. इस में १५० भाषाओं की दो करोड़ बीस लाख पुस्तकें हैं. १८--२० बड़ेबड़े पाठागार हैं जहां २५०० व्यक्ति बैठ कर आराम से पढ़ सकते हैं. अलग-अलग भाषाओं के सूचीपत्र हैं. मैंने हिन्दी सूचीपत्र देखा. मुझे ऐसा लगा अन्य देशों की तरह या तो इन्होंने हिन्दी के प्रति उपेक्षा वरती है या उन्हें सही जानकारी नहीं मिली है. इस दिशा में हिन्दी साहित्य एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा को चाहिए कि विदेशों को वे हिन्दी के प्रकाशन के संबंध में आवश्यक सूचनाएं दें और उन से सम्पर्क स्थापित कर सहयोग दें. हमारी सरकार से यह आशा हम नहीं रख सकते. कारण, हिन्दी के प्रति अभी तक सरकारी नीति दुविधाग्रस्त है. वहां हम ने, तुलसी, प्रेमचन्द और मैथिलीशरण आदि की कृतियां देखी.

मास्को में दूसरा बड़ा आकर्षण है त्रेत्याकोव आर्ट गैलरी. इसमें पिछले नौ शताब्दियों में उच्चकोटि के कलाकारों द्वारा बनाये गये पचास हजार चित्र हैं. इन में तो कई इतने कीमती हैं कि उन का मूल्य आंका नहीं जा सका है. रूसी क्रान्ति के उत्तर काल की घटनाओं के चित्र काफी संख्या में हैं. किन्तु पूर्व क्रान्ति-काल के चित्रों में कला की बारीकियां ज्यादा खिलती सी लगीं. यद्यपि मैं कला

पारखी तो नहीं हूं परन्तु मुझे विश्व के वड़ेवड़े कला संग्रहालयों में जाकर वहां के चित्रों के सामने देर तक बैठकर देखते रहने का शौक है. मुझे ऐसा लगा कि शाश्वत मानव भावनाओं की अभिव्यंजना भौतिक विचारों की तुलना में कहीं अधिक स्पष्ट और पुष्ट निखरती है. ईसा मसीह संवंधी धार्मिक चित्र तो हृदय में सहज भाव से करुणा का उद्रेक करा देते हैं. रूसी कलाकारों द्वारा वनाये गये चित्र कहीं-कहीं तो रेफेल, ल्योनार्दो अथवा यूरोप के मध्ययुगीन प्रसिद्ध कलाकारों की टक्कर के हैं. इन्हें देखते हुए दर्शक आत्मविस्मृत से हो जाते हैं. मृत ईसा के चित्र को देखते समय ऐसा लगा मानो सचमुच ही उस करुणामूर्ति ने अभी कुछ ही क्षण पहले देह त्यागा हो. तूलिका की सफाई देखते ही वनती है. सूली से उतार कर ईसा को नीचे सुलाया गया है. आंखें अधखुली हैं, अंगों से खून वह रहा है. आंखों में अपूर्व प्रेम, दया और क्षमा है. मुखमण्डल पर शान्ति के साथ नैसर्गिक तेज है. चारों ओर उन्हें घेर कर उन के भक्त शोकाकुल हैं.

साम्यवादी क्रान्ति से संवंधित कुछ चित्र ही धार्मिक लगे. इनमें से एक में दिखाया गया है कि जार सरकार के विरोधी क्रान्ति के सेनानियों को साइबेरिया निष्कासन किया जा रहा है, जहां से वापस आना सर्वथा असंभव है. वल्कि वर्ष दोवर्ष में उन की मृत्यु अधिक निश्चित है. उन के निर्विकार चेहरों में एक दृढ़ता झलकती है किन्तु इनके आत्मीय, पितामाता, पत्नीपुत्रों के विलाप के दृश्य देखकर चित्त आर्द्र हो उठता है. दूसरा एक चित्र देखा, कज्जाक फौजियों की घोड़ों की टापों के नीचे रौंदे गये एक युवक की लाश का. पत्नी उस के पास अर्द्ध विक्षिप्त सी वैठी है, वेदना और विलाप का यह चित्र स्वतः ही अत्याचारी जारों के प्रति क्षोभ उत्पन्न कर देता है.

मैंने पेरिस और लुव्रे में देखा था कि सैकड़ों स्त्रीपुरुष गैलरी के सामने रखी वेंचों पर वैठे हुए तन्मय होकर वहां के चित्रों को देखते रहते हैं. वहुतों की तो यह दैनिक दिनचर्या है. भावुक लेखक, कलाकार और वास्तुशिल्पी इन चित्रों से प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं. ऐसी वात मास्को में नहीं दिखाई पड़ी.

आज का रूस साम्यवादी है, इसलिए उसका विश्वास द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में है. इसी का प्रचार और प्रसार वहां निरंतर चलता रहता है. फिर भी मैंने यह लक्ष्य किया कि ईसाई धर्म से संवंधित चित्रों के सामने स्त्रीपुरुष मौन हो कर प्रार्थना करते हैं. ऐसा लगता है कि युगों से चले आदे धार्मिक संस्कारों को कानून और प्रचार के धक्के से मानव मन से निकाल फेंकना किसी प्रकार भी संभव नहीं.

मास्को की दुकानें अन्य देशों की दुकानों से भिन्न लगती हैं. यहां आमतौर से चीजों की विविधता वहुत कम दिखाई पड़ती है और वह चहलपहल या उत्साह खरीददारों में नहीं मिलता जो अन्य देशों में है. संभवतः साधारण जनता की क्षीण क्रय शक्ति इसका कारण है.

दोपहर के वाद हम मास्को के सवसे वड़े डिपार्टमेन्ट स्टोर्स 'गुम' में गये. यह स्टोर एक अच्छा खासा वाजार ही है. चार मंजिला विशाल भवन है जिसमें वड़े-वड़े कमरे हैं. इनमें विभिन्न प्रकार की चीजें सजाकर रखी गयी थीं. दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं के दाम तो हमारे यहां से लगभग दुगने थे परन्तु शौक की नायाव चीजों के दाम लगभग दस या पन्द्रह गुने अधिक. [illegible]

में हमें पहले ही से जानकारी थी कि साम्यवादी रूस में यदि किसी कलाकार, साहित्यकार या शिक्षाविद को बहुत अधिक वेतन दिया जाता है तो दूसरे हाथ से इन्हीं स्टोर्स के माध्यम से सरकार उनसे पैसे वापिस वसूल भी कर लेती है. यादगार के बतौर मैंने यहां से दोतीन पोस्टकार्ड खरीदे जिनमें एक था महाकाश के प्रथम सफल यात्री युरी गागारिन का और दूसरा था महाकाश को चीरता हुआ उस के राकेट यान का.

फ्रांस में राज्यक्रान्ति लाने का श्रेय वहां के साहित्यकारों का रहा है. इंगलैण्ड की जनता को भी औलिवर क्रॉमवेल के जमाने में मिल्टन के काव्यग्रन्थों ने बड़ा प्रभावित किया था. भारत के साहित्यकार और कवि भी जनता के हृदय के सोये हुए भावों को उकसा कर समाज और देश की विचारधारा को बारबार दिशादान देते रहे हैं. इसी प्रकार रूस में क्रांति का प्रचार और प्रसार वहां के साहित्यकारों के कारण ही संभव हुआ. आज भी वहां की साम्यवादी सरकार उन्हें भूली नहीं है बल्कि उन्हें देवता की भांति पूजा जाता है. उनकी स्मृति में संग्रहालय, पार्क, सड़कें और नगर तक के नाम रखे गये हैं. जिस आदर और श्रद्धा से हम गीता, रामायण और भागवत को देखते हैं उसी प्रकार रूस में कार्लमार्क्स के कैपिटल के बाद तालस्ताय और गोर्की की रचनाएं पढ़ी जाती हैं. तालस्ताय की अन्नाकरनीना, युद्ध और शान्ति तथा गोर्की की मां और मेरे विश्वविद्यालय को केवल साहित्यिक महत्त्व ही वहां नहीं मिला है बल्कि उनका स्थान सैद्धान्तिक दृष्टि से भी काफी ऊंचा है.

उसी दिन शाम को भारतीय राजदूत श्री के० पी० एस० मेनन ने हमें दूतावास में भोजन के लिए आमंत्रित किया था. प्रायः सौसवासौ भारतीय जो उन दिनों मास्को में थे, शामिल हुए. भारतीय संगीत और वाद्य का कार्यक्रम भी था. भोजन अपने ही देश का था. ताजगी आ गयी. पारस्परिक परिचय हुआ. दूतावास के लोगों के सिवाय भिलाई कारखाने से बहुत भारतीय युवक शिक्षा लेने के लिए यहां आए हुए थे. बातचीत करने पर पता चला कि वे वहां के अनुशासन और शिक्षा पद्धति से प्रभावित हैं. आम तौर से रूसियों का व्यवहार भी उनके प्रति स्नेहपूर्ण है किन्तु एक कसक सबके मन में थी कि मुक्त परिवेशऔर स्वच्छन्दता का वहां अभाव है. हर जगह एक पर्दा सा रहता है.

इन दो घन्टों में हंसी और कहकहे के बीच मन का बोझ हल्का हुआ. ऐसा लगा कि हम दिल्ली या कलकत्ते के किसी उत्सव में शामिल हैं. रात दस बजे होटल वापस आये. मास्को की सड़कें रोशनी में मुस्करा रही थीं. ट्राफिक की लाल, पीली, हरी बत्तियां खिड़कियों से देख रहा था. सामने के मकान के कमरे की खिड़की पर पर्दा नहीं था. बरबस नजर उधर चली गयी. वहां देखा आदम का बेटा हौवा की बेटी की मानमनुहार कर रहा था.

धीरे से अपने कमरे की खिड़की बन्द करके सोने का प्रयत्न करने लगा.

मास्को-३

मशीनवाद के घेरे में . . .

सुबह नाश्ते पर परमात्माप्रकाशजी सपत्नीक आए. किसी खास मीनू का इंतजाम उन के लिए किया जाना संभव नहीं था. जैसा कि आम तौर पर मास्को में हम प्रति दिन के नाश्ते में लेते रहे, उसी ढंग की चीजें थीं. हां, चिवड़े और बादाम की बरफी जो हम अपने साथ भारत से ले आए थे, तश्तरियों में रखे गये. हम यह जानते थे कि स्वदेश से दूर रहने पर अपने देश की हर चीज प्यारी लगती है. प्रकाश दंपति तो हमारे विशुद्ध देशी चिवड़े और बरफी के टुकड़ों को चख कर बड़े प्रसन्न हुए, कहने लगे कि एक लंबे अरसे के बाद ये चीजें मिली हैं, इन से अपूर्व तृप्ति मिली. मैं ने एक डब्बे में वे दोनों चीजें रख कर उन्हें भेंट देते हुए कहा, साथ रख लीजिए तृप्ति का खजाना. दोनों हंस पड़े.

इन लोगों को रूस आए करीब साल भर हो चुका था. नाश्ते के दौरान मैं ने अपने दिवंगत मित्र राहुल सांकृत्यायन की पत्नी के बारे में जानना चाहा. सुना था कि वे मास्को में ही रहती हैं. अतः उन्हें व उन के पुत्र को एक बार देखने और उन से बातचीत करने की इच्छा थी. प्रकाशजी ने कहा, होंगी तो संभवतः यहीं, पर हम ने कभी उन के बारे में रुचि रखी नहीं और न जानने का प्रयास किया.

कुछ मुसकराकर वह कहने लगे, "राहुलजी यदि स्वदेश जा कर दूसरी पत्नी अपना सकते हैं तो क्या उन की रूसी पत्नी दूसरा पति अपने देश में नहीं चुन लेगी? भारतीय पत्नी की तरह आजीवन पति के नाम की माला जपने की प्रथा यहां नहीं है. रूस में अन्य यूरोपीय देशों की तरह व्यक्तिगत जीवन में उच्छृंखलता नहीं है, लेकिन तलाक दे कर पुनर्विवाह के लिए तो छूट है ही.

यहां स्त्रीपुरुष तभी बंधते हैं जब उन्हें परस्पर की आवश्यकता का नितांत अनुभव होता है. अवैध प्रणय का कोई प्रश्न नहीं अतएव अवैध संतान का सवाल नहीं. न किसी को विश्वामित्र की तरह तपोभंग की ग्लानि होती है न कोई शकुंतला की तरह त्याज्या हो. सरकार संतति की परवरिश करती है. नई पीढ़ी में बहुतों को अपने जनक का परिचय न मालूम हो तो कोई बात नहीं.

फिर भी, यहां उद्दाम उच्छृंखलता नहीं है, जो पश्चिम के अन्य देशों में देखने में आती है. रूस में 'बीटल कट' लड़केलड़कियों को प्रोत्साहन नहीं मिलता. हमारे देश में विशेषतः बंगाल में 'भूखी पीढ़ी' की एक नई परंपरा चली है. इस ढंग के विचार और आचार यहां देखने में नहीं आए. स्वच्छंदता है जरूर, पर

उस में एक शिष्टता है और आचार भी. यही कारण है कि आम तौर से यहां के युवकयुवतियों का स्वास्थ्य अच्छा है.

स्पष्ट है कि ऐसे वातावरण में तलाक की सुविधा और असुविधा का सवाल महत्त्व नहीं रखता. फिर भी तलाक होते हैं और पुनर्विवाह भी. किंतु तभी जब कि पतिपत्नी के स्वभाव और स्वार्थ टकराते हैं. लोग इन मामलों पर ध्यान नहीं देते हैं.

यहां परिवार नियोजन को प्रोत्साहन सरकार नहीं देती, वल्कि जो महिला जितने अधिक वच्चों की जननी होती है उस की प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक होती है. १२ वच्चों की माता को 'नगरमाता' का गौरव दिया जाता है. एक महिला के १७ वच्चे जीवित थे, उसे 'देशमाता' की उपाधि से विभूषित किया गया और उस का सार्वजनिक अभिनंदन हुआ. मुझे इन बातों को सुन कर याद आया, हमारे यहां भी 'दूधों नहाओ, पूतों फूलो' का आशीर्वाद वड़ेबूढ़े देते थे, क्योंकि जमीन वहुत थी और जनसंख्या कम.

रूस में परिवार नियोजन की आवश्यकता है नहीं, क्योंकि विशाल सोवियत भूमि की जनसंख्या सिर्फ बीस करोड़ है. खनिज वहुत है. उन्हें तो जन चाहिए अधिक से अधिक, जिन की मेहनत से साइबेरिया जैसे उजड़े प्रदेश को आवाद कर सकें.

मैं ने प्रसंगवश पूछा, "क्या साइवेरिया के मरुस्थल को खलिहान या औद्योगिक अंचल वनाना संभव हो सकता है?" उन्होंने वताया कि सोवियत वैज्ञानिक प्रकृति से टकराने से डरते नहीं हैं. उत्तरी ध्रुव के बर्फ के समुद्र में यदि नौमार्ग बना लेना संभव हो सका है तो साइबेरिया की धरती में भी वे लहराते खेत एक न एक दिन वना ही लेंगे, जहां तक उद्योगों का सवाल है वे तो थोड़ी मात्रा में इस अंचल में स्थापित हो चुके हैं.

प्रकाश दंपति विदा हो ही रहे थे कि सरकारी गाइड हाजिर हो गए. हमें संसद देखना था. गाइड वारवार घड़ी देखने लगे. समय की पाबंदी के औचित्य पर हमें आपत्ति नहीं है, पर समय को सेकंड की सुई पर बांधना मन में एक बोझ सा पैदा करता है. खैर, हम निकल पड़े.

भारत की तरह सोवियत रूस की धरती की कोख भी खनिज राशि से भरी हुई है. शायद ही ऐसा कोई खनिज पदार्थ हो जो यहां न पाया जाता हो. कोयला, क्रोमाइट, पेट्रोल, सोना, मैंगनीज, तांबा इत्यादि सभी कुछ प्रचुर मात्रा में यहां उपलब्ध हैं. रूस इन के उत्पादन में संसार के अग्रणी देशों में माना जाता है.

आम तौर से हम जिसे रूस कहते हैं वह इस विशाल राष्ट्र का केवल एक भाग है, जो यूरोप में है. सही माने में तो सारे देश को सोवियत भूमि कहना चाहिए. इस में रूस, यूक्रेन, बाइलोरूस, अजरबईजन, जार्जिया, आर्मेनिया, कज्जाकिस्तान, तुर्कमनिस्तान, किरगिजस्तान, ताजिकस्तान, उजबेकिस्तान, स्लातिविया, इस्टोनिया, लियुआनिया और मोलडाविया के गणराज्य हैं. पृथ्वी का यह सब से अधिक विस्तृत राष्ट्र है. एक ओर प्रशांत महासागर की लहरें इस के पूर्वी तटों से टकराती हैं, दूसरी ओर फिनलैंड की खाड़ी इस के पश्चिमी सागर तट की सीमा रेखा है. पृथ्वी के संपूर्ण भूभाग का छटवां भाग सोवियत भूमि के
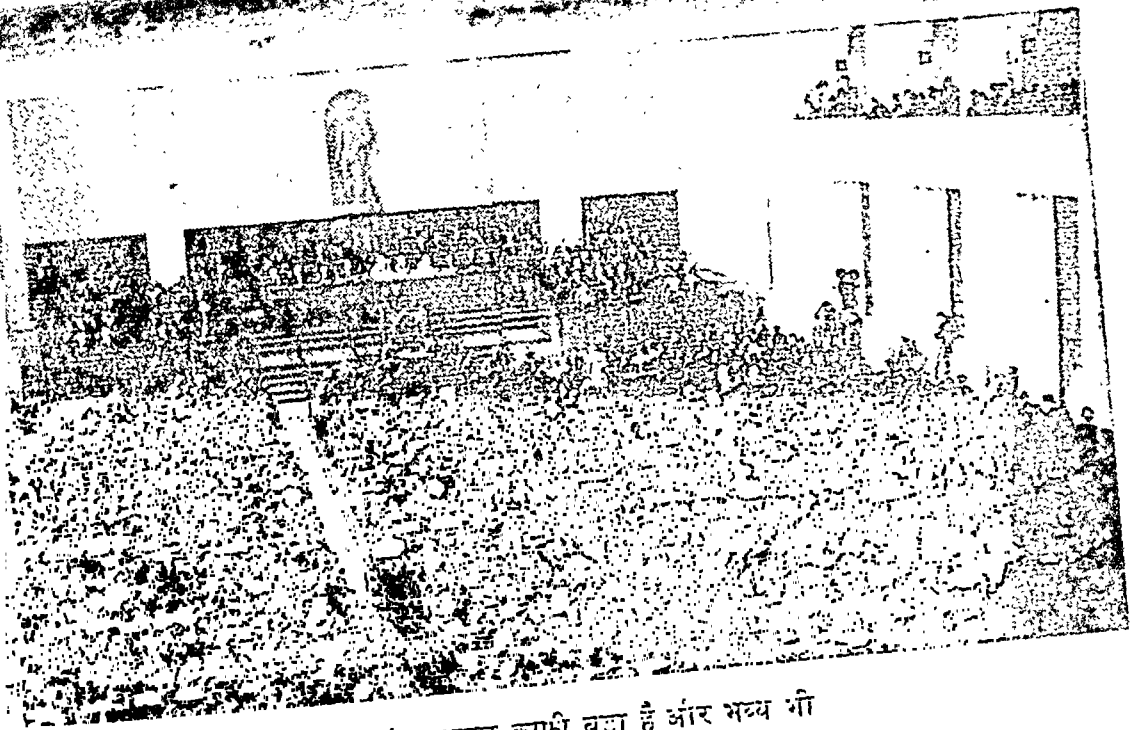
सोवियत संसद भवन काफी बड़ा है और भव्य भी

अंतर्गत हैं. केवल विषुवत् रेखा की भीषण गरमी को छोड़ कर सब प्रकार की जलवायु इस विशाल भूखंड पर कहीं न कहीं मिलेगी ही.

मन में बड़ी इच्छा थी कि मार्क्स के सिद्धांतों पर आधारित कम्युनिज्म के प्रयोग के परिणाम निकट से देखूं. सोवियत भूमि में आने के पूर्व भारत में इस के बारे में काफी प्रचार सामग्री पढ़ने को मिली थी. अपने देश में कम्युनिस्टों द्वारा समयसमय पर सोवियत रूस और चीन भ्रमण के अनुभव और संस्मरण पढ़ कर जिज्ञासा बढ़ती थी कि शाश्वत और स्वाभाविक मानव प्रवृत्तियों की उपेक्षा अथवा दमन कर के समाज में साम्य प्रतिष्ठित करने में आखिर ये देश किस सीमा तक सफल हो सके हैं.

सोवियत भूमि की हमारी यात्रा के प्रथम चरण में ही हमें अनुभव हो चुका था कि साम्यवाद का पर्यायवाची शब्द प्रचारवाद भी है. और अब मास्को में यह धारणा बनी कि साम्यवाद का अर्थ मशीनवाद भी है. मानव को शासन का पुर्जा मात्र यहां समझा जाता है. आवश्यकतानुसार उसे कसा जाता है, बदला जाता है अथवा रद्दी समझ कर नष्ट भी कर दिया जाता है. पुर्जे ने चूंचां किया तो तेल या ग्रीज दी गई अथवा गला दिया गया. कम्युनिस्ट सत्ता ने इस प्रकार कितनों को खत्म किया, इसे बताने की शायद जरूरत नहीं. ट्राटस्की से लेकर बेरिया तक बड़ेछोटे लाखों व्यक्तियों का जीवन के मंच से नेपथ्य में हट कर लापता हो जाना सर्वविदित है. मित्र देश हंगरी में १९५६ में जो कुछ रूसियों ने किया उस की तुलना में नाजी फौजों के फ्रांस और नार्वे के अमानुषिक अत्याचार बहुत हल्के ठहरते हैं, और फिर वे तो युद्ध के दौरान किए गए थे.

उन दिनों रूसी संसद का सत्र चालू नहीं था. फिर भी दोचार व्यक्ति जो शायद संसद सदस्य थे वहां के पुस्तकालय में मिल गए. मुझे आशा थी कि वे दिलचस्पी के साथ हम से मिलेंगे. मेरा ख्याल गलत निकला. प्रतिबंध यहां भी था. हमें दोएक ने देखा जरूर, मगर अनदेखा कर दिया.

सोवियत संसद भवन काफी बड़ा है और भव्य भी. लेकिन हमारे संसद भवन की तो बात ही न्यारी है. यहां ३,००० दर्शकों के बैठने की जगह है. सदस्यों की संख्या ७७५ है जिस में १९० महिलाएं हैं, दोतिहाई मजदूर और किसानों के प्रतिनिधि हैं और शेष बुद्धिजीवी वर्ग के डाक्टर, वैज्ञानिक, इंजीनियर, प्रोफेसर, लेखक आदि हैं. गणतंत्र का दावा साम्यवादी सोवियत जरूर करता है पर वहां दूसरी पार्टी है ही नहीं. साम्यवाद के सिवा दूसरी किसी विचारधारा का पोषण करना देशद्रोह समझा जाता है. अतएव यहां जो चुनाव होते हैं वे मुख्यतः व्यक्तियों के चयन के लिए हैं. निर्वाचन का सारा व्यय सरकार वहन करती है. इसलिए गरीब से गरीब भी संसद सदस्य या मंत्री बन सकता है. यद्यपि एक ही पार्टी है फिर भी अपनेअपने क्षेत्र की समस्याओं को ले कर काफी जोरदार बहस हो जाया करती हैं, व्यंग्य और हंसी का वातावरण भी हमारे देश की ही तरह रहता है.

रात्रि में हम बहुचर्चित बोलशाय थिएटर देखने गए. विश्व में सिवा अमरीका के शायद ही इतना बड़ा थिएटर हाल कहीं हो. रंगमंच बहुत ही विशाल था. पर साजसज्जा साधारण दर्जे की थी. यहां अभिनेताओं की संख्या सैकड़ों रहती हैं. हमारे साथ एक द्विभाषी महिला कर दी गई थी जो हमें अंगरेजी में वहां की विशेषताएं समझाती जाती थी. मैं ने चुपके से प्रभुदयालजी से कहा कि प्रेमचंद और राहुल का नाम लेले कर सोवियत प्रचार यंत्र भारत में हिंदी प्रेम का जो रूप प्रदर्शित करता है उस का वास्तविक रूप यहां देखने में आता है कि हमारे लिए एक हिंदी दुभाषिए की व्यवस्था न की जा सकी.

द्विभाषी का स्वभाव मधुर था पर उस की अंगरेजी का रूसी ढंग थोड़ा बाधक था. शायद उस ने महसूस भी किया और इसलिए वाणी और संकेत दोनों से वह हमें समझाती रही.

बोलशाय में उस दिन एक नाट्यरूपक था. रूसी भाषा में संवाद और संलाप होने के कारण बारबार हमें द्विभाषी की मदद लेनी पड़ रही थी. युद्ध का कितना भयंकर परिणाम होता है, इस की कथावस्तु थी. अभिनय मंजा हुआ था और कलाकारों का कौशल भी उच्च स्तर का. अंतर्विराम के बाद स्टेज पर एक व्यक्ति आया जिस के लिए लगातार करीब पांच मिनट तक जोरजोर से तालियां बजती रहीं. पहले तो हम ने समझा कि कोई राजनीतिक नेता होगा, पर बाद में जानकारी मिली कि वह देश का सर्वश्रेष्ठ वाद्यसंगीतकार था. यहां लेखकों या वैज्ञानिकों को सब से अधिक आदर और स्नेह मिलता है, उस के बाद कलाकारों को और तब कहीं अन्यान्य नेताओं को. धन संपत्ति का संचय संभव नहीं, अतएव धनी या संपत्तिशाली की प्रतिष्ठा का सवाल ही नहीं उठता.

भारत से रूसी राजदूत श्री बेनेडिक्टोव उन दिनों किसी कार्यवश मास्को आए हुए थे. वह हम से मिलने होटल में आए. हम ने विभिन्न विषयों पर उन से कई सवाल पूछे. हमें लगा कि उन के उत्तर स्पष्ट थे, घुमावदार कम. मकानों के बारे में उन्होंने बताया कि व्यक्तिगत संपत्ति का तो अंत कर दिया गया है, अतएव मकान सारे सरकारी हैं. प्रति वर्ष लाखों की संख्या में नए मकान बन रहे हैं, फिर भी आवास की कमी है. हां, लोग सड़कों के फुटपाथों पर नहीं सोते.

अन्य पश्चिमी देशों की अपेक्षा रूस के युवकयुवतियों में शिष्टता और आचार भी है

सरकार आवास तो दे ही देती है, भले ही पालीपाली से एक ही बिस्तर पर सोना पड़े.

सोवियत रूस साम्यवादी है जरूर, पर इस का अर्थ यह नहीं कि यहां सभी की आय, वेतन या मजदूरी समान है. सब से अधिक आय कलाकार, लेखक और वैज्ञानिकों की है. अधिकतम २०,००० रुपए मासिक तक, जब कि मजदूर और

क्लर्कों को केवल छःसात सौ रुपए तक मिलते हैं. कम आमदनी वालों के लिए सरकार सुलभ दर में प्रयोजनीय वस्तुओं की व्यवस्था कर देती है. जब कि शौक की चीजों की कीमतें इतनी अधिक हैं कि इन्हें खरीदने में काफी पैसे निकल जाते हैं. सर्दी या भूख से मरने का सवाल उठता नहीं, क्योंकि भोजन और वस्त्र की जिम्मेदारी सरकार की है. हम सोचने लगे कि जब एक और ३० का यहां अंतर है तो फिर किस बूते पर ये समता का ढिंढोरा पीटते हैं, स्वीडन या स्विट्जरलैंड में ज्यादा से ज्यादा एक और १५ का अंतर है जब कि वे देश साम्यवादी विचारधारा से बहुत दूर हैं.

हम ने एक खास उद्देश्य से एक पेचीदा सवाल उन से किया कि सोवियत भूमि में विदेशी यात्री अन्य देशों की अपेक्षा कम क्यों आते हैं? उत्तर बहुत ही बुद्धिमानी का था, संपूर्ण रूप से मानने योग्य तो नहीं पर कुछ अंशों में युक्तिपूर्ण तो कहना ही पड़ेगा. उन्होंने बताया, "सोवियत सरकार अपने देश में यूरोपीय देशों की तरह हर प्रकार के कामोत्तेजक मनोरंजन और साधनों को प्रोत्साहन नहीं देती. रात्रि क्लब और जुए से पैसे कमाना हम अनुचित मानते हैं, इसलिए वह मौजबहार यहां कहां, और यही वजह है कि विदेशी यात्री कम ही आते हैं." मुसकराते हुए उन्होंने आगे कहा, "आप के देश में भी तो इन्हीं आदर्शों की प्रतिष्ठा है!"

लंच के पहले लेनिन हिल पर बने मास्को विश्वविद्यालय देखने गए. सचमुच, रूस की यह अनुपम कृति है. इसे एक प्रकार से अलग शहर कहा जा सकता है. इस के बीच के गुम्बज की ऊंचाई ७८७ फुट है, जो यूरोप में सब से ऊंची है. १९४८ से १९५३ तक लगभग ५५० करोड़ रुपए की लागत से यह विश्वविद्यालय बन कर तैयार हुआ. इस में १५,००० कमरे, १,९०० प्रयोगकक्ष, ११३ लिफ्ट हैं. वार्षिक बजट लगभग पैंतालीस करोड़ का है. इस के सिवा बहुत बड़ी राशि नए भवन बनाने में खर्च की जाती है. यहां लगभग तीस हजार विद्यार्थी विभिन्न विषयों का अध्ययन करते हैं. रूस को विज्ञान के क्षेत्र में जो सफलता मिली है, उस का श्रेय एक प्रकार से मास्को विश्वविद्यालय को है. विद्यार्थियों के आवास सादगीपूर्ण हैं. हमें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि हमारे दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों के रहनसहन का स्तर इन के मुकाबले कहीं महंगा और फैशनेबल कहा जा सकता है. इन से मिल कर बड़ी खुशी हुई. सभी अपनेअपने पाठ्य विषय में रुचि रखते मिले.

विश्वविद्यालय से वापस आते समय हम ने कारें छोड़ दीं और मेत्रो (भूगर्भ ट्रेन) से आए. मेत्रो में इस के पहले सफर कर चुका था पर उस समय बहुत सवेरा था अतः लोगों की चहलपहल कम थी. इस समय काफी भीड़ थी. मेत्रो की सजावट और शान देखते ही बनती है. बड़े लोगों में किसी न किसी तरह का शौक होता है. प्रियदर्शी अशोक को बौद्ध धर्म के प्रचार का शौक था तो मुहम्मद तुगलक को बेकसूरों को फांसी चढ़ा देने का. जहांगीर को न्याय की धुन थी तो शाहजहां को इमारत बनवाने की और औरंगजेब को मंदिरों के ध्वंस करने की. इसी शताब्दी में सम्राट विलियम कैसेर को अनेक प्रकार के घोड़े रखने का और
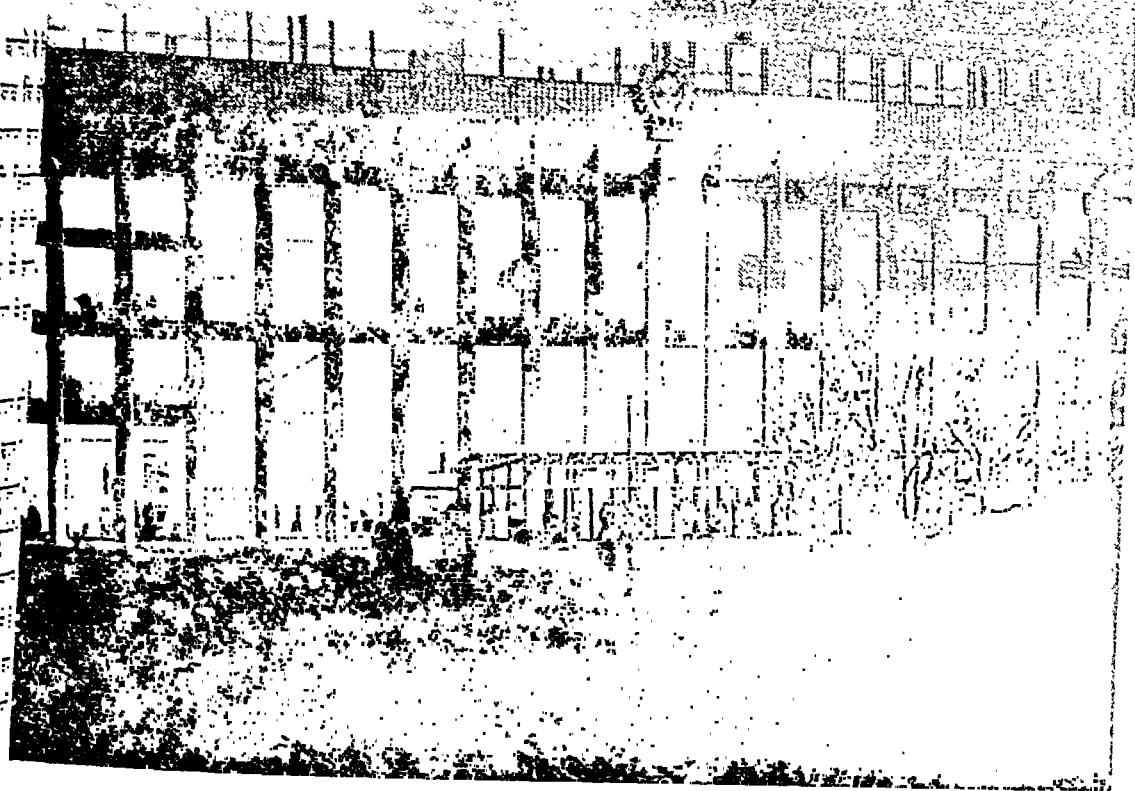
मास्को के मशहूर क्रेमलिन पेलेस का एक दृश्य . . .

पंचम जार्ज को पुराने स्टांप इकट्ठा करने का शौक था.

कभीकभी शासकों का शौक राष्ट्र की कायाकल्प करा देता है. स्टालिन जब रूस के राष्ट्रनायक थे, उन के एक शौक ने मास्को को अनोखा बना दिया. वह था, मेत्रो को ज्यादा खूबसूरत बनाना. वह इस के प्रत्येक स्टेशन की प्लान, इस के निर्माण, इस की सजावट में व्यक्तिगत रुचि रखता था. कहां कौन सी मूर्ति बैठाई जाए और किस रंग का संगमरमर लगे और उस पर विशेष कोण से प्रकाश डाला जाए, इतनी बारीकियों का वह स्वयं ध्यान रखता था. यहां रूस के जनजीवन, इतिहास और संस्कृति के सजीव चित्र सजे हैं. किराया वाजिब और गाड़ियों की गति काफी तेज है.

ट्रेन में हमारे इर्दगिर्द रूसी स्त्रीपुरुष आ कर बैठ गए. कुछ बातें करने का प्रयत्न करने लगे. हमें आश्चर्य हो रहा था, क्योंकि रूस की अब तक की यात्रा में लोग हमारी ओर खिंचते तो जरूर थे मगर पास कम आते थे. यहां बीचबीच में गांधी, नेहरू और राजकपूर के नाम सुनने में आए. कुछ ने रूसी में कुछ पूछा भी पर हमारे कुछ पल्ले नहीं पड़ा. कामराद, तवारीश, गास्पुदीना कह कर हम दोनों हाथ जोड़ते जाते थे. दोनों ओर से मुसकराकर हाथ जोड़ने का क्रम चलता रहा.

शायद यूनिवर्सिटी के कालेजों की पहली पारी की छुट्टी हुई थी, इसलिए ट्रेन में बहुत से विद्यार्थी थे. उन्होंने हमें बहुत प्रभावित किया. उन का संयम,

अनुशासन और व्यवहार हमारे यहां के उच्छृंखल छात्र समाज की तुलना में एक आश्चर्य की सृष्टि करता है. हमें आदरपूर्वक उन्होंने जगह दी. आपस में इतने धीरेधीरे वातचीत कर रहे थे कि पता नहीं चलता था कि छात्रों का झुंड ट्रेन में है. हमारे यहां तो छात्रों का दल ट्रेन में सवार हुआ कि इंजिन ड्राइवर से ले कर गार्ड तक की शामत आ गई. टिकट चेकर तो बेचारे चुपके से चल देते हैं. महिला यात्रियों के साथ अशोभनीय बातें रोज की चर्चा हो गई हैं. लंदन में भी छात्रों में खुले आम गुंडागर्दी है. रूस के छात्र इस मुकावले में देहाती भले ही लगते हों, पर हैं सभ्य. हमें सब से ज्यादा प्रभावित किया बच्चों ने. स्वस्थ चेहरे, चमकती आंखें, मुसकराते होंठ, कोई कोट के पल्ले पकड़ता, कोई हमारे हाथ घिसकर देखता कि हमारे रंग का उस पर कुछ असर हुआ या नहीं. इस में संदेह नहीं कि रूसी सरकार इन का वड़ा खयाल रखती है.

एक शाम हम मास्को की दुकानों में घूमते हुए किसी एक में जा पहुंचे. कहना न होगा कि दुकानें सरकारी होती हैं. वहुत तरह की चीजें थीं, पर घटिया दर्जे की. हमें कुछ खरीदारी तो करनी थी नहीं, महज दामों के बारे में जानकारी लेनी थी, दोचार रुपयों की कुछ चाकलेट ले कर बाहर आए. कीमतें हमारे यहां से काफी ऊंची थीं—खासकर बढ़िया चीजों की कीमतें तो दस गुनी तक थीं. मैं ताज्जुब कर रहा था कि सोवियत जनता के मनोभावों को शायद कठोर शासन और बेरिया के आतंक ने कुचल दिया है. यहां सरकार पर यह दबाव नहीं दिया जाता कि वाजिब दामों में बढ़िया चीजों को उन के लिए क्यों नहीं मंगाया जाता.

हमारे देश में यदि ऐसा हो तो जुलूस और नारों से शासन का सिंहासन हिल उठे और सरकार को अपनी आयात नीति के बारे में रद्दोबदल करने के लिए बाध्य होना पड़े. आश्चर्य यह लगा कि हजामत भी सरकार ही बनाती है, यानी सैलून भी सरकारी और बूट पालिश तक सरकारी है. होटल आ कर आपस में चर्चा होने लगी कि इंगलैंड, फ्रांस, स्वीडन, जरमनी आदि देशों के मुकाबले में रूस के जनजीवन का स्तर नीचा होने पर भी इस की शक्ति का विश्व में महत्त्व है. विज्ञान के क्षेत्र में रूस अमरीका जैसे साधनसंपन्न राष्ट्र का प्रबल प्रतिद्वंद्वी है.

एक बात रूस और भारत में करीब एक सी लगी कि सार्वजनिक पार्कों में या सड़कों के निराला कोनों पर फ्रांस, इंगलैंड या बेल्जियम की तरह नरनारी प्रगाढ़ आलिंगन और चुंबन में रत नहीं दिखाई देते. हवाई में तो इस से भी कहीं आगे बढ़ जाते हैं. मास्को में स्त्रीपुरुष पासपास बैठे बातचीत में मगन दिखाई जरूर देते हैं, पर सीमा रेखा से आगे बढ़ने के थोड़े प्रयास के साथ ही पुलिस की सीटी उन्हें सचेत कर देती है. कई बुकस्टालों पर हम गए पर कहीं कामोत्तेजक मैगजीनें या पोस्टकार्ड नहीं दिखाई पड़े. लंदन और पेरिस की तरह यहां सड़कों पर 'पिंप' (दलालों) को साए की तरह चलते नहीं देखा. इस ढंग के लोगों को यहां बहुत ही कठोर दंड दिया जाता है. मास्को के टैक्सीचालक भी शिष्ट और विनयशील हैं. विदेशों के टैक्सी ड्राइवरों का कटुतिक्त अनुभव हमें था. 'टिप' के लिए किस तरह मुंह विचकाते और झल्लाते हैं, पर यहां वह सब कुछ नहीं था.

सोवियत देश में पुरुषों की तरह स्त्रियां भी काम पर जाती हैं. इसलिए इन के बच्चों के लिए हर महल्ले में शिशुगृह हैं. इन में डाक्टर, नर्स और परि-

मास्को में बने पुश्किन स्क्वायर का एक दृश्य...
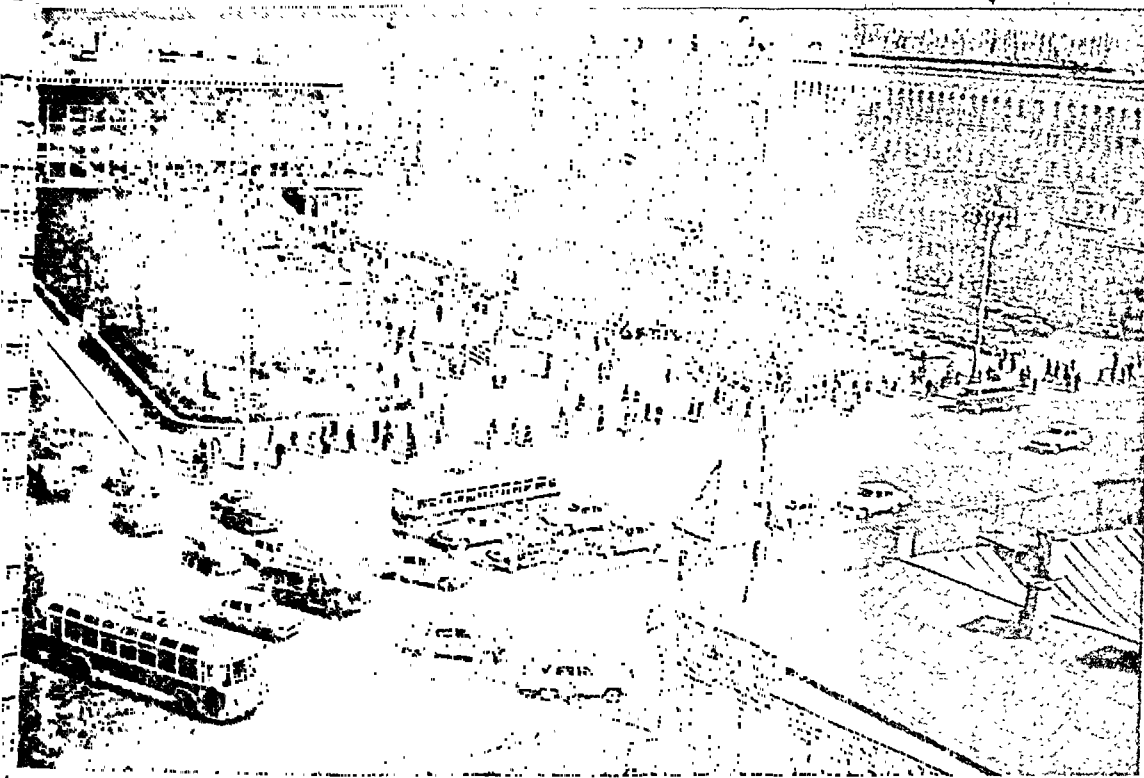
चारिकाएं नियुक्त रहती ह. सब की पोशाक एक सी और खाना एक सा. इन शिशुगृहों को क्रेशे कहते हैं. इन में उमर के अनुसार बच्चे अलगअलग रखे जाते हैं. उन के लिए मनोरंजन के अच्छे साधन रहते हैं. महिलाएं काम पर से वापस आते समय इन्हें साथ ले कर चली जाती हैं. बच्चे यहीं प्रारंभिक शिक्षा भी पा लेते हैं. इन्हें रखने का शुल्क मातापिता की आय के अनुपात से लगता है. अतएव अधिक वेतन या कम वेतन पाने वालों के बच्चों के लालनपालन में भेदभाव की गुंजाइश नहीं.

स्कूलों के लंबे अवकाश में अथवा गरमी की छुट्टियों में स्कूलों की तरफ से बच्चों को समुद्र के उपकूल या रमणीक स्वास्थ्यप्रद पर्वतों पर घुमाने ले जाया जाता है. इस अवधि में अध्ययन के साथसाथ पारस्परिक सहयोग की भावना को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जाता है. स्कूल, कालिज और घरों में किस प्रकार की पुस्तकें पढ़ी जाएं, यह भी सरकार ही निश्चित करती है. अर्थात साम्यवाद के विरोधी विचारधारा का साहित्य यहां के बुकस्टालों और लाइब्रेरियों में नहीं मिलता. प्रत्येक दल के साथ शिक्षक के अतिरिक्त डाक्टर भी रहते हैं.

सोवियत सरकार एकतंत्री है. शिक्षा में वह इस ढंग से साम्यवाद का अनुप्रवेश करा चुकी है कि नई पौध की विचारधारा इतनी कुंठित सी है कि साम्यवाद के अलावा और भी कोई सामाजिक व्यवस्था है या संभव है, इस की कल्पना वह नहीं कर पाती. मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन आदि उन के लिए अवतार हैं. कुछ समय पहले तक स्टालिन भी था, पर अब पाठ्य पुस्तकों से उस का नाम निकाल दिया गया है. आश्चर्य तो यह है कि धर्म न मानने वाले साम्यवाद ने स्वयं को एक धर्म बना दिया और उस में भी मसीहों की ठीक उसी ढंग से सृष्टि की जैसे इसलाम ने मुहम्मद साहब की और ईसाइयों ने ईसा की.

लेनिनग्राद-१

जिस की हर बात पर मास्को से होड़ लगी रहती है . . .

मास्को से लेनिनग्राद हमें हवाई जहाज से आना पड़ा. चाहते तो हम थे कि ट्रेन से सफर करें, ताकि सोवियत देश के ग्राम्यांचल की झांकी के साथसाथ यहां की ट्रेनों के बारे में भी कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें, किंतु कुछ तो समयाभाव के कारण और कुछ सरकारी व्यवस्था की वजह से हमारी यह आकांक्षा पूरी न हो सकी.

मास्को में हम पांच दिनों तक रहे मगर जितनी जानकारी सोवियत शासन व्यवस्था अथवा वहां के जनजीवन के विभिन्न पक्षों के संबंध में पाना चाहते थे वह संभव न हो सका. पहली बाधा तो भाषा की और दूसरी सरकारी गाइड के रूप में मिरकोव और उस के साथी की, जो छाया की तरह सदैव साथ रहते थे. जो चीज न दिखानी हो या जो न बताना हो, उस के लिए उन के पास बनेबनाए बहाने तैयार रहते थे. इस ढंग का रुख उन का रहता था कि हमारा उत्साह अपनेआप ही ठंडा हो जाता. वैसे वे दोनों बहुत ही नम्र और हंसमुख थे और पिछले सात दिनों में उन्होंने किसी प्रकार की शिकायत का मौका नहीं दिया.

मैं ऊब चुका था. इसलिए मैं ने श्री बिड़ला और साथियों को मास्को में छोड़ कर प्रभुदयालजी के साथ लेनिननग्राद देख लेने का निश्चय किया. इस बार हम मास्को के जिस एयरपोर्ट से रवाना हुए वह पहले जितना न तो बड़ा था और न साफसुथरा. बाथरूम वगैरह भी गंदे थे, रेस्तोरां घटिया सा. साथ के यात्री सभी रूसी थे, जिन में से अधिकतर अंगरेजी नहीं समझते थे.

लेनिनग्राद से हम सर्वथा अपरिचित थे. फिर भी हम खुश थे क्योंकि मिरकोव और उस के साथी से पिंड छूट गया था. वे मास्को ही बिड़लाजी के साथ रह गए. यहां का एयरपोर्ट लंदन, पेरिस या बर्लिन की तरह व्यस्त नहीं रहता. हम ने वहां लगी समयसारिणी देखी तो पता चला कि आनेजाने वाले हवाई जहाजों की कुल संख्या चालीसपैंतालीस मात्र है. इस से कहीं ज्यादा तो बंबई, कलकत्ता के एयर-पोर्टों में हैं जब कि हमारा देश पिछड़ा और अल्प उन्नत समझा जाता है.

एयरपोर्ट से हम अपने पूर्व निश्चित होटल अस्टोरिया के लिए टैक्सी से रवाना हुए. रास्ते में हम ने देखा, प्रासाद सरीखे कई एक मकान खंडहर से हो रहे हैं. कुछेक नए ढंग के ऊंचे बन रहे हैं. टैक्सी वाले से पूछा, यानी हाथ और उंगलियों
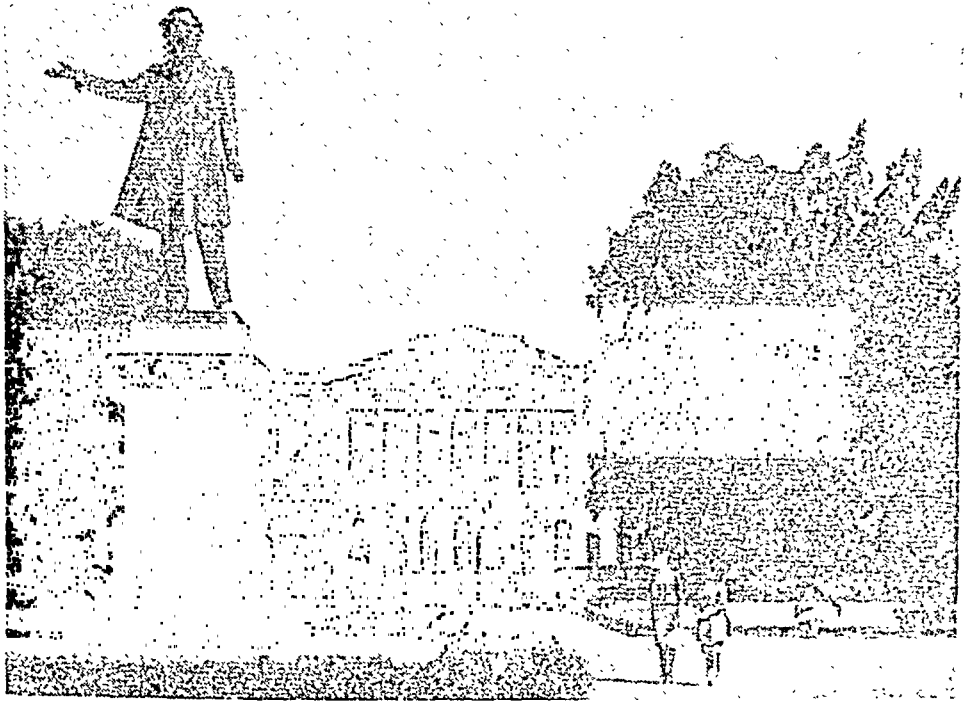
रोम के वेटिकन और पेरिस के लुव्रे के जैसा लेनिनग्राद का हरमिटेज संग्रहालय

को नचा कर संकेत से पूछा तो उसी भाषा में उत्तर मिला—कुछ तो पुराने होने के कारण गिराए जा रहे हैं और कुछ नाजियों के आक्रमणकाल में ढह गए थे. हम ने देखा कि कई मंजिलों के ऊपर लोहे के ढांचों पर झलाई का काम हो रहा है और चिनगारियां नीचे गिर रही हैं. यह भी देखा कि मोटा काम औरतें कर रही हैं. कई मंजिल ऊंचे मकान के सहारे लगे ढांचे पर खड़ी हो कर लोहे की बीमों में झलाई का काम कर रही थीं. हमारे गरीब देश में सिर पर ईंटें रख कर बांस की सीढ़ियों के सहारे औरतों को चढ़ते देखना आश्चर्य नहीं, किंतु सभ्य और उन्नत साम्यवादी राष्ट्र में भी इस ढंग का काम पेट के लिए इन को क्यों करना पड़ता है, यह समझ में आया नहीं.

टैक्सी में हम ने आपस में सोवियत शासन या व्यवस्था के बारे में कोई बात न की. हमें डर था कि कहीं टैक्सी वाला खुफिया न हो. होटल पहुंच कर हम ने अपने कमरे में सामान रखा. हाथमुंह धो कर, रेस्तोरां में आ कर हम जलपान करने लगे. हमारी टेबल एक कोने में थी, सिर्फ तीन कुरसियां लगी थीं. दो पर हम बैठे, एक खाली रही. आसपास के टेबलों पर लोग बैठे थे.

थोड़ी देर बाद हम ने देखा कि एक लंबा सा आदमी कंधे पर कैमरा लटकाए हमारी ओर आ रहा है. लगा, आ गया—शायद हमारे लिए मास्को से सरकारी मेजबान. मुसकरा कर इशारे से खाली कुरसी पर बैठने की उस ने इजाजत ली और नाश्ता करने लगा. मैं ने हिंदी में प्रभुदयालजी से धीरे से कहा, "लगता है, यह 'देवदूत' (गाइड के रूप में खुफिया) नहीं है."

"चुपचाप देखे जाओ," कह कर नाश्ता करते हुए प्रभुदयालजी ने चिवड़े और बरफी को अपने झोले से बाहर किया.

हम ने देखा कि आगंतुक बड़े गौर से हमारी ओर कनखियों से देख रहा था.

अपने चिवड़े और बरफी का जादू विदेशों में हम कई बार आजमा चुके थे. इसलिए इन का नाम हमने 'खुल जा समसम' रखा था. मैं ने आगंतुक से बिना झिझक अंगरेजी में कहा, "भारत का है, आप भी कुछ चखना पसंद करेंगे?"

हमारा निशाना अचूक बैठा. "ओह, जरूर. . . निःसंदेह! आप भारत के हैं?" साफ अंगरेजी में कह कर वह हमारी तरफ मुखातिब हुआ. फिर पारस्परिक परिचय हुआ. आगंतुक मिस्टर जौन स्वीडिश पत्रकार थे. अपने देश के किसी दैनिक के संवाददाता के रूप में पिछले चार महीनों से रूस में प्रवास कर रहे थे. हमें आश्चर्य हो रहा था कि किसी भी विदेशी, यहां तक कि कम्युनिस्ट देशों के लोगों की गतिविधि पर भी जब रूस में नियंत्रण रखा जाता है, तो पत्रकार और संवाददाता के रूप में मिस्टर जौन को स्वच्छंद जानेआने की सुविधा किस तरह मिल सकी! पूछने पर उन्होंने बताया कि पिछले महायुद्ध में स्वीडन तटस्थ रहा है. रूस के साथ उस के संबंध अच्छे रहे हैं, इसलिए अन्य देशों के संवाददाताओं से उन्हें अधिक छूट है, फिर भी परोक्ष रूप से नियंत्रण तो रहता ही है.

एक आम, बादाम की बरफी और चिवड़े हम ने उन्हें दिए. आम तो शायद पहले कहीं वह खा चुके थे, किंतु बरफी और चिवड़े उन्होंने पहली बार देखे और चखे. उन्होंने बड़ी रोचकता के साथ इन के नाम पूछे और नोट किए. शायद उन्हें ये चीजें बहुत ही स्वादिष्ट लगीं.

मिस्टर जौन को हम ने बताया कि हम अपने देश के संसद सदस्य हैं और शासकदल कांग्रेस के हैं. पंडित नेहरू के विचारों से सर्वथा सहमत हैं और हमारी यात्रा का उद्देश्य है, विदेशों के औद्योगिक विकास की जानकारी प्राप्त करना. सोवियत सरकार के आमंत्रण पर ही रूस आए हैं, इसलिए हमारी इच्छा है कि इस महादेश के बारे में अधिकाधिक परिचय प्राप्त करें. इस के बाद हम फिनलैंड होते हुए स्वीडन जाएंगे. हम ने बताया कि भाषा की दिक्कत और सरकारी नियंत्रण के कारण हम यहां के बारे में आशानुकूल जानकारी नहीं कर पा रहे हैं.

पता नहीं, भारत ने या भारतीय मिठाई ने उन्हें प्रभावित किया, वह हमें यथासाध्य सहयोग देने को तैयार हो गए. यही नहीं उस अनजाने शहर में वह हमारे लिए बिना फीस के गाइड बने और सारे दिन की सर्विस अपनी मोटर के साथ दी.

उन्होंने हमारे लिए प्रोग्राम बना दिया और कहा, "बातचीत हम बाहर घूमतेफिरते करते रहेंगे, खानेपीने के टेबल पर नहीं. क्योंकि हो सकता है कि कोई गुप्त माइक्रोफोन टेबल पर हो या पास की टेबल पर अंगरेजी जानने वाला गुप्तचर हो. आप लोग प्रश्न बहुत सावधानी से करें और जितना उत्तर दूं उसी से संतोष कर लें." दो घंटे बाद हरमिटेज में मिलने का वचन दे कर उन्होंने हम से विदा ली.

हम दोनों अकेले ही शहर घूमने निकल पड़े. लेनिनग्राद सोवियत संघ का दूसरा वृहत्तम नगर है और संसार के बड़े शहरों में इस का स्थान (शायद ग्यारहवां) है. यहां की जनसंख्या लगभग तीस लाख है.

लेनिनग्राद बहुत कुछ वीनिस या एम्स्टर्डम की तरह सौ से भी अधिक छोटेबड़े द्वीपों पर बसा हुआ है. यहां करीब चार सौ पुल हैं जो यहां के विभिन्न

लेनिनग्राद की सड़कों पर मास्को की तरह काम पर भागते हुए लोग नजर नहीं आते

महल्लों को एकदूसरे से जोड़ते हैं. ग्रीष्मऋतु म तो यहां अठारहउन्नीस घंटे तक सूर्य का प्रकाश रहता है, और जाड़े में नौ बजे दिन तक अंधेरा. इस का कारण यह है कि ६० अक्षांश पर स्थित होने के कारण यह ध्रुवांचलीय क्षेत्र में है. सरदी यहां इतनी ज्यादा पड़ती है कि तापमान शून्य से भी ३० डिग्री नीचे उतर जाता है. नेवानदी जाड़े के मौसम में जम कर पत्थर सी हो जाती है. उस समय यहां के निवासी इस पर तरहतरह के खेल खेलते हैं. बड़ी हिम्मत और जीवन की जरूरत इन खेलों के लिए पड़ती है. शरीर में बल, स्नायुयों में शक्ति और अभ्यास इन के लिए आवश्यक है. भारत में आए हुए 'हालिडे आन आइस' से इस की कुछ झांकी मिल सकती है. इन खेलों को देखने के लिए सोवियत संघ के दक्षिणी भाग तथा पड़ोसी देशों से हजारों यात्री आया करते हैं.

संसार के अन्य बड़ेबड़े शहरों की तरह यहां भी इतिहास ने करवटें बदली हैं, मामूली व्यापार केंद्र था यह किसी जमाने में. स्वीडन के व्यापारी नेवा के मुहाने पर जहाजों से आयाजाया करते थे और रूस से माल की खरीदफरोख्त करते थे. यहां दलदलीय जमीन थी, सरदी हद से ज्यादा पड़ती थी. रूस के प्रसिद्ध सम्राट पीटर महान को धुन चढ़ी कि राजधानी यहीं बने, ताकि यूरोप के सन्य देशों के निकट वे केंद्र बना सकें.

पीटर रूस को दकियानूसी घेरे से बाहर ला कर यूरोप के देशों की पंक्ति में बैठाना चाहता था. रूस को आधुनिक बनाने में उस का अवदान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है. सम्राट पीटर ने अपनी मुराद पूरी की और लेनिनग्राद को सन १७१७ में रूस की राजधानी बनने का गौरव मिला. किंतु उस ने इसे अपना नाम नहीं दिया. बल्कि ईसाई धर्म के महान प्रचारक संत पीटर की स्मृति में इस का नाम सेंट पिट्सबर्ग रखा. इस के नाम से जुड़ी हुई जरमन भाषा की दूरटानें के

लिए बाद में इस का नाम बदल कर पेत्रोग्राद रखा गया. लेनिन के प्रति कम्युनिस्टों की अपरिमित भक्ति के कारण इस का नाम १९२४ में लेनिनग्राद कर दिया गया. लगभग दो सौ वर्षों तक इस ने रूस का शासन किया. यहीं जारशाही का राजदंड घूमता रहा. यहीं से पीटर, कैथरीन और अलेग्जेंडर ने विशाल रूसी साम्राज्य पर निरंकुश शासन किया. फिर यहीं केंद्र बना जारशाही का तख्ता उलटने का. सम्राटों की मानमर्यादा, भय, आतंक उन की अच्छाइयां या बुराइयां सभी को साम्यवादी क्रांति ने समान रूप से धूलिधूसरित कर दिया. शहर को देखने पर बारबार मन में भावना उठती है: 'खंडहर बता रहे हैं, इमारत कितनी बुलंद थी!'

खैर, आज भी लेनिनग्राद शानदार है. उद्योगधंधों और कलाकौशल सभी में वह दूसरे सोवियत नगरों से आगे है. सोवियत संघ के बंदरगाहों में लेनिनग्राद को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाता है. इस की गोदी लगभग सोलह मील लंबी नहर के जरिए सागर से जुड़ी है और संसार के बड़े बंदरगाहों में मानी जाती है. लगभग तीन सौ विदेशी जहाज ही यहां पर प्रति वर्ष आते हैं. कलकत्ता और बंबई में इस से कहीं अधिक जहाज विदेशों से आया करते हैं, जब कि संसार के चुने हुए बंदरगाहों में इन की गिनती नहीं होती. कारण स्पष्ट है, इस समय तक भी रूस विदेशी व्यापार के प्रति शंकाशील है.

जनसंख्या की दृष्टि से मास्को लेनिनग्राद से दोगुना है और सोवियत संघ की राजधानी होने के कारण उस का महत्त्व भी अधिक है. फिर भी, जहां तक कला और वास्तुशिल्प का सवाल है, इस की बराबरी में रूस का कोई भी शहर नहीं आता. संसार के सुंदरतम नगरों में इस की गिनती होती है. अब तक जिन बड़े-बड़े शहरों में जा चुका था उन में बंगलौर, स्विट्जरलैंड के ज्यूरिख और लूजर्न, पेरिस, स्टाकहोम, हेग और वियना के समकक्ष इसे माना जा सकता है.

लेनिनग्राद की सड़कों पर घूमते हुए लगता है कि यूरोप के किसी अच्छे शहर में हम हैं. शहर के केंद्रीय भाग को हम देख रहे थे. हमें यहां टूटीफूटी अंगरेजी समझने वाले बीचबीच में मिल गए. इन से बड़ा सहारा मिला. भारतीय भाषाओं में यों ही यात्रा वृत्तांत बहुत कम हैं, बंगला में कुछेक हैं जरूर. लेनिनग्राद के विषय की आधुनिक जानकारी के बारे में तो अंगरेजी में भी बहुत ही कम सामग्री है. इसलिए यहां के स्थानीय लोग बड़ी रुचि के साथ अपने शहर के इतिहास और श्रेष्ठता को बताते हैं. मास्को में यह बात नहीं है.

यहां कुछ वृद्धों से बातें करने पर लगा कि वे अपने भूतपूर्व सम्राट व सम्राज्ञी की चर्चा में उसी प्रकार रुचि रखते हैं जैसे ब्रिटेन के लोग. बड़ी खुशी से उन के व्यक्तिगत जीवन की प्रणय कथा, उन की मनमानी या जिद्दीपन का बयान करते हैं.

यहां स्मोलेनी इंस्टीट्यूट को देखते समय उन्होंने बताया कि यह विद्यालय मूलतः राजघराने अथवा रईसों की कन्याओं के लिए बनाया गया था. सन १९१७ में इसे बोलशेविकों ने अपना प्रधान केंद्र बनाया. लेनिन इसी भवन की तीसरी मंजिल पर रहता था.
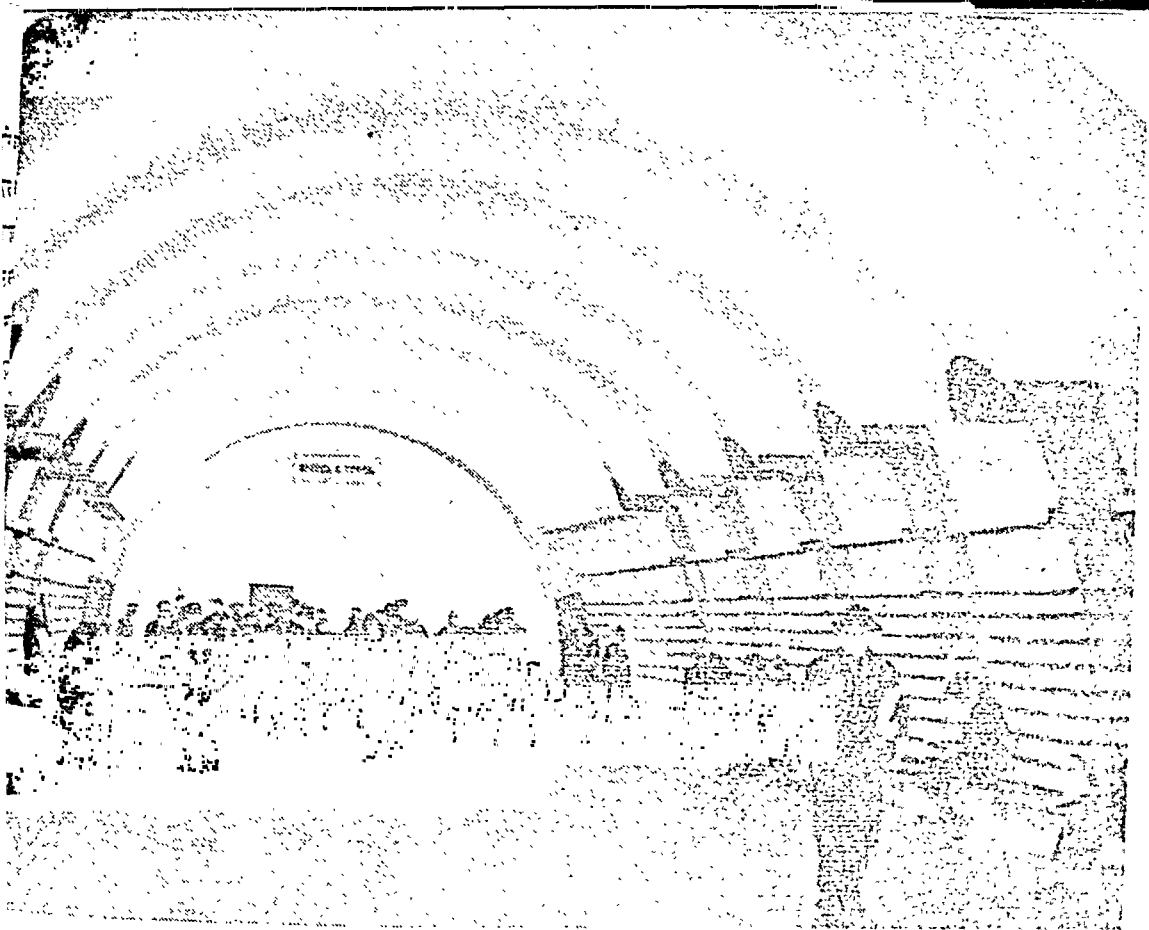
लेनिनग्राद का भूगर्भ ट्रेन स्टेशन मास्को के भूगर्भ ट्रेन स्टेशन के मुकावले शत प्रतिशत घटिया

पास के तावरिस भवन को भी हम ने देखा. इस के वारे में वड़ा मनोरंजक इतिहास था. इसे रूसी सम्राज्ञी कैथरिन ने अपने प्रेमी प्रिंस पोतोम्किन के लिए वनवाया था. क्रिमिया के युद्ध में विजयी होने पर उसे उपहार में दिया गया. प्रिंस ने इसे दूसरे को दे दिया मगर कैथरिन ने फिर इसे खरीद कर अपने प्रेमी प्रिंस को दोवारा उपहार में दे दिया. इस ढंग की राजसी मौज की वात मैं ने पहले कभी नहीं सुनी थी. उन्नीसवीं शताब्दी तक यूरोप के राजघरानों में इस प्रकार की खुली प्रेम चर्चाओं की कथाएं इतिहास में भरी पड़ी हैं.

लेनिनग्राद को वनानेसंवारने का दो वास्तुकारों को वहुत वड़ा श्रेय है. दोनों में इतालवी रक्त था. एक का नाम था वार्त्तलोम्यों रास्प्रेली. इस का जन्म पेरिस में हुआ था, किंतु सन १७१६ में यह रूस में आ कर वस गया. इसी ने शरद प्रासाद तथा अन्यान्य राजप्रासाद वनाए. दूसरा था कार्लो इवानोविच रोस्सी. लेनिनग्राद की एक इतालवी नर्तकी का यह पुत्र था. रोसी ने यहां के सीनेट, वैले स्कूल, पुस्तकालय और अलेग्जेंड्रेस्की थिएटर का निर्माण किया. इस थिएटर का नाम अव रूसी साहित्यकार की स्मृति में पुश्किन रख दिया गया है.

जार शासन के अंत के साथसाथ लेनिनग्राद के प्राचीन और मध्ययुगीन गौरव का अवसान हुआ. अप्रैल १९१७ में लेनिन स्विट्जरलैंड से यहां आया. [illegible]

दूसरी प्रतिमा है रूसी सम्राट निकोलस प्रथम की. इस सम्राट के बारे में एक मजेदार बात सुनने में आई. आज का सिटी हाल मूलतः मेरिंस्की प्रासाद था. सम्राट ने इसे अपनी रानी मेरी के लिए बनवाया था. मगर रानी को यह प्रासाद जंचा नहीं. न जंचने का कारण यह था कि सम्राट की घुड़साल क्यों इस की किसी एक खिड़की से दिखाई पड़ती है! राजारानियों के चोंचले प्रायः सारे देशों में एक समान ही रहे हैं.

मिस्टर जौन से हमें निश्चित स्थान और समय पर मिलना था. समय कम रह गया था. घूमतेघूमते कुछ थकान सी हो आई. काफी पीने के लिए हम एक रेस्तरां में गए, ताकि थोड़ी ताजगी आ जाए. यहां भी वातावरण मास्को से भिन्न था. लोगों के चेहरों पर ताजगी और कुछ बेफिक्री भी लगी. एक टेबल पर हम बैठ गए. एक अध्यापक पहले से बैठा था, विज्ञान का था स्वयं ही उस ने हम से परिचय किया. हमें भारत का जान कर उसे बड़ी खुशी हुई. उस का कोई चाचा रूसी क्रांति के समय भारत भाग गया था, फिर स्वदेश वापस लौटा नहीं. थोड़ी बहुत बातचीत के बाद उस ने कहा, "निश्चय ही मास्को से हमारा शहर आप को ज्यादा अच्छा लगा होगा." हम ने यह स्वीकार किया.

वह आगे कहने लगा, "हमारा शहर दुनिया में बेजोड़ हो उठता, मगर नाजियों के कारण इस के विकास में बहुत बड़ी बाधा पड़ गई. सन १९४१ के अगस्त में नाजी लुटेरे साम्राज्यवादी नशे में अपनी अजेय फौजों को ले कर हमारे शहर पर चढ़ आए. उन्होंने जबरदस्त घेरा डाल दिया. वह घेरा ९०० दिन के घेरे के नाम से प्रसिद्ध है. बमबारी से शहर को वे तहसनहस करते रहे. फिर भी हमारे बहादुर कामरेडों ने उन्हें आगे बढ़ने नहीं दिया, बमों की मार से तो लोग मरते ही थे पर भुखमरी और संक्रामक व्याधियों से भी काफी लोग मरने लगे. अनुमान है कि इस दौरान में लेनिनग्राद ने अपने आठ लाख नागरिक खो दिए. फिर भी हम हिम्मत नहीं हारे. जैसे ही बम वर्षा रुकती कि हमारे नागरिक खंदकों से या मलवों से मृतकों को निकाल लाते, घायलों की सेवाशुश्रूषा करते और फिर अपने दैनिक काम में लग जाते.

"आखिर जनशक्ति के सामने साम्राज्यवादी नाजी टिक न सके. जनवरी १९४४ में उन्हें हार कर यहां से हटना पड़ा. उन के लाखों सैनिक बर्फानी हवा और ठंड से जम कर अकड़ गए. सदा के लिए नेवा नदी में रह गए. युद्ध विशारदों का तो यहां तक कहना है कि यदि नाजी रूस पर हमला नहीं करते तो उन की सर्वोत्तम फौजें बरबादी से बच जातीं और बहुमूल्य युद्ध सामग्री भी नष्ट न होती. तब शायद युद्ध का नतीजा दूसरा ही होता. रूस से नेपोलियन भी टकराया था, मास्को में तो घुस गया था. तालस्ताय के 'युद्ध और शांति' में इस का वर्णन है. नेपोलियन को भी पता चल गया कि रूस का किसान केवल धरती की छाती नहीं चीरना जानता, साम्राज्यवादी लुटेरों के सिर छेदना भी जानता है. उस समय मैं बहुत छोटा था, पर मैं ने भी यथाशक्ति लड़ाई में भाग लिया था."

उस की जोश भरी बातों में सचाई थी. मगर जब उस ने यह कहा कि

दुनिया में कहीं ऐसी मिसाल नहीं मिलेगी तो हम ने उसे बताया कि हमारे भारतवर्ष में इस ढंग के एक नहीं अनेक उदाहरण हैं. मैं ने चित्तौड़ के घेरे की बात उसे बताई.

वह आश्चर्यचकित रह गया, कहने लगा, "मगर वह तो एक व्यक्ति की जिद की बात थी, पर यहां तो पूरी जनता का बलिदान था."

हमें देर हो रही थी, अतः उस से विदा लेते हुए हम ने कहा, "राजा हो या नेता, सभी के पीछे जनता का बल तो रहता ही है. व्यक्ति यदि समष्टि को साथ ले कर चलता है तो समष्टि स्वतः उस में सिमट जाती है."

मैं ने देखा, वह कुछ उलझाउलझा सा काफी पीने में लग गया.

रास्ते में प्रभुदयालजी मुझे समझाने लगे, "सोवियत शासन अथवा साम्यवादी तरीके में व्यक्ति के व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया जाता है. मास्को में यह देख चुके हो. बहुत बचपन से उस के विचार को केवल साम्यवादी सरकार की समर्थित दिशा में ही बढ़ने दिया जाता है. फलतः यहां इतिहास और संस्कृति की विविधता को समझने और परखने की शक्ति नई पौध में है कहां. यह तरीका लगभग पिछले तीस वर्षों से अपनाया गया है. इस का ध्यान रखना चाहिए. यहां बहस का मौका नहीं देना चाहिए. कहीं किसी दूसरे मिरकोव की छाया लगी कि अब तक का सारा मजा किरकिरा हो जाएगा."

हरमिटेज के करीब हम आ गए. देखा, मिस्टर जौन लान में खिले फूलों को देख रहे हैं. वह आगे बढ़ आए, कहने लगे, "कोई दिक्कत तो नहीं हुई?" हम ने उन्हें अपने अनुभव के बारे में संक्षेप में सुना दिया. "आप अच्छी किस्मत वाले हैं, दोस्ती करना जानते हैं."

मिस्टर जौन हम दोनों को साथ ले कर हरमिटेज दिखाने ले चले. उन्होंने बताया, "यहां के दर्शनीय स्थानों में यह सर्वोपरि है. रोम के वेटिकन और पेरिस के लुव्रे म्यूजियम के समकक्ष इस संग्रहालय को माना जाता है. अलभ्य वस्तुएं यहां संगृहीत हैं. वास्तव में पहले यह जार का राजप्रासाद था. यह इतना बड़ा है कि यदि इस के सारे बरामदों में घूमा जाए तो १६ मील का चक्कर लग जाए. इस में १,५०० बड़ेबड़े कक्ष हैं. इन में से सिर्फ ४०० को संग्रहालय के काम में लाया गया है. इस की चित्रशाला का संग्रह भी अमूल्य है. राम्बैंड, पिकासो, रूबेंस, टिटान, ल्योनार्दो दविंची आदि के दुर्लभ चित्र यहां मिलेंगे. इन में से किसीकिसी का मूल्य करोड़ दो करोड़ तक है."

मैं ने लूव्रे और वेटिकन में इन में से प्रायः सब प्रसिद्ध चित्रकारों की बनाई अन्य तसवीरें पहले देखी थीं.

हरमिटेज का आकर्षक अंश है इस का खजाना. इस में प्रवेश के लिए अनुमति प्राप्त करनी पड़ती है. हम ने पहले से इंतजाम कर लिया था. खजाने में संसार के अद्वितीय सोने के गहने, बरतन और वस्तुएं हैं. प्राचीनकाल से ले कर जार के समय तक के स्वर्णाभूषण देखने लायक हैं. मिस्र के सम्राट तुतनखामन की समाधि से निकाले गए स्वर्ण पात्र, अलंकार और राजचिह्न भी यहां देखे.

रूसी सम्राटों के जवाहरात, अलंकारआभूषण और उन के काम में आने

वाली वस्तुएं देखीं. सोने की बनी इन चीजों की कारीगरी और सफा
बेशक लाजवाब है, पर वह दक्षता जो भारतीय कारीगरों के हाथ में है वह इन चीज
में नहीं दिखाई पड़ी. ठोस सोने की एक बड़ी सी शृंगारदानी देखी. ६० कक्ष
उस में. यह रूस की सम्राज्ञी अन्ना की थी. सन १७१० से १७४० तक इस क
शासनकाल रहा है. इन्हें स्नान से बड़ी चिढ़ थी. बदन पर खुशबूदार उबट
लगवा लेती थी और उसे साफ करा लेती थीं. यहीं एक कंबल देखा, जिसे तुर्क
के सुलतान ने सम्राट निकोलस प्रथम को सन १८३० में उपहार दिया था. ८
बड़ेबड़े हीरे, जो हमारे यहां के नए पैसे के बराबर होंगे, इस पर जड़े हुए हैं. प्रकाश
की किरणें इन हीरों पर बिखर कर समय की करवटों को मुसकरा कर बता रही
थीं. मैं सोच रहा था कि यद्यपि रूस की सर्दी के अनुरूप ही कंबल मोटा और गरम
है पर क्या इन हीरों से कंबल की गरमी और बढ़ जाती है? इन सब के अतिरिक्त
६० संदूकों में बंद किए हुए आभूषण वहां और थे.

पीटर महान के कक्ष की ओर जाते हुए मैं ने मिस्टर जौन से कहा, "अचंभे
की बात तो यह है कि साम्यवादी सरकार ने ६० बड़ेबड़े संदूकों में भरे ठोस सोने के
पात्र और आभूषणों को बेच कर अपने शासनकाल के प्रारंभिक दिनों की भुखमरी
से अपने भूखे नागरिकों को बचाया क्यों नहीं? विदेशी तो बड़ीबड़ी कीमतें इन
के लिए दे देते. लाखों व्यक्तियों के प्राण बच जाते.

मिस्टर जौन ने कहा, "इन चीजों का ऐतिहासिक महत्त्व है, इसी लिए
इन्हें सुरक्षित रखा गया है. बात सही है मगर साम्यवादी तो इतिहास, धर्म और
संस्कृति को स्वीकार करते नहीं—यहां तक कि अपने देश के भी. जिस तरह
इसलाम या ईसाई मजहब में धर्म, सभ्यता और संस्कार की शुरुआत मानी जाती
है उन के अपनेअपने पैगंबर के आविर्भाव के साथ उसी प्रकार साम्यवादी भी
मार्क्स के आविर्भाव के साथ यथार्थ सभ्यता और संस्कृति का विकास मानते हैं.
उन के लिए इस के पूर्वकाल की सभी बातें जंगलीपन की हैं, उन में वर्ग संघर्ष है,
शोषण है."

"मेरा खयाल है कि जारों की इन बहुमूल्य वस्तुओं का प्रदर्शन इसलिए
कराया जाता है कि लोग समझें कि जार शासक जनता का शोषण कर के कितनी
ऐयाशी करते थे"—मैं ने अपने विचार रखे.

सम्राट पीटर के कक्ष में उस के निजी काम में आने वाली चीजें देखीं.
शरीर के अनुरूप ही उस के शस्त्र भी लंबेचौड़े थे. वहीं एक नुकीली
गदा भी रखी थी, जिस से उस ने अपने बेटे का सिर फोड़ दिया था. कहते हैं, कि
उसे अपनी रानी के चरित्र पर संदेह हो गया था. जहां तक उस ने रानी के प्रेमी
की नृशंस हत्या की वह तो समझ में आने की बात है, पर बेचारे बालक का क्या
कसूर था?

सभी कक्षों को यदि सरसरी तौर पर देखा जाए, तो कम से कम दो दिन
का समय चाहिए. हमारे पास तो इतना ही समय पूरे लेनिनग्राद के लिए
था. अतएव हम काजान कैथड्रेल देखने के लिए निकल पड़े.

रोम के सेंट पीटर्स गिरजे के अनुरूप यह बनाया गया है. इसे सन १८०१ में बनाना शुरू किया गया और लगभग ग्यारह वर्षों में पूरा किया गया. इस के ऊपर का गुंबद रूस भर में सब से अधिक सुंदर है. मेरा खयाल था कि रूस का यह सब से सुंदर गिरजा अब भी उपासना मंदिर होगा. मगर यहां आने पर पता चला कि सन १९२९ में इसे विज्ञान की अकादमी बना दिया गया था और इन दिनों यह धर्मों के इतिहास का संग्रहालय है. धर्म के नाम पर जो विभिन्न अत्याचार किए जाते रहे हैं उन की सजीव झांकियां यहां देखने में आती हैं. एक झांकी में देखा कि बंदियों को जलाया जा रहा है. दूसरे में देखा, उन के शरीर की बोटियां उछाली जा रही हैं. यहीं एक औजार ऐसा देखा जो बंदियों के मुंह पर लगा दिया जाता था ताकि उन का मुंह न खुल सके. बंदी को भूखा रख कर कई दिनों बाद उस के मुंह पर यह औजार वे लगा देते थे और उस के सामने खाना रख देते थे. बेचारा खाना देखता था और घुटघुट कर मरता था. एक ऐसी कुरसी देखी जिस में नुकीले कांटे लगे थे. उस पर भूखे बंदी को बैठने के लिए विवश किया जाता था. वे उसे उसी से बांध देते थे और खाना देते थे. लहूलुहान हो कर वह दो कौर खा भी न पाता था कि दम तोड़ देता था.

जी घबरा उठा. क्या उपासना मंदिर का ऐसा उपयोग साम्यवादी उचित समझते हैं? विकृत प्रवृत्तियों या पाशविक आचरणों को धर्म की आड़ देना पुरानी बात है. साम्यवाद यदि इस बर्बरता का विरोधी है तो उसे साम्यवादी मसीहा स्तालिन के कारनामों और उस के बाद किए गए हंगरी के अत्याचारों की झांकियां भी यहां लगा देनी चाहिए. यदि आज इन्होंने ईमानदारी से नहीं लगायीं तो आने वाला कल इन्हें माफ नहीं करेगा. स्तालिन की लाश को लाल मकबरे से निकाल कर जब साम्यवादी अनजान जगह दफना सकते हैं तो क्या भविष्य में साम्यवाद का नशा उतरने पर इन की कारगुजारियों को आने वाली पीढ़ी बतौर सबक के दुनिया के सामने नहीं रखेगी!

खड़ा हुआ मैं एकटक कब तक न जाने उस कंटीली कुरसी को देखता रहा. मिस्टर जौन ने कहा, "गौर से क्या देख रहे हैं?"

मैं सचेत हो गया, धीरे से कहा, "सोच रहा हूं कि इन अमानुषिक यंत्रणा-दायक वस्तुओं को दिखा कर कहीं साम्यवादी नेता अपने किए गए अत्याचारों को ढकने का प्रयत्न तो नहीं कर रहे हैं?"

लेनिनग्राद-२

खंडहरों में सच्चाई की ढूंढ़ ?

काजान गिरजाघर देखने पर मन कुछ भारी सा हो गया था. तरहतरह के विचार उठने लगे. मैं ने मिस्टर जोन से अनुरोध किया कि अब गिरजाघरों को न देख कर ऐतिहासिक महत्त्व के किसी स्थान को देखा जाए. हम संत पीटर और पाल के किले की ओर चले.

सिलेटी रंग की नीवा नदी के बीच किले की पीले रंग की मीनारें आसमान में बादलों से छेड़छाड़ कर रही थीं. दूर से ऐसा लगता था मानो छोटा सा किला होगा पर अंदर जाने पर देखा कि अपने में यह एक अच्छीखासी बस्ती है. इस किले को सम्राट पीटर महान ने बनवाया था. काफी पुरानी इमारतें यहां हैं जो देखभाल की वजह से अब भी दुरुस्त हैं. निकोलस प्रथम को छोड़ कर प्रायः सभी रूसी सम्राटों की समाधियां इस में हैं. कई अच्छे गिरजे भी सम्राटों द्वारा इस में बनवाए गए थे जो आज भी हैं. हम ने संत निकोलस का गिरजा देखा. पुराना होने के बावजूद इस की सुनहरी चमक आज भी शानदार है. युसुवोव महल का वह स्थान भी देखा जहां रासपुतिन की हत्या की गई थी. यहीं हम ने सम्राट पीटर का ग्रीष्म प्रासाद देखा. चारों तरफ कुंज और उपवन हैं, जगहजगह कलापूर्ण प्रस्तरमूर्तियां हैं. जाड़े में इन्हें लकड़ी की पट्टियों से ढक दिया जाता है ताकि पाले और ठंड के कारण चटक न जाएं. मुझे लेनिनग्राद भर में इस प्रासाद से अधिक आकर्षक स्थान दूसरा न लगा.

समय सब कुछ बदल देता है. दिल्ली का लाल किला, जो कभी सल्तनते मुगलिया के शहनशाहों का महल था, उन्हीं के लिए बंदीगृह बना. देश की आजादी के लिए जान देने वाले आजाद हिंद फौज के सिपाहियों का मुकदमा भी यहीं पर हुआ. इसी तरह संत पीटर और पाल के किले ने जारशाही के नजारे देखे और उन्हीं के लिए यह कारागार भी बना. पीटर प्रथम के शासन काल से यह अत्याचार और हत्या का प्रधान केंद्र बना रहा. लगभग दो सौ वर्षों में यहां न जाने कितने लोग जीतेजी गाड़ दिए गए, कठोर यंत्रणा देदे कर मार डाले गए या इस की सड़ी बदबूदार अंधेरी कोठरियों में पड़ेपड़े पागल हो गए. रूस के बड़ेबड़े क्रांतिकारियों को यहां कारावास का दंड मिला. प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक दास्तोवस्की को यहीं कोठरी में बंद किया गया था.

किला देख कर हम लेनिनग्राद का स्टेडियम देखने निकले. रास्ते में एक मसजिद भी देखने को मिली. ईसाई प्रधान अंचल में मसजिद का होना विस्मयकारी था, खास तौर से इसलिए कि रूस में धर्म को महत्त्व नहीं दिया जाता है. पूछने पर पता चला कि रूस में ईसाइयों के बाद मुसलमानों की संख्या सब से ज्यादा है. सोवियत देश के एशियाई क्षेत्र के कई राज्यों में तो मुसलमानों की संख्या अधिक है ही, यूरोपीय अंचल के जार्जिया और आरमेनिया आदि इलाकों में भी इन की संख्या काफी है. लेनिनग्राद जारों के समय राजधानी थी और अब भी यहां काफी संख्या में मुसलमान आतेजाते रहते हैं, इसलिए यहां मसजिद में जुमे के दिन काफी चहलपहल रहती है.

इन के अलावा यहूदी और बौद्ध भी सोवियत देश में हैं. इन दिनों रूस में लगभग ढाई लाख यहूदी हैं. बौद्ध बहुत कम हैं पर मध्य एशिया में इन की संख्या काफी है. एक समय था जब अफगानिस्तान की सीमा से ले कर चीनसागर तक बौद्धविहार जगहजगह बने थे. इस्लाम के अभ्युदय के साथ ही बौद्ध का पराभव हुआ. आज भी इन के अवशेष यत्रतत्र मिल जाते हैं.

रूस में यहूदियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है. जरमन नाजियों की तरह उन पर कठोर अत्याचार भले ही न किए गए हों पर इन्हें नाना प्रकार से हतोत्साहित किया जाता रहा है और अब भी यही सिलसिला जारी है. इस के कारण का सही अनुमान लगाना कठिन है. शायद संयुक्त अरब राष्ट्रों की तुष्टि के लिए यहूदियों से तनाव बनाए रखना आवश्यक समझा जाता हो. रूस वालों की यह भी धारणा है कि यहूदी एक अंतर्राष्ट्रीय कौम रही है पर अब इजरायल इन का अलग राष्ट्र बन गया है. ऐसी स्थिति में इन की वफादारी अन्य देशों के प्रति नहीं हो सकती है, इसी लिए इन पर विश्वास कम किया जाता है. यों तो सोवियत सेना और सरकार में ऊंचे पदों पर यहूदी भी हैं पर धीरेधीरे ये हटाए जा रहे हैं.

स्टेडियम शहर से लगभग छःसात मील दूर है. इस में दाखिल होने के पहले एक प्रवेश पत्र दिखाना पड़ा. मिस्टर जोन ने इस के लिए पहले ही प्रबंध कर दिया था. स्टेडियम देख कर अनुमान होता है कि सोवियत जनता और सरकार दोनों का उत्साह खेलकूद के प्रति काफी है. खेलकूद को यहां के लोग राष्ट्रीय महत्त्व देते हैं और विदेशों से प्रतियोगिता में आगे बढ़े रहने का प्रयास करते हैं. एक पृथक मंत्रीपरिषद की देखरेख में खेलकूद का प्रबंध होता है. सोवियत संघ में दो खेल बहुत ही जनप्रिय हैं—मैदान में फुटबाल और घर में शतरंज. अन्य यूरोपीय देशों की तरह यहां गोलफ के प्रति रुचि नहीं है. सारे देश में अच्छेअच्छे क्लब हैं. पता चला इन क्लबों में लगभग तीस लाख अच्छी श्रेणी के खिलाड़ी हैं. सरकार की ओर से इन के खानेपीने और रोजगार की विशेष व्यवस्था की गई है.

स्टेडियम के बाद मिस्टर जोन हमें ओरिएंटल इंस्टीच्यूट में ले गए. भारत में हमें एक बार राहुलजी ने बताया था कि यह रूस में प्राच्य विद्या तथा संस्कृति के अध्ययन का केंद्र है. भारत की लगभग सभी भाषाओं के शीर्ष लेखकों की चुनी
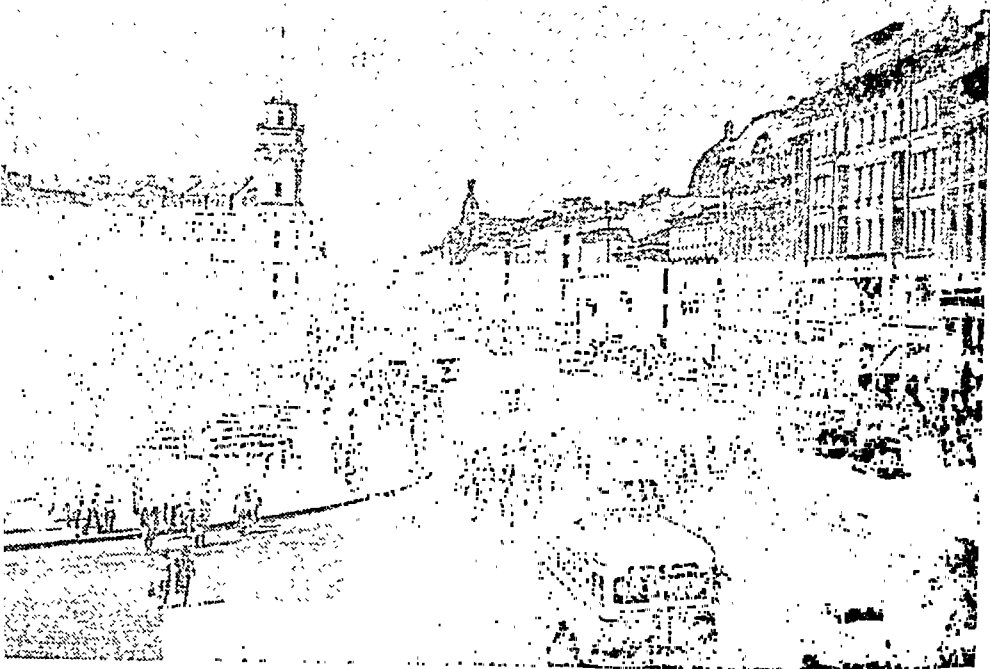
लेनिनग्राद की नावोस्की प्रास्पेक्ट की खूबसूरती देखते ही बनती है

हुई कृतियों का रूसी में यहां अनुवाद होता है. हम ने दिवंगत बारान्निकोव द्वारा तुलसी के 'रामचरितमानस' का अनूदित संस्करण देखा. यहां हमें हिंदी भाषी रूसी भी मिले. मुझे ऐसा लगा कि रूस की जनता भले ही द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रति अधिक आस्था रखती हो, क्योंकि साम्यवादी सरकार ने उस के विचारों को इसी दिशा में मोड़ दिया है, फिर भी भारतीय चिंतन के प्रति उस की जिज्ञासा है. अच्छा होता यदि हमारे यहां भी प्रयास किया गया होता कि हम विदेशों में अपनी संस्कृति और साहित्य का प्रसारप्रचार बढ़ाएं. हमारे बड़ेबड़े मठाधीश, जिन के पास प्रचुर संपत्ति और साधन हैं, यदि भारतीय संस्कृति के प्रचार में थोड़ी सी भी रुचि लें तो न केवल हमारी राजनीतिक मर्यादा पुष्ट होगी, बल्कि दूसरे देशों से हमारा मैत्री-संबंध भी अधिक बढ़ेगा. कम से कम पूर्वी एशिया और रूस के साथ तो निश्चित रूप से.

ओरिएंटल इंस्टीच्यूट में संस्कृत, पाली, हिंदी, तमिल, बंगला आदि भाषाओं के अच्छेअच्छे ग्रंथों के अनुवाद हो रहे हैं.

रात हो आई थी. हम बंदरगाह की ओर गए. जून का महीना था पर हमें सर्दी लग रही थी. बंदरगाह के किनारे बहुत से मल्लाह युवतियों के साथ प्रेमालाप में तल्लीन थे. इस ढंग के दृश्य हम ने मास्को में नहीं देखे थे. हम ने मिस्टर जोन से कहा, "रूस में तो इन बातों को प्रोत्साहन नहीं मिलता, फिर यहां यह सब कैसे?" उन्होंने जवाब दिया, "यह दृश्य आप को अजीब सा लगता है पर भूख की पूर्ति तो करनी ही पड़ती है, चाहे वह पेट की हो या सेक्स की. ये मल्लाह महीनों घर से दूर रहते हैं इसलिए जहाज से उतरने पर इन का सब से पहला काम होता है—साथी ढूंढ़ कर मौजमस्ती में डूब जाना. सभी

देशों में ऐसा होता है. हांगकांग, सिंगापुर, मार्सलीज, पोर्टस्माउथ आदि में इसी ढंग के दृश्य देखने में आते हैं." हम ने कहा, "पर बंबई, मद्रास, कलकत्ता में नहीं."

रात्रि के लगभग बारह बजे हम होटल वापस आ गए. इस समय भी कुछकुछ प्रकाश था. मिस्टर जोन ने हमारे साथ काफी पी और अगले दिन का कार्यक्रम निश्चित कर विदा ली. चलतेचलते हंसते हुए कह गए, "चिवड़े और बरफी तैयार रखें!"

हमारे विशेष आग्रह पर दूसरे दिन सुबह मिस्टर जोन स्वीडिश दूतावास के अपने एक मित्र को साथ ले आए. हमारा परिचय कराते हुए उन्होंने मित्र से कहा कि वह बिना संकोच अथवा दुविधा के रूस संबंधी प्रश्नों के बारे में हमें बता सकते हैं, क्योंकि हम केवल जिज्ञासु हैं, हमारा उद्देश्य रूस अथवा साम्यवाद के विरोध में प्रचार करना नहीं है.

हम यह जानना चाहते थे कि रूस की जनता ने एकाएक इस प्रकार रक्त-क्रांति को कैसे स्वीकार कर लिया? फ्रांस में भी क्रांति हुई, इंगलैंड में भी, पर वहां तो परिस्थिति इतनी जल्दी नहीं बदली!

उत्तर में हमें बताया गया कि यहां की जनता अशिक्षित थी और जारों के अत्याचार, सामंतवादी शोषण और धर्माचार्यों के पाखंड के कारण आर्थिक व्यवस्था इतनी असंतुलित रही कि उस से छुटकारा पाने का अन्य कोई उपाय समझ में नहीं आया. लोग किसी भी मूल्य पर परिवर्तन चाहते थे और इसीलिए क्रांति को उन्होंने स्वीकार किया. यदि उन्हें यह अनुमान होता कि क्रांति के कारण उन का व्यक्तित्व नष्ट हो जाएगा तो शायद वे साम्यवादी व्यवस्था को स्वीकार नहीं करते. जो भी हो, जारशाही का अंत कर के यहां प्रजातंत्रवादी सरकार बनी. पर १५ वर्ष बाद स्तालिन के शासन में उस का रूप अधिनायकवादी हो गया. मार्क्स का नाम केवल प्रचार के लिए ही रह गया.

स्तालिन ने भी वही किया जो पीटर और निकोलस करते थे. जनता में भीतर ही भीतर असंतोष फैला, पर उस के जीवनकाल में उस के रोबदाब के सामने किसी प्रकार का विद्रोह अथवा विरोध न हुआ. स्तालिन की मृत्यु के बाद इस असंतोष का सब से अधिक लाभ उठाया ख्रुश्चेव ने. उस ने जनता को बताया कि स्तालिन ने तानाशाही चलाई जो मार्क्सवाद के प्रतिकूल है. इस प्रकार के प्रचार से उस ने अपनी शक्ति बढ़ा ली.

इस प्रसंग में मैं ने उन से पूछा, "यह बात कहां तक सच है कि स्तालिन की हत्या की गई?"

उन्होंने कहा कि संदेह लोगों में है पर निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता. स्तालिन की मृत्यु किस प्रकार हुई, इस पर उन्होंने जो कुछ बताया, यह हमारे लिए एक नई जानकारी थी.

अपनी बात की पुष्टि के लिए उन्होंने एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाचारपत्र में प्रकाशित घटना का उल्लेख किया. घटना इस प्रकार है कि स्तालिन की तानाशाही
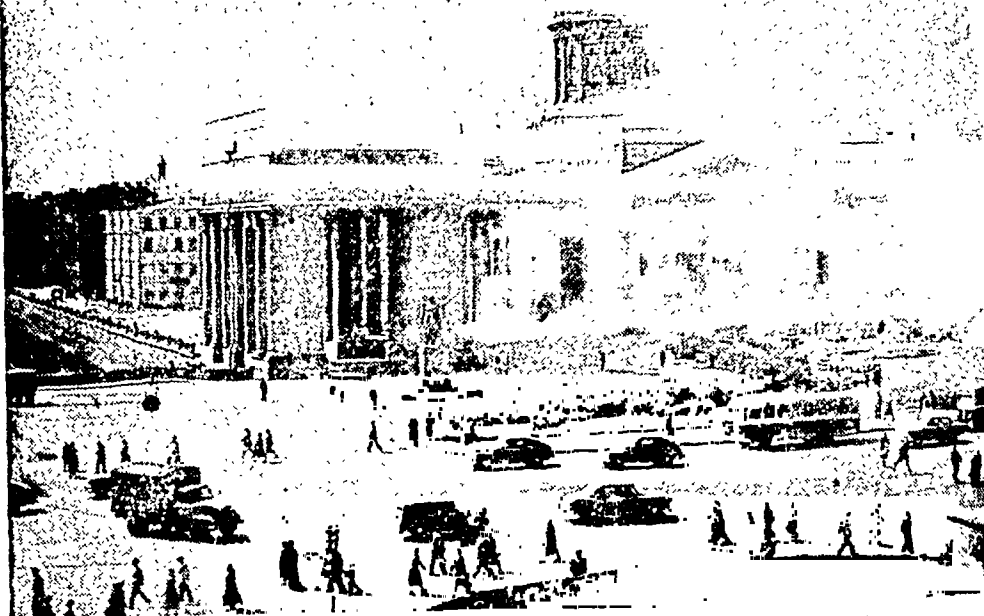
पुराना काजान गिरजाघर, जिस को इतिहास संबंधी संग्रहालय में बदल दिया गया है

का विरोध वोरोशिलोव ने किया. अपनी सेवाओं के कारण उस का प्रभाव और व्यक्तित्व रूसी नेताओं में स्तालिन से कम नहीं था. दोनों में विवाद और विरोध भीतर ही भीतर बढ़ता जा रहा था. उन्हीं दिनों रूसी प्रेसीडियम के समस्त सदस्यों की चिकित्सा का भार नौ प्रसिद्ध यहूदी डाक्टरों को सौंपा गया था. स्तालिन ने जनवरी १९५३ में चिकित्सकों को यह कह कर गिरफ्तार करा लिया कि इन्होंने सदस्यों की हत्या करने की योजना बनाई. दो डाक्टरों को तो इस बुरी तरह पीटा गया कि वे मर गए. दरअसल दोष बेबुनियाद था किंतु स्तालिन यहूदियों में आतंक की सृष्टि कर के उन्हें सुदूर साइबेरिया में बसाना चाहता था ताकि वे किसी से संपर्क न रख सकें. वोरोशिलोव ने एक बैठक में इस का विरोध खुले रूप से किया. मोलोतोव और कागनोविच भी उस के मन के थे, पर उन में विरोध करने का साहस नहीं था. वोरोशिलोव ने प्रेसीडियम की एक बैठक में अपनी जेब से सदस्यता का कार्ड निकालकर मेज पर फेंकते हुए कहा, "यदि बेकसूरों के प्रति इस ढंग की काररवाई की गई तो कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बने रहना मेरे लिए लज्जा की बात होगी." स्तालिन क्रोध से तमतमा उठा. उस ने वोरोशिलोव को डपटा, "तुम कौन हो सदस्य बनने या छोड़ने वाले! यह तो मैं हूं जो निर्णय करूंगा कि तुम्हें सदस्य बनाए रखा जाए या निकाल दिया जाए."

इस पर कुछ फुसफुसाहट हुई. लेकिन जब उपस्थित सदस्यों की नजर स्तालिन पर पड़ी तो उन्होंने देखा कि वह कुरसी से लुढ़क चुका है और फर्श पर औंधा पड़ा है. बेरिया, जिसे बाद में ख्रुश्चेव ने मरवा दिया था, खुशी से नाच उठा. कहने लगा, "आखिर हम आजाद हुए."

इसी बीच स्तालिन की लड़की स्वेतलाना खबर पा कर घटना स्थल पर आ

गई. उस ने पिता के सिर को उठा कर गोद में रख लिया. स्तालिन के शरीर में अब भी गरमी थी, पर वह कुछ बोल न पाया. यह बेहोशी उस की मौत तक बनी रही.

यह सही है कि स्तालिन ने तानाशाही की और अपने को पुजवाया, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उस ने रूस को सशक्त बनाया और संसार के अग्रणी राष्ट्रों में प्रतिष्ठित किया.

१९२८ के बाद रूस ने पंचवर्षीय योजनाएं शुरू कीं. आशानुकूल इन में सफलता नहीं मिल सकी, फिर भी एक पिछड़े हुए विशाल देश के विकास के लिए इस के सिवा अधिक सुविधाजनक रास्ता और हो भी क्या सकता था? आज खाद्यान्न और खनिज पदार्थों में रूस स्वावलंबी है. फौजी सामान और आणविक शक्ति में उस के प्रतिद्वंद्वी इंगलैंड, फ्रांस और जरमनी नहीं हैं. उस का प्रतिद्वंद्वी है अमरीका, जब कि अमरीका का वार्षिक बजट रूस से कहीं बढ़ाचढ़ा है.

शिक्षा में रूस ने आशातीत प्रगति की है. तीन दशकों में ३० प्रति शत से बढ़ा कर ९९ प्रति शत लोगों को शिक्षित बना देना मामूली बात नहीं.

विश्व की सब से बड़ी जनसंख्या वाले किंतु गिरे हुए राष्ट्र चीन को भी रूस ने उठाया और शक्तिशाली बनाया. अपने अनुभवी फौजी अफसर और इंजीनियरों को वहां भेज कर रूस ने चीनियों को तैयार किया. आज वही चीन रूस विरोधी बन गया है. रूसी भी सावधान हो चुके हैं. युगोस्लाविया के प्रेसिडेंट टीटो के विरोध को सोवियतवासियों ने सह लिया है पर चीन के प्रति ऐसी भावना नहीं रहेगी. रूस और चीन के बिगड़ते संबंध इस ओर स्पष्ट संकेत करते हैं. रूस वालों की धारणा है कि चीनियों के समान एहसानफरामोश और धोखेबाज विश्व में शायद ही कहीं हों. मैं ने हंस कर कहा, "हम तो इस के भुक्तभोगी हैं, हम से ज्यादा इस तथ्य को कौन जानता है!" फिर पूछा, "दोनों ही मार्क्स के सिद्धांत को मानते हैं, दोनों ही साम्यवादी हैं, फिर यह असाम्य क्यों?"

वह कहने लगे, "सब से बड़ा वाद स्वार्थवाद है, इसे न भूलना चाहिए. मनुष्य के जन्मकाल से यह उस के साथ जुड़ा हुआ है और सुविधानुसार समयसमय पर इस के नामकरण होते रहते हैं." हम सभी हंस पड़े. वह कहने लगे, "साम्यवादी देश जनता को भुलाने के लिए मार्क्सवाद का नाम अपनेअपने ढंग और तरीके से लेते रहते हैं, अन्यथा हैं ये सभी एकदूसरे से दूर. मार्क्स ने १८६७ में जब 'कैपिटल' लिखा था तो उस समय स्थिति दूसरी थी. उद्योगधंधों की शुरुआत थी, मजदूरों का शोषण खूब होता था. प्रति दिन बारह से सोलह घंटे तक उन्हें काम करना पड़ता था और समाज में बहुत बड़ी विषमता थी. पर समय के साथसाथ मान्यताएं बदलती गईं. श्रमिकों की सुखसुविधा का ध्यान, स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से ही नहीं, सभी जगह आवश्यक समझा गया चाहे वह पूंजीवादी व्यवस्था हो या साम्यवादी. इस समय यदि मार्क्स जिंदा होता तो शायद उसे कैपिटल लिखने की जरूरत नहीं होती क्योंकि इन सौ वर्षों में उस के विचारों के विरोधी देशों में मजदूरों या किसानों की दशा कम उन्नत नहीं हुई है. यदि स्वीडन, अमरीका, पश्चिमी जरमनी और स्विट्जरलैंड को एक पलड़े पर रखा जाए और दूसरे पर रूस, पोलैंड, चीन, पूर्वी

लेनिनग्राद का भव्य म्यूजियम 'एडमिरल्टी' व एक पुरानी मसजिद

जरमनी को तो इस कथन की सच्चाई का अंदाज मिल जाएगा.

५६-५७ में हंगरी में जिस नृशंसता से लाखों व्यक्तियों की हत्या की गई थी, उस के सिलसिले में उन्होंने बताया कि साम्यवादी सिर्फ यह मानते हैं कि सिद्धांत के आगे व्यक्ति का जीवन कोई भी मूल्य नहीं रखता. यदि हंगरी का विद्रोह सफल हो जाता तो फिर सोवियत गुट के अन्य देश भी सिर उठाते और तब रूस की सत्ता की साख घट जाती. इसी लिए मानअपमान या आलोचना की परवाह किए बिना कठोरता से दमन किया गया. राजनीति का उन का यह प्रयोग अब तक सफल रहा है. लोग उंगलियां भले ही उठा लें पर सिर नहीं उठा सकते.

हमें जितनी जानकारी यहां दो दिनों में मिली, मास्को में पांच दिन तक रह कर भी पा न सके थे. हम चाहते थे उन से और प्रश्न पूछें, पर ऐसा संभव न हुआ. समय उन के पास था नहीं और हमें भी अपने अगले कार्यक्रम के लिए तैयार होना था. शाम के प्लेन से हमें फिनलैंड की राजधानी हेलसिंकी जाना था. इसलिए दिन भर में जितना कुछ संभव था, देख लेना चाहते थे.

यों तो लेनिनग्राद में ४८ म्यूज़ियम हैं पर हम इनसे बड़ेबड़े म्युजियम अब तक देख चुके थे, इसलिए हम उन में नहीं गए. फिर भी हम ने प्राकृतिक इतिहास के संग्रहालय को देखा. इस की तारीफ मास्को में हम ने सुनी थी. प्रागैतिहासिक काल से आज तक की वस्तुओं का संग्रह बड़े करीने से यहां है. हम यहां दस हजार वर्ष पहले का एक हाथी देखा जिसे एक शिकारी ने साइबेरिया में बर्फ के नीचे ढका पाया था. वहां से इसे टुकड़ेटुकड़े कर के लाया गया और बाद में जोड़ कर यहां रख दिया गया. हजारों वर्ष पहले किस प्रकार मनुष्य और पशु साथसाथ रहते थे, किस प्रकार मानव समाज ने विकास किया, इन्हें क्रमबद्ध रूप

से माडलों द्वारा यहां दिखाया गया है.

नौसेना का म्यूजियम भी हम ने देखा. इसे 'एडमिरल्टी' कहते हैं. यह भवन आधा मील लंबा है. इसे रूसी सम्राटों ने बनवाया था. यद्यपि रूसी नौसेना की शक्ति कभी भी उल्लेखनीय नहीं रही पर जारों को बड़े और विशाल भवन बनाने का शौक था इसलिए यह भवन बना. आज भी रूसी नौशक्ति प्रथम पंक्ति में नहीं है. म्यूजियम में हम ने पुरानेपुराने हथियार, जहाजों के माडल और विभिन्न युगों में बने नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्र देखे.

हमें बताया गया था कि यदि रूसी कला का निखार देखना हो तो लेनिनग्राद के किसी थियेटर, विशेषतया किरोव को तो जरूर देखा जाए. हमें शाम को ही लेनिनग्राद छोड़ना था इसलिए इच्छा मन में ही रह गई.

लेनिनग्राद में कई तरह के बड़ेबड़े कारखाने हैं. इन में कई तो रूस में सब से बड़े माने जाते हैं. इन में से एक में हम गए. जो बिजली के पंखे बनाने का कारखाना था. अनुशासन और प्रबंध का परिचय तो हमें मास्को में ही मिल चुका था. इस में करीब दस हजार मजदूर हैं और इंजीनियर हैं लगभग ढाई हजार. जब हम ने प्रश्न किया कि आखिर ढाई हजार इंजीनियर यहां क्या करते हैं तो उत्तर मिला, "सुदक्ष स्नातक (ग्रेजुएट) भी यहां साधारण मजदूरी करते हैं ताकि सभी तरह के काम की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त कर सकें."

लेनिनग्राद से चलते समय इस की यादगार के तौर पर हम कुछ ले जाना चाहते थे. मैं ने एक फरदार मफलर खरीदा. दाम बहुत ज्यादा था. हमारे पास रूसी रूबल बच गए थे इसलिए खरीद लिया. थोड़े से भारतीय रुपए देने लगा तो दुकानदार ने लेना अस्वीकार कर दिया. हां, अमरीकी डालर लेने को वह तैयार था. हम ने मिस्टर जोन की मारफत कहा, "भारत तो आप का मित्र देश है, फिर भी हमारे सिक्के से ज्यादा आप अमरीकी सिक्के को मान्यता देते हैं, यह बात समझ में नहीं आती."

बड़ा रोचक उत्तर मिला, "दोस्ती और सिक्के की कीमत अलगअलग है."

ध्यान आया कि दस वर्ष पहले जब यूरोप आया था, उस समय हमारे सिक्के की साख थी—दूसरे सिक्कों के मुकाबले हाथोंहाथ चलता था. स्पष्ट था कि हम ने असंतुलित ढंग से अपनी योजनाएं बनाई हैं.

फर (रोएं) के बारे में हमें बताया गया कि साइबेरिया में छोटे चूहे जैसा एक जानवर पाया जाता है, उसी की खाल से यह बनता है. फर से मफलर के अलावा कोट भी तैयार होता है जिसे 'सेबर' या 'मिंक कोट' कहते हैं. उम्दा किस्म के एक कोट की कीमत पांच लाख रुपए तक होती है. हमारे पास न तो ऐसे कोट खरीदने के लिए रुपए ही थे और न इच्छा ही. पहले इस बात का पता होता तो दुकानदार से पूछ कर कम से कम इन कोटों को देखते जरूर और अगर वह मंजूरी दे देता तो हाथ से छूते भी.

हमारे बहुतेरा मना करने पर भी मिस्टर जोन एयरपोर्ट पर हमें छोड़ने के लिए आए और विदा कर ही वापस गए. उन के स्नेहपूर्ण व्यवहार से हमें लगा कि पूर्वजन्म संबंधी हमारी धारणाओं में शायद कुछ तत्व है, अन्यथा कुछ दिन की मामूली सी जानपहचान में इतना स्नेह और अपनापन कैसे संभव हो सका.

उन का कार्ड आज भी सुरक्षित है और उन से फिर से मिलने की भी बात थी पर दोनों ही पक्ष जानते थे कि शायद यह संभव नहीं होगा. विदाई के समय हम लोगों की आंखें गीली थीं. वायुयान में बैठा सोचने लगा, 'जीवन में न जाने कितने क्षण ऐसे आते हैं जिन की पुनरावृत्ति होती नहीं पर उन की अमिट छाप हृदय और मस्तिष्क पर रह जाती है.'

सन १९५० में अपनी ग्रीस यात्रा में मिस्टर निगानी की पुत्रशोकाकुल पत्नी के साथ बिताए आधे घंटे की याद अनायास ताजा हो उठी.

पिरामिडों के देश में

रेगिस्तान की अमृत धारा के बीच में

पश्चिमी यूरोप के बाद यूनान भी देख चुका था. अब देखना था मिस्र—पिरामिडों का देश. ठीक भी यही लगा, क्योंकि इतिहास के अरुणोदय काल में ही, यूनान की भांति नील की घाटी में भी मानव सभ्यता की एक धारा प्रवाहित हुई थी, जिसे मिस्र सभ्यता कहते हैं. यूनान, बेबीलोन और सिंधु घाटी की प्राचीनतम सभ्यताओं की भांति ही इस की महिमा और गरिमा भी विकसित होती चली गई थी. और अब इस के अवशेष बताते हैं कि भौतिक उन्नति में भी यह अपनी समकालीन सभ्यताओं से किसी कदर कम न थी.

मिस्र जाना पहले से तय था. एथेंस में सभी काम निपटा कर हवाई अड्डे पर पहुंचा. मई का महीना था, मौसम साफ था.

दो घंटे में यूनान से मिस्र, खयाल आया, आज से ५,००० वर्ष पूर्व कितना समय लगता होगा? अपने विजयोन्माद में चूर, आंधी की तेजी से बढ़ता हुआ सिकंदर भी कितने दिनों में मिस्र तक पहुंच पाया होगा?

ध्यान भंग हुआ. विमान की परिचारिका कह रही थी, "काहिरा आ रहा है और अब हम नीचे उतरेंगे."

विमान ने मिस्र की धरती का स्पर्श किया. उस समय रात के साढ़े बारह बज रहे थे. चुंगी अफसरों के घेरे से बाहर निकला हमें 'टी. डब्लू. ए.' (ट्रांस वर्ल्ड एयरवेज) की बस ने नगर में अपने पूर्व निश्चित स्थान 'विक्टोरिया होटल' पहुंचा दिया.

होटल यूरोपीय ढंग का था—साफ और आरामदेह—लेकिन दिल्ली के 'अशोक' और 'इंपीरियल' के मुकाबले का नहीं. बिस्तर पर पीठ सीधी करते ही नींद आ गई.

सुबह उठा. दिन चढ़ आया था. आठ बजे थे. गरमी ने बता दिया कि यह अफ्रीका है और सहारा का रेगिस्तान यहां से दूर नहीं. नित्य कर्म से निपट कर होटल से निकला.

रास्ते और बाजार बहुत कुछ पुरानी दिल्ली और कलकत्ता की 'मारक्विस स्ट्रीट' की तरह थे. रोमन और अरबी लिपि में लिखे साइनबोर्ड और अधिकांश लोग ताम्रवर्ण के तथा लंबेचौड़े थे. उन्हें देख कर लगा कि विगत सदियों में अरब और अफ्रीका का संगमस्थल रहा होगा. उन का पहनावा भी अरबों का सा था.

लंबे चौगे, अमामे, ढीले पायजामे और ऊंची लाल टोपी. किसीकिसी की टोपी के चारों ओर फेंटा भी बंधा हुआ था. बातचीत के तौरतरीके भी बहुत कुछ अपने यहां की तरह थे. बुरकों में औरतें, मसजिद, मुल्ले-मौलवी और शेख—वातावरण अपरिचित नहीं लगता था, शायद इसी लिए कि करीब नौ सौ वर्षों तक भारत पर भी इस्लाम का प्रभुत्व रहा है.

चीजों की सजावट में भी बहुत अपनापन सा था. एक जगह देखा, तरबूज के भुने हुए बीज और नमकीन चने रखे हुए थे. एक जगह बड़े तरबूज की रसदार फांकें भी सजी थीं. पेट भर चने और बीज खाए, फिर ऊपर से तरबूज. तृप्ति महसूस हुई. याद आया राजस्थान में बाजरे के सिट्टे खा कर मतीरे का पानी पीना.

शहर के मकान विशेष आकर्षक नहीं लगे. वास्तुकता की दृष्टि से ये हमारे यहां से अच्छे नहीं हैं. नए मकान यूरोपीय ढंग के थे. मुहम्मद अली की मसजिद बड़ी तो जरूर है पर दिल्ली की जामा मसजिद और अजमेर की दरगाह शरीफ की विशालता और शान कुछ और ही है.

गरमी सता रही थी. नहाना चाहता था. सोचा कि नील ही में क्यों न नहाऊं! और चल पड़ा. नील थोड़ी ही दूरी पर थी. तौलिए में कपड़े लपेट कर किनारे रखे और जांघिया पहने नदी में उतरा. अब तक देश के बाहर इस प्रकार खुल कर नहाने का अवसर नहीं मिला था. आनंद आ गया. लगा गंगा में स्नान कर रहा हूं. तैरने के लिए हाथ चलाए ही थे कि पास ही से आवाज आई. "अच्छी तरह तैरना तो जानते ही होंगे?"

देखा—पास ही एक बुजुर्ग स्नान कर रहे थे. गेहुआं रंग, स्वस्थ शरीर, हलकी दाढ़ी और ऊपर की ओंठ पर बारीक मूंछें. मैं ने मुसकरा कर कहा, "जी, हां, तैर लेता हूं."

"कैसा लगा हमारा देश?" सवाल अंगरेजी में पूछा गया.

"अभी कुछ देख नहीं पाया, कल रात ही आया हूं," मैं ने कहा.

'हमारा देश' सुन कर कुछ ताज्जुब हुआ था, इसलिए मैं पूछ ही तो बैठा, "माफ कीजिए, क्या आप यहीं के हैं?"

उन्होंने हंस कर उत्तर दिया, "जी हां, क्या मेरी अंगरेजी की वजह से आप मुझे कहीं और का समझ रहे हैं? फ्रेंच, इतालियन और जर्मन बोलने वाले भी आप को यहां मिल जाएंगे."

मैं ने कहा, "मेरा खयाल था कि मिस्रवासी ताम्रवर्ण के होते हैं, मगर आप . . . आप . . . "

वह कहने लगे, "आप का अनुमान सही है, पर पूरी तरह से नहीं. हमारे देश का उत्तरी भाग अरब और यूरोप के समीप है, इसलिए दक्षिण की अपेक्षा यहां वालों का रंग आप को साफ मिलेगा. इस के अलावा कुछ अरब, तुर्क, यहूदी, यूनानी और इतालियन भूमध्यसागरीय तट पर सैकड़ों वर्षों से बसे हुए हैं. उन की मिश्रित संतानें अपनी सुंदरता के लिए संसार में बेजोड़ हैं."

बातचीत में मजा आ रहा था. मैं ने कहा, "बचपन में पढ़ा था कि मिस्र नील की देन है. इसी लिए नील के प्रति आप लोगों के हृदय में बड़ी श्रद्धा है.
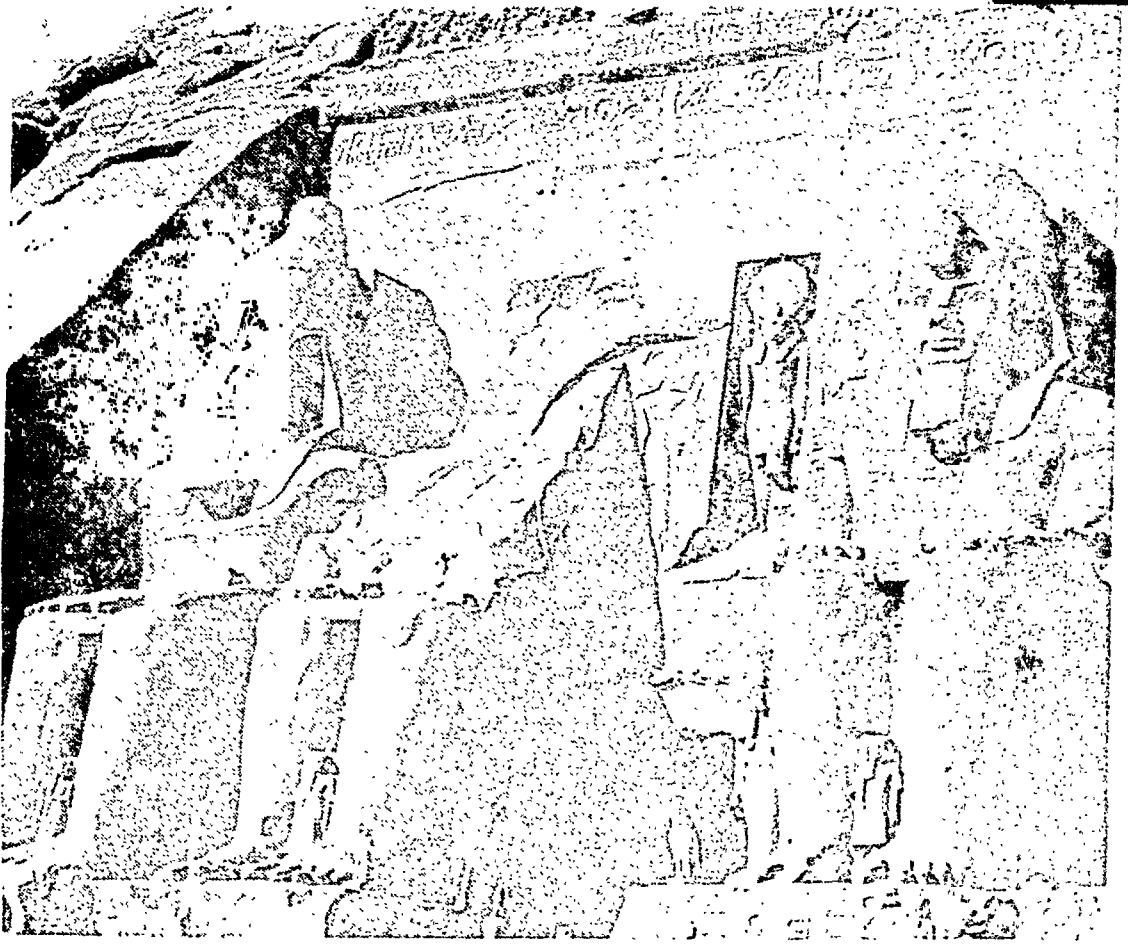
अबू सिंबल, सिवुआ के मंदिर, जो अब अस्वान बांध के पानी में जलमग्न होने से बचाए जा रहे हैं

आज मैं ने अपनी स्नान की हुई पवित्र नदियों की संख्या में एक और बढ़ा ली है."

मिस्री बुजुर्ग ने कहा, "जनाब, हमारे लिए तो यह आबे हयात है. हमारा संपूर्ण देश रेगिस्तान है. पश्चिम में लीबिया से गरम रेत की आंधियां आती हैं और पूर्व में अरब का रेगिस्तान है. बस बीच में यह अमृत की धारा मौजूद है. यह इथोपिया के पठारों से उपजाऊ मिट्टी ला कर अपने किनारों पर जमा करती जा रही है. इसी में खेती कर के हम कुछ अन्न उपजा लेते हैं. हम यहां विश्व की सर्वोत्तम रुई पैदा कर, उसे अन्य देशों को निर्यात कर के अपनी आर्थिक दशा संभाले हुए हैं. वरना न तो हमारे पास अच्छे उद्योग धंधे हैं और न खनिज पदार्थ ही. हमारे यहां ८० प्रति शत लोग नील के किनारे खेती कर के जीवनयापन करते हैं. शेष २० प्रति शत शहरों में रहते हैं. शहर भी इसी पट्टी के दोनों किनारों पर हैं. मिस्र में नील भी खुदा की तरह एक ही है," कह कर वह हंसने लगे.

देर तक नहाने के बाद हम बाहर निकले. उन्होंने कपड़े पहनते हुए कहा, "चलिए काफी पीएं, सामने कहवाघर है."

मिस्र में चाय की जगह काफी पीने का प्रचलन है.

कहवाघर हमारे यहां के मद्रासी रेस्तरां की तरह था. कमरे की दीवार पर प्रेसीडेंट नासर और मक्का शरीफ के चित्र कुरान शरीफ की सचित्र आयतें

और कुछ कलैंडर टंगे थे. हम एक छोटी टेबल के किनारे बैठ गए.

मैं ने पूछा, "हलकी मंगाऊं या कड़ी?" उन्होंने सहज मुसकान के साथ कहा, "अपनी ओर से मंगाने की बात भारत में आप मुझ से कर सकते हैं, यहां तो मैं ही आप से पूछूंगा."

काफी बुरी नहीं थी. उन्होंने बड़े ही उत्साह से अपने देश के बारे में जानकारी दी. मुझे ऐसा लगा कि वास्तव में मिस्र को दक्षिण से उत्तर तक देखने के लिए कम से कम दस दिन का समय चाहिए. इसी प्रसंग में मैं ने कहा, "अगर आप बुरा न मानें तो एक बात पूछूं?"

"शौक से पूछिए."

मैं ने कहा, "पेरिस में शाह फारूख के बारे में कुछ ऐसी चर्चा सुनी कि दुनिया के हर कोने की सुंदरियों का एक बड़ा मजमा इन के हरम में था, जिस पर करोड़ों रुपए सालाना खर्च किए जाते थे. इन की ऐयाशी और इन के अजीबोगरीब शौकों पर इसी तरह मिस्र की बेशुमार दौलत बरबाद होती थी. इसे आप के देश ने कैसे बरदाश्त किया?"

बुजुर्ग महोदय ने संजीदगी से कहा, "जनाब, राजा और बादशाह कुवैत, हिंदुस्तान या मिस्र, कहीं के भी हों, जब तक उन के पास निरंकुश सत्ता रहेगी, नतीजा साफ ही है."

इस संक्षिप्त उत्तर से मुझे अपने सवाल का जवाब मिल गया और याद आ गया अपने देश के नवाब और राजाओं के लज्जास्पद, विवेकहीन कारनामें. विदा होते समय बुजुर्ग महोदय ने मेरे हाथ अपने हाथों में ले कर सीने से लगाए.

पीछे मुड़ कर देखा—छोटीछोटी डोंगियां और नावें पाल ताने नील की लहरों में तिर रही थीं. लहरें धूप में चमक रही थीं. याद आ गई भारतेंदु की पंक्ति—नव उज्ज्वल जलधार हीरक सी सोहति.

काहिरा से सात मील दक्षिण में गिजे नामक स्थान है, विश्वविख्यात पिरामिड हैं. बस में बैठ कर उधर ही चल पड़ा. शहर से निकलते ही, गरम रेत और सूखी हवा के थपेड़े लगने लगे. मैं ने सोचा, 'बीच सहारा में तपती रेत की आंधियों में कैसी गुजरती होगी?'

गिजे से पिरामिड डेढ़ मील पर हैं. बस से उतरते ही, गधे और ऊंट वालों ने घेर लिया. गरमी के कारण यात्री बहुत कम थे. इसलिए सभी अपनी ओर खींचातानी कर रहे थे. अंगरेजी, फ्रेंच और इतालियन के टूटेफूटे शब्दों में वे अपनीअपनी सवारी की प्रशंसा कर रहे थे. उन वाक्यों के बीच हिंदी का 'बहुत अश्चा' शब्द सुन कर मुझे सचमुच बहुत अच्छा लगा. मैं उन के मोलभाव से चौकन्ना था, क्योंकि इस विषय में पहले पढ़ चुका था.

सोच रहा था कि गधे पर बैठूं या ऊंट पर? गधे की सवारी में किफायत, ऊंट की सवारी में ज्यादा खर्च. गधों को देखो—कान लटकाए खड़े थे. गधे की सवारी को अपने यहां अच्छी नहीं मानते, लिहाजा सोचा कि रेगिस्तान का जहाज ही उपयुक्त रहेगा. बड़ी हुज्जत के बाद 'अब्दुल' से ऊंट का किराया तय हुआ तीन रुपए. यहां एक बात देखी—जैसे हमारे यहां आमतौर पर हर नेपाली 'बहादुर' है, उसी तरह हर मिस्री 'अब्दुल' है.
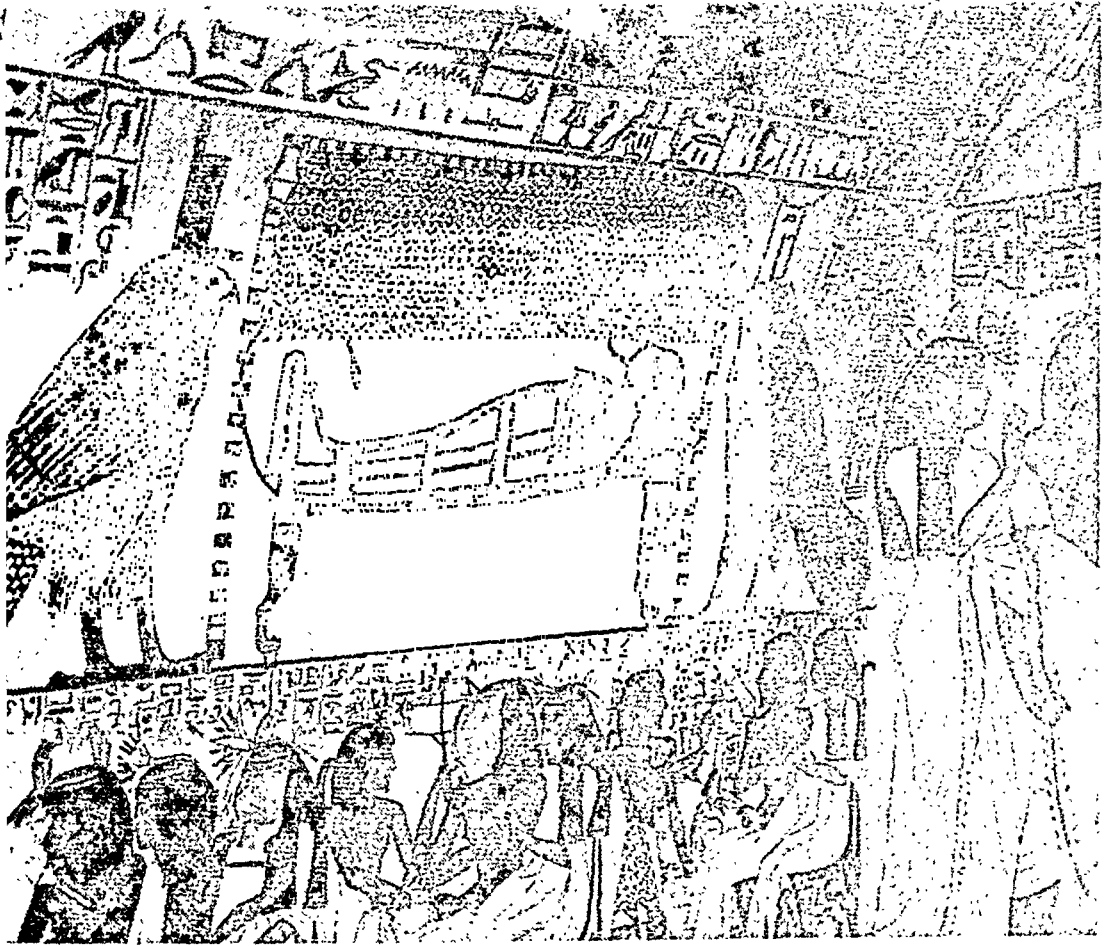
पिरामिडों की दिवारों पर 'ममी' का चित्र

रास्ते में अब्दुल ऊंट की नकेल थामे चला जा रहा था. ऊंट की चाल सुस्त पर अब्दुल की जबान चुस्त थी. टूटीफूटी अंगरेजी में अपनी, अपने खानदान की और अपने ऊंट की तारीफ. कान खड़े हो गए जब मुझे यह बतलाया गया कि मैं उस कमाल पर बैठा हुआ हूं जिस पर सुप्रसिद्ध जर्मन जनरल रोमल बैठ चुका था. इतना ही नहीं, रोमल को हटा कर जब जनरल मांटगोमरी काहिरा आया तो उस ने तमाम ऊंटों में से इसी को पसंद किया था.

"अंगरेज बुरे हों या भले, होते हैं, कद्रदां! वैसे आप के यहां के काश्मीर के महाराजा ने भी इस की चाल से खुश होकर १०० रुपए तो बतौर बख्शीश ही दे दिए थे," अब्दुल ने लखनऊ के इक्के वालों के से अंदाज में कहा.

एक तो सिर पर कड़कड़ाती धूप, दूसरे कमाल की चाल. परेशानी हो रही थी. तिस पर जनाब अब्दुल ने फरमाया, "यह शुक्र समझिए कि आप को उन ठगों से बचाने के लिए मैं ने यों ही तीन रुपए कह दिए, वरना दस से कम में तो मेरा कमाल अपनी नकेल ही नहीं थामने देता."

उस की बकवास पर खीझ तो बहुत आ रही थी, लेकिन बियाबान सहारा में उस दैत्याकार डीलडौल को देख कर चुप कराने के बजाए खुद ही चुप्पी साधे रहने में भलाई समझी.

हाल इंतहा बेहाल हो रहा था, पर पिरामिड के पास पहुंचने पर शांति मिली.

ऐसी समाधियां संसार में अन्यत्र कहीं नहीं हैं. इन का निर्माण प्रायः छः हजार वर्ष पूर्व हुआ था. कितने विशाल हैं ये पिरामिड, इस का अनुमान इस तरह लगाया जा सकता है कि खूफू के पिरामिड में, जो सब से बड़ा पिरामिड है, लगभग ३० लाख टन बड़ीबड़ी शिलाएं लगी हैं. इन का कुल वजन १७ करोड़ मन आंका गया है.

मिस्र के महाराजे इन पिरामिडों को इसलिए बनवाते थे कि मृत्यु के बाद वे इन में समाधिस्थ कर दिए जाएं. शव के साथ उन की प्रिय वस्तुएं—अलंकार, स्वर्णपात्र, राज्यचिह्न, वस्त्रादि—इन में रखे जाते थे. इन में जो ठोस स्वर्ण के बने वजनी किस्म के अलंकार पात्र अथवा राज्यचिह्न हैं, उन को अब मिस्र के राज्य संग्रहालय में रख दिया गया है.

इन की दीवारों पर राजाओं के जीवन की प्रमुख घटनाओं और कीर्ति के चित्र उत्कीर्ण किए जाते थे और उन का वर्णन भी रहता था. पत्थरों पर खोदे हुए चित्रों के साथ कहींकहीं रंग का भी प्रयोग किया गया है. राजाओं का शव रसायनिक लेप लगा कर एक विशेष प्रकार के ताबूत में बंद कर दिया जाता था. इस शवाधार को 'ममी' कहते हैं. इस ताबूत को पत्थर के एक बड़े बक्स में रख दिया जाता था. इस पर राजा की प्रतिमूर्ति, उस का राज्यकाल आदि अंकित कर दिया जाता था. ममी में रखे हुए शव सड़तेगलते न थे. लेप का रासायनिक नस्खा क्या था, इस का पता आज तक नहीं चल पाया है.

पिरामिडों का निर्माण अत्यंत कष्टकर तथा व्ययसाध्य था. हजारों गुलाम बड़ेबड़े पत्थर सैकड़ों मील की दूरी से लंबी रस्सियों से खींच कर लाते थे—दहकती बालू की आंधी में जहां पानी का नाम नहीं. कितनी जानें गई होंगी, यह कल्पनातीत है.

इन के पास ही स्फिक्स की विशाल मूर्ति है, जिस की ऊंचाई १८९ फीट है. इस का सारा शरीर सिंह का परंतु सिर मनुष्य जैसा है. इस ढंग की मूर्ति के बनवाने में राजा की शक्ति और पराक्रम के प्रदर्शन की भावना रहती थी. अपनी कीर्ति और यश को अमिट रखने की आकांक्षा मनुष्य में कितनी अधिक रहती है—पिरामिड, कुतुबमीनार और ताजमहल इसी के तो प्रत्यक्ष प्रमाण और प्रयत्न हैं.

पिरामिड से वापस बस स्टैंड पर आया. दो बज रहे थे. अब्दुल को तीन रुपए देने लगा तो वह झगड़ा करने पर उतारू हो गया. हाथ हिलाते हुए चिल्ला कर कहने लगा, "दस की बात हुई, देते हैं तीन रुपए!"

शोर सुन कर दूसरे ऊंट वाले भी वहां आ गए. आश्चर्य तो यह था कि जाते समय जहां सभी आपस में उलझ रहे थे, अब सब उसी की तरफदारी करने लगे. खैर, किसी प्रकार दूसरे लोगों के बीचबचाव से पांच रुपए में छुट्टी मिली. मैं सोचने लगा कि पूर्वी देशों में हम लोग अपने इस व्यवहार के कारण पर्यटन व्यवस्था को कितनी हानि पहुंचाते हैं और साथ ही विदेशियों की नजरों में अपने राष्ट्र को कितना नीचे गिराते हैं.

गिजे से बस पर बैठ कर शहर लौट रहा था. मन में विचार उठे, 'नील में मिले बुजुर्ग व्यक्ति और ऊंट वाला अब्दुल, दोनों ही तो मिस्र के हैं! शिक्षा और संस्कार मनुष्य को कितना प्रभावित करते हैं! जिस देश में इन बातों पर अधिक

नील नदी 'मिस्र की खुदा'

ध्यान दिया जाएगा, वहां निश्चय ही अब्दुल कम मिलेंगे." खिड़की से बाहर
देख रहा था. पिरामिड ओझल हो चुके थे. कितना श्रम, धन और समय
लगाया गया था इन पर! सदियां गुजर चुकी हैं, जमाना कहां से कहां आ गया है.

शहर आकर नाश्ता किया. संग्रहालय देखने गया. दरवाजों पर गाइडों
ने घेर लिया. मैं ने किसी को साथ नहीं लिया. समय कम रहने के कारण
सरसरी तौर पर यह देखना चाहता था. मिस्र का यह संग्रहालय बहुत बड़ा नहीं
है. संग्रह में भी उतनी विविधता नहीं जितनी कि कलकत्ता म्यूजियम में है. मेरी
दिलचस्पी मिस्र की शिल्पकला, पुरातत्व और इतिहास में थी, इसलिए उन्हीं को
देखने लगा. मिस्र के प्रागैतिहासिक और प्राचीन काल की बहुत सी वस्तुएं देखीं.
लेकिन मैं ने अनुभव किया कि उन की बारीकियां समझना मेरे लिए कठिन था.
अच्छा होता कि 'इजिप्टालोजी' (मिस्र के पुरातत्व की विद्या) का थोड़ा सा ज्ञान
प्राप्त कर लेता या गाइड को साथ ले लेता.

यहीं ममी में रखा हुआ तुतेनखामन का शव देखा. उस की बहुमूल्य वस्तुएं
भी यहीं सुरक्षित हैं. यह सम्राट आज से ३,३०० वर्ष पूर्व हुआ था. धन के लोभ
से पिरामिडों की लूटखसोट सैकड़ों वर्ष तक चलती रही. लेकिन रेत के नीचे
दब जाने के कारण तुतेनखामन का पिरामिड सुरक्षित रह गया. पच्चीकारी की कुछ
वस्तुएं भी इटली में इतनी ही अच्छी हालत में देखने को मिलीं लेकिन वे इन से
१४ शताब्दी के बाद की थीं.

अन्य वस्तुओं में प्राचीन अस्त्रशस्त्र, चित्र, अलंकार, लकड़ी के बक्स इत्यादि की बनावट प्राचीन मिस्रवासियों की परिमार्जित रुचि का परिचय दे रही थीं. ३,३०० वर्ष पहले के सोनेचांदी के कुछ बरतन भी देखे, जो खिले हुए कमल के आकार के थे. इन वस्तुओं को देख कर पता चलता है कि भारत की तरह यहां भी शायद सूर्य, अग्नि, सर्प और गरुड़ की पूजा देवीदेवताओं के रूप में होती थी. रामशेष नामक सम्राट भी यहां हुए थे. ऐसा लगता है कि सुदूर अतीत में हमारे देश से मिस्र का घनिष्ठ संबंध रहा होगा.

संग्रहालय में अस्वान के बांध का एक माडल भी देखा. याद आया कि सुबह एक मिस्री बुजुर्ग ने कहा था कि पर्यटक पिरामिड देखने तो आते हैं पर अस्वान का बांध कोई नहीं देखता. वास्तव में इसी बांध ने मिस्र की काया पलट की है. सचमुच ही यह बांध आधुनिक मिस्र का एक आश्चर्य है. इस का निर्माण १८९८ में आरंभ किया गया और १९०२ में जा कर यह पूरा हुआ था. अब यहां एक अन्य विशाल बांध बन रहा है.

यहीं विश्वविद्यालय के एक प्रोफेसर से भेंट हो गई. उन्होंने कहा, "लगता है, आप की रुचि का विषय है."

मैं ने कहा, "जी हां, आजादी के बाद अब हमारी राष्ट्रीय सरकार ने भी इस ढंग के कई बांध बनाए. लेकिन साथ ही यह भी देख रहा हूं कि नील के पानी को रोक कर इस बांध ने २०० मील की एक कृत्रिम झील तो बना दी है, पर इस में फिले द्वीप अबू सिंबल, सिबुआ के मंदिर इत्यादि पुरातत्व के महत्त्वपूर्ण स्मारक जलमग्न हो गए हैं."

प्रोफेसर ने कहा, "जनाब, अतीत के स्मारकों की रक्षा का मोह हमें भी किसी से कम नहीं, लेकिन वर्तमान की आवश्यकताओं यानी अन्नवस्त्र आदि की उपेक्षा नहीं की जा सकती. अस्वान पर हमें नाज है. यह हमारा पुण्यतीर्थ है, जो सैकड़ों पिरामिडों, दरगाहों और मसजिदों से कहीं पाक है."

सीढ़ियों से उतरता हुआ सोच रहा था, 'अस्वान का बांध या पिरामिड, मिस्र की जनता किसे हृदय से दुआ देती है? सचमुच, किस पर नाज है उसे?'

फिनलैंड

झीलों और द्वीपों का देश

रूस में दस दिन रहने के बाद लेनिनग्राद से हम हेलसिंकी के लिए रवाना हुए. जेट विमान से ४० मिनट की उड़ान है. फासला बहुत कम, फिर भी दूसरा देश तो है ही. राजनीति, भाषा, अर्थव्यवस्था और रहनसहन के तौरतरीके भी भिन्न हैं. हमारे दूसरे साथी मास्को में रह गए, इसलिए इस यात्रा में मेरे साथ केवल प्रभुदयालजी थे.

साधारणतया किसी भी देश के पर्यटन के पहले उस के भूगोल, इतिहास, राजनीति, समाज व्यवस्था एवं आचार इत्यादि की जानकारी हम पुस्तकें पढ़ कर कर लेते थे. लाभ यह हुआ कि हम नए देश में अनाड़ी से न लगे और भ्रमण का आनंद भी मिला. प्रायः हर देश में टूरिस्ट आफिसों में दर्शनीय स्थानों के संबंध में विवरण और नक्शे मिल जाते हैं. इस के अलावा एक छोटी पुस्तिका भी मिल जाया करती है, इस में उस देश के रोजमर्रा के जरूरी शब्दों का अनुवाद अंगरेजी में रहता है.

फिनलैंड यूरोप के उत्तरी छोर पर एक छोटा सा देश है. पूरे देश की जनसंख्या है केवल चौवालिस लाख, अर्थात हमारे कलकत्ते से भी कम और क्षेत्रफल सवा लाख वर्ग मील है, यानी बहुत कुछ हमारे राजस्थान के क्षेत्रफल के बराबर. इतने छोटे देश में अस्सी हजार टापू और साठ हजार झीलें हैं. इसलिए इसे 'द्वीपों और झीलों का देश' भी कहते हैं. यहां के अधिकांश भूभाग पर लकड़ी के जंगल हैं जो वर्ष में आठ महीने बर्फ से ढके रहते हैं.

फिनलैंड छोटा राष्ट्र है लेकिन इस में राष्ट्रीय चेतना सदैव जाग्रत रही. उत्तरी सीमा पर नारवे है, पश्चिम में है संपन्न राष्ट्र स्वीडन और पूर्व में है साम्यवादी और शक्तिशाली सोवियत रूस. ११० वर्ष तक रूस के शासन में रहा, लेकिन स्वाधीनता के लिए सदैव यहां के निवासी प्रयत्नशील रहे. रूस में जार के अत्याचार के कारण असंतोष बढ़ता गया. बोलशेविक शक्ति बढ़ी, राजतंत्र की नींव हिल उठी. सन १९१७ में जार के परिवार की हत्या कर दी गई. शासन ढीला था ही, फिनलैंड इसी मौके पर स्वतंत्र हो गया.

स्वतंत्र फिनलैंड अपने पिछले कष्टमय जीवन को भूला नहीं. रूस और पड़ोसी स्वीडन ने उस पर जो जोरजुल्म किए थे, उस से यह सतर्क हो कर अपने को संगठित और शक्तिशाली बनाने में अग्रसर हो गया.

इतिहास साक्षी है कि धर्मप्रचार के नाम पर जिस ढंग के अत्याचार और दुर्नीतियों को विदेशों में अपनाया गया वैसा भारत ने किसी भी राष्ट्र के साथ नहीं किया. हम ने जिहाद के नाम पर अपनी फौजें नहीं भेजीं बल्कि शांति के दूत श्रीलंका, इंडोनेशिया, मलाया, तिब्बत, मंगोलिया और चीन में भेजे. धर्मप्रचार के नाम पर यूरोप और अरब देशों में हत्या, लूट और बलात्कार करना गौरव समझा जाता रहा है. क्योंकि इस कृत्य में धन तथा दासदासियों की लूट के साथ-साथ 'गाजी' बनने का या स्वर्गद्वार खुलने का सौभाग्य भी मिलता था. मुहम्मद गजनी, बख्तियार खिलजी और औरंगजेब की धर्मांधता हम ने सुनी थी पर सभ्यता का दम भरने वाले यूरोप के धर्मगुरु पोप के आदेशानुसार ईसाइयों ने (क्रुसेड) धर्मयुद्ध के नाम पर जो भयंकर अत्याचार और रक्तपात किया है, उस की कल्पना कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं.

फिनिश ईसाई नहीं थे. इसलिए बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में स्वीडन ने पवित्र धर्मप्रचार के नाम पर इन निरीह लोगों पर तीन बार हमला किया. हजारों बच्चे, बूढ़ों और स्त्रियों को लकड़ियों के घरों में आग लगा कर जिंदा जला दिया या अन्य प्रकार से मार डाला. इस के करीब ५५० वर्ष बाद रूस के सम्राट अलेग्जेंडर प्रथम ने सन १८०९ में फिनलैंड पर आक्रमण कर वहां स्वीडन की सत्ता खत्म कर दी. १०८ वर्ष बाद, ६ दिसंबर १९१७ को फिनलैंड स्वतंत्र हुआ और १७ जुलाई १९१९ के दिन उस ने अपने लिए गणतंत्र की घोषणा की.

फिनलैंड में शासन के सर्वोच्च अधिकार राष्ट्रपति के हाथ में हैं. वहां संसद में २०० सदस्य हैं जो हमारे यहां की तरह निर्वाचित होते हैं. विधान या कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति एवं संसद में निहित है. राष्ट्रपति का निर्वाचन छः वर्षों के लिए होता है.

उत्तरी ध्रुवांचल के निकट होने के कारण यह शीतप्रधान देश है. फिर भी, प्रकृति यहां अनुदार नहीं है. दर्शनीय और रमणीय स्थल एक नहीं, अनेक हैं. ऊंचे नुकीले पत्तों वाले पेड़ों के घने जंगल, झील और टापुओं से यह देश भरा है. इस देश के उत्तरी भाग में बर्फीली आंधियां और तूफान जाड़े के मौसम की दैनिक घटनाएं हैं, तो मध्य रात्रि का मुसकराता चांद सा सूरज सृष्टि के सूत्रधार के प्रति श्रद्धा की प्रेरणा भी देता है. वर्ष में आठनौ महीने झीलों का पानी जम कर चट्टान सा कड़ा हो जाता है. इन पर विविध प्रकार के खेल होते रहते हैं. स्वाधीन फिनलैंड इन का आनंद उठाता है. अपनी पराधीनता के दिनों में उस का नैसर्गिक वैभव उपेक्षित रहा. पराधीन देशों की उन्नति का ध्यान दूसरों को क्यों रहेगा, चाहे वह देश भारत हो या फिनलैंड.

सन १९१७ से १९३९ तक बाइस वर्ष फिनिश जनता और सरकार को अपने देश को सजाने, संवारने और सुधारने में लगे. यह दीर्घ अवधि विश्व भर में बड़ी मंदी की थी लेकिन फिनिश जनता ने इसी समय अपने देश को समृद्ध किया, यह उन के लगन और परिश्रम का पुष्ट प्रमाण है. आज फिनलैंड की गणना सैलानियों के लिए कशमीर, स्विट्जरलैंड और स्वीडन से की जाती है.

कृत्रिम जल प्रपात से दृश्य और भी सुहावना हो जाता है

सन १९३९ में द्वितीय महायुद्ध छिड़ा. इस समय तक रूस विश्व की बड़ी शक्तियों में हो गया था. उस के पास अजेय सेना और अमोघ अस्त्र थे. साम्राज्यवादी और साम्यवादी देशों के इरादों में ज्यादा फर्क नहीं होता, हां, तरीके कुछ अलग-अलग होते हैं. साम्राज्यवादी दूसरे देशों को बहाने बना कर हड़पते हैं और साम्यवादी सीधे हमला कर बैठते हैं. औरों का अनुभव कैसा है, हम यह नहीं जानते पर भारत ने ब्रिटेन और चीन से यही अनुभव प्राप्त किया है. साम्यवादी रूस ने भी इसी तरह सन १९३९ में छोटे से शांतिप्रिय एवं निरीह राष्ट्र फिनलैंड पर जल, थल और नभ से एक साथ हमला बोल दिया. उन दिनों रूस मित्रराष्ट्रों में नहीं था. इसलिए ब्रिटेन और अमरीका ने मौखिक सहानुभूति तो फिनलैंड के साथ पूरी दिखाई पर सैनिक सहायता के नाम पर एक भी हथियार या सिपाही नहीं भेजा. फिर भी फिनिश वीर ११० दिनों तक रूसी शक्ति का मुकाबला करते रहे. छोटा सा देश, सीमित साधन, कब तक टिकता? उस की युद्ध और खाद्य सामग्री घट गई. जनहानि देख कर विवश हो गया. १८ मार्च १९४० को रूस के साथ संधि करनी पड़ी. हार वह भूला नहीं.

जरमनी ने १९४१ में जब रूस पर हमला किया तो उसी धर्मोहारी फिनिश जनता की रगों में जोश उमड़ पड़ा. तीन महीने के अंदर ही उस ने रूस को अपने देश से निकाल बाहर किया. लेकिन इस समय तक रूस मित्रराष्ट्रों के गुट में

शामिल हो चुका था. ब्रिटेन और अमरीका की फौजी सहायता से रूस ने युद्ध में थके हुए फिनलैंड पर सितंबर, १९४४ में फिर हमला कर दिया. लाचार हो कर फिनलैंड ने रूस से संधि की और शर्तों के अनुसार देश का कुछ कीमती हिस्सा और २२५ करोड़ रुपए का हरजाना आठ किश्तों में चुकाना मंजूर किया. साम्राज्यवाद और साम्यवाद का यह गठबंधन राजनीति के अध्येताओं के लिए एक ज्वलंत दृष्टांत है.

हारे और थके फिनलैंड के पास इतना धन कहां था? उस ने हिम्मत नहीं हारी. नंगे और भूखे रह कर फिनिश लोगों ने अपनी सर्वोत्तम लकड़ियों और अन्यान्य सामग्री दे कर १९५२ तक में यह कर्ज पटा दिया. जानकार लोगों का कहना है कि रूस ने कम से कम दोगुनी रकम का माल कर्ज के एवज में वसूल किया. समता और अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद का यह रूसी तरीका न्यायसंगत किसी भी स्थिति में नहीं कहा जाएगा.

फिनिश स्वभाव से ही परिश्रमी और उद्यमी हैं. सर्दी इतनी ज्यादा यहां है कि बिना कड़े काम के मनुष्य रह नहीं सकता. जंगलों और खानों में संपदा भरी पड़ी है. सन १९५२ के बाद फिनलैंड दोगुने उत्साह से अपनी प्राकृतिक संपदा का लाभ उठाने में जुट पड़ा. इस की उन्नति भी द्रुतगति से हुई. सन १९६० के जून में हम जब वहां थे, यह संपन्न और उन्नत देशों में गिना जाने लगा था.

लेनिनग्राद से हम शाम को साढ़े छः या सात बजे हेलसिंकी पहुंचे. कस्टम की औपचारिकता से निवृत्त हो कर जब होटल आए, आठ बज रहे थे. हेलसिंकी फिनलैंड के दक्षिण में है. फिर भी ध्रुवांचल में होने के कारण वर्ष के तीन महीने तक तो यहां एकडेढ़ बजे तक कुदरती रोशनी रहती है. इसलिए रात्रि का भोजन कर हम ने १० बजे शहर का एक चक्कर लगा लेना तय किया.

हेलसिंकी फिनलैंड का प्रमुख शहर है और राजधानी भी. बाल्टिक सागर में फिनलैंड की खाड़ी से सटा यह शहर लंदन या मास्को की तरह व्यस्त और भव्य तो नहीं लगता पर उन से ज्यादा शांत और सौम्य है. यहां की आबादी है पांच लाख. हम ऊनी पाजामे पर ऊनी पतलून और पांचछः गरम पोशाक पहने दुकानों में मोटे शीशे की चद्दरों के पीछे सजी चीजों को देखते जाते थे. कुछ ही घंटे पहले हम रूस के एक प्रमुख शहर से आए थे. वहां की दुकानों में काउंटरों पर या आलमारियों में कुछेक भोंडी और सस्ती चीजें ही देखने में आई थीं. रूस के अन्य शहरों में भी ऐसा ही नजारा देखा था. पर यहां के बाजार और दुकानों में सुरुचिपूर्ण कलात्मक वस्तुओं को देख कर ऐसा लगा मानो खोईखोई सी चीजें सामने आ रही हों. मैं ने प्रभुदयालजी से कहा, "जो कुछ भी हम ने रूस में देखा, यदि साम्यवाद का यही अंजाम है तो पूंजीवाद उस से कहीं बेहतर है." कहने को तो कह गया मगर न जाने क्यों मैं कुछ सहम सा गया और आसपास झांकने लगा. प्रभुदयालजी ने मुसकरा कर कहा, "डरने की क्या बात है, आदत पड़ गई क्या? यह रूस नहीं फिनलैंड है, भारत की तरह यहां बोलने के लिए स्वाधीन हो." हम दोनों हंस पड़े.

दूध, रोटी, पनीर और फलों की दुकानें बहुत रात होने पर भी खुली थीं.

इमारती लकड़ी के व्यापार ने फिनलैंड को आत्मनिर्भर बना दिया है

दूसरे दिन सुबह के लिए बहुत से फल और पैकेटों में दूध ले कर वापस आ गए. आजकल यूरोप और अमरीका में दूध बोतलों की जगह मोटे मोमिया कागज या प्लास्टिक की थैलियों में बिकता है. वापस आते समय रास्ते में हम ने दोएक लोगों को वायलिन बजा कर भीख मांगते हुए देखा. हमें ताज्जुब हुआ क्योंकि इटली, ग्रीस आदि यूरोप के दक्षिणी देशों में भी तो भिखमंगे दिखाई देते हैं, पर उत्तरी यूरोप के देशों में नहीं मिलते. पूछने पर पता चला कि कुछ लोग यदाकदा रूस से भाग कर यहां आ जाते हैं. ऐसे ही व्यक्ति शुरूशुरू में गा-बजा कर भीख मांगते हैं.

जून से अगस्त तक यूरोप के दक्षिणी देशों और अमरीका से बहुत बड़ी संख्या में सैलानी यहां आते रहते हैं. इसलिए रात्रिक्लबों और नृत्यशालाओं में बहुत चहलपहल रहती है. अंगरेजी के थियेटर और सिनेमा भी यहां हैं. वेनिस और पेरिस में जिस प्रकार की उच्छृंखलता और नग्नता का प्रदर्शन होता है, वह यहां अपेक्षाकृत कम है. फिर भी, नाइटक्लब और कैबरे, मंदिर या गिरजे तो हैं नहीं, इसलिए चाहे पेरिस हो या हेलसिंकी, लोग इन में जाते ही हैं उद्दाम लालसा ले कर, मात्रा चाहे ज्यादा हो या कम.

अगले दिन सुबह चार बजे अपनेआप ही मैं जाग गया क्योंकि धूप निकल आई थी. रात तो यहां इन महीनों में होती ही नहीं. सोते समय खिड़कियों पर काले पर्दे लगाना भूल गए थे. रोशनी में सोने की आदत नहीं. देखा, प्रभु-दयालजी गहरी नींद में सो रहे हैं.

पिछली रात को घूमते समय पता चला था कि यहां गरम पानी और भाप

के 'साउना' स्नानगृह हैं जो शहर में सैकड़ों की संख्या में हैं. केवल विदेशियों के लिए ही नहीं बल्कि स्थानीय लोगों के लिए भी ये आकर्षण रखते हैं, क्योंकि वैज्ञानिक स्नान के साथसाथ इन्हें शारीरिक व्यायाम का अच्छा माध्यम माना जाता है. ऐसे स्नानगृह कई प्रकार और श्रेणी के होते हैं. दस रुपए से ले कर पचाससाठ रुपयों तक के.

लंदन और हाम्बर्ग के बाथहाउसों के उन्मुक्त वातावरण को मैं अपनी पिछली यात्रा में देख चुका था. इसलिए प्रभुदयालजी को बिना कहे अकेला ही स्नान करने चला गया क्योंकि उन के सामने निर्वस्त्र हो कर नहाने में संकोच होता. मध्यम श्रेणी के एक 'साउना' में गया. जरा सवेरे पहुंचा था, इसलिए भीड़ नहीं थी. फिर भी बीसपचीस स्त्रीपुरुष तो थे ही.

प्रत्येक के लिए एकएक छोटी कोठरी सी रहती है, उस में कपड़े वगैरह उतार कर भाप के कमरे में चले जाते हैं, यहां एक प्रकार के घास से शरीर को रगड़ते रहते हैं और बीचबीच में ठंडे पानी के फव्वारे के नीचे स्नान भी करते रहते हैं. कम या ज्यादा कई मात्रा के ताप के कक्ष हैं. सिर पर ठंडा तौलिया रख लिया जाता है, नहीं तो चक्कर आने का अंदेशा रहता है. कुछ देर तक स्नान करने के बाद वहीं पर बने एक तालाबनुमा बड़े से हौज में तैरने के लिए आ जाते हैं. स्त्रियां बिकनी पहने रहती हैं, शेष सारे अंग खुले रहते हैं. पश्चिम के देशों में प्रथा है कि पुरुष, स्त्रियों के सामने निर्वस्त्र नहीं होते, यहां तक कि गंजी या बनियान तक नहीं उतारते. इन स्नानगृहों में पूरी छूट है. यहां एक प्रकार से 'न्यूडिस्ट क्लब' का वातावरण रहता है. मैं ने लक्ष्य किया कि इतने उन्मुक्त वातावरण में भी शालीनता की लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन नहीं होता. उत्तरी यूरोप के प्रायः सभी बड़े या छोटे देशों में इस प्रकार के सार्वजनिक स्नानगृह हैं. पर अशोभनीय वारदात शायद ही कहीं हो. बल्कि ये सामाजिक स्तर पर मिलने-जुलने के अच्छे माध्यम माने जाते हैं और हैं भी. इन दिनों दक्षिणी यूरोप में भी ऐसे क्लब हो गए हैं पर वहां का वातावरण कुछ दूसरे ढंग का रहता है.

स्नानगृह में, मैं ही अकेला भारतीय था. इसलिए मेरे प्रति लोगों में दिलचस्पी थी. भारत के बारे में यहां के लोगों की जानकारी बहुत कम है. हमारी सरकार का प्रचार विभाग भी इन देशों में अपेक्षित रूप से सक्रिय नहीं है. हम संपर्क भी यूरोप में ज्यादातर ब्रिटेन, फ्रांस, जरमनी और रूस आदि देशों से रखते हैं. बड़े आग्रहपूर्वक ये मिले. मैं ने देखा कि हमारे देश से इतना कम संपर्क रहने पर भी इन में बहुत से गांधीजी, नेहरूजी और रवींद्रनाथ के बारे में काफीकुछ जानते हैं.

लगभग डेढ़ घंटे वाष्पस्नान और तैरने में लग जाते हैं. शरीर इतना हलका हो जाता है और मन ऐसा प्रसन्न कि आसमान में उड़ने की तबियत होती है. स्नान के बाद सुस्वाद काफी पीने को मिलती है. मुझे पूरी तरह याद नहीं, पर चार्ज शायद १२ रुपए या १४ रुपए लगे.

अपनी विदेश यात्रा में हर जगह मैं मध्यम श्रेणी के रेस्तरां और क्लबों को चुनता था, क्योंकि इन में जनसाधारण से भेंट हो जाती थी. उन के जीवन और वहां की विचारधारा को नजदीक से देखने और समझने का मौका मिलता

वर्फ पर फिसलती रेंडीयरों की गाड़ियां उत्तरी ध्रुव का मोहक दृश्य
प्रस्तुत करती हैं

था. एक और सुविधा यह भी होती थी कि मध्यम श्रेणी की जगहों में खर्च कम
लगता था.

नहाधो कर साढ़े आठ बजे होटल लौटा तो प्रभुदयालजी वैठे राह देख रहे
थे. कुछ चिंतित भी थे. उन्हें फिक्र हो रही थी कि नया देश है, भाषा की भी
दिक्कत है. संकोच के साथ मैं ने स्नानगृह की वात कही तो हंसते हुए कहने लगे,
"मुझे क्यों नहीं जगा लिया, मैं भी सायसाय चलता."

विदेशों में होटल या रेस्तरां में हम पहले ही सरल और स्पष्ट अंगरेजी में
कह देते थे, "नो फिश, एग्ज एंड मीट." यानी मछली, अंडे और मांस नहीं, केवल
दूध, मक्खन और रोटी. नाश्ते के लिए परिचारिका आई. वहुत से टोस्ट के साय
मक्खन, मीठी चटनी और साथ में दो वड़ेवड़े कैंटर दूध से भरे हुए. वहुत सम-
झाया कि इतने सारे दूध का क्या होगा? पर किसी तरह कम करने को तैयार न
हुई, केवल हंसती रही. आखिर हिम्मत कर सारा पी ही लिया. स्वाद के क्या
कहने, उत्तरी यूरोप के देश दूधमक्खन के लिए दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं.

हमारे होटल में एक फ्रेंच यात्री से जानपहचान हो गई. अंगरेजी
अच्छी तरह वोल लेता था. कई वार यहां आ चुका था. दोएक दिन वाद
लैपलैंड जा रहा था, हमें भी आग्रह करता रहा कि ऐसे मौके आप को वारवार
नहीं मिलेंगे. जव भारत से इतनी दूर उत्तरी ध्रुव के पास तक आ ही गए हैं तो
क्यों नहीं तीनचार दिन का समय निकाल कर उस के साथ चलें और लैपलैंड,
रेंडीयर और मध्य रात्रि का सूर्य और वर्फानी आंधियां देख लें.

हमारे लिए यहां की सर्दी भी काफी थी, चमड़े के वस्त्र भी हम ने नहीं

लिए थे, जिस से कि बर्फानी हवाओं के थपेड़े सहे जा सकें. फिर मैं तो वहां तक सन १९५० में ही हो आया था. इसलिए उस का आभार मानते हुए हम ने प्रस्ताव के लिए नाहीं कर दी.

नाश्ता इतना ज्यादा कर लिया था कि दोपहर के भोजन की जरूरत नहीं रही. फ्रेंच मित्र के साथ बाजार देखने निकल पड़े. हर तीसरी दुकान फलों या फूलों की थी. शराब या बियर तो प्रायः हर दुकान में. पानी की जगह यहां लोग इन्हें पीते हैं. इस के बारे में यह पता चला कि अत्यंत ठंडे देशों में केवल पानी पीने से फेफड़ों में सर्दी जम जाने का भय रहता है, सर्दी से बचाव के लिए ब्रांडी या दूसरी किस्म की शराब पीना जरूरी है. मगर हमें कहीं भी ऐसी जरूरत महसूस नहीं हुई. हम पानी पीते रहे और हमें न सर्दी लगी और न हमारे फेफड़ों में ही सर्दी जमी.

इन देशों में एक बात आमतौर पर देखने में आई कि बागबगीचों, रेलवे-स्टेशनों, एयरपोर्ट, रेस्तरां, थियेटर और बाजारों में एक तरफ किसी कोने में स्त्रीपुरुष बिना संकोच या झिझक के आलिंगन अथवा चुंबन लेते रहते हैं. फ्रेंच साथी ने इस के लिए दलील दी कि गरम मुल्कों की बात और है पर सर्द मुल्कों में तो शरीर की उष्णता को स्थिर रखने के लिए आलिंगन और चुंबन करते रहना जरूरी है. मुसकराते हुए उस ने कहा कि इन देशों में यदि उत्तेजक साधन और माध्यम न अपनाए जाएं तो शायद हमारी जनसंख्या की वृद्धि ही रुक जाएगी.

हो सकता है, इन बातों में कुछ तथ्य हो, पर हम भारतीयों के लिए तो यह शालीनता और मर्यादा की सीमा के बाहर की बातें लगीं. हमारे यहां भी लद्दाख और उत्तरी कुमायूं आदि ऐसे काफी अंचल हैं जहां कड़ी सर्दी पड़ती है. वहां शरीर की उष्णता के लिए इस ढंग के माध्यम और साधन की जरूरत कभी नहीं समझी गई.

कुछ छोटीमोटी चीजें बाजार से खरीदीं. सर्दी इतनी थी कि दौड़ने का मन करता था. थकावट का नाम नहीं था. बस में बैठ कर पास के एक देहात में पहुंचे. अच्छा लगा. चमकदार और चिकनी लकड़ी के छोटेछोटे मकान थे. हरेक घर के साथ फलों और फूलों का बाग, स्त्रियां और बच्चे काम कर रहे थे. सभी स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई पड़े. शरीर सुडौल और सुंदर.

एक घर के सामने हम रुके. गृहिणी थोड़ीबहुत अंगरेजी जानती थी. उस ने बड़े प्रेम से अपना बगीचा दिखाया. मना करने पर भी फलों का रस पिलाया. देखा, मकान छोटा था पर आधुनिक सभी साधनों से संपन्न, टेलिविजन, हीटर, टेलिफोन, छोटा सा पुस्तकालय. अपने देश के देहात के घरों के लिए तो आज भी ये सारी चीजें कल्पना तक ही सीमित हैं. गृहिणी ने बताया कि पति की फलों की दुकान है हेलसिंकी में. सुबह नौ बजे जाता है, दिन का भोजन वहीं करता है, शाम के बाद नौ बजे घर लौटता है. गांव में एक सरीखे मकानों को देख कर हम ने कारण पूछा तो उस ने बताया कि कुछ वर्ष पहले अग्निकांड में सारा गांव जल गया था. जब गांव नए सिरे से बसा तब सभी मकान एक ढंग के बना लिए गए. इस बार भी मकान लकड़ी के ही हैं पर अब आग बुझाने के उन्नत और वैज्ञानिक साधन हैं.

वहीं पर गांव के स्कूल की अध्यापिका से मुलाकात हुई. रूसी, स्वीडिश, अंग-

रेजी और फ्रेंच भी जानती थी. एनी बेसेंट की गीता का अंगरेजी अनुवाद उस ने पढ़ा था. तभी से भारतीय दर्शन के प्रति रुचि हुई. उस का विश्वास था कि भौतिक उन्नति से सुख भले ही मिल जाए पर वास्तविक आनंद नहीं. सुदूर उत्तरी ध्रुवांचल में भारतीय विचार के इस तत्व को सुन कर बड़ी खुशी हुई. फिनलैंड के बारे में उस ने बहुत सी बातें बताईं. शिक्षा के क्षेत्र में फिनलैंड के शासन ने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया है. शायद ही कोई अनपढ़ व्यक्ति फिनलैंड में मिले. अपनी भाषा के अलावा रूसी और अंगरेजी बहुत से लोग जानते हैं. उस ने यह भी बताया कि यहां की स्त्रियां पुरुषों से अधिक भाषाएं जानती हैं, क्योंकि उन्हें पढ़ने और सीखने की फुरसत ज्यादा रहती है.

हम ने राय मांगी कि हम फिनलैंड में क्या देखें? उस ने कहा भारत की विविधता के मुकाबले में छोटा सा फिनलैंड कुछ खास तो पेश नहीं कर सकता, फिर भी ओलंपिक स्टेडियम और विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी जरूर देख ली जाए, अगर समय मिले तो ओलंको भी. ओलंको का ट्रेन से केवल दो घंटे का रास्ता है. वहां आप को विश्व के हर कोने के लोग मिलेंगे. कोई बर्फीले ठंडे पानी की झील में तैर रहा है तो कहीं घुड़सवारी की प्रतियोगिता चल रही है. टेनिस, गोल्फ, फुटबाल, हाकी, वालीबाल आदि दुनिया भर के खेलकूद और विभिन्न तरीके की कुश्तियां भी देखने को मिलेंगी. मनोरंजन के काफी साधन हैं. हां, नाइटक्लब और कैबरे नहीं हैं.

हेलसिंकी आ कर हम यहां के विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में गए. यहां हम ने देखा, प्रायः सभी भाषाओं की आठदस लाख पुस्तकें थीं. कलकत्ते की हमारी नेशनल लाइब्रेरी में इस से कुछ अधिक संख्या जरूर है, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि फिनलैंड हम से सौ गुना छोटा देश है. भारतीय भाषाओं की पुस्तकें देखने में नहीं आईं. अंगरेजी, फ्रेंच और जरमन में संस्कृत की पुस्तकों के अनुवाद जरूर देखे. हम ने एक बात की कमी अनुभव की कि विदेशों के छोटेछोटे राष्ट्रों में हमारी ओर से संपर्क स्थापन करने के प्रति ऐसी उदासीनता बरती जाती है कि उसे उपेक्षा का पर्यायवाची कहा जाए तो असंगत न होगा. यही कारण है कि संयुक्त राष्ट्र संघ में हमारी आवाज का साथ देने वालों की संख्या बहुत कम रहती है. हमारे विदेश मंत्रालय के लिए यह विशेष ध्यान देने की बात है. ऐसी स्थिति में यहां के पुस्तकालय में हिंदी साहित्य या भाषा संबंधी पुस्तकें या उन के अनुवाद का न होना स्वाभाविक है. आज प्रचार का युग है. दूसरे बड़े देश अपने विशिष्ट साहित्य को विश्व के बड़ेबड़े पुस्तकालयों को भेंट के रूप में भेजते रहते हैं. लाइब्रेरी के कक्ष ताप नियंत्रित हैं. अध्येताओं के लिए यहां भी हमारी नेशनल लाइब्रेरी की तरह हर प्रकार की सहायता और सुविधा सहज उपलब्ध है. कैंटीन की सुविधा और वातावरण तो हमारे से कहीं अधिक सुन्दर और स्वच्छ.

फिनलैंड की गाइडबुक में यहां के दर्शनीय स्थलों का उल्लेख था—संसद भवन, नेशनल म्यूजियम, वाटरटावर, किला और ओलंपिक स्टेडियम. लेनिनग्राद, मास्को के म्यूजियम तो हम ने पिछले हफ्ते में ही देखे थे, पेरिस के लूव्रे और वेटिकन में पोप की आर्ट गैलरी भी हम देख आए थे. इसलिए इन में अब रुचि न रही. ओलंपिक स्टेडियम और वाटरटावर देख लेना तय किया.

ओलंपिक स्टेडियम १९४० में विश्व के खेलों के लिए बनाया गया था. लेकिन महायुद्ध के कारण उस वर्ष खेल नहीं हो सके. अतएव, फिर से १९५२ में इस की साजसज्जा की गई और उस वर्ष यहीं विश्व के खेलों की प्रतियोगिता हुई. दुनिया के कोनेकोने से, हर छोटेबड़े राष्ट्र से यहां चुनेचुने खिलाड़ी आए थे. अमरीका, फ्रांस, रूस और ब्रिटेन का तो कहना था कि फिनलैंड कहां से बाहर के इतने खिलाड़ियों और दर्शकों को जगह दे सकेगा, इतना बड़ा स्टेडियम कैसे बना पाएगा? फिनलैंड इन बातों से निराश नहीं हुआ. दूने उत्साह से उस ने चुनौती स्वीकार की. दो वर्ष के कठिन परिश्रम और करोड़ों की लागत से आखिर यह स्टेडियम बना ही डाला. फिनलैंड अपने रंगबिरंगे संगमरमर के लिए प्रसिद्ध है. इस से विदेशी मुद्रा की उसे अच्छी आमदनी हो जाती है. पर स्टेडियम निर्माण के समय अच्छे किस्म के पत्थरों का निर्यात रोक दिया गया क्योंकि उसे प्रदर्शनी का फर्श बनवाना था. उसी समय हेलसिंकी की सुंदरता को देखने के लिए एक बहुत ऊंचा टावर भी बनाया गया.

हम ने सुना कि १९५२ में जब यहां सारे देशों से खिलाड़ी और शौकीन दर्शक आए तो उन्हें स्टेडियम देख कर विस्मय हुआ क्योंकि अब तक अमरीका और फ्रांस भी इतनी अच्छी व्यवस्था नहीं कर पाए थे. हमारे भारतीय हाकी टीम के खेल को आज भी यहां वाले याद करते हैं. भारतीयों को तो वे हाकी का जादूगर कहते हैं. यहां की ओलंपिक प्रतियोगिता में भारत हाकी और पोलो में शीर्ष स्थान तक पहुंचा था.

सुवह नाश्ते में सेरों दूध, पाव रोटी और मक्खन ले लिया था. एक तो दिन भर घूमते रहे और दूसरे यहां की ठंडी स्वास्थ्यकर हवा. भूख जोरों की लग रही थी. होटल लौट कर उवला साग, पाव रोटी और भारत से लाए हुए चिवड़े की खीर खा कर भूख शांत की. हम ने देखा कि हमारी तरह दूसरे यात्री भी यहां ज्यादा खाते हैं. पूछने पर मालूम हुआ कि यहां प्रति व्यक्ति की औसत खुराक ३,२०० कैलौरी से भी अधिक है, जब कि भारत में यह औसत १,६०० के लगभग है.

हमारा फ्रेंच मित्र हमारी प्रतीक्षा कर रहा था. मुसकरा कर कहने लगा, "अभी तो दस ही वजे हैं, क्यों न नाइटक्लव चला जाए. आप विदेशी मेहमान हैं, अगर इन के नाइटक्लव में न गए तो ये वुरा मान जाएंगे." वुरा मानने वाली बात पर हमें हंसी आई. हम ने थकावट का वहाना वता कर उस से छुट्टी ली.

दूसरे दिन हमें विश्व के सव से धनी देश स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम के लिए सुवह ही एयरपोर्ट जाना था. कमरे में आ कर प्रभुदयालजी सो गए. मुझे नींद नहीं आ रही थी, खिड़की के पास खड़ा हो गया. शहर की झांकी देखने लगा. वेनिस की तरह सैकड़ों टापुओं पर वसा यह नगर उस से कितना स्वच्छ है. आचार-विचार और व्यवहार में भी. सड़कों पर से जव चाहें, जहां चाहें इसकी लहरें दिखाई पड़ जाती हैं. सागर की ओर दृष्टि गई. देखा छोटे वड़े जहाजों की वत्तियां दीवाली सजा रही हैं.

नार्वे

विषम परिस्थितियों में जूझने की शक्ति

'दो फूल साथ फूले, किस्मत जुदाजुदा है,' बहुत दिनों पहले किसी नाटक के गाने में इसे सुना था. जब स्वीडन के बाद नार्वे देखने गया तो उक्त पंक्ति याद आ गई. स्वीडन और नार्वे दोनों पड़ोसी हैं. एक हजार मील तक जुड़ी हुई सीमा, दोनों स्थानों के लोगों का एकसा पहनावा, एक सी चालढाल, शारीरिक गठन, रीतिरिवाज और एक से ही प्राकृतिक दृश्य. लेकिन जहां स्वीडन विश्व के संपन्नतम देशों में से है, नार्वे अपने जीवन के संघर्षों में निरंतर जूझता चला जा रहा है. बर्फीले तूफान और समुद्री लहरों के थपेड़ों को सहता हुआ वह किसी न किसी तरह विश्व के रंगमंच पर अपना अस्तित्व कायम रखने की कोशिश कर रहा है.

स्वीडन को दुनिया का सर्वोत्तम लोहा, तांबा और कागज बनाने की लकड़ी प्रचुर मात्रा में प्रकृति ने दे रखी है, जब कि नार्वे के हिस्से में आए हैं पहाड़, गिरिनिखात (फियर्ड) और नदियां. इस छोटे से देश में डेढ़ लाख तो टापू ही हैं. विचित्र और तरहतरह के हैं ये—पहाड़, फियर्ड और झीलों से भरे हुए. प्रकृति यहां अनुदार है फिर भी यह हमारे देश की तरह गरीब नहीं है. इस बात का सहज अनुमान इस से लग सकता है कि हमारी राष्ट्रीय आय से उस की आय १३ प्रतिशत अधिक है जब कि जनसंख्या है—०.७ प्रतिशत. प्रति व्यक्ति वहां वार्षिक आय है दस हजार रुपए जब कि हमारे यहां प्रति व्यक्ति वार्षिक आय केवल ४५० रुपए है.

भौगोलिक कारणों का प्रभाव स्थानीय जनजीवन और संस्कृति पर पड़ता है. इसी लिए नार्वे के बर्फीले तूफानों, कठोर भूखंड और गिरिनिखातों का प्रभाव वहां के निवासियों पर भी पड़ा है. वे दुर्धर्ष, कठोर और कष्टसहिष्णु बन गए. नार्थमेन, नार्मन, नार्डस और वाइकिंग के नामों को सुन कर किसी जमाने में यूरोप के देशों में कंपकंपी उठ जाती थी. आज से हजार सवा हजार वर्ष पहले, जब कि न तो उन्नत वैज्ञानिक साधन थे और न भौगोलिक ज्ञान, हजारों की संख्या में वाइकिंग बड़ेबड़े जहाजों के जरिए समुद्र की ऊंची लहरों को चुनौती देते हुए आंधी की तरह जिस देश में उतर पड़ते थे वहां हाहाकार मच जाता था.

कुछ इतिहासकारों की मान्यता है कि मानव की आदि सभ्यता का विकास नार्वे से ही हुआ. यह बात कहां तक सही है, कहना कठिन है पर दसबारह हजार वर्ष पहले मनुष्य के काम में आने वाली चीजें यहां अवश्य मिली हैं. अन्वेषण अब

भी जारी है. यहां की चट्टानों के बारे में भूतत्वशास्त्रियों की राय है कि वे अस्सी लाख वर्ष पुरानी होंगी.

जमाना करवटें बदलता है. नार्वे के दुर्धर्ष नाविक आज अपने पूर्वजों की तरह खूंखार और क्रूर भले ही न हों, फिर भी है उन का जीवन कठोर और संघर्षमय ही.

नार्वे में भूमि का केवल तीन प्रतिशत भाग कृषि योग्य है, २४ प्रतिशत जंगलों से भरा पड़ा है और शेष ७३ प्रतिशत में पहाड़, गिरिनिखात (फियर्ड) और झीलें हैं. वहां का कुल क्षेत्रफल १.२५ लाख वर्ग मील है.

नक्शा देखने पर नार्वे ऐसा लगता है मानो एक बड़ी ह्वेल मछली हो. यह भी बड़ी मजेदार बात है कि नार्वे की छत्तीस लाख की आबादी में से लगभग नब्बे हजार मछुवे हैं. इन के पास चालीस हजार नावें या बोट हैं. ये लोग वर्ष में तेरह लाख टन मछलियां समुद्र से निकाल कर अपने देश की खाद्य समस्या हल करते हैं. बची हुई मछली को विदेशों में निर्यात कर दिया जाता है.

ह्वेल मछली के तेल के लिए विश्व को नार्वे पर निर्भर रहना पड़ता है. इन दैत्याकार समुद्री जीवों को पकड़ने के लिए अत्यंत साहस और बल की जरूरत पड़ती है. नार्वे के लोगों के भोजन में भी मछली और समुद्री जीवों की प्रधानता है.

मई के तीसरे सप्ताह से लगातार दो महीने तक यहां सूर्यास्त नहीं होता. इसी प्रकार आधे नवंबर से जनवरी तक उत्तरी नार्वे में घनघोर अंधेरी रात रहती है. ऐसा लगता है कि उत्तरी ध्रुव के बर्फीले तूफानों से भयभीत हो कर सूर्य सदा के लिए छिप गया हो. इन दिनों उत्तरी पूर्वी भाग में इतनी कड़ाके की सर्दी हो जाती है कि मुंह से थूक जमीन तक गिरतेगिरते बर्फ बन जाता है. लेकिन यह बात नार्वे के पश्चिमी हिस्से पर लागू नहीं होती. अमरीका से चली गल्फ स्ट्रीम की गरम जलधारा अतलांतिक को पार कर नार्वे के पश्चिमी तट से हो कर मुड़ती है इसलिए पश्चिमी भाग में समुद्र जहाजरानी के लिए वर्ष भर खुला रहता है.

हजारों वर्षों से विश्व के विभिन्न समुद्रों में विषम परिस्थितियों से जूझने के कारण नार्वेवासी नौविद्या में बड़े प्रवीण हो गए हैं. जहाजरानी में नार्वे का संसार में तीसरा स्थान है.

अनुमान था कि कठोर सर्दी में यहां के लोग घरों में रहते होंगे पर देखा कि स्थानीय लोगों की दिनचर्या में मौसम की बेरुखी से कोई अंतर नहीं आता. लोग यथावत अपने गाय, बैल, सुअर, भेड़ संभालते हैं, दैनिक काम पर आते हैं. खेती के लायक जो भी थोड़ीबहुत जमीन यहां है, वह जब बर्फ के नीचे दब जाती है तो लोग उन दिनों दूसरे धंधों में लग जाते हैं.

नार्वे में कोयले का सर्वथा अभाव है और पेट्रोलियम भी यहां नहीं है. इसलिए नार्वेवासियों ने अपने कारखानों या मशीनों को चलाने के लिए जलशक्ति का उपयोग किया है. जल से विद्युत बना कर पूरे देश की औद्योगिक आवश्यकता की पूर्ति की जाती है. विश्व में सब से ज्यादा व्यक्तिशः विद्युत उत्पादन की दृष्टि से नार्वे अग्रणी है.
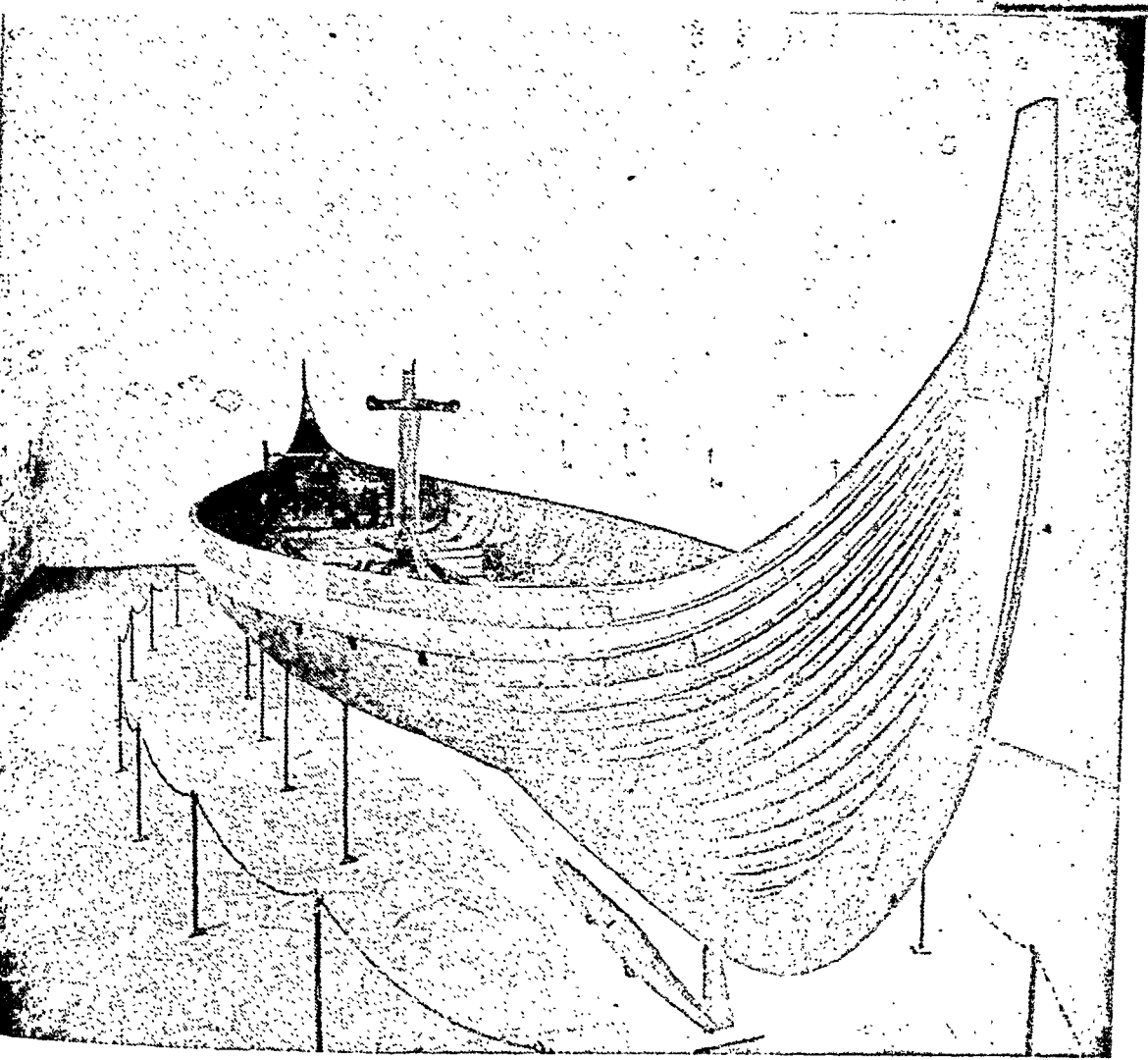
प्राचीन काल का वाईकिंग जहाज, ओसलो के एक संग्रहालय में

'निशा सूर्य के देश में' नामक लेख में नार्विक की चर्चा मैं ने की है. लगभग तेरह हजार की आबादी का यह शहर है. हैमरफास्ट को छोड़ कर विश्व का यह सब से उत्तरी पोर्ट है. गल्फस्ट्रीम की उष्ण जलधारा के कारण यहां बर्फ जम नहीं पाती इसलिए जहाजों के आवागमन के लिए यह वर्ष भर खुला रहता है. स्वीडन की किरुना के विश्वविख्यात लोहे की खानों के उत्पादन का अधिकांश निर्यात यहीं से होता है.

नार्विक से करीब डेढ़ सौ मील उत्तर में हैमरफास्ट है जो उत्तरी ध्रुव से केवल ६० मील के फासले पर है. एक बार तो इच्छा हुई कि इसे भी देख लिया जाए पर साथी नहीं रहने के कारण नहीं गया. यहां की आबादी केवल छः हजार है. यात्रियों के लिए मई से जुलाई तक हवाई मार्ग खुला रहता है.

स्वीडन से आते समय मैं ने ट्रेन से सफर किया था. किरुना से होता हुआ नार्विक आया था. जाते समय मैं ने निश्चय किया कि जहाज, बस या कार से ओसलो की यात्रा की जाए. इस प्रकार इस देश को अपेक्षाकृत अच्छी तरह देखने का मौका मिल जाएगा.
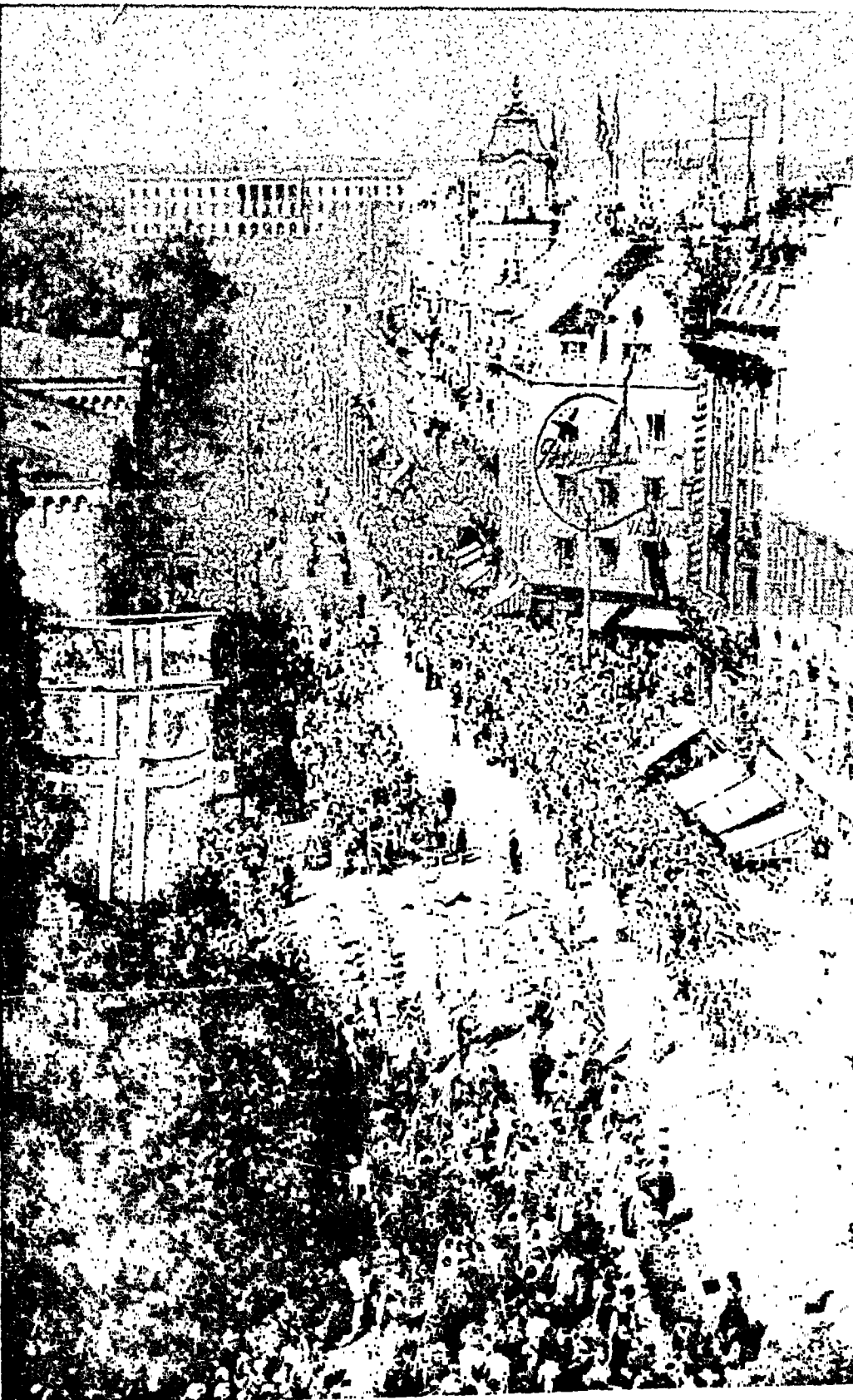
नार्वे की राजधानी ओसलो : संविधान दिवस समारोह की एक झांकी

टूरिस्ट आफिस में जाने पर पता चला कि जहाज के लिए तो दो दिन रुकना पड़ेगा पर उसी दिन दोपहर को विंजे की तापनियंत्रित डीलक्स स्टेशन वेगन जा रही है. उस में कुल नौ सीटें थीं. ड्राइवर दो थे जो गाइड का भी काम करते थे. विंजे यहां के विश्वसनीय ट्रावेल एजेंट हैं. इन के नाना प्रकार के टूर प्रोग्राम रहते हैं. इन की कारों और बसों में एक मोटरसाइकिल भी रहती है. रास्ते में कुछ खराबी होने पर इसी से पास के गांव में खबर दे दी जाती है जिस से फौरन आवश्यक मदद मिल जाती है.

ओसलो की यात्रा लंबी थी. सात सौ मील का सफर, बीहड़ और खतरनाक पहाड़ी रास्ते और बस्ती दूरदूर पर. सोचने लगा, 'जीवन में बहुत ही कम अवसर ऐसी यात्रा के लिए आते हैं और इन स्थानों पर आना तो शायद ही फिर संभव हो. फिर क्यों न इस मौके का लाभ उठाया जाए!' साथ के यात्रियों में से दो अमरीकी वृद्धाएं थीं. उन्हें इस कठिन यात्रा के लिए तैयार देख कर मेरा उत्साह भी बढ़ा. ५०० रुपयों की टिकट चार दिन की उस यात्रा के लिए मैं ने खरीद ली. होटल और भोजनादि के चार्ज इस में शामिल थे. ट्रेन या हवाई जहाज से किराया कम लगता पर नार्वे के जो दृश्य मैं ने इस यात्रा में देखे, वे ट्रेन या हवाई जहाज से जाने पर नहीं देख पाता.

दोपहर को दो बजे हम रवाना हुए. आपटे फियर्ड के किनारेकिनारे हमारी गाड़ी जा रही थी. रास्ता बहुत ही विकट और उतारचढ़ाव वाला था. कहीं-कहीं फेरी से भी पार उतरना पड़ता था. तीन घंटे में लगभग सौ मील का रास्ता तय किया. फियर्ड पर फेरी की इतनी अच्छी व्यवस्था है कि गाड़ी के पहुंचते ही उसे पार कर दिया जाता है. मुसाफिर गाड़ी में ही बैठे रहते हैं, उन्हें उतरना नहीं पड़ता. पांच बजे शाम को हम सारेफोल्ड नाम के एक गांव में कुछ देर के लिए रुके. जितनी देर में नाश्तापानी किया, उतनी देर में गाड़ी की देखभाल पूरी तौर पर कर ली गई. पूरी सफर में इस प्रकार की व्यवस्था रखी जाती है कि मशीन की गड़बड़ी से असुविधा न हो.

उस रात हम मो नाम के गांव में रुके. यों तो रात के नौ बजे थे पर रोशनी दिन की तरह थी. गांव को देखते हुए होटल की व्यवस्था अच्छी थी. निरामिष यात्रियों को ऐसे स्थानों पर दिक्कत होती है क्योंकि आमतौर पर यहां मछली और समुद्री जीवों के ही मीनू बनते हैं. होटल और रेस्तरांओं में आए दिन खाना ही पड़ता है. लोगों को सामिष खाते देख अभ्यस्त सा हो गया था फिर भी यहां तरहतरह के समुद्री जीवों को पका कर जब मेज पर रखा देखा तो उबकाई सी आने लगी.

यूरोप के अन्य स्थानों की तरह यहां भी भोजन के साथ वाद्य, संगीत और नृत्य के कार्यक्रम चलते रहते हैं. संगीत की धुन अच्छी लगी. पेरिस, वेनिस या ब्रूसेल्स की तरह उत्तेजना पूर्ण नहीं थी. यात्रियों के मनोरंजन के लिए गांव से लड़कियां आ जाती हैं. साथियों ने नाचना शुरू कर दिया था. दोनों ड्राइवर भी कपड़े बदल कर नाचगाने में शामिल हो गए थे. दोएक महिलाओं ने मुझे भी साथ नाचने के लिए आमंत्रित किया पर मैं इस दिशा में कोरा था.

दूसरे दिन सुबह यहां के कोटे और ग्लेशियर देखे. ग्लेशियर बर्फ के झरने

होते हैं. ऊंचेऊंचे पहाड़ों पर से आने वाला नदी का जल ठंड के कारण पत्थर की तरह जम जाता है पर धीरेधीरे नीचे खिसकता है. अपने यहां मनाली से आगे रोहतांग का ग्लेशियर देख चुका था. इसलिए ग्लेशियर के बारे में पहले से ही जानकारी थी.

दोपहर में नामसोम नाम के एक गांव के होटल में पड़ाव डाला. यहीं लंच लिया. पिछली रात रुचि के अनुकूल भोजन नहीं मिला था. इस अनुभव के कारण आगे के स्थानों पर पहले ही सूचना दे दी गई थी. यहां निरामिष भोजन अच्छा मिल गया. लंच के समय गाड़ी को देखा जा रहा था. विश्राम के लिए भी थोड़ा सा समय हाथ में था. गांव देखने निकल पड़ा.

छोटा सा साफसुथरा गांव. सागर की लहरें दौड़दौड़ कर किनारा चूम रही थीं. मछली पकड़ने का यह एक प्रमुख केंद्र है. मछियारों की बस्ती और उन का रहनसहन देखा. अपने देश के कोंकण, तमिलनाड, उड़ीसा और बंगाल में भी मछियारों की बस्तियां देखी थीं. मगर कितना अंतर है! नार्वे संपन्न देश नहीं है और यहां जीवन भी संघर्षमय है, फिर भी देखा कितना उन्नत स्तर है यहां का! आधुनिक यांत्रिक साधन, सहकारिता और श्रम का संतुलित समन्वय कर उपार्जन को इन लोगों ने सरल बना लिया है. बच्चों को देखा, हमारे यहां की तरह लावारिस-से नहीं घूम रहे थे. शिक्षा और खेलकूद की व्यवस्था अच्छी थी. बच्चों में अनुशासन भी था.

अधिकांश बोटों में मोटरें लगी थीं. पकड़ी गई छोटीबड़ी मछलियां ढेरों पड़ी थीं. किसीकिसी का वजन तो पचाससाठ मन तक था. अनेक मछलियां आकार में इतनी बड़ी थीं जैसे हमारे यहां की भैंसें.

निरामिष होने के कारण वह दृश्य मेरे लिए भले ही रुचिकर न हो पर इन की व्यवस्था और व्यवस्थित जीवन का प्रभाव मन पर जरूर पड़ा. कार की लंबी यात्रा में थक जाना स्वाभाविक है पर यहां की खुली ठंडी हवा ने ताजगी पैदा कर दी.

दो दिनों में हम ने करीब चार सौ मील का सफर पूरा किया. रात में उत्तरी नार्वे के एक कसबे टरोन्वियम में ठहरे. आबादी लगभग सत्रह हजार होगी. किसी समय यह नगर नार्वे की राजधानी था. वाइकिंग इसे जहाजों के लिए सुरक्षित गोदी समझते थे और अपने बड़ेबड़े जहाज यहां खड़े करते थे. यह कसबा अपने नाम के फियर्ड के किनारे बसा हुआ है. रात का भोजन कर नगर का एक चक्कर लगा आया. रात के ग्यारह बज रहे थे पर प्रकाश काफी था. नार्वे में अब तक जो देखा, उस से यहां का वातावरण कुछ भिन्न लगा. मल्लाह लड़कियों को साथ लिए घूमते दिखाई पड़े. शराब में स्त्रीपुरुष धुत्त थे और शोरशराबा भी कम नहीं था.

कहते हैं चार कदम चलते ही पहचान दोस्ती में बदल जाती है. दो दिनों के सफर में साथी यात्रियों से जानपहचान अच्छी हो गई थी. भारतीय होने के नाते उन सब की उत्सुकता मेरे प्रति कुछ अधिक थी. मौकेबेमौके तरहतरह के सवालों के जवाब दे कर उन की जिज्ञासा शांत करता रहता था. सवाल भी बड़े अजीब थे. एक महिला ने पूछा कि रंग को सांवला बनाने का सब से उत्तम उपाय

ऊंचे पर्वत, गहरी घाटी : संघर्ष की भुजाओं में मुसकाता एक छोटा सा गांव

कौन सा है? एक अन्य महिला न जानना चाहा, भारतीय ग्रामीण चित्रों में मर्द के पीछे औरत चलती देखी जाती है. साथ क्यों नहीं चलती? होली में अपने मुंह को रंग कर लोग सड़कों पर क्यों नाचते हैं? आप के यहां पत्नियां पतियों से इतनी डरती क्यों हैं?

इस से लाभ भी हुआ. हम सब की आपसी झिझक मिट गई और हंसीखुशी के वातावरण में यात्रा और आनंदपूर्ण हो गई.

अगले दिन सुबह उठ कर देखता हूं कि तैराकी की पोशाक में सभी साथी तैयार हैं. मुझ से भी फियर्ड में तैरने के लिए बहुत अनुरोध करने लगे, पर मैं गरम कपड़ों म भी सर्दी महसूस कर रहा था. तब भला खुले में तैरने की हिम्मत मुझे कैसे होती! महिलाओं से बहुत कहनेसुनने पर किसी तरह छुटकारा मिला. साथ उन के जरूर गया. इतनी सर्दी में भी लोग खूब तैरे.

लौट कर नाश्ता किया और फिर अपनीअपनी सीटों पर गाड़ी में जा बैठे. दिन भर में हम ने कोई तीन सौ मील की दूरी तय की. रास्ते में दृश्य लगभग एक से ही मिलते रहे. नदियां, झीलें, फियर्ड, गांव और उन के आसपास खेत. कहींकहीं नदियां बहुत तेज धार से बहती मिलीं. इसी प्रकार निखातों के बीच से समुद्र का जल भी देखा. बड़े वेग से प्रवेश कर रहा था. जब किसी कगार पर से हमारी गाड़ी गुजरती तो नीचे झांक कर देखने पर भय सा होने लगता था. ड्राइवर यहां होशियार होते हैं, वरना हाथ सधे न रहें तो गाड़ी का संभलना मुश्किल ही है. तब हड्डीपसली का पता तक न चले, गहरे खड्डों में जलसमाधि निश्चित है.

रात में हम लिलेमर नाम के एक गांव में ठहरे. लगभग तीनचार हजार सैलानी यहां हर समय रहते हैं. कहते हैं कि यहां के रेस्तरां का भोजन बड़ा स्वादिष्ट बनता है. मेरे लिए स्वाद चखना संभव न था क्योंकि भोजन क्या था मछली, केकड़े और भांतिभांति के घोंघे थे. जो भी हो, दूध, मक्खन, रोटी भी यहां अच्छी मिली. गांव छोटा सा था मगर आधुनिक साधन सभी मौजूद थे.

तीसरे दिन शाम को हम नार्वे की राजधानी ओसलो पहुंचे. नार्विक से ओसलो की यात्रा काफी लंबी और बीहड़ थी. फिर भी जितना आनंद इस में मुझे मिला, वह एक मधुर स्मृति के रूप में आज भी मैं ने संजो कर रख छोड़ा है.

प्रकृति एक ऐसी श्रेष्ठ कृति है जिसे बिना किसी अतिरिक्त खर्च के हम उपयोग कर सकते हैं. हमारे देश में भी अपूर्व रमणीय स्थल हैं. हो सकता है, प्राचीनकाल में अतिथि सत्कार की भावना के कारण इन स्थानों में यात्रियों को असुविधा न हुआ करती हो पर आज के युग में तो हमें इन को लोकप्रिय बनाने के लिए आवागमन के उन्नत साधनों और आधुनिक सुखसुविधा की व्यवस्था करनी ही पड़ेगी. अपने यहां जिन्होंने पहलगांव से अमरनाथ और मनाली से रोहतांग की यात्रा की है, उन्हें हमारी कमियों का व्यक्तिगत अनुभव हुआ होगा.

ओसलो इस देश की राजधानी भले ही हो पर वह मुझे विशेष आकर्षक नहीं लगा. संभव है इसलिए कि इस से पहले मैं यूरोप के कई एक बड़ेबड़े शहरों को देख चुका था. कहते हैं, यह शहर लगभग एक हजार वर्ष पुराना है लेकिन शहर घूमने पर ऐसा नहीं लगता. हां, यहां के म्यूजियमों में प्राचीनकाल के चिन्ह अवश्य मिल जाते हैं. वाईकिंगों की पोशाक, हथियार और नावें रखी हुई हैं. शहर में पुराने जमाने के दोएक गढ़ या किले भी हैं.

यह अपने ही नाम के फियर्ड पर बसा है. पांच लाख की आबादी वाला यह शहर नार्वे का प्रमुख बंदरगाह है. जहाज यहां साल भर आयाजाया करते हैं. उत्तरी यूरोप के बड़े बंदरगाहों में इस की मान्यता है.

यदि नार्विक में मध्यरात्रि का सूर्य देखने न जाता तो शायद यहां आता भी नहीं. बस, केवल अपनी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति ने मुझे इस उत्तरी ध्रुवांचलीय स्थान को देखने के लिए प्रेरित कर दिया. इस यात्रा में प्रभुदयालजी साथ नहीं थे. भोजन की असुविधा साधारणतया मुझे हुई नहीं क्योंकि स्कैंडिनेविया के देशों में दूध, मक्खन, रोटी और पनीर बहुतायत से मिल जाते हैं.

ओसलो के लिए मैं ने होटल में पहले से बुकिंग नहीं कराई थी. गरमी के इन दिनों में मेरी तरह दूसरे बहुत से यात्री ध्रुवांचलीय स्थानों से घूमते हुए यहां आ जाते हैं. इसी लिए होटलों में जगह की कमी हो जाती है. मैं ने तीनचार होटलों में कोशिश की पर सफल न हो सका. एक बार तो यहां तक भ्रम हुआ कि रंगभेद की भावना के कारण शायद मुझे स्थान नहीं दिया जा रहा है पर देखा, मेरी तरह अन्य गैर यूरोपीय लोग उन्हीं होटलों में हैं तो यह भ्रम मिट गया.

कुछ पशोपेश में पड़ गया. रात के दस बज चुके थे. सोचने लगा कि आवास की व्यवस्था तो होनी ही चाहिए. खैर, कुछ और कोशिश करने पर जगह

नार्वे का एक गांव : आधुनिक जीवन की सब सुविधाएं और चहलपहल भरी जिंदगी

मिली एक छोटी सी सराय (पेंसन) में. अवकाश प्राप्त व्यक्ति अपने मकान में तीनचार कमरे किराए पर उठाने के लिए रख छोड़ते हैं. इन के यहां किराएदारों के लिए चाय, नाश्ते, भोजन आदि की भी व्यवस्था रहती है. अधिकतर इन पेंसनों की मालकिन महिलाएं होती हैं. कमरे में गया, एक अजीब सी सीलन की गंध मिली. वह गंध अब तक याद है. बहरहाल, मैं खुश था कि चलो जगह तो मिल गई वरना अनजान शहर में सारी रात भटकता ही रह जाता.

सामान रख कर बैठा ही था कि मालकिन की लड़की दूधरोटी ले कर आई. देखता हूं कि उस के साथ एक अन्य लड़की हाथ में बैग ले कर आई है. पहली के चले जाने पर दूसरी लड़की बैग खोल कर उस में से कई तरह की सिगरेटें निकाल कर दिखाने लगी. मैं ने कई बार उसे समझाया कि मैं सिगरेट नहीं पीता पर वह तो मानो छोड़ने को तैयार ही नहीं थी. टूटीफूटी अंगरेजी में बेतरह मनुहार करने लगी कि कुछ न कुछ पसंद कर ही लूं. सट कर इस प्रकार बेतकल्लुफी से बैठ गई जैसे बहुत पुरानी जानपहचान हो. लाचार हो कर मुझे आवाज में कुछ बेरुखी ला कर उसे जाने के लिए कहना पड़ा.

दूसरे दिन सवेरे मैं ने सराय की मालकिन से रात की घटना का जिक्र किया. वह मुसकरा कर कहने लगी कि आप ने बड़ेबड़े होटलों को छोड़ कर मेरी सराय में रहना पसंद किया, इस से हमारे समझने में कुछ भूल हो गई. क्या कहूं आप ने पसंद ही नहीं की, नहीं तो वह आप की ओसलो यात्रा को बहुत ही मधुर बना देती. अपने देश में पंजाब, अन्य पहाड़ी इलाकों के होटलों के बारे में इस ढंग की बातें सुनी

थीं पर इन सभ्य और उन्नत देशों में भी यात्रियों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था रहती है, यह तो यहां आ कर ही जान पाया.

मालकिन क्याक्या कह गई, ठीक समझ नहीं पाया पर शायद उस का आशय था कि जो आत्मीयता और सुखसुविधा उस की इस सराय में मिल सकती है, वह बड़े होटलों में नहीं मिलेगी. उस ने यह भी कहा, "यूरोप और अमरीका के अलावा दूसरे देशों के भी विशिष्ट व्यक्ति इस सराय में ठहरा करते हैं और हफ्तों के लिए बुकिंग करा लेते हैं. आप का तो महज दो ही दिनों का प्रोग्राम है. चाहें तो गाइड के रूप में किसी सहायक को साथ कर दूं. चार्ज टूरिस्ट प्रतिष्ठानों से बहुत ही कम लगेगा."

ओसलो में मैं किसी को जानता नहीं था, न मुझे इन सरायों के बारे में ही कुछ पता था. इसलिए विदेश में अप्रत्याशित झंझटों से बचने की प्रेरणा और मितव्ययी होने की आदत के कारण उस के दोनों सुझावों के लिए मैं ने धन्यवाद दिया और गाइड न ले कर गाइडबुक लेना स्वीकार किया.

गाइडबुक पढ़ कर मैं ने मोटे तौर पर शहर घूमने का एक कार्यक्रम बना लिया. पूरे दिन के लिए तीन रुपए में ट्राम की टिकट ले ली.

सब से पहले मैं जहाज बनाने के कारखाने देखने गया. नार्वे उन दिनों जहाजरानी के उद्योग में विश्व में द्वितीय स्थान पर था. अब तो जापान सब से आगे बढ़ गया है इसलिए इस का स्थान तृतीय माना जाता है. जो भी हो, नार्वे का यह उद्योग उस की आर्थिक स्थिति को संभालने में बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है. केवल जहाजों के किराए से ही नार्वे की वार्षिक आय १६० करोड़ रुपए है यानी इस देश की आबादी के अनुसार प्रति व्यक्ति ४५० रुपए. यह आय हमारे भारतवर्ष की कुल आय से भी कुछ अधिक है.

यहां के जहाज के कारखाने और इस उद्योग के विकास को देख कर नार्वेवासियों के प्रति मन में आदर का भाव उठना स्वाभाविक है. दैनिक जीवन के लिए आवश्यक अन्नवस्त्र और उद्योगों के लिए प्रयोजनीय धातु और कोयले के अभाव को इन्होंने केवल श्रम और अध्यवसाय से दूर किया है. १४५ लाख टन के जहाज तो केवल यहां के प्रतिष्ठानों के पास हैं. इस के अलावा ५० लाख टन के जहाज इन के कारखानों में प्रति वर्ष बनाए जाते हैं. आठ मील लंबी गोदी में सूखे डौक, तैरते डौक और पानी के डौक पर बने बीसियों कारखाने हैं जिन में जहाजों के वृहदाकार ढांचे खड़े रहते हैं. देख कर तब आश्चर्य होता है जब कि थोड़े समय में ही लोहे के इन पिंजरों को सुंदर जहाजों में बदल दिया जाता है. तब ये महासागरों की ऊंचीऊंची लहरों को लांघते हुए दुनिया के कोनेकोने में माल और यात्री पहुंचाते हैं, अपने देश के लिए धन बटोरते हैं और उस धन से अन्नवस्त्र तथा अपने उद्योगों के लिए कच्चे माल खरीदते हैं.

देखा, मजदूर काफी स्वस्थ थे. लगन और मेहनत से काम पर जुटे हुए थे. एक कारखाने के निरीक्षक से पूछने पर पता चला कि इन के मुकाबले में केवल पश्चिमी जरमनी के मजदूर ही कार्य कुशलता और परिश्रम में ठहर पाते हैं.

मजदूरों की कैंटीन में गया. काफी और रोटी ली. कीमत को देखते हुए बुरी न थी. इन लोगों के मीनू को देखा, मांसाहार प्रधान है. यह स्वाभाविक भी

नार्वे का भविष्य इन के हाथों में है : एक स्कूल में सुबह के समय

है क्योंकि अत्यंत शीतप्रधान अंचल में होने तथा अन्न की कमी के कारण यहां मांसाहार आवश्यक हो जाता है. इन लोगों से बातें भी कीं. रूसी मजदूरों से ये कहीं अधिक जानकारी रखते हैं. इस का कारण शायद यह है कि रूस में निर्धारित काम और सरकार द्वारा नियंत्रित जीवन है. परिणाम यह होता है कि व्यक्तित्व कुंठित रहता है और व्यक्ति केवल यह सोचता है कि वह बड़ी मशीन का एक पुर्जा मात्र है. इसलिए वहां व्यक्ति केवल सौंपे गए काम, भोजन और भोग तक ही सीमित रहने का अभ्यस्त होता है. वहां न उस के पास अतीत है और न भविष्य, वह केवल वर्तमान देख सकता है. नार्वे के मजदूरों में ऐसी बात नहीं है. वे घरपरिवार, देशविदेश के बारे में सोचते हैं और एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना कर कदम बढ़ाते चलते हैं. उन का जीवन जड़ नहीं, चेतनापूर्ण है. फुरसत के समय वे इब्सन के साहित्य के बारे में भी चर्चा करते हैं.

जहाज के कारखानों को देख कर शहर वापस आ गया. यहां की सब से बड़ी सड़क है : कार्ल जीन्स गेट. इसी पर ओसलो की प्रसिद्ध इमारतें हैं. राजप्रासाद, संसद भवन, बड़ेबड़े दफ्तर, दुकानें और सब्जी के बाजार तक इसी एक सड़क की दोनों पटरियों पर मिल जाएंगे. ट्राम का पास सारे दिन के लिए था इसलिए इधर से उधर, रात के नौ बजे तक चक्कर लगाता रहा. लंबेतगड़े स्वस्थ चेहरों और खुशहाली को देख कर बारबार मन में विचार उठता था कि यदि इन देशों के लोग, जहां प्रकृति तक अनुदार है, मेहनत कर के खुशहाली ला सकते हैं तो हम अपने देश को, जहां खेतों पर नाज की बालियां मस्ती से झूमती हैं और

धरती अपनी कोख से शिल्पोद्योग के लिए भांतिभांति का कच्चा माल देती है, क्यों नहीं संपन्न बना पा रहे हैं?

रात दस बजे अपनी सराय में लौटा. बाजार से कुछ फल और सब्जियां लेता आया था. देखा, मांबेटी राह देख रही थीं. उन्हें सब्जियां दे दीं और अगले आधे दिन के लिए एक गाइड की व्यवस्था कर देने को कहा. मैं चाहता था कि वाईकिंग म्यूजियम, संसद भवन, ग्रामीण म्यूजियम के अलावा विश्व के महान नाट्यकार इब्सन का निवासस्थान भी देख लूं. गाइड के लिए आधे दिन का चार्ज देना पड़ा ३० रुपया. लंच का खर्च और यातायात का किराया ऊपर से. सराय में ठहरने की वजह से किराए में जो बचत हुई थी, वह सभी रकम गाइड के खर्च में लग गई.

मईजून में स्कैंडिनेविया में रात के बारहएक बजे तक दिवालोक रहता है. सोते समय अंधेरा करने के लिए दरवाजे और खिड़कियों पर काले परदे गिरा दिए जाते हैं. रात को मालकिन की लड़की आई और परदे गिरा कर चली गई. जाते समय उस ने शुभरात्रि का अभिवादन करते हुए सुखद निद्रा की कामना की. पश्चिमी देशों में बतौर पेइंगगेस्ट ठहरने पर मालकिन या परिवार के लोगों का ध्यान अतिथि की सुखसुविधा पर बहुत रहता है. कम खर्च और आत्मीयता के कारण बहुत से लोग इस व्यवस्था को होटलों से ज्यादा पसंद करते हैं.

दूसरे दिन सुबह आठ बजे नाश्ता कर के उठा तो देखता हूं कि गाइड के रूप में वही सिगरेट वाली लड़की हाजिर है. देखा, किसी प्रकार का संकोच या झेंप अथवा रोष की झलक उस के चेहरे पर न थी. ऐसी दिखती थी मानो पहले-पहल मिल रही हो. मालकिन ने उस का परिचय कराया, नाम था डोरोथी. हम दोनों घूमने निकल पड़े.

सब से पहले विदोय प्रायद्वीप में यहां के म्यूजियम देखने थे. रास्ते में हम ने देखा ओसलो फियर्ड में इतनी बड़ी संख्या में छोटेबड़े बोट तेजी से आजा रहे थे कि किसी भी समय आपस में टकरा जाने की संभावना थी. पर नार्वे के मल्लाह इतने कुशल हैं कि इस संकरे फियर्ड में बड़ी तत्परता और सफाई से बोट निकाल ले जाते हैं.

बाहर से देखने पर यहां के म्यूजियम लंदन और पेरिस के म्यूजियमों के मुकाबले में नहीं ठहरते पर अंदर जाने पर संग्रह बेजोड़ लगते हैं. एक कक्ष में देखा नानसेन का 'फ्राम' जहाज रखा है. वे सारी वस्तुएं भी रखी हैं जिन्हें वह उत्तरी ध्रुव की यात्रा में ले गया था. इस छोटे से जहाज को देख कर आश्चर्य होता है कि आज से ७० वर्ष पहले, जब विज्ञान न तो इतना उन्नत था और न आज के से साधन थे, उत्तरी ध्रुव की खतरनाक यात्रा इस छोटे से बोट में करने का साहस उस ने कैसे किया! उस की लिखी हुई पुस्तक 'उत्तरी कोहरा' पढ़ने पर पता चलता है कि उसे अपनी इन यात्राओं में कितने कष्ट झेलने पड़े थे.

पास ही देखा 'कोनटिकी' नाम का जहाज भी था. इसे बोट कहना ही अधिक उपयुक्त होगा. हाइड्रल नाम के नार्वे के एक युवक ने इसी पर पेरु से पोलिने-शिया तक की समुद्र यात्रा की. लगभग पांच सौ मील की लंबी और कष्टों से भरी यात्रा, ऊपर से प्रशांत की ऊंची लहरें. फिर भी साहसपूर्वक यह दुस्साहसिक

राष्ट्रीय रंगमंच : नार्वे के मजदूर भी इब्सन के बारे में बातें करते ह

कार्य उस ने पूरा कर ही लिया. 'कोनटिकी' पुस्तक में इस यात्रा के कष्ट और अनुभवों का वर्णन पढ़ कर ऐसे नौजवानों के प्रति आदर के भाव जाग उठते हैं जिन्होंने इस प्रकार के खतरे उठा कर अपने देश के गौरव को बढ़ाया.

ग्यारह सौ वर्ष पहले के तीन वाइकिंग युद्धपोत देखे. इन्हीं पर बैठ कर नार्वे के योद्धा अबाध रूप से यूरोप के देशों पर उमड़ पड़ते थे. इन के बारे में जो पढ़ने को मिलता है, उस से रोंगटे खड़े हो जाते हैं. इस प्रकार की बर्बरता की तुलना रोम के वहशी सम्राट नीरो के कारनामे, अरबों या तुर्कों द्वारा जेहाद अथवा नादिरशाह की खूंरेजी से की जा सकती है. आज के युग में नाजी फौजों और साम्यवादियों ने भी कम अत्याचार नहीं किए हैं. फिर भी सभ्यता का एक परदा इन लोगों ने जरूर रखा था. लोगों की नजरों से दूर नाजी कंसंट्रेशन कैंपों और साइबेरिया की वीरान जेलों में हजारों की तादाद में घुटाघुटा कर लोगों के दम तोड़े गए जब कि प्राचीन काल में सरेआम आगजनी और कत्लेआम किया जाता था. सुसभ्य अंगरेज और डच भी किसी से कम नहीं थे. हां, इन का तरीका जरूर कुछ भिन्न रहा है. ये जोंक या चीते की तरह खून पीते रहे. जब देश नंगाभूखा हो गया तब उसे आजाद कर इन लोगों ने इंसानियत का डंका पिटवा दिया. शायद मनुष्य की पाशविक प्रवृत्ति उस की चिर सहचरी है.

डोरोथी से बीचबीच में आवश्यक जानकारी मिलती जा रही थी. मैं ने उसे बताया कि हमारा देश भी किसी समय सामुद्रिक व्यापार और यात्राओं में अद्वितीय था पर हम ने यूरोप वालों की तरह कभी बर्बरता नहीं की. विदेशों को हम ने लूटा नहीं, उन्हें दिया ही, और जो दिया वह आज भी उन की सभ्यता

और संस्कृति में है. वर्मा, मलाया, स्याम और इंदोनेशिया से ले कर सुदूर दक्षिण अमरीका तक के देश इस की साक्षी दे रहे हैं.

वाइकिंगों के आक्रमण योजनावद्ध और सुसंगठित होते थे. वे पहले पास के किसी टापू पर जहाज और सामान इकट्ठा कर लेते, फिर वहां से सैकड़ों नावों में सवार हो कर धावा वोल देते थे. गांवों में आग लगाना और मारतेकाटते ध्वंस करते निकल जाना उन का पूर्व नियोजित कार्यक्रम होता था. सिवा जवान औरतों के, शेष सभी को वे आग में ढकेल देते थे. युवतियों से मनमानी करने के वाद वे उन्हें वहीं रोताकलपता छोड़ देते, साथ ले जाने की उन्हें फुरसत कहां थी! ले भी जाते तो अपने देश में उन्हें खिलाते क्या? वहां तो पहले ही से खाद्य सामग्री का अभाव था. अपार क्षति पहुंचा कर अट्टहास करते हुए अन्न और संपदा से लदे जलयानों और युद्धपोतों को ले कर वे फिर अपने देश को वापस आ जाते थे. जब कोई वड़ा योद्धा मर जाता तो उस के जलयान को उस की लूट की संपत्ति के साथ दफना देते थे. ऐसी ही तीन नौकाएं मिली हैं जिन्हें यहां म्यूजियम में रखा गया है.

ग्यारह सौ वर्ष वाद इन्हीं वाइकिंगों की आसुरी प्रवृत्ति उभर आई नाजी जरमनों में. उन्हीं वाइकिंगों की तरह वे उमड़ पड़े नार्वे पर. नार्वे श्रीहत हुआ, अपार धन की हानि हुई, नाजियों ने हजारों की संख्या में लोगों को गोली से उड़ा दिया. क्विसलिंग नामक एक राष्ट्रघाती नार्वेवासी को हिटलर ने यहां के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया. सन १९४० से १९४५ तक नार्वे पर जरमनों का अधिकार रहा. छः लाख जरमन फौजों ने इस देश को उत्तर से दक्षिण तक बुरी तरह रौंदा.

इन वर्षों में नार्वेवासियों ने धैर्य, संयम और साहस का जो परिचय प्रस्तुत किया है, उस की मिसाल वेजोड़ है. सारा राष्ट्र मानो एक नियोजित रूप से संगठित हो कष्टसहिष्णु बन उठा और विदेशियों से असहयोग करने लगा. नार्वे के राजा ने लंदन में अपनी सरकार संगठित कर ली. जहाज पहले ही बच निकले थे. वे मित्र राष्ट्रों के युद्ध के सामान, तेल, सेना और हथियारों को ढोने में लगे रहे. इन में से बहुतों को जरमन पनडुब्बियों ने नष्ट कर दिया, फिर भी, वे नार्वे वालों को पस्तहिम्मत न कर सके. नार्वे के लोग, जो विदेशों में थे, वहीं से संगठित हो कर जरमनों को परेशान करने में जुट पड़े.

जरमनी हारा और क्विसलिंग को गोली मार दी गई. जहां वह मारा गया था, वहीं पास में सैनिकों का एक स्मारक बनाया गया. शायद, याद दिलाने की इस भावना से कि नार्वे में एक क्विसलिंग पैदा जरूर हुआ मगर हजारों ऐसे भी हुए जिन्होंने देश की प्रतिष्ठा और मर्यादा के लिए अपने प्राणों की बलि दे दी.

वाइकिंगों की नौकाओं के संग्रहालय के निकट ही विगत एक हजार वर्षों में वने नार्वे के मकानों की प्रदर्शनी है. पुराने जमाने के मकान देखे. लकड़ी के मोटे लट्ठों को ऊपर नीचे खड़ा कर घरनुमा बनाया गया है. उसी रंग की बेडौल टेवल, कुरसियां और दूसरी चीजें देखने को मिलीं. खानेपीने के बरतन भी लकड़ी के थे: इन्हें देख कर मैं अपने यहां के हजार वर्ष से भी पहले के मकानों और लकड़ी के सामानों के वारे में सोचने लगता था. कितनी कारीगरी, खूब-

ओसलो का राज भवन : इतिहास का गवाह
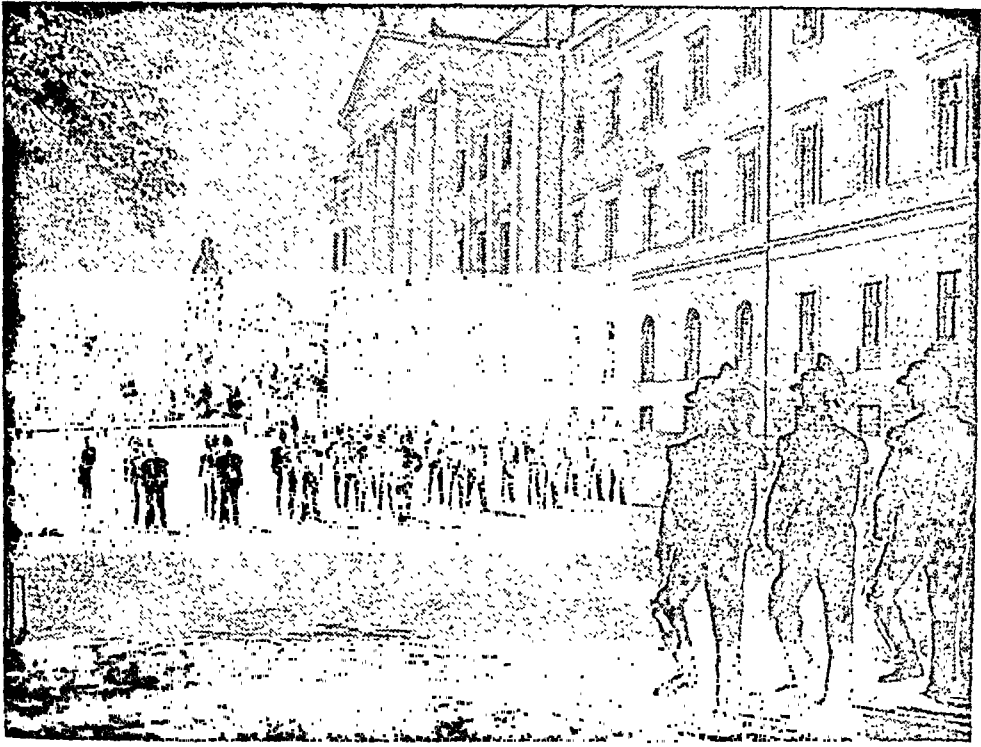
सूरती और नफासत हमारे यहां थीं! कितने संपन्न, सभ्य और सुसंस्कृत थे हम! लेकिन आज?. . .ऐसा क्यों?

दोपहर हो गई थी. हम विदोय से यहां की नेशनल लाइब्रेरी में गए. डोरोथी का कार्यक्रम मेरे साथ केवल आधे दिन का था. मैं ने उसे छुट्टी दे दी. मैं पुस्तकालय में रुक गया ताकि नार्वे के बारे में कुछ आंकड़े और आवश्यक जानकारी पा सकूं.

नार्वे में शायद ही कोई निरक्षर मिले. यही नहीं, अनेक भाषाएं जानने वाले लोग भी यहां मिल जाएंगे. अंगरेजी का जितना प्रचलन यहां है, उतना पड़ोसी देश फ्रांस या जरमनी में नहीं है. पचास करोड़ लोगों के देश भारत की नेशनल लाइब्रेरी से छत्तीसलाख की आबादी वाले इस देश की लाइब्रेरी में पुस्तकें अधिक हैं. इस के अलावा यहां और भी बड़ेबड़े पुस्तकालय हैं. जहां कहीं भी जाइए, स्त्री, बच्चे, बूढ़े, जवान, कुछ न कुछ पढ़ते मिल जाएंगे.

जानता था, यहां भी हिंदी में पुस्तकें नहीं मिलेंगी. हम ने आज तक इस का प्रयास ही नहीं किया कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पचास करोड़ की राजभाषा को सुपरिचित कराया जाए. फिर भी, हिंदी कोई भाषा है, इसे ध्यान में लाने के लिए मैं ने कुछ पुस्तकें हिंदी में देने का अनुरोध किया. पुस्तकालय का सहायक चीनी, जापानी, तुर्की, अरबी, फारसी का नाम तो जानता था, रवींद्र के कारण बंगला का नाम भी उस ने सुना था, पर हिंदी हिंदुस्तान की राजभाषा है, इस की उसे जानकारी नहीं थी. मैं मुसकरा उठा लेकिन उस पर नहीं, स्वयं पर, अपने

स्वीडन

निशा सूर्य के देश में

बहुत दिनों से सुन रखा था कि हमारी धरती पर उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव नामक ऐसे स्थान भी हैं जहां छः महीने का दिन और छः महीने की रात होती है. पिछली बार स्वीडन गया तो सोचा कि उत्तर के ध्रुवांचलीय प्रदेशों के इतने निकट जब पहुंच ही गया हूं तो क्यों न इस अवसर का लाभ उठा कर निशासूर्य के भी दर्शन कर लूं! इसी इरादे से नक्शे पर निगाह डाली तो देखा कि उत्तरी ध्रुव को आइसलैंड, स्कैंडिनेविया (नार्वे और स्वीडन), फिनलैंड, साइबेरिया और अलास्का एक दायरे में घेरे हुए हैं. स्कैंडिनेविया यूरोप के उत्तर में एक प्रायद्वीप है जिस का आकार मुंह खोले हुए शेर की तरह है. उस में दो राज्य या देश हैं. उत्तर पश्चिम में नार्वे है और दक्षिणपूर्व में स्वीडन.

स्कैंडिनेविया जाने का कार्यक्रम मेरे यूरोप पर्यटन में था, इसलिए मैं ने सब से पहले वहीं जाना ठीक समझा. तय किया कि पहले स्टाकहोम पहुंचा जाए, फिर वहां से उत्तर की ओर ध्रुवांचलीय प्रदेश लैपलैंड से होते हुए, नारविक के रास्ते, नारवे में प्रवेश कर उस की राजधानी ओसलो लौटा जाए, क्योंकि इस प्रकार स्वीडन और नारवे दोनों को उत्तर से दक्षिण तक देख लूंगा और निशासूर्य के दर्शन भी कर सकूंगा.

स्टाकहोम पहुंचा. यह स्वीडन की राजधानी है. इस में चारों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियों के साथ झीलों की कतार इस प्रकार गुंथी हुई है कि सारा वातावरण बहुत ही आकर्षक और दर्शनीय हो गया है. शहर के चारों ओर घने वन हैं, जो शहर के इतने निकट हैं कि शहर के मध्य भाग से बीसपचीस मिनट में ही वनों में पहुंचा जा सकता है.

स्टाकहोम की स्थिति सामरिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है. सच पूछा जाए तो इस की स्थापना ही बाल्टिक सागर के रास्ते पर स्वीडन पर होने वाले आक्रमणों के विरुद्ध एक गढ़ के रूप में हुई थी. बाल्टिक सागर से आने वाले शत्रुओं की सेनाएं मालार झील के रास्ते स्वीडन में काफी अंदर तक पहुंच जाती थीं. उन को मालार झील के मुहाने पर ही रोकने के लिए उस के मुहाने पर स्थित कई द्वीपों पर मोर्चाबंदी की गई थी और केंद्रीय स्थिति वाले द्वीप पर ग्यारहवीं शताब्दी में एक विशाल दुर्ग बनाया गया था. कालांतर में उस दुर्ग के आसपास बस्तियां बसती गईं. उन का ही विकसित रूप आधुनिक स्टाकहोम है.

लैपलैंड की आर्थिक और सामाजिक स्थिति रेंडियर के सहारे ही टिकी हुई है

नगर का उत्तरी भाग व्यापार और खरीदफरोख्त का केंद्र है. यहां आधुनिक ढंग की दुकानें और कार्यालय हैं. दक्षिणी भाग में, जो नदी के दूसरी ओर है, स्टाकहोम द्वीप है. इसी पर स्वीडन का संसद भवन है और उस से आगे प्राचीन दुर्ग के स्थान पर, एक बहुत ही भव्य राजप्रासाद खड़ा है. इस का नाम है रायल पैलेस. जिन दिनों रायल पैलेस में स्वीडन के नरेश नहीं रहते, उन दिनों कुछ कक्ष आम जनता के लिए खोल दिए जाते हैं. इस पैलेस में एक संग्रहालय भी है, जिस में भूतपूर्व राजारानियों के इस्तेमाल की वस्तुएं और अस्त्रशस्त्रादि संग्रहीत हैं.

स्टाडेन स्टाकहोम का सब से पुराना भाग है. उस की कई गलियां बड़ी घुमावदार हैं और कोईकोई तो इतनी संकरी हैं कि ऊपर की मंजिलों में आमनेसामने रहने वाले लोग खिड़कियों से आपस में हाथ मिला सकते हैं. इन गलियों को देख कर काशी की गलियों की याद ताजा हो उठी. यहां के लोगों का मुख्य धंधा नावों पर माल चढ़ानेउतारने का है. नदी के किनारे हर कहीं मालअसबाब से लदी नावें दिखाई पड़ती हैं.

किनारे पर ही खुले में बाजार लगे मिलेंगे. भड़कीले रंगों की रंगबिरंगी छतरियों के नीचे सजी दुकानें बड़ी विचित्र और आकर्षक नजर आती हैं. यहां एक और विचित्रता देखी. कुछ दुकानों पर कांच की बड़ीबड़ी पेटियों में मछलियां तैरती रहती हैं और खरीदफरोख्त के लिए आई स्त्रियां जिंदा मछलियों में से ही अपनी रसोई के लिए मछलियां चुनती हैं.

इस द्वीप का मध्य भाग कुछ ऊंचा है. यहीं स्टाकहोम का सब से पुराना कैथेड्रल है. चर्च में काठ पर जड़ी हुई 'संत जार्ज और अजगर' की एक प्राचीन मूर्ति भी देखी.

स्टाकहोम में नीले रंग की ट्रामें ही आवागमन का मुख्य साधन हैं. ये ट्रामें काफी तेज रफ्तार में चलती हैं.

जनता के रहनसहन के स्तर की दृष्टि से स्वीडन और स्विट्जरलैंड की गिनती संसार के सब से अधिक अमीर देशों में की जाती है. स्टाकहोम में मैं ने रेडियो से लैस बहुत सी मर्सीडीज और हंबर जैसी महंगी मोटरगाड़ियां टैक्सियों की तरह चलती हुई देखीं!

शहर के बीच से होते हुए ट्राम से डियर पार्क पहुंचा. यहीं स्कासन देखा. यह एक बड़ा अजीबोगरीब संग्रहालय है. इस में स्वीडन के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न वास्तु शैलियों में बने पुराने मकान ला कर रखे गए हैं. यहां सदियों पुरानी पवनचक्कियां, लकड़ी के बने गिरजे, लैप लोगों की झोंपड़ियां और विभिन्न इमारतें मौजूद हैं. अधिकांश मकानों में उन के निर्माण काल की ही मेजें, पलंग, कुरसियां आदि रखी हैं. विभिन्न प्रदेशों की तरहतरह की पोशाकें भी यहां रखी गई हैं.

इस संग्रहालय में एक चिड़ियाघर भी है जिस में केवल स्वीडन से बाहर के पशुपक्षी रखे गए हैं. पूरा संग्रहालय इस प्रकार बनाया गया है कि प्राकृतिक शोभा के साथ वह एकरूप हो गया है. कहीं भी कृत्रिमता नहीं आ पाई है.

स्टाकहोम की सब से सुंदर इमारत है टाउन हाल. यह आधुनिक वास्तुकला का एक बहुत ही अच्छा नमूना है और संसार भर में प्रसिद्ध है. कहते हैं कि इस के निर्माण में बारह वर्ष लगे थे. यह इमारत मालार झील के किनारे एक तिकोने प्लाट पर बनाई गई है. काले पत्थर से बने इस के खंभों और मेहराबों का प्रतिबिंब झील के जल में देखते ही बनता है. इस की छत पर खड़े हो कर उत्तरी यूरोप के वेनिस—स्टाकहोम—को देखा जा सकता है. देखते समय घुमावदार गलियों, चमकती नहरों, हरेभरे पार्कों, नीली ट्रामों, रंगबिरंगी छतरियों वाली दुकानों और नौकाओं का दृश्य बड़ा ही अद्भुत लगता है.

नारविक जाने के लिए मैं ने पूर्वी तटीय मार्ग चुना. मतलब यह कि स्टाकहोम से बोदेन होते हुए किरूना के रास्ते नारविक जाने का मार्ग अपनाया. तीसरे दर्जे का टिकट ले कर २३ अप्रैल को दिन के चार बजे ट्रेन में सवार हुआ. यहां के तीसरे दर्जे का किराया हमारे यहां के पहले दर्जे के किराए के बराबर है पर उस में आराम और सुविधाएं हमारे यहां के पहले दर्जे के मुकाबले कहीं ज्यादा हैं.

पूरी ट्रेन में गैस के नलों द्वारा ताप को नियंत्रित करने की व्यवस्था है. घंटी बजाते ही ट्रेन का एक कर्मचारी हाजिर हो जाता है. रात को सोने के लिए

जहां आधीरात को भी सूर्य चमकता है

बिस्तर तैयार मिलता है और साथ ही तौलिया तथा पानी का गिलास भी मिलता है. पश्चिमी देशों में कहीं भी बिस्तर ढोने की मुसीबत नहीं उठानी पड़ती क्योंकि जहाज, हवाई जहाज, रेल आदि की यात्रा में या होटल में, जहां भी ठहरिए, साफसुथरा बिस्तर तैयार मिलता है.

ट्रेन में भोजन आदि की व्यवस्था भी थी. निरामिष होने के बावजूद मुझे असुविधा नहीं हुई. दूध, पावरोटी और मक्खन पर्याप्त मात्रा में मिल गया. ट्रेन पूर्वी तट के समानांतर वोदेन तक जाती थी.

स्वीडन के इस भाग में बहुत सुंदर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं. इस प्रदेश में घने जंगल हैं. वनों की उपज तथा शिल्पोद्योग से यह संपन्न बन गया है. इस अंचल में नदियां और बंदरगाह भी हैं.

पश्चिम में नारवे के पर्वतों से नदियां निकल कर स्वीडन के आरपार पूर्व में बोथानियां की खाड़ी में गिरती हैं. इन नदियों में काटछांट कर लट्ठे बहा दिए जाते हैं जो बहते हुए कारखानों में पहुंचते हैं. यहां इन्हें काट कर और इन का सामान बना कर निर्यात के लिए बंदरगाहों में भेज दिया जाता है.

लकड़ी का उपयोग कागज बनाने में भी होता है. स्वीडन का कागज संसार भर में प्रसिद्ध है. यहां नदियों के प्रवाह को रोक कर विद्युतशक्ति का भी उत्पादन किया जाता है, जिस से बड़ेबड़े कारखाने चलते हैं.

स्वीडन वासियों पर प्रकृति की बड़ी कृपा है. स्वीडिश भी प्रकृति के प्रति अनुदार नहीं हैं. वे जंगल में पेड़ों पर आरे चलाते हैं लेकिन साथसाथ उन के विकास की भी व्यवस्था करते हैं. वे नदियों के प्रवाह को बांध बना कर रोकते हैं पर इस बात का भी खयाल रखते हैं कि बांध के कारण आगे चल कर खेती या जमीन पर प्रतिकूल

प्रभाव न पड़े. यही कारण है कि आज स्वीडन कागज और लकड़ी के उद्योग में संसार के अग्रणी देशों में गिना जाता है. साथ ही वह कृषि के क्षेत्र में भी उन्नति की ओर बढ़ रहा है.

स्वीडन को प्रकृति से एक और वरदान मिला है. वह वरदान है बहुत अच्छे किस्म के लोहे का. यूरोप में सब से अधिक लोहा इसी देश में होता है. यहां लोहे की खानें मुख्यतः दो स्थानों में हैं—मध्यभाग में तथा उत्तर के लैपलैंड में. स्वीडन प्राचीन काल से ही लोहे के उद्योग में अन्य देशों से बढ़ कर रहा है. आज भी अच्छे इस्पात के लिए स्वीडन का लोहा प्रसिद्ध है. स्वीडन को समृद्ध बनाने और विदेशों से धन बटोर कर देने में, कागज और लकड़ी की भांति, लोहा भी मदद कर रहा है.

यात्रा काफी आरामदेह थी. शीशे की खिड़कियों पर काले परदे बाहर की रोशनी से बचाव कर रहे थे इसलिए नींद में बाधा नहीं पड़ी. सुबह आठ बजे नींद खुली.

रात भर में लगभग ७०० मील उत्तर की ओर आ गया था. याद आया, स्वीडन की ट्रेनें अपनी तेजरफ्तारी के लिए प्रसिद्ध हैं. सुबह की ठंडी हवा में ताजगी थी. एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव हुआ. झटपट तैयार हो गया. शीशे से काले परदे को हटा कर बाहर का दृश्य देखने लगा.

बाहर तेज धूप छिटक रही थी और धरती अप्रैल के उस अंतिम सप्ताह में भी बरफीली चादर से ढकी नजर आ रही थी. कभीकभी छोटछोटे गांव आंखों के सामने आ कर तुरंत ओझल हो जाते थे.

ट्रेन नौ बजे बोदेन पहुंची. उत्तरी स्वीडन का यह बड़ा रेलवे जंकशन है. साथ ही सैनिक केंद्र और एक औद्योगिक नगर भी है. स्टाकहोम से यहां तक यह ट्रेन एक्सप्रेस रहती है पर इस से आगे पैसेंजर हो जाती है क्योंकि उत्तर के इस प्रदेश में यात्रियों का आनाजाना कम हो जाता है. यहां से उत्तरपश्चिम की ओर किरूना होते हुए नारविक तथा दक्षिणपूर्व की ओर लुएला के बंदरगाह पर पहुंचा जा सकता है.

बोदेन से ट्रेन लगभग साठ मील ही चली होगी कि सफेद पत्थरों की बनी एक सीमारेखा दिखाई पड़ी. मन में प्रश्न उठा, 'स्वीडन की सीमा का अंत यहां तो नहीं होना चाहिए, फिर यह सीमारेखा यहां कैसे?' इतने में ही एक बोर्ड आंखों के सामने से गुजरा. अंगरेजी तथा अन्य दोतीन भाषाओं में उस पर लिखा था—उत्तरी वृत्त. मुझे खुशी हुई कि मैं अब ध्रुवांचलीय प्रदेश लैपलैंड में पहुंच गया हूं, जहां दो महीने सूर्यास्त होता ही नहीं.

किरूना में लैपों की एक अच्छी सराय है, जहां वे काफी और शराब के प्यालों पर जुटते हैं. मैं भी घूमताघामता वहीं पहुंचा. बड़ी इच्छा थी इन्हें पास से देखनेसमझने की. वहीं एक शिक्षित लैप से भेंट हो गई. वह थोड़ीबहुत अंगरेजी जानता था. इसी के माध्यम से बातें कर के लैपों के बारे में काफी जानकारी हासिल की.

लैप एक आदिम जाति है. लैपों की अपनी एक सभ्यता है. साधारणतः

रेगिस्तान में जैसे ऊंट, वरफानी प्रदेश में वैसे ही रेंडियर

प्रत्येक लैप तीन या कम से कम दो भाषाएं तो जानता ही है. लैपों में कई ऐसे हैं जो डाक्टर हैं, स्कूल-कालिजों और विश्वविद्यालयों में अध्यापक हैं. स्वीडन की सरकार ने लैपों को समान नागरिक अधिकार दिया है. उन की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था है. अपनी बात और अपने लोगों के प्रति जिस प्रकार का लगाव हम लोगों में रहता है उसी प्रकार का लैपों में भी है. भले ही कोई लैप डाक्टर, इंजीनियर या प्रोफेसर बन जाए, स्वजनों का मोह उसे बराबर खींचता रहता है. बहुत से ऐसे लैप भी हैं जो आधुनिकता से पिंड छुड़ा कर अपने उसी कठोर जीवन में चले आए हैं और सचमुच उस में वे सुखशांति और आराम का अनुभव करते हैं.

रेगिस्तान में जैसे ऊंट सब से बड़ी संपत्ति और जहाज है, वैसे ही वरफानी प्रदेश में रेंडियर है. यह हमारे देश के बारहसिंगे जैसा होता है. प्राचीन काल में जिस प्रकार गाय की महत्ता हमारे जीवन के विविध अंगों में थी, ठीक उसी प्रकार रेंडियर की महत्ता लैप जीवन में है. इन की आर्थिक और सामाजिक स्थिति इसी के सहारे टिकी हुई है.

वरफानी प्रदेश का यह पशु वरफ के बीच जमने वाली काई जैसी घास खा कर ही जीवित रहता है. लैपों को इस से अपना आहार और दूध प्राप्त होता है. लैप इस का मांस तो खाते ही हैं, इस की हड्डियों, चर्बी, मज्जा, तंतु, रोएं और चमड़े तक को काम में ले आते हैं. इस के सींग और हड्डियों से हथियार, औजार और दस्तकारी की कलापूर्ण वस्तुएं बनाई जाती हैं. मछली मारने के लिए इस की खाल का उपयोग नाव बनाने में किया जाता है. अपने तंबू सीने के लिए लैप इस की अंतड़ियों तक का धागे के रूप में उपयोग करते हैं. तंबुओं को रेंडियर ढोते हैं.

बाजार से रात के भोजन के लिए मुझे दालचावल, सब्जियां लेनी थीं. सौदा खरीदते समय मैं ने देखा कि शहर में सभी सुविधाएं अन्य आधुनिक शहरों की तरह उपलब्ध हैं. वैसे तो अंगरेजी समझने वाले मिल ही जाते हैं पर मुझे कहींकहीं दिक्कत भी महसूस हुई. ऐसे वक्त सोचने लगा कि स्वेड और अंगरेजी भाषा का

स्रोत तो एक ही भाषा से है. आपस में बोल भले ही न सकें पर इन में क्या इतना अन्तर है कि परस्पर समझना भी कठिन है? संस्कृत से निकली हमारी हिंदी तो अपनी बहनों गुजराती, बंगला, मराठी, असमी वगैरह से इतनी मिलतीजुलती है कि इन के बोलने वाले की भाषा हम बोल चाहे न सकें पर समझ तो लेते ही हैं.

मैं नारविक जाने वाली ट्रेन में बैठा था. किरूना पीछे छूटता जा रहा था. सोच रहा था, 'अच्छा हुआ कि यहां के लोग गुटबंदी के चक्कर में नहीं फंसे. फंस जाते तो क्या पता आज अन्य देशों की भांति इन्हें भी अमरीका या रूस का मुंह ताकना पड़ता.'

१० बजे रात को नारविक पहुंचा. नारवे के उत्तरी भाग में यह व्यापार का प्रमुख केंद्र तथा बंदरगाह है. ध्रुवांचलीय प्रदेश में होने पर भी यह बंदरगाह बारहों महीने जहाजों के आनेजाने के लिए खुला रहता है. इस का कारण एटलांटिक महासागर के बीच से बहती हुई वह उष्ण धारा है जिसे 'गलफ स्ट्रीम' कहते हैं. वह यहां बरफ जमने नहीं देती. नारविक बंदरगाह से नारवे अपने यहां तथा स्वीडन का लोहे का सामान और लकड़ी विदेशों को निर्यात करता है.

इस नगर को पिछले महायुद्ध में जर्मनों ने बुरी तरह तहसनहस कर दिया था लेकिन अब नारवे के लोगों के धैर्य और अध्यवसाय के कारण यह फिर से उठ खड़ा हुआ है. यही वजह है कि अच्छेअच्छे होटल तथा यातायात की सारी सुविधाएं यहां बड़ी आसानी से हासिल हो जाती हैं.

निशासूर्य के दर्शन कराने के लिए स्वीडन तथा नारवे दोनों ही देशों की ट्रेनें, हवाई जहाज, बस आदि नियमित रूप से राजधानी से ध्रुवांचल तक आयाजाया करती हैं. हवाई जहाज से तो ६ घंटे में ही वापस लौटा जा सकता है. स्टाकहोम के हवाई अड्डे से १० बजे रात को हवाई जहाज रवाना होता है. उत्तर की ओर बढ़ने पर रात के समय आप को अंधेरा मिलने के बजाए उजाला मिलता जाएगा. ध्रुवांचल में आप को निशासूर्य के दर्शन करा कर यह साढ़े तीन बजे स्टाकहोम वापस ले जाता है.

मैं रात के समय नारविक पहुंचा था लेकिन वहां दिन की तरह प्रकाश था.

दूसरे दिन सुबह की ट्रेन से नारवे की राजधानी ओसलो के लिए रवाना हो गया. जितना मनोहर दृश्य मुझे किरूना और नारविक के बीच सफर में देखने को मिला था, उतना विदेशों में और कहीं नहीं मिला. रास्ते में तोरनेत्रास्क झील का पानी जम कर चट्टान सा बन गया था. लैप मछुए इस पर खेमे डाल कर रह रहे थे. यहीं जीवन में पहली बार निशासूर्य का आलोक देखा. सूर्य यहां मई से जुलाई तक अस्त नहीं होता. अपने यहां सूर्यास्त के घंटे भर पहले सूर्य में जैसी आभा रहती है, वैसी ही आभा रात को १२ बजे मुझे दिखाई पड़ी.

क्षितिज से कुछ ऊपर को उठा हुआ वह मुसकरा रहा था. उस के दर्शन से ही मेरा शरीर पुलकित हो उठा. मैं समझ न पाया कि उस प्रकाशपुंज को क्या कहूं—दिवाकर, निशाकर या प्रभाकर!

डेनमार्क

जहां राजा के साए में वास्तविक जनतंत्र पनप रहा है....

डेनमार्क स्कैंडिनेविया के देशों में सब से छोटा है. कुछ वर्ष पहले तक इस की प्रसिद्धि 'दूधमक्खन का देश' के नाम से थी. आज भी यह दूध, मक्खन, पनीर, अंडे, मांस इत्यादि के उत्पादन के लिए संसार के अग्रणी देशों में माना जाता है. इस के अलावा पिछले महायुद्ध के बाद जब से इस ने औद्योगीकरण की ओर ध्यान दिया है, यहां उद्योगधंधों का विकास भी द्रुत गति से हो रहा है. डीजल इंजन के बड़ेबड़े कारखाने, सीमेंट, केमिकल और कागज की मिलें भी पूरी सफलता के साथ उत्पादन कर रही हैं.

डेनमार्क का क्षेत्रफल १६,००० वर्ग मील है और आबादी सिर्फ ४६,००,०००. कृषि और पशुपालन यहां का मुख्य व्यवसाय सदियों से रहा है. यूरोप के इतिहास में डेनमार्क का विशेष स्थान रहा है. डेन और स्कैंडिनेविया के 'वाइकिंग' प्रसिद्ध योद्धा माने जाते थे. चंगेजी और तैमूरी आंधियां स्थल पर चलती थीं तो डेन और वाइकिंगो का तूफानी हमला सागर से उठता हुआ उत्तरी यूरोप के तटों से टकराता था. बड़ेबड़े जहाजों पर हजारों की संख्या में ये हमला करते थे. इंगलैंड पर इन का आधिपत्य रहा है. उत्तरी यूरोप इन के नाम से कांप उठता था. अब युद्ध के तौरतरीके बदल गए हैं—न समुद्री जहाजी योद्धा रहे हैं, और न प्यादे और घुड़सवार ही. उन की जगह राकेट, एटम बम और हाइड्रोजन बमों ने ले ली है. डेनमार्क के लिए इस होड़ में हिस्सा लेना संभव नहीं था, इसलिए उस ने अपना ध्यान दूसरी तरफ लगाया और फलस्वरूप इस के कृषिजात द्रव्य विदेशों के बाजार पर छाए रहते हैं और इस से करोड़ों की आमदनी होती है.

डेनमार्क की अपनी प्रथम यात्रा में मैं अकेला ही गया था. उसी समय स्वीडन के उत्तरी भाग से हो कर किरूना और नारविक भी गया था. विदेशों में चाहे कितने ही आकर्षक और दर्शनीय स्थान क्यों न हों, किंतु बिना साथी के मन नहीं लगता, जल्दी ही स्वदेश लौटने की इच्छा प्रबल हो उठती है. डेनिश अच्छे मेजबान होते हैं. अतिथियों के सत्कार के लिए सदैव तत्पर रहते हैं. अकेला या अनमना देखने पर पूछपूछ कर प्रेरणा देते हैं, प्रसन्न करना चाहते हैं. इन्हें बड़ा ख्याल रहता है कि विदेशी उन के देश के प्रति उदासीनता की भावना न रखें, क्योंकि इस का प्रभाव अन्य यात्रियों पर पड़ सकता है. अकेलापन अखर गया था. दो ही दिन रहा था वहां, पर लौटते समय 'फिर कभी' की भावना ले कर आया. इसी कारण

यूरोप भ्रमण के अवसर पर दूसरी बार वहां प्रभुदयालजी के साथ गया.

यूरोप भोगवादी है. वहां के देश अपनी स्थिति या अवस्था से संतुष्ट नहीं रहते. पार्थिव लाभ के लिए सदैव यूरोपीय राष्ट्रों में होड़ सी लगी रहती है. ४६,००,००० की आवादी के इस छोटे से देश का निर्यात हमारे देश के निर्यात से ज्यादा है, जिस में अधिकांशतः मांस, मछली, अंडे और दूध की बनी चीजें हैं. चकित रह गया यह जान कर कि यहां औसत विदेशी व्यापार प्रति व्यक्ति ६,००० रुपए का है, जब कि हमारे देश का केवल ७० रुपए. इतने पर भी डेनमार्क को अपने पड़ोसी स्वीडन के समकक्ष होने की धुन है. इसी लिए कृषि और पशुपालन के अलावा आधुनिक उद्योगधंधों का भी वह विकास कर रहा है, साथसाथ पर्यटन उद्योग को भी बढ़ाना शुरू कर दिया है. सरकारी प्रोत्साहन से सुसज्जित रात्रि क्लब और कैबरे खुलने लगे. यही नहीं, मई से अगस्त तक टिवोली नाम का एक स्थायी कार्निवल भी बनाया गया. सारे विश्व में इस की प्रसिद्धि हो गई है. इस आकर्षण से दूरदूर से यात्री आया करते हैं.

सन १९६० में डेनमार्क में यात्रियों की संख्या १५,००,००० थी. इस प्रकार केवल पर्यटन उद्योग से उन्हें वार्षिक आय एक अरब दस करोड़ की हुई अर्थात हमारे यहां के प्रति व्यक्ति की आय से ४०० गुनी अधिक.

दूसरी यात्रा में यहां आया तो पहले से होटल की बुकिंग नहीं थी, क्योंकि रूस के बाद हमारा प्रोग्राम पूर्वी यूरोपीय देशों में जाने का था. लेकिन हमारे साथियों ने कहा कि गरीबी और अभाव तो भारत में ही नित्य देखते हैं, फिर क्यों नहीं कुछ दिन सुखी और समृद्ध देशों में रहें. अतः वहां की यात्रा रद्द कर हम यहां आ गए. जून का महीना था. फिर होटल खाली कहां? किसी प्रकार बिना बाथरूम वाली एक छोटी सी कोठरी मिल गई, जिस में पलंग की जगह दो सोफे थे. यात्रियों की भीड़ इतनी थी कि होटलों के किराए भी बढ़ा दिए गए थे. हमारे यहां मेले के दिनों में मरियल टट्टू के तांगे भी महंगे हो जाते हैं, वही हालत यहां होटलों की थी.

फिनलैंड और स्वीडन में भी हम ने दूधमक्खन की प्रचुरता देखी थी, पर यहां की तो बात ही निराली थी. कहा जाता है कि हमारे देश में कभी दूध की नदियां बहती थीं. मगर महाभारत में यह भी मिलता है कि बालक अश्वत्थामा को दूध की जगह आटे का घोल पिला कर भुलावा दिया गया था. गरीब मां दूध नहीं दे सकी थी. प्रचुरता या अभाव—किसे सही माना जाए?

जो भी हो, डेनमार्क में हम ने दूध की नदी या नाले तो बहते नहीं देखे, हां, यह जरूर देखने में आया कि अधिकांश दुकानों में दूध, मक्खन, पनीर और बड़ेबड़े अंडे बिकने के लिए रखे हैं, चाहे वह दवा की दुकान हो या किरानेगल्ले की. नानाप्रकार और आकार के मांस भी सजा कर रखे गए थे. शीत प्रधान देश होने के कारण इन में बदबू नहीं आती थी.

हम इन्हें देख कर यह सोचते थे कि किसी समय हमारे देश के किसानों के पास सैकड़ोंहजारों गाएं रहती थीं. आज भी हमारे देश में साढ़े नौ करोड़ से भी अधिक दुधारू गाएं और भैंसें हैं. अधिकांश प्रांतों में गोवध बंद है, फिर भी न तो गोरक्षा हो पा रही है और न गोसंवर्धन. दूध का अभाव दिन प्रति दिन बढ़ता जा

कोपनहेगन के व्यस्त बाजार वस्टर ब्रोगेड रात को न्योन साइन में चमचमाता हुआ

रहा है. गोवंश का ह्रास हो रहा है. हमारे यहां प्रति व्यक्ति की औसत चार औंस दूध प्रति दिन है. इस की तुलना में डेनमार्क में १४८ औंस दूध का दैनिक औसत है. हम अपने बच्चों को ताजा दूध नहीं दे पाते. अमरीका और स्वीडन से सहायतास्वरूप आए हुए मिल्क पाउडर स्कूलों और अस्पतालों में थोड़ी बहुत मात्रा में देते हैं. आज २० वर्षों की स्वतंत्रता के बाद भी हमारी भारत माता लाखों अश्वत्थामाओं को दूध की तो बात दूर रही आटे का घोल भी पर्याप्त मात्रा में देने में असमर्थ है. कैसी विडंबना है!

हमारी गायों की औसत दूध देने की क्षमता प्रति व्यक्ति केवल ४५० पौंड है, जब कि इन देशों में जहां गाय माता स्वरूप नहीं है बल्कि उसे जानवर समझा जाता है, दूध की उपज औसत ६००० से ७,००० पौंड प्रति व्यक्ति है. पश्चिम के इन देशों में गोवध पर प्रतिबंध नहीं है बल्कि यहां से अरबों रुपयों का गोमांस निर्यात किया जाता है, फिर भी दूध की धारा क्षीण नहीं होती. स्पष्ट है कि हमारी गोभक्ति में सेवाभाव कम है, दिखावा ज्यादा.

एक स्टोर से दो बोतल ठंडा दूध लिया. शायद एक किलो था. दो क्रोनर (लगभग दो रुपए) दिए. मैं ने सोचा 'जब भारत में सवा रुपए किलो है तो इस धनी देश में ज्यादा ही दाम होगा.' हमें ताज्जुब हुआ जब डेढ़ क्रोनर वापस मिले यानी आधा रुपया एक किलो के दाम लगे. बाद में यह पता चला कि यह तो खुदरा का भाव था, थोक में तो इस का आधा तक नहीं है. हमें बताया गया कि इस छोटे से देश में, जिस का क्षेत्रफल हमारे राजस्थान का केवल १२ प्रति शत है, ३५,००,००० गाएं और ७५,००,००० सुअर हैं. सन १९६३ में १४,२५,००,००० मन दूध ७५,००,००० मन मक्खन तथा पनीर और २,८०,००,००० मन मांस का उत्पादन डेनमार्क में हुआ. यही हाल सेब, अंगूर और प्लम्स जैसे फलों का था. मैंने प्रभुदयालजी से कहा कि यहां चावल और रोटी खाएं ही क्यों, जब कि ऐसी उत्तम और उपादेय वस्तुएं इतनी सस्ती मिलती हैं. वह हंस कर कहने लगे कि एकदो दिन

में ही फल और दूध से मन ऊब जाएगा. आखिर पेट तो अन्न से ही भरेगा.

कोपनहेगन डेनमार्क की राजधानी है. वहां समूचे देश की लगभग चौथाई आबादी रहती है—यानी, यहां की जनसंख्या करीब दस लाख है और गरमी के दिनों में तो राजधानी में लाखों की संख्या में बाहर से विदेशों के यात्री आ जाते हैं. इसलिए हम जब वहां पहुंचे तो सड़कों पर चहलपहल खूब बढ़ी हुई थी. अमरीका के अलावा दक्षिणी यूरोप के देशों से आए हुए लोग काफी संख्या में दिखाई पड़े. अरब के शेख भी अमामे चोगे पहने हुए बड़ी शानशौकत से घूम रहे थे. इन के आसपास गोरी स्त्रियों का मजमा लगा रहता था.

आजकल सभी देशों में टूरिस्ट आफिस हैं. इन कार्यालयों में शहर के दर्शनीय स्थानों के विवरण की पुस्तिका, नक्शे के साथ बिना कीमत में मिल जाती है. हम जहां भी गए, इसे जरूर ले लिया करते थे. फिर भी, बिना गाइड के अथवा किसी यात्री मित्र के बहुत सी जिज्ञासा की पूर्ति नहीं हो पाती. रूस में हम सरकारी मेहमान थे इसलिए वहां हमें निःशुल्क गाइड मिल गए थे, लेकिन अन्य देशों में ये महंगे पड़ते हैं. इसलिए हम अंगरेजी जानने वाले किसी यात्री से दोस्ती कर लेते थे जो हर तरह की जानकारी और मदद देने को हमेशा उत्सुक रहते थे. विदेशों में सिवा अंगरेजों के अन्य देशों के यात्री आपस में मित्रता करने के लिए इच्छुक रहते हैं.

अपने होटल लौट कर हम ने एक डच दंपति से मित्रता की. यद्यपि हालैंड भी ठंडा देश है फिर भी इन में भ्रमण करने का चाव है. अवकाश मिलने पर ये दूसरे देशों की यात्रा पर निकल जाते हैं. इन से पता चला कि अमरीका भले ही विश्व का सब से धनी देश है लेकिन ईराकी और अरब देशों के मुकाबले में अमरीकी धनिक पैसे लुटाने में शायद ही टिक सकें. ये लाखों रुपए एक यात्रा में खर्च कर देते हैं. वेनिस या पेरिस में कुछ दिन के लिए रह कर वहीं से पांचसात प्रसिद्ध नर्तकी या माडल गर्ल्स को साथ ले आते हैं. डीलक्स होटलों में बड़ेबड़े फ्लैट किराए पर ले लेते हैं, क्योंकि इन के मुसाफिरों और साथी लड़कियों की संख्या बीसतीस तक पहुंच जाती है. उन्होंने हंसते हुए कहा कि सच पूछिए तो इन्हीं लोगों के कारण हम जैसों को होटलों में कमरे मिलने मुश्किल हो जाते हैं.

मैंने पेरिस की अपनी पिछली यात्रा में इन की शाहखर्ची को एक नाइटक्लब में देखा था. इन वर्षों में तेल की रायल्टी के नए एग्रीमेंटों से इन की आमदनी प्रति वर्ष अरबों रुपए ज्यादा हो गई है, इसलिए ऐयाशी और मौजमस्ती में उस बिना मेहनत की कमाई के रुपयों में से अगर कुछ हिस्सा खर्च भी कर डालें तो ताज्जुब ही क्या! हमारे राजा और नवाब भी तो यही करते थे. इन अरबों में शारीरिक क्षमता कुछ विशेष ढंग की होती है जो यूरोप तथा अमरीका के लोगों में साधारणतया नहीं रहती. यह भी एक आकर्षण रहता है, जिस कारण संभ्रांत एवं धनी घरों की शौकीन यूरोपीय स्त्रियां भी इन के साथ दूसरे देशों की यात्रा पर चली जाती हैं. पश्चिम के समाज की वह स्वच्छंदता हमारे भारतीय आचारविचार से तो अनैतिक और निम्नस्तरीय रुचि की कही जाएगी. पता नहीं इन देशों के विचारक इस ओर कुछ सोचते हैं, या नहीं.

शहर की सड़कों पर या सार्वजनिक पार्कों में हम ने घूमते हुए लक्ष्य किया कि
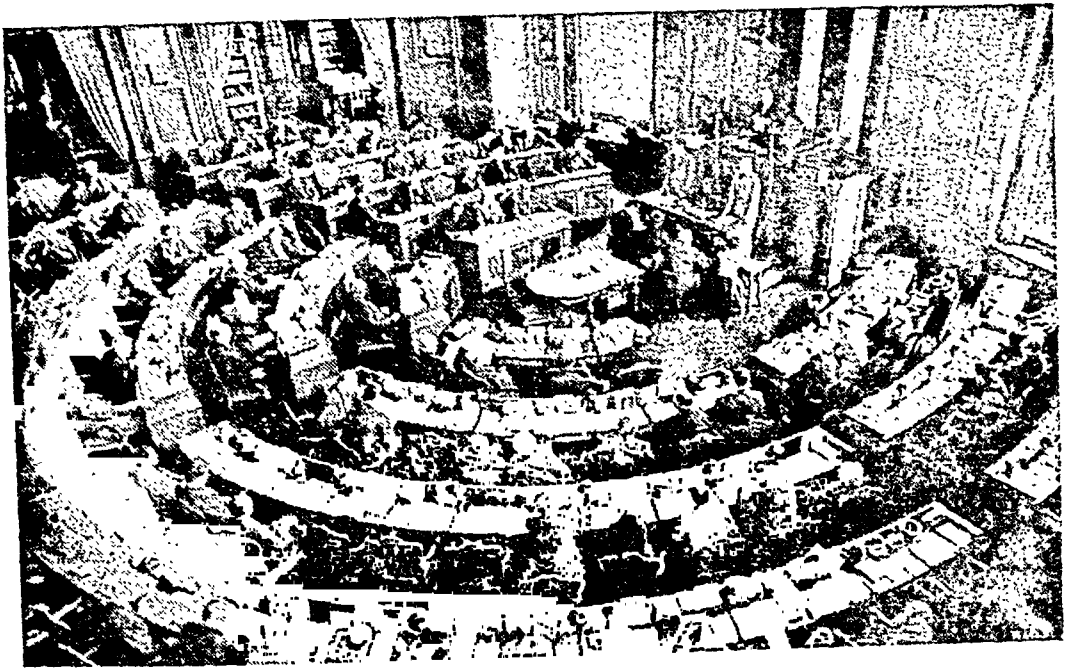
पब्लिक गैलरी से फोकेटिंग की झांकी

यहां की स्त्रियां लंबी और मजबूत होती हैं. डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन और फिनलैंड में सभी जगह हम ने लंबी और तगड़ी स्त्रियां देखीं. रंग गोरा जरूर है पर रूखापन लिए और इन के चेहरे और होंठों पर हलके रोएं भी होते हैं. दक्षिण यूरोप, इटली, ग्रीस, टर्की आदि की स्त्रियों के चेहरे पर इतना गोरापन नहीं रहता लेकिन इन में लावण्य अधिक होता है. छरहरे बदन की होने के कारण ये उत्तरी स्त्रियों से अधिक सुंदर और आकर्षक लगती हैं.

फिनलैंड और स्वीडन हो कर हम डेनमार्क आए थे. इसलिए यहां का वातावरण भी एक जैसा ही लग रहा था. हमारे यहां कलकत्ता से बनारस की यात्रा की दूरी या समय में फिनलैंड, स्वीडन और डेनमार्क तीनों आ जाते हैं. अर्थात, हमारे प्रांतों से भी इन का क्षेत्रफल छोटा है फिर भी हैं तो ये अलगअलग देश—भाषा भी इन की अपनीअपनी है.

होटलों में पहले से कह देने पर निरामिष (भोजन) तैयार कर देते हैं. फिर भी हमारे भारतीय व्यंजनों में जो स्वाद मिलता है और उन से जो तृप्ति होती है, वह हमें विदेशों के अच्छे से अच्छे या बड़े से बड़े रेस्तोरां या होटलों में नहीं हुई. भारत से हम कई प्रकार के अचार, चिवड़े और मिठाइयां साथ ले आए थे, इसलिए स्वाद बदलने के लिए बीचबीच में इन्हें खा लिया करते थे.

डेनमार्क का कुछ भाग हालैंड की तरह समुद्र से नीचा है. इसलिए समुद्री पानी रोकने के लिए बड़ेबड़े डाइक (बांध) बनाए गए हैं. इस में संदेह नहीं कि यूरोपीय लोगों में उद्यम के प्रति विशेष उत्साह रहता है. जहां हम प्रकृति के प्रकोप के आगे विवश हो जाते हैं, बाढ़ से हमारी लाखों एकड़ जमीन प्रति वर्ष परती रह जाती है वहां वे उस से जूझते हैं और उस की सीमा बांध देते हैं. हमें हमारे कच्छ के रन का ख्याल आ गया. यदि हम सागर के खारे पानी को यहां आने से रोक पाते तो शायद इस बहुत बड़े भूमि भाग को उपयोग में ले आते. पर अभी तो राजस्थान के बंजर अंचल को ही नहीं संभाल पाए हैं.

द्वितीय महायुद्ध में दूसरे देशों की तरह डेनमार्क भी चार वर्ष तक जरमनों के नाजी शासन के अधीन रहा. जैसा प्रत्येक विदेशी शासक का रवैया रहता है, वैसा ही जरमनों ने किया. यहां से दूध, मक्खन, पनीर और मांस जरमनी भेजते रहे और बेचारे डेन आधे पेट रहते. जरमनी की हार के बाद फिर यहां के राजा के तत्वावधान में जनतंत्रीय शासन हो गया, जो अब तक है. साम्यवादी दल का तो यहां अस्तित्व ही नहीं है. यहां की संसद के १७९ सदस्यों में केवल ११ ऐसे हैं जिन के विचार कम्युनिस्टों से कुछ मिलते-जुलते हैं. सैनिक शिक्षा प्रत्येक के लिए अनिवार्य है. १८ वर्ष की उमर होने पर हरेक नागरिक को १६ महीने के लिए फौज में शामिल होना जरूरी है.

छोटा सा देश है, पर आबादी के अनुपात से पैदावार कई गुनी है. इसलिए तैयार माल के लिए इसे बाहर बाजार ढूंढ़ना पड़ता है, लेकिन वहां भी पहले से जमे हुए मिलते हैं अमरीका, पश्चिम जरमनी और फ्रांस. उन के सामने इस की क्या गिनती? फिर भी यह देश अपने यहां उद्योगधंधों को बढ़ावा देने के लिए कच्चे माल का आयात और उस के बदले में कृषिजात वस्तुओं का निर्यात कर के आर्थिक स्थिति का संतुलन ठीक रखता है. इस कारण इस का सिक्का विदेशों के खुले बाजारों में भी निर्धारित दर में चलता है. हमारा देश इस से सौ गुना बड़ा है. हमारा आयातनिर्यात भी काफी है, पर हमारी आर्थिक दशा असंतुलित है और व्यवस्था सुदृढ़ नहीं. इस कारण से हमारी मुद्रा निर्धारित दर से नीचे मूल्य पर चलती है. हम ने स्विस बैंक में भारतीय सिक्का भुनाया तो एक रुपए के सात आने ही मिले. हमारे लिए यह कम ग्लानि की बात नहीं. सन १९५६ से १९६१ तक के पांच वर्षों में डेनमार्क की आय की वृद्धि ९.४ प्रति शत प्रति वर्ष बढ़ी जब कि हमारी लगभग तीन प्रति शत ही. वहां प्रति व्यक्ति की औसत वार्षिक आमदनी है करीब ग्यारह हजार रुपयों की, जब कि हमारे यहां तीन सौ से साढ़े तीन सौ रुपयों तक की. वहां पशुजात वस्तुओं के अलावा कृषि की उपज भी बहुत है. सन १९६३ में इस छोटे से देश में अनाज का उत्पादन ५५,००,००० टन था, यानी प्रति व्यक्ति ३५ मन. चीनी का उत्पादन हुआ २६ लाख टन. मैं मन ही मन इन आंकड़ों की तुलना में अपने देश की स्थिति रख रहा था. मेरे सामने बिहार, उड़ीसा, पूर्वी उत्तर प्रदेश और राजस्थान के सूखे बंजर खेत और मरियल पशुओं के चित्र खिंच जाते थे.

सहकारी व्यवस्था में डेनमार्क बेजोड़ है. प्रत्येक किसान यहां किसी न किसी सहकारी समिति का सदस्य है. वह अपने यहां का दूध, पनीर, मक्खन, अंडे और मांस इन्हीं सहकारी समितियों के माध्यम से बेचता है. इस नन्हे से देश में इस ढंग की २,००० समितियां हैं, जिन के ५,००,००० सदस्य हैं. इन की वार्षिक बिक्री की राशि है करीब एक अरब पैंतीस करोड़ रुपए. हमारे यहां भी स्वाधीनता के बाद सहकारी समितियों की बाढ़ सी आई थी लेकिन अधिकांश में बेईमानी हुई और गरीब किसानों का रुपया संचालकों की जेबों में चला गया.

हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि यहां करीब एक सौ दैनिक या साप्ताहिक पत्रपत्रिकाएं प्रकाशित होती हैं. इन के पाठकों की संख्या २५,००,००० है—यानी, प्रत्येक घर में औसतन दो पत्रपत्रिकाएं जाती हैं. इन के अधिकार में

बाएं : डेनमार्क का मार्बल का बना चर्च. दाएं : 'लिटल मेरमेड' मूर्ति जिसका हाल ही में सिर काट कर चोरी कर लिया गया था

अपने से पचास गुना बड़ा विश्व का सब से वृहद् द्वीप ग्रीनलैंड है, जहां की आबादी है केवल चालीस हजार—अर्थात् वहां २० मील पर एक व्यक्ति रहता है.

हम अब तक यह समझते थे कि शारीरिक क्षमता को कायम रखने के लिए मिलाजुला भोजन आवश्यक है, लेकिन यहां पता चला कि ग्रीनलैंड के निवासी केवल मछली और रेंडियर (हिरण की एक जाति) के मांस पर जीवित रहते हैं. वहां अन्न और सब्जी उपजती ही नहीं. पिछले कुछ वर्षों से स्विस हवाई जहाज कंपनी ने ग्रीनलैंड की यात्रा की सुविधा कर दी है. इसलिए, कुछ समय के लिए ही सही, यहां आ कर एक नई दुनिया देखने के लिए यात्री आया करते हैं. सर्दी यहां इतनी है कि थूक और मूत्र जमीन पर गिरने के पहले ही बर्फ में बदल जाता है.

कोपनहेगन के टिवोली गार्डन में सैकड़ों की संख्या में अमरीकी यात्रियों का समूह देखने में आया. इन में अधिकांश बूढ़ी औरतें थीं. बच्चों की तरह आग्रह से कार्निवल घूमघूम कर देख रही थीं. इन के साथ के अधिकांश मर्द ग्रीनलैंड घूमने गए थे या कैबरे में नाच रहे थे. हमारे डच मित्र ने बताया कि अमरीका में सैकड़ों यात्री क्लब हैं, जिन को यूरोप या विश्व भ्रमण का मौका मिल जाता है. ये एक साथ बड़ी संख्या में आते हैं, इसलिए हवाई जहाज के किराए और होटलों के चार्ज में भी सुविधा रहती है.

दूसरे देशों की तरह कोपनहेगन में भी नाइट क्लब और कैबरे बहुत हैं, लेकिन प्रमुख आकर्षण है टिवोली गार्डन. यहां तबियत इतनी बहल जाती है कि इसे 'उत्तरी यूरोप का पेरिस' कहते हैं, लेकिन डेनिश इसे सुन कर यात्रियों से बनावटी गुस्से में कहते हैं, 'पेरिस दक्षिणी यूरोप का कोपनहेगन है.'

डेनमार्क में हमें दो ही दिन ठहरना था, इसलिए हम ने रात्रि में टिवोली गार्डन देखने का कार्यक्रम बना लिया था. रात का भोजन जल्दी कर के हम

वियना

दो विश्वयुद्धों की लपटों से झुलसे हुए यूरोप का शांति केंद्र

वर्षों पहले मैं कलकत्ता की हैरिसन रोड पर जिस मकान में रहता था, उस के सामने ही एक राजवैद्य की बड़ी दुकान थी. उन्होंने एक ही व्यक्ति की दो तरह की आदमकद तसवीर लगा रखी थी. एक थी उस व्यक्ति की दवा खाने के पहले की तसवीर जिस में वह दुबलापतला ढांचा मात्र दिखाई देता था और दूसरी थी दवा खाने के बाद की जिस में वही व्यक्ति हट्टाकट्टा और गठीला पहलवान सा दिखाया गया था. सैकड़ों व्यक्ति इस विज्ञापन से प्रभावित हो कर वैद्यजी से दवा खरीदते थे. मैं ने खुद भी खरीदी और दूध सेवन भी किया. लेकिन औरों का तो पता नहीं पर मैं पहलवान सा बन नहीं पाया.

विज्ञापन की बहुत बड़ी महत्ता है. इस की शक्ति को सब से ज्यादा अमरीका और यूरोप ने पहचाना है. वहां के व्यावसायिक और औद्योगिक प्रतिष्ठानों के साथसाथ सरकार भी अरबों रुपए प्रति वर्ष विज्ञापन पर खर्च करती है. पाश्चात्य डाक्टरों और वैज्ञानिकों के बारे में चर्चा सुना करता था. वियना के डाक्टरों की तारीफ तो बहुत वर्षों से सुनता आ रहा था.

हमारे यहां के राजेमहाराजे इलाज के लिए वहां जाते रहते थे. हजारों-लाखों रुपए खर्च कर आते थे और तारीफ करते थकते नहीं थे. पता नहीं इस में अपनी शान दिखाने की कामना अधिक थी या वहां के डाक्टरों की सुदक्षता. शायद डाक्टर तो उतने योग्य लंदन और ज्यूरिख में भी थे, मगर आस्ट्रिया की यह खूबी जरूर थी कि वहां गरम पानी के श्रोत थे जिन के बारे में आस्ट्रिया वालों ने प्रचार कर रखा था कि चर्म रोग या गठियावात के रोगी के लिए इन झरनों में नहाना अचूक इलाज है. परिणामस्वरूप दुनिया के हर कोने से लोग वहां पहुंचते और इस से आस्ट्रिया को विदेशी धन की आय होती. हमारे यहां भी राजगृह के झरनों के बारे में लोगों की इसी प्रकार की धारणा है किंतु हम ने आस्ट्रिया की भांति व्यापक प्रचार करने का प्रयास शायद ही कभी किया हो. इसलिए विदेशी तो दूर अपने देशवासी भी बहुत कम वहां जाते हैं.

हम शाम के बाद वियना पहुंचे थे. होटल पहुंचतेपहुंचते रात के बारह बज गए. मध्य यूरोप में होने पर भी यहां ठंडक रहती है, क्योंकि यह आलपस पर्वत के अंचल का देश है. जुलाई के महीने में कलकत्ते की जनवरीफरवरी की सी सर्दी थी. रात काफी हो चुकी थी. भोजन की समस्या हल करने के लिए

तय किया कि साथ के चिवड़े और खजूर काम में लाए जाएं. मगर गरम दूध की जरूरत थी जिस से कि चिवड़े की खीर बना सकें. प्रभुदयालजी के मना करने पर भी मैं ओवरकोट पहन कर दूध की खोज में निकल पड़ा. बाजार पहुंचा. भाषा यहां जरमन बोली जाती है. विभिन्न देशों में सैर करते रहने के कारण सभी भाषाओं के आवश्यक शब्द याद हो गए थे. फिर अंतर्राष्ट्रीय भाषा संकेत से तो काम ले ही सकता था. बाजार में उस समय तक भी रेस्तरां खुले हुए थे. दूध की दोतीन बोतलें लीं. फलों के रस की भी दोएक बोतलें ले आया.

अचानक होटल और उस के रास्ते का नाम भूल गया. रात के दो ढाई बजे तक भटकता रहा. अपनी जल्दबाजी और जिद पर पछता रहा था. दोनों हाथों में बोतलें, बरफानी सर्द हवा, अनजान शहर और बढ़ती हुई रात का सूनापन. एक टैक्सी वाले को रोका. उसे किसी तरह समझाया कि यहां दो मील के इर्दगिर्द में जितने भी बड़े होटल हैं, उन में चलो. इत्तफाक कुछ ऐसा हुआ कि पहले ही जिस होटल के सामने टैक्सी रुकी, वही हमारा होटल था. भाग कर कमरे में पहुंचा. भुवालकाजी और हिम्मतसिंहकाजी काफी चिंतित हो उठे थे. सभ्य और संस्कृत शहर था इसलिए उचक्कों का डर नहीं था. कहीं ईस्ट लंदन या वेनिस होता तो शायद मेरे बारे में ये दोनों साथी उस समय तक पुलिस को खबर दे देते. दोनों की कड़वीमीठी सुननी पड़ी. मुझे अपने ऊपर इतना अधिक आत्मविश्वास था कि उसे घमंड कहा जा सकता है. ताशकंद और मास्को के ग्रामीण अंचल की सैर के बारे में अपनी बड़ाई कई बार उन से कर चुका था. अब वे मुझे आड़े हाथों लेने लगे. बहरहाल खीर और खजूर का प्रोग्राम रह गया. हम तीनों सिर्फ दूध पी कर सो गए. बिस्तर पर लेटते ही नींद आ गई.

पिछली रात भटकते रहने के कारण थकावट आ गई थी. सोया भी देर से था. आंखें खुलीं तो नौ बज चुके थे. दोनों साथी कब के उठ चुके थे और तैयार थे. अपने प्रमाद और आलस्य पर झेंप गया. जल्दी से तैयार हो कर हम तीनों ने नाश्ता किया और बाहर सड़क पर आ गए.

वियना के लिए हम ने दो दिनों का समय निकाला था. यूरोप के इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक नगर के लिए इतना समय कम था. मगर हमारे पास इस के सिवाय अन्य विकल्प भी नहीं था. यहां केवल घूमना नहीं था बल्कि स्टेट बैंक के गवर्नर से मिल कर देश की आर्थिक और औद्योगिक स्थिति की जानकारी भी करनी थी.

सुबह का समय हाथ से निकल चुका था. टूरिस्ट बस साढ़ेआठ बजे सुबह आ कर चली जाती है. इसलिए अब हम ने स्वतंत्र माध्यम से शहर घूमने का निश्चय किया.

थोड़ी दूर पर हमें बहुत ऊंचा सा एक गुंबद दिखाई पड़ा. कुतुबमीनार से इस की ऊंचाई लगभग दूनी लगी. गाइड बुक में देखा तो पता चला कि इसे सेंट स्टीफन का गिरजा कहते हैं. रोम के सेंट पीटर के गिरजे के बाद यूरोप का यह सब से मशहूर और बड़ा गिरजा माना जाता है. सोचा, 'पास ही तो है, अभी पहुंच जाते हैं.'
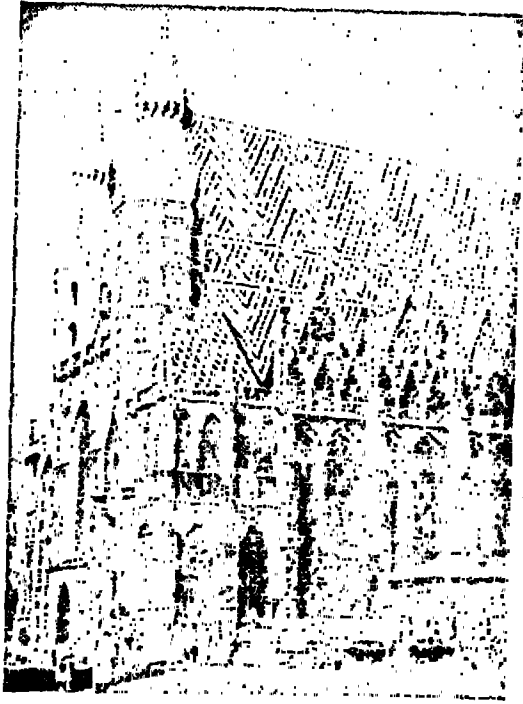
मारिया थेरेस्सा के सपनों से भी ऊंचा:
सेंट स्टीफन का गिरजाघर

हम उस ओर बढ़े. दूर चलने पर भी जब वहां नहीं पहुंचे तब गलती महसूस हुई. ऊंचाई के कारण पास लगने वाला वह गिरजा लगभग डेढ़दो मील की दूरी पर था. गाइडबुक से पता चला कि चार लाख वर्ग फीट के क्षेत्रफल में बना हुआ है. इस का शिखर ४५८ फीट ऊंचा है. सन ११३७ में बनना शुरू हुआ और तैयार होने में लगभग साढ़े चार सौ वर्ष लगे. सन १७११ में तुर्कों से युद्ध में जीती गई तोपों को गला कर इस का पीतल का विशाल घंटा बनाया गया जिस का वजन ५५० मन है. आस्ट्रिया की साम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा की इच्छा थी कि इस गिरजे को विश्व का सब से बड़ा धर्मस्थान होने का गौरव प्राप्त हो. इस के लिए उस ने इसे भव्य और विशाल बनाने के अनेकानेक प्रयास किए. एक बार तो यहां तक इरादा कर लिया कि इसे तोड़ कर फिर से बनाया जाए लेकिन सेंट पीटर के गिरजे से बड़ा गिरजा बनाना करोड़ों व्यक्तियों का सहयोग, अपरिमित धन और साधन मांगता था. वह बड़े से बड़े सम्राट के बूते के बाहर की बात थी.

सेंट स्टीफन के गिरजे में बहुत से भित्ति चित्र हैं. कुछेक तो अत्यंत कलापूर्ण हैं मगर वैटिकन में सिस्टनचर्च के विश्व विख्यात चित्रकारों की कलाकृतियों के समक्ष यहां के चित्रों में मुझे कोई मौलिकता नजर नहीं आई.

पिछले दो महायुद्धों की विनाशकारी लपटों में वियना को भी झुलसना पड़ा है. गनीमत है कि यहां की बेहतरीन इमारतें और खूबसूरत बुलंद गिरजे काफी हद तक बच गए. यूरोप के अन्य शहरों में मध्यकालीन इमारतों की बड़ी हानि इन महायुद्धों की बमबारी से हुई है. किंतु वियना के गिरजे और मध्ययुगीन

इमारत किसी तरह वच गए. इसलिए आज पर्यटकों के लिए इस शहर का एक विशेष आकर्षण है. आज भी यहां साठसत्तर फीट ऊंचे दोमंजिले वड़ेवड़े मकान देखने को मिल जाते हैं. न्यूयार्क या शिकागो में इन पुराने मकानों के जितनी जमीन पर पचाससाठ गुने आवास भवनों का निर्माण करना स्वाभाविक है.

जो भी हो, इन पुराने ढंग की इमारतों की अपनी शान है और उन की वुलंदी गुजरे हुए जमाने का एहसास आज भी जाहिर करती है. हमारे यहां कलकत्ता में आसमान को छूने की होड़ लगाने वाले मकान पिछले दो दशकों में तेजी से वने और वनते जा रहे हैं. फिर भी पुराने ढंग के भव्य और विशाल दोमंजिले मकानों की शान का ये नए आलमारीनुमा मकान मुकावला नहीं कर पाते. चोरवगान की वड़ेवड़े खंभों वाली संगमरमर की राजेंद्र मल्लिक की कोठी आज भी उन्नीसवीं शताव्दी के उत्तरार्द्ध के वास्तुशिल्प की याद दिलाती है.

जिस प्रकार आगरा और दिल्ली को सम्राट शाहजहां ने संवारासजाया, उसी तरह साम्राज्ञी मारिया थेरेस्सा ने वियना की महत्ता वढ़ाई, इसे सजाया और संवारा. उस ने हाप्सवर्ग प्रासाद को जी भर के सुसज्जित कर अपने शौक की पूर्ति की. गिरजा देख कर हम हाप्सवर्ग महल देखने गए. इसे शीशमहल भी कहते हैं. यूरोप के मध्ययुगीन इतिहास में आस्ट्रियाहंगरी साम्राज्य के प्रभाव, शक्ति और ऐश्वर्य का गौरवपूर्ण परिचय मिलता है. इस शक्तिशाली साम्राज्य के सामने फ्रांस और व्रिटेन दोनों को सिर उठाने की हिम्मत नहीं होती थी.

तुर्कों की असंख्य तीखी तलवारें जव एशिया से ले कर अटलांटिक महासागर तट के राष्ट्रों के छक्के छुड़ा रही थीं, आस्ट्रिया ने उन की नोक को तोड़ डाला था. तुर्कों का हौसला पस्त हुआ और उन्हें वापस लौटना पड़ा.

वियना को मध्ययुग में कला, विज्ञान और संस्कृति का संगमस्थल माना जाता रहा है. आस्ट्रियाहंगरी के सम्राटों की राजधानी सदैव वियना ही रही. हाप्सवर्ग राजप्रासाद इन सम्राटों का निवास स्थान था और इसी में उन्होंने अपना दफ्तर भी रखा. हालांकि आज आस्ट्रियाहंगरी का साम्राज्य नहीं रहा और न वह प्राचीन राजतंत्र ही, फिर भी इस शीशमहल की भव्यता में अंतर नहीं आया है. इस समय इस के वड़ेवड़े कक्षों में भांतिभांति प्रकार के संग्रहालय, वीस लाख ग्रंथों की नेशनल लाइव्रेरी और सरकारी दफ्तर हैं.

दरअसल इसे महल न कह कर एक शहर कहना ज्यादा सही होगा. इस के विभिन्न कक्ष एक ही समय में नहीं वने, वल्कि तेरहवीं शताव्दी से ले कर उन्नीसवीं शताव्दी तक यानी लगभग छः सौ वर्षों तक वनते रहे. फ्रांस में मैं ने पेरिस का लुव्रे और वर्साई के राजप्रासाद देखे थे. दोनों अपनी विशालता और भव्यता के लिए विश्वविख्यात हैं. किंतु मुझे हाप्सवर्ग का यह प्रासाद इन से अधिक सुंदर, सौम्य और भव्य लगा.

प्रासाद में घूमते हुए एक मसजिद दिखाई पड़ी. ईसाई राजमहल में मसजिद! ठीक वैसे ही जैसे मुगल हरम में मंदिर मिल जाए. पूछने पर पता चला कि सन १५२९ में तुर्की फौजें वियना में घुस आई थीं और यहां कुछ समय तक उन का कब्जा रहा. उसी समय में यह मसजिद वनी थी. शहर को उन्होंने मनमाने

ढंग से लूटा और बरबाद किया. औरतें, बच्चे और बूढ़े तलवार की प्यास बुझाने के लिए कत्ल किए गए. अनगिनत स्त्रियों और बच्चों को गुलाम बना तथा अथाह दौलत लूट कर वे यहां से अपनी राजधानी कुस्तुनतुनिया ले गए.

तुर्कों ने कई बार आंधी की तरह वियना पर आक्रमण किए. सन १६९३ में उन की एक बड़ी फौज ने जबरदस्त हमला किया. वियना के दरवाजे तक वे आ धमके. इस बार ऐसा लगता था कि आस्ट्रियाहंगरी पर सदैव के लिए चांदतारे का हरा झंडा फहरा उठेगा. आस्ट्रिया के लिए यह जीवनमरण का प्रश्न बन गया. उस के हारेथके सोलह हजार सिपाही दीवार की तरह तुर्कों के सामने अड़ गए. वियना के हर घर की स्त्रियों और बच्चों ने जीजान से उन की मदद की. इस प्रकार ६० दिनों तक नाकेबंदी चलती रही. इस बीच यूरोप में ईसाई राष्ट्रों ने संघबद्ध हो कर तुर्कों की इसलामी खूंरेजी को नष्ट करने का निश्चय किया. चार्ल्स आफ लारेन के नेतृत्व में एक बड़ी ईसाई फौज ने तुर्कों पर आक्रमण कर दिया और उन्हें छिन्नभिन्न कर डाला. इस के बाद फिर कभी तुर्कों ने मध्य यूरोप की ओर आंख उठाने का साहस नहीं किया.

महल के बड़े कक्ष में हम ने आस्ट्रिया के सम्राटों के खजाने को देखा. नाना प्रकार के जवाहरात, जेवर, सिंहासन, चांदीसोने के खूबसूरत बरतन और फरनीचर सजेसजाए रखे थे. वैसे लेनिनग्राद के म्यूजियम में हम ने रूस के सम्राटों की इस से कहीं अधिक सामग्री देखी थी. इसी प्रकार वर्साई के राजप्रासाद में फ्रांस के सम्राटों की भी चीजें यहां से कहीं अधिक देखने में आईं. लंदन के टावर के संग्रहालय में ब्रिटिश सम्राटों के मुकुट और जवाहरात तो अरबोंखरबों की कीमत के होंगे. जो भी हो, यूरोप में प्राचीन दुर्लभ वस्तुओं के रखने के प्रति एक विशेष आग्रह राष्ट्रीय गुण के रूप में सर्वत्र है जिस का अभाव हमारे यहां है. पेरिस के लुव्रे संग्रहालय में संग्रहीत चित्रों का मूल्य ही एक अरब पचास करोड़ रुपए के बराबर कूता गया है.

हापसबर्ग का संग्रह फ्रांस, रूस, और ब्रिटेन के मुकाबले अधिक प्रभावित न कर सका, फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि इसे अच्छी तरह सजा कर रखा गया है. हमारे पास समय था इसलिए हम ने यहां का हिस्ट्री म्यूजियम देखना भी तय किया. किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति और उस के इतिहास के उतारचढ़ाव का परिचय इस ढंग के संग्राहालयों को देखने पर सरलता से मिल जाता है. जिज्ञासु विद्यार्थी और लेखक तो इन जगहों में महीनों बैठ कर जानकारी प्राप्त करते हैं.

यहां के हिस्ट्री म्यूजियम में सम्राटों के हथियार, युद्ध की पोशाकें और उन के काम में आने वाली चीजों का संग्रह है. युद्ध के घोड़ों के जिरह बख्तर, और सिपाहियों के लोहे के आवरण भी देखे. ऐसे भी यंत्र देखे जिन के जरिए किलों पर से पत्थर और लोहे के गोले बरसाए जाते थे. नाना प्रकार के बेडौल और क्रूर कार्यों में इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार और उपकरण देख कर चित्त क्षुब्ध सा हो उठा था. सोचने लगा कि आदमी इनसान होने का दावा ही करता है, असलियत में हैवानियत का साथ नहीं छोड़ता. इन्हीं विचारों में उलझा हुआ था कि प्रभुदयाल-

ओपेरा हाउस : आस्ट्रियाई लोगों की संगीतप्रियता का सजीव इतिहास
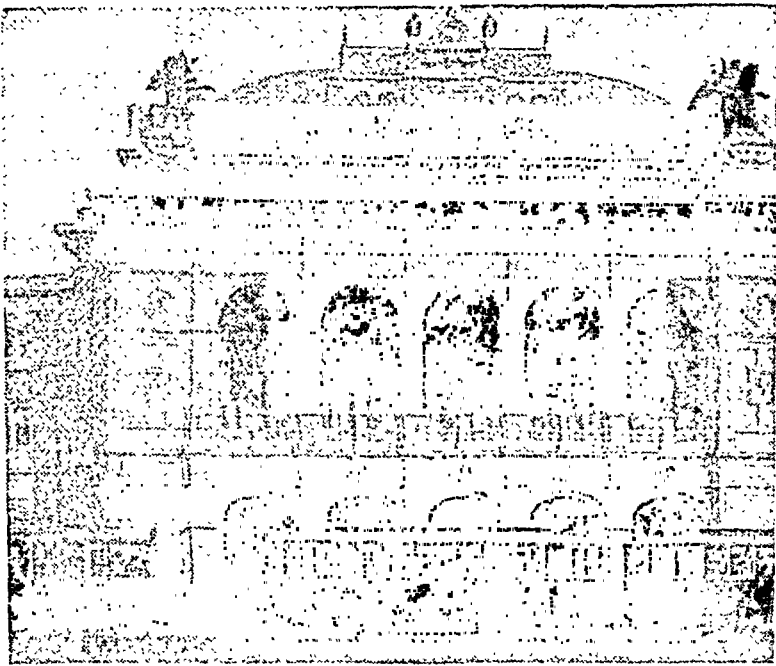
जी ने कहा, "फिर भी मौत बरसाने वाले ये साधन आज की अपेक्षा कहीं अधिक मानवोचित हैं. इन का प्रभाव युद्ध क्षेत्र तक ही रहता था, जब कि आज के उन्नत वैज्ञानिक अस्त्रशस्त्र पूरे शहर को नेस्तनाबूद कर के लाखों निरीह नागरिकों का संहार कर देते हैं."

चार बजे भारतीय दूतावास के सचिव के साथ यहां स्टेट बैंक के गवर्नर से मिलने गए. हमें बातचीत में कठिनाई महसूस नहीं हुई. वह अंगरेजी साफ बोल लेते थे, फिर भी उन्होंने हम से अपनी ही भाषा में बात की. हमारे बीच दुभाषिया था. उन्होंने बताया, "यूरोपीय देशों में फ्रांस को छोड़ कर आस्ट्रिया को दोनों महायुद्धों के कारण दूसरे सब देशों से कहीं अधिक जनधन की हानि उठानी पड़ी. जरमनी का साथ देने के कारण युद्ध के हर्जाने की बहुत बड़ी रकम अदा करनी पड़ी. फिर भी जनता के सहयोग से हम राष्ट्र का नवनिर्माण कर सके हैं. जनता ने खुद भी अभाव को सहर्ष स्वीकार किया और निर्यात बढ़ा कर विदेशी धन पैदा किया. इस प्रकार आस्ट्रिया में पुराने उद्योगधंधे संगठित रहे और नएनए शिल्पोद्योगों की स्थापना होती रही.

"सन १९६३ में निर्यात १,१०० करोड़ रुपयों का था और आयात १,६०० करोड़ का, अर्थात सत्तर गुने बड़े हमारे देश से कहीं अधिक. राष्ट्रीय आय थी पांच हजार करोड़ के लगभग यानी प्रति व्यक्ति ८०० रुपए वार्षिक और बजट था १,००० करोड़ का. विदेशी यात्रियों की संख्या उस वर्ष करीब ९० लाख थी. इन से देश को ३९० करोड़ रुपयों की आमदनी हुई."

हमें जान कर आश्चर्य हुआ कि उन के देश की वार्षिक आय स्विट्ज़रलैंड से भी अधिक है. विश्व में केवल इटली ही एक ऐसा देश है जिस की वार्षिक आय

आस्ट्रिया से ज्यादा है.

हम ने उन के देश के प्रति विदेशी यात्रियों की इतनी रुचि का कारण जानना चाहा. हम ने लक्ष्य किया कि हमारे प्रश्न से उन्हें प्रसन्नता हुई. मुसकराते हुए सगर्व उन्होंने कहा, "वियना के सेंट स्टीफन के पवित्र गिरजे, हाप्सवर्ग के नायाब राजप्रासाद और शीशमहल जैसी ऐतिहासिक इमारतें अन्यत्र कहां देखने को मिलेंगी! इस के अलावा आस्ट्रिया में आल्प्स पर्वत पर जितने बड़े पैमाने पर बरफ के तरहतरह के खेल होते रहते हैं, उतने और कहीं नहीं. स्पा (झरने) हमारे लिए वरदान हैं. इन के जल में अमृत का सा गुण है. पेरिस, वेनिस, शिकागो, लंदन और दुनिया के सभी बड़े-बड़े शहरों से नाना प्रकार के दुर्व्यसनों के कारण शारीरिक क्षमता को खो कर लोग यहां आते हैं. हमारे यहां के पहाड़ों पर जा कर वे एक नई स्फूर्ति और जीवन पा जाते हैं.

"कई विदेशी यात्रियों का यह जरूर उलाहना रहता है कि आस्ट्रिया के जीवन में वह मौज, गति और गरमी नहीं है जो पेरिस, वेनिस या लंदन में है. सही है, मगर उद्दाम लालसा ही तो जीवन का चरम लक्ष्य नहीं. प्यास बुझाने की कोशिश में मनुष्य की प्यास बढ़ती जाती है और तब एक दिन वह अपने को इतना आसक्त पाता है कि बरबस गढ़े में गिरता चला जाता है."

हमें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि युद्ध से जर्जर हुए इस छोटे से देश में हर दसवें व्यक्ति के पास एक मोटरकार है और हर तीसरे व्यक्ति के पास एक रेडियो. अनपढ़ तो कोई है ही नहीं. युद्ध का कर्ज इन लोगों ने कभी का चुका दिया और अब दूसरे देशों को रिण दे रहे हैं. कृषि की दशा भी अच्छी है. बाइस लाख टन सब प्रकार के अनाज यहां वर्ष में हो जाते हैं यानी नौ मन प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष. पशुधन भी अच्छी हालत में है. प्रति तीन व्यक्तियों के पीछे दो पशु हैं. आस्ट्रिया की धरती में लोहा और तेल है. उत्तम किस्म का ग्रेफाइट भी यहां काफी मात्रा में है. युद्ध के बाद अपनी सारी उपज उन्हें रिण चुकाने में खपानी पड़ी. साठ लाख टन तेल तो अकेले रूस को आठ वर्षों तक क्षतिपूर्ति के रूप में दिया.

फिर भी यहां अर्थव्यवस्था असंतुलित नहीं हुई. आज इन के सिक्के की प्रतिष्ठा विश्व के मजबूत सिक्कों की तरह है. अब तो कागज, रसायन और अल्युमीनियम का निर्यात कर के आस्ट्रिया अपने को धनी बनाता जा रहा है. इस सारी सफलता के पीछे यहां की जनता की कर्मठता को श्रेय दिया जा सकता है. युद्ध के बाद सब प्रकार के सुखों को तिलांजलि दे कर यहां के मजदूरों ने अपने भविष्य को सुखमय बनाया. यह हमारे लिए अनुकरणीय है.

स्टेट बैंक में हमारे लिए ४५ मिनट का समय था किंतु पूछताछ और बातचीत में लगभग सवा घंटे का समय लग गया. हमें सहर्ष हर तरह की जानकारी उन्होंने दी.

रात में, यहां का विश्व प्रसिद्ध ओपेरा देखने गए. नाजी आक्रमण से इस को बड़ी क्षति पहुंची थी. आस्ट्रिया के लोग संगीतकला के प्रेमी हैं. भाषा इन की जरमन जरूर है पर स्वभाव जरमनों से कहीं अधिक मृदु होता है. अपने राष्ट्रीय महत्त्व की रंगशाला के पुनर्निर्माण के लिए जनता ने विपुल धनराशि एकत्र करनी

शुरू कर दी और सन १९५५ में इसे पहले से भी कहीं अधिक सुंदर और सुसज्जित बना लिया.

संगीत का स्वर मधुर था, हालांकि भाषा जरमन होने के कारण हम समझ नहीं पाए. ओपेरा की साजसज्जा बड़ी शानदार थी, किसी सम्राट के राजमहल से कम नहीं. संगीत लहरी में सभी झूम रहे थे. हम ने देखा कि यहां पेरिस और हंबर्ग की तरह स्त्रियों में उच्छृंखलता और नग्नता के प्रदर्शन की होड़ नहीं थी.

ओपेरा के विशाल कक्ष में लोग अनुशासन से शांतिपूर्वक बैठे स्वर लहरी में तन्मय हो रहे थे. आस्ट्रियन मध्ययुगीन आर्केस्ट्रा आज भी सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं. इन का दावा है कि दुनिया में संगीत के मामले में इन के समकक्ष नहीं.

अगले दिन सुबह नाश्ता कर हम बस से शोनबर्न प्रासाद देखने गए. वियना का यह दर्शनीय स्थल है. इसे 'ग्रीष्म प्रासाद' भी कहते हैं. फ्रांस के सुप्रसिद्ध वार्साई राजप्रासाद के नक्शे पर इसे बनाया गया है. महल के चारों ओर उद्यान और नहर है. आस्ट्रियाहंगरी के सम्राट ग्रीष्मकाल में इस प्रासाद में आ जाते थे. १४० कक्षों का यह महल बाग और नहर के बीच बड़ा सुंदर लगा. यों तो इस में कई साम्राटों के कक्ष हैं पर हमें सम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा के कक्ष और संग्रहालय बहुत आकर्षक लगे.

साम्राज्ञी थेरेस्सा की गणना अट्ठारहवीं शताब्दी के विश्व प्रसिद्ध व्यक्तियों में होती है. साधारण लोगों के स्वभाव और गुणदोष की चर्चा या टीकाटिप्पणी कम होती है, किंतु राष्ट्रीय मान के लोगों का छोटा सा दोषगुण बहुत व्यापक चर्चा का विषय बन जाता है और युगों तक जनता की जबान पर और साहित्य के पृष्ठों पर अंकित हो जाता है. समाज और राष्ट्र के सर्वमान्य और सर्वोच्च प्रतिष्ठित आसन पर जब कोई महिला होती है तब तो स्थिति और भी अधिक संयम की अपेक्षा करती है.

इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ प्रथम, फ्रांस की मेरी अंतोनिता, रूस की जारीना और भारत की रजिया बेगम का उल्लेख इस संदर्भ में किया जा सकता है. आस्ट्रिया की साम्राज्ञी मेरिया थेरेस्सा भी इसी कोटि में आती हैं. वह १७४० में आस्ट्रियाहंगरी के विस्तृत साम्राज्य के सिंहासन पर बैठीं और लगभग चालीस वर्ष की सुदीर्घ अवधि तक उस ने शासन किया. हम ने देखा, उस के १६ पुत्र-पुत्रियों के लिए महल में अलगअलग कक्ष थे और सब के लिए पृथक व्यवस्था थी. महारानी के स्वयं के बीसियों कक्ष हैं जिन में आज भी बेहतरीन चीजें सजी हुई हैं. ऐशोइशरत की बहुमूल्य वस्तुएं महारानी की पसंद का परिचय देती हैं.

चीन और मिस्र के कक्ष को देखते हुए हम भारतीय कक्ष में आए. पलंग, साज और सामान, फरनीचर सभी भारतीय. हाथ के बने सैकड़ों कलापूर्ण चित्र. बड़ा आश्चर्य हुआ कि कांगड़ा, राजपूत, मुगल और दक्षिणी शैली की विशुद्ध भारतीय कलाकृतियों का दुर्लभ संग्रह महारानी मारिया ने किस प्रकार हासिल किया होगा? राधाकृष्ण की लीला, रागमाला और पशुपक्षियों आदि के चित्रों के रंगों की झलकी बता रही थी कि इन की देखभाल सावधानी से की जाती है. अलमारियों में

गोथिक शैली में बना आस्ट्रिया का विशाल संसद भवन : जहां राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं

देखा, विभिन्न प्रकार की भारतीय पोशाकें सजी हुई थीं. मैं सोचने लगा कि आस्ट्रिया में इन भारतीय वस्तुओं के आने का क्या स्रोत रहा होगा? ब्रिटेन ने तो लूटखसोट कर इकट्ठा किया, पर यहां कैसे? शायद उपहारस्वरूप मिली होंगी या खरीद कर संग्रह की गई हों.

एक कक्ष में देखा, नेपोलियन के किशोर पुत्र की प्रतिमा रखी थी. नेपोलियन ने आस्ट्रिया को जीत कर फ्रांस में मिला लिया था. एक बार सपरिवार कुछ दिनों के लिए वह वियना भी आया किंतु यहां अचानक उस के प्रिय पुत्र की मृत्यु हो गई. इस शोक से वह इतना विचलित हुआ कि अविलंब वियना छोड़ कर वापस चला गया, स्मारक के रूप में यह प्रतिमा यहां रख दी गई. वह अपने इस पुत्र को आस्ट्रियाहंगरी का सम्राट बनाना चाहता था.

ग्रीष्म प्रासाद का उद्यान बहुत ही संवारा हुआ है. नहर की सफाई देख कर तबीयत प्रसन्न हो जाती है.

अगले दिन हमें आस्ट्रिया से जाना था. हम ने शाम को संसद भवन देख लेना तय किया. भारतीय दूतावास के सचिव हमारे साथ थे. क्योंकि हम तीनों ही अपने देश के संसद सदस्य थे, इसलिए हमारे लिए विशेष सुविधा दी गई अन्यथा संसद भवन देखना संभव नहीं होता क्यों कि उन दिनों सत्र चालू नहीं था.

आस्ट्रिया का संसद भवन गोथिक शैली पर बना है. राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के राजनीतिज्ञों की प्रस्तर मूर्तियां भवन के चारों ओर सजी रखी हैं.

संसदीय कार्यों के संपादन के लिए अनेक कक्ष हैं. मुख्य कक्ष, जहां संसद

की बैठकें होती हैं, बहुत ही बड़ा है. हमें बताया गया कि आस्ट्रियाहंगरी के विशाल साम्राज्य के पांच करोड़ व्यक्तियों के प्रतिनिधियों के लिए इसे बनाया गया था. लेकिन पहले महायुद्ध के बाद वह साम्राज्य ढह गया, आस्ट्रिया एक छोटा सा राज्य रह गया और हंगरी स्वतंत्र बन गया. वहां से चलते समय संसद भवन के अधिकारी ने हमें आस्ट्रिया के संसदीय कानून की पुस्तकें और स्मृतिस्वरूप अन्य चीजें दीं. उन्होंने हम से कहा, "केवल वियना को ही आस्ट्रिया न समझें. जब तक साल्जबर्ग और इंजबर्ग की यात्रा नहीं की जाती, आस्ट्रिया देखना पूरा नहीं होता. वियना में सिर्फ आस्ट्रियन लोग मिलेंगे किंतु उक्त दोनों स्थानों पर हमारी प्रकृति का निखार और उस की खूबसूरती मिलेगी. विभिन्न देशों से आए लोग वहां आमोदप्रमोद में व्यस्त मिलेंगे. विदेशी यात्रियों के लिए होटल, क्लब और रेलवे की टिकटों में विशेष छूट दी जाती है."

हमारी इच्छा तो हुई पर विदेशी मुद्रा की कमी के कारण गए नहीं.

वियना में केवल दो दिन रहा. किंतु आस्ट्रिया देखने की इच्छा बनी ही रही. मध्य यूरोप के देशों में स्विट्जरलैंड को छोड़ कर शायद सब से सुंदर शिष्ट और शांत वातावरण यहां का है. आज भी इच्छा होती है कि साल्जबर्ग और आल्प्स हो आऊं.

दूसरे दिन सुबह हम लोग वियना से ४० मील की दूरी पर गरम पानी के झरने देखने गए. वहां जा कर तीन कोठरियां किराए पर लीं. करीब तीस मिनट तक सारे बदन पर एक खुरदरी घास से मालिश की गई. इस के बाद झरने के उबलते पानी में स्नान किया. वास्तव में स्फूर्ति का अनुभव हुआ. राजगृह के झरनों में भी ऐसा ही लगता है. बहती हुई गरम जलधारा में स्नान करने से रक्त संचालन में तेजी आती है और पेशियों में ताजगी आ जाती है. वैसे यह सब हर जगह या हर देश में एक सा ही है किंतु वियना में इसे अधिक आकर्षक और उपयोगी बनाया गया है. स्नान से पहले और बाद में विद्युत उपकरणों से शरीर के समस्त अंगों की मालिश की जाती है. इस के लिए अलगअलग सुसज्जित कोठरियां हैं. स्वस्थ व्यक्ति भी इस ढंग की मालिश से थकावट से शीघ्र ही मुक्ति पा जाते हैं.

एक बार के स्नान तथा अन्य उपकरणों के लिए कुल मिला कर करीब पचास रुपए लिए जाते हैं. इस के अलावा वहां आनेजाने के और दूसरे खर्च अलग. मैं ने देखा, विदेशों से आए हुए हजारों यात्री विभिन्न प्रकार से घंटों तक स्नान कर रहे हैं. अनेक रंगों के शीशों से छन कर आती हुई रोशनी महीन ताप से वात-ग्रस्त या रोगग्रस्त शरीर के अंग को सेंक रहे हैं. भूख लग जाती है तो पास के रेस्तरां में जा कर फलों का रस, दूध, मट्ठा, छाछ या लस्सी पी लेते हैं. शराब यहां देखने में नहीं आई. शायद यहां भी प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञों ने इस की मनाही कर रखी है.

एक जगह पांचछः युवतियां बिकनी पहने धूप में बैठी थीं. वे बारबार मेरे गेहुंए शरीर की तरफ देख कर आपस में बातें कर रही थीं. ऐसा लगा कि मेरा रंग शायद उन के कौतूहल का कारण है. इधरउधर घूमता हुआ उन की ओर चला गया. कई बार पश्चिमी देशों की सैर कर चुका था. इसलिए झेप

जो भी हो, जरमन लोग अपमान को भूले नहीं. प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया ने हिटलर को पैदा किया. लगभग अठारह वर्षों में फिर से जरमनी उठ खड़ा हुआ किंतु इस बार आसुरी शक्ति और दुर्भावना के साथ. यदि जरमन लोगों को यह विश्वास रहता कि उन की आर्थिक अवस्था मध्यम मार्ग से सुधर सकती है तो वे गणतांत्रिक व्यवस्था को छोड़ते नहीं और शायद नाजियों के हाथ अपने भविष्य को भी नहीं सौंपते.

नाजियों का उत्थान राष्ट्रीय समाजवाद के नारे पर ठीक उसी तरह हुआ जिस तरह रूस में समाजवाद के नाम पर कम्युनिज्म का उदय. नाजियों ने दिशाहारा जरमनों को सब्जबाग दिखाए, जरमन जाति को दैवी शक्ति वाला बताया, जरमन लोगों को बरगलाया कि दुनिया पर शासन करने का एकमात्र अधिकार केवल उन्हें ही है क्योंकि उन का रक्त विशुद्ध आर्य रक्त है. नाजियों की गोटी सधती गई. जरमन सैनिक जो निराशा और ग्लानि से भरे हुए बैठे थे उन के फौजी दस्तों में शामिल होने लगे. सन १९३७ तक हिटलर की नाजी पार्टी जरमनी के राजनीतिक अखाड़े में बाजी जीत ले गई. उस के हाथ में सर्वोच्च सत्ता आ गई.

जर्जर जरमनी की आर्थिक अवस्था को हिटलर ने सुधारा, इसे मानना पड़ेगा. उस ने उद्योगधंधे बढ़ाए, बेकारी दूर की, सेना मजबूत की और विदेश नीति में सफलता प्राप्त की. इस से जरमनी की प्रतिष्ठा और सत्ता दोनों बढ़ती चली गईं.

हिटलर की सफलताओं के कारण जरमन जनता ने उसे युगावतार समझ लिया, विदेशनीति की सफलता और सेना के पुनर्गठन ने संस्कारहीन हिटलर में मद भर दिया. उस में क्रूरता, दमन, धोखेबाजी और दूसरे देशों के प्रति लोलुपता बढ़ती गई. भस्मासुर की तरह उस की सफलताएं ही उस के विनाश और जरमनी के पराभव का कारण बनीं.

सन १९३७ में हिटलर ने खोए हुए क्षेत्र राइनलैंड पर अधिकार कर लिया. सन १९३८ में उस ने आस्ट्रिया पर कब्जा कर के उसे जरमनी में मिला लिया. इसी वर्ष उस ने चेकोस्लोवाकिया का सुडेटन प्रदेश दखल कर लिया. दलील यह थी कि वह जरमन भाषी अंचल है. आगे चल कर १९३९ में जरमन का पूरे चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार हो गया. इस समय तक आधुनिक शस्त्रों से सुसज्जित जरमन सेना विश्व में बेजोड़ हो गई थी. अगस्त की शुरुआत के साथ ही जरमनों ने पोलैंड पर धावा बोल दिया.

बस, इस घटना ने यूरोपीय राष्ट्रों को जगा दिया. दूसरे महायुद्ध का सूत्रपात हो गया.

मानवता के इतिहास में शायद ही कभी ऐसा भयानक युद्ध हुआ हो. इस लड़ाई में यूरोप प्रमुख रूप से रणांगन बना. जरमन सेना ने आंधी की तरह यूरोप के छोटेछोटे देशों को उखाड़ फेंका. पोलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, डेनमार्क, नारवे, नीदरलैंड, बेलजियम, रूमानिया, बुल्गारिया सभी पर नाजी झंडे लहरा उठे. यूरोप में इटली ने जरमनी का साथ दिया और एशिया में जापान ने. तीनों राष्ट्रों का यह गुट 'धुरीराष्ट्र' ब्रिटेन, फ्रांस, रूस व अमरीका का गुट
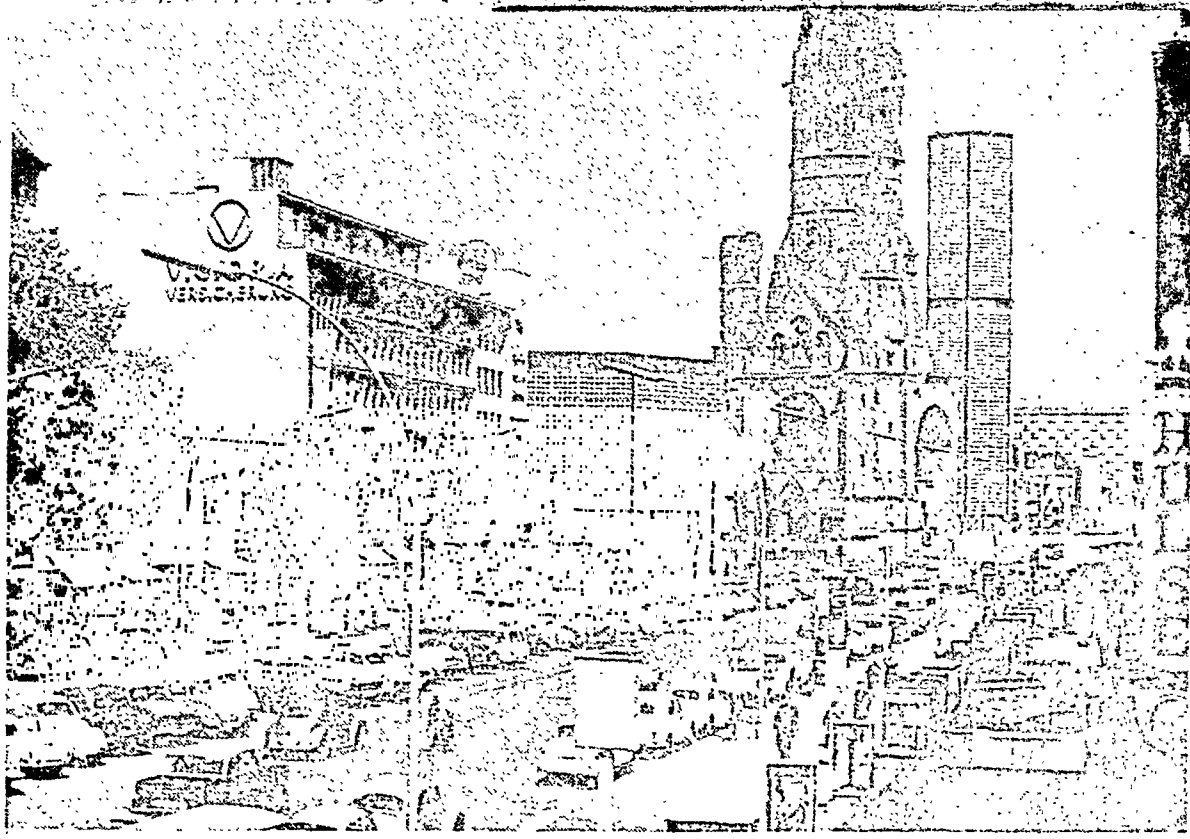
'मित्र-राष्ट्र' कहलाया.

युद्ध के प्रारंभिक काल में जरमनी ने फ्रांस की अजेय सैन्यशक्ति का बुरी तरह ध्वंस कर दिया. ब्रिटेन घबरा उठा, उस के जीवनमरण का प्रश्न आ खड़ा हुआ. जून १९४१ में हिटलर ने रूस पर धावा किया. बस, यहीं से हिटलर के पीछे पराजय की छाया मंडराने लगी.

वह भूल गया था कि यूरोप को रौंदने वाले नेपोलियन की शक्ति भी रूस में ही कुचली गई थी. रूस की लाल सेना ने जरमनी की नाजी सेना को बढ़ने से रोका. स्टालिनग्राद में एकएक गज जमीन पर जो लड़ाई हुई, उस की कल्पना शायद हिटलर ने नहीं की थी. एक ओर अमरीकी साजसामान से लैस रूसी सेना के धैर्य और साहस तथा दूसरी ओर जानलेवा बरफीली हवा के सामने हिटलर की सेना की हिम्मत पस्त हो गई. लाल सेना ने नाजियों को पीछे ही नहीं धकेला बल्कि वह जरमनी की राजधानी बर्लिन तक पहुंच गई. रास्ते में पड़ने वाले देश हंगरी, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया आदि नाजी अधिकार से मुक्त हो गए. उधर पश्चिम और दक्षिण से ब्रिटेन व अमरीका की मिलीजुली फौजें भी बर्लिन की ओर बढ़ीं. फ्रांस की सेना भी मुक्त हो कर बर्लिन में जा घुसी.

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के साथसाथ जरमनी के वैभव और प्रतिष्ठा का भी अंत हो गया. जरमन राष्ट्र का अस्तित्व खंडित हो गया.

उसे अपार जनधन की हानि उठानी पड़ी. अनाथ बच्चों और बेवा स्त्रियों के रुदन से जरमन राष्ट्र कराह उठा.

युद्ध के बाद ब्रिटेन, फ्रांस, रूस आदि विजेता राष्ट्र भी पस्त हो चुके थे. स्वीडन, स्पेन और स्विट्जरलैंड को छोड़ कर यूरोप के सभी राष्ट्रों की आर्थिक

स्थिति बिगड़ गई. इटली तो पहले से ही कमजोर था, जरमनी को इस युद्ध ने विनाश के दरवाजे पर घायल कर के पटक दिया.

जरमनी की तब की हालत देख कर यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि वह निकट भविष्य में कभी उठ सकेगा. लेकिन सोचने या न सोचने से क्या होता है! जरमनी ने देखतेदेखते फिर करवटें लेनी शुरू कर दीं, उस में फिर चेतना आने लगी.

सन १९५० में जब यूरोप गया था तो युद्ध समाप्ति के पांच वर्ष बीत चुके थे. जरमनी जाने का भी अवसर मिला. उस समय केवल ब्रिमेन और हंबर्ग देख पाया था. इतना जरूर अनुभव हुआ कि जरमन लोग लगन के पक्के और कष्टसहिष्णु हैं. समय कम था इसलिए बर्लिन न जा सका. बमबारी से गिरे मकानों के मलबे, उजड़ेटूटे कारखाने, भीड़ में विकलांग नागरिकों और वहां के लोगों के संघर्षमय जीवन को देख मन खिन्न हो गया था.

बर्लिन पहली बार १९६१ में गया और दूसरी बार १९६४ में. द्वितीय महायुद्ध के दौरान बर्लिन के बारे में तरहतरह की बातें सुनने और पढ़ने का मौका मिलता था, 'फाल आफ बर्लिन' और 'लांगेस्ट डे' आदि फिल्में भी देखी थीं, इसलिए अनजान शहर नहीं लगा. १९६१ में बर्लिन की सड़कों पर पांव रखते ही मुझे ग्यारह वर्ष पूर्व हंबर्ग के अपने एक मित्र मिस्टर जिगलर की बात याद आ गई. उन्होंने कहा था, "आज आप जरमनी की यह दयनीय दशा देख रहे हैं लेकिन दस वर्ष बाद हमें ऐसा नहीं पाएंगे."

बात सच निकली. इस एक दशक में जरमनी के कलकारखाने फिर से चालू हो गए और उस ने अपने सारे कर्ज भी चुका दिए. यही नहीं, अविकसित देशों को वह आर्थिक, औद्योगिक और तकनीकी मदद भी देने लगा.

जुलाई १९६४ में कोपेनहेगन से हवाई जहाज से शाम के समय हम बर्लिन पहुंचे. हवाई अड्डे आम तौर से शहर के किनारे या उस से कुछ दूर हुआ करते हैं लेकिन बर्लिन का एयरपोर्ट शहर के बीच में है और यह हमारे लिए ताज्जुब की बात थी. चारों ओर ऊंचीऊंची अट्टालिकाएं और बीच में बहुत बड़ा हवाई-अड्डा. हम ने ठहरने की व्यवस्था पहले से करा रखी थी. दस मिनट में हम अपने होटल में पहुंच गए

बर्लिन के लिए हमारे पास तीन दिन का समय था. इसी अवधि में पश्चिमी और पूर्वी बर्लिन देखना था. जलपान कर के हम ने होटल के काउंटर से शहर का नक्शा और गाइडबुक ले ली. कोपेनहेगन में ही बर्लिन के निरामिष रेस्तोरांओं का पता लिख लिया था. डोरैस्वामी के रेस्तोरां की सड़क वगैरह के बारे में रिसेप्शन से आवश्यक जानकारी ले ली.

गाइड यूरोप में बहुत महंगे हैं. वैसे पर्यटकों की सुविधा के लिए हर बड़ेबड़े होटलों की अथवा यात्री संस्थाओं की बसें चलती हैं.

अंगरेजी, फ्रेंच और स्थानीय भाषाओं में दर्शनीय या ऐतिहासिक स्थलों का परिचय देने के लिए इन बसों में गाइड रहते हैं. यह सुविधाजनक और सस्ता माध्यम है. हम ने अपने लिए बर्लिन देखने का यही उपाय चुना.

आम तौर से अंगरेजी का प्रचलन यूरोप में अब भी कम ही है. हां, प्रथम

ड्राइंगरूम में फूलों की उन्मुक्त हंसी और पलकों में बंद सुनहरे स्वाब

महायुद्ध के बाद अमरीकी पर्यटकों के कारण अंगरेजी को कुछ महत्त्व जरूर मिल गया है. होटलों, क्लबों और दुकानों में अंगरेजी से काम चल जाता है.

हमारा होटल यहां के प्रसिद्ध राजपथ 'कुर्फर स्टेंडम' के पास ही था. इसे पश्चिम बर्लिन का प्रमुख केंद्र कहा जा सकता है क्योंकि बड़ीबड़ी दुकानें, शानदार होटल और रेस्तोरां इसी राजपथ पर हैं.

बर्लिन को आधुनिक योजनाबद्ध नगर नहीं कहा जा सकता. हवाई जहाज

से देखते ही इस का आभास मिल जाता है.

मूलतः यह स्प्री नदी के निकट एक टापू पर बसाया गया था. यही छोटी सी बस्ती आज का विकासमान बर्लिन है. अब तो यह नदी के दोनों किनारों पर बस गया है, जैसे टेम्स के दोनों ओर भव्य व आकर्षक लंदन नगर बसा हुआ है.

बर्लिन घूमते समय मुझे बारबार जरमनों के देशप्रेम और अध्यवसाय का खयाल आ जाता था. द्वितीय महायुद्ध के दौरान इस ऐतिहासिक शहर का लगभग तीन चौथाई भाग भीषण बमबारी से नष्ट हो गया था क्योंकि लाखों टन बम इस पर गिराए गए थे. उसी ध्वंसावशेष पर आज का बर्लिन फिर से मुसकरा रहा है.

लगता है जरमन हार कर भी हिम्मत नहीं हारते इसी लिए यह जाति अजेय है, हमारे मध्ययुग के राजपूतों की तरह.

अपनी बांहों में हरियाली लिए प्रशस्त राजमार्ग, भव्य भवन और रंग-बिरंगे फूलों से सजे उद्यानों को देख कर कल्पना भी नहीं होती कि जरमन अभी कुछ वर्ष पूर्व विनाश के गहरे गढ़े में जा गिरे थे.

१९५० में जब जरमनी आया था तो ब्रिमेन और हंबर्ग की सड़कों पर बहुत से विकलांग लोग दिखाई पड़ते थे. युद्ध की यह स्वाभाविक परिणति थी. आज लगभग चौदह वर्ष बाद उसी जरमनी में दिखाई दिए स्वस्थ पुरुष व स्त्रियां और सुर्ख गालों वाले हंसते हुए बच्चे. लगता था जरमनों ने दुख-दारिद्रय को जीत लिया है, एक मजबूत नई पीढ़ी नई स्फूर्ति, उत्साह के साथ उठ खड़ी हुई है.

हम पैदल ही सैर करने निकले. कुर्फर स्टेंडम के उत्तरपूर्व से तूरगार्टेन नामक एक सुंदर उद्यान है जो लगभग छः सौ तीस एकड़ जमीन पर फैला हुआ है. उद्यान के बीच में बर्लिन कांग्रेस का भव्य हाल है. पास ही हम ने नए बर्लिन का हंसा क्वार्टर देखा. यह स्थल बर्लिन का सामाजिक केंद्र बिंदु है. १४ राष्ट्रों के श्रेष्ठ स्थापत्य शिल्पियों ने इस का निर्माण किया है. इस अंचल में सुंदर भवन, स्कूल और गिरजों का फिर से निर्माण किया गया है.

बाजार में घूमते हुए देखा, एक से एक उम्दा और नायाब चीजें दुकानों में सजी हैं. ग्राहकों की संख्या भी कम नहीं थी. हम ने खरीदारी भले ही नहीं की पर विभिन्न दुकानों पर जा कर कई प्रकार की चीजें जरूर देखीं. इटली या अन्य दक्षिण यूरोपीय देशों की तरह चीजें न खरीदने पर यहां के दुकानदार झुंझलाते नहीं और न मुंह बनाते हैं. बाजार में घूमने पर साफ पता चल जाता है कि युद्ध से जर्जरित और खंडित जरमनी ने पिछले बीस वर्षों में उद्योग और शिल्प के क्षेत्र में न केवल युद्धजनित हानि को ही पूरा किया है बल्कि आशातीत उन्नति और सफलता भी प्राप्त की है.

शायद दो घंटे घूमे होंगे, कुछ थकान सी महसूस होने लगी. मैं ने प्रभुदयालजी से कहा "नजदीक के किसी रेस्तोरां में चलना चाहिए." मगर वह तो कम से कम खाने के पक्षपाती रहे हैं इसलिए उन के आदेश के अनुसार केवल एक स्क्वैश पी कर स्वामी रेस्तोरां की खोज में चल पड़े. रात के नौ बजे जब हम वहां पहुंचे तो देखते हैं कि एक छोटी सी दुकान में रेस्तोरां है. रेस्तोरां में कुछ भारतीय
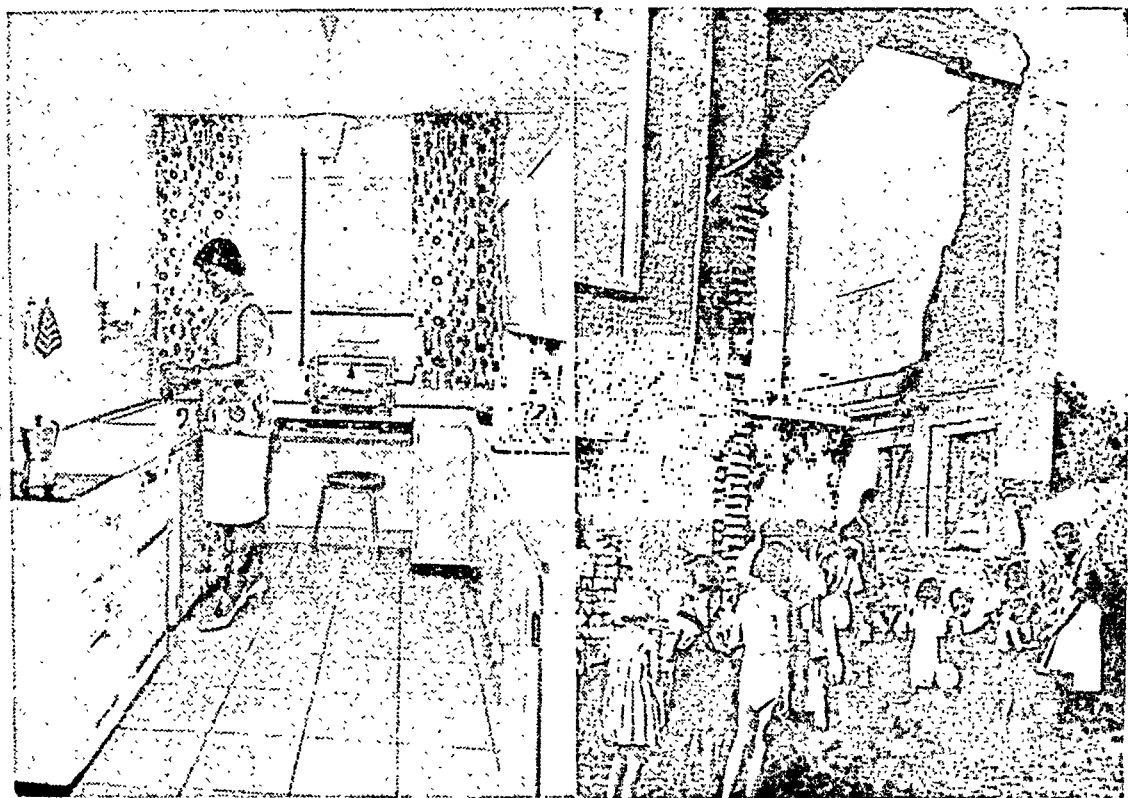
आधुनिक रसोईघर: जरमन लोगों के खानपान और रहनसहन के उच्चस्तर का प्रतीक. दाएं: युद्ध के वाद पूरा देश खंडहर वन गया. ऐसे नाजुक दौर में भी आने वाली पीढ़ी के पोपण की जिम्मेदारी निभाई.

थे और थोड़ेवहुत यूरोपीय भी थे.

दक्षिण भारतीय इडली दोसे और सांभर के दर्शन हुए, फलों का सलाद भी मिला, पर चार्ज वहुत अधिक था. गहरे श्याम वर्ण के स्थूलकाय मद्रासी वंधु मिस्टर स्वामी से हम ने इस का जिक्र किया लेकिन दाम कम करना तो दूर रहा वह तो यह भी मानने को राजी न हुए कि चार्ज ज्यादा है. उन की दलील थी कि निरामिषभोजी यहां वहुत कम हैं, इसलिए ग्राहक कम और विक्री भी कम. उन का तर्क था कि कम विक्री को देखते हुए जो कुछ चार्ज किया जा रहा है, वह सर्वथा उचित है. एक और भी जोरदार दलील उन्होंने यह पेश की कि छः हजार मील दूर घर छोड़ कर वह परदेश में रहते हैं और मद्रास से रसम तथा सांभर के मसाले मंगवाते हैं. ऐसी दशा में यदि स्वदेश के ही वंधु दामों की कटौती के लिए कहेंगे तो मद्रास लौट जाना ही उन के लिए अच्छा रहेगा. उन की गरदन हिलाहिला कर मद्रासी अंगरेजी में दी गई दलील ने हमें निरुत्तर कर दिया. हम ने उन्हें आश्वासन दिया कि जव तक वर्लिन में रहेंगे, उन के रेस्तोरां में भोजन करने अवश्य आएंगे.

रात में काफी देर से होटल लौटे. सड़कें नियोन के रंगविरंगे प्रकाश में चमक रही थीं. चहलपहल और लोगों की वेफिक्री देख कर जरमन राष्ट्र की

विकसित शक्ति का सहज अनुमान लग जाता था.

जुलाई का महीना था. हम क्योंकि उत्तरी यूरोप से आ रहे थे इसलिए यहां कुछ गरमी सी लग रही थी. वैसे तापमान केवल ९० फारेनहाइट था जब कि इन दिनों हमारे यहां तापमान ११२-११५ फारेनहाइट हो जाया करता है.

दूसरे दिन सवेरे हमारे होटल में प्रभुदयालजी के मित्र श्री डिटमार सपत्नीक मिलने आए. यहां के बारे में हमें उन से बहुत कुछ जानकारी मिली. उन्होंने बताया कि बर्लिन शीतयुद्ध का शहर है. यह एक प्रयोगशाला है जहां आमनेसामने पूंजीवादी और साम्यवादी व्यवस्था को कसौटी पर कसा जा रहा है. जहां गणतंत्र का परीक्षण बर्लिन के पश्चिमी भाग पर चल रहा है, वहीं पूर्वी बर्लिन में साम्यवादी एकनायकत्व और शासन के अनुशासन के नाम पर फौजीतंत्र है. उन्होंने संकेत किया कि हमें दोनों भागों में जा कर खुद देख कर निर्णय लेना चाहिए कि जनता किसे चाहती है और दोनों में कौन सा प्रयोग सफल हुआ है! महायुद्ध के पूर्व लंदन और पेरिस के बाद बर्लिन का स्थान था. जरमनी की राजधानी का गौरव तो इसे प्राप्त ही था, हिटलर का हेडक्वार्टर भी यही था. आज भी आम जरमन व्यक्ति, चाहे वह पश्चिमी अंचल का हो या पूर्वी, अपनी इस राजधानी को खंडित देखना नहीं पसंद करता. उस की मान्यता है कि जरमनी का और जरमनी के साथ ही बर्लिन का भी एकीकरण अवश्य होगा, भले ही शीतयुद्ध के कारण कुछ विलंब हो जाए.

हम ने उन से प्रश्न किया: जरमनी के इस विकास या पुनरुत्थान के पीछे कौन सा चमत्कार है?

बड़े ही सहज भाव से उन्होंने कहा, "आत्मसम्मान की भावना हमारी जाति का नैसर्गिक गुण है. इस के कारण हम में राष्ट्र के प्रति चेतना है और इसी ने हमें कष्टसहिष्णु बना दिया है. यही मूल कारण है जिस ने हमें फिर से जीवित कर दिया."

पश्चिम जरमनी ने जो अर्थनीति अपनाई, वह अनुशीलन के योग्य है. उस ने अमरीकी सहायता पा कर हमारी तरह अंधाधुंध बड़ीबड़ी योजनाएं नहीं बनाईं बल्कि मध्यमार्गी नीति को अपनाया. इस प्रकार की नीति को 'सोशल मार्केट इकोनामी' कहते हैं. इस की विशेषता यह है कि आर्थिक उन्नति के लिए कृषि, शिल्प और उद्योग का विकास इस प्रकार किया जाता है कि व्यक्ति और समाज दोनों का हित हो. रूस का साम्यवादी तंत्र भी अब इसे समझने लगा है, भले ही स्वीकार करने में संकोच करे. मध्यम मार्ग की अर्थनीति के अनुसार निजी संपत्ति और निजी प्रयासों के लिए हर क्षेत्र में पूरी छूट है लेकिन यदि राष्ट्र का हित किसी विशेष व्यवसाय या व्यापार में हो तो उस का राष्ट्रीयकरण तो किया जाता है पर फिर भी व्यक्ति और समाज के हितों की अवहेलना नहीं की जाती.

विषय को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया, "युद्ध के कारण जरमनी में मकान बुरी तरह ध्वस्त हुए और आवास की विकट समस्या पैदा हो गई. सोशल इकोनामी के अनुसार मकानों पर नियंत्रण लग गया. किराया बढ़ने नहीं दिया गया. सरकार ने आवास के लिए खुद मकान बनवाए और लोगों को मकान बनाने के लिए रिण भी दिए. समस्या का बहुत कुछ
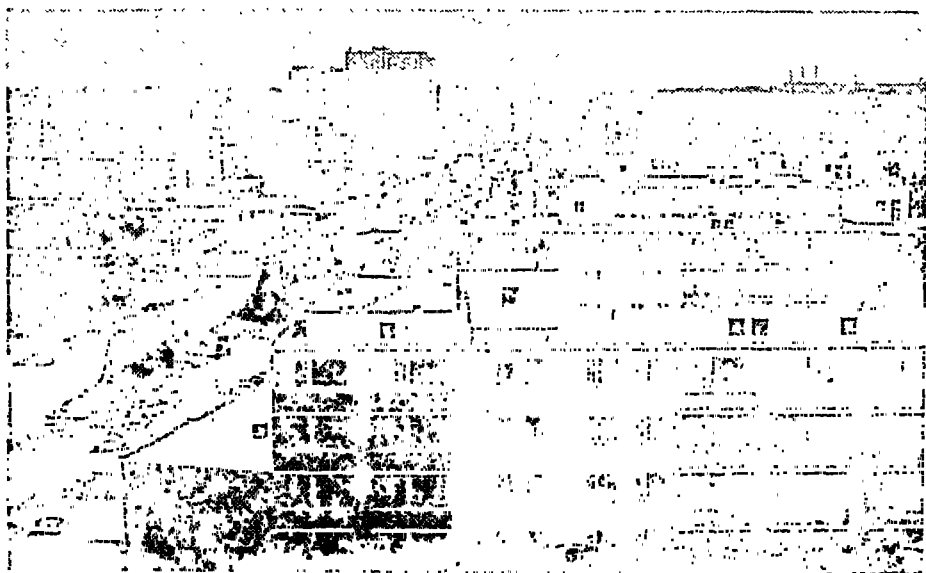
जहां कभी खंडहर थे, वहां आज शानदार इमारतें बनाई जा रही हैं. पश्चिम वर्लिन के एक निर्माणाधीन उपनगर का भव्य दृश्य

समाधान हो गया. आज नगरों में गंदी बस्तियां नहीं मिलेंगी. वैसे क्योंकि आवादी तेजी से बढ़ी है इसलिए कुछ दिक्कत अब भी है."

१९४६ में यहां की आवादी साढ़े चार करोड़ थी, जो १८ वर्षों में बढ़ कर लगभग पौने छः करोड़ हो गई है. युद्ध के वाद पश्चिम जरमनी में साठ लाख मकानों की जरूरत थी. इन वर्षों में वहां करीव पचपन लाख मकान वन चुके हैं.

जरमनी के आर्थिक विकास में यहां के मजदूर संगठनों का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है. इन श्रमिक संघों ने देश की नाजुक स्थिति को देखते हुए तय कर लिया था कि औद्योगिक प्रगति के लिए वे विवाद सुलझाने के लिए हड़ताल या 'सुस्त काम' के घातक तरीके नहीं अपनाएंगे. यही नहीं शुरूशुरू में तो केवल थोड़ी सी मजदूरी ले कर उन्होंने अथक परिश्रम कर के नष्ट हो चुके कारखानों को नया जीवन प्रदान कर दिया.

मैं ने मिस्टर डिटमार से कहा, "जरमनी के विकास के लिए सव से वड़ी सहूलियत यह मिली कि १९५५ तक सेना पर कुछ भी व्यय करना नहीं पड़ा और इस समय भी आप का सेना पर खर्च दूसरे वहुत से देशों की अपेक्षा वहुत कम है. इसलिए आप ने सारे धन और साधन को देश के नए सिरे से निर्माण में लगा दिया."

मुसकराते हुए उन्होंने कहा, "वहुधा विदेशों के लोग हमारे वारे में ऐसा कहते हैं जव कि स्पष्ट है कि हार के वाद न तो हमारे पास धन वचा, न साधन. जिस रूर क्षेत्र ने जरमनी को दो महायुद्धों के लिए धन और साधन दिए, उसे युद्ध के दौरान भीषण क्षति उठानी पड़ी. शत्रु के विमानों ने रूर का विनाश कर दिया, कलकारखाने और बस्तियां उजाड़ दीं.

"लोग कोसों चल कर चुकंदर या आलू लाते और किसी तरह परिवार की गुजर करते थे. हालत यह हुई कि फ्रांस रूर की खानों से कोयला निकालता और

पश्चिमी जरमनी का एक प्रशिक्षित मजदूर: छुट्टियों के दिनों में अपनी पत्नी

यूरोप के वाजारों में बेचा जाता था. हमारे मजदूर कम मजदूरी पर टिके रहे. हमें इस से लाभ हुआ क्योंकि हमारी खानें वंद नहीं हुई. हमें मित्रराष्ट्रों को युद्ध के हरजाने की वड़ी रकम चुकानी थी. उस के वदले हम ने कोयला और खनिज पदार्थ दिए. तनाव कम होता गया.

"उद्योगों से विदेशी पावंदी हटी और औद्योगि... जी से हुई. इस का बहुत वड़ा श्रेय है हमारे अर्थ मंत्री लुडविग एरह... उ... के लिए हर प्रकार की सरकारी सहायता दी. ... नागरिक छोटेछोटे शिल्पोद्यो... करने लगे. ... जहां पेट पालना दूभर थ... जीवनस्त... से ऊंचा है. हमारी रा... ० की ... शत वढ़ी है. मजदूरों ... हो ... खरीद सकते हैं और छुट्टि... निकल ... रखने लगे हैं."

और दो बच्चों के साथ एक झील के किनारे आमोदप्रमोद में मग्न

हम ने लक्ष्य किया कि यहां प्रत्येक व्यक्ति डट कर काम में लगा हुआ है, बेकारी नहीं है. जरमन व्यवसायी महत्त्वाकांक्षी हैं और यही उन का सब से बड़ा गुण है.

मिस्टर डिटमार से बातें कर के हमें बड़ा संतोष हुआ. अंगरेजों में भी हम ने स्पष्टवादिता देखी पर कुछ अहमन्यता के साथ. जरमनों की स्पष्टवादिता कुछ नम्रता भरी थी. शायद दो महायुद्धों में हार के कारण यह परिवर्तन हुआ हो. शाम के भोजन का निमंत्रण दे कर दोनों ने विदा ली.

हम ने टूरिस्ट बस से शहर देखने के लिए टिकट ले रखी थी. बस से जाने वाले हम पचीसतीस यात्री थे. यात्रा से पूर्व गाइड ने सब को होटल के लाउंज में एक साथ बैठा कर बर्लिन का एक संक्षिप्त परिचय दिया ताकि शहर देखते समय समझनेबूझने में सुविधा रहे. उस ने जरमन, फ्रेंच और अंगरेजी तीनों भाषाओं में यात्रियों को समझाया. पहले भी हम ने बर्लिन के बारे में पढ़ रखा था. उस की बातों में विशेषता यह जरूर थी कि अपने शहर की तारीफ वह इस ढंग और
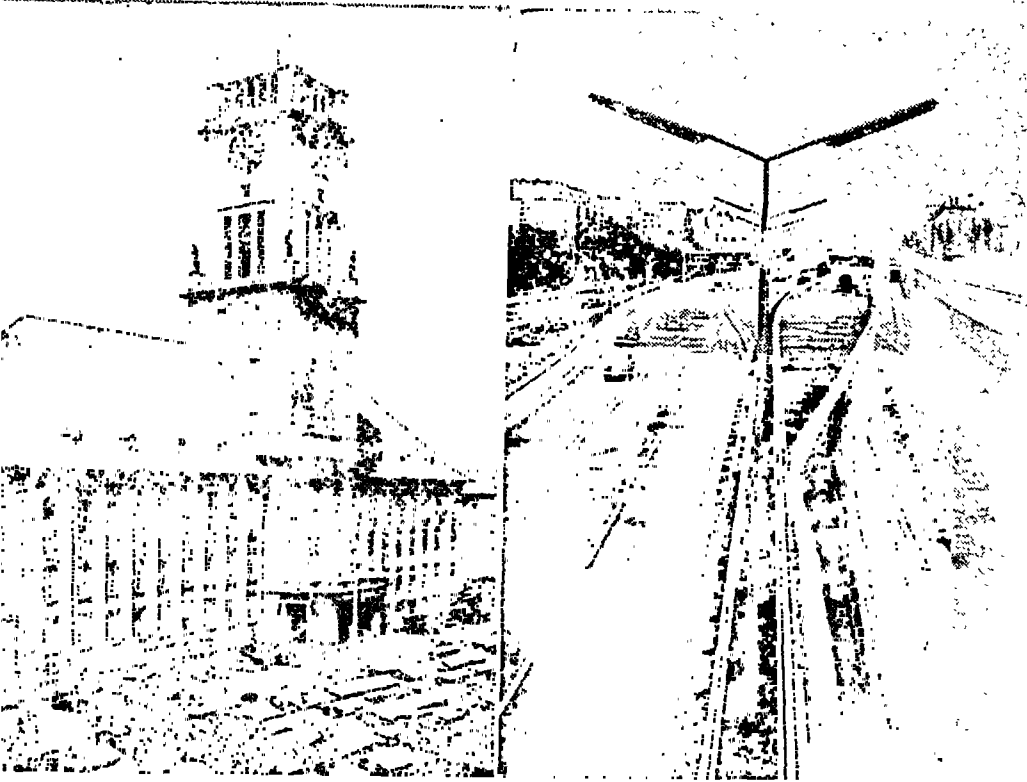
बर्लिन का प्रसिद्ध टाउनहाल दाएं: यातायात की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए पश्चिमी बर्लिन में बनाया गया राज मार्ग

इस लहजे में कर रहा था जैसे कोई रिकार्ड बज रहा हो. एक फ्रेंच यात्री बोल उठा. "मोशिए, अब हमें अधिक मत ललचाइए, चलिए अपनी स्वर्गपुरी के दर्शन करा दीजिए."

लगभग नौ बजे रवाना हुए. बस की छत और चारों तरफ की खिड़कियां शीशे की थीं जिस से सभी दृश्य साफसाफ दिखाई देते थे. गाइड के बैठने के लिए एक ओर ऊंची सीट लगी थी. माइक से वह हमें सब जानकारी देता जा रहा था. लंदन और पेरिस की तरह यहां भी बड़ेबड़े बागबगीचे हैं. यूरोप के देशों में अपनी राजधानी को सजीली और सुंदर बनाने की होड़ सी मध्ययुग में रहती थी. बिसमार्क और सम्राट विलियम केजर ने बर्लिन को अन्य राजधानियों से अधिक भव्य बनाने का प्रयास किया था. लेकिन भला इंद्रपुरी पेरिस के वैभव और सुंदरता के समकक्ष पहुंच पाना कहां संभव था! हिटलर ने भी इसे बढ़ाया किंतु उस की प्रेरणा से बने मकान पार्टी और युद्ध के खयाल से बनाए गए. ये बड़ेबड़े हैं जरूर, पर कलात्मक अभिरुचि का इन में स्पष्ट अभाव है.

टायर गार्टेन नामक बड़े उद्यान से हमारी बस धीरेधीरे जा रही थी. इस बगीचे के बीच में '१७ जनवरी' नाम की एक सड़क जाती है, उद्यान के पश्चिमी किनारे पर १२५ वर्ष पुरानी एक पशुशाला है. १९४४-४५ में यहां के बहुत से पशुपक्षी बमबारी में मारे गए. बहुत बड़ी राशि व्यय कर दुर्लभ पशुपक्षियों को
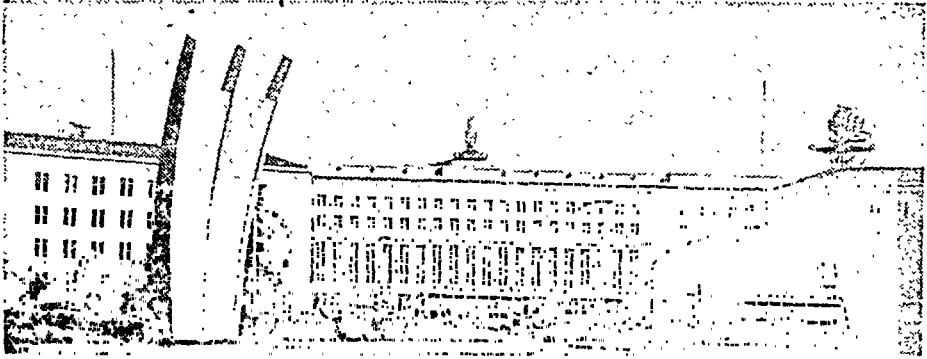
आधुनिकता की होड़ में निरंतर आगे बढ़ते हुए बर्लिन की एक शानदार इमारत

संसार के विभिन्न देशों से मंगा कर इसे फिर से सजाया गया है.

यहां थोड़ी देर हम रुके. छोटेछोटे बच्चे मातापिता की उंगलियां पकड़े गौर से हाथी, गेंडे, भालू आदि देख रहे थे. उन की भाषा भले ही समझ में न आ रही थी पर भाव स्पष्ट थे. कोई पूछता था, "कितना खाता होगा?" कोई अपनी नाक दिखा कर कहता था, "इस के जैसी बना दो!" हमारे साथ भी बच्चे थे. समय हो गया था इसलिए माताएं पकड़पकड़ कर उन्हें बस में ले जाना चाहती थीं और वे इधरउधर बच निकलते थे. आखिर हम लोगों को मदद करनी पड़ी. सभी देशों के बच्चे एक सरीखे चपल होते हैं. चाहे काले हों. पीले हों या गोरे.

इस के बाद हम हंसा क्वार्टर आए. पिछली रात पैदल यहां घूम चुके थे. डलहम म्यूजियम हमें हंसा क्वार्टर के बाद दिखाया गया. यह संग्रहालय युद्ध के पहले विश्व का एक बेहतरीन म्यूजियम माना जाता था. बमबारी में इसे बहुत क्षति उठानी पड़ी. फिर भी रेंब्रा के २६ दुर्लभ चित्र किसी प्रकार बच गए. इन में तीन दुर्लभ चित्र 'स्वर्ण बख्तर मनुष्य' 'डेनियल का स्वप्न' तथा 'सेम्सन' और 'दलाइला' भी हैं. रयूबन के भी १४ चित्र यहां हैं. ये सब केजर के निजी से संग्रहालय लाए गए हैं.

केवल इन्हीं अद्वितीय कृतियों के कारण यह संग्रहालय आज अपने गौरव को बचा पाया है. इस के अलावा यहां की एक अमूल्य निधि है. प्राचीन मिस्र की महारानी नेफ्रीतीती के मस्तक की प्रतिमूर्ति. तीनसाढ़ेतीन हजार वर्ष पूर्व मिस्र में यह कलापूर्ण प्रतिमा बनाई गई थी. वैसे पत्थर की मूर्तियां भी मिली हैं पर वास्तविक चेहरे से एकदम मिलतीजुलती इतनी पुरानी प्रस्तरमूर्ति यहीं मिली है. हमारे यहां बाइसतेइस सौ वर्ष पहले की बनी गौतम बुद्ध की अनेक मूर्तियां मिल जाती हैं पर वे वास्तविक प्रतिमूर्ति हैं या नहीं, इस का निर्णय नहीं हो सका है.

हवेल नदी के किनारेकिनारे ग्रेनवाल के राजपथ से गुजरती हुई हमारी बस ओलंपिक स्टेडियम पहुंच गई. १९३६ के विश्व की क्रीड़ा प्रतियोगिता के लिए इस का निर्माण हुआ था. १६ मंजिलों की ऊंचाई के इस विशाल स्टेडियम में एक लाख से भी अधिक दर्शकों के बैठने के लिए स्थान हैं. रेस्तोरां, विश्रामकक्ष, पुस्तकालय, वाचनालय तथा अन्य सुविधाएं भी यहां उपलब्ध हैं.

स्टेडियम से थोड़ी दूरी पर हम एक कृत्रिम पहाड़ी पर पहुंचे. मन में एक

कुतुहल सा हुआ कि राजस्थान की तरह यह धूल का टिब्बा इस हरियाली के बीच कैसे वना? गाइड ने बताया, "१९४० के अगस्त से १९४५ के अप्रैल तक मित्र-राष्ट्रों ने बर्लिन पर साढ़े बाइस लाख मन बम गिराए. इस के अलावा १९४५ अप्रैल के सिर्फ दस दिनों में जब नाजी विमानभेदी तोपें ठंडी हो चुकी थीं, सोवियत रूस ने ग्यारह लाख मन बम बरसा कर सारे शहर को तहसनहस कर दिया. रूस ने स्टालिनग्राद के युद्ध का बदला इस ढंग से चुकाया. इस में बेगुनाह नागरिकों की जानें गईं और अस्पताल, स्कूल, पवित्र गिरजे तथा ऐतिहासिक स्मारक नष्ट हो गए. पता नहीं कम्युनिस्ट तंत्र का यह कौन सा मानवतावादी तरीका था!"

गाइड की आवाज में व्यंग्य तीखा था. उस ने कहा कि गिरजों, मकानों, अस्पतालों आदि के नष्ट होने पर जो मलवा बचा, उस में से कुछ को यहां इकट्ठा कर के रख दिया गया है. युद्ध की विभीषिका और अभिशाप का यह प्रत्यक्ष नमूना है. यह द्वेष, घृणा और स्वार्थ की मानव निर्मित पहाड़ी है जिसे देख कर खुद मानवता कराह उठती है. फ्रेंच यात्री ने कहा, "पोलैंड और स्टालिनग्राद में जरमनों ने कौन सी कमी रखी!"

दोपहर हो गई थी. लंच के लिए हमें फिर अपने होटल वापस आना पड़ा.

भोजन और कुछ देर विश्राम के बाद फिर उसी बस से घूमते हुए करीब तीन बजे हम यहां का विजयस्तंभ देखने पहुंचे. २१० फुट ऊंचा यह स्तंभ १८७० में फ्रांस पर जरमनी की विजय की स्मृति में बनाया गया था. हम इस के ऊपर चढ़े. लगभग सारा बर्लिन यहां से दिखाई देता है. १९३३ में हिटलर द्वारा जलाई गई राइख चांसलरी भी दिखाई पड़ी. पूर्वी बर्लिन की हलकी सी झांकी भी यहां से देखने को मिल जाती है.

हम जुलाई के दूसरे सप्ताह में यहां आए थे. उस समय तक ग्रीन वीक समाप्त हो चुका था. जून में यहां ग्रीन वीक यानी 'हरित सप्ताह' का मेला लगता है. इस मेले में जरमन किसान अपनी उपज के बेहतरीन नमूने पेश करते हैं. कृषि की उन्नति कैसे की जाए, इस के लिए विभिन्न यंत्र और साधनों की प्रदर्शनी लगती है. गाइड ने हमें जरमनी की कृषि योजना का परिचय दिया, जो तथ्यों पर आधारित था. उस ने बताया कि यहां चलाई गई योजना के अनुसार छोटे-छोटे रकबों को मिला कर बड़ा किया गया है. इस से यांत्रिक कृषि में अधिक सुविधा हो गई है और उपज भी बढ़ाई जा सकी है. आज पश्चिम जरमनी अपने खाद्यान्नों के लिए आत्मनिर्भर है. अब तो अन्न और कृषि की अन्य वस्तुओं का निर्यात भी यहां से हो रहा है. फलों की खेती भी खूब बढ़ी है.

उत्सवों का ब्योरा देते हुए उस ने बताया कि कला उत्सव सितंबर में मनाया जाता है. इस अवसर पर नाना प्रकार के वाद्ययंत्रों का वादन, गीत और नाट्य रूपकों का आयोजन होता है. विदेशों से लाखों की संख्या में लोग आते हैं.

गाइड विश्वप्रसिद्ध संगीतकार मौजर्ट और वेगनर की खूबियां बता रहा था. उस की बातों में रस जरूर रहा होगा पर हम इस विषय में कोरे थे. एक सहयात्री ने, जो शायद अमरीकी था, स्टेट लाइब्रेरी और राइख चांसलरी दिखाने के लिए कहा. लाइब्रेरी प्रोग्राम में थी नहीं इसलिए हम केवल चांसलरी देखने गए.

गाइड ने बताया कि संसार के इतिहास में जघन्य अपराध का शायद ही ऐसा

युद्ध के वाद सन १९४५ के वसंत में वर्लिन की एक उजाड़ गली का चित्र

कोई दूसरा दृष्टांत मिले कि देश का सर्वोच्च शासक खुद अपने ही सचिवालय को भस्मसात करा दे. जनवरी सन १९३३ में हिटलर चांसलर चुना गया और ठीक एक महीने बाद यानी २७ फरवरी को उस ने अपने नाजी गुप्तचरों के जरिए चांसलरी के भव्य प्रासाद को खाक में मिलवा दिया, ऊपर से ढिंढ़ोरा पीटा कि साम्यवादियों की साजिश से यह दुष्कर्म हुआ है. इस प्रकार उस ने जरमनी की साम्यवादी पार्टी को अवैध करार दे दिया और नाजी पार्टी के प्रति जरमन जनता का मन जीतने का प्रयास किया.

चांसलरी को देखने पर लगता है कि यह कार्यालय दिल्ली के हमारे सचिवालय से भी वड़ा रहा होगा. इस की कराहती हुई टूटीफूटी अधजली दीवारें आज भी अपने अतीत की गरिमा वताती हैं. शायद स्मृति वनाए रखने के लिए ही इसे इसी हालत में छोड़ रखा गया है.

शाम को हम लोग होटल वापस लौटे. लाउंज तक पहुंचा कर गाइड ने शिष्टतापूर्वक विदा ली. हम ने देखा कि हमारे कुछ साथी गाइड को स्वेच्छा से कुछ भेंट कर रहे हैं. हम ने भी एकएक मार्क (दो रुपए) दिया.

थकान मिटाने के लिए काफी मिली. आम तौर से यहां बिना दूध और चीनी के काफी पीते हैं. हम ने भी कोशिश की मगर गले में जलन और मुंह में कड़वाहट भर गई. काफी से भी ज्यादा यहां वीयर पीने का प्रचलन है. दरअसल बीयर को तो लोग पानी की तरह पीते हैं. करीब एक रुपए में एक बोतल अच्छी बीयर मिल जाती है. पुरुष, स्त्रियां, छात्र, मजदूर सभी पीते हैं. दूसरे देशों की अपेक्षा बीयर की खपत प्रति व्यक्ति यहां कहीं अधिक है.

रात्रि में मिस्टर डिटमार के साथ रेस्तोरां में भोजन करने गए. पतिपत्नी दोनों अंगरेजी जानते थे इसलिए वातचीत और विचारों के आदानप्रदान में कठिनाई नहीं हुई. इन देशों में निमंत्रण पर भोजन का अर्थ है दोढाई घंटे का कार्यक्रम. मीनू के अनुसार एक के वाद एक तश्तरी आती है और साथ में नाना प्रकार के पेय भी चलते रहते हैं. खाने की टेवल पर ही व्यापारव्यवसाय, राजनीति, प्रेमविवाह आदि के महत्त्वपूर्ण मसले तय हो जाते हैं.

हम जरमनी के बारे में और भी जानना चाहते थे. मैं ने श्रीमती डिटमार से जानना चाहा कि महायुद्ध का परिणाम यहां की जनसंख्या पर अवश्य पड़ा होगा, स्त्रियों की संख्या पुरुषों से बढ़ गई होगी.

उन्होंने बताया कि यह युद्धों की स्वाभाविक प्रक्रिया होती है. १९४६ में प्रति हजार पुरुषों पर ११६ स्त्रियां अधिक थीं पर इन अठारह वर्षों में जनसंख्या बढ़ी है और असंतुलन अब कम हो गया है. उन से जानकारी मिली कि वे लोग अब परिवार नियोजन पर भी ध्यान देने लगे हैं. पिछली शताब्दी में औसत जरमन परिवार में पांच सदस्य होते थे, जब कि आज औसत केवल साढ़े तीन सदस्यों का है.

जरमनी में हमारे यहां की तरह स्त्रीपुरुषों के पारस्परिक मेल पर सामाजिक प्रतिबंध नहीं है बल्कि युद्ध के बाद कुछ समय तक तो उसे प्रोत्साहन दिया जाता रहा. वहां विवाह योग्य अवस्था पुरुषों के लिए चौबीसपच्चीस वर्ष है और स्त्रियों के लिए बाईसतेईस वर्ष. स्वेच्छा से विवाह होते हैं और तलाक की सुविधा है फिर भी जरमनी में पारिवारिक व्यवस्था सुगठित है. हाल में जो सर्वे हुआ उस के अनुसार दस हजार व्यक्तियों में से केवल पैंतालीसपचास तलाक के लिए न्यायालयों में आए.

जरमनों का दैनिक जीवन नियमित है. सुबह आठ बजे तक लोग घर से काम पर चले जाते हैं. इस से पूर्व गृहिणी नाश्ता तैयार कर लेती है. नाश्ता साथ ले जाते हैं. बच्चों का स्कूल या किंडरगार्टन यदि रास्ते में पड़ा तो पिता या माता स्कूल में छोड़ते जाते हैं. शाम को पांच बजे काम से लौटने पर साथ ले आते हैं.

दसग्यारह वर्ष तक के छोटे बच्चों को रात के सातआठ बजे तक सुला दिया जाता है. बच्चों के स्वास्थ्य के लिए यह परंपरा अच्छी लगी. इतवार या छुट्टी का दिन त्यौहार की तरह आमोदप्रमोद, सैरसपाटे में बीतता है. वृद्ध मातापिता अलग रहते हैं. उन्हें सरकारी पेंशन मिलती है. आठदस दिन में वे एक बार अपने परिवार के लोगों से मिलने चले जाते हैं. बहुत वृद्ध हो जाने पर वृद्धालयों में चले जाते हैं.

जरमन मुद्रा के बारे में पता चला कि विश्व के किसी भी देश के मुकाबले में मार्क की साख कम नहीं है. कारण यह कि जरमनी का बजट संतुलित है. आयात से निर्यात अधिक है. उद्योगधंधे इतने अधिक हैं कि उन के लिए जरमन श्रमिक पूरे नहीं पड़ते. लगभग ढाई लाख विदेशी मजदूर जरमनी के कारखानों में काम पर लगे हुए हैं. अलगअलग कामों के लिए मजदूरी में फर्क जरूर है फिर भी प्रत्येक को लगभग पंदरह सौ रुपए से अठारह सौ रुपए तक प्रति मास मिल जाते हैं. खाद्य सामग्री और देशों की अपेक्षा सस्ती है. फलदूध, मांसमछली की बहुतायत है. हम ने आंकड़ों के अनुसार देखा कि जरमनी में प्रत्येक व्यक्ति को लगभग सवा सेर दूध, आठ औंस मांस या मछली, चार औंस चीनी प्रति दिन मिल जाती है. हम अपने देश में तो इन सारी सुविधाओं की कल्पना भी नहीं कर सकते. रात साढ़े ग्यारह बजे तक डिनर चलता रहा. इस के बाद वे अपनी गाड़ी में हमें होटल पहुंचा गए.

बर्लिन

दो विरोधी शक्तियों के राजनीतिक दांवपेच की कसौटी . . .

अगले दिन सुबह नाश्ता कर के हम लोग पूर्व बर्लिन के लिए रवाना हुए. पश्चिम जरमनी के नागरिकों के प्रवेश पर वहां कड़ा प्रतिबंध है पर अन्य देशवासियों के लिए नहीं. पासपोर्ट और वीसा दिखाने पर अनुमति मिल जाती है. भारत और सोवियत रूस के आपसी संबंध अच्छे रहे हैं इसलिए हमारे लिए अड़चन का सवाल ही नहीं था, फिर भी पश्चिम बर्लिन से आने वाले शाम के ८ बजे तक ही रुक सकते हैं, उस के बाद उन्हें वापस चला जाना पड़ता है.

मेरे मन में एक कुतूहल था, आज की बहुप्रचलित दो प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं—साम्यवाद और पूंजीवाद—की सफलता और परिणाम को प्रत्यक्ष देखने का अवसर मिल रहा था. बर्लिन के अलावा ऐसा अवसर विश्व में अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं है.

बर्लिन वास्तव में पूर्व जरमनी की ही राजधानी है, जब कि पश्चिम जरमनी की राजधानी है बोन. यह पूर्व जरमनी के मध्य भाग में है. पश्चिम जरमनी की सरहद से लगभग सौ मील दूर. सन १९४८ में रूस ने बर्लिन में बाहर से माल आने पर रोक लगा दी थी.

उस समय एक बार तो वहां निराशा और घबराहट फैल गई क्योंकि बीस लाख व्यक्तियों के जीवनमरण का सवाल था. पर उन करीब ग्यारह महीनों में अमरीका तथा मित्र राष्ट्र सोलह लाख टन खाद्यान्न तथा दूसरे जरूरी सामान हवाई जहाज द्वारा यहां लाए. उस समय अनेक प्रकार की कठिनाइयां बर्लिनवासियों ने सहीं. पर केवल चार प्रति शत लोगों ने पूर्व बर्लिन से राशन लिया.

उस एक वर्ष में अमरीका को १३० करोड़ रुपए सामान लाने के लिए खर्च करने पड़े. जब किसी प्रकार समझौता संभव नहीं हुआ तब मित्र शक्तियों ने सोवियत गुट के देशों के माल के आवागमन पर प्रतिबंध लगा दिया. तब जा कर संयुक्त राष्ट्रसंघ के बीचबचाव से घेरा उठाया गया पर फिर भी छुटपुट संकट चलते ही रहे. राजनीति के इन दांवपेचों ने बर्लिन को कसौटी बना दिया है. हम ने देखा कि गणतंत्रीय व संसदीय व्यवस्था शहर के पश्चिम भाग का इन २० वर्षों में बहुमुखी विकास करने में सफल रही है.

दूसरी ओर जो साम्यवादी यह दावा करते हुए नहीं थकते कि उन की व्यवस्था ही मानव के कल्याण का एकमात्र निदान है, तो आज तक वहां बारह लाख नागरिकों

के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते. इसी लिए जान जोखिम में डाल कर भी वर्षों तक पूर्व बर्लिन से भाग कर पश्चिम में आते रहे हैं. बर्लिन के सीने पर दोनों के निशान उभर रहे हैं. प्रत्यक्ष देखने पर खरेपन का खुद ही अंदाज हो जाता है.

दोनों बर्लिन के बीच की दीवार के पास हम पहुंचे ही होंगे कि हमें कुछ तनाव का सा वातावरण मिला. लोगों की शक्ल पर चिंता दिखाई पड़ी. कइयों ने यह भी बताया कि उस पार जाना आज शायद न हो.

मेरे मन में एक सरसराहट सी हुई. प्रभुदयालजी के मना करने पर भी मैं ने दलील दी कि हमारे लिए भय की कोई बात नहीं है. लोगों के कामकाज ठीक हैं. सभी चल फिर रहे हैं. ऐसी स्थिति में खतरे का अंदेशा नहीं है. फिर हम तो भारतीय नागरिक हैं, जिन्हें कई बार पूर्वी यूरोपीय देश विभिन्न जलसों में बुलाते रहते हैं.

हम फीड्रिश स्ट्रेशों से दीवार की ओर बढ़े. दीवार के करीब आने पर हमें पश्चिम बर्लिन के प्रहरियों ने रोका. एक पुलिस वाले ने बताया कि पिछली रात दीवार का एक हिस्सा पूर्व बर्लिन से भागने की कोशिश करने वाले किसी व्यक्ति ने बम से उड़ा दिया है. रूसी सैनिक अधिकारियों का आरोप है कि पश्चिम बर्लिन के अधिकारी वर्ग की साजिश है कि इसी तरह समूची दीवार गिरा दी जाए. यह जरमन साम्यवादी सरकार के सार्वभौम अधिकार पर गहरी चोट है जिसे बरदाश्त नहीं किया जा सकता. इस का प्रतिकार होगा, हरजाना लगेगा. जो व्यक्ति बम के धड़ाके से मरा है उस के लिए क्षतिपूर्ति करनी होगी आदिआदि. इस के पहले ख्रुश्चेव ने अमरीका तथा दूसरे राष्ट्रों को कई बार कड़ी चेतावनी भी दी थी. और यहां तक प्रचार किया गया था कि पूर्व बर्लिन से जाने वाले पुरुषों से तो गुलामों की तरह काम लिया जाता है और महिलाओं को वेश्यालयों में भेज दिया जाता है.

मेरी समझ में भाषा नहीं आ रही थी पर लोग सारांश बता देते थे. प्रभुदयालजी कोट का पल्ला बारबार खींच कर वहां से हटने के लिए इशारा कर रहे थे, मगर मुझे छोड़ कर खुद हटना भी नहीं चाहते थे. मैं सोचने लगा कि पश्चिम जरमनी से इतनी दूर बर्लिन के पश्चिम भाग के इन मुट्ठी भर सैनिकों का तो मिनटों में सफाया हो सकता है. भागने की गुंजाइश भी कहां? भागेंगे भी तो साम्यवादी इलाका ही चारों ओर है. इतने में देखा, एक अमरीकी अफसर खाली हाथ अकेले ही दीवार की ओर बढ़ रहा है. वह ठीक वहीं पहुंचा जहां उस पार मचान पर से रूसी अफसर माइक से गरज रहा था. उस ने क्याक्या बातें कीं, सुन नहीं पाया. लेकिन हावभाव से पता चला कि बड़ी संजीदगी से वह कुछ समझा रहा था. थोड़ी देर बाद देखा रूसी संगीनें झुक गईं. वह अफसर मुसकराता हुआ लौट रहा था नाटो संधि के कारण पश्चिम जरमनी अमरीकी गुट में है. सोवियत रूस ने पूर्व जरमनी और बर्लिन से अपनी सेना नहीं हटाई है, इसलिए बर्लिन की सुरक्षा और जरमन संघीय सरकार (पश्चिम जरमनी) के सहयोग के लिए अमरीकी फौजी दस्ता इस समय तक भी यहां रखा गया है.
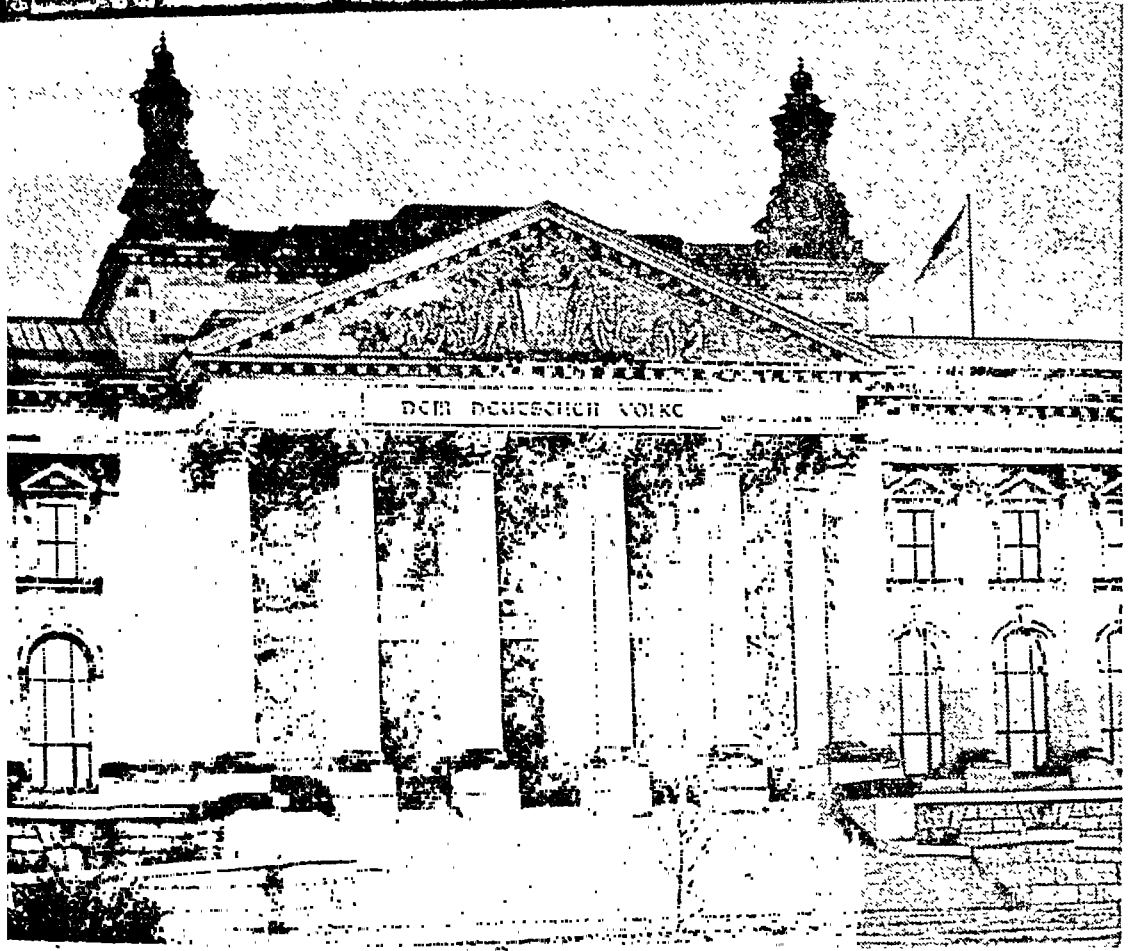
आवागमन पूर्ववत चलने लगा. मैं सोचने लगा कि सचमुच ही बर्लिन शीत-युद्ध के बारूद के एक ऐसे अंबार पर बैठा है, जो जरा सी चिनगारी से भड़क उठेगा और तब तृतीय विश्वयुद्ध हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं. अमरीका और रूस दोनों ही यहां हर घड़ी टकरा सकते हैं. दोनों की प्रतिष्ठा और मर्यादा बर्लिन के मसले में दांव पर लगी है, कोई झुकने या हटने वाला नहीं लगता.

हम ने देखा कि दीवार की पश्चिमी ओर चौड़ी, उजड़ी और वीरान पट्टी है. इस में झाड़ियां उगी हैं. बीचबीच में सलीबें (क्रास) भी हैं. ये उन लोगों की यादगार हैं, जिन को पूर्वीय भाग से भागने की कोशिश करते समय रूसी प्रहरियों ने गोली से उड़ा दिया था. दीवार के करीब जगहजगह रेस्तोरां और छोटी-छोटी दुकानें भी देखने में आईं. हमारे यहां मंदिरों के आसपास काशी, प्रयाग, हरिद्वार में जैसे महात्म्य की सचित्र पुस्तकें मिलती हैं उसी तरह की किताबें यहां भी मिलती हैं, जिन में इस दीवार का इतिहास रहता है और तसवीरें भी.

बर्लिन की दीवार को देख कर लगता है कि आज का सभ्य कहलाने वाला मनुष्य कितना जंगली और बर्बर है! इस के बनाते समय आसपास की खूबसूरत इमारतें या उन के हिस्से गिरा दिए गए और वहां भोंड़े आकार के भूरे पत्थर चिन दिए गए. कहींकहीं तो मकानों के दरवाजों और खिड़कियों में पत्थर लगा दिए गए हैं. ऊंचे मचान जगहजगह बने हैं. इन पर रातदिन मशीनगन साधे सोवियत प्रहरी डटे रहते हैं. दूरबीन, सर्चलाइट, लाउडस्पीकर इस ढंग से फिट हैं कि कोई चिड़िया भी यदि पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़े तो पता चल जाता है—आदमी की
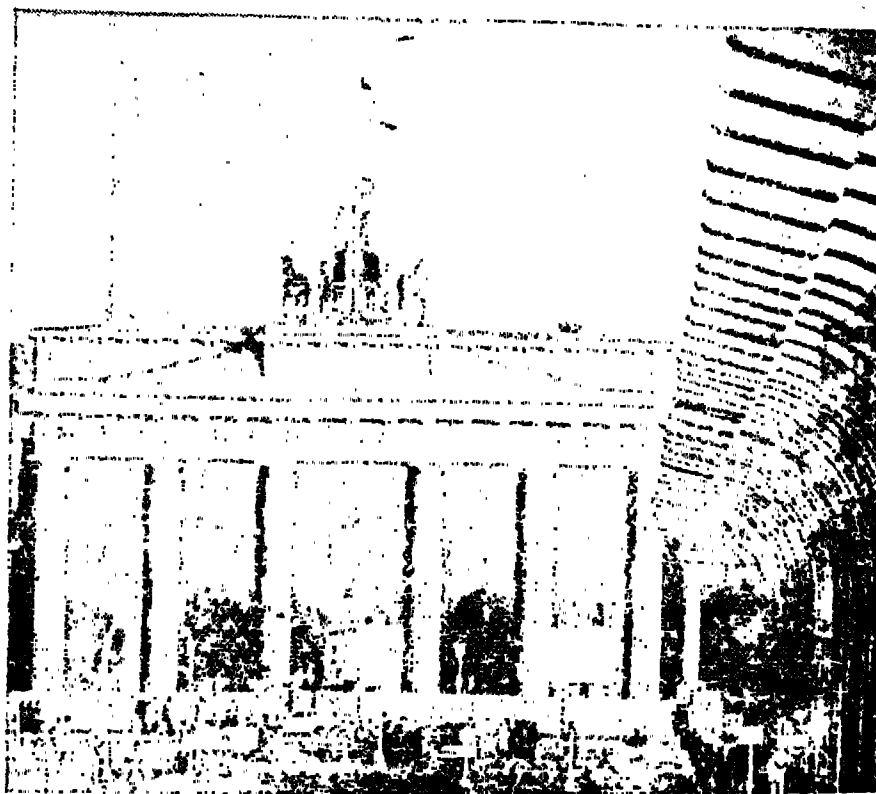
पूर्व और पश्चिम बर्लिन के बीच स्थित ब्रेडनबर्ग द्वार. शहर को दो हिस्सों में बांटने वाली दीवार का एक अंग भी दिखाई दे रहा है

तो बात ही क्या! फिर भी मुक्तिकामी प्राणों की बाजी लगा कर दीवार फांदने की चेष्टा करते हैं. दीवार के पास कहीं टैंक हैं और कहीं सैनिकों की टुकड़ियां. कानून इतना कड़ा है कि बढ़ता हुआ व्यक्ति यदि 'हाल्ट' कहने पर रुक न जाए तो उसे वहीं गोली से उड़ा दिया जाता है. फिर भी पिछले १० वर्षों में लगभग बीस लाख व्यक्ति दीवार फांद कर पश्चिम हिस्से में आ गए हैं.

युद्ध के बाद जरमनी की बंदरबांट हुई. इस का लगभग एकतिहाई भाग सोवियत रूस ने दबा लिया, जिस में १.०८ लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल और डेढ़ करोड़ की आबादी थी. पश्चिम जरमनी के २.४८ लाख किलोमीटर क्षेत्रफल और पांच करोड़ की आबादी के दोतिहाई भाग के हिस्सेदार बने अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस. इसी तरह जरमनी की राजधानी—बर्लिन के टुकड़े हुए. मित्र राज्य तो अब हट चुके हैं किंतु रूसी अभी तक जमे हैं. उन्हें भय है कि साम्राज्यवादी शक्तियां पूर्व जरमनी को हड़प न जाएं.

जो भी हो जरमनी और खास कर के बर्लिन के इस बंटवारे से बड़ी समस्याएं पैदा हो गईं. बापमां एक ओर तो बेटेबेटी दूसरी ओर. दोस्तमित्र, प्रेमीप्रेमिका सभी बिछुड़े. आज वह एक ऐसा शहर है जिस में परिवार बंटे हैं, पानी और बिजली बंटी है, होटल, रेस्तोरां, थिएटर, सिनेमा बंटे हैं, प्रशासन भी बंटे हैं. खड़ी है बीच में भद्दी, मोटी, पत्थर की कांटों वाली दीवार. पार करना तो दूर,
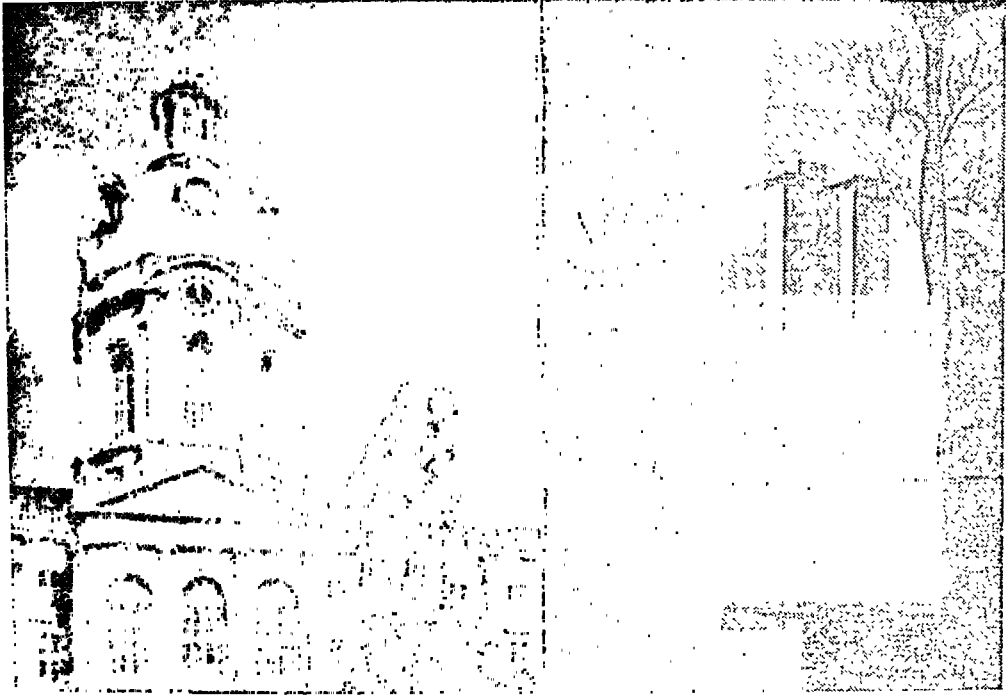
पश्चिम बर्लिन में स्थित सतरहवीं शताब्दी का एक राजमहल. अब यह एक शानदार अजायबघर है. दाएं : बर्लिन के हंसा उपनगर में आधुनिक ढंग से बनाया गया एक गगनचुंबी भवन

पास जाने में भी भय लगता है.

युद्ध के बाद जरमनी के दोनों भागों में ठीक उसी तरह तनाव है जैसा भारत और पाकिस्तान में. पश्चिमी भाग की प्रगति तीव्र रही. उस की आर्थिक समस्याएं सुधरती गईं. किंतु पूर्व भाग में विकास का क्रम मंद रहा है. रूस उन वर्षों में स्वयं युद्ध जर्जरित था इसलिए उस ने इस की उपज से उचितअनुचित तरीकों से लाभ उठाया. संभवतः यह भी एक कारण हो सकता है.

पश्चिम जरमनी के शिल्पोद्योग की प्रगति, आर्थिक सुदृढ़ता और जीवन ने साम्यवादी व्यवस्था में रहते हुए लोगों को स्वाभाविक रूप से आकर्षित किया. परिणाम यह हुआ कि पूर्व जरमनी से प्रति दिन हजारों की संख्या में लोग पश्चिम बर्लिन पहुंचने लगे. फलतः पूर्व जरमनी में कारीगर, मजदूर और विज्ञानविदों का अभाव हो गया, उस के कलकारखाने ठप्प होने पर आ गए. इसलिए इस बाढ़ को रोकने के लिए सोवियत रूस ने शहर के बीचोंबीच खड़ी कर दी बर्लिन की दीवार.

सन १९६२ के आरंभ में सोवियत नियंत्रित पूर्व जरमन अधिकारियों ने योजना बनाई कि विभाजन के अनुसार सरहद पर ३३८ मील लंबी एक दीवार बना दी जाए ताकि लोग भाग कर पश्चिमी हिस्से में न जा सकें. सन १९६२ के अंत तक दीवार बनी. औसत ऊंचाई सात फुट है, कहींकहीं इस से भी ऊंची. बीचबीच में लगभग सोलह फुट खुली जगहें भी हैं, जिन में कांटों के तार लगे हैं. पश्चिम बर्लिन के आसपास जहां तालाब और झीलें हैं उन में नावों पर खूंटे लगा

कर कंटीले तार लगा दिए गए हैं और इन पर मशीनगनें बैठा दी गई हैं.

जरमनी के शरणार्थियों के बारे में जो आंकड़े मिले हैं उस के अनुसार सन १९६१ तक २३.१० लाख शरणार्थी पश्चिम जरमनी में भाग आए थे. इन में विद्यार्थी, डाक्टर, इंजीनियर और प्रोफेसर तो थे ही पर आश्चर्य हुआ यह जान कर कि हजारों साम्यवादी सैनिक भी भाग कर पश्चिम जरमनी में आ गए. यह सिलसिला अब भी जारी है.

औद्योगिक या आर्थिक प्रगति का अंदाज इसी से चल जाता है कि पश्चिम जरमनी का वार्षिक आयातनिर्यात है २०,५०० करोड़ रुपयों का, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है लगभग दस हजार रुपए, जब कि पूर्व जरमनी का है, ३,७४० करोड़ का और प्रति व्यक्ति वार्षिक आय है तीन हजार रुपए के लगभग. भारत में प्रति व्यक्ति की आय है ३४० रुपए वार्षिक.

पूर्व बर्लिन में प्रवेश करते समय हम ने देखा कि हमारी तरह साठसत्तर अन्य लोग भी धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं. इन में अमरीकी, फ्रांसीसी, चीनी, अफ्रीकी, अरब आदि भी थे.

जांच की रस्म बड़ी कड़ी थी. यूरोपीय विशेषत: जरमनों के पासपोर्ट की जांच बारीकी से की जा रही थी. इस के लिए खुर्दबीन तक काम में लाया जाता था. चौकी से आगे बढ़कर हम दीवार के पार आ गए. अब जरमन साम्यवादी भूमि में हमारे कदम थे. घुसते ही लगता था कि हम किसी और दुनिया में आए हैं. कई प्रकार की प्रचार सामग्री हमें दी गई, जिस में साम्यवादी सरकार की प्रगति का ब्योरा था. इन पर विदेशी अतिथियों की सम्मति भी दे दी गई थी.

शाम को आठ बजे तक का समय था. अतएव शहर को बस से व पैदल घूम कर देखने का निश्चय किया. यहां के प्रसिद्ध राजमार्ग अंडेनडेन लिंडेन को देखा. कहा जाता है कि युद्ध के पूर्व यह बहुत ही शानदार था, दोनों ओर बड़ेबड़े मकान थे और छायादार वृक्षों की कतारें थीं. बमबारी से ध्वंस हो गया था. जिस तेजी से पश्चिम बर्लिन ने स्वयं को खंडहर से निकाल दिया है, वैसा यह भाग नहीं कर पाया है. सड़कों को संवारने की चेष्टा जरूर की गई है पर कसर अब भी काफी है. बर्लिन की प्रसिद्ध संस्थाएं इसी अंचल में रह गई हैं. स्टेट लाइब्रेरी, आपेरा, हिटलर का दफ्तर, हमबोल्ट विश्वविद्यालय इत्यादि.

यहां घूमते समय लगता है कि पश्चिम बर्लिन की तरह गति, कहकहे, आनंद और उल्लास की झलक लोगों की शक्लों पर नहीं दिखती. ऐसे वातावरण में पर्यटक का उत्साह ठंडा पड़ जाता है.

विलहेल्म स्ट्रासे पर चांसलरी देखने गए. हिटलर के समय में यह उस का हेडक्वार्टर था. उस ने इसी तहखाने में आत्महत्या की थी. बमबारी और गोलियों की बौछार, के चिह्न और मलबे के ढेरों को देख कर मन में स्वत: एक भावना उठ जाती है कि हजारों वर्ष जीवित रहने की महत्वाकांक्षा वाला तृतीय राइख हिटलर ने जरमनी को शक्ति, वैभव और गौरव के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ा दिया, और फिर उसे ऐसा खींचा कि वह गहरे गड्ढे में जा गिरा—खंडित और श्रीहीन.

दूसरे महायुद्ध ने बर्लिन को तहसनहस कर दिया था लेकिन वहां के लोगों ने हिम्मत नहीं हारी और दुगुने उत्साह से पुर्ननिर्माण कार्य में जुट गए

हिटलर के बारे में युद्ध के दिनों में हमारे यहां बड़ी भ्रांत धारणाएं फैली थीं. वह बाल ब्रह्मचारी है, निरामिष भोजी है, उस में तप और तेज है इत्यादि. बाद में पता चला कि परले सिरे का भोगी और क्रोधी था वह. पढ़ालिखा बहुत साधारण था. इसी राइख के तहखाने में उस ने आत्महत्या के एक घंटा पहले अपनी प्रेयसी इवा ब्राडन से विवाह किया. उस समय बाहर रूसी तोपें लोहे की मोटी चद्दरों से मढ़ी, इस की दीवारों पर मौत के नगाड़े बजा रही थीं. इसी में अलग तहखाने में उस का अनन्य भक्त गोयबल्स विष की गोलियां खा कर सदा के लिए सो चुका था. रूसी सैनिक राइख के तहखाने में घुसे तब आग में हिटलर की लाश जल चुकी थी.

राइख के पास ही मार्क एंजेल्स प्लाजा है. यहां बड़ेबड़े प्रदर्शन और रैली के आयोजन हुआ करते हैं. ऐतिहासिक स्थान, लाइब्रेरी, विश्वविद्यालय सड़क— सबों के नाम यहां बहुत कुछ मार्क्स, एंजेल्स, लेनिन और स्टालिन पर हो गए हैं. मगर स्टालिन के मरते ही ख्रुश्चेव द्वारा उठाई गई विरोध की लहर में उस का नाम सोवियत भूमि और उस के अधिकृत देशों में मिटाया जाने लगा. पूर्व जरमनी और पूर्व बर्लिन में भी यही चल रहा था.

फ्रांक फुर्टर एली, लगभग तीन मील लंबी सड़क है. यही एकमात्र राजपथ है, जिस पर सोवियत अधिकारियों की नजर गई है. चौड़ी सड़क के दोनों ओर वृक्षों
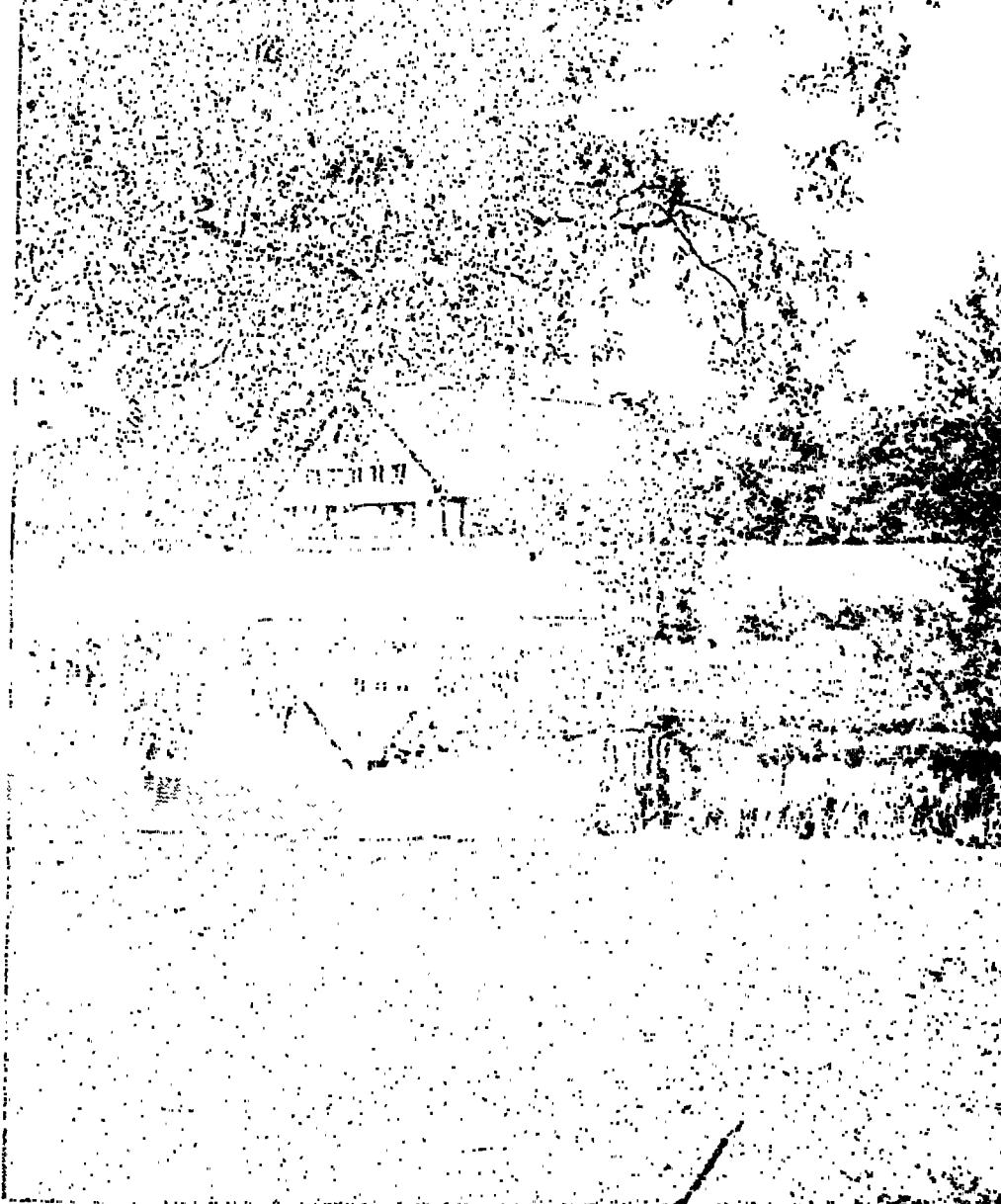
पश्चिम बर्लिन में स्थित एक उद्यान. इसे उद्यान कला की आधुनिकतम शैलियों से सजाया गया है

की कतारें हैं. हलके पीले रंग के बड़ेबड़े मकान रूस के युद्धोत्तर वास्तुशिल्प का परिचय देते हैं. इस का नाम बदल कर स्टालिन एली रखा गया था, पर सन १९६१ में कार्लमार्क्स एली कर दिया गया है.

घूमतेफिरते एक रेस्तोरां में हम कुछ जलपान के लिए पहुंचे. काफी और सेंडविच ली. दाम पश्चिम से ज्यादा थे. अगर अनधिकृत तरीके से सिक्के बदल लेते तो किफायत हो जाती, पर साम्यवादी देशों में इस प्रकार का खतरा मोल लेना बहुत महंगा पड़ता है. वहां पर जरमन, रूसी, फ्रांसीसी और दोएक

चीनी भी दिखाई पड़े. घूमते समय हमें स्थानीय किसी भी व्यक्ति से चर्चा करने का सुयोग नहीं मिला. संभव भी नहीं था, क्योंकि इस पार की दुनिया लोह दीवार का देश है. मन में उत्सुकता थी कि इस पार रहने वाला जरमन मिल जाता.

एक आकर्षक लड़की ने बड़ी संजीदगी से पास की खाली कुरसी पर बैठने की अनुमति मांगी. मैं ने कहा, 'खुशी से.'

एक ने बियर के लिए आर्डर दिया फिर बदल कर कहा, "अच्छा, काफी ले आओ."

"शायद आप दोनों भारतीय या पाकिस्तानी हैं," उस ने साफ अंगरेजी में कहा. बातचीत का सिलसिला चल पड़ा. उस ने जानना चाहा कि कैसा लगा पूर्व बर्लिन.

मैं ने अपने मन की प्रतिक्रिया बता दी कि उतना आकर्षक और उल्लासपूर्ण नहीं जितना कि पश्चिम बर्लिन है. मैं ने उसे यह भी बताया कि हमारी धारणा है कि पूर्व जरमनी की शासन सत्ता पूर्णतः सोवियत रूस के हाथ में है, इसी लिए यहां की सरकार में केवल साम्यवादी हैं.

फ्राउ (युवती) ने हमें जानकारी दी, "यहां साम्यवादियों का प्रभाव अवश्य अधिक है, पर कई सरकारी पदों पर गैर साम्यवादी भी हैं. रूस की तरह दल का सदस्य होना यहां आवश्यक नहीं."

"पूर्व जरमनी को जरमन भाषा में 'डोइशे डेमोक्रातिशे रीपब्लिक' अर्थात 'जरमन गणतंत्र राज्य' कहते हैं. इस के संविधान के अनुसार देश के शासन का अधिकार श्रमिक, कृषक एवं बुद्धिजीवियों के हाथ में है. यहां की सब से बड़ी पार्टी है समाजवादी एकता पार्टी. कम्युनिस्ट और समाजवादी गणतंत्री (सोशल डेमोक्रेट) इन दोनों दलों को मिला कर अब एकता पार्टी बनाई गई है. यह अंतर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट दल का एक अंग है जिस का केंद्र रूस की राजधानी मास्को में है. देश के शासन में अन्य पार्टियां भी हैं, जैसे कृषक दल, क्रिश्चियन, डेमोक्रेटिक पार्टी इत्यादि. पूर्व जरमनी में संसद के लिए प्रत्येक पांच वर्ष पर चुनाव किया जाता है. शासन और शासकों की निष्ठा के कारण देश में ऐसा वर्ग ही नहीं रह गया है कि विरोध की गुंजाइश हो."

इस अंतिम वाक्य ने मुझे चौकन्ना कर दिया. समझते देर नहीं लगी कि फ्राउ सरकारी जासूस या प्रचारक है. मैं ने कहा, "इतना होने पर १७ जून १९५३ के बर्लिन विद्रोह के लिए तो कोई गुंजाइश नहीं होनी चाहिए थी." प्रभुदयालजी ने टेबल के नीचे से मुझे सावधान किया.

फ्राउ घबराई नहीं. उस ने दलील पेश की कि यह बुर्जुआ लोगों की साजिश थी. आलसी और निकम्मों को रोटी और पैसे दिखा कर भड़काया गया था ताकि किसान और मजदूरों का शासन जम न जाए और वे पूर्ववत शोषण करते रहें.

मैं पूछना चाहता था कि फिर क्या ये निकम्मे व आलसी अपनी जान पर खेल कर पश्चिम चले गए, और अब वहां खेत, खलिहान और कारखानों में काम कर के पैसे कमा रहे हैं. जो न जा सके उन में बहुत से गोली से उड़ा दिए गए और

शेष अब भी पूर्व जरमनी की जेलों में या रूस के कारखानों में बलात काम पर लगाए गए हैं. उन के बारे में फोटो छाप कर प्रचार यह किया जाता है कि रूस में विदेशी मजदूरों को भी काम मिलता है. पर यह सोच कर कि साम्यवादी देशों में इस प्रकार की आलोचना खतरे से खाली नहीं होती, चुप रह गया.

बातचीत का सिलसिला बदल देना पड़ा. मैं ने पूछा, "आप भी क्या पश्चिम जरमनी से घूमने आई हैं?"

"नहीं, मैं यही रहती हूं, सांस्कृतिक रिसर्च कर रही हूं. हां मेरा छोटा भाई, मां और पिता वहीं हैं. मै ने लक्ष्य किया कि फ्राउ अब हमारे पास से दूसरे यात्री के पास जाना चाहती है.

रेस्तरां से निकल कर हम बाजार देखने चले गए. तरहतरह के फल, मेवे, सब्जियां, मांस और अंडे बहुतायत में थे किंतु अन्य सामान उतने नहीं थे जितने कि पश्चिम में. चित्रशाला और म्यूजियम भी बड़े थे मगर समय कम बचा था इसलिए इन्हें ठीक तरह से देखना संभव नहीं था.

घूमता हुआ दीवार तक पहुंचा. सोचता जा रहा था, राजनीति के दांव-पेंचों में भी कैसी विडंबना होती है! भारत बंटा, कोरिया विभक्त हुआ, वियतनाम खंडित है. एक देश, एक भाषा, एक इतिहास और एक ही संस्कृति, मगर खड़ी कर दी जाती है राजनीति की दीवार! जनता को विभक्त करने के लिए पहले धर्म और संप्रदाय का नारा बुलंद किया जाता रहा है, अब बीसवीं सदी में पूंजीवाद, गणतंत्र, साम्यवाद आदि की दुहाई दी जाती है! सदियां बीतीं, विज्ञान बढ़ा, मगर क्या मनुष्य अपना हृदय बदल सका?

हम दीवार के फाटक पर आ गए. हमारी तरह और लोग भी बर्लिन के पश्चिमी भाग में जाने के लिए क्यू लगाए हुए थे. उन से पूर्व बर्लिन के बारे में राय लिखने के लिए कहा जा रहा था. मैं ने लिखा, 'पूर्व बर्लिन में जीवन का जो रूप देखा, वह सोचनेसमझने की काफी खुराक देता है.'

चौथे दिन सुबह हमें वियना के लिए रवाना होना था. बर्लिन के पश्चिम भाग में हलहम म्यूजियम, टापर गार्डन, हंसा स्क्वायर, विजय स्तंभ और पशुशाला आदि दर्शनीय स्थल हम देख चुके थे. फिर भी अभी बहुत कुछ देखना बाकी था. हमें जरमनी के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास की जानकारी भी करनी थी. बोन स्थित हमारे भारतीय दूतावास के माध्यम से यहां के लैंडसजनट्राल बैंक (रिजर्व बैंक) के जनरल मैनेजर मिस्टर फ्रांज सुसान से दिन के तीन बजे मिलने का समय निश्चित था.

मिस्टर डिटमार आज फिर अपनी कार ले कर आए. उन्होंने पूरे दिन का समय हमें दिया. उन की सहायता के बिना बर्लिन जैसे ऐतिहासिक महानगर को दो दिनों के अल्प समय में देख पाना संभव न हो पाता.

इस बार की यात्रा में हमारी धारणा से कम ही खर्च हुआ, क्योंकि कुछ देशों में हम अपने मित्रों के घर अतिथि के रूप में रहे, भारतीय दूतावास की कारें भी मिलती रहीं, ज्यादातर हम दूसरे दरजे के होटलों में ठहरते रहे, इसलिए बचत हो गई. बचे हुए रुपयों से हम कुछ खरीदारी करना चाहते थे.

बर्लिन के अतीत की शानदार यादगार. एक प्राचीन ऐतिहासिक भवन

बाजार में देखा, नाना प्रकार की बेहतरीन वस्तुओं की भरमार है. जरमन कैमरा, दूरबीन, टेपरिकार्डर और बिजली के सामान तो दुनिया में मशहूर हैं. हांगकांग में इन्हीं सब चीजों के दाम हम पचीसतीस प्रतिशत कम देख आए थे. इसी लिए इच्छा रहते हुए भी हम ने कुछ नहीं खरीदा.

कैजर मेमोरियल चर्च देखने गए. १९४३-४४ की बमबारी में इस का अधिकांश भाग टूट गया था. अब फिर से पुर्ननिर्माण किया गया है. कुछ भाग इस समय भी टूटाफूटा था, शायद युद्ध की यादगारी के लिए छोड़ रखा गया है.

शहर का बोटेनिकल गार्डन देखा. काफी प्रसिद्ध है और बड़ा भी, पर मुझे हमारे कलकत्ते के बोटेनिकल गार्डन जैसा नहीं जंचा.

यहां का ओलंपिक स्टेडियम हम ने बस से देखा था. आज घूमते हुए उसे फिर देखा. बहुत ही भव्य और विशाल है. वैसे टोकियो में भी एक लाख दर्शकों के लिए बना स्टेडियम हम पहले देख चुके थे. पर बर्लिन के स्टेडियम में बैठने की सीटों की व्यवस्था और साजसज्जा उस से कहीं अच्छी लगी. दुनिया के हर देश से चोटी के खिलाड़ी विश्व की ओलंपिक प्रतियोगिताओं में भाग लेते हैं. विशिष्ट दर्शक भी विदेशों से बड़ी संख्या में आते हैं. इसलिए स्टेडियम की व्यवस्था भी उसी के अनुरूप की जाती है.

हम ने देखा था कि फिनलैंड जैसे छोटे से देश ने भी अपने स्टेडियम बनाने में करोड़ों रुपए खर्च कर दिए थे. इस से देश को लाभ भी पहुंचता है क्योंकि विदेशी यात्रियों से अच्छे पैमाने पर आय हो जाती है और पर्यटन व्यवसाय का प्रचार भी

हो जाता है.

मिस्टर डिटमार हमें और भी वहुत से दर्शनीय स्थल दिखाना चाहते थे पर समय काफी हो गया था इसलिए रेडियो टावर देख कर होटल लौट जाना तय किया. रेडियो टावर की ऊंचाई ५०० फुट है. ऊपर तक लिफ्ट से जाने की व्यवस्था है. वर्लिन के दोनों हिस्से यहां से साफ देखे जा सकते हैं. मोटरों और चलनेफिरने वालों की संख्या देखने से बर्लिन के दोनों भागों की सुखसमृद्धि के फर्क का अनुमान लग जाता है.

होटल में लंच ले कर लैंड्सजनट्राल बैंक में जब मिस्टर फ्रांज के कक्ष में पहुंचे तो देखा कि और भी तीनचार व्यक्ति बैठे हैं. पारस्परिक परिचय हुआ. वे सभी बैंक के विभिन्न विभागों के विशेषज्ञ थे. उन्हें हमारी बातचीत में हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया गया था. इस से काफी सुविधा रही क्योंकि सूचनाएं साथसाथ मिलती जाती थीं. हमारे वार्त्तालाप को अंगरेजी में बदलने के लिए एक अंतर्भाषी भी था और एक स्टेनो भी सारी बातों की टिप्पणियां लिखती जा रही थी.

हम ने उन्हें अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया. हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि भारतीय वैंकिंग व अर्थनीति और उद्योग विकास के बारे में भी उन की जानकारी है, वे आंकड़े तक सही बता रहे थे.

उन्होंने कहा, "भारत और पश्चिम जरमनी अच्छे मित्र हैं. हम स्वयं भी वहुत संकट से गुजरे हैं, फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार भारत की आर्थिक और तकनीकी सहायता प्रति वर्ष करते जा रहे हैं. हमारा विश्वास है कि विश्व-शांति और एशिया के देशों को चीन के खूनी पंजे से बचाने के लिए भारत को समृद्ध और सशक्त होना नितांत आवश्यक है."

जरमनी के औद्योगिक, आर्थिक और कृषि उत्पादन के संबंध में उन्होंने जो आंकड़े वताए, उन्हें सुन कर ऐसा लगा कि हम किसी जादूई करिश्मे की वातें सुन रहे हैं. आंकड़े सभी १९६३ के दिए गए थे :

'जनसंख्या ५.७० करोड़, वड़े शहरों में वर्लिन, हमवर्ग, कोलोन, एसन और फ्रांकफुर्त. खाद्यान्न का उत्पादन १.५५ करोड़ टन, बीट सुगर १.२५ करोड़ टन, दूध २.०८ करोड़ टन, मक्खनपनीर ६.३० लाख टन, अंडे १,००० करोड़, मछली ५६ लाख टन, कोयला और कोक १७.७३ करोड़ टन, लिटनाइट १२.२५ करोड़ और सीमेंट ३ करोड़ टन. मोटरें और ट्रक २७ लाख, रेडियो और टेलीविजन सेट ५४ लाख.

'दैनिक अखबार निकलते हैं १३७५, जिन की विक्री है २.३० करोड़. साप्ताहिक और मासिक पत्रों की संख्या ६,५०० और विक्री १५.२० करोड़.

'आय का बजट ९,५०० करोड़. राष्ट्रीय आय ६४,००० करोड़, यात्रियों की संख्या ६०,००,०००. होटलों में शयन की व्यवस्था १२,००,०००, प्रति व्यक्ति वार्षिक आय १०,००० रुपए.'

हम मंत्रमुग्ध से यह सब सुनते जा रहे थे और नोट कर रहे थे. वातचीत का सिलसिला समाप्त हुआ. उन्हें धन्यवाद दे कर हम अपने होटल वापस आ गए.

वर्लिन के सवसे ऊंचे प्राकृतिक सौंदर्य स्थल—क्रश्यवर्ग. दाएं: पश्चिम जरमनी के राष्ट्रपति का भव्य निवासस्थान.

हालांकि दुनिया में अमरीका और दोएक यूरोपियन देश पश्चिम जरमनों से अधिक समृद्ध हैं किंतु हम तुलना कर रहे थे भारत से. हमारा देश इससे नौ गुना बड़ा है पर राष्ट्रीय आय केवल २०,००० करोड़ और प्रति व्यक्ति आय ३९१ रुपए. मोटर और ट्रकों का उत्पादन अब तक हम केवल पचपन हजार तक ही कर पाए हैं. हमारे पास कृषि योग्य बहुत बड़ा भू भाग है. आबादी भी बावन करोड़ की है, प्रचुर खनिज पदार्थ हैं, फिर भी विश्व में हम सब से गरीब देशों में से हैं. जरमनी १९ वर्ष पहले मटियामेट हो चुका था. आज वह संपन्न और समृद्ध है और हम इन १९ वर्षों में दरिद्रतर होते गए.

हम कारणों का विश्लेषण कर रहे थे. प्रभुदयालजी का कहना था कि हमारी सरकार ने मध्यम श्रेणी के कारखाने स्थापित करने के बजाए अधिक महत्त्व दिया बड़ीबड़ी योजनाओं को. राजनीतिक दलबंदी और पार्टियों के प्रभाव में पड़ कर देश की जनसंख्या, श्रमशक्ति, खनिज पदार्थ व उपलब्ध साधनों के आधार पर योजनाएं न बन पाईं. फल यह हुआ कि हम बहुत सी आवश्यक वस्तुओं में पिछड़े रह गए. सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था भी हमारे यहां नहीं हो पाई. अच्छा होता यदि हमारे कृषि प्रधान देश में सब से पहले सिंचाई और खाद पर ध्यान दे कर खाद्यान्न के उत्पादन को बढ़ा कर भारतीय अर्थनीति की बुनियाद मजबूत करते.

जरमनी औद्योगिक देश था, फिर भी इस ने पहले छोटे और मध्यम श्रेणी के कारखानों को प्रश्रय और प्रोत्साहन दे कर चालू किया. तब कहीं क्रुप जैसे विशाल उद्योग प्रतिष्ठानों को पुनर्जीवित किया जा सका. कृषि को भी इन लोगों ने सब से पहले संभाला. राष्ट्रीय एकता और चेतना इन में शुरू से ही जागरित रही है. इसलिए यहां के मजदूर नेताओं ने भी देश को पुनर्जीवित करने में पूरा सहयोग दिया.

हमारे यहां ठीक इस के विपरीत हुआ. छोटेछोटे कारखाने और राष्ट्रीय महत्त्व के उद्योगों की परवा किए बिना मजदूर दलों का उद्देश्य रहा—कम काम करो, हड़ताल करो, अधिक मजदूरी की मांग के लिए काम ठप्प कर दो. साम्यवादी मजदूर दलों का तो उद्देश्य ही है अराजकता फैलाना और दलगत स्वार्थ की पूर्ति करना. अपने देश और राष्ट्र के हितों से ज्यादा इन की दृष्टि रहती है साम्यवादी राष्ट्रों के अनुकरण पर.

हमारी कांग्रेस पार्टी और सरकार में कुछ प्रच्छन्न साम्यवादी घुस आए. इन में दोएक तो नेहरूजी के मंत्रीमंडल में भी थे. इन्हीं के प्रयत्नों से सरकारी कारखानों में साम्यवादी मजदूर यूनियनों को मान्यता मिली. इस का भीषण दुष्परिणाम भुगतना पड़ा. चीन ने सन १९६२ में आक्रमण किया, उस समय पता चला कि हमारे कारखानों में हथियार नहीं, काफी पर्कुलेटर और सिगरेट लाइटर बनते हैं.

श्रमिकों के नियम कानून भी यहां इस ढंग के बने कि काम कम करने पर भी किसी को बरखास्त करना या हटाना संभव नहीं. इतना ही नहीं उत्पादन कम भले ही हो, घाटा बढ़ता जाए, पर बोनस देना ही होगा. सहकारी संस्थाओं ने भी यूरोपीय देशों में बड़ा ठोस काम किया है, जब कि हमारे देश की ऐसी अधिकांश संस्थाओं ने जनता के पैसे को बरबाद किया. आवश्यकता व योग्यता से अधिक स्थानीय राजनीतिक परिस्थितियों को महत्त्व दिया जाता रहा है. अतएव जरमनी के साथ अपने देश की तुलना करते समय इन बातों का ध्यान रखना अपेक्षित है.

बर्लिन के आपेरा और थिएटर यूरोप में प्रसिद्ध हैं. बाख, मोजार्ट बैग्नर और स्ट्राउस पाश्चात्य संगीत के चमकते सितारे हैं. ये सभी जरमनी के थे. आज भी उपासनालयों में इन महान संगीतकारों द्वारा रचित शांत, गंभीर व मधुर स्वरलहरी सुनने को मिल जाती है. केवल यूरोप में ही नहीं, सुदूर अमरीका और आस्ट्रेलिया तक में भी मुरझाए मन में नई जान आ जाती है इन की संगीतलहरियों को सुन कर.

मिस्टर डिटमार ने हम लोगों के लिए प्रसिद्ध सीलर थिएटर में एक बाक्स रिजर्व करा लिया था. रात नौ बजे हम वहां गए. छः मंजिलों की ऊंचाई का यह बहुत ही शानदार थिएटर हाल था. कुरसियां बेहतरीन और आरामदेह, मंच की सजावट भी बहुत सुरुचिपूर्ण थी. उन दिनों वहां केवल कंसर्ट (वाद्य संगीत) का प्रोग्राम चल रहा था. विभिन्न प्रकार के छोटेबड़े वाद्य यंत्रों की मानो एक प्रदर्शनी सी लगी हो. कलाकारों की संख्या ही सैकड़ों में रही होगी.

जब संगीत का एक पद खत्म होता तो लोग बारबार ताली बजा कर प्रशंसा व्यक्त करते थे. हमें पश्चिमी संगीत की जानकारी नहीं है. स्वरलहरी अच्छी जरूर लगी पर बारीकी समझ में नहीं आती थी. अनजान या अरसिक न माने जाएं इसलिए हम भी ताली बजा कर दूसरे श्रोताओं की तरह दाद दे रहे थे. व्यक्तिगत रूप से मुझे तो अपने यहां की वीणा और सारंगी की स्वरलहरी इन वाद्यों से कहीं ज्यादा मधुर लगती है.

आम तौर से जरमनी के बारे में लोगों की धारणा यही रही है कि ये बड़े व्यावहारिक, मितव्ययी और कुछ रूखे से होते हैं. पर इस हाल की भीड़, उनकी तन्मयता आदि को देख कर ऐसा लगा कि श्रम और विश्राम दोनों का सही उपयोग जरमन समझते हैं.

थिएटर और आपेरा की टिकटें यहां बहुत पहले से रिजर्व हो जाती हैं. इस के लिए एजेंसियां हैं जो अपनी जोखिम पर सैकड़ों सीटें विभिन्न हालों की बुक करा लेती हैं. इन के बंधे ग्राहक होते हैं. रुचि के अनुसार टिकटें उन्हें भेज देते हैं.

कंसर्ट करीब ग्यारह बजे समाप्त हुआ. मिस्टर डिटमार हमें अपनी कार से होटल पहुंचा गए. हम ने आभार मानते हुए उन्हें धन्यवाद दिया.

उन्होंने हंस कर कहा, "इसे कल सुबह तक हवाई अड्डे के लिए अपने पास सुरक्षित रखिए."

ब्रिमेन हंबर्ग

मलबे के ढेर . . . पुनर्निर्माण के प्रतीक

सन १९५० में अपनी पहली यूरोप यात्रा में जरमनी के दो ही शहर देख पाया था: ब्रिमेन और हंबर्ग. १९६४ में यूरोप की यात्रा का तीसरा अवसर मिला. इस बार फिर से मैं हंबर्ग तो गया पर ब्रिमेन नहीं जा सका.

अपनी पहली यात्रा में ब्रुसेल्स से ट्रेन द्वारा ब्रिमेन आया था. युद्ध समाप्त हुए लगभग पांच वर्ष हो चुके थे पर उस समय तक शहर की हालत सुधर नहीं पाई थी. टूटे हुए मकान, अस्पताल, गिरजे, बाजार, चारों ओर मलबे के ढेर, खाली-खाली सी उजड़ी दुकानें, सूनी सड़कें और विकलांग लोग, कलकारखाने ठप्प, बेरोज-गारी के कारण भटकते उदास चेहरे और अनाथ बच्चे—यही थी उस समय जरमनी की तसवीर, जिस पर मित्र राष्ट्रों की बमवर्षा और तोपों की गोलाबारी के निशान अब भी अंकित थे. हंबर्ग के बाद ब्रिमेन जरमनी का सब से बड़ा बंदरगाह माना जाता था. यहां आते ही मैं ने युद्धोत्तर जरमनी की दुर्दशा देखी, जिस की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी.

युद्ध के पहले ब्रिमेन का यूरोप के वाणिज्यव्यवसाय में महत्त्वपूर्ण स्थान था. केवल जरमनी ही नहीं बल्कि पासपड़ोस के अन्य राज्यों के भी माल का आयात-निर्यात यहां के बंदरगाह से होता था. यह लगभग चार लाख की आबादी का घना बसा हुआ शहर था, किंतु मुझे ऐसा लग रहा था जैसे किसी खंडहर में आ पहुंचा हूं. अजीब सुनसान और भयानक सा कसबा हो गया था.

युद्ध के कारण जरमनी के जहाज, कारखाने और बंदरगाह बुरी तरह बरबाद हो गए थे. पराजित जरमनी की अर्थव्यवस्था अस्तव्यस्त थी और व्यापार बंद सा पड़ा था, इसलिए चहलपहल न रहना स्वाभाविक था. ब्रिमेन में न तो व्यापारियों का आनाजाना होता था और न यात्रियों का. हां, कभीकभी अमरीकी पर्यटक मिल जाते थे क्योंकि इन पांच वर्षों में अमरीका युद्ध की थकान मिटा चुका था और वहां के कुछ पर्यटक जरमनी के टूटेफूटे शहर देखने भी आ जाते थे. होटलों की दशा बुरी थी. वे बेमरम्मत से पड़े थे और उन में खानेपीने के सामान का अभाव था. सुखसुविधा के आधुनिक साधन भी वे नहीं जुटा पा रहे थे.

यहां आने के बाद मन में एक दुख सा छा गया. सोचने लगा, 'न आता तो अच्छा था.' आज का सभ्य यूरोप अपने इतिहास में चंगेजखां और नादिरशाह को बर्बर और लुटेरे कहता है, ठीक है. बेरहमी से उन्होंने शहरों को उजाड़ा और
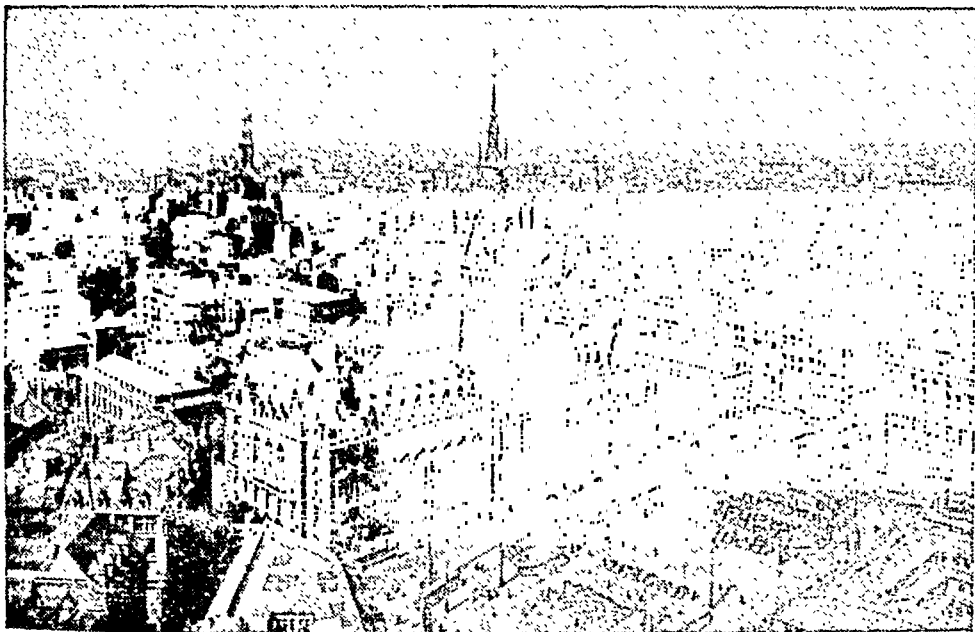
बारहवीं शताब्दी के सुंदर गिरजा घर : हंबर्ग के अतीत के गवाह

कत्लेआम किया. किंतु इस बरबादी को देख कर तो ऐसा लगता है कि चंगेज और नादिर आज के इन लोगों से कहीं अधिक दयालु और सभ्य रहे होंगे. उन्होंने और जो कुछ भी किया पर मसजिदों को नहीं तोड़ा, जब कि सभ्य ईसाइयों ने तो खुदा के अवतार ईसा के प्रार्थनाघरों तक को नेस्तनाबूद कर दिया. अपने होटल के मैनेजर से मैं ने पूछा, "क्या कारण है कि पांच वर्ष हो गए, मलबे का ढेर हटाया नहीं जा रहा, मरम्मत का काम शुरू नहीं किया जा रहा?"

उस ने टूटीफूटी अंगरेजी में कहा, "पहले शिल्प उद्योग, कृषि, अस्पताल, स्कूलकालिज ठीक होने हैं और तब इन के बाद दूसरी चीजों की मरम्मत या सुधार का प्रोग्राम है. जब तक बाहर से यथेष्ट सहायता नहीं मिल जाती तब तक हमें अपने ही साधनों और शक्ति पर भरोसा करना होगा. अफसोस है कि युद्ध के हरजाने में हमें अपने अधिकांश साधन देने पड़ गए हैं, हमारी राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग युद्ध के कर्ज चुकाने में चला जाता है. मगर हमारा विश्वास है कि जरमन जाति टूटेगी नहीं, वह फिर उठ खड़ी होगी."

होटल मैनेजर की बातों में साधारण जरमन नागरिक की कष्ट सहने की शक्ति और दृढ़ विश्वास का पहला परिचय मिला. मुझे पेरिस, ब्रुसेल्स और कोपेनहेगन के नाइट क्लब और कैबरे के दृश्य, वहां की सड़कों की चहलपहल के नजारे याद आ गए. यद्यपि पड़ोस के ही देश हैं पर वे हैं विजेता. जरमनी से युद्ध का हर्जाना वे अब तक करीबकरीब पूरा पा चुके थे. उनमें अब युद्ध की थकान भी नहीं रह गई थी. वहां जिंदगी में बहारें लहरा रही थीं.

हमारे यहां शास्त्रकारों ने कहा है कि भूख और काम की आग दबाई नहीं जा सकती. हालांकि भारत ने लूटखसोट और युद्ध की बरबादी देखी है, एक बार नहीं अनेक बार, किंतु कभी भी संपूर्ण भारत इस चपेट में शायद ही आया हो.

इसलिए भूख और काम के बारे में जो लिखा गया है उस की वास्तविकता और गहराई व्यापक तौर पर प्रत्येक भारतीय समझ सकेगा, इस में संदेह है. लेकिन युद्ध से जर्जर हो गए जरमनी में हम ने इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा.

युद्ध में १८ से ५० वर्ष तक के पुरुष बड़ी संख्या में मारे गए. कुछ बचे किंतु वे विकलांग हो गए. इसलिए देश में युवा स्त्री और पुरुषों की संख्या में विषमता अत्यंत उग्र रूप में आ गई.

क्लबों, रेस्तोराओं और बारों में अधिकांश प्रौढ़ाएं और युवतियां साहचर्य के लिए लोगों को ढूंढ़ती रहती थीं. अमरीका के नीग्रो फौजियों के कई दस्ते इटली से वहां आ गए थे. वे भी स्वदेश और स्वजनों से बहुत अरसे से अलग थे. युद्ध से फुरसत मिल ही चुकी थी. अब उन के लिए शेष रह गया केवल खाना और मौज करना. यहां उन्हें इस का भरपूर मौका मिला.

मैं यही सोचता था, कहां गया नाजियों के आर्य रक्त का वह दंभ, जिस के चलते लाखों बेगुनाह जरमन यहूदियों को जो सैकड़ों वर्षों से उसी देश में रहते आए थे, आपस में एकदूसरे से हिलमिल कर रहते रहे थे—अमानुषिक यातनाएं दे कर बेघरबार कर दिया गया, जहरीली गैस की कोठरियों में भूखाप्यासा मार दिया गया! आइस्टीन जैसे विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक और स्टिफेनज्विग जैसे चोटी के लेखक को स्वदेश छोड़ कर खुद ही देश निकाला लेना पड़ा. आज उसी विशुद्ध जरमन आर्य रक्त में नीग्रो रक्त का मिश्रण स्वेच्छा से हो रहा है.

हमारे धर्मग्रंथ 'महाभारत' में उल्लेख है कि युद्ध का दुष्परिणाम केवल जनधन और भूमि की हानि तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि इस का प्रभाव भावी संतानों पर भी पड़ता है क्योंकि वर्णसंकर संतति की वृद्धि युद्ध के बाद सहज स्वाभाविक है. इस से राष्ट्रीय गुण और विशिष्टता में अंतर आ जाना भी स्वाभाविक है.

यूरोप के पराजित देशों में ऐसा हुआ कि विजेता राष्ट्रों के अज्ञात कुलशील नाविक और सैनिक आए. उन्होंने भरपूर मौज की और कुछ दिनों बाद अपने अपने देश को चले गए. भोगना पड़ा उन बेचारी माताओं को जिन्हें अपने तरहतरह के सांवले, पीले चेहरों वाले बच्चों को पालनापोसना पड़ रहा है. पिता का नाम भी किस का कहें, गनीमत यही है कि पश्चिम देशों में ऐसी बातों के लिए अड़चनें नहीं आतीं. फिर जरमनी को तो उस समय किसी न किसी सूरत से अपनी आबादी बढ़ानी थी इसलिए सरकार भी ऐसे संबंधों के प्रति उदासीन थी.

शाम को ब्रिमेन पहुंचा था. बाजार में थोड़ाबहुत घूमा. तबीयत लगी नहीं. जो कुछ देखा था, दुख पैदा करने के लिए काफी था. शीघ्र ही अपने होटल वापस आ गया. भोजन की इच्छा नहीं हुई. होटल के रेस्तोरां में एक कप काफी पी कर ऊपर अपने कमरे में सोने चला गया.

दूसरे दिन सुबह उठ कर ब्रिमेन शहर का एक चक्कर लगा आया. शहर अच्छा रहा होगा और पुराना भी पर अधिकांश मकान बमबर्षा से टूट चुके थे. पश्चिम की तरफ से इसी नगर से मित्र राष्ट्रों की सेनाओं ने जरमनी में प्रवेश किया था, इसलिए यहां बड़ी मोर्चे बंदी हुई थी और बमबारी भी.

यहां का प्रसिद्ध टाउनहाल देखा, जो बच गया था. लगभग साढ़े पांच सौ वर्ष पहले की बनी हुई गोथिक शैली की यह इमारत बहुत शानदार है. इस के भीतर भित्तिचित्र और नक्काशी के काम सचमुच बेमिसाल हैं. लगभग सभी चित्र कलापूर्ण थे और उन में भाव भी अत्यंत स्वाभाविक ढंग से व्यक्त हुए थे. करीब चार सौ वर्ष पहले का ब्रुमन द्वारा बनाया गया प्रसिद्ध चित्र 'सोलोमन का न्याय' देखा. युद्ध के बीच यह अमूल्य कृति सहीसलामत बच गई, गनीमत है!

ब्रिमेन के गिरजे प्रसिद्ध रहे हैं. बेलजियम में ब्रुजे के गिरजों की तरह ये भी कलापूर्ण माने जाते हैं. इन में सेंट अंसजारिस के एक गिरजे का बुर्ज तो लगभग तीनसौ दस फुट ऊंचा था किंतु अप्रैल १९४५ में, जबकि जरमनी एक प्रकार से हार चुका था, मित्र राष्ट्रों की धुंआंधार बमबारी से वह नष्ट हो गया.

मुझे आश्चर्य हो रहा था कि ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस करोड़ोंअरबों रुपए एशिया और अफ्रीका में व्यय करते हैं पर उसी धर्म के पवित्र स्मारकों को, जिन में ईसा और माता मरियम की मूर्तियों तथा अमूल्य धार्मिक चित्र हैं, वे अंधाधुंध बम गिरा कर और तोपों की मार से नष्ट कर देते हैं. यहां के दोतीन गिरजों के खंडहरों में गया, प्रार्थनाघर टूटे हुए थे. मलबे के ढेर के बीच दीवार के जो भी हिस्से खड़े रह गए थे, उन पर अंकित देखा कि सूली पर ईसा के शरीर से खून बह रहा है. मुझे उनकी आंखों में इस प्रकार की करुणा भरी झलक दिखाई दी मानो वह अपने धर्मानुयायियों के कुकृत्यों पर आंसू बहा रहे हैं.

बंदरगाह भी देखने गया. गोदियां टूटी पड़ी थीं. कुछ जहाज माल उतार रहे थे. जरमनी से ले जा रहे थे कोयला, तेल और लोहा. बंदरगाह की मरम्मत का काम जिस तेजी से चल रहा था उस से लगता था, सरकार का विशेष ध्यान इस ओर है.

तीन दिन पहले बेलजियम के प्रसिद्ध नगर एंटेनबर्ग में था. वह भी जरमन विमानों की बमवर्षा से ध्वस्त हो गया था. लेकिन अब वहां का दृश्य भिन्न था क्योंकि बेलजियम मित्र राष्ट्रों का साथी था इसलिए विजेता भी. पराजित जरमनी के हरजाने की रकम से वहां तेजी से नवनिर्माण हुआ और शहर में फिर से चहल-पहल और उल्लास का वातावरण नजर आने लगा. नए मकान, सजी दुकानें, हंसती शकलें. . .लेकिन यहां ब्रिमेन में ठीक इस के विपरीत वातावरण था. सोचने लगा, 'वास्तव में पराजय किसी भी राष्ट्र के लिए अक्षम्य अपराध है.'

दिन भर शहर का चक्कर लगा कर रात में अपने होटल वापस आया. कमरे में आ कर गरम पानी से हाथपैर धो कर थकान दूर की और भोजन के लिए नीचे रेस्तोरां में चला गया. अपनी टेबल पर अकेला ही था. चालीसपैंतालीस की उमर की एक भद्र महिला अपनी अठारहबीस साल की लड़की के साथ मुझ से अनुमति ले कर पास ही बैठ गई. व्यवहार शिष्टतापूर्ण था और बातों में शालीनता थी.

पारस्परिक परिचय से पता चला कि साथ वाली लड़की उन की पुत्री है. पति युद्ध में गया था, लौटा नहीं, मरने की खबर भी नहीं आई. युद्ध के दौरान पूर्वी पोलैंड में बंदी बनाया गया था, उस के बाद से कोई सूचना नहीं. रेडक्रास की

मारफत कोशिशें की जा रही हैं पर सोवियत सरकार सहयोग नहीं देती. पांच साल का एक लड़का भी है.

बातचीत का सिलसिला युद्ध की विभीषिका से शुरू हुआ था. आर्थिक कठिनाई और पारिवारिक समस्या से गुजरते हुए व्यक्तिगत रुचि पर जिस प्रकार की चर्चा उन्होंने शुरू की, उस से मैं थोड़ा चौकन्ना हो गया. शिष्टाचार के नाते मैं ने उन्हें खाने के लिए पूछा, थोड़े संकोच के साथ वह राजी हो गईं. देख कर ऐसा लगा शायद दोनों ही भूखी थीं.

उन्हें भोजन में साथ देने के लिए धन्यवाद दे कर अपने कमरे में चला आया. एक अजीब सी घुटन से जूझता हुआ सो गया.

दूसरे दिन नाश्ता कर के ट्रेन से हंबर्ग के लिए रवाना हो गया. यहां हमारे पटसन के व्यापारिक संपर्क की एक फर्म थी, जिसे मैं ने आने की पूर्व सूचना दे रखी थी. प्लेटफार्म पर देखा फर्म के मालिक मिस्टर जिगलर उपस्थित नहीं थे, पर स्टेशन के बाहर पौर्टिको में वह मेरी प्रतीक्षा में खड़े मिल गए.

अभिवादन के बाद उन्होंने संकोच के साथ बताया कि जरमन नागरिकों को स्टेशन, एयरपोर्ट और अन्य महत्त्वपूर्ण स्थानों पर जाने के लिए पूर्वाज्ञा लेनी पड़ती है. अपनी छोटी सी वाक्सवागन कार वह साथ लाए थे. होटल जाते समय उन्होंने बताया कि खेद है, वह मुझे अपने घर न ठहरा सकेंगे. कारण यह कि उन का मकान बमबारी में ध्वस्त हो चुका है. एक हिस्सा जो बचा है वह बहुत ही छोटा है. छत और दीवारें भी कहींकहीं से टूटी हुई हैं. उन्होंने अपनी असमर्थता और मेरी असुविधा के लिए क्षमा मांगी. मैं ने देखा, उन की आंखें गीली थीं.

दूसरे दिन सुबह वह होटल आए और मुझे अपने घर ले गए. घर में शरणार्थियों के डेरे की सी हालत थी. छोटे से बरामदे में डाइनिंगरूम बना रखा था. डबलरोटी, काफी और कुछ फल मुझे खाने के लिए पेश किए गए.

परिवार में उन की पत्नी, दो बच्चे, बूढ़ी मां और छोटे भाई की विधवा पत्नी थी. मिस्टर जिगलर के दोनों छोटे भाई युद्ध में मारे गए थे. उन की मां ने भरे गले से बताया कि उन का एक पुत्र अल अलामीन में भारतीय सिपाही द्वारा मारा गया. उन्होंने कहा, "वह इतना तगड़ा था कि चारपांच अंगरेजों के लिए अकेला ही काफी था. यदि भारत और अमरीका युद्ध में अंगरेजों का साथ नहीं देते तो हम हारते नहीं." वृद्धा की बातों का भाषांतर मिस्टर जिगलर कर रहे थे.

मैं ने खेद प्रकट करते हुए कहा, "पराधीन होने के कारण भारत विवश था. सच मानिए, हमारा मन कभी भी अंगरेजों के साथ नहीं रहा. आप के दो जवान बेटे देश के लिए कुरबान हुए, कम से कम यह गौरव तो आप को मिला. जरा हमारी भारत की उन माताओं के बारे में भी तो सोचिए, जिन के बेटे उस देश को बचाने के लिए मारे गए जिस न उनके अपने देश को सैकड़ों वर्षों से गुलाम बना रखा था." मैं ने देखा, मेरी बात से वृद्धा को सांत्वना मिली.

जिगलर महोदय का कारखाना नष्ट हो चुका था, कारोबार भी अस्तव्यस्त था. उन्होंने बताया कि एक बार तो उन की हिम्मत पस्त हो गई थी. सहारा मिला अपने ही बचेखुचे मजदूरों का. चौथाई मजदूरी ले कर वे काम पर डट

'जंगली आदमी' : जरमनी का एक प्रसिद्ध लोक नृत्य

गए. उन्होंने टूटी मशीनों पर रातदिन काम किया. अब भी बहुत सी मशीनें ऐसी हैं कि उन्हें बदलना निहायत जरूरी है.

वहां की मजदूर यूनियनों का कहना है कि सब से पहले जरमनी के उद्योगधंधे व व्यापार को संगठित किया जाए, जिस से कि वे अपने माल का निर्यात जारी कर सकें, जहां तक अच्छी मजदूरी का सवाल है, राष्ट्र की आर्थिक दशा के संभलते ही वह अपनेआप बढ़ जाएगी.

उन से यह भी पता चला कि केवल हंबर्ग में ही नहीं बल्कि सारे जरमनी में हर व्यक्ति राष्ट्रीय पुनर्निर्माण चाहता है, और इस के लिए वह अपने बड़े से बड़े स्वार्थ को त्यागने के लिए तैयार है.

सारे दिन मिस्टर जिगलर के साथ शहर में घूमता रहा. ब्रिमेन का सा वातावरण यहां भी देखा. एक बहुत बड़े अस्पताल के अधटूटे हाल में हम खड़े थे. अस्पताल उजड़ चुका था. थकान मिटाने के लिए हम मलबे के ढेर पर बैठ गए.

जिगलर ने कहा, "दस वर्ष पहले हमारा यह नगर यूरोप के शिल्पोद्योग, जहाजरानी, व्यापारवाणिज्य के प्रमुख केंद्रों में गिना जाता था. एंटवर्प,

राटरडाम और मार्शेलीज तो इस के मुकाबले क्या टिकते, लंदन तक पिछड़ रहा था. हजारों कारखाने इस के ईर्दगिर्द थे. सारे यूरोप के देशों में यहीं से माल जाता था. १९४३–४४ की भीषण बमबारी से इस का दोतिहाई हिस्सा बिलकुल नष्ट हो गया. अकेले १९४३ के जुलाईअगस्त महीनें में ही हवाई हमलों में यहां कोई साठ हजार नागरिक मारे गए. किस प्रकार का मृत्यु का नृत्य हुआ होगा, यह आप ही सोच लें!

"यहां ४७० स्कूल थे, जिन में से किसी तरह २५० बच गए हैं. इन में से ५० में तो पढ़ाई का सिलसिला शुरू किया गया है, शेष में गृहविहीन नागरिकों के लिए आवास की व्यवस्था की गई है. बमवर्षा से ७० रेलवे पुल उड़ा दिए गए और बंदरगाह तो एक प्रकार से बेकार ही हो चुका है. कारखानों की हालत आप देख चुके हैं. टूटे कारखानों में भी यदि काम करें तो भी कच्चा माल और पूंजी चाहिए. कच्चा माल मित्र राष्ट्र हरजाने में ले जाते हैं और पूंजी है नहीं."

मैं ने देखा उन की आंखें भर आई थीं. खड़े हो कर उन्होंने कहा, "मिस्टर टांटिया फिर भी एक जरमन होने के नाते विश्वास के साथ कह सकता हूं कि आज से दस वर्ष बाद यदि आप यहां आएंगे तो हमें ऐसी हालत में नहीं पाएंगे. हम उठ खड़े होंगे. आज हमारे मजदूर और कारीगर वेतन के लिए नहीं, देश के नवनिर्माण के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं. जरमनी झुक भले ही गया है, पराजय की व्याधि उसे लगी जरूर है, पर वह टूटेगा नहीं. जरमन हमेशा से राष्ट्रीय मर्यादा को समझते रहे हैं. वे मर नहीं सकते. उन्हें उठना पड़ेगा, वे उठेंगे!"

उन की आवाज में दृढ़ निश्चय की गूंज थी.

भोजन के लिए उन्होंने बहुत आग्रह किया पर मैं ने स्वीकार नहीं किया. मैं जानता था, उन के परिवार के लिए ही पूरा राशन उपलब्ध नहीं है. वह मुझे होटल तक पहुंचा गए. उन से विदा लेते समय मैं ने उन्हें भारत से लाए हुए तीन रेशमी स्कार्फ उन की वृद्धा माता, पत्नी और भ्रातृवधू के लिए दिए. उन्होंने कुछ संकोच के साथ स्कार्फों को स्वीकार कर लिया.

दूसरे दिन जिगलर महोदय अपनी छोटी सी कार ले कर आए और मुझे हवाई अड्डे तक पहुंचा कर उन्होंने विदा ली. पहले दिन खींची हुई दो तसवीरें वह मुझे दे गए जो आज भी मेरे पास यादगार के रूप में सुरक्षित हैं. हवाई अड्डे में भी भीतर जाने की उन्हें मनाही थी. मुझे १९२०-२५ के कलकत्ते के ईडन गार्डन में हर रविवार के बैंडवादन की याद आ गई, जहां भारतीय दूर खड़े हो कर ही देख सुन सकते थे और वहां रखी हुई कुरसियां व बेंचें केवल विदेशी गोरों के लिए सुरक्षित थीं.

सन १९६४ में जब दोबारा हंबर्ग आया तो देखा कि यह सर्वथा बदला हुआ था. टूटे हुए मकान और ध्वस्त गिरजे, स्कूल, कालिज तथा अस्पताल नहीं दिखाई पड़े. अब उन की जगह खड़ी थीं आलीशान इमारतें. कई मंजिलों वाले ये नए भव्य प्रासाद नीले आकाश में सिर ऊंचा किए जरमनी के पुनरुत्थान की कहानी कह रहे थे.

बंदरगाह देखा. विशाल दैत्याकार क्रेन बड़ेबड़े मंचों पर हाथ फैलाए आसानी से ढेर का ढेर माल गोदियों में लगे बड़ेबड़े जहाजों से उठानेरखने में व्यस्त थे.
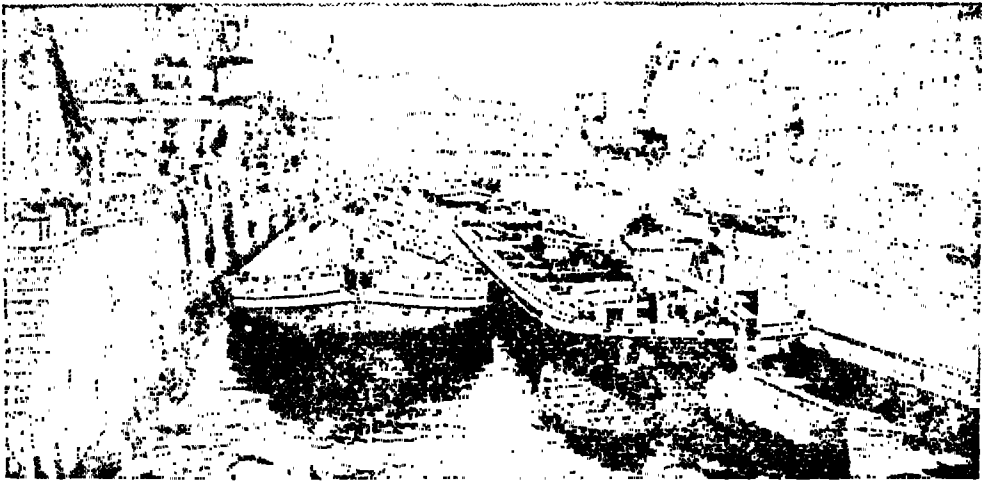
जहाजरानी व व्यापारवाणिज्य का प्रमुख केंद्र : हंवर्ग का एक दूसरा पहलू

बूढ़ों और विकलांगों की जगह दिखाई पड़े स्वस्थ और सुपुष्ट नागरिक. उन के चेहरों पर स्वतत्रंता की आभा और समृद्धि की मुसकराहट थी. सुंदर और स्वस्थ बच्चे पार्कों व स्कूलों में खेलकूद रहे थे. सहज ही विश्वास नहीं होता था कि उसी नगर में आया हूं जहां लगभग चौदह वर्ष पहले आया था.

लंदन में अपने मित्र जिगलर को पहुंचने की सूचना भेज दी थी. स्टेशन पर वह दिखाई नहीं पड़े. वहां के टूरिस्ट आफिस से ठहरने के लिए प्रयत्न किए किंतु सफलता नहीं मिली. उन दिनों वहां एक औद्योगिक प्रदर्शनी लगी थी, देशविदेश से अनेक दर्शक आए हुए थे. इसलिए अच्छे होटलों में जगह नहीं मिल सकी. काफी कोशिश के वाद स्टेशन के सामने एक पेंशन आवास में एक छोटी सी कोठरी मिली. इसी में मैं और प्रभुदयालजी दोनों ठहरे. कोठरी के साथ में बाथरूम भी नहीं था.

अव तक जिस किसी होटल में हम गए, भले ही वह द्वितीय श्रेणी का होटल रहा हो, हमेशा यह खयाल रखते थे कि बाथरूम कमरे के साथ लगा हो. विना इस सुविधा के इन ठंडे देशों में शौच, स्नानादि के लिए क्यू में खड़ा रहने के साथसाथ एक झेंप होती है. सामान रख कर किसी एक अच्छे होटल की तलाश में निकले.

संयोग से पहले दरजे के एक होटल में कलकत्ता के हमारे मित्र श्री झाझाड़िया मिल गए. वह उसी दिन वापस जा रहे थे उन्होंने हमारे लिए अपने होटल मैनेजर से वातचीत की किंतु उन का कमरा तो पहले ही से दूसरे यात्रियों के लिए सुरक्षित किया जा चुका था. श्री झाझाड़िया के जरमन मित्र ने भी कई होटलों में जगह के लिए फोन किया लेकिन व्यवस्था न हो सकी. लाचार हो कर हम फिर अपने उसी पेंशन आवास में वापस आ गए.

पिछली यात्रा में मैं अकेला था. विदेश यात्रा का अनुभव भी नहीं था. पर इस वार साथ थे प्रभुदयालजी और कार्यक्रम भी पूर्वनियोजित था. जिन शहरों में भारतीय दूतावास और कौंसिल थे, वहां हमें यथासंभव सव प्रकार की

सुविधाएं मिल जाती थीं. हमारे विदेश मंत्रालय ने हमारे कार्यक्रमों की पूर्व सूचना दूतावासों और कौंसिलों में भेज दी थी.

पश्चिम जरमनी से हमारा व्यापारिक संबंध अच्छे पैमाने पर है. किंतु यहां की राजधानी बोन है और व्यापारिक व औद्योगिक केंद्र पश्चिम वर्लिन. इसलिए हंवर्ग में भारत सरकार की ओर से स्थायी प्रतिनिधि नियुक्त नहीं है. मेरा खयाल है कि हंवर्ग के आयातनिर्यात और जहाज रानी के व्यापार की दृष्टि से इस शहर में हमारे देश का एक व्यापार कौंसिल होना चाहिए. इस से भारतीयों को काफी सुविधा मिल सकती है.
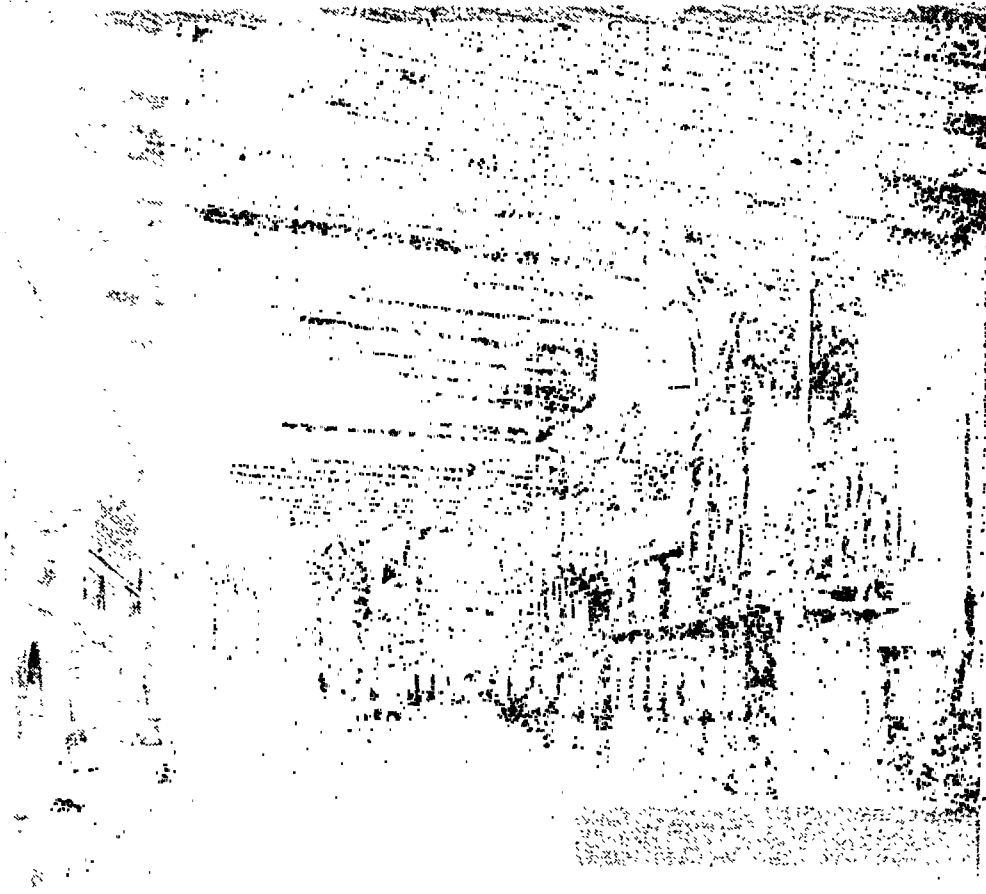
टेलीफोन डायरेक्टरी से नंवर देख कर जिगलर महोदय को फोन किया. घर पर उन की पत्नी मिली. फोन पर हम उन के जरमन लहजे की अंगरेजी ठीक से समझ नहीं पा रहे थे, फिर भी किसी तरह अंदाज लगा लिया कि मिस्टर जिगलर व्यापारिक कार्य से अमरीका गए हुए हैं. १४ वर्ष पहले की मेरी मुलाकात की और रेशमी स्कार्फ की याद उन्हें आ गई. हमारे आवास का पता पूछ कर उन्होंने शाम को छः बजे मिलने का वादा किया.

हमें हंवर्ग में केवल दो दिन रुकना था. हम जहां ठहरे थे, उस स्तर के आवासगृह में निरामिष भोजन की सुविधा नहीं मिल पाती है. इसलिए दोपहर का भोजन बाहर ले कर शहर देखने का प्रोग्राम वनाया.

कलकत्ते की तरह हंबर्ग भी कई छोटेछोटे गांवों को मिला कर बसा हुआ है. यहां बारहवीं शताब्दी से पंदरहवीं शताब्दी तक के वहुत ही सुंदर गिरजे हैं, जिन की दीवारों पर अमूल्य धार्मिक चित्र अंकित थे. द्वितीय महायुद्ध में वमवर्षा से अधिकांश नष्ट हो गए. अव फिर से उसी प्राचीन शैली पर उन्हीं के अनुरूप चित्र वनाने के प्रयत्न हो रहे हैं. पर उन दुर्लभ कृतियों के चित्रकार तो फिर से मिलने से रहे. और न उन की वारीकियां ही अंकित की जा सकती हैं. इन प्राचीन चित्रों में से कुछ अधजले टूटेफटे जिस अवस्था में भी वच गए, उन्हें बहुत ही संभाल कर रखा गया है. हम ने माता व शिशु तथा क्रुसेड के चित्र देखे.

यहां की कुनस्थल आर्ट गैलरी को जरमनी का सव से वड़ा संग्रहालय माना जाता है. हम ने सैकड़ों छोटेवड़े चित्र और मूर्तियां यहां देखीं. हमें लंदन की नेशनल आर्ट गैलरी के क्युरेटर ने वताया था कि विश्व में दुर्लभ चित्र केवल पचीस या तीस होंगे और ये सव पेरिस के लुव्रे, पोप के वेटिकन, लेनिनग्राद और वाशिंगटन के म्यूजियमों में संगृहीत हैं. अपने संग्रहालय में भी दोएक का होना उन्होंने वताया. ये चित्र अपनी जगह से हटने के नहीं, चाहे प्रत्येक के करोड़ दो करोड़ रुपए ही क्यों न मिलें!

दूसरे देशों के म्यूजियमों को चित्रों के अलावा अन्य दुर्लभ वस्तुओं के संग्रह के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना पड़ता है. इस में वहुत वड़ी धनराशि व्यय की जाती है. हंवर्ग के इस संग्रहालय को भी युद्ध के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ा था. फिर भी अव यहां के संग्रह को देख कर ऐसा लगता है कि वहुत परिश्रम और धन लगा कर संग्रहालय को फिर से अलभ्य और दुर्लभ वस्तुओं से सुसज्जित किया गया है.

ब्रिमेन में सिटी हाल : सजावटों के बीच

यहां का बंदरगाह तो मित्र राष्ट्रों के हवाई हमले से एक प्रकार से नष्ट ही हो गया था. हमें बताया गया कि पिछले दस वर्षों में साठ करोड़ रुपए लगा कर इसे फिर से बनाया गया है. हम एक मोटरवोट से बंदरगाह देखने गए. एल्व नदी के मुहाने पर बंदरगाह स्थित है. दोनों किनारों पर सैकड़ों कारखानों की चिमनियों से निकलता धुआं वहां के व्यस्त औद्योगिक जीवन का परिचय दे रहा था. नावों से माल उतारा और लादा जा रहा था.

ऐसा लगता था, जैसे उद्योगों के किसी महासागर से हम गुजर रहे हों. हम ने इस तरह का दृश्य या वातावरण केवल न्यूयार्क और शिकागो में ही देखा था. हंबर्ग के बंदरगाह में देखा, विश्व के हर देश के जहाज अपनेअपने झंडे फहराते हुए गोदियों में खड़े थे. मोटेतगड़े तरहतरह के रूपरंग के नाविक उन पर काम करने में व्यस्त थे.

शाम को श्रीमती जिगलर अपनी पुत्री के साथ मिलने के लिए निश्चित समय पर आईं. १४ वर्ष पूर्व उन से केवल कुछ घंटे के लिए ही मिला था. लड़की तो उस समय शायद पांचछः वर्ष की रही होगी. यदि पहले से बात न कर ली होती तो उन्हें शायद ही पहचान पाता.

अपने इस आवास में उन की विशेष खातिरदारी करना संभव नहीं था. फिर भी हम ने काफी और कुछ हलके नाश्ते के लिए प्रबंध कर रखा था. हमें जान कर खुशी हुई कि जिगलर परिवार का कारखाना न केवल फिर से चालू हो गया

बल्कि अब वह बहुत बड़ा हो गया है. वहां नाना प्रकार की मशीनें बनने लगी हैं उन का निर्यात विदेशों में हो रहा है. सुदूर ब्राजील और मेक्सिको तक में उन की मशीनों की मांग है.

श्रीमती जिगलर को अपने उद्योगव्यापार की पूरी जानकारी थी. वह अपनी कंपनी की संयुक्त मैनेजिंग डायरेक्टर हैं. उन्होंने बताया कि फैक्टरी का कुल उत्पादन लगभग पांच करोड़ रुपए वार्षिक का है. मजदूरों की संख्या ६०० और आफिस स्टाफ की ३० है. इंजीनियर और सेल्समैन के रूप में पति काम संभालते हैं. हिसाबकिताब, उत्पादन और व्यवस्था की जिम्मेदारी उन पर है. कालिज की शिक्षा समाप्त कर के अब पुत्री ने भी कुछ अंशों में कारखाने की जिम्मेदारी संभालनी शुरू कर दी है.

मैं ने उन से मजदूरों की समस्या को ध्यान में रखते हुए कुछ प्रश्न पूछे. उन की बातों से पता चला मानो श्रमिक-मालिक संघर्ष अतीत के किसी बर्बर देश की बात हो. १९४७ के बाद इन १७ वर्षों में एक बार भी काम रोको, सुस्त काम या हड़ताल की कोई घटना उन के यहां नहीं हुई, अन्यत्र भी नहीं. इस के विपरीत मजदूर क्षमता से अधिक उत्पादन में जुटे रहे हैं. नतीजा यह हुआ कि उन्हें कारखाने की क्षमता को बढ़ाने के लिए विस्तार करते रहना पड़ा है.

हम उन की बातों को सुनते जा रहे थे और अपने देश की स्थिति से तुलना करते जा रहे थे. कलकत्ते में मेरी जानकारी में एक इसी प्रकार का कारखाना है, जिस का कुल उत्पादन डेढ़ करोड़ रुपए वार्षिक का है. इस में मजदूरों की संख्या करीब एक हजार है. इस के अलावा अन्य स्टाफ डेढ़ सौ के करीब है. मतलब यह कि जिगलर के कारखाने से इस में मजदूरों और स्टाफ की संख्या कहीं अधिक है, जब कि उत्पादन बहुत कम है.

कारण स्पष्ट है, साम्यवादी मजदूर यूनियनें आए दिन झंझटझमेले खड़े किए रहती हैं. इस से आलस्य और दीर्घसूत्रता को प्रोत्साहन मिलता है. सरकारी नियंत्रण है नहीं, इसलिए माल का निर्यात विदेशों में हो नहीं पाता. कच्चा माल हमारे देश में बड़ी तादाद में है, किंतु विवशता यही है कि श्रमिक और उन की यूनियनें उत्पादन के राष्ट्रीय महत्त्व को समझने की कोशिश नहीं करते.

हम यहां की प्रगति से बहुत प्रभावित हुए. हम ने पिछली बार और इस बार जो कुछ देखा उस की चर्चा श्रीमती जिगलर से की. वह मुसकरा कर कहने लगीं, "यह सब तो आप दूसरे देशों में भी देखते हुए आ रहे हैं. यदि समय हो तो हमारे यहां के पहाड़ी अंचलों और गांवों को भी देख लीजिए."

शायद उन के कहने का आशय था कि गरमी के मौसम में गांवों की खुली हवा और पहाड़ी अंचलों में बर्फ पर तरहतरह के खेलों में शहरों की घुटन से हमें कुछ राहत मिल जाएगी.

बातचीत में काफी समय हो गया. हम ने बहुत इनकार किया किंतु मिसेज जिगलर के आग्रह को नहीं टाल सके. अगले दिन सुबह उन के घर नाश्ते का निमंत्रण हमें स्वीकार करना ही पड़ा.

रात के भोजन के बाद प्रभुदयालजी सोने चले गए. मैं ने टूरिस्ट बस से
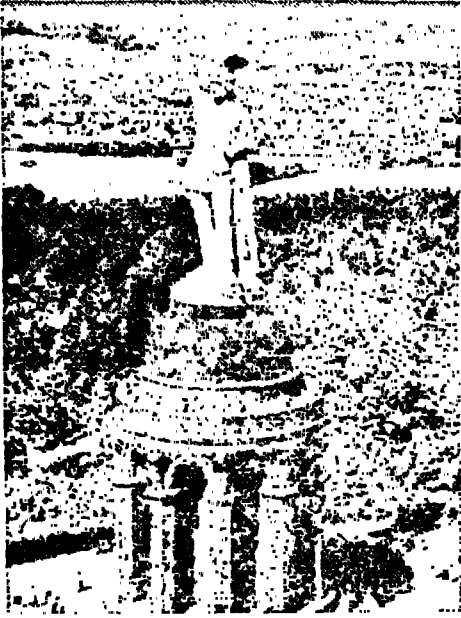
एल्ब नदी के किनारे : वर्तमान की खामोशी

शहर घूमने की छुट्टी ले ली थी. शायद सौ रुपए लगे होंगे. इसी में चार नाइट क्लबों और दो फ्री ड्रिंक्स का कार्यक्रम शमिल था. यदि अलग से जाएं तो बहुत ज्यादा खर्च पड़ जाता है.

एल्ब नदी के नीचे से हमारी बस गुजरी. ऊपर वेगवती नदी और नीचे जगमगाती रोशनी, बहुत चौड़ा रास्ता जिस के दोनों तरफ बसों, करों और यात्रियों का आवागमन था. मैं सोच रहा था कि इतनी ज्यादा ट्रैफिक है पर रुकावट का कहीं नाम नहीं. हमारे कलकत्ते में हावड़ा पुल पर आफिस के समय की भीड़ के कारण भरोसा नहीं रहता है कि समय पर ट्रेन पकड़ भी सकेंगे! यदि हम भी इन की तरह हुगली नदी के नीचे हावड़ा और कलकत्ता को मिलाने वाली सड़क तैयार कर सकें तो आवागमन सुविधाजनक हो जाएगा. जिस से हावड़ा अंचल भी कलकत्ते की तरह ही उन्नत और समृद्ध हो जाएगा.

रात्रि क्लब सर्वत्र एक से हैं. अन्य लेखों में इन की चर्चा कर चुका हूं. जिस प्रकार नशा सेवन करने वाले धीरेधीरे नशीली चीजों की मात्रा बढ़ाते जाते हैं उसी तरह का रवैया रहता है इन क्लबों में भी. पहले कैबरे और बार रहे होंगे, फिर पेरिस के फाली ब्रुजे की तरह भड़काने वाले दृश्य और नृत्य दिखाए जाने लगे. उन के बाद आए नग्न नृत्यों के क्लब. इन सब में कोशिश यही रहती है कि कामोद्दीपन के लिए दृश्य, वातावरण और तरीकों में नयापन रहे ताकि ग्राहक जुटते रहें, ऊबें नहीं.

उस दिन जिन क्लबों में हम गए, उन में दो तो बहुत साधारण थे और एक 'त्रांतला' नाम का विशिष्ट साजसज्जा का क्लब था. इस में केवल प्रवेश शुल्क ३० रुपए हैं. यहां ज्यादातर राजनीतिक नेता या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति ही तफरीह के लिए जाते हैं.

चौथा नाइट क्लब, जहां हम ले जाए गए, 'रीपरवान' नाम का था. यह 'सेंट पाली' नामक मल्लाहों के बदनाम महल्ले में है और यह प्रमुख रूप से मल्लाहों तथा सैनिकों का क्लब है. यदि अकेला जा पहुंचता तो भयभीत हो जाना कोई बड़ी बात न होती. यों भी जिस वक्त हम इस में पहुंचे उस महल्ले में मारधाड़, शोर-शराबा हो रहा था. सभी देशों के स्त्रीपुरुष दिखाई पड़े. भारतीय नाविक भी थे. यूरोप की लड़कियों के अलावा चीनी, मिस्री व नीग्रो लड़कियां बड़ी निर्लज्जता से नाविकों की छेड़छाड़ को प्रोत्साहन दे रही थीं.

इन क्लबों में रोशनी धीमी रहती है, शायद इसलिए कि लिहाज या शर्म भी उसी के अनुसार कम है. हम सब लगभग २५ यात्री थे, साथ में दो गाइड थे. हर रात यह टूरिस्ट एजेंसी यात्रियों को यहां लाती है. गाइड क्लब वालों के परिचित थे इसलिए यात्रियों के साथ किसी प्रकार के दुर्व्यवहार की संभावना नहीं थी.

हम क्लब में दाखिल हुए तो जिन्हें पीना था, उन्होंने हलकी या कड़ी शराब अपनी रुचि के अनुसार ले ली. पहला कार्यक्रम हुआ नाच का. इस में यात्री भी शामिल हो गए. ज्योंज्यों नशा गहरा होता गया, नाच भी तेज होता गया. फिर बाजे और संगीत तो सहायक थे ही. नाच व उछलकूद शोरचीख की सीमा पर पहुंच कर समाप्त हुआ. थकावट दूर कर के उद्दीपन या उत्तेजना को कायम रखने के लिए शराब का एक दौर और चला.

दर्शक पी कर मतवाले हो रहे थे. अब स्टेज का शो शुरू हो गया. कथानक और दृश्य, हमारे यहां की मर्यादा के अनुसार बहुत ही अश्लील थे. हम भाषा जानते नहीं थे किंतु हावभाव से समझ रहे थे. दिखाया गया कि दो मल्लाह, दो लड़कियों के यहां गए. चारों ने एकसाथ बैठ कर खूब शराब पी. उस के बाद एकएक कर कपड़े उतारने शुरू कर दिए. जब सभी नंगे हो गए तो किसी बात पर आपस में झगड़ा हो गया.

झगड़ा होने पर लड़कियों ने उन की जो पिटाई की उसे देख कर मुझे तो सिहरन सी हो आई. ऐसा लगा कि मैं अपने यहां की फ्रीस्टाइल कुश्ती का दंगल देख रहा हूं. लात और घूंसों की मार तो थी ही, वे दांतों से भी काट रही थीं. हालत यह हो गई कि चारों के शरीर पर से जगहजगह से खून बहने लगा.

हाल में रोशनी कम थी पर स्टेज पर फ्लैश लाइट से तेज प्रकाश किया गया था. मल्लाह भी वापसी वार करते थे पर हर बार लड़कियों की चोटें तगड़ी बैठती थीं. आखिर जब वे दोनों मार खातेखाते बेहोश हो गए तो लड़कियों ने उन्हें कंधे पर उठा कर भीतर की ओर फेंक दिया. उन्होंने एक हाथ पर छोटा सा रूमाल बांध रखा था. मैं ने गाइड से पूछा, "सारा शरीर तो बिलकुल नंगा है, फिर बांह पर रूमाल क्यों?"

उस ने बताया, "हमारे यहां बिलकुल निर्वस्त्र होना कानूनी तौर पर अपराध है. कानून की पाबंदी के इस नए तरीके को सुन कर मुझे हंसी आ गई. दर्शकों में जो स्त्रियां थीं वे लड़कियों की जीत देख कर तालियां बजा रही थीं और आवाजें कस रही थीं. मैं यह सोचने लगा कि अफ्रीका के जंगली तो सभ्य बनते जा रहे हैं, कपड़े पहनने लगे हैं और जहां कपड़े नहीं हैं वहां पत्तों का आवरण बना लेते हैं,

मगर यूरोप के ये सभ्य कहलाने वाले लोग नंगे हो कर इस प्रकार से उछलकूद मचाते हैं.

जिस समय हम होटल पहुंचे, रात के दो बज चुके थे. मैं ने इन चार घंटों में जो कुछ देखा, उस से मन में एक प्रकार की अशांति सी अनुभव होने लगी. दूसरे दिन मिसेज जिगलर से नाइटक्लब का जिक्र किया. वह सहज भाव से हंस कर कहने लगीं, "हमारे यहां इस प्रकार की मान्यता है कि मारपीट से प्रेमीप्रेमिका में उत्तेजना और पारस्परिक प्रेम बढ़ता है. ये सारे दृश्य उसी पर आधारित होते हैं."

मैं ने कहा, "हमारे यहां भी ऐसा मानते हैं. हजारों वर्ष पहले वात्स्यायन ने अपनी पुस्तक 'कामसूत्र' में आपस में दांत और नख से प्रहार करने का उल्लेख किया है. पर वह सब एकांत में होता था, इस तरह सैकड़ों दर्शकों के सामने नहीं."

मैं १९५० में जब इन के घर आया था, वही मकान अब भी था पर आज वह खंडहर एक सुंदर बंगला बन गया था. चारों तरफ छोटा सा बगीचा भी था. बेहतरीन फर्नीचर था और पोर्टिको में खड़ी थीं दो 'मर्सिडीज' कारें. श्रीमती जिगलर ने अपने मृत देवर की पत्नी को भी बुला लिया था. पहले मैं ने उसे विधवा देखा था पर अब उस ने फिर से विवाह कर लिया है. पति विज्ञान के प्रोफेसर हैं, वह भी साथ आए थे.

नाश्ते के समय तरहतरह के विषयों पर चर्चा होती रही. कामधंधे के बाद जरमन साहित्य, इतिहास और कला पर भी बातचीत हुई. हमें प्रोफेसर से कई बातों की जानकारी मिली. विज्ञान के आचार्य होने के साथसाथ उन्हें इतिहास और साहित्य का भी अच्छा ज्ञान था.

बातचीत के सिलसिले में समय का अंदाज न लगा. घड़ी पर नजर गई तो देखा, दस बज रहे थे. हम ने उन से विदा मांगी. उन्होंने अपनी गाड़ी में हमें हमारे आवास तक पहुंचा दिया.

समय कम रह गया था, फिर भी हमारी इच्छा थी कि जरमनी के भीष्म पितामह बिस्मार्क का निवास और स्मारक देख लिया जाए. बिस्मार्क ने जरमनी के एकीकरण में प्रमुख भाग लिया था. वह लौह पुरुष माने जाते थे. यूरोप की राजनीति में अपने जमाने में उन की बड़ी प्रतिष्ठा थी. टैक्सी द्वारा हम सैसनवाल्ड नामक उपांचल में गए. बहुत ही सुंदर बगीचे के बीच बिस्मार्क का महल है. उन के काम आने वाली सारी चीजें यहां के संग्रहालय में रखी हुई हैं. ऐतिहासिक दस्तावेज भी सुरक्षित हैं.

पास ही में बिस्मार्क की कब्र भी हम ने देखी. देखते समय उन्नीसवीं शताब्दी के जरमनी का इतिहास स्मरण हो जाता है. किस प्रकार इस अद्भुत क्षमतासंपन्न व्यक्ति ने ४३ वर्षों तक अथक परिश्रम कर के अपनी सूझबूझ से जरमनी को यूरोप के देशों में शक्तिशाली और शीर्ष स्थान का अधिकारी बनाया. मुझे भारत के लौह पुरुष वल्लभभाई पटेल की याद हो आई. इस प्रकार के महान पुरुष ही राष्ट्र की मर्यादा, प्रतिष्ठा और शक्ति बढ़ा सकते हैं.

तुर्की

जो पांचसौ वर्षों से चैन से नहीं बैठ सका

स्वराज्य आंदोलन के दिनों में खिलाफत का नाम अकसर हम सुना करते थे. इस के पक्षविपक्ष में उन दिनों बड़ेबूढ़ों में बहस भी जोरों से होती थी. खिलाफत के सिलसिले में महात्मा गांधी, मौलाना शौकत अली और मुहम्मद अली की भी चर्चा हो जाती थी. उन दिनों हम बच्चे थे और इन बातों को समझते नहीं थे. बस इतना ही समझते थे कि अंगरेजों ने तुर्की के साथ अन्याय किया है.

आगे चल कर जब हम स्कूल से निकले तो कमाल पाशा तुर्की का बेताज का बादशाह हो गया था. लोग उसे अतातुर्क यानी तुर्कों का पिता कहने लगे थे. उस की बहादुरी और सुधारों की बातें सुनने में आई. तुर्की को यूरोप का मरीज मुल्क कहा जाता था. अब लोग कहने लगे, नवजीवन और नई चेतना ले कर तुर्की उठ रहा है.

तुर्की और भारत का उन तीनचार वर्षों का इतिहास बहुत कुछ साम्य रखता है. वहां का सुलतान हमारे देशी राजामहाराजाओं अथवा नवाबों की तरह अपने स्वार्थ के लिए विदेशी अंगरेजों और ग्रीकों से मिल गया था. हम महात्मा गांधी के नेतृत्व में अंगरेजों से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अहिंसात्मक संग्राम कर रहे थे जब कि मुस्तफा कमाल पाशा अपने चुने हुए बहादुर सैनिकों और साथियों के साथ अपने देश की स्वतंत्रता के लिए दो बड़े दुश्मनों से एक ही साथ टक्कर ले रहा था.

निष्ठा निष्फल नहीं जाती. आखिरकार १९२२ की जुलाई में अजेय अंगरेजों को तुर्की से बोरियाबिस्तर बांधना पड़ा और अगले एक महीने के अंदर ही तुर्क सैनिकों ने स्मर्ना के युद्ध में ग्रीक सेना को भी तहसनहस कर डाला. किसी प्रकार जान बचा कर बहुत ही थोड़े ग्रीक सिपाही भाग सके. तुर्कों के बदलते रंग को देख कर उन के सुलतान मुहम्मद उसी वर्ष नवंबर में देश छोड़ कर भाग निकले और माल्टा द्वीप में अंगरेजों के शरणापन्न हुए. सुलतान मुहम्मद के इस पलायन के साथसाथ ४७५ वर्ष की ऑटोमन सल्तनत का भी विश्व के रंगमंच पर से पटाक्षेप हो गया.

शत्रु का शत्रु भले ही अपरिचित हो, उस के लिए मैत्री की भावना जाग उठती है. हमारे देश पर अंगरेजों का दमनचक्र जोरों से चल रहा था. ये अत्या-

बोसफोरस जलप्रणाली के दोनों ओर बसा हुआ इस्तंबल
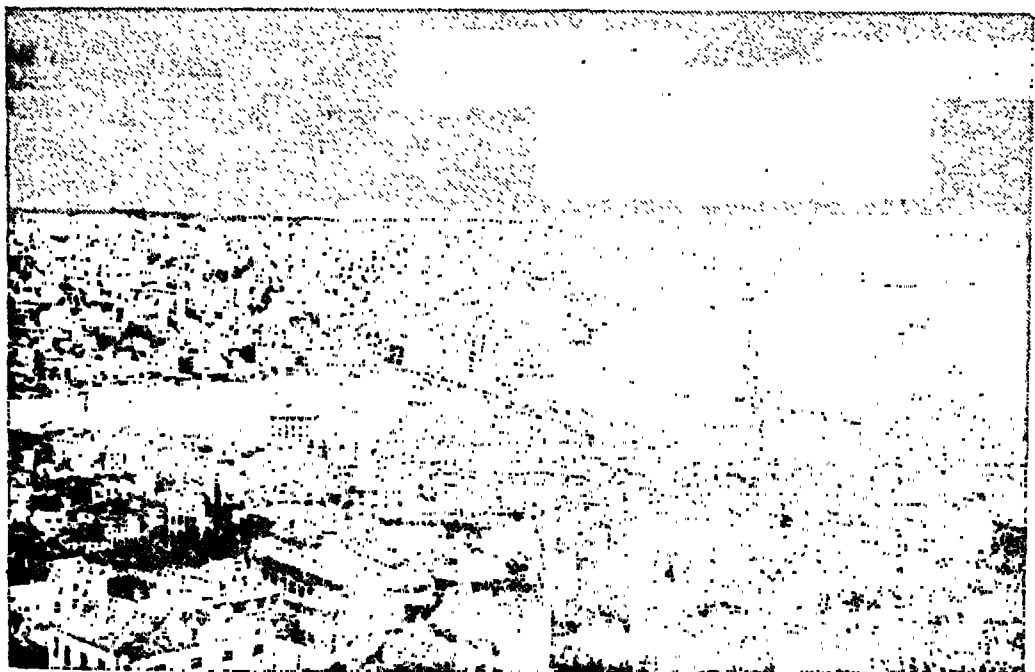
चार और उत्पीड़न करते जा रहे थे. जलियांवाला बाग के घाव ताजा थे, रौलट एक्ट बन चुका था. लिहाजा, कमाल पाशा न केवल तुर्कों का ही आदर्श नेता था बल्कि भारत में भी लोकप्रिय हो गया. राष्ट्र सुधार के उस के तौरतरीकों को भारतीय जनता बड़े चाव से लक्ष्य करने लगी.

तुर्की इसलामी राष्ट्र रहा है. मुल्लामौलवियों का रोब और दबदबा सदियों से वहां के जनजीवन को प्रभावित करता रहा है. सुलतान भाग चुका था पर मुल्लामौलवी अभी वहां थे. ऐसी स्थिति में प्रारंभ में तो कमाल पाशा ने इसलाम को राज्यधर्म के रूप में मान्यता दी किंतु अपनी शक्ति और प्रभुता के बढ़ते ही एक वर्ष के अंदर तुर्की को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर दिया.

उस की दृष्टि में इसलाम विदेशी धर्म था. इसे वह तुर्कों के लिए विदेशी संस्कार समझता था. इसलाम का जन्म अरब में हुआ और वहीं से प्रसारित होता हुआ तुर्की में आया था. अरबों ने अंगरेजों की मदद से तुर्की को काफी परेशान किया था. इसलिए अपने शासन संगठन को व्यवस्थित करते ही उस ने इसलामी मदरसे बंद करा दिए और कड़े कानून बना कर परदे की प्रथा पर प्रतिबंध लगा दिया. यहां तक कि मस्जिदों में अजान तक अरबी में देना निषिद्ध कर दिया. अपने चौदह वर्ष के शासनकाल में उस ने तुर्की को यूरोपीय ढंग से काफी हद तक संस्कारित किया और यूरोपीय राष्ट्रों की पंक्ति में उसे ला खड़ा किया.

उन वर्षों में सारे विश्व में मंदी का जोर था. संसार के व्यवसायी और औद्योगिक राष्ट्र आर्थिक असंतुलन से परेशान थे पर कमाल पाशा का तुर्की अपनी आर्थिक, सामाजिक और सामरिक उन्नति की दिशा में अग्रसर होता जा रहा था.

वास्तव में ही कमाल अतातुर्क, तुर्कों का पिता, चरितार्थ हुआ. तुर्क उस के नाम पर जान की वाजी लगाने को तैयार रहते. उन्होंने उसे सुलतान और खलीफा दोनों का सम्मिलित पद देना चाहा किंतु कमाल ने इनकार कर दिया. उसे न अपनी फिकर थी, न अपने परिवार की. निःस्वार्थ भाव से उस ने राष्ट्र की सेवा आजीवन की.

भारत से यूरोप जाने पर तुर्की रास्ते में पड़ता है. विना अतिरिक्त किराए के इस की राजधानी अंकारा और प्रसिद्ध नगर इस्तंबूल को देखा जा सकता है. पर अधिकतर यात्री इस सुविधा का लाभ नहीं उठाते. संभवतः तुर्की के बारे में जानकारी न होने के कारण वे इसे छोड़ देते हैं. यूरोप के लंदन, पेरिस, रोम, बर्लिन के नाम पहले से सुने रहते हैं, इन्हें देखने की उत्सुकता भी रहती है इसलिए वे सीधे वहीं पहुंच जाते हैं.

सन १९५० में यूरोप की प्रथम यात्रा में वहां के विभिन्न देशों को देखने का अवसर मिला. वापसी में इटली के नेपल्स से सीधे काहिरा को देखता हुआ स्वदेश आ गया था. दूसरी बार सन १९६० में रूस के अतिरिक्त यूरोप के कुछ और नए देशों में गया. तुर्की देखने का आग्रह मन में था पर अंत में समयाभाव के कारण इस बार भी वह छूट गया. १९६४ में विश्वभ्रमण का प्रोग्राम बना. उस में मैं ने सावधानी के साथ तुर्की भ्रमण का कार्यक्रम निश्चित किया. और इस बार चूंकि हमें विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति और व्यवस्था का अध्ययन करना था इसलिए तुर्की को अपने प्रोग्राम में शामिल करना जरूरी भी था.

देश छोड़े ४५ दिन हो गए थे. भारत से बर्मा, दक्षिण पूर्वी एशियाई देश, जापान, अमरीका और यूरोप के अधिकांश देश अपने कार्यक्रम के अनुसार हम ने देख लिए. ग्रीस की राजधानी एथेंस जब पहुंचे तो गरमी सताने लगी. ठंडे देशों से आने के कारण यहां का मौसम गरम लगा. इधर घर की याद भी आ रही थी. हम तीनों साथी विचारविमर्श के लिए बैठे. तय हुआ कि तुर्की और लेबनान तो देख लिया जाए, पाकिस्तान की यात्रा स्थगित कर दी जाए.

ग्रीस और तुर्की पड़ोसी देश हैं. दोनों की राजधानी की दूरी केवल ४०० मील है इसलिए जेट विमान से एथेंस से इस्तंबूल केवल ४५ मिनट में ही पहुंच गए. एयरपोर्ट देख कर ही पता चल गया कि तुर्की पश्चिमी देशों से भिन्न है. अब भी वहां मेंहदी से रंगी दाढ़ियां नजर आ जाती हैं. लंबे अमामे चोगे पहने मौलवी और मुल्ला दिखाई पड़े. महिलाएं बुरके में तो न थीं किंतु वह स्वच्छंदता नहीं थी जो पश्चिमी देशों में दिखाई पड़ती हैं. अब भी वे सहमी सी रहती हैं. धर्मनिरपेक्ष तुर्की पर आज भी कट्टर इसलामी संस्कार हैं. भले ही बुरके हट गए हैं और मरदों ने कोटपतलून पहन लिए हैं. हवाई अड्डे में इंतजाम भी वैसा चुस्त न था जैसा कि जापान, यूरोप और अमरीका में देखने में आया. सफाई और सजावट भी कम थी.

यहां भारतीय राजदूत श्री मेहता राजस्थान के उदयपुर अंचल के हैं. उन से पहले से जानपहचान थी. उन्होंने हमारे दो दिन के प्रवास के कार्यक्रम की बहुत ही सुंदर व्यवस्था कर दी. संपूर्ण तुर्की देखना इतने कम समय में संभव नहीं था. इसलिए हम ने विशेष रूप से इस्तंबूल को देखने का निश्चय किया. व्यापार व

उद्योग का यह केंद्र है और ऐतिहासिक नगरी भी है. प्राचीन और आधुनिक तुर्की की झांकी यहां एक साथ मिल जाती है. हमारे कार्यक्रम में प्रमुख लोगों से मिलने के साथसाथ नगर के विख्यात राजमहल, म्यूजियम और मसजिदों का देखना भी शामिल था.

तुर्की एशिया और यूरोप दोनों महाद्वीपों में है. किंतु इस का अधिकांश भाग एशिया में है. बोसफोरस की संकरी जलप्रणाली दोनों महादेशों को पृथक करती है. इसी के दोनों ओर इस्तंबूल बसा हुआ है. आबादी है १५ लाख. यही यहां का प्रमुख बंदरगाह और नगर है. दिल्ली की तरह यहां भी २५०० वर्ष पुराने स्मारक सुदूर गौरवमय अतीत की साक्षी देते हैं तो सामने खड़ा कई मंजिलों का आधुनिक हिल्टन होटल उसे देख हंसता सा दिखाई देता है. संसार के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरों में इस्तंबूल की गणना होती है. समय के साथ नाम भी इस के बदले—कांस्टेनटाइनोपल, कुस्तुनतुनिया और अब इस्तंबूल. नाम भले ही बदलते रहे पर आज भी इसे यूरोप और एशिया का संगम माना जाता है.

चार दिन पहले हम आस्ट्रिया के विश्वप्रसिद्ध नगर वियना में थे. वहां की स्वच्छता, शुद्ध और ठंडी हवा के बाद यहां के पुराने महल्लों का गंदा वातावरण घुटन सी पैदा कर रहा था. विदेश भ्रमण पर जाने वाले भारतीय बंधुओं को मैं राय देना चाहूंगा कि जाते समय ही उन्हें अरब के देश, मिस्र, तुर्की और ग्रीस देख लेने चाहिए ताकि गरमी और उमस की तकलीफ महसूस न हो.

बहुत दिनों बाद बर्फ डाले हुए तरबूज के ठंडे शरबत को पी कर धोतीकुर्ते में शहर घूमने निकले. शहर के बीच में बहती हुई गोल्डन हौर्न नदी को स्टीमर से पार कर दूसरे हिस्से में जा पहुंचे. हमें सान सोफिया की ऐतिहासिक मसजिद देखनी थी.

एक भव्य एवं विशाल गिरजे के कुछ भाग में थोड़ा सा हेरफेर कर मसजिद का रूप देने के लिए बाहर चारों कोनों पर चार मीनारें खड़ी कर दी गई हैं. भीतरी हिस्सा अब भी पहले की तरह है. नीले मुजाएक से कुरान की आयतें अरबी अक्षरों में खूबसूरती से लिख दी गई हैं. हमारे लिए ऐसे परिवर्तन बहुत आश्चर्यजनक नहीं हैं क्योंकि काशी, मथुरा और दिल्ली में इस ढंग की बहुत सी इमारतें हैं. गाइड ने हमें बताया कि सन ३३५ में सम्राट कांस्टेनटाइन ने इसे बनवाया था और अपने समय के बेजोड़ गिरजों में इस की मान्यता थी. संगमरमर और मुजाएक की तरह तरह की टालियों पर कुमारी मरियम की बहुत ही सुंदर और विशाल मूर्ति खुदी हुई है जिस के सामने सम्राट कांस्टेनटाइन घुटने टेक नतमस्तक इस पवित्र गिरजे को उसे भेंट कर रहा है. संजीदगी के साथ पवित्रता की साफ झलक उस के चेहरे पर है. यहां का वातावरण बहुत ही शांत था.

गाइड ने इस गिरजे के निर्माण का इतिहास बताया तो हम विचारों में डूब गए. हेलियोपोलिस का प्रसिद्ध सूर्य मंदिर और लैकोनिया के कई प्रसिद्ध मंदिरों को तोड़ कर उन के सामान से इस गिरजे का निर्माण किया गया. गाइड ने हमें पत्थरों पर उत्कीर्ण उन प्राचीन प्रतीकों और चिन्हों को दिखाया. मैं खो सा गया. कुछ ऐसा ही कुतुबमीनार देखते समय मुझे लगा था. गाइड बताता जा

रहा था, हजारों निरीह व्यक्तियों की हत्या और अग्निकांड भी इसी के लिए हुए. कांस्टेनटाइन इतिहास में अमर बनना चाहता था. इस प्रसिद्ध गिरजे का निर्माण कर अपने को ईसाई धर्म का सर्वोच्च संरक्षक कहलाने की उस की उत्कट आकांक्षा थी.

लगभग ११२० वर्ष बाद जब सम्राट कांस्टेनटाइन का बाइजन्टाइन साम्राज्य इतिहास के पृष्ठों में सिमट चुका था तब एक दिन इस गिरजे के सामने सुलतान फतह मुहम्मद आ खड़े हुए. इसलाम की फतह की निशानी के बतौर उन्होंने इसे मसजिद बना देने का हुक्म जारी किया. सूर्य मंदिर के पत्थरों से बना हुआ सोफिया का गिरजा अब मसजिद बन गया. माता मरियम की प्रार्थना की जगह कलमे पढ़े जाने लगे. मैं सोच रहा था कि प्रत्येक धर्म की मान्यता रही है, शांति और लोक कल्याण. पर इन के अनुयाइयों ने ज्यादातर विपरीत कर्म ही किए. धर्म के नाम पर निरीह स्त्रियों और बच्चों की हत्या की. धर्म स्थानों को नष्ट किया. चाहे वह भारत की काशी या मथुरा हो या फिर तुर्की का कुस्तुनतुनिया, आखिर ऐसा क्यों? क्या तलवार की धार पर ही बहिश्त का दरवाजा खुलता है?

यों तो ओटोमन तुर्क सम्राट क्रूर और दुर्धर्ष थे फिर भी जहां तक सोफिया के गिरजे का प्रश्न है उन्होंने इसे तोड़ा नहीं बल्कि अपने मूलरूप में ही रखा, यह एक आश्चर्य का विषय है. मैं एक पत्थर की बेंच पर बैठ गया. वातावरण में एक प्रकार की घुटन सी थी. सूर्य मंदिर ढह गया. हमारा सोमनाथ भी तो ढहा है. धर्म के नाम पर इतना अत्याचार! प्रसिद्ध लेखक इरफान ओर्गो ने लिखा है, 'सोफिया की मसजिद में इतने विभिन्न धर्मों के देवता इकट्ठे हो गए हैं कि शायद वे स्वयं एक प्रकार की घुटन महसूस कर रहे हैं.'

कमाल अतातुर्क की दूरदर्शिता से आज वह न सूर्य मंदिर है, न गिरजा और न मसजिद, बल्कि एक राष्ट्रीय संग्रहालय है, जहां हजारों यात्री प्रति दिन विदेशों से इसे देखने आया करते हैं.

यहां से हम ओटोमन सुलतानों के महल देखने गए. समुद्रतट पर थोड़ी ऊंचाई पर एक बहुत बड़े घेरे के अंदर ये बने हुए हैं. सन १९२३ के बाद जब अंतिम सुलतान भाग गया, तब से इसे राष्ट्रीय संग्रहालय बना दिया गया. गाइड से हमें जानकारी मिली कि सुलतान भागते समय अपने साथ अधिकांश कीमती सामान, जेवर और जवाहरात ले गए. फिर भी जो बचा, उन्हीं को यहां सजा कर रखा गया है. बची हुई चीजें भी कम नहीं हैं. इन्हें देख कर एक साथ ही भय और विस्मय होता है. यह भी अंदाज होता है कि उस समय के तुर्की सम्राट कितने बली और कामुक हुआ करते थे.

आश्चर्य तो यह है कि लंबे अरसे तक इन्हें जनता अपना प्रतिनिधि, अपने राष्ट्र का प्रतीक कैसे मानती रही है? पाक इसलाम के ये खलीफा थे. प्राचीन ग्रीक और रोमन सम्राटों की तरह युद्धों में इन्हें स्वयं जाना पड़ता था. इन के नेतृत्व में युद्ध संचालित होते थे. अतएव बड़ेबड़े हथियारों के संचालन की क्षमता इन के लिए आवश्यक थी. इसलिए बचपन से ही इन के खानपान और तालीम की निगरानी रखी जाती थी. अच्छे पहलवान और अनुभवी युद्ध विशारदों की

इस्तंबूल की एक मसजिद का भीतरी भाग

देखरेख में तुर्की शाहजादे प्रति दिन वर्जिश करते थे. सुलतान स्वयं युद्ध संचालन करते हुए इसलामी जोश के साथ जूझते थे.

जहां युद्ध के समय की इन की अद्‌भुत वीरता की कथाएं हैं, वहीं शांतिकाल में इन की भोगलिप्सा एवं कामपिपासा की चर्चाएं भी बेजोड़ ही हैं. सुलतानों के दरबार में सैकड़ों तजुर्बेकार हकीम रहते थे. इन का काम यही था कि इन की ताकत और कुव्वत कायम रखें. जवाहरात और धातुओं के कुश्ते तैयार होते रहते थे. बूढ़े सुलतानों में जवानी का जोश पैदा कराने की हरचंद कोशिशें चलती रहती थीं.

इस के पूर्व हम ने वर्साई और वियना के प्रसिद्ध राजप्रासाद देखे थे. किंतु उन में और तुर्की सुलतानों के महलों में एक स्पष्ट अंतर है. उन महलों में भव्यता

थी, कला और सौंदर्य के निखार के साथ, जब कि तुर्की सुलतानों के महल बेशुमार दौलत, हथियार और एय्याशी के साजोसामान की एक बेतुकी बड़ी प्रदर्शनी लग रहे थे. कारण स्पष्ट है. साम्राज्ञी मेरी अंतोनिता और मारिया थेरेस्सा सुसंस्कृत पूर्वजों की संतान थीं जब कि ओटोमन सुलतान वर्बर और उद्दंड तुर्क सेनापतियों के वंशज थे. वास्तव में ही संस्कार बहुत बड़ा प्रभाव उत्पन्न करते हैं.

म्यूजियम के प्रथम कक्ष में पिछले छः सात सौ वर्ष में काम में लाए गए हथियार रखे थे. मध्ययुग में दुश्मनों और बागियों को सजा देने के लिए उपयोग किए गए औजार और हथियारों को देख कर कंपकंपी आ जाती है. कहीं सिर फोड़ने के लिए मनों वजन के हथौड़े तो कहीं तीखे कांटे लगी गोल अलमारियां. इन में मनुष्य को खड़ा कर नीचे से ज्योंज्यों चक्का घुमाया जाता था, घेरा छोटा होता जाता और पूरे शरीर को छेद डालता था. उन दिनों में फांसी या गोलियों से मौत के घाट उतारना हल्का दंड समझा जाता था. इस के अलावा उद्देश्य यह भी रहता था कि दूसरे देशों के लोग इन कठोर यातनाओं को देखसुन कर भयभीत रहें और सिर न उठा सकें.

युद्ध के समय पहनने के लिए जिरहबख्तर भी यहां नाना प्रकार के देखे. घोड़े और हाथियों के जिरहबख्तर भी थे.

अन्य हथियारों के साथ हमने यहां भीम की सी गदा भी देखी जिस के गोले पर नुकीली कीलें जड़ी थीं. नाना प्रकार के धनुषबाण देखे. तुर्की तीरंदाजी में मशहूर रहे हैं. पुराने ढंग की बंदूकें रखी थीं, पांचछह फुट लंबी, भद्दी और बेडौल. किंतु तलवारें, किर्च, भाले और नेजे बड़े शानदार थे. इन की मूठों पर चांदी और सोने की खूबसूरत नक्काशी थी. कइयों में बेशकीमती जवाहरात जड़े थे.

दूसरे कक्ष में सुलतान और बेगमों की सैकड़ों प्रकार की पोशाकें थीं. इन पर जरी और गोटे का काम किया हुआ था. प्रायः सब पर हीरे, पन्ने, मोती और माणिक जड़े थे. गाइड ने बताया कि तुर्की सुलतानों के हरम भोगों के खजाने थे. दुनिया के हर देश से लड़कियां खरीद कर, भगा कर, लूट कर यहां दाखिल की जाती थीं—एक से एक कमसिन और हसीन. हजारों की संख्या में बेगमों की जमात होती थी. इस के अलावा खूबसूरत लड़के भी सैकड़ों की तादाद में रखे जाते थे. इन्हें गिलमे कहा जाता था. बांदियों और हिजड़ों की तो गिनती ही नहीं. आज भी तुर्कों में यह शौक कुछ न कुछ मात्रा में है.

इसी कक्ष में जवाहरात जड़े सोनेचांदी के लंगोट से देखने में आए. इन में सामने की ओर छोटा सा सुराख था और ऊपर की ओर एक छोटा सा ताला लगा हुआ था. हमारे लिए यह बिलकुल नई चीज थी. पूछने पर पता चला कि सुलतान किसी यात्रा पर अथवा लड़ाई पर बाहर जाते तो कुछ बेगमों और बांदियों को तो अपने साथ ले जाते थे, बची हुई बेगमों के गुप्तांगों पर ये तालाबंद लंगोट लगा दिए जाते थे. बहुत दिनों पहले पढ़े हुए एक लेख की याद आ गई. उस में इन्हें 'चेस्टिटी बेल्ट' कहा गया था. सोचने लगा, 'स्वयं अनेक प्रकार के भोगों में लिप्त रहते हुए निरीह बेगमों पर इस प्रकार के अत्याचार कहां तक वाजिब थे?' लंगोटों के आकारप्रकार को देख कर बड़ी ग्लानि हो रही थी. इन्हें पहन कर कितनी शारीरिक और मानसिक यंत्रणा और यातना रहती होगी. मातृजाति का जघन्य

रात की बांहों में सेंट सोफिया स्क्वायर

अपमान ही तो था. हमारी संस्कृति में तो ऐसी कल्पना तक भी किसी ने न की.

हम ने अरब देशों के इतिहास में पढ़ा था कि उन देशों में नारियों के प्रति आदर की भावना सदैव कम रही है. पैर की जूतियों से उन की तुलना की गई है.

हम तीसरे कक्ष में आ गए. आभूषण, हीरे, पन्ने, नाना प्रकार के रत्न तथा सोने, चांदी के सामान सजे हुए थे. सैकड़ों सोने के दीवट (दीपक रखने की ऊंची स्टूल) देखे, इन में से प्रत्येक का वजन लगभग पंदरह सेर था. आज के सोने के भाव से इन में से एकएक का मूल्य दो लाख रुपये से ऊपर ही होगा. उन दिनों बिजली थी नहीं. महल के कक्षों में बड़ेबड़े दीपक जलाए जाते थे. इन की मोटीमोटी बत्तियों के लिए तेल, घी, मोम या चर्बी का उपयोग किया जाता था. सोने के बड़ेबड़े हुक्के भी दिखाई पड़े. तरहतरह की नक्काशी और मीनाकारी

इन पर थी. किसीकिसी की नली तो पंद्रहबीस फुट से भी ज्यादा लंबी. ठोस सोने के जेवर भी सजे थे. बेहतरीन हीरेपन्ने और मोती जड़े विभिन्न देशों की कारीगरी के ऐसे जड़ाऊ गहनों की प्रथा हमारे देश में भी रही है. मगर यहां के गहनों की बनावट हमारे यहां से कुछ भिन्न थी. दो बेशकीमती पन्ने देखे. छोटे का वजन था तीन पाव और बड़े का पौने दो सेर. हम ने आज तक हीरेपन्ने या नगीनों का वजन माशारत्ती में सुना था पर सेर दो सेर के तौल के भी ये हो सकते हैं, इस का अनुभव यहीं हुआ.

कीमत के बारे में मैं नें पूछा, तो उत्तर मिला, 'कीमत दे कर तो शायद ही कोई इन्हें खरीद सके क्योंकि एक प्रकार से ये अमूल्य हैं. दुनिया में कहीं भी इस प्रकार के बड़े पन्ने उपलब्ध नहीं हैं. आप के यहां कोहेनूर का अपना इतिहास रहा है, उसी ढंग का इन पन्नों का भी है.'

बात सही थी. कोहेनूर की कीमत भी नहीं आंकी जा सकी. महाराजा रणजीतसिंह की याद आ गई, उन्होंनें इस की कीमत दो जूतियां बताई थी. स्पष्ट है, उन का इशारा था बलवान की शक्ति.

इन पन्नों के अलावा हम नें यहां, अंडों के आकार के आबदार मोती देखे. वैभव, विलास की विचित्र वीथियों के बीच यही विचार उठ रहे थे कि ये सारी की सारी चीजें धरी रह गईं. जिन्हों नें इन्हें बटोरा वे स्वयं मिट गए. आज उन के नामों-निशान नहीं. फिर लूटखसोट, वासना, लिप्सा की क्या उपलब्धि रही? शायद भोगों की क्षणभंगुरता को समझ कर ही हमारे सम्राट भरथरी और सिद्धार्थ नें राज्य और गृह त्याग किया था. रघु, कर्ण और हर्ष के सर्वस्व दान की चर्चाएं भी भारतीय इतिहास में भरी पड़ी हैं.

गाइड ने हंस कर कहा, "जनाब, इन्हीं को देख कर आप हैरत में आ गए? चलिए बेगमात के हरम अब आप को दिखा दूं."

हरम में छोटेछोटे सैकड़ों कमरे थे. पहले ही तीन कक्षों में हमारा काफी समय लग चुका था. गरमी महसूस हो रही थी, थकावट आने लगी. बेगमों और गिल्मों के कक्षों को हम ने सरसरी तौर से देखा लिया. हमें ऐसा लगा कि सुंदर और सजेसजाए कैदखाने हैं. ऊंची ऊंची दीवारों के बीच बड़ी उदासी का वातावरण था. शायद यहां उन की उदासी भरी आहों का असर अब भी है. दीवार और दरवाजे दहशत पैदा करने के लिए काफी हैं. इन पर तगड़े ख्वाजासराओं (हिजड़ों) का पहरा रहता था. हमें बताया गया कि इन हिजड़ों को इकट्ठा करने के लिए दुनिया के हर कोने में सुलतान अपने विश्वस्त अनुचर भेजते थे. युद्ध के बाद की जीत की शर्तों में धनदौलत और स्त्रियों के साथ इन की मांग भी की जाती थी.

दोपहर का समय हो चला था. भूख भी लग आई थी. होटल वापस आ गए. श्री मेहता ने लंच का निमंत्रण दिया था. तुर्की के कुछ विशिष्ट व्यक्ति भी आमंत्रित थे. अब तक हम विदेशों में बिना मसाले के शाकभाजी खाते आ रहे थे. यहां मसालेदार सब्जियां मिलीं. हमारे देश में भी ज्यादा मसाले डालने का यहां रिवाज है. बीसियों प्रकार के आमिष व्यंजन बने थे. हमारे लिए खासतौर से चावल का पुलाव, नान और कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलों के

परंपरागत वेशभूषा में तीन तुर्की युवतियां

रस थे. साथ में दही और फल भी थे. तुर्की कई तरह के अच्छे स्वादिष्ट फलों के लिए मशहूर है.

हम सब आठ या दस व्यक्ति थे. एक ही टेबल पर बैठे. वैसे यूरोप में और आजकल तो भारत में भी होटलों में सामिष और निरामिषभोजी एक साथ बैठ कर भोजन करते हैं. यहां एक विचित्र प्रथा है. सम्मानित व्यक्तियों के लिए विविध प्रकार की छोटीबड़ी मछलियां पानी के टबों में रखी जाती हैं. भोजन के समय उन्हें पसंद के लिए लाया जाता है और उस के बाद तल कर तश्तरियों में सजा कर पेश किया जाता है. मेरे लिए तो यह दृश्य बड़ा वीभत्स सा था, उबकाई

आने लगी. बड़ी मुश्किल से अपने को रोक पाया. मुसलिम देशों में भोज चीनियों की तरह काफी समय तक चलता रहता है. नाना प्रकार की चीजें तैयार होती रहती हैं, फरमाइशें और विभिन्न विषयों पर आलापआलोचना का क्रम चलता रहता है. श्री मेहता ने हमारा परिचय यहां के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हमीद बे से कराया. वे पहले संसद के सदस्य थे. श्री मेहता के अच्छे मित्रों में हैं. मेहताजी को उसी दिन किसी जरूरी काम से अंकारा जाना था इसलिए उन को हमारी देखभाल की जिम्मेदारी सौंप गए.

भोजन के उपरांत श्री बे के साथ हम उन के फ्लैट में गए जो समुद्र तट पर था. तबियत ताजा हो गई. खूब खुले दिल से बातें हुईं. तुर्की की वर्तमान शासन व्यवस्था और विदेशों से संबंध की चर्चा हुई. तुर्की के इतिहास के संबंध में उन्होंने कहा कि आश्चर्य है कि लोग मिस्र की सभ्यता को सब से प्राचीन बताते हैं. हमारे देश के खंडहर स्पष्ट कह रहे हैं कि आज से छःसात हजार वर्ष पूर्व हम मिट्टी के बरतन और पत्तों के घरों के युग से आगे बढ़े हुए थे. यह बात जरूर है कि मिस्र के पिरामिड करोड़ों मन के ठोस पत्थरों के बने हैं जिन पर आग, पानी या मौसम का असर नहीं और हमारे आप के प्राचीन स्मारक जमीन में दब गए और मौसम के थपेड़ों की चपेट में आ गए.

मैं ने कहा, "मेरी कुछ ऐसी धारणा यहां आने पर बनी कि भारत के साथ आप के देश का संपर्क और संबंध बड़ा प्राचीन रहा होगा. सूर्य मंदिर के ध्वंसावशेष सुमेरियन सभ्यता के प्रभाव का संकेत करते हैं. सुमेरु का उल्लेख बहुत बार हमारे यहां आया है. आप के यहां के प्राचीन राजा असुरबानी माल का नाम बड़ा परिचित सा लगा." हंसते हुए मैं ने यह भी कहा, "हमारे पुराण इतिहास में देवअसुर संग्राम के बहुत से उदाहरण मिलते हैं. शायद बहुचर्चित असुर आप के यहां हुए थे!"

तुर्की के इतिहास के विभिन्न पक्षों की चर्चा करते हुए उन्होंने बताया, "आज का तुर्की वस्तुतः ओटोमन सुलतानों की ठोस बुनियाद का नतीजा है. सन १४५३ में ओटोमन (उस्मान) सुलतान मुहम्मद ने डेढ़ लाख फौज के साथ आक्रमण किया और कौंस्टेनों को पराजित कर यहां मजबूत मुसलिम साम्राज्य स्थापित किया. उन्हीं के वंशज सन १९२२ तक राज्य करते रहे. ४७५ वर्षों के सुदीर्घ काल तक एक ही वंश का शासन विश्व के इतिहास में बहुत ही कम मिलता है. सोलहवीं शताब्दी तक तुर्की सुलतानों ने मिस्र और सीरिया के अतिरिक्त पूर्वी यूरोप के बहुत से देशों को जीत लिया. उन की फौजें मध्य यूरोप के आस्ट्रिया की राजधानी वियना तक पहुंच गईं. तुर्की सेना के वीरों की कथाएं आज भी न केवल तुर्की में बल्कि यूरोप में भी चर्चित होती हैं.

"म्यूजियम में रखे इन के हथियारों और जिरहबख्तरों को देख कर आप को इन की शारीरिक क्षमता का अंदाज हो गया होगा. आप यूनान से आ रहे हैं. वहां तुर्कों के बारे में कहा जाता है कि हम बड़े क्रूर और नृशंस थे. हजारों बांदियां, गिल्में और बेगमों की जमात हरमों में होती थी. हम जबरन मुसलमान बना लेते थे. यह सब कुछ अंशों में रहा होगा. मगर यह भी नहीं भूल जाना चाहिए

कि उस युग में ईसाइयों ने भी इसलाम को उखाड़ने के लिए कम जुल्म नहीं किए. पिछले पांच सौ वर्षों में यूरोप के ईसाई मुल्कों के साथ हमारे कई जंग हुए. हमें अमनचैन से बैठने का मौका ही नहीं मिला. मगर तुर्क हार कर फिर बीसतीस वर्षों बाद बदला लेते थे. दोगुने जोश से हमला करते थे और अपनी खोई जमीन और इज्जत ही नहीं बल्कि गुलाम और बेशुमार दौलत और हथियार हासिल करते थे. यही रवैया था और यही रिवाज रहा है.

"हमारे यहां के सुलतान मुल्क के बादशाह थे और कौम के खलीफा (धर्मगुरु). इसलिए जितनी भी लड़ाइयां लड़ीं गईं, उन्हें तुर्कों ने जिहाद (धर्मयुद्ध) माना. जंग में जीतने पर जांनिसार सिपाहियों को लूट के माल के अलावा बांदियां और गिल्में बतौर इनाम के दिए जाते थे. लड़ाई में मरने का खौफ था नहीं, क्योंकि जिहाद में जन्नत मिलती और जन्नत में भी तो हूर और गिल्में हैं."

बड़ी साफ अंगरेजी में हमीद साहब भावपूर्ण वर्णन कर रहे थे. कहने लगे, "तुर्क किसी भी कीमत पर आजादी का सौदा नहीं पसंद करता. हम पिछड़ गए थे. कुछ दकियानूसी भी हो गए, जमाने के साथ कदम नहीं रहा. शुक्र है कमाल अतातुर्क का, उन्होंने नयी जिंदगी दी. हम अमरीका के प्रति भी कृतज्ञ हैं. उन्होंने हमें बेशुमार दौलत, फौजी मदद के साथ उद्योगधंधे और शिक्षा की सहायता दी. अमरीका ने महसूस किया कि तुर्क एक बहादुर कौम है जो आन के लिए खुशी से मौत को चूम लेती है. दुनिया के इस भाग में साम्यवाद को रोकने के लिए उसे एक बहादुर साथी चाहिए था. हम से बढ़ कर था कौन?

"हम से अमरीका को कभी शिकायत का मौका नहीं मिला. साम्यवाद की हवा में एक जहरीला नशा होता है. कुछ असर कभीकभी यहां के कालेज के लड़कों पर भी हो जाता है. वे साम्यवादियों के बहकावे में आ कर कभीकभी अमरीकी दूतावास के सामने प्रदर्शन भी करते रहते हैं. मगर यह जुनून कायम नहीं रहता, क्योंकि तुर्कियों का विश्वास जनतंत्र में है."

शाम होने लगी. विदा करते समय श्री बे ने मेरे दोनों हाथ मिला कर अपने सीने पर रख लिए. तुर्की में विदाई के अभिवादन का यही तरीका है. कहने लगे, "इस्तंबूल तुर्की नहीं है, देहात को भी देख लीजिए. चारपांच दिन और रुक जाइए. हमारे ऐतिहासिक स्थान और खंडहर, कृषि और उद्योगधंधों से आप को हमारे देश का सही परिचय मिलेगा." हमें स्नेह के साथ विदा किया.

शाम हो गई थी फिर भी प्रकाश था. दूतावास के सचिव के साथ हम इस्तंबूल का नया हिस्सा देखने गए. इस अंचल में पूर्वी यूरोप के शरणार्थी बड़ी संख्या में बसे हुए हैं. जैसेजैसे रूसी साम्यवाद के प्रभाव में पड़ोसी राष्ट्र आते गए, उन देशों के बहुत से लोग, जो उस विचारधारा की चपेट को नहीं संभाल पाए, देश त्याग कर यहां आ गए. इन में से कुछ, जो सम्पन्न थे, उन्होंने व्यापार, व्यवसाय यहां आ कर शुरू कर दिया. बाकी जो गरीब थे उन की हालत कलकत्ते के आसपास बसे शरणार्थियों की तरह है.

मुझे अपने यहां के सन १९४७ की याद आ गई. पाकिस्तान के जुल्मों ने कितनों को बेघरबार कर दिया. बिना मुआवजा दिए कितनों की संपत्ति हड़प ली गई. साम्यवादी देश धर्म के नाम पर न सही पर अपने सिद्धांत के नाम पर भी तो

यही करते हैं. धर्म और सिद्धांत में अंतर ही क्या है?

तुर्की में अगस्त में फलों की बहुतायत लगी. सेव के आकार के पीच (आड़ू) केवल दोदो पैसों में हम ने खरीदे. बड़े सुस्वादु थे. छोटेछोटे बच्चों ने फलों की टोकरियां लिए हमें घेर लिया. सभी अपने फल दिखा कर खरीदने के लिए कहने लगे. शायद सुबह फल भरी टोकरियों का बोझ सिर पर लाद कर चले थे. अब रात हो रही थी इसलिए घर वापस जाने की फिक्र में थे. इन में कुछ तो आठदस वर्ष के ही थे. सुंदर गौर वर्ण और स्वस्थ थे मगर कपड़े फटे थे. प्रभुदयालजी ने बिना जरूरत बहुत से फल खरीद लिए. मैं सोच रहा था, 'जीवन की विषमताएं सभी जगह हैं चाहे वह धनी देश हो या गरीब, स्वीडन हो या तुर्की.

नए इस्तंबूल में कोई खास आकर्षण लगा नहीं. कलकत्ते या बंबई की तरह सड़कें, बसें और स्टोर थे. बाजार और दुकानें देखते हुए होटल वापस आ गए. फल इतने खा लिए थे कि भोजन भी नहीं किया.

दूसरे दिन सुबह बेरुत के लिए रवाना हुए. हवाई जहाज एयरपोर्ट का चक्कर लगाता हुआ उत्तरपूर्व की ओर बढ़ा. नीचे इस्तंबूल ओझल सा हो रहा था. किंतु तुर्की मन में बैठा था.

बेरूत

अरबी संस्कृति का प्रतीक

अपनी सन १९६१ की यात्रा में बेरुत हो कर स्वदेश लौटने का प्रोग्राम था लेकिन कुछ तो सफर की थकान और कुछ देश लौटने की प्रबल इच्छा के कारण हम सीधे काहिरा से भारत आ गए. यहां आने पर मित्रों ने उलाहने दिए कि बिना अतिरिक्त व्यय के लेबनान न देख कर हम ने एक संपन्न और सुंदर देश को देखने का मौका खो दिया, दोतीन दिन और लग जाते, मगर अरब और अरबी संस्कृति को नजदीक से तो देख लेते!

खैर, १९६४ में फिर अवसर मिला. हम विश्वयात्रा समाप्त कर के इस्तांबूल से भारत वापस आ रहे थे. रास्ते में लेबनान की राजधानी बेरुत में ठहरने का निश्चय किया.

बेरुत फ्रीपोर्ट है. कस्टम की जांच यहां कड़ाई से नहीं होती. हमें भारतीय दूतावास के सचिव लेने आए थे इसलिए दोएक बात पूछ कर ही औपचारिकता के घेरे से छुट्टी मिल गई. होटल की बुकिंग हम ने पहले से ही करा रखी थी क्योंकि हंबर्ग और वेनिस में ऐसा न करने का कटु अनुभव हो चुका था.

हम जिन देशों से होते आ रहे थे, उस के मुकाबले में रोम, एथेंस और इस्तांबूल के होटलों का स्तर घटिया था. हमारी धारणा थी कि कुछ इसी प्रकार बेरुत के होटल भी होंगे, किंतु जैसे ही हम होटल में गए, वहां की साजसज्जा, व्यवस्था और खिदमतदारी देख कर तबीयत खुश हो गई. ऐसा लगा कि एशिया के देशों में भी पर्यटन व्यवसाय पर अब समुचित ध्यान दिया जाने लगा है. बहुत ही सुंदर कमरे, रेडियो और बेहतरीन फर्नीचर. मेजों पर लेबनान के दर्शनीय स्थानों, वहां के इतिहास, भूगोल और पर्यटकों के लिए आवश्यक जानकारी की पुस्तकें रखी थीं. इन्हें पढ़कर यात्रियों को काफी सुविधा रहती है क्योंकि उन्हें अपनी-अपनी रुचि के अनुसार क्याक्या देखना है, सिक्के की कीमत क्या है, होटल, मनोरंजन के स्थान, रात्रि क्लब, थियेटर, सिनेमा, ट्रेन, बस और आवागमन के अन्य साधनों तथा इसी प्रकार की अन्य बातों आदि की आवश्यक जानकारी मिल जाती है.

स्थानीय भाषा के आवश्यक शब्दों का अनुवाद भी अंगरेजी और फ्रेंच में इन पुस्तकों में रहता है. इस के अलावा सुंदर जिल्द की एक बाइबिल भी हमें मेज पर रखी दिखाई पड़ी. पता चला कि स्थानीय बाइबिल एसोसिएशन धर्म-प्रचार में करोड़ों रुपए प्रति वर्ष खर्च करती है. सोचने लगा कि हमारे देश में

भी धार्मिक संस्थाएं और मठ हैं, जिन के पास बहुत बड़ी संपति है, पर उन के माध्यम से विदेशों में हिंदू धर्म के प्रचार के लिए शायद ही कुछ काम होता है. हां, रामकृष्ण मिशन जरूर अपवाद है. जिस समय हम होटल पहुंचे, रात हो गई थी. इसलिए उस दिन कहीं जा न पाए. भोजन कर के अगले दिन का कार्यक्रम बनाने और लेबनान के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के बारे में चर्चा करने लगे.

लेबनान अरब के लैवांत अंचल में है. भूमध्य सागर के पूर्वी छोर का यह छोटा सा अरब राष्ट्र है. इस के दक्षिण में इजराइल है और उत्तर तथा पूर्व में सीरिया. इस छोटे से राष्ट्र की स्थापना तुर्क साम्राज्य के पांच जिलों को मिला कर हुई थी. १९२० में यह स्वाधीन हुआ पर १९४० तक इस पर फ्रांस का संरक्षण रहा. अब यहां का शासन जनता द्वारा निर्वाचित सरकार करती है. संसद द्वारा छः वर्ष की अवधि के लिए राष्ट्रपति चुना जाता है.

हमें बताया गया कि यह सब से छोटा अरब राष्ट्र है. आबादी है इक्कीस लाख. पांच लाख लोग अकेले बेरुत में ही रहते हैं. आबादी में से आधे मुसलमान हैं और आधे ईसाई. मैं सोच रहा था कि यह भी एक देश है जिस का कुल क्षेत्रफल चार हजार वर्ग मील है. इतना तो हमारे एक जिले का होगा और जनसंख्या कलकत्ता की एक तिहाई मात्र है. फिर भी इस की अपनी सरकार है, शासन है, सेना है और यह सार्वभौम स्वतंत्र राष्ट्र है.

लेबनान में खाद्यान्न का उत्पादन यहां की जनसंख्या के लिए पर्याप्त नहीं है क्योंकि अधिकांश भूभाग बस केवल जंगल और पहाड़ हैं. केवल २३ प्रति शत भूमि पर खेती होती है. पेट्रोल का उत्पादन भी नगण्य है, केवल सोलह लाख टन प्रति वर्ष जब कि इस से भी छोटे देश कुवैत का वार्षिक उत्पादन साढ़े ग्यारह करोड़ टन और इस के पड़ोसी देश सऊदी अरब का वार्षिक उत्पादन दस करोड़ टन है.

यहां फलों की पैदावार अच्छी होती है. सवा पांच लाख टन अंगूर, सेब और माल्टा यहां होते हैं. लेबनान को प्रकृति ने धनी नहीं बनाया है फिर भी यह चौधराने से अच्छी आय पैदा कर लेता है. विश्व में पेट्रोल की आय के कारण सब से अधिक अमीर देश कुवैत और सऊदी अरब का विदेशी व्यापार लेबनान के माध्यम से होता है. 'ईराक आयल कंपनी' के किरकुक आयल फील्ड से त्रिपोली तक पाइप लाइन है. इसी प्रकार 'ट्रांसअरब आयल कंपनी' की पाइपलाइन भी सऊदी अरब से यहां के बंदरगाह सईदा तक है. इन देशों का तेल लेबनान के बंदरगाहों से ही विदेशों में निर्यात किया जाता है. आज की दुनिया में पेट्रोल को 'तरल सोना' माना जाता है. कुवैत, सऊदी अरब, ईराक आदि को पेट्रोल से बेशुमार आमदनी होती है. लेबनान अपने बंदरगाहों के उपयोग का किराया तो पाता ही है, अन्यान्य डिस्काउंट वगैरह भी पाता है. बीसवीं शताब्दी के शुरु में लंदन जिस प्रकार यूरोप के व्यापार का माध्यम था उसी प्रकार इस समय अरब देशों के लिए लेबनान की राजधानी बेरुत है.

यांत्रिक व्यवसाय यहां की आमदनी का दूसरा बड़ा स्रोत है. भौगोलिक दृष्टि से लेबनान पूर्व और पश्चिम के देशों को जोड़ने वाली कड़ी है. इसी लिए

वेरुत हवाई जहाजों के आनेजाने का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव बन गया है. यात्रियों के लिए यहां क्लब, होटल और मनोरंजन के तरहतरह के आकर्षक साधनों को प्रचुर प्रश्रय दिया गया है. दोनों ओर के यात्री दोचार दिन का समय यहां के लिए निकाल ही लेते हैं. आंकड़ों को देख कर पता चलता है कि १९६४ में यहां लगभग पांच लाख पर्यटक आए जिन से इन्हें करीब अस्सी करोड़ रुपयों की आमदनी हुई. मतलब यह कि यहां की जनसंख्या के हिसाब से प्रति व्यक्ति ४०० रुपए की आय हुई जो कि कुल मिला कर हमारी वार्षिक प्रति व्यक्ति आय के लगभग है.

अन्य यूरोपीय व एशिया के पूर्वी देशों की तरह इन्होंने भी रात्रि क्लबों को काफी तड़कभड़क वाला बना रखा है. ज्यों ही हम होटल पहुंचे, साफ अंगरेजी बोलने वाले दोतीन व्यक्ति बारीबारी से आ कर मिले. वे यहां के रात्रि क्लबों के एजेंट थे. इन्होंने लच्छेदार शब्दों में इजिप्शियन ब्यूटी, न्यूड क्लब, न्यूड नृत्य आदि के बारे में बड़ेबड़े प्रलोभन दिए. हांगकांग, होनोलूलू, पेरिस और हंबर्ग जैसे विलासिता के लिए मशहूर शहरों के रात्रि क्लब हम देखते आ रहे थे. इन जगहों में न्यूड नाइट क्लब तो दिखाई पड़े थे पर नंगे स्त्रीपुरुषों के नृत्य आयोजित करने वाले क्लबों के बारे में यहीं आ कर सुना. यों तो फ्रांस, जरमनी और आस्ट्रिया में न्यूड क्लब वर्षों से हैं, साल में दसपंदरह दिन के इन के कैंप भी लगते हैं पर इन में नग्न नृत्य का प्रोग्राम नहीं रहता.

दरअसल इन का उद्देश्य भिन्न होता है. प्रकृति से अधिकाधिक संपर्क को प्रोत्साहन देना. इन के शिविरों में सभी सदस्य नंगे घूमते फिरते हैं पर इन में कामुकता भड़काने को प्रश्रय न दे कर वासनाओं को रोकने की ओर प्रयास रहता है. मुझे इन क्लबों में जाने का मौका तो नहीं लगा लेकिन परिचितों से यही जानकारी मिली. हमारे यहां भी हजारों वर्षों से नागा संप्रदाय के लोग ऐसे ही रहते आ रहे हैं. हमारे यहां जैन साधुमुनि भी दिगंबर ही रहते हैं. हां, विदेशों के दिगंबर क्लबों में स्त्रियां रहती हैं, हमारे यहां नहीं, यह एक भिन्नता अवश्य है. इस के अलावा हमारे यहां आध्यात्मिक दृष्टिकोण को महत्त्व दिया गया है, उन के यहां नहीं.

एजेंटों को हमारे पास से निराश हो कर लौटना पड़ा. उन्होंने समझा कि या तो हम परले सिरे के अरसिक हैं या कंजूस. कम से कम उन की शक्ल से यही जाहिर हो रहा था, भले ही उन्होंने हमें मौखिक धन्यवाद दे दिया. इन अरब देशों के रात्रि क्लबों के आसपास मारपीट और लूटखसोट की वारदातों के बारे में हम ने काफी सुन रखा था. इस लिए रुचि न होने पर भी महज अनुभव के लिए भी इतना बड़ा जोखिम उठाना हम ने वाजिब नहीं समझा.

अगले दिन सुबह नाश्ता कर के हम अपने दूतावास गए. बेरुत में हमारे कौंसल एक पंजाबी सज्जन थे. अरब देशों के बारे में उन का अध्ययन अच्छा था. भारत के साथ अरब देशों के वाणिज्य, व्यापार, आयातनिर्यात आदि के बारे में उन से बातें हुईं. उन्होंने स्पष्ट तो नहीं कहा क्योंकि सरकारी पदाधिकारी थे, फिर भी उन की बातों से हमें अंदाज मिला कि हमारे मंत्री प्रति वर्ष अमरीका, ब्रिटेन, रूस और जरमनी तो जाते रहते हैं, पर हमारी सरकार अरब देशों को तृतीय श्रेणी का मानती है और इन की तरफ अपेक्षित ध्यान भी नहीं देती. जापान, फ्रांस और इटली जैसे उन्नत देश भी अपने विशिष्ट मंत्रियों को समयसमय पर इन देशों में भेजते रहते हैं जब कि हमारे देश से सचिव या उन से नीचे के अफसर ही यहां आते हैं.

प्रतिक्रिया यह होती है कि भारत के ऐसे रवैए को यहां वाले एक प्रकार से अपना अपमान समझते हैं. यदि हम उपेक्षा की नीति बदल कर अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना लें तो अरब देशों में हमारी चीजों का निर्यात बड़े पैमाने पर हो सकना संभव है.

कौंसल महोदय ने यह भी बताया कि रौकफेलर, फोर्ड, रुथचाइल्ड और निजाम हैदराबाद के वैभव और दौलत को इन देशों के शेखों ने मात दे दी है क्योंकि 'तरल सोने' की धारा इन की धरती में बह रही है. उन की बातें तथ्यपूर्ण थीं क्योंकि हम ने खुद भी होनोलूलू, लंदन, कोपेनहेगन और वेनिस में इन्हें पानी की तरह रुपए बहाते देखा था.

इन देशों में हमारे माल की खपत में बाधा पहुंचाने वाले जिस दूसरे कारण का उल्लेख उन्होंने किया उसे सुन कर हमारा सिर लज्जा से झुक जाना स्वाभाविक था क्योंकि हम खुद व्यापारी समाज के थे. उन्होंने बताया कि हमारे शिल्पोद्योग की जो वस्तुएं यहां पहुंचती हैं उन की क्वालिटी और माप दोनों के बारे में अकसर शिकायतें आती हैं. भारत में जब वह इन चीजों के निर्माताओं को पत्र लिखते हैं तो या तो जवाब ही नहीं आता और बारबार लिखने पर यदि आ भी गया तो संतोषजनक नहीं होता. यहां तक कि चीजों की किस्म भविष्य में सुधारने का आश्वासन तक नहीं मिलता. ऐसी स्थिति में स्थानीय व्यापारियों को भारतीय वस्तुओं से संतुष्टि नहीं मिल पाती. नतीजा यह हो रहा है कि इन देशों में भारतीय माल की साख घट गई है.

अरब देशों के ग्राहकों की धारणा है कि सिवा चीन और पाकिस्तान के दुनिया के सभी देश अपने निर्यात की वस्तुओं की पूर्णता के बारे में भारत से कहीं अधिक ईमानदार और सावधान रहते हैं.

लगभग दो घंटे तक हम अपने कौंसल के साथ रहे. ऐसा लगा कि वह हमें

समझाना चाहते थे कि हमारे उद्योगपतियों को व्यवसाय के लाभ के साथसाथ राष्ट्रीय सम्मान और साख का भी ध्यान रखना चाहिए. इस दिशा में सरकार को भी ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि स्टैंडर्ड से हलके माल निर्यात करने वालों को दंड मिले.

हम ने दिल्ली आ कर अपनी जो रिपोर्ट व्यापार मंत्री को दी उस में इन सब बातों का उल्लेख कर दिया गया था.

लेबनान की आर्थिक और औद्योगिक व्यवस्था के बारे में हमें जानकारी लेनी थी. हमारे दूतावास ने वहां के व्यापार मंत्री से उसी दिन संध्या का समय मुलाकात के लिए तय कर रखा था. हम ने दूतावास के लोगों को सहयोग के लिए धन्यवाद दिया और विदा ली.

रोम, एथेंस और इस्तांबूल से ही गरमी महसूस होने लगी थी पर यहां तो वह एक प्रकार से सताने ही लगी. बाजार में अधिक न घूम कर हम सीधे होटल वापस आ गए.

तीन बजे दूतावास के सचिव कार ले कर आए. हम उन के साथ मिस्टर अफजलबेग के दफ्तर में गए. अपने मुख्य सचिव और अन्य सहायकों को भी उन्होंने बुला रखा था. औपचारिक रूप से पारस्परिक परिचय हुआ. भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व पर बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ. गांधीजी और नेहरूजी के बारे में वह कहने लगे कि कई शताब्दियों बाद ही इस प्रकार के अमन के पैगंबर पैदा होते हैं. इन दोनों महान विभूतियों को विश्व अभी समझ नहीं पाया है. सत्य, अहिंसा और पंचशील के सिद्धांतों को अमल में लाने के तरीके जो गांधीजी और नेहरूजी ने बताए हैं, वे गिरते हुए मानव समाज की राहत के लिए एक मात्र उपाय हैं. दुनिया चांद तक पहुंचने का प्रयत्न कर रही है मगर वह यह नहीं समझती कि अपने नामोनिशान को मिटाने के लिए उस ने हाइड्रोजन बम और राकेट इस के पहले खुद ही तैयार कर रखे हैं.

'इंशा अल्लाह!' कह कर इस चर्चा को समाप्त कर वह अपने विषय पर आए. कहने लगे कि लेबनान और हिंदुस्तान के ताल्लुकात कदीमी हैं क्योंकि दोनों की तहजीब पुरानी है. जुबल (बिबलोस) पोर्ट शायद दुनिया में सब से प्राचीन है. भारत की बड़ीबड़ी समुद्रगामी नौकाओं से बेहतरीन सामान हमारे यहां हमेशा से आते रहे हैं और इसी रास्ते यूरोप को भेजे जाते रहे हैं. सिर्फ यही नहीं, अरबों ने भारत से ही गिनती सीखी और आज भी हम अंकों को हिंदसा कहते हैं.

गणित, ज्योतिष और दर्शन के सिद्धांत हिंदुस्तान से बराबर हमारे यहां आते रहे हैं जिन्हें हम से यूनान ने सीखा और उन से यूरोप ने. हंस कर कहने लगे, "आज हम उन मुल्कों से पिछड़े हैं मगर खैर है कि हम महसूस करते हैं कि जमाने के साथ हमें कदम रखने हैं इसलिए कुछ पुराने तरीके जो आज के जमाने में बेकार और दकियानूसी साबित हो रहे हैं, हम छोड़ रहे हैं. लेबनान इस ओर दूसरे अरब मुल्कों से ज्यादा खयाल रखता है, इस का आप ने अंदाज किया होगा."

हम ने बताया, "सिवा मिस्र के हम अन्य किसी अरब मुल्क में अब तक नहीं गए हैं. फिर भी इतना हम जरूर कहेंगे कि आप के मुल्क में आधुनिकता के प्रति

लोगों में झुकाव अधिक है और सांप्रदायिक संकीर्णता भी कम है."

कुछ देर चुप रह कर वह कहने लगे, "लेबनान ने इतिहास के इशारे को समझा है. हमें फख्र है कि हम अपने कदीमी इखलाख को हासिल करने की तरफ बढ़ रहे हैं. खेती की पैदावार को आधुनिक तरीके से बढ़ा रहे हैं. हमें उम्मीद है कि आने वाले दोतीन वर्षों में हम इस मामले में आत्मनिर्भर हो सकेंगे."

उन्होंने लेबनान की राष्ट्रीय आय ५०० करोड़ रुपयों की बताई. इस का मतलब है २,५०० रुपए प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष. हालांकि लेबनान केवल ५० करोड़ रुपयों के माल का निर्यात करता है लेकिन क्योंकि कुवैत और सऊदी अरब का माल यहां के बंदरगाहों से आताजाता है इसलिए इन्हें ३६० करोड़ रुपयों की अतिरिक्त प्राप्ति हो जाती है.

शिक्षा की प्रगति के बारे में जो सुना, उस से आश्चर्य होना स्वाभाविक था. अरब देशों में इजराइल को छोड़ कर सभी देश मुसलमानों के हैं. हमारी धारणा थी कि पाकिस्तान के मुसलमानों की तरह यहां भी धर्मांधता होगी और हर मामले में कुरान और हदीस के बाहर की चीजों को ये भी कुफ्र मानते होंगे. मिस्र में कुछ हद तक भ्रम का निवारण हुआ था पर उसे मैं ने आधुनिकता का थोड़ा सा प्रभाव मात्र समझा था. लेकिन लेबनान में जीवन की गतिविधि और शिक्षा के प्रचारप्रसार के आंकड़ों को जान कर अपनी धारणा में संशोधन करना पड़ा.

इस छोटे देश में आधुनिक सुविधाओं और सामग्री से लैस चार विश्वविद्यालय हैं. यहां हजारों स्कूल चल रहे हैं जिन में लगभग तीन लाख पैंसठ हजार विद्यार्थी और दस हजार अध्यापक हैं. इन के अलावा मुल्लामौलवियों के कुछ पुराने ढंग के मदरसे भी हैं.

बातचीत के सिलसिले में हमें बड़े साइस्ता ढंग से इशारा दे दिया गया कि यदि हिंदुस्तान अपनी चीजों का स्टैंडर्ड अच्छा रखे तो लेबनान की मारफत मध्य-पूर्व में भारतीय सामग्री की अच्छी खपत हो सकती है. हम पहले से ही अपने उद्योगों के स्टैंडर्ड के बारे में सुन चुके थे. प्रभुदयालजी मुसकरा कर कहने लगे, "शुरू में दिक्कतें कुछ हो जाती हैं मगर हमें उम्मीद है कि हमारे माल के बारे में शिकायत का मौका नहीं मिलेगा."

चाय के साथ उन्होंने अपने देश के बेहतरीन अंगूर और माल्टा भी आग्रह-पूर्वक खिलाए. बचपन में देखा था, काबुल से बहुत मीठे अंगूर आते थे, काठ के गोल डब्बों में रुई में लिपटे हुए. यहां के अंगूरों ने उस मधुरता की याद ताजा कर दी.

विदा करने के लिए वह नीचे गाड़ी तक आए. उन का अनुरोध था कि हम लोग लेबनान की पहाड़ियों में रमणीक जगहों को जरूर देख लें.

बाजार से गुजरते हुए हम ने देखा कि जगहजगह भारतीय फिल्मों के इश्तहार लगे हुए हैं. हमें अपने दूतावास के सचिव से पता चला कि भारतीय फिल्मों की यहां अच्छी मांग रहती है, लोग उन्हें पसंद भी करते हैं. इस कारण बहुत से स्थानीय लोग हिंदी समझ लेते हैं. प्रभुदयालजी ने धीरे से कहा, "जो काम 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' और 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' न कर पाई और हमारी सरकार भी जिस के लिए अब तक स्पष्ट दिशा नहीं अपना सकी, उसे हमारे सिनेमा
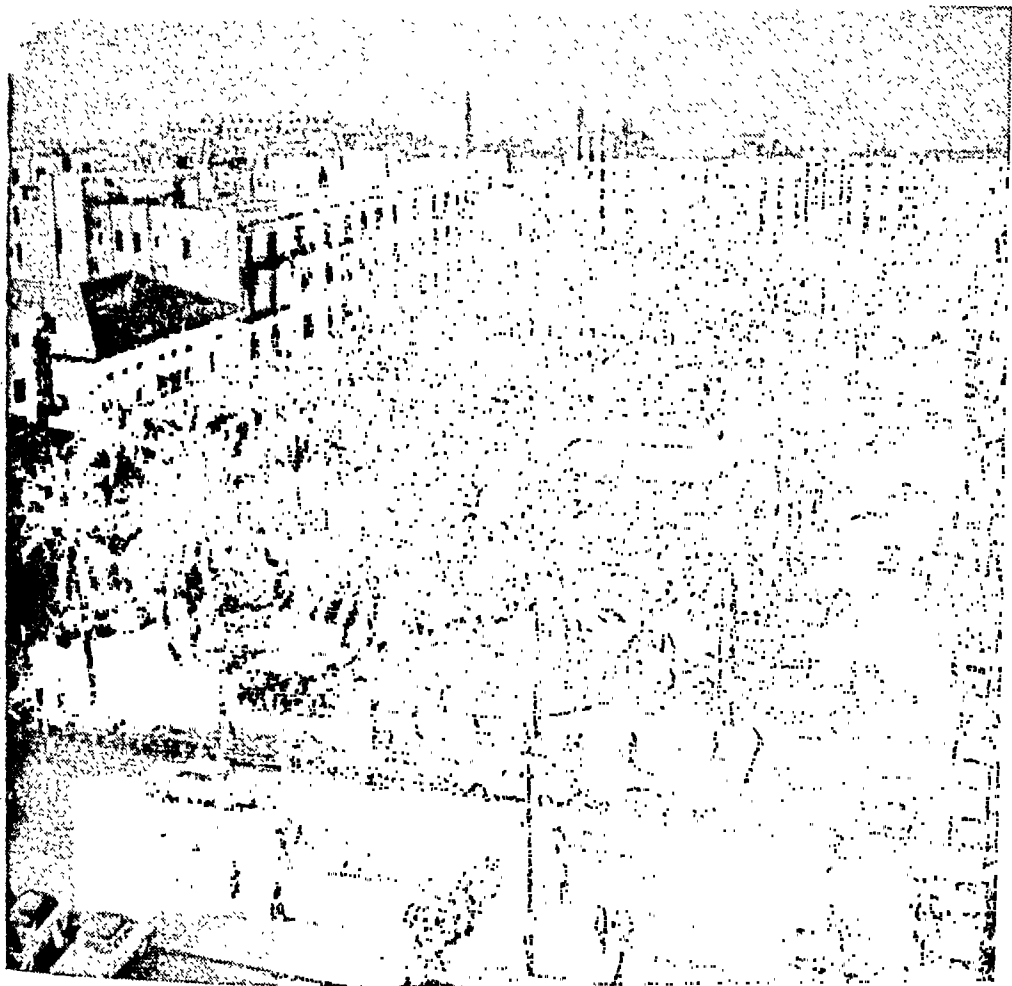
लेबनान की राजधानी बेरुत : इतिहास की भव्यता और आधुनिकता के बीच

वालों ने कर दिखाया."

बेरुत, फ्रीपोर्ट और यात्रियों के आकर्षण का नगर होने के कारण दुकानों में हर तरह के सामान खूबसूरती से सजे थे. दाम भी वाजिब थे. चीजों को देखने और दाम की जानकारी के लिए हम कई स्टोरों में गए. वहां सभी देशों की चीजें थीं.

यहां एक और विशेषता देखी. अवैध व्यापार यानी तस्करी का धंधा यहां बड़े पैमाने पर होता है. शायद लेबनान सरकार को इस से अच्छी आमदनी होती है क्योंकि पड़ोसी देश में आयात पर सरकारी नियंत्रण और प्रतिबंध है जब कि यहां पूरी छूट है. यही कारण है कि यहां से विदेशी माल पड़ोसी देशों में जाता है. यहां के बाजार में आसानी से सभी देशों के सिक्के बदले जा सकते हैं.

हम ने इस ढंग की एकदो दुकानों में जा कर सिक्कों के भाव पूछे. अमरीकी डालर, स्वीडिश क्रोनर और स्विस फ्रांक की दर अधिकृत दरों से ऊंची थी. ब्रिटेन के पाउंड, पश्चिम जरमनी के मार्क और जापानी येन के भाव अधिकृत दरों के आसपास थे. भारतीय मुद्रा का मूल्य केवल ६० प्रतिशत था और पाकिस्तानी का ५० तथा बर्मा का सिर्फ ३० प्रतिशत.

हमारे दूतावास के सचिव का विशेष आग्रह था कि यहां का विश्वविद्यालय जरूर देखना चाहिए. वहां जा कर उन के वार्षिक बजट, अध्ययन की विविध

सुविधाएं और व्यवस्था देख कर पता चला कि अमरीकी ईसाई संस्थाएं इन देशों में ईसाईयत के प्रचारप्रसार के लिए बेशुमार धन खर्च करती रहती हैं. हो सकता है कि इस के पीछे उन का कुछ दूसरा उद्देश्य भी हो, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि वे भूखों को अन्न, नंगों को वस्त्र और गरीबों को शिक्षा दे कर रोजी और रोजगार के काबिल तो बना ही देती हैं. हमारे देश में भी ईसाई मिशनरियां ऐसा करती हैं. हम बहुत शोर मचाते हैं कि धर्म लूटा जा रहा है, हिंदुओं को प्रलोभन दे कर ईसाई बनाया जा रहा है आदि. पर जब हम अपने यहां के शौकीन मठाधीशों और महंतों की जंगलों और पहाड़ों में कष्ट सहते हुए ईसाई पादरियों से तुलना करते हैं तो शंका का समाधान अपनेआप हो जाता है.

अमरीकी विश्वविद्यालय में हम ने देखा कि हर देश और हर रंग के विद्यार्थी वहां हैं. संगीत, कला, शिल्प, इंजीनियरिंग, नर्सिंग, चिकित्सा आदि सभी प्रकार के स्कूल और कालेज इस के अंतर्गत हैं. अधिकांश अध्यापक लेबनानी हैं. छात्रों के अनुशासन, रुचि और अध्यवसाय से संचालकों को पूर्ण संतोष है. पिछले वर्ष इस विश्वविद्यालय की शताब्दी जयंती मनाई गई थी.

लौटते समय बाजार से ऊंटगाड़ी गुजरती देखी जो एक प्रकार से हमारे राजस्थान जैसी ही थी. उसी तरह सामान लादे बेफिक्री से नकेल थामे गाड़ी वाला मोटर और ट्रकों की उपेक्षा करता चला जा रहा था. अच्छा लगा कि दौड़भाग की दुनिया में कहींकहीं मस्ती की चाल अब भी दिखाई दे जाती है.

बाजार में ऐसे ही घूमते रहे, खरीदारी कुछ करनी थी नहीं. अगले दिन के लिए एक गाइड और कार तय कर ली, हालांकि देखने के लिए कुछ विशेष था नहीं. सफर के आरंभ और अंत में तबीयत में शाहखर्ची आ ही जाती है.

दूसरे दिन गाइड के साथ घूमने निकले. गाइड का नाम था इस्माइल. वह तनिक मोटा जरूर था मगर था बड़ा खुशमिजाज. अंगरेजी साफ जानता था और हिंदी के भी दोचार शब्द बोल लेता था. शुरू में 'गाइडधर्म' के अनुसार करीब आधे घंटे तक उस ने लेबनान और बेरुत के इतिहास के बारे में बताया. लेबनान के इतिहास के सिलसिले में उस ने ईसाइयों और मुसलमानों के बीच मध्ययुग की लड़ाइयों और तनाव की जो बातें बताईं, वे सही जरूर रही होंगी, पर हमें ऐसा लगा कि मुसलमान होने के नाते उस ने कुछ पक्षपात से काम लिया. उस ने बताया कि लेबनान का क्षेत्र मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल के प्रथम और द्वितीय चरण का है. खुदाई करने पर इस के प्रमाण मिले हैं और मिलते जा रहे हैं.

गाइड ने बताया, "नवीं ईसवी में यहां मुसलमान और ईसाइयों में कई बार लड़ाइयां हुईं. अब भी होती हैं क्योंकि ईसाई मुसलमानों को बहका कर कुफ्र की राह ले जाने की अपनी आदत से बाज नहीं आते. लेकिन इतना जरूर है कि अब तलवारों की जगह अकल और हिकमत से लड़ाई होती हैं. इसलाम को खतरे में डाले रखने के लिए ईसाइयों ने अरब क्षेत्र में यहूदियों को बसा कर इजराइल कायम किया है. यहां से इजराइल सिर्फ १५० मील और यरुशलम २०० मील की दूरी पर है. इजराइल को चारों ओर से अरब मुल्क घेरे हुए हैं. दुनिया के अमन के लिए इजराइल एक कायमी खतरा है. पिछले डेढ़ हजार वर्षों में जितना खून हमारी

इस जमीन पर बहाया गया हैं, उस की मिसाल शायद ही और कहीं मिलेगी.

मुसलमानों और ईसाइयों, मुसलमानों और मुसलमानों, प्रोटेस्टैंट और कैथोलिकों, यहूदियों और मुसलमानों में यहां आपस में एक नहीं अनेक बार युद्ध हुए हैं. यही नहीं, तुर्की के सुल्तानों ने भी जब चाहा, यहां लूटमार मचाई. काफी समय तक यह इलाका उन के अधीन रहा हैं. तुर्की सुल्तानों के हरमों में सदियों तक यहां से हूरें और गिलमें जबरदस्ती ले जाई गईं."

इस्माइल ने अपनी तकरीर जारी रखी, "अठारहवीं शताब्दी में हिंदुस्तान से पैर उखड़ने के बाद फ्रांस ने यहां अपना प्रभुत्व जमा लिया. १९४० तक यहां उस का प्रभुत्व कायम रहा. वे शायद फिर भी यहां से जाते नहीं मगर कभी तो न्याय की जीत होती ही हैं. उन के खुद के मुल्क पर जून १९४० में जरमन नाजी फौज चढ़ आई. वे खुद गुलाम हो गए और हमारा लेबनान आजाद हो गया. सन १९४३ में यहां पहला चुनाव हुआ. लेबनान अरब लीग का सदस्य जरूर बना मगर इजराइल से कभी भी हम ने बैर नहीं रखा."

मैं ने बात काट कर कहा, "मगर तुम तो इजराइल से नाराज हो, अभी तुम्हारी बातों से पता चला हैं."

इस्माइल जरा गंभीर हो गया. उस ने कहा, "वह मेरी अपनी राय थी." अपने विषय पर लौटते हुए उस ने बताया, "क्योंकि इजराइल से लेबनान ने द्वेष नहीं रखा इसलिए लेबनान पर प्रेसिडेंट नासिर की नाराजगी स्वाभाविक थी. १९४९ में जब ईराक में फौजी बलवा हुआ, उस समय यहां भी शायद वही हालत होती, मगर यहां के प्रेसिडेंट कमाल सामन ने बुद्धिमानी से काम लिया और अमरीका से सहायता की प्रार्थना की. समय पर अमरीकी फौजें आ गईं. लेबनान अमन के दौरान में तरक्की करता जा रहा हैं. बेरुत की आबादी १९२६ में सिर्फ ८०,००० थी, अब पांच लाख हैं. दुनिया के बड़े और खूबसूरत शहरों में इस की गिनती है."

मैं ने कहा, "इस्माइल साहब, कलकत्ता की आबादी साठ लाख है कुछ पता है?"

मुसकरा कर उस ने कहा, "सुना है, मगर दौलत का दौर बेरुत में है. इसलिए यह बड़ा हैं और खूबसूरत भी. कुवैत और सऊदी अरब के शेखों के महल यहां हैं, उन के हरम भी हैं. वे यहां बराबर आते रहते हैं." उस ने यह भी बताया कि नवाब जूनागढ़ और हैदराबाद के शाहजादे भी यहां तबीयत बहलाने के लिए आया करते थे.

गाइड की बातों में आकर्षण था. उस की अंगरेजी यूरोप के गाइडों की तरह नहीं थी. भारतीयों की तरह उस में स्पष्टता थी और बीचबीच में वह मजहब, हरम, हुस्न, तवारीख, मुश्किल, वक्त, जमाना, जंग, हिकमत और न जाने कितने ऐसे परिचित शब्द बोलता था इसलिए अपनापन भी लगता था.

उस ने बताया कि यहां की क्रिश्चियन संस्थाओं के पास खर्च करने के लिए अथाह दौलत है इसलिए उन का रोबदाब भी है. मैं ने कहा, "ईसाई तो आप के देश के गरीबों की सेवा करते हैं, फिर विरोध किस बात का?"

इस्माइल ने कहा, "वैसे मजहबी आजादी का हक सबों को है, मगर दिक्कत यह है कि विदेशियों की मदद और कोशिशों से जब किसी मजहब को फैलने का सहारा मिलता है तो उस के मानने वालों का झुकाव भी अपने मुल्क की ओर न हो कर गैर मुल्क पर होता है. हम लेबनान में ऐसा होना बर्दाश्त नहीं करेंगे और माफ करें, शायद आप भी अपने मुल्क के लिए ऐसा बर्दाश्त नहीं करेंगे."

इस्माइल के तर्क और युक्ति ने मुझे सोचने के लिए काफी मसाला दे दिया. हमारे नागा और मिजो लोगों की समस्या के पीछे भी तो ईसाई पादरियों का हाथ बताया जाता है. शायद वह समझ गया. उस ने विषय को मोड़ते हुए बताया, "लेबनान की भाषा लेबनिन है. इसे अरब की एक उपभाषा कह सकते हैं, मगर इस में मिठास है और सरलता भी. विदेशी भाषाओं में फ्रेंच यहां अधिक प्रचलित है क्योंकि फ्रांस के साथ हमारा संपर्क अधिक रहा है. अब कुछ वर्षों से अमरीकी ढंग की अंगरेजी का भी प्रचार हो रहा है."

गाइड की बातें बड़ी रोचक और तथ्यपूर्ण लगीं. उस ने बताया, "यहां एक कालिज है जहां गाइडशिप की शिक्षा दी जाती है. देश के इतिहास, भूगोल, अर्थ नीति आदि के अलावा कई विदेशी भाषाएं भी इन्हें सीखनी पड़ती हैं."

पिछले ५० दिनों से विश्व के सुंदर और समृद्ध शहरों को हम देखते रहे थे. इसलिए बेरुत में हमारे देखने लायक विशेष कुछ था नहीं. फिर भी इस्माइल के साथ शहर के पुराने भाग के खंडहरों को देखने के लिए कार से गए. हमारे कुतुब-मीनार के पास महरौली या राजगृह और नालंदा के खंडहरों की सी इन की हालत थी. कुछ खुदाई भी यहां हुई है. प्राचीन काल के बरतन, मूर्तियां और गहने मिले हैं. असीरियन सभ्यता का यहां प्रभाव था. जो शायद आसुरी सभ्यता रही हो. हमारे पुराणों में देवासुर के संघर्ष का जिक्र आता है.

ईरान का मध्य और पूर्वी क्षेत्र भारत से संबंधित रहा है. इसलिए इन की सभ्यता और मूल संस्कृति से हमारा सामंजस्य है. असीरियन सभ्यता और संस्कृति ने अरब और यूनान को प्रभावित किया है. शायद यही कारण है कि इसलाम, ईसाइयों और यहूदियों के धर्म में कुछ हद तक सामंजस्य मिलता है. खंडहरों के बीच इन्हीं बातों पर सोचने लगा. शायद यही आसुरी सभ्यता और संस्कृति इसलाम के रूप में भारत में फिर से आई थी.

पास के संग्रहालय में भी कुछ चीजें रखी देखीं. वेशभूषा, पहनावा, रथ, पशुपालन सभी तो जैसे जानेपहचाने से लगे, महाभारत, रामायण और पुराणों में वर्णित से.

ध्यान टूटा. इस्माइल कह रहा था, "हमारी बदकिस्मती है कि यहां से काफी चीजें अमरीका और फ्रांस के म्यूजियमों में चली गईं."

मैं ने ब्रिटिश म्यूजियम में औरंगजेब की लिखी कुरानशरीफ देखी थी और लंदन टावर में कोहेनूर हीरा. सोचने लगा, 'पराधीन देशों के साथ व्यवहार एक सा ही होता है, चाहे फ्रांस करे या ब्रिटेन.'

पुराने बेरुत से बंदरगाह पर आए. यह बंदरगाह काफी बड़ा और आधुनिक साधनों से सुसज्जित है. यहां १७ बड़ेबड़े जहाज एक साथ ठहर

ईसा से तीन सदी पहले का जुपिटर मंदिर : लेकिन अब खंडहर ही शेष हैं
दांए : पहाड़ियों के बीच जाने वाला एक लेबनानी : वर्तमान से अलग नहीं

सकते हैं और उन पर माल चढ़ाया या उन से उतारा जा सकता है. संसार के सभी देशों के जहाज यहां आते हैं. सन १९६३ में ३,१०० जहाज इस बंदरगाह पर आए थे. इसी से यहां के कारोबार का सहज अनुमान लगाया जा सकता है.

वापस जाते समय इस्माइल हमें यहां की बड़ी मसजिद में ले गया तो भीतर से हमें यह इस्तांबूल की मसजिद की तरह लगी यानी पुराने गिरजे के ढंग की. हम ने इस बारे में गाइड से पूछा तो उस ने कुछ झिझक के साथ स्वीकार किया, "बारहवीं शताब्दी में क्रूसेडरों (ईसाई धर्म के नाम पर युद्ध करते हुए बलिदान होने वाले वीर) ने इसे बनाया था. इस का नाम 'सेंट जौन बैप्टिस्ट' चर्च था. बाद में इसे मसजिद बना लिया गया." इस्माइल की झिझक से लगा कि धर्म के नाम पर उपासना गृहों को खंडित करना मुसलमान होने पर भी वह अन्याय समझता है.

इस्माइल से हम ने विदा ली. मैं तो उस के व्यवहार से बहुत ही प्रभावित और खुश था. मुझे वह गाइड नहीं बल्कि एक अच्छा साथी लगा. 'खुदा हाफिज' कह कर जब उस ने विदा ली तो मैं ने दोनों हाथ अपने सीने से लगा लिए. उस की मुसकराती शक्ल आज भी याद आती है.

बेरुत से हमें पाकिस्तान जाने की व्यवस्था करनी थी. हमारे दूतावास ने इस के प्रति उत्साह नहीं दिखाया. इसलिए मेरे दोनों साथी दूसरे दिन सुबह वहां

से सीधे दिल्ली के लिए चले गए. मैं थोड़ा सा खतरा ले कर भी पाकिस्तान देखना चाहता था इसलिए विसा की कोशिश के लिए रुक गया.

काफी दिक्कत और हमारे दूतावास की कोशिश के बाद मुझे केवल दो दिनों के लिए करांची का विसा मिला. लाहौर के लिए फिर से करांची में पूछने के लिए कहा गया...

इस्तांबूल से मेरे साथ एक पाकिस्तानी युवक बेरुत आया था. हवाई जहाज में परिचय हुआ. अपने कारोबार के सिलसिले में यूरोपीय देशों से होता हुआ वह पाकिस्तान लौट रहा था. उस ने भी बेरुत में मेरे विसा के लिए काफी कोशिश की. वह खुद पाकिस्तानी दूतावास में हमारे दूतावास के सचिव के साथ गया. वह मन ही मन अपने देश के दूतावास के व्यवहार के प्रति खिन्न भी था किंतु झेंप मिटाने के लिए उस ने कहा, "पाकिस्तानी नागरिकों को भी भारतीय विसा मिलने में दिक्कत होती है."

हमारे दूतावास के सचिव ने मुसकरा कर नम्रतापूर्वक इस का खंडन किया और बताया कि लगभग हर रोज पाकिस्तानी नागरिकों को भारतीय विसा यहां से दिए जाते हैं.

युवक का नाम याद नहीं है. उस की बात से पता चला कि उस के कारोबार का हेड आफिस करांची में है. आयातनिर्यात का व्यवसाय है. उस का पिता और बड़े भाई वहां काम देखते हैं. और वह विदेशों से व्यापार और संपर्क बढ़ाने के लिए घूमता रहता है.

उस का सुझाव था कि मक्का और मदीना भी देख लिए जाएं. पास ही हैं. हवाई जहाज से सिर्फ दो घंटे लगते हैं. यदि विदेशी मुद्रा की कमी हो तो सारे खर्च की जिम्मेदारी वह खुद लेने को तैयार था.

मैं ने सुन रखा था कि केवल मुसलमान ही उन स्थानों में जा सकते हैं किंतु उस ने बताया कि ऐसी कोई खास पाबंदी नहीं है, कभीकभी यूरोपीय और अमरीकी यात्री भी वहां जाया करते हैं.

सैलानी मन में एक बार तो इच्छा जगी कि क्यों न इसलामी तीर्थों की यात्रा कर ली जाए, शायद ही जीवन में ऐसा मौका हाथ लगे, मगर उसी समय मन में एक शंका और हो आई कि वहां जा कर कहीं किसी संकट में न पड़ जाऊं. अकेला था, हमारी यात्रा के संचालक प्रभुदयालजी सुबह ही वायुयान से चले गए थे. यदि वह होते तो भी शायद ही स्वीकृति देते. मैं ने अपने दूतावास को अपनी इच्छा बताई मगर उन्होंने भी इस हज यात्रा के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया. मन को समझा कर रह गया. शाम को 'पाक' एयरवेज के जहाज से करांची जाना पूर्ववत निश्चित कर लिया.

हवाई जहाज तक पहुंचाने के लिए करांची का युवक अपनी कार के साथ आया. उस ने अपना फोन नंबर दिया और एक परिचयपत्र भी. करांची में अपने घर पर ठहरने के लिए अनुरोध भी किया. मैं ने देखा कि पाकिस्तानी और हिंदुस्तानी इनसानों का जितना तनाव अपने देशों में है, उतना दूसरे देशों में नहीं रहता. ऐसा लगता है कि अगर व्यक्ति अपने निहित स्वार्थों से जरा हट कर एक-

दूसरे से मिलें तो मन का द्वेष धुल जाता है. हिंदुस्तानी और पाकिस्तानी इतिहास, भाषा, पहनावे और रंग की एकता का अनुभव तभी होता है जब कि इन दोनों देशों की भौगोलिक सीमाओं से बाहर हम परस्पर मिलते हैं.

हवाई जहाज में जाते समय मुड़ कर देखा, इस्माइल दौड़ता आ रहा है. हाथों में ताजे अंगूर का एक पैकेट उस ने जल्दी से थमा दिया. मैं सिर्फ 'धन्यवाद' दे पाया, मगर बेशक उस लेबनानी गाइड ने एक हिंदुस्तानी दिल को हमेशा के लिए बांध लिया. यद्यपि ये सब बातें देखनेसुनने में बहुत साधारण सी लगती हैं, पर इन का प्रभाव स्थायी रह जाता है.

पाकिस्तान

जो कभी भारत का ही एक अंग था

स्वदेश में रहने पर अपने देश के आकर्षण का अनुमान नहीं होता. लेकि विदेशों में ज्यादा समय रह जाने पर स्वदेश के प्रति कितना प्यार, कितन खिचाव होता है, इस का अंदाज तो व्यक्तिगत अनुभव से ही हो पाता है.

इस बार की विदेश यात्रा में घर की याद जरा जल्दी अनुभव होने लगी हम सुदूरपूर्व जापान से अमरीका गए और फिर यूरोप से तुर्की होते हुए मध्य पू लेबनान की राजधानी बेरूत पहुंचे. अब तक की यात्रा बड़ी मनोरंजक रही

पृथ्वी की परिक्रमा में ५० दिन लगे पर अब ५१ वां दिन न तो मुझे अच्छ लगा और न मेरे साथियों को ही. हमारे कार्यक्रम में अभी पाकिस्तान की यात्र बाकी थी लेकिन दोनों साथी श्री प्रभुदयाल हिम्मत सिंह का और श्री रामकुमा भुवाल का सीधे कलकत्ते की ओर उड़ चले. मैं अपने कार्यक्रम में रद्दोबदल नह करना चाहता था, इसलिए ३० अगस्त १९६४ को रात्रि के ११ बजे कराची वे लिए रवाना हो गया.

बेरूत से कराची मुश्किल से ढाई घंटे की उड़ान है. खिड़की से बाह झांक कर देखा, दूर पर बेरूत की रोशनियां कांपतीकांपती तेजी से गायब हो गई मन नहीं लग रहा था. सोचा, 'पास बैठे सहयात्री से कुछ बातें करूं.' देखा त उन की नाक नींद से बातें कर रही थी. होस्टेस ने मुझे परेशान सा देख कर स्ने भरी मुसकान से पूछा, "चाय या काफी?"

"कुछ नहीं, धन्यवाद!" मेरा उत्तर था और मैं आंखें बंद कर के सोने क चेष्टा करने लगा.

जेट हवाई जहाज की गति तेज थी पर मेरा दिमाग उस से भी तेजी से दौड़ रहा था—भारत और पाकिस्तान . . . दिल्ली और रावलपिंडी . . . हिंदू और मुसलमान . . . इंगलैंड और हिंदुस्तान . . . सत्याग्रह . . . खिलाफत . . . दमन और शोषण की आंधियां . . . गांधीजी . . . जिन्ना . . . दंगे . . . फसाद . . . चीखपुकार . . . !

"हम कराची पहुंच रहे हैं, कमरबंद लगा लें," निर्देश सुनाई पड़ा. ध्यान भंग हुआ. कुछ ही क्षणों में विमान के चक्के धरती छू गए. घड़ी देखी रात के डेढ़ बजे थे.

कराची हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव तथा एक अन्य

तानाशाही की काली परछाइयों से घिरी पाकिस्तान की निरीह जनता

पदाधिकारी लेने के लिए आए थे. इन की सहायता से कराची के कस्टम की जांच से निकल पाया और सीधे होटल एयर फ्रांस में जा कर डेरा डाला. जिन देशों से मैं आ रहा था, वहां के होटलों की तुलना में इस का स्तर नीचा था. फिर भी, यह काफी व्यवस्थित था. पलंग पर लेटते ही गहरी नींद में खो गया.

सुबह देर से नींद खुली. अगस्त का महीना था और धूप बादलों से खेल रही थी. ठंडे देशों की यात्रा करने के बाद यहां गरमी महसूस हो रही थी. तैयार होने के बाद नाश्ता किया और दस बजे भारतीय दूतावास पहुंच गया. विदेश मंत्रालय ने मेरे कार्यक्रम की सूचना पहले से ही उन के पास भेज दी थी तथा आवश्यक निर्देश भी दे दिया था. इस संबंध में निर्धारित कार्यक्रम तय था. होटल इंपीरियल में एक बजे लंच था जिस में दूतावास वालों ने पाकिस्तान के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को पहले से ही आमंत्रित कर रखा था.

कुछ समय बाकी था. मैं चाहता था कि पाकिस्तान के प्रतिष्ठाता कायदे आजम का मकबरा देख लूं. अधिकांश विदेशी ऐसा ही करते हैं. एक प्रथा सी चल निकली है. हमारे यहां भी राजघाट पर गांधीजी की समाधि पर विदेशी पर्यटक और राजदूत वर्ग के लोग श्रद्धाज्ञापन करते हैं. कायदे आजम का मकबरा ज्यादा अच्छा नहीं लगा. कुछकुछ पीर के मजार जैसा वातावरण था. पास ही वजीरे आजम मरहूम लियाकतअली खां का मकबरा भी था.

हमारे दूतावास ने मुझे पहले ही संकेत कर दिया था कि पाकिस्तान में बंदिशें काफी हैं, विशेष रूप से भारतीयों के लिए, इसलिए जो अच्छा लगे उस की ही चर्चा की जाए और जो न रुचे उस का जिक्र न करें.

शहर के जिस हिस्से से गुजर रहा था उस में कोई नयापन नहीं था. ऐसा लगता था कि कलकत्ता के सर्कस एवेन्यू या बेग बगान से गुजर रहा हूं. विदेशों में भारतीय शक्ल देख कर लोग नजर उठाते हैं पर यहां हमशक्ल होने की वजह से ऐसा कुछ नहीं था.

लंच के लिए होटल पहुंचा. बहुत दिनों बाद भारतीय भोजन का स्वाद मिला. यों तो विदेशों में कभीकभी दूतावासों में यह मौका मिल जाता था, फिर भी ठेठ हिंदुस्तानी खाना नहीं बन पाता था. भोजन के समय आमंत्रित पाकिस्तानी मेहमानों से केवल औपचारिक बातें ही होती रहीं, क्योंकि हमारे दूतावास ने पहले ही बता दिया था कि राजनीतिक चर्चा यहां की सरकार पसंद नहीं करती. थोड़ी देर में ही वातावरण में दम कुछ घुटाघुटा सा लगने लगा.

भोजन के बाद पाकिस्तान के योजना आयोग के अध्यक्ष से मिलने गया. दरअसल हमारी यात्रा का उद्देश्य था—विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक अवस्था, व्यवस्था और उन्नति का अध्ययन. यहां का वातावरण कुछ भिन्न था. योजना आयोग के अध्यक्ष अली साहब ने पाकिस्तान की अर्थ संबंधी योजना, विकास तथा सफलताओं की जानकारी दी. उन की सज्जनता और उत्साह ने अब तक दिल में जमे हुए भारीपन को मिटा दिया. हमारी बातचीत के समय वहां अन्य कई विभागों के अफसर भी थे. सभी दिलचस्पी ले रहे थे. बातचीत के सिलसिले में पता चला कि सभी लोग अविभक्त भारत में विभिन्न सरकारी पदों पर रह चुके हैं और अब भी उन के नातेरिश्तेदार भारत में हैं.

पाकिस्तान में आर्थिक विकास अभी अधिक नहीं हुआ है. इस में संदेह नहीं कि पाकिस्तान के औद्योगीकरण के लिए अमरीका और विश्व बैंक ज्यादा उदार रहे हैं. सीटो के सदस्य होने के कारण अरबों रुपयों के अच्छी किस्म के हथियार (टैंक, विमान आदि) पाकिस्तानी शासकों को कम्युनिस्टों से लड़ने के नाम पर अमरीका से मुफ्त मिल गए, जब कि हमें खरीदने पड़े.

विभाजन के समय पाकिस्तान के पास एक भी जूट मिल नहीं थी लेकिन विदेशी मुद्रा के सहारे पाकिस्तान ने जूट उद्योग में अच्छी उन्नति की है. रुई भी पश्चिमी पाकिस्तान में अच्छे किस्म की होती है. इस बात को मद्देनजर रखते हुए पाकिस्तान में कपड़े की मिलें भी स्थापित कर ली गई हैं. नए बड़ेबड़े उद्योगों में कागज की मिलें और सीमेंट के कारखाने हैं.

पाकिस्तान ने, विशेष रूप से पश्चिमी भाग में, औद्योगीकरण तथा कृषि के विकास पर ध्यान रखा है और पूर्वी पाकिस्तान हर प्रकार से उपेक्षित रहा है. मुझे ऐसा लगा कि खाद्यान्न के मामले में हमारी तरह पाकिस्तान को भी विदेशों पर निर्भर रहना पड़ रहा है. विदेशी मुद्रा का अभाव हमारी तरह पाकिस्तान में भी है. लेकिन अब तक भी वहां दैनिक आवश्यक चीजों के कारखानों की कमी है, इसी लिए विदेशों से आयात के प्रति वहां की सरकार ने कड़ा प्रतिबंध नहीं लगा रखा है. जो भी हो, हम ने यह अनुभव किया कि पाकिस्तान को अपनी योजनाओं में खास सफलता नहीं मिली है और न वहां खुशहाली ही है.

वार्तालाप के कार्यक्रम के बाद उन लोगों ने हमें शहर की कुछ नई इमारतें
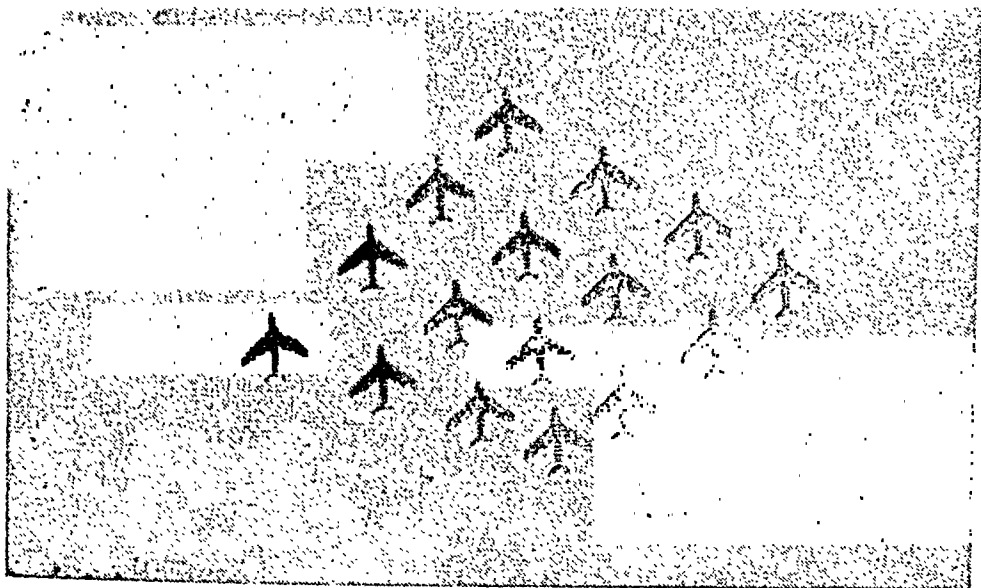
हवा में कलाबाजियां करते हुए सेबरजेट

दिखाईं. इन में वहां के रिजर्व बैंक की इमारत बहुत बड़ी और शानदार थी. वास्तव में सरकार ने इसे दर्शनीय स्थान बनाने के दृष्टिकोण से रखा है. विदेशों से आए प्रमुख पर्यटकों को यह अवश्य दिखाया जाता है. इस भवन के पुस्तकालय में मैं ने देखा कि भारतवर्ष के बहुत से समाचार पत्र और पत्रिकाएं उपलब्ध हैं. बैंक के कर्मचारियों में से अधिकांश किसी न किसी समय भारत में काम कर चुके थे. एक बुजुर्ग तो मेरे जिले सीकर के ही मिले. देश के विभाजन के बाद वह करांची आ कर बस गए थे. जरा एकांत सा पा कर धीरे से उन्होंने मुझ से अनुरोध किया, "जनाब को थोड़ी सी तकलीफ दे सकता हूं?"

"शौक से," मेरा उत्तर था.

चट २० रुपए मेरे हाथों में दबा कर कहने लगे, "फलां गांव में मेरी लड़की और नाती हैं." उन की आंखें डबडबा रही थीं. कहने लगे, "जमाना हो गया देखे हुए, नाती की तो सिर्फ तसवीर ही देखी है. आप को जब भी उस तरफ जाने का मौका लगे, एक बेकस बाप और नाना की तरफ से इन रुपयों के फल और मिठाइयां उन्हें देने की गुजारिश है."

और उन का गला भर आया. मैं ने रुपए लिए नहीं, ले भी कैसे सकता था. वादा किया कि राजस्थान पहुंच कर उन की सौगात तो पहुंचा ही दूंगा और मौका लगा तो उन की पुत्री और नाती से मिल भी लूंगा.

एक कौतूहल मन में बहुत ही जोर मार रहा था कि देखा जाए यहां पर हिंदुओं की क्या दशा है, क्योंकि राह चलते या सरकारी दफ्तरों में कहीं भी हिंदू दिखाई नहीं पड़े थे. पता चला कि शहर में कुछ हिंदू अभी भी हैं जिन का एक अलग महल्ला है. हमारे दूतावास ने एक ड्राइवर को कार दे कर मेरे साथ कर दिया. दूतावास के अधिकारी खुद उस महल्ले में जाना नहीं चाहते थे. पाकिस्तान सरकार को यह पसंद नहीं था. खैर, मैं हिंदुओं के महल्ले में गया. वहां के वयोवृद्ध सिंधी श्री हीराचंद से मिला. बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बताया कि उन के सारे के सारे संबंधी घरबार और कारोबार छोड़ कर भारत

चले गए. मैं ने उन से पूछा, "इतना खतरा और तकलीफ सह कर आप यहां क्यों रह रहे हैं?"

उत्तर मिला कि उन की वृद्धा माताजी कुल और परंपरा से स्थापित मंदिर के ठाकुरजी को छोड़ना नहीं चाहतीं, इसलिए उन्हें भी बरबस रुकना पड़ रहा है.

वहां के कुछ और लोगों से बातचीत करने से पता चला कि हिंदुओं पर बहुत ही सख्त निगरानी रहती है. सरकारी नौकरियों तथा सुविधाओं से वे वंचित हैं और तृतीय श्रेणी की नागरिकता की सुविधा भी उन्हें हासिल नहीं. इस महल्ले के लोग शाम होने के बाद आम तौर पर अपने दायरे में ही रहते हैं, कहीं बाहर निकलने का साहस नहीं करते.

मन खिन्न हो गया था. सोचा, 'कराची के बाजारों में जरा घूम लूं.' दुकानों में कलकत्ता, दिल्ली जैसी रौनक नहीं लगी. विदेशी वस्तुएं काफी दिखाई पड़ीं. कराची अभी हाल तक पाकिस्तान की राजधानी थी, लेकिन अब प्रेसीडेंट अयूब खां ने इस्लामाबाद (रावलपिंडी) को यह सेहरा पहनाया है. फिर भी कराची एक अच्छा बंदरगाह और व्यापार की मंडी होने के कारण पाकिस्तान का बड़ा शहर है, बल्कि यह कहा जा सकता है कि इस का महत्त्व हमारे कलकत्ता और बंबई शहरों जैसा है.

हमारे राजदूत इस समय कराची में नहीं थे इसलिए रात में दूतावास के प्रथम सचिव के निवास पर भोज का आयोजन था. कुछेक हिंदू नागरिक भी आमंत्रित थे. अपने ही लोगों के बीच बातचीत का दायरा मुक्त था. चर्चा पाकिस्तान की राजनीति तथा शासनतंत्र की चल निकली. उन्होंने बताया कि तानाशाही तथा फौजी हुकूमत, जोर और जबरदस्ती पर ही कायम रहती है. पाकिस्तान सरकार ने इस दशा में शिथिलता नहीं आने दी है. कश्मीर के प्रश्न को चालू रखना पाकिस्तानी शासकों के लिए बहुत जरूरी है क्योंकि इस से वहां की जनता की मुसलिम सांप्रदायिक भावना को उभार कर नागरिक अधिकार की मांग से दूर रखने में जहां आसानी रहती है, वहीं विदेशों से भारत के विरोध में सहानुभूति भी सहज ही प्राप्त होती है.

अब मेरी समझ में आया कि पाकिस्तान सरकार हमें पर्यटन के लिए वीसा देने में क्यों हिचकती है! बेरूत में भारतीय दूतावास की कड़ी कोशिश के बावजूद केवल कराची का वीसा मिल पाया था. लाहौर के लिए जब कराची में आज्ञा मांगी तो पाकिस्तानी सरकार ने साफ इनकार कर दिया. मगर मेरा मन नहीं मान रहा था. लाहौर का वैभव विभाजन के पूर्व देख चुका था और अब इतने लंबे समय के बाद वर्तमान लाहौर को देखने की मन में तीव्र इच्छा थी. एड़ी-चोटी का जोर लगाने पर हमारे दूतावास को मेरे लिए एक दिन का वीसा मिल सका. मैं उसी दिन चल पड़ा.

हवाई जहाज में बैठा उड़ा जा रहा था. नीचे हरियाली, नदी और नाले खिड़की से दिखाई दे रहे थे. बिलकुल हमारे देश का सा दृश्य था. प्रकृति मानो हिंदुस्तान और पाकिस्तान बनाने को तैयार नहीं. हरेभरे खेत, बागबगीचे, सभी तो इन्हीं नदियों की देन हैं जो भारत से बहती हुई आती हैं.

फौजी तानाशाही ने पाकिस्तान का पूरा वातावरण ही बदल दिया है . . .

पाकिस्तान भले ही अरबी और ईरानी संस्कृति को ज्यादा गौरवपूर्ण मानता हो पर उस की खुद की बुनियाद तो सनातन भारतीय संस्कृति पर ही है. अफगानिस्तान इसलामी राष्ट्र है पर वहां भी आज अतीत वैदिक आर्य सभ्यता और संस्कृति के लिए आग्रह उठ रहा है. फिर क्या पाकिस्तान अपनी संस्कृति के मूल स्रोत को काट सकेगा? शायद नहीं.

सफर लंबा नहीं था. लगभग सवा घंटा में ही लाहौर पहुंच गया. एयरपोर्ट से पी. आई. ए. के शहरी दफ्तर में गया. यहां के आई. ए. सी. के इंचार्ज श्री जोसेफ के पास उसी समय कराची से हमारे दूतावास का फोन मेरी व्यवस्था के संबंध में पहुंचा था. उन्होंने हर प्रकार से मेरी मदद की और मेरे लिए एक होटल में ठहरने का प्रबंध कर दिया.

लाहौर पहले कई बार आ चुका था. इस की निराली ही शानशौकत रही है. यह भारत का पेरिस कहलाता था. नित नएनए फैशनों की शुरुआत यहीं से होती थी. बेहतरीन बागबगीचे इस की रौनक में चार चांद लगाते थे. व्यापार, उद्योग तथा शिक्षा, तीनों ही प्रचुर मात्रा में थे. यहां के अधिकांश शिक्षाशास्त्री, वकील, बैरिस्टर, व्यापारी और छोटेबड़े उद्योगपति हिंदू ही थे.

सिर्फ एक दिन का वीसा मिला था जो किसी भी बड़े शहर के लिए बहुत ही कम था. फिर, लाहौर के लिए तो बहुत ही कम, क्योंकि इस शहर के साथ हमारे इतिहास की अनेक परतें लिपटी हुई हैं. सोचा, 'कार के बजाए बस से ही शहर घूम लूं ताकि लोगों की बातचीत सुनने का मौका मिल सके.'

बस लाहौर की सड़कों से गुजर रही थी. यात्रियों का चढ़ना, उतरना, बातचीत का लहजा सभी अपने देश का सा था. बसों में भीड़ तो हमारी दिल्ली और कलकत्ता जैसी ही थी लेकिन उन की हालत ज्यादा गईगुजरी थी. इधर-

उधर देख ही रहा था कि अचानक देखा—दो साहबान मेरी ओर बड़े गौर से देख रहे हैं. पता नहीं वे कब बस में आ कर बैठे. नजर मिलते ही करीब आए और सवालों की झड़ी लगा दी, "कब आए, कहां जाएंगे? शहर में किसकिस से मिले?"

कुछ झल्लाहट सी हुई. मैं ने उन्हें बताया कि विभिन्न देशों की आर्थिक समस्या का अध्ययन करता हुआ करांची से यहां आया हूं और कल ही दिल्ली चला जाऊंगा.

एक साथ दोनों की आवाज गूंजी, "पासपोर्ट. . . वीसा?"

कहना न होगा, दोनों गुप्तचर थे.

पासपोर्ट और वीसा साथ ले कर नहीं चला था. मैं ने समझाने की कोशिश की कि 'पेलिटी होटल' में ठहरा हूं, वहीं पासपोर्ट और वीसा दिखा दूंगा. लौट कर मिलने का समय भी बता दिया. मगर सब बेकार. दोनों साथ ही रहे.

बस दौड़ती जा रही थी. मजा किरकिरा हो गया था. उदास मन से खिड़की के बाहर भागते हुए मकानों और दुकानों को देख रहा था. गवर्नमेंट कालिज के टावर की वही पुरानी घड़ी, जामा मसजिद का वही आलीशान गुंबज, गोल बाग, गुरु अर्जुन की समाधि और लाहौर का किला. . . सभी तो वैसे ही हैं. आखिर बदला क्या?

बस कचहरी रोड पर एक तांगे वाले के पीछे जरा धीमी चाल से बढ़ रही थी. 'दयानंद एंग्लो कालिज' का फाटक आया. पहले देवनागरी लिपि में कालिज का नाम भवन की मेहराब पर था पर अब 'इसलामिया कालिज' अंगरेजी और उर्दू में लिखा हुआ है. इसी प्रकार कई मकानों और मंदिरों की हालत देखने में आई. आर्य समाज, सनातनधर्म, सिख समाज की बड़ीबड़ी शिक्षण संस्थाएं और सर गंगाराम ट्रस्ट जैसी दातव्य संस्थाओं पर लाहौर को फख्र था पर पाकिस्तान ने इन का नामोनिशान मिटा दिया है. हुकूमते पाकिस्तान तवारीख भी मिटाने की कोशिश कर रही है. क्या वह मिटा सकेगी? कहते हैं कि श्री राम के पुत्र लव ने ही लवकोट यानी लाहौर को बसाया था. कहते यह भी हैं कि विजयोन्माद में भरे सिकंदर को इसी के पास रावी तट पर, एक आर्य सन्यासी द्वारा कड़ी, पर स्पष्ट भविष्यवाणी सुन कर वापस लौट जाना पड़ा था. महाराजा रणजीतसिंह की स्मृति और वीर भगतसिंह का बलिदान क्या लाहौर के जर्रेजर्रे से कभी हट सकेगा? शायद नहीं.

शाम हो चली थी. मैं अपने होटल लौटा. दोनों सी. आई. डी. छाया की तरह साथ थे. मैं ने उन्हें अपना पासपोर्ट और वीसा दिखलाया और कहने से न चूका कि आप यदि कभी भारत में तशरीफ लाएंगे तो आप के साथ ऐसा बर्ताव वहां कभी भी न होगा. हमारे यहां तो [illegible] मुसल[illegible] को वही अधिकार प्राप्त हैं जो हिंदुओं को हैं.

उन में से एक जरा झेंप गया और कह[illegible] उच[illegible] है! हम तो हुक्म के बं[illegible] को [illegible] क्या किया जाए!"

कुछ देर आरा[illegible]

सन १९४० में लाहौर की, शाम के बाद की रौनक देखी थी. देखूं अब कैसा लगता है? खाना खा कर अनारकली बाजार चला गया. वही दुकानें, वही सड़क, सब कुछ वही, पर न तो वहां पहले की सी चहलपहल ही थी और न महाशय राजपाल या आत्माराम एंड संस के साइनबोर्ड ही. ऐसा लगा जैसे अनारकली कह रही हो :

"न किसी के आंख का नूर हूं,
न किसी के दिल का करार हूं.
जो किसी के काम न आ सके,
मैं तो एक मुश्तेगुबार हूं."

बहुत खोजने पर भी न तो कोई हिंदू ही नजर आया, न कोई सिख. सुना है कि शहर में एक गुरुद्वारा अभी भी बचा हुआ है जहां एक पुजारी अवश्य है, पर उसे बाहर के लोगों से मिलनेजुलने की मनाही है.

दिल्ली में पाकिस्तानी दूतावास पाकिस्तानी हिंदू और सिखों के संबंध में जो प्रचार सामग्री प्रसारित करता है, वह बिलकुल झूठी और बेबुनियाद है.

विचित्र सी मानसिक स्थिति में रात दस बजे होटल लौटा. बेचैनी और थकावट के मारे बिस्तर पर पड़ गया. उस रात नींद बड़ी ही मुश्किल से सिर्फ दो घंटे के लिए आई. नींद में भी बारबार लगता था कि पुलिस के सिपाही आ रहे हैं.

दूसरे दिन प्रातः इंडियन एयर लाइंस के मिस्टर जोजेफ आए. उन से पिछले दिन के अपने अनुभव बताए. उन्होंने कहा, "इसी खयाल से मैं कल दिन में दो बार आप से मिलने आया था पर मुलाकात न हो सकी. आप का यहां घूमना व्यक्तिगत सुरक्षा की दृष्टि से मुनासिब नहीं था." हालांकि मिस्टर जोजेफ एंग्लो इंडियन थे फिर भी उन्हें कई प्रकार की दिक्कतें वहां उठानी पड़ रही थीं. हवाई जहाज पर बैठने के पूर्व एयरपोर्ट पर विदा देते समय उन्होंने बड़ी आजिजी से कहा, "यदि आप भारत में कहीं भी मेरी बदली करवा दें तो मैं आप का बड़ा उपकार मानूंगा."

हवाई जहाज में बैठा सोचने लगा, 'कैसा रहस्यमय बन गया है पाकिस्तान! कोई भी दिल की बात खुल कर नहीं कह सकता.' लाहौर के मुसलमान होटल के कर्मचारी ने चलते वक्त चुपके से कहा था कि उस की बहन दिल्ली में रहती है, उसे टेलीफोन पर कह दूं कि उस के भाई से मिल आया हूं, वह राजीखुशी है.

प्लेन में बैठा विचारों को समेट रहा था. कई मुसलमानी मुल्कों से हो आया हूं—तुर्की, मिस्र, लेबनान—पर कहीं भी भारतवासियों के प्रति इस ढंग का द्वेष और संदेह का वातावरण नहीं मिला. फिर इस जगह ही क्यों? यह भी भारत का अंग था, क्या इसलाम के नाम पर भोलेभाले लोगों को गुमराह कर और पाकिस्तान बना कर भी उस के शासकों की हवस पूरी न हो सकी?

दूर पर कुतुबमीनार दिखाई पड़ने लगा. मन ने कहा, "जमाना करवटें बदलता रहता है. पाकिस्तान भी जमाने की एक करवट ही तो है. क्या पता, शायद फिर बदल जाए!"

नेपाल

हमारा उपेक्षित पड़ोसी?

कई बार मुझे नेपाल जाने का अवसर मिला. ये यात्राएं अधिकतर व्यापार के उद्देश्य से थीं. भ्रमण और पर्यटन का लक्ष्य कम था. फिर भी यात्रिक रुचि के कारण प्रत्येक बार नगराज हिमालय के इस हिमकिरीट को देख कर मन में नवीन उल्लास की प्राप्ति होती रही है.

नेपाल भिन्न देश है. किंतु उस का हमारे देश के साथ काफी सामंजस्य है! संस्कृति, सभ्यता, भाषा, रहनसहन, पोशाक, मकानदुकान सभी हमारी ही तरह. विराटनगर, जनकपुर, वीरगंज आदि क्षेत्रों में तो आभास तक नहीं होता कि हम भारत के बाहर विदेश में हैं क्योंकि भौगोलिक समरूपता इन स्थानों की हमारी तराई जैसी ही है.

नेपाल एक छोटा सा देश है. हिमालय के ऊंचे शिखरों के बीच बसा हुआ वह ऐसा लगता है मानो नगराज ने बड़े प्यार से इसे अपनी गोद में बैठा रखा हो. अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण वह अब तक बहुत ही सुरक्षित रहा है. उत्तर में दुर्गम हिमालय के दुर्जेय शिखर, पूरब, पश्चिम और दक्षिण में भारत—उस की संस्कृति का स्रोत, उस का अनन्य उदार मित्र.

यही कारण है कि नेपाल की स्वतंत्रता कायम रही है. भारतीय संस्कृति मुगलों, पठानों और तातारों के हमलों और राजनीतिक करवटों के कारण विपन्न होती रही, किंतु नेपाल में उसका अत्यंत स्वस्थ निखार हुआ. नेपाल निस्संदेह इस दिशा में भारत से कहीं आगे रहा है.

नेपाल की जनसंख्या लगभग एक करोड़ है. यह हमारे बिहार प्रदेश के लगभग पांचवें भाग के बराबर है. लंबाई है ५२५ मील और चौड़ाई सिर्फ १२५ मील. जीवन संघर्षमय है. और आय का मुख्य साधन है—कृषि. चावल, पाट, मडुआ, गन्ना आदि की खेती होती है. भेड़-बकरियां पाली जाती हैं. दुधारू गौएं भारत जैसी नहीं होती. जंगलों से जड़ी-बूटियां इकट्ठी की जाती हैं और लकड़ियां काटी जाती हैं. अधिकांश उद्योगधंधे अब भी गृहशिल्प की अवस्था में ही हैं. नए शासन में आधुनिक, उन्नत एवं बृहद स्तर पर उद्योगधंधों को विकसित करने का प्रयास किया जा रहा है. खनिज पदार्थों की खोज की जा रही है. तांबा मिला है और सीमेंट के उद्योग में भी सफलता मिलने की संभावना है.

इस की भौगोलिक स्थिति इतनी महत्वपूर्ण है कि भारत, अमरीका, रूस,

फ्रांस, ब्रिटेन, चीन आदि सभी करोड़ों रुपयों की वार्षिक सहायता देते रहते हैं. इन में सब से अधिक सहयोग भारत का है और इस के बाद अमरीका का है.

मुझे ऐसा लगा कि कुछ वर्षों पहले तक भारत की नेपाल के प्रति उपेक्षा और अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारतीय दुर्बलता ने भारत के प्रति नेपाल के विश्वास को हिला दिया है. यही कारण है कि वर्तमान भारतीय राजनीतिज्ञों के प्रति नेपाल में वह आदर नहीं रहा जो युगों से रहता आया है. उस के पड़ोसी देश तिब्बत को चीन द्वारा उदरस्थ किए जाने पर भी भारत चुप्पी साधे रहा, इसलिए नेपाल को सुरक्षा और स्वरक्षा के लिए बाध्य हो कर चीन से हाथ मिलाना पड़ा. नेपाल की यात्रा में इस विषय पर मेरे कई एक नेपाली मित्रों ने यह राय व्यक्त की. इसी तरह भारत की विदेश नीति की असफलता के कारण नेपाल को पाकिस्तान से भी संपर्क बढ़ाने के लिए विवश होना पड़ा.

मैं ने पूछा, "क्या चीन की साम्राज्यवादी भूख से नेपाल अपने को बचा सकेगा?"

उन्होंने जवाब दिया, "इसी लिए तो हम अमरीका और ब्रिटेन से मित्रता रखते हैं."

मेरा प्रश्न था, "नेपाल सदैव एकमात्र स्वतंत्र हिंदू राज्य रहा है. पाकिस्तान कट्टर मुसलमानी देश है. इसलाम ने सदियों तक भारत में हिंदुओं का उन्मूलन किया. इस समय भी पाकिस्तान में उन्हें हर प्रकार से सताया जा रहा है तो क्या वह नेपाल को अछूता छोड़ देगा?"

उन्होंने गंभीरता से कहा, "नेपाल का राज्यधर्म है—हिंदुत्व. सांस्कृतिक और धार्मिक महत्ता का अशिक्षित जनता पर कितना अधिक मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, इसे नेपाली सदैव जानते रहे हैं. इसी लिए विदेशी ईसाई या इसलामी संस्कृति को हमारे देश में प्रश्रय नहीं दिया जाता है."

मैं ने हंस कर कहा, "बौद्ध होने के नाते चीन को तो सुविधा है."

"सुविधा थी, पर अब नहीं है. क्योंकि इसी नारे पर तिब्बत को चीन निगल गया. हम सजग हो गए. बुद्धवाद और चीनवाद में अंतर है." हंसते हुए उन्होंने कहा, "देखिए, रूसवाद और चीनवाद के धक्के से साम्यवाद कितने विवाद में पड़ गया है!"

आमतौर से नेपाल के लोगों में यह धारणा दृढ़ होती जा रही है कि चीन ने अपने स्वभाव के अनुसार नेपाल को सहायता के नाम पर धोखा दिया. कागज की मिल और खनिज पदार्थों की खोजों के बहाने सारे नेपाल के पहाड़ और जंगलों की जानकारी हासिल कर ली. जब कि खदान या कारखाने बनाने का काम कतई शुरू नहीं किया गया. हां, नेपालतिब्बत का मार्ग तेजी के साथ अवश्य पूरा कर दिया गया. भारत ने नई योजनाएं बनाने में सहयोग दिया है, उन्हें क्रियान्वित भी कर रहा है और उस के द्वारा बनाए गए त्रिभुवन राज पथ पर आज भारत से सीधे काठमांडू तक पहुंचा जा सकता है. अमरीका ने भी अस्पताल, स्कूल, कालिज तथा उद्योगों में आर्थिक तथा तकनीकी सहायता पहुंचाई है.

नेपाल के भूतपूर्व प्रधान मंत्री मातृकाप्रसाद कोईराला मेरे मित्र हैं. कलकत्ते के अपने प्रवास में वे मेरे साथ ठहरते रहे हैं. अपने प्रधान मंत्रित्वकाल

में भी एक बार जब वे कलकत्ते आए तो भारत सरकार के अनुरोध के बावजूद मेरे साथ ही ठहरे.

उन का मुझ से सदैव आग्रह रहता था कि मैं नेपाल जा कर कुछ समय उन के साथ रहूं. संयोगवश नेपाल की मेरी यात्राएं ऐसे समय हुईं जब वह मंत्री पद पर नहीं रहे. वैसे नेपाल में जब भी उन से मिला, उन में वही स्नेह, वही सादगी, देश के प्रति उतना ही प्रेम पाया. कोईराला परिवार का अवदान आधुनिक नेपाल के इतिहास में बेजोड़ है. सामंतशाही का अंत करने के लिए जनता को जागृत कर गणतंत्र की स्थापना का अधिकांश श्रेय कोईराला बंधुओं को है. राजनीति की लहरें विचित्र होती हैं. आज उन्हीं कोईरालाओं में श्री बी.पी. और उन के अनुज बंदी हैं.

पहली बार १९५४ में काठमांडू गया था. उस समय महाराज त्रिभुवन नेपाल के वास्तविक शासक प्रतिष्ठित हो चुके थे. यह सहज संभव नहीं था. इस की भी एक अनोखी कहानी है.

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में नेपाल के राजवंश में नाना प्रकार के षड्यंत्र हो रहे थे. १८४६ ई. तक तो स्थिति कुछ इस तरह बनी कि राजघराने का प्रत्येक सदस्य एकदूसरे का शत्रु बन गया. सिंहासन और इस के लिए हत्या करना एक साधारण सी बात थी. हत्याएं नित्य प्रति होने लगीं. महारानी के प्रेमी गगनसिंह की हत्या के बाद युवक जंगबहादुर को प्रधान मंत्री एवं सेनापति दोनों पद दिए गए. इसी बीच महाराजा जब कोट (राजमहल) वापस आए तो उन्होंने अपने को सर्वथा बंदी पाया.

इस के बाद प्रधान मंत्रियों के हाथों में सत्ता रही. इस दीर्घ काल में जंगबहादुर के वंशज ही प्रधान मंत्री बनते आए. पेशवाओं की तरह यह पद उन का पैतृक अधिकार बन गया.

नेपाल नरेश नाम मात्र के 'पांच सरकार' रह गए. प्रधान मंत्री भी महाराज कहलाते थे. संविधान था नहीं. शासन के लिए निश्चित कानूनकायदे भी नहीं थे. इन जंगबहादुरों का हुक्म ही कानून था. प्रजा भूख, गरीबी, ठंड और रोग की चपेट में पिसती जा रही थी. धन और वैभव राणाओं के घरों में बढ़ता जा रहा था. भोगविलास तो उन के दैवी अधिकार थे. सुंदर लड़की देखी कि प्रधान मंत्री के भाईभतीजों के महलों में 'केटी' बना कर रख ली गई. इन राजाओं में कुछ के पास तो अवकाश ग्रहण के समय पचाससाठ करोड़ रुपए तक इकट्ठे हो जाते थे. अनेक के रुपए तो आज भी विदेशी बैंकों में हैं.

सन १९४० के बाद भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की गति में तीव्रता आने लगी. इस का प्रभाव नेपाल पर भी पड़ा. इस का प्रमुख कारण थे उत्तर-भारत के विभिन्न कालिजों में पढ़ने वाले अनेक नेपाली नवयुवक. दोनों ही देशों की आर्य संस्कृति ने उन्हें एक सूत्र में पिरो रखा था. भारत में अंगरेजों के विरोध में उस आंदोलन में वे भी हमारे साथ शामिल थे. यहां तक कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यकर्ता की हैसियत से अंगरेजी सरकार द्वारा नाना प्रकार की यातना भी सहते थे. इन्हीं लोगों ने आगे चल कर नेपाली कांग्रेस की स्थापना की.

शासक सजग थे. नेपाल में उन्होंने इसे पनपने नहीं दिया. वे कठोरता
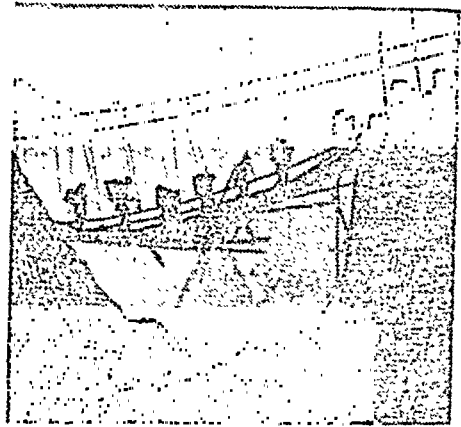
नदी इस तरह पार की जाती है...

...और इस तरह भी!

के साथ नेपाली कांग्रेस के गणतांत्रिक आंदोलन को कुचलते गए. नेताओं को बंदीगृह में ठेल दिया. अंधविश्वास, कुसंस्कार और गरीबी के भंवर में पड़ी वहां की जनता जुबान तक हिलाने की हिम्मत न कर सकी. फिर भी नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ता राणाशाही की तानाशाही को खत्म करने के लिए भारत में पटना, फारबिसगंज आदि शहरों में रह कर संगठन करते रहे. आंदोलन रुका नहीं.

सन १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ. नेपाली कार्यकर्ताओं की हिम्मत बढ़ी क्योंकि अब राणाओं के मित्र अंगरेजों का उन्हें भय नहीं रहा. उन्हें उन भारतीय नेताओं के सहयोग का भी भरोसा था जिन के साथ सन १९४२ के आंदोलन में उन्होंने कंधे से कंधा मिला कर अंगरेजों से टक्कर ली थी.

सन १९४९-५० का समय नेपाल के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा. एरिका नाम की एक जरमन महिला डाक्टर महारानी की चिकित्सा के लिए भारत से बुलाई गई. इस प्रकार नेपाल नरेश के महल में सर्वप्रथम किसी विदेशी महिला का प्रवेश हुआ.

महल में रहते हुए इस का राज-परिवार के सदस्यों से घनिष्ठ परिचय होता गया. कुछ दिनों बाद तो वह एक अभिन्न अंग ही बन गई. उस ने देखा कि यहां सभी सुखसाधन उपलब्ध हैं, वैभव और विलास का अभाव नहीं. फिर भी नेपाल नरेश उदास रहते हैं. उसे समझते देर न लगी कि वह वस्तुतः मुक्त नहीं हैं. यहां तक कि उन का या उन के परिवार के किसी सदस्य का महल से बाहर निकलना, पत्राचार आदि सभी कुछ राणाओं की स्वीकृति पर निर्भर है. सोने का पिंजरा जरूर है, पर पंछी कैद है.

इसी बीच महाराज के विचारों में राणाओं को गणतांत्रिक विचारों का रंग दिखाई पड़ा. अधिकार और सत्ता तो उन के हाथों में थी ही, नरेश पर मुकदमा चला कर उन्होंने उन्हें राज्यच्युत करना चाहा. जनता कुसंस्कार और अंध-विश्वास में थी जरूर, किंतु नरेश को वह पांच सरकार ही समझती थी, जब कि राणा थे तीन सरकार.

मौके से लाभ उठा कर नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ताओं ने पांच सरकार

(नेपाल नरेश) के नाम पर जनतंत्र की स्थापना कर राणाशाही से नेपाल को मुक्त करने की आवाज बुलंद की.

एरिका के माध्यम से महाराज ने तत्कालीन भारतीय राजदूत श्री सिंह द्वारा भारतीय प्रधान मंत्री श्री नेहरू से सहयोग मांगा. श्री सिंह नेहरूजी से मिलने दिल्ली आए. नेपाल नरेश के लिए नेहरूजी का व्यक्तिगत संदेश ले कर वह काठमांडू लौट गए. सारी बातें गुप्त रखी गईं. बस उपयुक्त अवसर की खोज थी.

६ नवंबर १९५० की सुबह को महाराजा त्रिभुवन अपने ज्येष्ठ पुत्र (वर्तमान नरेश) महेंद्र के साथ शिकार खेलने के बहाने महल से बाहर निकले. राणा के विश्वस्त सिपाही उन की निगरानी के लिए साथ थे. भारतीय दूतावास के सामने से वह गुजर ही रहे थे कि दूतावास का फाटक खुला. बिजली की तेजी से राजकुमार महेंद्र ने गाड़ी को भारतीय दूतावास में दाखिल कर दिया. योजना सफल हुई. सिपाहियों को राणाओं के पास लौटा दिया गया.

उस समय प्रधान मंत्री राणा मोहन शमशेर थे. उन्होंने प्रतिवाद किया, गर्जना की और धमकी भी दी कि दूतावास पर हमला किया जाएगा. भारतीय पक्ष ने स्पष्ट किया कि अंतर्राष्ट्रीय विधिनियम के अनुसार इसे भारत पर आक्रमण माना जाएगा. नेपाली जनता के रुख, भारतीय शक्ति और अंतर्राष्ट्रीय मान्यताओं के सामने राणा को झुकना पड़ा.

महाराज त्रिभुवन वीरविक्रमशाह देव सर्व शक्तिमान नरेश बन कर राजमहल में वापस आए. सारे नेपाल में हर्षोल्लास की लहर दौड़ गई. महाराजा ने नए सिरे से मंत्रिमंडल का गठन किया. उन का उद्देश्य था कि ब्रिटेन की तरह गणतांत्रिक शासन पद्धति नेपाल के लिए अपनाई जाए. श्री कोईराला प्रधान मंत्री बने.

सन १९५५ में महाराज का हृदय की गति रुक जाने के कारण स्विट्जरलैंड में देहांत हुआ. युवराज महेंद्र ने शासन की बागडोर संभाली. उन्होंने नेपाली कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता श्री कोईराला को प्रधान मंत्री मनोनीत किया.

कोईराला बंधुओं के आपसी मतभेद और नेपाली कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में पद के लिए होड़ ने बड़ी समस्या खड़ी कर दी. इस का कुप्रभाव जनता पर भी पड़ा. सभी एक दूसरे के प्रति दलबंदी करने लगे. वातावरण विषाक्त हो गया. जनता के विचारों की दिशा भी बदलने लगी. श्री कोईराला और उन के भाई बंदी बनाए गए. प्रजातंत्र एक प्रकार से फिर समाप्त हो गया.

महाराज महेंद्र के निर्देशन में नेपाल का नया संविधान बना. नेपाली संसद की स्थापना राष्ट्रीय पंचायत के नाम से हुई. पर सार्वभौम अधिकार उन के हाथ में ही रहे.

पिछले कुछ वर्षो से नेपाल ने विश्व की राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया है. आज चीन और पाकिस्तान दोनों ही उस की मित्रता का दम भरते हैं, हितैषी होने का दावा रखते हैं. पर यह किसी से छिपा नहीं कि नेपाल को राणाओं की दासता से किस ने मुक्ति दिलाई?

१९६४ में भारतनेपाल के पारस्परिक संबंधों में पाकिस्तान और चीन के

झूठे प्रचारों के कारण कुछ कटुता आने लगी थी. किंतु श्रीमन्नारायणजी के राजदूत बनने के बाद भ्रांतियां दूर हुईं और अब आपसी संबंध मैत्रीपूर्ण और दृढ़तर हो रहे हैं. पिछले वर्ष प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी का नेपाली जनता ने काठमांडू में अभूतपूर्व स्वागत किया था. भारत ने भी अपनी नाना प्रकार की जटिल आर्थिक समस्याओं के बावजूद नेपाल को बड़े पैमाने पर आर्थिक और तकनीकी सहायता दी है और आगे भी देते रहने का आश्वासन दिया है. भारत की सहायता से वहां बड़ेबड़े बांध बनाए गए हैं जिस से कृषि का विकास हो और जनता समृद्ध हो. बाहर की दुनिया से संपर्क की सुविधा के लिए त्रिभुवन राजपथ का निर्माण भी भारत के सहयोग से हुआ है. इस के अलावा नेपाल के एक भाग से दूसरे भाग तक आवागमन के लिए सड़कें भी बनाई जा रही हैं.

मैं विराटनगर और वीरगंज तो कई बार गया. किंतु काठमांडू जाने का मौका १३ वर्षों के लंबे अर्से बाद अगस्त १९६१ में लगा. देखा, इन वर्षों में काठमांडू की कायापलट ही हो गई है. होटल, मकान, दूकान, सड़कें, सभी एक नई सजधज के साथ नजर आईं. पहले वहां 'पारस' और शायद दोएक छोटे होटल थे और अब तो राजकुमारों द्वारा संचालित 'सेलिटी' और 'अन्नपूर्णा' नामक तापनियंत्रित डीलक्स महंगे होटल भी देखने में आए. सड़कों पर विश्व के विभिन्न देशों के बहुत से पर्यटक भी घूमते हुए दिखाई दिए.

१९५० तक जो नेपाल सदियों से विदेशियों के लिए बंद था, आज वही करोड़ों रुपए 'यात्रिक व्यवसाय' से पैदा कर रहा है.

काठमांडू की कुल आबादी लगभग तीन लाख है. इस में पाटण और भक्तपुर भी शामिल हैं. समुद्र से यहां की ऊंचाई करीब साढ़े चार हजार फीट है. श्रीनगर की तरह यह भी हिमालय के ऊंचे पहाड़ों के बीच एक खूबसूरत वादी (घाटी) है. गरीबी और अमीरी का यहां जैसा फर्क शायद ही कहीं होगा. एक ओर तो ऊंची मजबूत दीवारों के पीछे राणाओं के सुंदर विलास महल खड़े हैं और उन्हीं दीवारों की दूसरी ओर सड़ी, गंदी गलियां जहां शायद ही कभी सूर्य के दर्शन होते होंगे. सड़ांध भरी तंग कोठरियों में बिलबिलातीबिलखती जनता की ९८ प्रतिशत मानवता कैद है. सदियों तक यह क्रम चलता रहा है. आज भी इसे पूरी तरह से हटाया नहीं जा सका है.

अपने मेजबानों के साथ मैं बाजार के एक मकान में गया. तंग और गंदी गलियां पार करता हुआ जैसे ही मकान की सीढ़ियों पर चढ़ा कि सड़ांध की भभक आई. सिर चकरा गया. साथी ने मुझे परेशान देखा तो मुसकरा कर कहा, "संडास पीछे की तरफ है. इसी लिए दुर्गंध है. यहां वाले तो अभ्यस्त हैं. सदियों से जमी आदत स्वभाव का अंग बन चुकी है."

एक मित्र से मिला. नाम नहीं लूंगा. वज्र शरीर जर्जर बन चुका था. धंसी आंखों में प्यार था. पर वह जोश नहीं जो हम ने सन ४२ में देखा था. कुछ कहने से पहले ही प्रश्नभरी दृष्टि का संक्षिप्त उत्तर मिला, "समय की मांग है." मैं ने साथ भारत चलने का अनुरोध किया. किंतु उन्होंने यह कह कर टाल दिया, "यहां अभी बहुत काम बाकी है. कितनों को आप भारत ले जाएंगे?" सुन कर मुझे दधीचि की याद हो आयी.

बाजार में देखा व्यापार और उद्योग में राजस्थानी अच्छी संख्या में हैं. थोक व्यापार तो एक प्रकार से इन के ही हाथ में है. वर्षों से यहां बसे हैं. बहुत से तो नेपाली नागरिक बन गए हैं.

दुकानें विभिन्न देशों की चीजों से भरी हुई हैं. फाउंटेन पेन, कैमरे, रेडियो, ट्रांजिस्टर, घड़ियां, टेपरिकार्डर, ब्लेड तथा एक से एक उम्दा चीजें, रेशमी और ऊनी कपड़े. भारत की तरह यहां आयात पर कड़ा प्रतिबंध नहीं है. नेपाल की जनता की अभी तक क्रय शक्ति इतनी नहीं है कि कीमती और शौक की चीजों को खरीद सके. मुझे अपने एक व्यापारी मित्र से जानकारी मिली कि इन कीमती चीजों के ग्राहक या तो केवल संपन्न नेपाली हैं या फिर भारत या विदेश से आए लोग. अधिकांश विदेशी माल चोरी से सीमा पार कर भारत में आता है. इस कार्य में कुछ भारतीय व्यापारी भी हैं. मुझे बड़ी ग्लानि का अनुभव हुआ. सदियों की विदेशी दासता ने हमारा नैतिक पतन किस हद तक कर दिया है. चीन ने भारत के साथ विश्वासघात किया. आज भी वह सर्वनाश करने को तैयार है. फिर भी हमारे यहां चीनी फाउंटेन पेन और रेशमी कपड़े के लिए चोरबाजारी में होड़ लगी है. जब कि हमारे अपने देश में अच्छे से अच्छे पेन और कपड़ा बनता है.

बाजार घूमता हुआ नेपाल के सचिवालय की ओर चला गया. पहले काठमांडू एक साधारण सा शहर था. पुराने ढंग के मकान, राणाओं के महल और मंदिरों के अलावा १९वीं शताब्दी में बना सिंह दरबार---बस यही दर्शनीय स्थल थे. पिछली यात्रा में सिंह दरबार देख नहीं पाया था. इस बार देखा. पहले यह राजमहल था किंतु पचाससाठ वर्षों से नेपाल राज्य का सचिवालय है. इस में १८०० कक्ष हैं, इसी से इस की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है.

नया नेपाल बहुत कुछ बदल चुका है और बदल रहा है. विश्वविद्यालय, कालिज, हाईस्कूल, ला कालिज, मेडिकल कालिज आदि शिक्षण संस्थाएं शिक्षा के प्रचारप्रसार में लगी हैं. इन की इमारतें आधुनिक ढंग की हैं. नेपाल में साक्षरता बहुत ही कम है. कुल आबादी का केवल आठ प्रति शत ही साक्षर है. पुरुषों में १२ प्रति शत और स्त्रियों में चार प्रति शत ही साधारण रूप से शिक्षित कहे जा सकते हैं. इसी कारण वर्तमान सरकार राष्ट्रीय शिक्षण योजना आयोग का गठन कर देश से अशिक्षा को दूर करने में प्रयत्नशील है. मैं ने देखा, लड़कों के अलावा अब काफी संख्या में लड़कियां भी स्कूलकालिजों में शिक्षा पा रही हैं.

बाजार के बीचोंबीच महारानी के नाम पर एक बहुत ही सुंदर उद्यान बनाया गया है. पिछली बार बालाजू में बाइस धारा देखने गया था. पर इन तेरह वर्षों के पश्चात वह स्थान पहचानने में भी नहीं आता. धाराओं के चारों तरफ बहुत ही सुंदर कुंज बना दिए गए हैं. तैरने के लिए एक सरोवर भी बनाया गया है. इस के पास ही छोटेबड़े कलकारखाने बन रहे हैं. लगा उद्योगधंधे भी नेपाल में अंकुरित हो रहे हैं.

पुराने महल और मंदिर जितने यहां सुरक्षित रह पाए हैं उतने भारत में नहीं. इस का एक बहुत ही स्वस्थ परिणाम यह भी रहा कि भारतीय संस्कृति अथवा धर्म की विभिन्न धाराओं का सफल प्रयोग और समन्वय यहां संभव हो सका. बौद्ध, वैष्णव और शैव या शाक्त सभी एक हैं. इन के अलगअलग मंदिरों में भी एकदूसरे
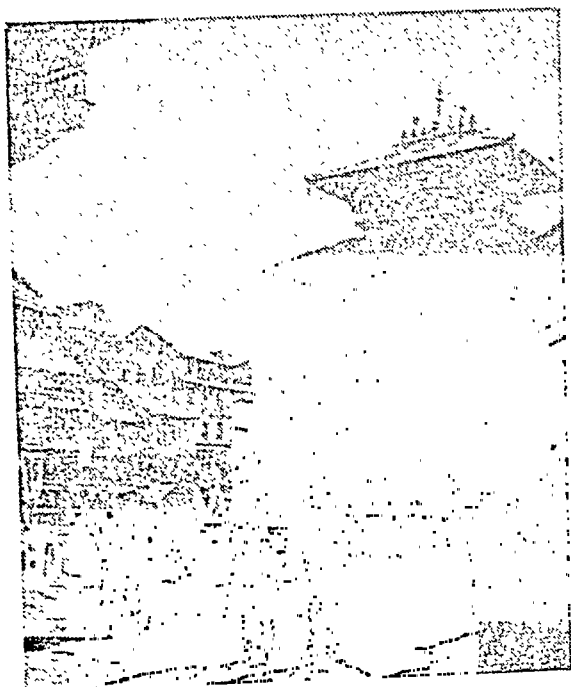
चेहरों पर ताजे फूलों जैसी मुसकान! दाएं : बौद्ध और हिंदू संस्कृति का संगम पैगोडा शैली का एक हिंदू मंदिर

के प्रतीक रहते हैं और पूजे भी जाते हैं.

सारे नेपाल में मंदिर, स्तूप और मठ भरे पड़े हैं. राजधानी के आसपास पिछली दस शताब्दियों में बने बहुत से मंदिर हैं. इन में विशेष रूप से पशुपतिनाथ, स्वयंभूनाथ, गुह्येश्वरी, मंजुश्री और हनुमान ढोका हैं.

पशुपतिनाथ का मंदिर १३वीं शताब्दी में बना था. काशी के विश्वनाथ और पाटण के सोमनाथ के मंदिर का जितना महत्त्व है, उतना ही पशुपतिनाथ का है. वाग्मति के तट पर बना यह तीर्थ सुदूर दक्षिण भारत और विदेशों से हिंदुओं को युगों से आकर्षित करता रहा है. पशुपतिनाथ के मंदिर की एक और भी विशेषता है. विश्वनाथ और सोमनाथ के मंदिरों को ध्वंस किया गया. काशी का मूल मंदिर आज मस्जिद है. इसी प्रकार सोमनाथ का आदि मंदिर ध्वंसावशेष है. दोनों के नए मंदिर बने किंतु पशुपतिनाथ यथावत है. इस के ऊपर का कलश ठोस सोने का है. आंगन में नंदी की विशाल मूर्ति है.

दर्शन करते समय पुजारी ने 'अस्ति जम्बूद्वीपे भरतखंडे आर्यावर्त्ते. . .' का मंत्रोच्चार कर चरणामृत दे कर आशीर्वाद दिया. मैं सोचने लगा, हिमालय की दुर्गम श्रेणियां और राजनीति के कृत्रिम व्यवधान हमारी सांस्कृतिक एकता को जोड़ने में भले ही बाधक रहें पर नेपाल और भारत का हजारों वर्ष का संबंध सदा रहा है और रहेगा.

स्वयंभूनाथ का मंदिर देखा. मैं ने समझा था यह शैव मंदिर होगा. पर है यह बौद्ध. एक पहाड़ी के ऊपर बना यह मंदिर लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन है. इस पर पहुंचने के लिए ५०० सीढ़ियां हैं. मुख्य मंदिर के आसपास १३ और भी

छोटेछोटे मंदिर हैं. बीच में छः फीट ऊंचा और साढ़े तीन फीट मोटा एक चक्र है, जिस पर जप के मंत्र अंकित हैं. इसे घुमा कर भक्तजन मंत्रजाप का फल प्राप्त करते हैं.

मंजुश्री का चैत्य स्वयंभूनाथ मंदिर के पश्चिम में है. माघ श्रीपंचमी को यहां बहुत बड़ा मेला लगता है. हजारों की संख्या में बौद्ध, शैव, शाक्त और वैष्णव मंजुश्री के पूजन के निमित्त आते हैं.

गुह्येश्वरी का मंदिर विशेष रूप से बौद्धों की तांत्रिक शाखा की प्रसिद्ध तीर्थस्थली है.

हनुमान ढोका में महावीर हनुमानजी की विशाल मूर्ति है. इस की प्रतिष्ठा राजा जयप्रतापमल ने करीब तीन सौ वर्ष पर्व की थी. पास ही में दरबार चौक है और प्राचीन राजप्रासाद. राजमहल भव्य है. इस का सात मंजिला सिंहद्वार लकड़ी का बना है. इस पर खुदाई का काम इतनी बारीकी का है कि आंखें उन पर टिकी ही रह जाती हैं.

अभी तक मैं बुद्ध के जन्मस्थान लुंबिनी वन नहीं जा पाया था. किंतु काठमांडू के पास ही स्थित बोधीनाथ के स्तूप को देखने का अवसर मिला. यहां तथागत के 'अस्थि अवशेष' हैं. कहा जाता है कि विश्व के विशाल स्तूपों में यह अन्यतम है. यह आसपास धान और मक्के के हरेभरे खेतों के बीच बड़ा ही आकर्षक लगता है. तिब्बत, बरमा, जापान, भारत तथा अन्य देशों से हजारों दर्शनार्थी आते रहते हैं. इस के पास ही तिब्बती लामाओं का एक बिहार भी है. अब तक विश्व के बहुत से बड़ेबड़े गिरजे और मसजिदों को देख चुका था. किंतु यहां जो शांति और आनंद मिला, वह स्वयं के अनुभव से ही समझा जा सकता है. मैं तथागत बुद्ध की मूर्ति देख रहा था, निर्विकार भाव थे—क्षमा, दया, प्रेम, तेजोमय मुखमंडल से मानो आभा निकल कर सांसारिक विकारों की कालिमा को दूर कर रही थी.

ललितपुर, जिसे पाटन भी कहते हैं, मुझे बहुत अच्छी जगह लगी. किसी समय यह नेपाल की राजधानी थी. आज भी विशुद्ध नेपाली संस्कृति की छाप यहां स्पष्ट दिखाई देती है. मल्लराजाओं के द्वारा बनवाया गया यहां का कृष्ण मंदिर देखने लायक है. इस के पत्थरों पर उत्कीर्ण कारीगरी मथुरा के मंदिरों के समान है.

यहां के लोग काठमांडू से अधिक सुंदर लगे. ब्राह्मण पुरुष और स्त्रियां तो सचमुच बहुत खूबसूरत हैं. लंबी नुकीली नाक, उन्नत ललाट, बड़ीबड़ी खिंची आंखों को देख कर इन्हें नेपाली मानने में दुविधा हो सकती है.

नेपाल में विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हुआ है. भारत, तिब्बत और मध्य एशिया से आ कर लोग यहां बसते गए. किराती, नेवारी और पर्वती—ये तीन नस्ल यहां प्रमुख हैं. किराती और नेपाली तो यहां के मूल निवासी माने जाते हैं.

मुझे मेरे एक नेवारी मित्र ने बताया कि नेपाल में भारत के जौनसार अंचल से किरातों ने प्रवेश किया. बात सही लगी क्योंकि नेपाली रीतिरिवाज में मंगोलीय और भारतीय दोनों प्रथाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट है. किरातों का उल्लेख वेद और

वाएं: पशुपतिनाथ के मंदिर में शिवरात्रि के अवसर पर महिलाओं की भीड़.
ऊपर: हिमालय की गोद में बसी नेपाल की राजधानी काठमांड

महाभारत में मिलता है. इस के बाद मंजुश्री (मंचूरिया) से लोग यहां आ कर बसते गए. क्योंकि मध्य एशिया से भारत में प्रवेश के लिए यह मार्ग यद्यपि दुर्गम था फिर भी समय की बचत करा देता था. भारतीय किरात और मंचूरियन लोगों के सम्मिश्रण से नेवारी जाति की उत्पत्ति हुई. यही कारण है कि इन में दोनों के रीतिरिवाजों का समन्वय मिलता है. नेपाल का मौलिक साहित्य, उस की कला और कौशल की श्रीवृद्धि में इन्हीं नेवारियों का असीम योगदान है. व्यापार के क्षेत्र में भी ये अन्य नेपाली जातियों की अपेक्षा सब से आगे बढ़े हुए हैं. कलकत्ते में भी इन की कुछ फर्म हैं जो कस्तूरी आदि का धंधा करती हैं.

भारत से समयसमय पर नेपाल में लोग जा कर बसते रहे हैं. मुसलिम शासकों के अत्याचार और उत्पीड़न से परेशान हो कर सुदूर राजस्थान से राजपूत भी वहां जा कर बसते गए जो आगे चल कर पर्वतीय कहलाने लगे. नेपाल की सैनिक जाति के ठकुरी, खस और गुरुंग की संतान हैं जिन्हें हम गोरखा कहते हैं. इन की भाषा पर भारतीय प्रभाव है. बल्कि यों कहना चाहिए कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह गोरखाली की जननी भी संस्कृत ही है.

कृष्ण मंदिर से बाहर निकल कर एक खुली जगह में बैठ गया. सामने छोटेछोटे सुंदरसलोने बच्चे खेल रहे थे. गरीबी ने नेपाल को बेहाल कर रखा है. फिर भी लोग मस्त रहते हैं. नाचगाना, तीजत्यौहार बड़े शौक से मनाते हैं. बच्चे जमीन पर लकीरें खींच कर हमारे यहां की तरह कबड्डी खेल रहे थे. छोटी लड़कियां घेरे के बाहर बैठी देख रही थीं और किसी खिलाड़ी के पिट जाने पर हंस-हंस कर तालियां बजा रही थीं.

मैं इन्हें देख रहा था और बरबस यही खयाल हो आता था कि आठदस वर्षों में इन में से बहुत से विभिन्न शहरों की गंदी गलियों में रहते मिलेंगे. कुछ सेना में

छोटेछोटे मंदिर हैं. बीच में छः फीट ऊंचा और साढ़े तीन फीट मोटा एक चक्र है, जिस पर जप के मंत्र अंकित हैं. इसे घुमा कर भक्तजन मंत्रजाप का फल प्राप्त करते हैं.

मंजुश्री का चैत्य स्वयंभूनाथ मंदिर के पश्चिम में है. माघ श्रीपंचमी को यहां बहुत बड़ा मेला लगता है. हजारों की संख्या में बौद्ध, शैव, शाक्त और वैष्णव मंजुश्री के पूजन के निमित्त आते हैं.

गुह्येश्वरी का मंदिर विशेष रूप से बौद्धों की तांत्रिक शाखा की प्रसिद्ध तीर्थस्थली है.

हनुमान ढोका में महावीर हनुमानजी की विशाल मूर्ति है. इस की प्रतिष्ठा राजा जयप्रतापमल ने करीब तीन सौ वर्ष पर्व की थी. पास ही में दरबार चौक है और प्राचीन राजप्रासाद. राजमहल भव्य है. इस का सात मंजिला सिंहद्वार लकड़ी का बना है. इस पर खुदाई का काम इतनी बारीकी का है कि आंखें उन पर टिकी ही रह जाती हैं.

अभी तक मैं बुद्ध के जन्मस्थान लुंबिनी वन नहीं जा पाया था. किंतु काठमांडू के पास ही स्थित बोधीनाथ के स्तूप को देखने का अवसर मिला. यहां तथागत के 'अस्थि अवशेष' हैं. कहा जाता है कि विश्व के विशाल स्तूपों में यह अन्यतम है. यह आसपास धान और मक्के के हरेभरे खेतों के बीच बड़ा ही आकर्षक लगता है. तिब्बत, बरमा, जापान, भारत तथा अन्य देशों से हजारों दर्शनार्थी आते रहते हैं. इस के पास ही तिब्बती लामाओं का एक बिहार भी है. अब तक विश्व के बहुत से बड़ेबड़े गिरजे और मसजिदों को देख चुका था. किंतु यहां जो शांति और आनंद मिला, वह स्वयं के अनुभव से ही समझा जा सकता है. मैं तथागत बुद्ध की मूर्ति देख रहा था, निर्विकार भाव थे—क्षमा, दया, प्रेम, तेजोमय मुखमंडल से मानो आभा निकल कर सांसारिक विकारों की कालिमा को दूर कर रही थी.

ललितपुर, जिसे पाटन भी कहते हैं, मुझे बहुत अच्छी जगह लगी. किसी समय यह नेपाल की राजधानी थी. आज भी विशुद्ध नेपाली संस्कृति की छाप यहां स्पष्ट दिखाई देती है. मल्लराजाओं के द्वारा बनवाया गया यहां का कृष्ण मंदिर देखने लायक है. इस के पत्थरों पर उत्कीर्ण कारीगरी मथुरा के मंदिरों के समान है.

यहां के लोग काठमांडू से अधिक सुंदर लगे. ब्राह्मण पुरुष और स्त्रियां तो सचमुच बहुत खूबसूरत हैं. लंबी नुकीली नाक, उन्नत ललाट, बड़ीबड़ी खिची आंखों को देख कर इन्हें नेपाली मानने में दुविधा हो सकती है.

नेपाल में विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हुआ है. भारत, तिब्बत और मध्य एशिया से आ कर लोग यहां बसते गए. किराती, नेवारी और पर्वती—ये तीन नस्ल यहां प्रमुख हैं. किराती और नेपाली तो यहां के मूल निवासी माने जाते हैं.

मुझे मेरे एक नेवारी मित्र ने बताया कि नेपाल में भारत के जौनसार अंचल से किरातों ने प्रवेश किया. बात सही लगी क्योंकि नेपाली रीतिरिवाज में मंगोलीय और भारतीय दोनों प्रथाओं का सम्मिश्रण स्पष्ट है. किरातों का उल्लेख वेद और

वाएं: पशुपतिनाथ के मंदिर में शिवरात्रि के अवसर पर महिलाओं की भीड़.
ऊपर: हिमालय की गोद में बसी नेपाल की राजधानी काठमांड

महाभारत में मिलता है. इस के बाद मंजुश्री (मंचूरिया) से लोग यहां आ कर बसते गए. क्योंकि मध्य एशिया से भारत में प्रवेश के लिए यह मार्ग यद्यपि दुर्गम था फिर भी समय की बचत करा देता था. भारतीय किरात और मंचूरियन लोगों के सम्मिश्रण से नेवारी जाति की उत्पत्ति हुई. यही कारण है कि इन में दोनों के रीतिरिवाजों का समन्वय मिलता है. नेपाल का मौलिक साहित्य, उस की कला और कौशल की श्रीवृद्धि में इन्हीं नेवारियों का असीम योगदान है. व्यापार के क्षेत्र में भी ये अन्य नेपाली जातियों की अपेक्षा सब से आगे बढ़े हुए हैं. कलकत्ते में भी इन की कुछ फर्म हैं जो कस्तूरी आदि का धंधा करती हैं.

भारत से समयसमय पर नेपाल में लोग जा कर बसते रहे हैं. मुसलिम शासकों के अत्याचार और उत्पीड़न से परेशान हो कर सुदूर राजस्थान से राजपूत भी वहां जा कर बसते गए जो आगे चल कर पर्वतीय कहलाने लगे. नेपाल की सैनिक जाति के ठकुरी, खस और गुरुंग की संतान हैं जिन्हें हम गोरखा कहते हैं. इन की भाषा पर भारतीय प्रभाव है. बल्कि यों कहना चाहिए कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह गोरखाली की जननी भी संस्कृत ही है.

कृष्ण मंदिर से बाहर निकल कर एक खुली जगह में बैठ गया. सामने छोटेछोटे सुंदरसलोने बच्चे खेल रहे थे. गरीबी ने नेपाल को बेहाल कर रखा है. फिर भी लोग मस्त रहते हैं. नाचगाना, तीजत्यौहार बड़े शौक से मनाते हैं. बच्चे जमीन पर लकीरें खींच कर हमारे यहां की तरह कबड्डी खेल रहे थे. छोटी लड़कियां घेरे के बाहर बैठी देख रही थीं और किसी खिलाड़ी के पिट जाने पर हंस-हंस कर तालियां बजा रही थीं.

मैं इन्हें देख रहा था और बरबस यही खयाल हो आता था कि आठदस वर्षों में इन में से बहुत से विभिन्न शहरों की गंदी गलियों में रहते मिलेंगे. कुछ सेना में

भी भर्ती हो जाएंगे. ब्रिटेन के साथ नेपाल की शायद शर्तबंदी भी है. जो भी हो, अपने देश के स्वजनों से दूर, बहुत दूर ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए उस के उपनिवेशों में थोड़े से रुपयों पर अपनी जान हथेली पर ले कर खेलेंगे. कैसी विडंबना है! क्या यही इन के साहस और सीधेपन की कीमत है?

नया नेपाल यह जानता और समझता है. वह अभावों से जूझने में लगा है. जाग्रत नेपाल का एशिया की राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान होगा क्योंकि भारत और चीन जैसे दो बड़े राष्ट्रों की शक्ति का संतुलन उस के सहयोग पर निर्भर करता है.

पाटन से लौट रहा था. साथ में कालेज का एक छात्र था. बातचीत के सिलसिले में उस ने बड़े गर्व से शुद्ध हिंदी में कहा, "हमारा देश केवल हिंदू अथवा बौद्ध संस्कृति के लिए ही आकर्षण का केंद्र नहीं है. सैलानियों को अपनी ओर खींचने के लिए यहां का नैसर्गिक सौंदर्य कशमीर अथवा स्विट्जरलैण्ड से कम नहीं. यह सही है कि यहां आधुनिक साधनों का अभाव है जिस से विदेशियों को कुछ असुविधा होती है. फिर भी वे आते हैं.

"पृथ्वी के ऊंचे से ऊंचे हिमाच्छादित शिखर आप यहीं पाएंगे. सागर माथा (माउंट- एवरेस्ट), कांचन माला, मकालू, लोहासे, धवलागिरि, अन्नपूर्णा, गौरीशंकर---सभी २३ हजार से २९ हजार फीट की ऊंचाई तक के हैं. शताब्दियों से इन से हम धैर्य, साहस, कर्मठता की प्रेरणा पाते रहे हैं."

उस ने बताया कि उस के कालिज से एक टोली गौरीशंकर चोटी पर २३ हजार फीट की चढ़ाई करने जा रही है. उस ने मुझे भी साथ देने के लिए निमंत्रण दिया.

मैं ने हंस कर कहा, "शायद बीस वर्ष पहले आप के इस निमंत्रण को मैं स्वीकार कर लेता. परंतु अब तो गौरीशंकर पर जा कर मेरा श्रद्धापूर्ण प्रणाम अखिल विश्व के कल्याण पुंज शिव को यदि आप निवेदन कर सकें तो मैं अपने को धन्य मानूंगा."